स्मृतियों के वातायन से

डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन ग्रंथ

स्मृतियों के वातायन से

प्रकाशक
डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन समिति
अहमदाबाद

स्मृतियों के वातायन से
डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन ग्रन्थ

प्रेरक :
ग.र.आ. ज्ञानमति माताजी

प्रकाशक :
डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन समिति, अहमदाबाद

प्रकाशन वर्ष :
फरवरी 2007

लोकार्पण :
11 फरवरी 2007
अहमदाबाद

मूल्य : मनन – चिंतन ,

मुद्रक :
श्री हरिओम ओफसेट प्रिन्टिंग प्रेस, अहमदाबाद

अक्षर संयोजन :
श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
25, शिरोमणि बंगलोझ, बरोड़ा एक्सप्रैस हाईवे के सामने,
सी.टी.एम., अहमदाबाद–380026
दूरभाष : (079) 25850744

डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

प्रेरणा–स्रोत

पू. ग.र.आ. ज्ञानमति माताजी

परामर्श दाता

बा.ब्र.श्री रवीन्द्रकुमार जैन, *हस्तिनापुर*

पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई, *अहमदाबाद*

प्रधान संपादक

डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' *(दमोह)*

पूर्व सचिव, संस्कृत अकादमी, मध्य प्रदेश

प्रबंध संपादक

श्री विनोदभाई 'हर्ष', *अहमदाबाद*

संपादक

बा.ब्र. स्वाति बहन *(हस्तिनापुर)*

डॉ. कपूरचंद जैन

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कुंद कुंद जैन कॉलेज, खतौली

श्री आर. के. जैन *(वास्तुशास्त्री), मुंबई*

श्री रोहित शाह *(गुजराती साहित्यकार) अहमदाबाद*

संपादन परामर्श

डॉ. राजमल जैन

सिनियर साइन्टिस्ट, फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी, डिपार्टमेन्ट ऑफ स्पेस, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, अहमदाबाद

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत

डॉ. भागचन्द जैन 'भास्कर' *(नागपुर)*

पूर्व निदेशक, श्री पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी

डॉ. जयकुमार जैन

रीडर, संस्कृत विभाग, पी.जी. कॉलेज, मुजफ्फरनगर

डॉ. विजयकुमार जैन

प्रधान संपादक– श्रुत संवर्धिनी, लखनऊ

प्रकाशन सहयोगी

एक धर्म–साहित्य प्रेमी श्रावक

श्री नवग्रह जैन तीर्थ *(वरुर– कर्नाटक)*
समन्वय ध्यान साधना केन्द्र *(अहमदाबाद)*
श्री खेमचंद जैन चेरीटेबल ट्रस्ट *(सागर)*
अ.भा.दि. जैन शास्त्रि परिषद *(चड़ौत)*
श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान *(हस्तिनापुर)*
श्री कमलचंद जैन खारीबावली *(दिल्ली)*

भ.ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ *(हस्तिनापुर)*

पदाधिकारी एवं कार्यकारिणी के सदस्य गण

अध्यक्ष

श्री सोभागमलजी कटारिया

कार्याध्यक्ष

श्री महेन्द्रभाई ए. शाह

(पूर्व प्रमुख– गुजरात वेपारी महामंडल)

उपाध्यक्ष

श्री शांतिलालजी नाहर

श्री नरेश जैन

मंत्री

श्री प्रदीपभाई कोटडिया

संयोजक

श्री विनोदभाई हर्ष

सदस्य

श्री प्रमोदभाई शाह

श्री राधेश्यामजी सरावगी

श्री नारायणचंदजी मेहता

श्री संतोष सुराणा

श्री ऋषभ जैन

श्रीमती कपूरीदेवी (ध.प.– स्व. छक्कीलालजी जैन)
श्री महावीर कुमार मिण्डा (उदयपुर)
श्री दिनेशभाई गांधी
श्री पंकज कोटडिया
श्री श्यामसुंदरजी शुक्ल
श्री कमलचंदजी दिल्ली
श्री हुकुमचंदजी 'पंचरत्न'
श्री भगवतीलालजी जैन
श्री रमेशभाई धामी (सूरत)
श्री रायचंदजी लूणिया
श्री बंशीलालजी दावड़ा (मुंबई)
श्री भा.दि.जैन शास्त्रि परिषद
श्री दयाचंदजी जैन
श्री निर्मल ध्यान केन्द्र (गिरनार)
श्री ओमप्रकाशजी (सूरत)
श्री त्रिलोचनसिंह भसीन (दिल्ली)
श्री पारसमल खेमचंदजी जैन
श्री केतनभाई शाह
श्री नेमिकुमार जैन
श्री जितेन्द्रकुमारजी शाह
श्री खजानची साहब (मुंबई)
श्री महेन्द्रकुमार पांड्या (पूर्व प्रेसिडेन्ट 'जैना', न्यूयोर्क)
श्री कुमारपाल शाह (न्यूजर्सी)
श्री नितिनभाई आर. शाह (न्यूजर्सी)
श्री भूपेन्द्रभाई सी. शाह (न्यूजर्सी)
श्री भोगीलाल जेड़ शाह (न्यूजर्सी)
श्री अरविंदभाई शाह (केलिफोर्निया)
श्री कमलेशभाई (ओरलेन्डो)
श्री अजय कौशल (सानडियागो)
श्री नवीन पारेख (टेक्सास)
श्री योगेशभाई कामदार (कनेक्टीकट)
श्री बचुभाई मेहता (न्यूयोर्क)
श्री नरेश शाह (न्यूयोर्क)
श्री डॉ. नितिन शाह (केलिफोर्निया)
श्रीमती हर्षाबेन परीख (केलिफोर्निया)
श्री डॉ. चंद्रकुमार खासगीवाला (बोस्टन)
श्री दिनेशभाई गाला (केलिफोर्निया)
श्री निर्मल दोशी (न्यूजर्सी)
श्री महेशभाई वोरा (डिट्रोईट)
श्री मुकुंदभाई मेहता (बोस्टन)
श्री राजेशकुमार जैन (मालथौन)
श्री ज्ञानचंद जैन (रिद्धि–सिद्धि, मुंबई)
श्री लालचंद देवचंद शाह
श्री रमेशचंदजी एडवोकेट
श्री चंद्रकांत भोजे पाटील
श्री नरेन्दरजी लुणिया
श्री दीपक ए. धीरानी
श्री नील निकुंज जानी
श्री राजेन्द्रजी राठी
श्री घनश्यामभाई
श्री भरतभाई बी. शाह (आर.बी. ट्रेडर्स, गांधीनगर)
श्री उरेश झवेरी (जैन ट्रेडिंग कोर्पो.)
श्री सर्वेन्द्रमणि त्रिपाठी
श्री दिलीपभाई नंदकिशोर चोकसी
श्री राकेश हेमचंद चोकसी
श्री दिनेश कैलाशचंद जैन
श्री महिपालसिंह जैन
श्री सत्यनारायणजी गुप्ता

जिनकी शुभेच्छायें हमारे साथ हैं

(जिनकी मौखिक शुभेच्छायें प्राप्त हुई हैं)

श्री सुधीर मेहता (टोरेन्ट ग्रुप)
श्री राजेन्द्र शाह (शाह एलोय)
श्री सुभाषभाई शाह
श्री जसवंतलाल शाह
श्री जयंतीभाई (रत्नमणि)
डॉ. श्री सुधीरभाई शाह
डॉ. श्री सुबोधभाई शाह
श्री उत्कर्षभाई शाह
श्री मुक्तकभाई कापड़िया
श्री अमृतलाल रेवचंद शाह
श्री अनिलभाई बकेरी
श्री अनिलभाई शाह
श्री नवनीतभाई पटेल (पार्श्वनाथ कोर्पो.)
श्री वंशराज भणसाली
श्री अभयकुमार जैन
श्री सूर्यकान्त भोगीलाल शाह
श्री बिपिनभाई मनसुखभाई शाह
श्री मनुभाई एच. बखारीया
श्री रमेशभाई वाड़ीलाल शाह
श्री जगदीशभाई पटेल
श्री जिनेन्द्रकुमार एस. जैन
श्री संजयभाई कोठारी
श्री गौतम नवलचंद शाह
श्री गौतमभाई जैन (मेट्रो)
श्री आर.सी. गांधी
श्री जी.सी. जैन
श्री इम्तियाज़ मलिक
श्री सुधीर पाटनी
श्री गौतमभाई अदाणी
श्री महावीरप्रसाद पाटनी
श्री विनयकुमार जैन
श्री नवलकिशोर जैन
श्री पी.डी. पटेल (एडवोकेट)
डॉ. श्री राजेश मिश्रा
श्री वीरेन्द्र झवेरी
श्री सुरेश कोठारी
श्री जयंतिलाल संघवी
श्री अनिल जैन (दिल्ली)
श्री लाला महावीरप्रसाद (दिल्ली)
श्री पन्नालालजी पापड़ीवाल
श्री कैलाशचंद जैन (दिल्ली)
श्री कैलाशचंद जैन (लखनऊ)
श्री जिनेन्द्रकुमार (जिनेन्दु– यंगलीडर)
श्री बिपिनभाई कोटडिया
श्री राजेश जैन
श्री शैलेष जैन
श्री प्रकाशचन्द्र जैन (डिकोरेशन वाले)
डॉ. श्री राजेश मिश्रा

अभिनन्दनीय मनीषी

डॉ. शेखरचन्द्र जैन भारत की भौगोलिक सीमाओं में एक चिर–परिचित नाम है। भारत के बाहर–पाश्चात्य जगत् में भी वह एक बहुचर्चित विश्रुत मनीषी हैं।

मूलतः बुन्देलखण्ड की वीर प्रसविनी वसुन्धरा के वासी और शैशव में सुसंस्कारों को आत्मसात् किये इनके यौवन का आरोह श्रीमद्रायचन्द्र और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रत्युत्पन्न–सम्पन्ना साधनामयी नैष्ठिक मेदिनी गुजरात प्रदेश में कुछ इस प्रकार से हुआ कि यह वहीं के हो गये।

बुन्देली माटी के सोंधेपन के समवाय के समवेत खुरई (जिला–सागर, म.प्र.) के श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल के सुरम्य और सुसंस्कृत परिवेश में जिस मेधावी छात्र के व्यक्ति का सृजन, विकास और समुन्नयन 'शेखरचन्द्र' के रूप में हुआ, उसने अपनी प्रशस्त मेधा, ऊर्जस्वित् ऊर्जा, प्रौढ निष्ठा और धीरप्रशांत विवेक का समीचीन पल्लवन एवं सन्निवेशन भारतीय वाङ्मय में सन्निविष्ट बहुमूल्य रत्नों–जीवनमूल्यों तथा उदात्त सिद्धान्तों का संचयन का प्रभावक अभिव्यक्ति प्रदान करने में केन्द्रित किया। परिणामस्वरूप विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में महत्त्वपूर्ण स्थान पर अधिष्ठित जैन संस्कृति के महनीय तत्त्वों अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद, कर्मसिद्धान्त, मृत्यु महोत्सव, सल्लेखना प्रभृति विविध विषयों को आम–आदमी की भाषा का अमलीजामा पहिनाया।

कोमलकान्त पदावली से सम्पुष्ट प्राञ्जल परिष्कृत भाषा में डॉ. शेखरचन्द्र जैन के सार्थक कृतित्त्व में भगवती श्रुत देवता के अक्षय्य भाण्डार को श्री समृद्ध भी किया है। वे देव–शास्त्र–गुरु के प्रति समानभाव से आस्थावान् विवेचक हैं। इसीलिए सर्वत्र समादृत हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन ने अपने प्राध्यापकीय कार्यक्षेत्र के अतिरिक्त बहुआयामी प्रवृत्तियों से समाजसेवा, सांस्कृतिक प्रभावना, ग्रन्थलेखन और सम्पादन, संस्था संचालन, 'तीर्थंकर वाणी' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का प्रकाशन प्रभृति अनेक गतिविधियों के द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र में उल्लेखनीय स्थान बनाया है। वह कर्म ही जीवन है और 'चरैवेति चरैवेति' इस महर्षि वाक्य को दृष्टिपथ में रखकर अनवरत कर्म–निरत हैं। डॉ. शेखरचन्द्र के व्यक्तित्त्व में– 'रहे अडोल अकम्प निरन्तर'– इस भावना की अभिव्यक्ति निरन्तर होती है।

अभिनन्दनीय के अभिनन्दन की शृंखला

परिणाम स्वरूप उन्हें विविध प्रसंगों में प्रवचनमणि, वाणीभूषण आदि अलंकरणों, प्रशस्तियों और अखिल भारतीय अनेक पुरस्कारों से नवाज़ा गया है। ये सभी उपक्रम उनके व्यक्ति, विचारों और कार्यों के सामस्त्येन निदर्शन नहीं हैं। अतः–

अखिल भारतीय अभिनन्दन की योजना

मनीषी डॉ. शेखरचन्द्र जैन के व्यक्तित्व, वैदुष्य और अवदान के निरूपक अखिल भारतीय अभिनन्दन की आवश्यकता बहुत वर्षों से अनुभव की जा रही थी। इसी कमी की पूर्ति हेतु प्रबुद्धजनों ने निर्णय किया कि– 'डॉ. शेखरचन्द्र जैन के कर्मठ व्यक्तित्त्व–क्रियाशील जीवन और उपलब्धियों से भावी पीढ़ी को सुपरिचित कराने के उद्देश्य से उनका अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन भव्य समारोह पूर्वक **'स्मृतियों के वातायन से'** अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करके समर्पण पूर्वक किया जावे'

और यह निष्पत्ति

उक्त निर्णय की फलश्रुति प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ है। इस अभिनन्दन ग्रन्थ को सुधी पाठकों के करकमलों में सोंपते हुए हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है।

इसमें तीन खण्ड हैं – प्रथम खण्ड में आशीर्वचन और शुभकामनाएँ समाविष्ट हैं, द्वितीय खण्ड में अभिनन्दनीय का जीवनवृत्त और उनके द्वारा प्रणीत साहित्य की समीक्षाएँ हैं, और तृतीय खण्ड में महत्त्वपूर्ण विषयों पर मनीषी चिन्तकों के शोध–खोजपूर्ण आलेख सन्निबद्ध हैं। समासतः कह सकते हैं कि एक सम्पुट में भारतीय मनीषा के संज्ञापक–इतिहास, संस्कृति, पुराविद्या, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, मानविकी और विज्ञान आदि से सम्बद्ध जैन विद्याओं के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने वाली सामग्री संग्रथित है। इस सबके आधार पर यह कालजयी कृति है। वस्तुतः इस ग्रन्थ को व्यक्ति–विशेष के केवल गुणानुवाद के रूप में नहीं, प्रत्युत भारतीय मनीषा के परिचायक बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

कृतज्ञता प्रकाश

इस अभिनन्दन ग्रन्थ की संयोजना और मूर्तरूप धारण करने में अर्थात् – अथ से इति तक – परमपूज्य आचार्य भगवंतों, साधु–संतों, आर्यिका माताओं, मनीषियों, आलेख प्रस्तोताओं, कवि–मित्रों और समीक्षक महानुभावों का हार्दिक सहयोग उल्लेखनीय है। इनके शुभाशीष, मार्गदर्शन और सक्रिय सहयोग के बिना इस रूप में इस ग्रन्थ की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

अभिनन्दन ग्रन्थ के माननीय सम्पादक मण्डल के सदस्यों, प्रधान, प्रबन्ध एवं सम्पादक मंडल तथा प्रकाशन समिति के समस्त पदाधिकारियों तथा सदस्यों और इसे अक्षर संयोजन में श्री विपुलभाई मिस्त्री एवं मुद्रित कार्य में श्री हरिओम प्रेस के संचालक श्री हसमुखभाई पटेल के प्रति अनेकशः विनय तथा कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन और उनके परिवार ने ग्रन्थ हेतु सर्वविध जानकारी और सामग्री सुलभ कराके महत्त्वपूर्ण सहयोग किया है। इसके प्रति उन सभी के प्रति हार्दिक साधुवाद।

माननीय डॉ. शेखरचन्द्र जैन इस विविध वर्ण, गन्ध और भावों से सम्बन्धित गुच्छक को सादर स्वीकार करें। 'मूल्य पुजापे का नहीं, पुजारी के भावों का आंके' ऐसा सादर अनुरोध है।

सादर अनुरोध

इस अभिनन्दन ग्रन्थ हेतु प्रकाशनार्थ पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई। सब श्रेष्ठ थी। सुधी लेखक इस तथ्य से अवगत हैं कि सम्पादक का कार्य बहुत कठिन है। उसे विविधता में एकता को पिरोकर एक सुन्दर समन्वित पुष्प–गुच्छक प्रस्तुत करना होता है। इस दृष्टि से यदि किसी महानुभाव द्वारा प्रेषित सामग्री का उपयोग इस ग्रन्थ में नहीं हो सका तो ऐसे महानुभाव से हम खेदपूर्वक क्षमायाचना करते हैं और पूर्ववत् आत्मीय भाव की कामना करते हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति और सम्पादक मण्डल ने इसे सर्वाङ्गीण बनाने का विनत उपक्रम किया है। किन्तु समय अथ च साधन सीमा, अनेक विध व्यस्तताओं और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद यदि यह ग्रन्थ सुधी और सहृदय पाठकों के मानकों पर खरा उतरा तो हम सभी का श्रम सार्थक होगा।

आपका स्नेह, आत्मीय भाव और मार्गदर्शन हमारा सम्बल है। अन्त में अनुरोध है–

गच्छतः स्खलनंक्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥

इति शुभम्।

विदुषां वशंवदः
प्रो. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'
(प्रधान सम्पादक)

विघ्नहरण पारस प्रभु, नित-नित ध्याऊँ तोय।
हे प्रभुजी! भव के कटें सारे संकट मोय।।

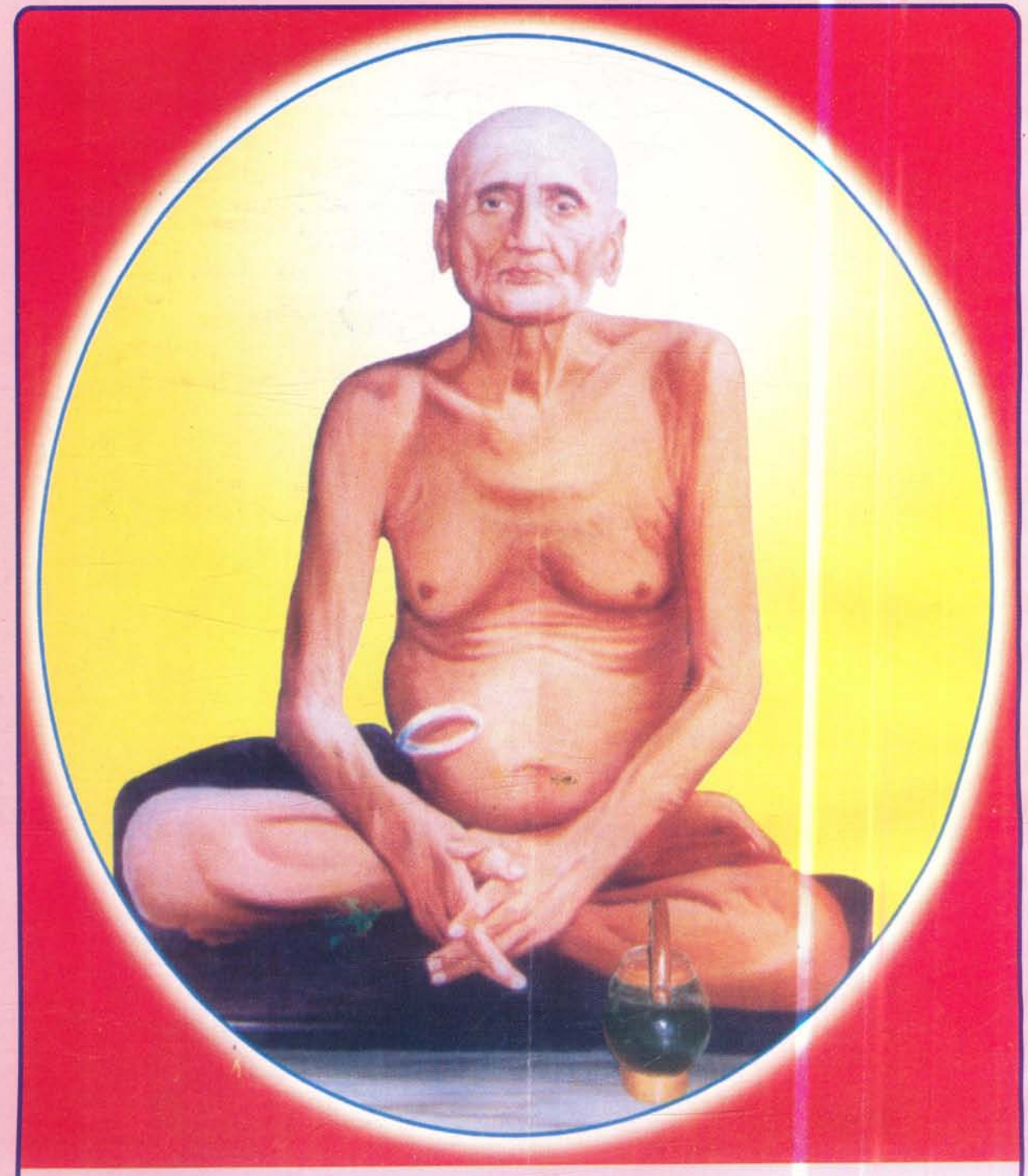

युग प्रवर्तक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज

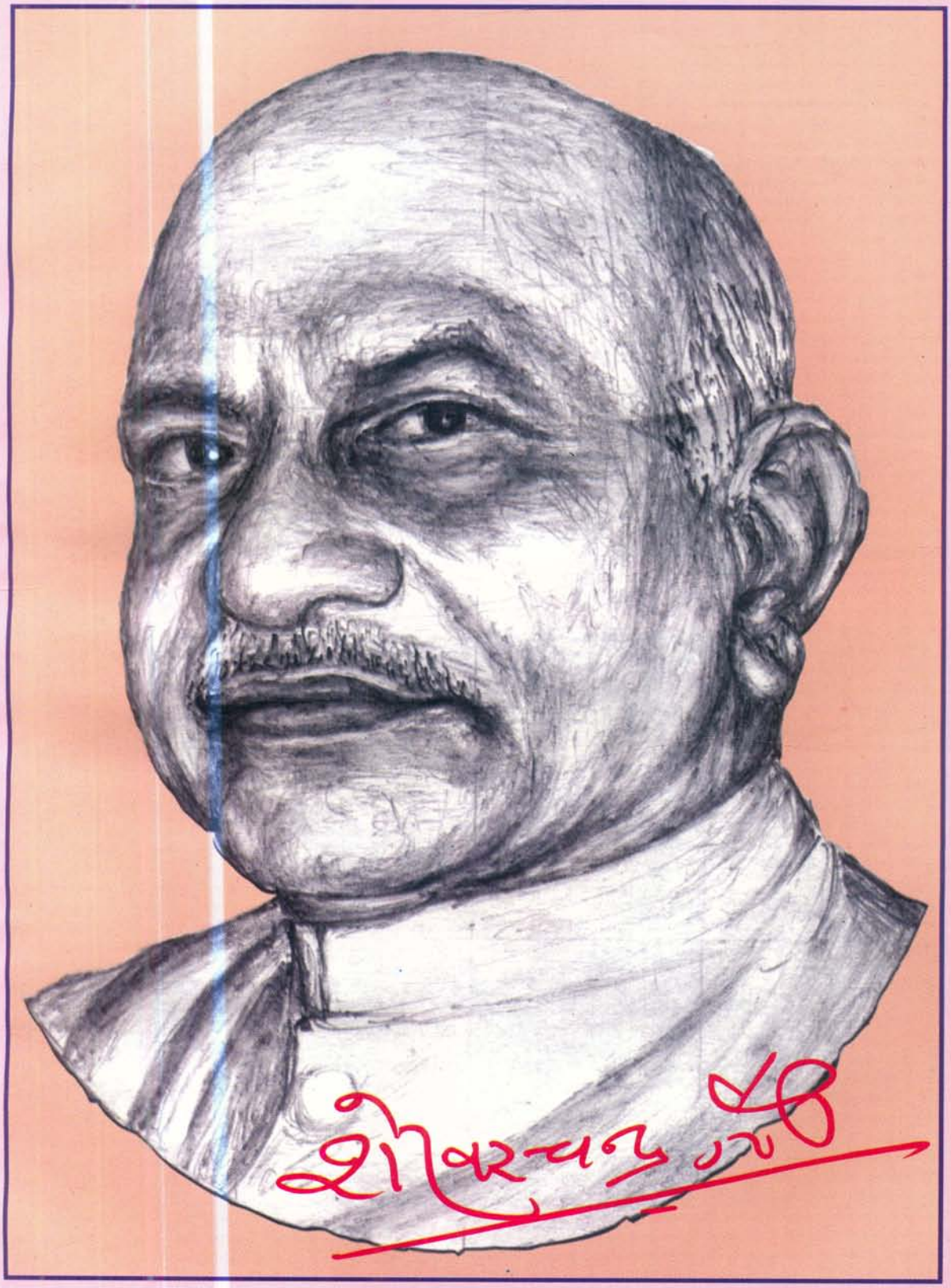
શોકચન્દ્ર ગાંધી

५१ वसंत-दीवाली मनाते हुए जीवनपथ के साथी

ऍ. शेखरचन्द्र जैन परिवार के साथ

जिनके आशीर्वाद का प्रतिफल है यह ग्रंथ

गणिनीरत्न आ. ज्ञानमती माताजी

जिनके कुशल मार्गदर्शन का प्रतिफल है यह अभिनंदन ग्रन्थ

कर्मयोगी बा.ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन
परामर्शदाता

ग्रन्थ
के
परामर्शदाता

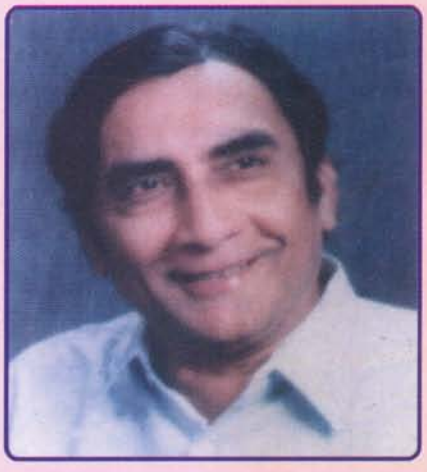

पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई
परामर्शदाता

जिनका कुशल संपादन प्राप्त हुआ

संयोजक एवं प्रबंध संपादक

श्री विनोदभाई 'हर्ष' अहमदाबाद

प्रधान संपादक

ऍ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' दमोह
पूर्व सचिव, संस्कृत अकादमी, म.प्र.

संपादक

ब्र. स्वातिबहन, हस्तिनापुर

संपादक

श्री आर. के. जैन- मुंबई
वास्तुशास्त्री

संपादक

डॉ. कपूरचंद जैन, खतौली,
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग

संपादक

श्री रोहितभाई शाह-अहमदाबाद
प्रसिद्ध गुजराती लेखक एवं वक्ता

संपादन परामर्श

डॉ. राजमल जैन
अहमदाबाद

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन
बड़ौत

डॉ. जयकुमार जैन
मुजफ्फरनगर

डॉ. भागचन्द जैन 'भास्कर'
नागपुर

डॉ. विजयकुमारजैन
लखनऊ

सन्तों की सन्निधि (आशीर्वाद प्राप्त करते हुए)

पू. संत शिरोमणी आ. विद्यासागरजी

पू. आ. महाप्रज्ञजी

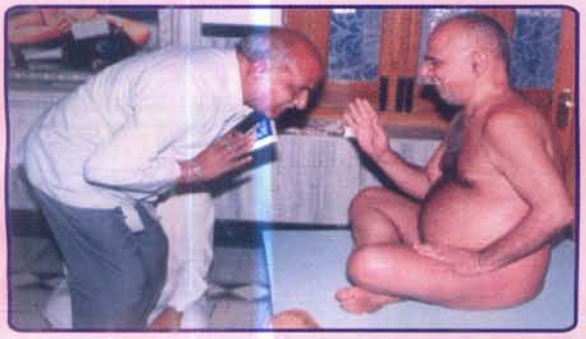

पू. आ. वर्धमानसागरजी

पू. ग. कुन्थुसागरजी

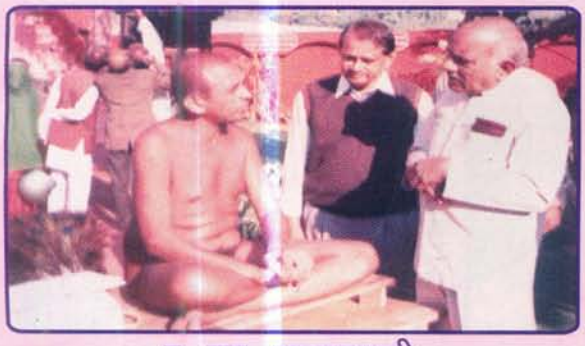

पू. उपा. ज्ञानसागरजी

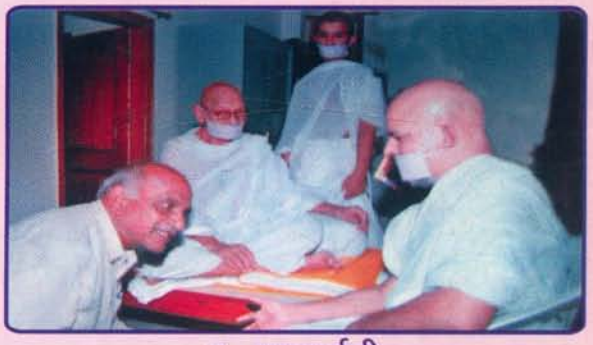

पू. युवाचार्यजी

ग.र.आ. ज्ञानमती माताजी

पू. मुनि पुंगव सुधासागरजी

कार्यक्रम की सफलता के आधारस्तंभ (कार्यकारिणी)

अध्यक्ष

श्री सोभागमलजी कटारिया

कार्याध्यक्ष

श्री महेन्द्रभाई ए. शाह

उपाध्यक्ष

श्री शांतिलाल नाहर

उपाध्यक्ष

श्री नरेशभाई जैन

सदस्य

श्री प्रमोदभाई बी. शाह

मंत्री

श्री प्रदीप कोटडिया

सदस्य

श्री नारायणचंद मेहता

सदस्य

श्री संतोषभाई सुराणा

सदस्य

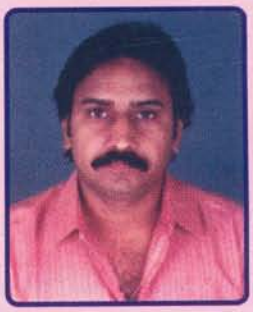

श्री ऋषभभाई जैन

सदस्य

श्री राधेश्याम सरावगी

डॉ. शेखरचन्द्र जैन का सन्मान अर्थात जैन एकता का सम्मान

श्री सोभागमलजी कटारिया,
अध्यक्ष– अभिनंदन समिति

अध्यक्षीय

भ. महावीर ने जब 'जिओ और जीने दो' का सूत्र दिया तब उनकी भावना थी चराचर के जीवों की प्रति अहिंसा और करूणा के भाव। जब उन्होंने अनेकांत और स्याद्वाद की बात कही तब उनके मनमें यह स्पष्ट था कि वस्तु को विविध आयामों से देखा–परखा जाये। प्रत्येक कथन का अनेकांत अपेक्षा की दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये और उसका प्रस्तुतिकरण प्रेममयी भाषा में हो। यह अनेकांत और स्याद्वाद ही एकता के परिचायक सिद्धांत हैं।

एकता के समर्थक पुरोधा भ. महावीर के समय में एवं उनके निर्वाण के लगभग १६३ वर्षों तक यह एकता अखण्ड रही पर कालान्तर में कालदोष और व्यक्तिगत अहम् या परिस्थिति के कारण यह अखंड जैनधर्म खण्डों में विभाजित हो गया और दुखकी बात यह है कि वह उत्तरोत्तर विभाजित होता जा रहा है जो हमारी कमजोरी बन गया है। आर्थिक रूपमें सक्षम जैन समाज संगठन की दृष्टि से अक्षम होता गया और हो रहा है। हमें आज उसी एकता और संगठन की आवश्यकता है।

यह सत्य है कि तीर्थोंकरो की सन्तान हम विभाजित तो हुए पर हमारी जड़ें विभाजित नहीं हो सकीं इसका उदाहरण ही यह है कि हमारे मंत्र में, तीर्थंकरों में एवं सिद्धांतो में ९५ प्रतिशत कोई भेद नहीं हो पाये। हमें आगम की वाणी भटकने से बचाती रही है। हमें उन ९५ प्रतिशत एकता के सिद्धांतों को मजबूती से स्वीकार कर एकता के सूत्र में बँधना चाहिए। हम यों कह सकते हैं कि वैयक्तिक पहिचान (आइडेन्टी) ही हम अपने पंथ के नाम पर भले ही बनाये रहें पर सामाजिक पहिचान एक मात्र 'जैन' के रूपमें ही होनी चाहिए। यह समयका तकाजा है। इस एकता के तथ्य का स्वीकार हमारे सभी सम्प्रदाय के महानुभावों ने समझा था और इसीलिए लगभग १०० वर्ष पूर्व ही भारत जैन महामंडल जैसे राष्ट्रीय एकता मंच की स्थापना कर पुनः भ. महावीर स्वामी के एकता के सूत्र को प्रचारित करने का भगीरथ कार्य किया था।

युग के अनुसार हम दिगंबर–श्वेतांबर और फिर उसमे से स्थानकवासी–तेरहपंथी भले ही हो गये हों पर हम यह न भूलें कि हम पहले जैन हैं फिर पंथी। बस इसी भावना का विकास करना है।

आज भारत वर्ष से बाहर परदेश में बसनेवाले जैनों ने इस एकता को बरकरार रखा है। आज सर्वाधिक जैन अमरीका में हैं। यूरोप एवं आफ्रिका में भी अच्छी संख्या है। वहाँ वे जैन सेन्टर के नाम से एक ही मंच पर सभी कार्य करते हैं। वहाँ जैन हैं सम्प्रदाय का भेद नहिंवत् है। जब हमारे ही भाई अमरीका या परदेश में एकता के सूत्र में बँधकर रह सकते हैं तो हम यहाँ क्यों नहीं रह सकते? बस हमें इसकी

आत्मखोज करनी है। मन से द्वेष या परायेपन का भाव दूर करना है।

हम वर्तमान पर दृष्टिपात करें तो आज भारत में इस जैन एकता की परम आवश्यकता है और इस ओर चिंतन व प्रयास चालु रखना चाहिए।

हम दिगम्बर–श्वेताम्बर–स्थानकवासी–तेरहपंथी मीटकर एक देव के विश्वासी और एक धर्म के अनुयायी बने। जैन धर्म द्वारा अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य, महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। उनका विश्व में प्रचार–प्रसार हो और उससे होनेवाले सुख–समृद्धि व शांति का विकास हो और इस प्रकार विश्व को समन्वय से जीवन जीने का आदर्श प्रदान कर सकें।

मैं डॉ. शेखरचन्द्र जैन को बचपन से जानता हूँ। पिछले २०–२५ वर्षों से वे जैन एकता के लिए जैसा संघर्ष कर रहे हैं उनका मैं ही नहीं आप सभी साक्षी हैं। आज गुजरात, भारतवर्ष एवं अमरीका में उन्होंने इस एकता के शंखनाद को गुंजित किया है। 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका से आप इसके प्रचार–प्रसार में लगे हैं। समन्वय ध्यान साधना केन्द्र द्वारा संचालित श्री आशापुरा जैन अस्पताल इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी कारण वे पू. आचार्य विद्यासागरजी, पू. आ. महाप्रज्ञजी, पू. आ. वर्धमानसागरजी, पू.आ. पद्मसूरीजी, पू. आ. निर्मलसागरजी, पू.आ. गुणधरनंदीजी, पं. जम्बूविजयजी, मुनिश्री नम्रमुनिजी एवं पू.आरत्न गणिनी ज्ञानमतीजी का आशीर्वाद प्राप्त कर सके हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन का चारों संप्रदायों की ओर से या यों कहूँ कि पूरी जैन समाज की ओर से एवं जैनेतर मित्रों की ओर से जो यह सम्मान हो रहा है वह इंगित करता है कि हम एकता के समर्थक हैं और उसी ओर बढ़ रहे हैं। मैं तो मानता हूँ कि यह समारंभ मात्र डॉ. जैन के सम्मान का नहीं है अपितु जैन एकता का समारंभ है।

उनके द्वारा संचालित अस्पताल समाज को प्रेरणादायक बनें और निरंतर प्रगति करे। इस अवसर पर उनके स्वास्थ्य की शुभकामना करते हुए जैन एकता की अक्षुण्णता की शुभकामना करता हूँ।

देश के जाने–माने गीतकार और संगीतकार श्री रवीन्द्र जैनने बड़ी ही भावपूर्ण पंक्तियों में लिखा है–

"हम नहीं दिगम्बर श्वेताम्बर
तेरह पंथी स्थानकवासी
हम एक देव के अनुयायी
हम एक धर्म के विश्वासी"

समर्पण

शंखनाद जो जैन एकता का नित करते रहते।
जैनधर्म की ध्वजा विश्व में जो लहराते रहते॥

सरस्वती जिनकी जिव्हा पर सदा वास है करती।
विद्वानों के शेखरसम जिनकी है कीर्ति दमकती॥

जो समाज का गौरव बन सबका पथ दर्शन करते।
जैन गगन पर ज्ञान सूर्य से जो दिनरात दमकते॥

हों शतायु यशवान, कीर्ति फैले जैसे हो चंदन।
ज्ञान शिखर के इन शेखर का करते हैं अभिनंदन॥

* * *

डॉ. शेखरचन्द्र जैन को समर्पण के साथ यह ग्रन्थ समर्पित है-

समर्पित है उन साधु भगवंतों को जिन्होंने साम्प्रदायिक एकता के लिए सेतू बनने का मार्ग प्रशस्त किया है।

उन सभी विद्वानों को जिन्होंने जैनधर्म के वातायन से 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' के सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार को संप्रदाय से ऊपर मानकर जैनधर्म की सेवा की है।

उन सभी महानुभावों को जो सदैव जैन एकता के समर्थक-प्रचारक रहे हैं।

पदाधिकारी अभिनंदन समिति

संपादक मंडल 'स्मृतियों के वातायन से'

श्री आदिनाथाय नमः

अभिनंदन पत्र

वाणीभूषण – प्रवचनमणि – ज्ञानवारिधि उपाधियों से विभूषित

डॉ. शेखरचन्द्र जैन एम.ए.पी–एच.डी., एल–एल.बी.,साहित्यरत्न

के करकमलों में सादर अर्पण

संघर्ष से सिद्धि के शिखर छूने वाले आप आजीवन लोकप्रिय अध्यापक एवं कॉलेज के प्राचार्य, श्री महावीर जैन विद्यालय के गृहपति एवं एन.सी.सी. के कमांडर रहकर उत्तम व्यवस्थापन के उदाहरण स्वरूप रहे हैं। अंतरर्राष्ट्रीय फलक पर वक्तृत्व कला से आपने भारत एवं परदेश में अमिट छाप छोड़ी है। आप हिंदी एवं जैन साहित्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपने हिन्दी, गुजराती दोनों भाषाओं में कथा, काव्य, विवेचन साहित्य का मौलिक सृजन किया है। आपकी संपादन कला से जैनमित्र, शिक्षण संस्कार, रोटरी क्लब बुलेटिन को नयी दिशा प्राप्त हुई तो 'तीर्थंकर वाणी' के द्वारा जैन शिक्षा– संस्कार की महति प्रभावना हो रहा है। संपादन कला हेतु आप राष्ट्रीय स्तर के श्रुत संवर्धन एवं अहिंसा इन्टरनेशनल पुरस्कारों से पुरस्कृत हुए हैं।

जैन एकता के प्रहरी

जैन समाज की एकता के लिए आप विगत २५ वर्षों से संघर्षरत हैं। देश–विदेश में आपको सभी संप्रदाय पूरे सम्मान से प्रवचनादि के लिए आमंत्रित करते हैं। आपको सभी आम्नाय के आचार्यों का आशीर्वाद एवं श्रावकों का आदर प्राप्त हुआ है। आप 'भारत जैन महामंडल' भावनगर शाखा के स्थापक मंत्री रहे एवं गुजरात प्रदेशीय शाखा के उपाध्यक्ष हैं। आपका यह अभिनंदन उसी विचारधारा का प्रतिफल है। जैन एकता के शंखनाद की गूँज आज सर्वत्र मुखरित हो रही है। विदेश और सविशेष अमरीका के ४० केन्द्रों पर आपने सभी संप्रदायों के पर्वों की आराधना कराके एकता की जो मिसाल स्थापित की है वह सराहनीय है।

समाजसेवा

समाजसेवा के कार्यों में आपने तन–मन–धन से स्वयं को अर्पित किया है। जिसके प्रतीक स्वरूप 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल' द्वारा गरीबों की जो निःशुल्क सेवा कर रहे हैं वह श्लाघनीय कार्य है। गरीब रोगियों की सेवा को ही जाति, धर्म, प्रदेश, भाषा के भेदभाव से ऊपर मानकर अहमदाबाद के अति पिछड़े इलाके ओढ़व में सेवाकार्य करते हुए महज़ आठ वर्षों में ही अस्पताल को जो गरिमामयी ऊँचाई प्रदान की है वह श्लाघनीय है। आपने अपनी निजी राशि से गरीब विद्यार्थियों के लिए आर्थिक सहायतार्थ अपने स्व. पू. पिताश्री पन्नालालजी के नाम से विद्यार्थी सहायता कोष का प्रारंभ किया है।

आपकी विद्वत्ता, प्रवचनशैली एवं जैनधर्म की सेवा हेतु आपको 'जम्बूद्वीप पुरस्कार', 'श्री सहजानंदजी वर्णी साहित्य पुरस्कार' एवं राष्ट्रीय स्तर का 'पू.ग.आ. ज्ञानमती पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। आप अपनी क्षमता एवं कार्यशैली के कारण आर्ष परंपरा की राष्ट्रीय संस्था भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष पद पर रहे एवं वर्तमान में आप उसके संरक्षक पद पर हैं।

आपके समन्वयवादी दृष्टिकोण, समाजसेवा एवं विद्वत्ता से प्रेरित होकर यह अभिनंदन समिति आपको

'जैन समन्वय रत्न'

की उपाधि से विभूषित कर गौरवान्वित होती है।

आपके स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन की शुभकामना करते हुए प्रभु से यह प्रार्थना करती है कि आप धर्म, समाज एवं राष्ट्र की सेवा करते रहें।

हम हैं आपके शुभाकांक्षी

समस्त पदाधिकारी डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन समीति, अहमदाबाद, गुजरात

अनुक्रमणिका

खंड - 1 : आशीर्वाद - शुभकामनायें एवं जैसा जाना

संतों के आशीर्वाद

मुनिवर	पृष्ठ
आ. श्री विद्यानंदजी	7
आ. श्री महाप्रज्ञजी	7
आ. श्री वर्धमानसागरजी	8
आ. श्री पद्मसागरजी	9
ग.आ. श्री कुन्थुसागरजी	9
स्व. आ. श्री भरतसागरजी	10
आ. श्री निर्मलसागरजी	10
आ. श्री भरतसागरजी	11
आ. श्री कनकनंदीजी	11
श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'	12
आ. श्री गुणधरनंदीजी	12
उपा. श्री ज्ञानसागरजी	13
युवाचार्य श्री महाश्रमणजी	13
गुरूदेवश्री नग्नमुनिजी म.सा.	13
ग.आ. ज्ञानमती माताजी	14
प्रज्ञाश्रमणी आ. श्री चन्दनामतीजी	14
मु. श्री मोतीसागरजी	15
स्व.भ. श्री लक्ष्मीसेन स्वामीजी	15
पू. श्री आत्मानंदजी	16
कर्मयोगी ब्र. श्री रवीन्द्रकुमारजी	16

राजनेताओं की शुभकामनायें

श्री नवलकिशोरजी शर्मा (महामहिम राज्यपाल गुजरात)	17
श्री नरेन्द्रभाई मोदी (मु.म. गुजरात)	18
श्री शिवराजसिंह चौहाण (मु.म. म.प्र.)	18
श्री अशोक भट्ट (मंत्रीश्री, गु.रा.)	19
श्री जयंतकुमार मलैया (मंत्रीश्री म.प्र.)	19
श्री हरिनभाई पाठक (सांसद)	20
श्री अमितभाई शाह (मेयर, अहमदाबाद)	20
श्री डालचंदजी जैन (पूर्व सांसद)	21

श्रेष्ठीगणकी शुभकामनाएँ

श्री श्रेणिकभाई कस्तूरभाई (अहमदाबाद)	22
श्री श्रेयांसभाई शाह (गुजरात समाचार)	22
श्री संवेगभाई लालभाई (अहमदाबाद)	23
श्री अशोक पाटनी (मदनगंज– किशनगढ़)	23
श्री बाबूलाल जैन पाटौदी (इन्दौर)	23
श्रीमती शारदाबेन यू. मेहता (अहमदाबाद)	24
श्री निर्मलकुमारजी जैन सेठी (दिल्ही)	24
श्री नरेशकुमारजी सेठी (जयपुर)	25
श्री सरदारमलजी कांकरिया (कोलकाता)	25
श्री मोतीलालजी जैन (सागर)	26
श्री शुभकरणजी सुराणा (अहमदाबाद)	26
श्री कैलाशचंद्र जैन (झाँसी)	26
श्री राधेश्याम सरावगी (अहमदाबाद)	27

विद्वत्जन की शुभकामनाएँ

डॉ. श्री अंबाशंकर नागर (अहमदाबाद)	28
पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई (अहमदाबाद)	28
डॉ. श्री चंद्रकांत मेहता (अहमदाबाद)	29
प्रि. श्री बी.एम. पीरज़ादा (अहमदाबाद)	30
दि.जैन शास्त्रि परिषद एवं डॉ. श्री श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत)	30
डॉ. श्री वृषभकुमार जैन (वर्धा)	31
डॉ. श्री रतनचंदजी भारिल्ल (जयपुर)	31
डॉ. श्री शीतलचंद जैन (जयपुर)	31
पं. शिवचरणलाल जैन (मैनपुरी)	32
श्री चिरंजीलाल बगड़ा (कोलकाता)	32
श्री रमाकांत जैन (लखनऊ)	32
श्री जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर)	33
डॉ. श्री अनुपम जैन (इन्दौर)	34
डॉ. श्री विजयकुमार जैन (लखनऊ)	34
डॉ. श्री जगदीशप्रसाद जैन 'साधक' (दिल्ही)	34

डॉ. श्री नंदलाल जैन (रीवा) 35
डॉ. श्री नारायणलाल कछारा (उदयपुर) 35
डॉ. श्री अशोककुमार जैन (लाडनूँ) 36
श्रीमती डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन (वाराणसी) 36
श्रीमती क्रांति जैन (लाडनूँ) 38
डॉ. अनिलकुमार जैन (अहमदाबाद) 38
पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन (रजवाँस) 38
श्री वैद्य धर्मचंद्र जैन (इन्दौर) 39
श्री ज्ञानमल शाह (अहमदाबाद) 39
डॉ. श्री एल. सी. जैन (जबलपुर) 40
डॉ. श्री विमलकुमार / श्रीमती जयंति जैन (सागर) 40
डॉ. श्री जीवनलाल जैन (सागर) 40
डॉ. श्रीमती सरोज जैन (बीना) 41
श्री रोहितभाई शाह (अहमदाबाद) 41
डॉ. श्री शोभना आर. शाह (अहमदाबाद) 41
श्री रश्मिभाई झवेरी (मुंबई) 42
डॉ. मनहरभाई शाह (अहमदाबाद) 42
श्री सर्वेन्द्रमणि त्रिपाठी (अहमदाबाद) 42

शुभचिंतक / मित्रगण की शुभकामनाएँ

श्री गोपालदास भोजवाणी (पूर्व विधायक) 43
श्रीमती दिव्या रावल (गांधीनगर) 43
श्री प्रमोदभाई शाह (अहमदाबाद) 43
डॉ. श्री आई. एम. त्रिवेदी (भावनगर) 44
डॉ. श्री बी. के. ओझा (भावनगर) 44
डॉ. श्री अब्दुल रशीद ए. शेख (भावनगर) 44
श्री धर्मविजय पंडित (अहमदाबाद) 45
श्री सुखनंदनकुमार जैन 'प्रशांत' (अहमदाबाद) 45
श्री कैलाशचंद्र जैन 'साराफ' (लखनऊ) 45
श्री संतोषकुमार सुराणा (अहमदाबाद) 46
श्री प्रतापसिंह जैन 'वैद' (सिलीगुड़ी) 46
श्री प्रविणभाई भट्ट (भावनगर) 46
श्री जे. के. संघवी (बीकानेर) 47
श्री सुरेन्द्रकुमार डी. जैन (अहमदाबाद) 47
डॉ. श्री मनु–रविकुमार जैन (विदिषा) 47
डॉ. श्री अनिल जैन (भिलाई) 47

परदेश के मित्रों की शुभकामनाएँ

डॉ. धीरजभाई ए. शाह (न्यूयार्क) 48
श्री प्रदीपभाई बावीशी (टेम्पा, फ्लोरिडा) 48
श्री प्रद्युम्नभाई झवेरी (टेक्सास) 49
श्री कुमारपाल ए. शाह (न्यूजर्सी) 49
श्री नितिनभाई रमणलाल शाह (न्यूजर्सी) 49
श्री भूपेन्द्रभाई सी. शाह (न्यूजर्सी) 50
श्री भोगीलाल शाह (न्यूजर्सी) 50
डॉ. भुवनेन्द्रकुमार (टोरेन्टो, केनेडा) 51
डॉ. तनसुख सालगिया (कोलंबस, अमरिका) 51

परिवार के प्रियजनों की शुभकामनाएँ

श्री कपूरचंद जैन एडवोकेट (जीजाजी) ललितपुर 52
डॉ. श्री महेन्द्रकुमार जैन (भाई) अहमदाबाद 53
श्रीमती पुष्पा जैन (बहिन) बबीना 54
श्री रतनचंद जैन (समधीजी) दुर्ग 54
श्री चौ. रतनचंद जैन (समधीजी) सागर 54
डॉ. राकेश जैन (पुत्र) अहमदाबाद 55
डॉ. अशेष जैन (पुत्र) अहमदाबाद 56
श्रीमती अर्चना जैन (पुत्री) दुर्ग 56
श्रीमती ज्योति जैन (पुत्रवधु) अहमदाबाद 57
श्रीमती नीति जैन (पुत्रवधु) अहमदाबाद 57
कु. किंजल, निशांत, निसर्ग (पौत्र) 57

काव्यांजली

पं. राजकुमार जैन (इटारसी) 59
आ. श्री भरतसागरजी 60
पं. लालचन्द जैन 'राकेश' (भोपाल) 60
पं. शिखरचंद जैन साहित्याचार्य (सागर) 62
श्री हुकूमचंद सोगानी (पूना) 63
श्री विनोदभाई हर्ष (अहमदाबाद) 63
डॉ. श्रीमती विमला जैन 'विमल' (फिरोजाबाद) 64
महाकवि श्री योगेन्द्र दिवाकर (सतना) 65
डॉ. कपूरचंद जैन (खतौली) 66

जैसा जाना

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
डॉ. उदयचंद जैन, उदयपुर	67	श्री गुणवंतभाई बरवालीया, मुंबई	96
प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद	68	डॉ. श्री प्रेमसुमन जैन, उदयपुर	97
श्री नीरज जैन, सतना	69	पं. श्री उदयचंदजैन, शास्त्री, सागर	97
डॉ. श्री चन्द्रकांत मेहता, अहमदाबाद	70	श्री निर्मल जैन, सतना	98
डॉ. श्री अम्बाशंकर नागर, अहमदाबाद	71	पं. श्री सरमनलाल जैन 'दिवाकर', सरधना	98
श्री किरीटभाई दफ्तरी, अमरीका	72	डॉ. श्री अनेकांत जैन, दिल्ली	99
श्री अरविंदभाई संघवी, अहमदाबाद	73	डॉ. श्री सागरमल जैन, साजापुर	99
श्री जे. पी. पाण्डे, अहमदाबाद	74	श्री विनोदकुमार जैन, लखनऊ	100
पं. डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद	75	डॉ. नीलम जैन, गुडगाँव	100
डॉ. किशोर काबरा, अहमदाबाद	77	डॉ. श्री रमेशभाई आर. वीरडिया, भावनगर	101
डॉ. श्री जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर	78	श्री हुकुमचंद जैन 'पंचरत्न', अहमदाबाद	102
डॉ. श्रीमती अल्पना जैन, लखनऊ	79	प्रि. श्री वाडीभाई पटेल, अहमदाबाद	103
श्री सुरेशचन्द्र जैन 'सरल', जबलपुर	80	डॉ. श्री कुलभूषण लोखंडे, सोलापुर	105
श्री पीरुभाई देसाई, अहमदाबाद	81	प्रा. निहालचंद जैन, बीना	106
स्व. श्री मनुभाई सेठ, भावनगर	83	डॉ. श्री भालचंद्र जोषी, अहमदाबाद	106
डॉ. श्री ताराचंद बख्शी, जयपुर	84	सि. श्री जीवनकुमार जैन, सागर	107
पं. श्री बाबूलालजी 'फणीश' उज्जैन	84	डॉ. श्री भागचन्द जैन 'भास्कर', नागपुर	108
डॉ. श्रीमती निरंजना वोरा, अहमदाबाद	85	डॉ. श्रीमती पुष्पलता जैन, नागपुर	109
प्रो. डी. ए. पाटील, जयसिंहपुर	86	श्री शैलेष डी. कापडिया, सूरत	109
श्री सुरेशचन्द जैन (आई.ए.एस.), भोपाल	86	श्री इन्द्रवदन वेलचंद पारेख, अहमदाबाद	110
श्री धूनी मांडलिया, अहमदाबाद	87	श्री प्रदीप बी. कोटडिया, अहमदाबाद	111
प्रो. अरूण पारीं, अहमदाबाद	88	श्रीमती इन्दुबेन शाह, अहमदाबाद	112
श्री कपूरचंद जैन, पाटनी, गौहाटी	91	श्री मोतीलाल जैन 'विजय', कटनी	113
श्री महेन्द्रकुमार / श्रीमती आशा जैन, न्यूयोर्क	92	श्री नरेश जैन, अहमदाबाद	113
डॉ. श्री रमेशचंद जैन, बीजनौर	93	श्री त्रिलोचनसिंह भसीन, दिल्ली	114
श्री जमनालाल जैन, सारनाथ	93	श्री रमेशभाई धामी, सूरत	114
डॉ. कु. मालती जैन, मैनपुरी	94		

खंड - 2 : अभाव - संघर्ष एवं सफलता की कहानी
(डॉ. शेखरचन्द्र की कलम से)

शीर्षक	पृष्ठ
जन्म एवं पिताजी का अहमदाबाद आगमन	115
ग्राम्य जीवन	117
पिताजी का व्यक्तित्त्व	119
भाई–बहन	121
अभाव का जीवन	123
शिक्षा (प्राथमिक)	125
खुरई गुरुकुल में शिक्षा	126
कॉलेज शिक्षा	127
विवाह	129
भयावह दुर्घटना	130
पत्नी और उनका स्वभाव	131
बच्चे	132
अध्यापन कार्य (प्राथमिक–हाईस्कूल शिक्षक)	133
कॉलेज अध्यापक	136
विविध नगरों में–राजकोट	138
मज़ाक जो भारी पड़ा	139
सूरत	140
एन.सी.सी. ट्रेनिंग	140
पद की खुमारी	142
जैन मित्र में	143
प्रथम कृति का प्रकाशन	144
अहमदाबाद में आगमन	144
पीएच.डी. करने की ललक	146
हिन्दू–मुस्लिम दंगे	147
भवन्स कॉलेज– डाकोर	148
भावनगर की पृष्ठिभूमि	149
महावीर जैन विद्यालय (जैन छात्रालय)	151
पढ़ने का प्रयोग	153
पर्युषण व्याख्यान माला–स्मरणीय प्रवचन	154
शिक्षण जगत की राजनीति	155
कॉलेज में स्थायित्व एवं आचार्य पद	155
जैन दर्शन में मार्गदर्शक	158
हिन्दी भाषा के लिए संघर्ष	158
भावनगर की विविध प्रवृत्तियाँ	159
रोटरी क्लब, हिन्दी समाज, भारत जैन महामण्डल	
पत्रकारिता (शिक्षण संस्कार)	160
२५वें तीर्थंकर का संघर्ष	162
प्रथम विदेश यात्रा	163
आचार्य पद से मुक्ति	165
अहमदाबाद पुनरागमन	165
नैरोबी का निमंत्रण एवं पूर्व की विशेष घटना	166
समन्वय ध्यान साधना केन्द्र एवं तीर्थंकर वाणी का प्रारंभ	167
अमरिका की प्रवचन यात्रा और वहाँ का वर्णन	168
लेखन कार्य (काव्य एवं गद्य लेखन)	174
जैन साहित्य लेखन	175
जैन विद्वान कैसे बना	176
मुनियों में व्याप्त शिथिलाचार और गुटबंदी	177
सम्मान एवं उपाधियाँ	178
श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल का प्रारंभ	179
कुछ खट्टी मीठी यादें (नौ विशेष प्रसंग)	181
भगवान ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ	185
रुचि	190
प्र.मं. स्व. इन्दिरा गांधी के साथ के क्षण	191
प्र.मं. स्व. श्री मोरारजीभाई देसाई के साथ	192
जैन संस्कार	192
साक्षात्कार	194
साहित्य समीक्षा	204

खंड - 3 : आलेख

क्रम	लेख	लेखक	पृष्ठ
1	क्लोनिंग तथा कर्म सिद्धान्त	डॉ. अनिलकुमार जैन (अहमदाबाद)	219
2	जैन वैयाकरण परम्परा	डॉ. अरूणकुमार जैन (ब्यावर)	225
3	जैन दर्शन के कुछ वैज्ञानिक तथ्य	डॉ. अशोककुमार जैन (ग्वालियर)	235
4	श्रावकाचार में प्रतिपादित जीवनशैली	डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी' (वाराणसी)	241
5	आर्यखण्ड	ग.र.आ. ज्ञानमति माताजी	246
6	गुजरात की जैन पुरातत्त्व सम्पदा	श्री ज्ञानमल शाह (अहमदाबाद)	252
7	जैन धर्म : स्वतंत्रता और स्वावलंबन का धर्म	डॉ. जगदीश प्रसाद 'साष्क' (दिल्ली)	259
8	मंत्र साधना की मनोवैज्ञानिकता	ब्र. जयकुमार 'निशांत' (टीकमगढ़)	265
9	आगम के परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्र	डॉ. जयंतीलाल जैन (चेन्नई)	269
10	डाक टिकटों पर जैन संस्कृति	डॉ. ज्योति जैन (खतौली)	276
11	आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान से भी श्रेष्ठ था प्राचीन प्राच्य विज्ञान	आ.श्री कनकनंदीजी महाराज	280
12	देश की आज़ादी के लिए जो फाँसी पर चढ़ गये	डॉ. कपूरचंद जैन (खतौली)	287
13	जैन आगम ग्रंथों में विज्ञान	प्रो. डॉ. एल. सी. जैन (जबलपुर)	292
14	संस्कृत में जैन स्तोत्र–साहित्य	डॉ. कु. मालती जैन (मैनपुरी)	307
15	जैन साहित्य में भिन्न	डॉ. मुकुटबिहारी अग्रवाल (आग्रा)	313
16	अनेकांत से ही लोक कल्याण	श्री मोतीलाल जैन (सागर)	326
17	जैन विद्याओं में रसायन : तब और अब	डॉ. नंदलाल जैन (रीवा)	332
18	कर्म सिद्धान्त का वैज्ञानिक प्रतिपादन	डॉ. नारायणलाल कछारा (उदयपुर)	346
19	बुंदेलखण्ड का जैन कला वैभव	श्री नीरज जैन (सतना)	352
20	चिकित्सा विज्ञान और अध्यात्म	प्रा. निहालचंद जैन (बीना)	358
21	भारतीय ज्योतिष का पोषक : जैन ज्योतिष	स्व. पं. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य (आरा)	362
22	जैन आचार संहिता और पर्यावरण शुद्धि	डॉ. निरंजना वोरा (अहमदाबाद)	369
23	जैन द्रव्यानुयोग एवं आधुनिक विज्ञान : एक सूक्ष्म चर्चा	डॉ. पारसमल अग्रवाल (उदयपुर)	375
24	21वीं सदी में प्राकृत अध्ययन : दशा एवं दिशा	डॉ. प्रेमसुमन जैन (उदयपुर)	381
25	गणितज्ञ महावीराचार्य	डॉ. प्रकाशचंद जैन (सागर)	388

26	जैन आचार–विचारों का सूक्ष्म जीव विज्ञानीय दृष्टिकोण	डॉ. पी.सी. जैन (सागर)	392
27	प्राकृत कथा काव्य में सांस्कृतिक चेतना	साहित्यवाचस्पति डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव (पटना)	396
28	मानवीय मूल्यों के सजग प्रहरी : जैनपुराण	सि.सूरी पं. रतनचंद भारील्ल (जयपुर)	409
29	निर्भय–निर्लोभ पत्रकार	डॉ. रतनचंद जैन (भोपाल)	414
30	आगम साहित्य में आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान)	आ. राजकुमार जैन (इटारसी)	418
31	जैन एवं सांख्य दर्शन में बंधन की अवधारणा	डॉ. संतोष त्रिपाठी	427
32	जीव के असाधारण भाव : एक विश्लेषण	डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत)	435
33	जैन आगम साहित्य में अनुष्ठान, पूजा एवं विधान	पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन (रजबाँस)	441
34	जिणागम–साहिच्च–सुरही	डॉ. उदयचंद जैन (उदयपुर)	449
35	जैन दार्शनिकों की भाषा (शब्द) दृष्टि	डॉ. वृषभकुमार जैन (वर्धा)	453
36	Jainism and Human Rights	Dr. Bhagchand Jain (Nagpur)	459
37	A Life-Form without DNA / RNA	Dr. J. Jain	470
38	Scientific Aspects of Anekanta	Dr. M.R. Gelda (Jaypur)	476
39	Unraveling the Mistery of the Universe through Jainism	Dr. Rajmal Jain (Ahmedabad)	481
40	Syadvada and Statistics	Dr. R.C. Jain (Ujjain)	500
41	Jainism : An Overview	Dr. Ramakant Jain (Lucknow)	504
42	Jain History Forgotten Links	Shri Surjmal Bobra (Indor)	506
43	Jain Religion and Science	Dr. Sudhir Shah (Ahmedabad)	515
44	એક શિક્ષકનો આત્મા તથા સફળ વ્યવસ્થાપક	પ્રો. દિનેશભાઈ ગાંધી (અમદાવાદ)	518
45	અપૂર્વ શ્રુતરક્ષા	પં. ડૉ. જિતેન્દ્ર બી. શાહ (અમદાવાદ)	522
46	જૈન એકતાનું સન્માન	શ્રી મહેન્દ્રભાઈ એ. શાહ (અમદાવાદ)	527
47	આધુનિક વૈજ્ઞાનિક સાધનો દ્વારા શુદ્ધ કરેલ પાણી ફાયદાકારક કે નુકસાનકારક?	પ.પૂ.પન્યાસ નંદીઘોષવિજયગણિ	529
48	ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનની સામાજિક સેવા	ડૉ. શૈલેષ શાહ (અમદાવાદ)	532

स्मृतियों के वातायन से

खंड : 1 (अ)

आशीर्वाद एवं शुभकामनायें

साधु संतों का आशीर्वाद

राजनेता

श्रेष्ठीगण

विद्वत्गण

मित्रगण

एवं

परिवार जनों की

शुभकामनायें

पृष्ठ 1 से 66

संतो के आशीर्वाद

णाणगुणेहि विहीणा, एदं तु पदं बहू वि ण लहंते।
तं गिण्ह णियदमेदं, जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं॥

ज्ञानगुण से रहित अनेक पुरुष नाना कर्म करते हुए भी ज्ञान स्वरूप इस पद को प्राप्त नहीं करते; इसलिए हे भव्य! यदि तू कर्मों से मुक्ति चाहता है, तो इस नियत पद–ज्ञान को ग्रहण कर।

एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो, होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं॥

हेभव्य! तू इस ज्ञान में सदा प्रीति कर, इसी में तू सदा सन्तुष्ट रह, इससे ही तू तृप्त रह। ज्ञान में रति, सन्तुष्टि और तृप्ति से तुझे उत्तम सुख होगा।

धर्मानुरागी डॉ. शेखरचन्द जैन अपनी सक्रियता, गम्भीर, प्रखर चिंतन, क्रियात्मक–रचनात्मक कार्यशाली और सौजन्यपूर्ण व्यवहार के लिए देश भर में जाने जाते हैं। पुस्तकों का लेखन कर जैन साहित्य को समृद्ध किया है तथा 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका का कुशल सम्पादन भी किया है। उनके विविध कार्यों एवं सेवा के अनुमोदनार्थ उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है। मेरा मंगल आशीर्वाद है।

आचार्य विद्यानंद

डॉ. शेखरचन्द जैन का जीवन ज्ञानाराधना में तन्मय रहा है। उन्होंने ज्ञानाराधना को चारित्राराधना से समन्वित किया है। दीर्घकाल की अवधि में वे चिन्तन–मंथन करते रहे हैं और उसके आधार पर आत्मानुभूति के पथ पर गति–प्रगति भी हुई है। विद्या के क्षेत्र में ऐसे तपस्वी का अभिनन्दन ज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाने का उपक्रम है। जिसमें आनन्द की सहज स्फुरणा हो, वैसे आत्मानन्द व्यक्ति का अभिनन्दन करनेवालों के लिए सहजानन्द का क्षेत्र हो सकता है।

आचार्य महाप्रज्ञ

नँ

शिक्षा और समाज का क्षेत्र विशाल है,जहां व्यक्ति सुदीर्घ काल तक अपनी सेवाओं से एक विशेष संतृप्ति का अनुभव करता है। डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने उक्त दोनों क्षेत्रों को अपनी सेवाओं से लाभान्वित किया है।

शैक्षणिक जगत में अध्यापक, प्राध्यापक व प्राचार्यत्व जैसे पदों पर रहकर अपनी इस अध्यापन यात्रा को अध्ययन यात्रा के साथ–साथ संचालित किया। लौकिक जगत ही नहीं, अपितु धार्मिक जगत ने भी आपके ज्ञान का आस्वादन देश–विदेश में किया है। चिकित्सा के क्षेत्र में मानवसेवा हेतु गरीबों की सेवार्थ एक ''चिकित्सालय का संचालन'' सामाजिक क्षेत्र में आपका अनूठा कार्य है।

वाणी के धनी इन विद्वान् ने अपनी लेखनी तथा वाणी दोनों से धर्म व संस्कृति के प्रचार–प्रसार में अपना अमूल्य योगदान देकर स्वयं की चहुमुखी प्रतिभा को अन्यों के लिए भी स्पृहा का माध्यम बनाया है। मासिक पत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादक डॉ. जैन उपन्यास व कहानी लेखन में भी सिद्धहस्त हैं। देशमें जैन संगोष्ठियों में एक विद्वान की हैसियत से आपने सैकड़ों शोधपत्र प्रस्तुत कर अपने ज्ञान का प्रकाश बिखेरा है। साथ ही कुछ ग्रन्थों के सम्पादन से आपकी सम्पादन कला भी उजागर हुई है। डॉ. जैन के मार्गदर्शन में शोध प्रबन्ध के कार्य भी सम्पन्न हुए हैं।

समाज में अनेक ट्रस्ट अथवा संस्थाओं के द्वारा प्रस्थापित कुछ पुरस्कारों से पुरस्कृत डॉ. साहब संस्कृति के प्रचार–प्रसार में एक विशिष्ट विधा 'ध्यान पद्धति' का भी उपक्रम संचालित करते हैं।

आपकी चहुमुखी प्रतिभाने भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ में कार्याध्यक्ष एवं अध्यक्ष पद को सुशोभित कर संस्था को गौरव दिया है। साथ ही अन्य विद्वत् समूहों की कार्यकारिणी में गौरव सदस्य रहकर आपके विचारों को निर्भीकता से रखने का सुअवसर प्राप्त किया है। हम डॉ. शेखरचन्द्रजी के चहुमुखी विकास की मंगल कामना सहित आशीर्वाद प्रदान करते हैं कि वे आत्मविकास हेतु 'चारित्र' के क्षेत्र में इसी प्रकार गतिमान प्रोन्नति कर आत्मसेवा में लगाकर इस वर्तमान बौद्धिक मानव पर्याय को सार्थक करें ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

ॐ शांति

आ.श्री वर्धमानसागरजी

योग्य व्यक्ति का अभिनंदन करना उचित है। मैं तो डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन से व्यक्तिगत रूप से परिचित नहीं हूँ, परंतु उनके कार्य से परिचित जरूर हूँ. जैन धर्म, संस्कृति के प्रचार–प्रसार के कार्य में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। जैन विद्वान् के रूप में भी उनकी सेवा अनुमोदनीय है। अभिनंदन ग्रंथ के प्रकाशन के लिये मैं आयोजकों को धन्यवाद देता हूँ। इस ग्रन्थ से अनेक लोगों को सत्प्रेरणा मिलेगी ऐसी मैं आशा रखता हूँ। मेरा मंगल कामना पूर्वक– आशीर्वाद है– यह आयोजन पूर्ण रूपेण सफल हो।

आचार्य पद्मसागरजी

बडी प्रसन्नता की बात है कि हमारे परम विद्वान पं. डॉ. शेखरजीका अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, डॉ. शेखरजी दिगम्बर जैन समाज के परम विद्वान् पंडित हैं आपने अपने जीवन के अन्दर अनेक अच्छे समाजकल्याण के कार्य किये हैं। आपके द्वारा संपादित ''तीर्थंकर वाणी'' पत्रिका भी तीन भाषामें निकलती है, विषय अच्छा रहता है। आप कई बार विदेश यात्रा भी कर चुके हैं। आप एक अच्छे प्रवचनकार भी हैं, आपके द्वारा समाज को मार्ग निर्देशन मिलता है, आप परम देव–शास्त्र–गुरू भक्त हैं, आपके द्वारा जिन शासनकी प्रभावना होती रहती है। मेरे अहमदाबाद चातुर्मास में आपने अच्छी सेवा की है। आप खूब आशीर्वाद के पात्र हैं। आप दीर्घायु व निरोग रहें ऐसा मेरा आशीर्वाद।

गणाधिपति श्री कुन्थुसागरजी महाराज,
श्री कुन्थुगिरि (महाराष्ट्र)

सौभाग्यशाली हैं डॉ. शेखरचन्द्र जैन जिन्होंने पूर्वजन्मों के पुण्यार्जन से प्राप्त विद्या, तत्वज्ञान, सदाचार व संस्कार के द्वारा सेवाभावी के रूप में विदेशों में अपनी समन्वयात्मक छबि तथा आत्म पुरूषार्थ से सिद्धि–शिखर तक की यात्रा की।

जैन साहित्य, शोध ग्रन्थ, उपन्यास, कहानी व समीक्षा की पुस्तकों में अपने लेखन से नव साहित्य का सृजन किया। आपके द्वारा लिखित शोधपत्रों ने गोष्ठियों में चार चाँद लगाये हैं। पिछले १५ वर्षों से 'तीर्थंकर वाणी' व अन्य ग्रंथों का कुशल संपादन किया एवं देश–विदेश में विविध भाषाओं के माध्यम से भावी पीढ़ी को शिक्षा देने का गौरवपूर्ण कार्य किया है। अनेक उपाधियों और पुरस्कारों से विभूषित आपने समाज सेवा, गरीबों की चिकित्सा करना अपने जीवन का लक्ष्य समझा।

ऐसे बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न ख्याति प्राप्त, सशक्त लेखनी के धनी शेखरजी का सम्मान सम्पन्न हो रहा है यह विशेष महत्त्वपूर्ण है।

आपका अभिनन्दन पूरे गौरव गरिमा के द्वारा सम्पन्न हो।

हमारा बहुत–बहुत आशीर्वाद।

आ. भरतसागर

अणिंदा अतिशय क्षेत्र

दि.१९–१०–२००६

(समाधि से कुछ ही दिनपूर्व प्रेषित आशीर्वाद)

आदरणीय देव शास्त्र गुरू भक्त, धर्म दिवाकर, सरस्वती के पुत्र आदर्श श्री डॉ. शेखरचन्द्रजी के समस्त परिवार को सिद्धक्षेत्र गिरनार से हमारी तरफ से रत्नात्रय वृद्धि शुभ आशिर्वाद। विगत ४५ वर्षों से जब से हमने आपको देखा है– आप सेवा कार्य कर रहे हैं। आपने जिनवाणी माता का आदर्श पूरे विश्व में फैलाया एवं अमृत वचनों द्वारा ज्ञान गंगा का रसपान कराया है। जिस प्रकार तीर्थंकर भगवान की वाणी का गणधर द्वारा अनेक भाषाओं में प्रचार हुआ था उसी प्रकार इस पंचम काल में तीर्थंकरों की वाणी आचार्यश्री धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबली, कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी जैसे अन्य आचार्यों के द्वारा प्रचारित हुआ। उससे हमें ज्ञान प्राप्त हुआ। उसी प्रकार गणधर की भाँति अनेक भाषाओं में लिपिबद्ध कराकर 'तीर्थंकर वाणी' के माध्यम से आपने देश–विदेश में अपनी वाणी से जो कार्य किया है वह सराहनीय है।

आप सरस्वती के पुत्र हैं इस नाते आपका जो अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है उसके लिए हमारे निर्मल आत्मा से आशिर्वाद है। और जब तक सूरज–चाँद रहे तब तक आपकी कीर्ति विश्व में फैलती रहे।

आ. निर्मलसागरजी

विश्व शांति निर्मल ध्यान केन्द्र.

गिरनार तलेटी, जूनागढ़

धर्मानुरागी डॉ. शेखरचन्द्र जैन– आशीर्वाद।

जो देव–शास्त्र–गुरू के प्रति समर्पित रहता है, वही एक सद्गृहस्थ श्रेष्ठ श्रावक कहलाता है। हमारा जैन धर्म भाव प्रधान है। विश्व में प्रख्यात डॉ. शेखरचन्द्र जैन श्रेष्ठ श्रावक एवं विद्वान हैं, जो तीर्थंकरों की वाणी के प्रचार–प्रसार करने में अग्रणी है। स्वयं जिनवाणी का रसपान करते एवं कराते हैं। यह जिनमार्ग का सत्पथ संकेत करता है।

आप कर्म सिद्धान्त के विशिष्ट ज्ञाता हैं, श्रेष्ठ श्रावक है जो 'तीर्थंकर वाणी' के माध्यम से लोगों को सत्पथ पर चलाने का प्रयास करते हैं। वर्तमान में समाज को स्पष्ट वक्ता, जुझारू कार्यकर्ता एवं सम्यक् बोध देनेवालों की आवश्यकता है और आप ऐसे ही कार्यकर्ता हैं। आपने अनेक पदवियाँ प्राप्त करके जो मानवसेवा की है उस हेतु आपको मेरा मंगल आशीर्वाद है। आपकी प्रवृत्ति निर्मल बनी रहे और आप ऊँचाईयों को प्राप्त करें। धर्म का प्रचार करते हुए अपने आत्मा को परमात्मा बनाने का शुभ संकेत भी लायें इन्हीं शुभकामनाओं के साथ धर्मवृद्धि। इति शुभम्।

आ. १०८ श्री भरतसागरजी

शिष्य–आ. १०८ श्री सन्मतसागरजी

''गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान'' अर्थात् जिसके गुण अभिनन्दनीय / प्रशंसनीय हैं वह अभिनन्दनीय / प्रशंसनीय है। गुण से युक्त गुणी होता है, धर्म से युक्त धर्मी होता है, उसी प्रकार अभिनन्दन / अभिनन्दनीय भी है। गुण तथा गुणी की प्रशंसा से गुणानुमोदना होती है, भाव में प्रसन्नता होती है। अनुकूल वातावरण बनता है। जिस गुण के कारण जिसकी प्रशंसा होती है, सद्गुणी महानुभाव स्वयं के उस गुण को जानते हैं, मानते हैं, बढाते हैं। इससे विपरीत दूसरों की निन्दा करने से स्व–पर में गुण–द्वेषी, ईर्ष्या, असूया, संक्लेश, द्वेष, लड़ाई–झगड़ा, भेद–भाव, फूटे आदि अप्रशंसनीय भाव एवं कार्य होते हैं। दूसरों के गुणों की प्रशंसा से पुण्यकर्म / उच्चगोत्र का बन्ध होता है तो निन्दा से पापकर्म। नीचगोत्र का बन्ध होता है। पूजा स्वाध्याय जो कि गुणानुराग–गुणस्मरण एवं गुणानुकरण स्वरूप है। इसलिए सज्जन, गुणी, ज्ञानी, धर्मात्मा, विद्वान्, साधु–संत से लेकर भगवान की पूजा–प्रार्थना–प्रशंसा आदि यथायोग्य विधेय हैं, करणीय हैं। परन्तु सम्यक् भावना, उद्देश्य भावनादि से युक्त डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन स्व–पर–राष्ट्र–विश्व में अभिनन्दनीय–सद्गुण–सदाचार–सद्विचार को प्रकाशित करके सत्य–समता–शान्ति के लिए प्रेरक बने ऐसी महान् उदात्त भावना के साथ मेरा मंगलमय शुभाशीर्वाद एवं शुभकामनायें डॉ. शेखरचन्द्र जैन तथा डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनन्दन समिति को है।

आचार्य कनकनदीजी,

सागवाडा (राज.)

पं. डॉ. शेखरचन्द्र जैन का परिचय मुझे अहमदाबाद वर्षावास में आयोजित शास्त्र–गोष्ठी में हुआ। संगोष्ठि में शोधपत्रों की प्रस्तुति थी।

शोध वाचन के समय अनेक प्रश्न उपस्थित होते ही थे। उन प्रश्नों पर विद्वान चर्चा करते थे।

मैं सूक्ष्मता से देख रहा था कि चर्चा के अंतर्गत शास्त्रीय विषयों पर पं. डॉ. शेखरचन्द्र जैन जी जो तथ्य प्रस्तुत करते थे वे बहुत कुछ समाधानपरक और शास्त्र सम्मत होते थे।

चर्चाओं के मध्य उनकी विद्वत्ता की झलक मैंने स्पष्ट देखी थी।

पंडितजी जैन शास्त्रीय ज्ञान के श्रेष्ठ स्वाध्यायी, उद्भट् विद्वान् और उच्च रचनाकार हैं। साहित्य सृजन, सेवा और प्रचार के कार्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

मैं उनके मंगलमय दीर्घ जीवन की शुभकामना करता हूँ।

'श्रमण संघ हो अविचल मंगल'

सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

महामंत्री, श्रमण संघ

डॉ. शेखरचन्द्र जैन इस युग के अपने आप में एक अद्वितीय विद्वान हैं। जिन्होंने जीवन में अनेक सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक क्रान्ति की है। जिनका अभिनंदन ग्रंथ उसी समाजसेवा, समन्वय और धर्म भावना के रूप में प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कि यह जैन समाज के लिए मार्गदर्शक बनेगा। इस ग्रंथ के प्रकाशन द्वारा मैं मानता हूँ कि यह ग्रन्थ विद्वानों का समाज की ओर से उत्तम सन्मानका प्रतीक बनेगा। जैन संस्कृति में ऐसे विद्वानों का होना परमावश्यक है जिससे जैन समाज में परिवर्तन एवं सुसंस्कार का प्रचार हो सकेगा। मैं स्पष्ट मानता हूँ कि समाज को विद्वानों का सन्मान करके उऋण होना चाहिए, और उनका संरक्षण करते हुए तन–मन–धन से सहयोग करना चाहिए। जिसप्रकार हम रत्न की सुरक्षा बड़े ही यत्न से करते हैं उसी तरह विद्वान् जो समाज का रत्न होता है उसकी सुरक्षा भी करनी चाहिए।

मैं इस अवसर पर प्रकाशित इस अभिनंदन ग्रंथ के लिए अपना आशिर्वाद प्रेषित करता हूँ और डॉ. शेखरचन्द्रजी को यह शुभाशीष देता हूँ कि वे स्वस्थ, दिर्घायु प्राप्त कर समाजसेवा और जैन एकता के लिए निरंतर कार्य करते रहें।

आ. गुणधरनंदी

नवग्रह तीर्थ, वरुर(कर्णाटक)

डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक कुशल लेखक तथा निर्भीक पत्रकार के साथ साथ स्पष्ट वक्ता हैं। उनके द्वारा देश तथा विदेशों में जैनधर्म की दिशा में किये जा रहे कार्य सराहनीय हैं।

मेरा आशीर्वाद है कि डॉ. शेखर निरन्तर धर्म की साधना करते हुए समाज की सेवा करते रहें।

उपा.१०८ श्री ज्ञानसागरजी महाराज द्वारा
व्यक्त भावना उनके आदेशानुसार अंकित

अर्हम्

आदमी जन्म लेता है, जीता है और एक दिन चला जाता है। यह मानव की संक्षिप्त कहानी है, इसमें कोई विशेष बात भी नहीं है। वह आदमी धन्य होता है जो अपने जीवन में महानता का अर्जन करता है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक विद्यावदात व्यक्तित्व के धनी हैं। उन्होंने अपने जीवन में सरस्वती की आराधना की, फलस्वरूप अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किए गए। उदारता आदि गुणों ने उनके व्यक्तित्व को विभूषित किया है। वे आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ पवित्र परोपकार की चेतना से ओत–प्रोत बने रहें यही मंगल कामना।

युवाचार्य महाश्रमण

જૈન સમાજના વિદ્વાન શ્રુતજ્ઞાનપ્રેમી શ્રી શેખરચંદ્રજીનું વ્યક્તિત્વ એટલે સત્ય-સમજ અને સચોટતાનું વ્યક્તિત્વ.

જૈન સમાજના વિદ્વાનોમાં વાતો વધારે અને કાર્ય ઓછું હોય છે જ્યારે શ્રી શેખરચંદ્રજીમાં જેટલી વાત છે તેનાથી વધારે સેવાનું કાર્ય છે જે ખરેખર અભિનંદનીય છે.

અમારા શ્રી ગુણવંતભાઈ બરવાળિયા આયોજિત ''જ્ઞાન સત્ર''માં આવનાર શ્રી શેખરચંદ્રજીમા જ્ઞાન સાથે વર્તમાન વિચારધારાનો સમન્વય જોવા મળેલા છે.

શ્રી શેખરચંદ્રજીએ ''તીર્થંકર વાણી'' દ્વારા ધર્મપ્રસાર અને જૈન હોસ્પિટલ દ્વારા માનવતાધર્મનો પ્રસાર કરીને સમાજની બહુમુખી સેવા કરેલ છે.

અમારા અભિનંદન સહ આશીર્વાદ આપતા તે સ્વસ્થ રહે અને સ્વ + સ્થ રહે એ જ ભાવના.

પૂ. ગુરુદેવ શ્રી નમ્રમુનિ મ.સા.

जाग्रत समाज का आदर्श बिम्ब विद्वानों में देखा जा सकता है। कतिपय मनीषी विद्वानों ने श्रमण संस्कृति के आदर्श मानदण्डों और आर्ष–मार्ग के संरक्षण तथा संवर्धन का अभिनव उपक्रम किया है। ऐसे मनीषियों में हमारे विद्वान डॉ. शेखरचन्द्र जैन भी हैं जिन्होंने सरस्वती माता की सेवा में अपना अहर्निश समय व्यतीत किया है।

समाज के श्रेष्ठी एवं विद्वानों ने ऐसे प्रसिद्ध विद्वान के सम्मान में अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने का निर्णय लेकर वास्तव में प्रशंसात्मक कार्य किया है जो कि वात्सल्य अंग का परिचायक भी है। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने कहा है–

स्वयूथ्यान् प्रतिसद्भाव–सनाथापेतकैतवः।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलप्यते॥

अर्थात् अपने सहधर्मियों के प्रति जो हमेशा छल–कपट रहित होकर सद्भावना रखते हुए प्रीति करते हैं और यथायोग्य उनके प्रति विनयभक्ति आदि भी करते हैं, वे वात्सल्य अंग के पालक होते हैं।

यह सम्मान किसी व्यक्ति विशेष का सम्मान नहीं है, प्रत्युत जिनवाणी के प्रति समादर भाव का प्रतीक है। शेखरजी इसी प्रकार सदैव देव–शास्त्र–गुरु के प्रति समर्पित बने रहें एवं आर्षमार्ग की सच्ची सेवा करते हुए अपनी विद्वत्ता को वृद्धिंगत करते हुए धर्मप्रभावना के साथ–साथ आत्मकल्याण भी करें यही उनके लिए मेरा बहुत–बहुत मंगल आशीर्वाद है।

अभिनंदन ग्रंथ के सम्पादकों को मेरा आशीर्वाद

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी

आचार्यों ने विद्या और विद्वानों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि–

वैपश्चित्यं हि जीवाना–माजीवितमनिन्दितम्।
अपवर्गोऽपि मार्गोऽय–मदः क्षीरमिवौषधम्॥

विद्वत्ता, प्राणियों के लिए जीवन पर्यन्त प्रशंसनीय होती है। जिस प्रकार दूध पौष्टिक होने के साथ–साथ औषधि भी है, उसी प्रकार विद्वत्ता भी लौकिक प्रयोजन के लिए साधक होती हुई भी मोक्ष का कारण होती है।

डॉ. शेखरचन्द्र जी विगत कई वर्षों से पूज्य माताजी के चरण सानिध्य में आते रहे हैं तथा देव–शास्त्र–गुरु के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा है। उनके द्वारा प्रदत्त जिनवाणी सेवा व ज्ञानदान भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक बनेगा।

विद्वानों में प्रायः ज्ञान के साथ–साथ चारित्र का अभाव देखा जाता है किन्तु मेरी दृष्टि में सच्चे गुरुओं की छत्रछाया प्राप्त करनेवाले विद्वान का जीवन तभी सार्थक है, जब उसमें कम से कम अणुव्रत पालन की क्षमता दृष्टिगत हो। डॉ. शेखरचन्द्रजी में भी मैंने सात्विकता तो देखी ही है अतः वे अब आगे देशसंयम ग्रहण कर परम्परा से सकल संयम धारण कर अपने मोक्षमार्ग को साकार करें यही प्रेरणा है तथा धर्मरक्षा एवं प्रभावना के कार्यों में आप सतत संलग्न रहते हुए यशस्वी हों, यही मेरा मंगल आशीर्वाद है।

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

अभिनंदन और सम्मान की परंपरा भारत की प्राचीन परंपरा रही है। भगवान आदिनाथ के लंबे उपवास के पश्चात उन्हें प्रथम आहार कराने पर राजा श्रेयांस को चक्रवर्ती भरत ने 'दान तीर्थ प्रवर्तक' की पदवी दी थी तभी से गुणज्ञों के अभिनंदन की परंपरा चली आ रही है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि जैन समाज के सुप्रसिद्ध डॉ. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद के सम्मान में अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। डॉ. शेखरचंद्रजी जहाँ लेखनी के धनी हैं वहाँ ओजस्वी वक्ता भी हैं। कई वर्षों से 'तीर्थंकर वाणी' मासिक पत्रिका का तीन भाषाओं में कुशल संपादन तथा प्रकाशन कर रहे हैं। आप न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी प्रतिवर्ष जाकर जैनधर्म का प्रचार–प्रसार करते हैं। डॉ. शेखरचन्द्रजी धर्म प्रचार के साथ–साथ समाज सेवा में भी गहन रुचि रखते हैं। अहमदाबाद में एक अस्पताल का भी संचालन करते हैं।

वैसे तो सभी साधुओं के प्रति आपकी भक्ति है किन्तु गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के प्रति आपकी विशेष श्रद्धा–भक्ति है। तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत् महासंघ के आप अध्यक्ष रहे हैं। आपकी कर्मठता को देखते हुए ही आपको दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ने 'गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार' से सम्मानित किया।

आप स्वस्थ एवं दीर्घ जीवी होकर सदैव धर्म की आराधना करते हुए धर्म के प्रचार–प्रसार में अग्रणी रहें, यही हमारा मंगल आशीर्वाद है।

१०५ क्षुल्लक मोतीसागरजी

मान्यवरश्री महोदय डॉ. शेखरचंद्रजी का अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। मेरी हार्दिक कामना है कि यह ग्रंथ विश्व मानवता के लिए सरस, शीतल नीर के समान दिगदिगंत को शीतल करे एवं 'स्मृतियों के वातायन से' का संदेश प्रदान करने में सफलीभूत हो। इस अवसर पर आपकी ५१वीं विवाहतिथि का महोत्सव भी मनाया जा रहा है। अतः आपका वैवाहिक जीवन अधिक मंगलमय बने यह आशीर्वाद।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन जैसाकि मैंने उन्हें हस्तिनापुर एवं श्रवणबेलगोला में देखा और समझा उससे मेरी यह धारणा दृढ़ हुई कि वे उच्चकोटि के विद्वान, चिंतक और अपनी बात को निर्भीकता से प्रस्तुत करने में कुशल हैं।

उनके द्वारा प्रकाशित तीर्थंकर वाणी के अध्ययन से उनके स्पष्ट विचारों से मैं अवगत हुआ। पू.आ.गुणधरनंदीजी की पुस्तकों का उन्होंने प्रकाशन किया है यह गौरव की बात है। वे निस्पृह रूप से जनसेवा का कार्य धर्मादा अस्पताल द्वारा करके सही अर्थों में औषधि दान का पुण्य कमा रहे हैं।

भगवान का आशीर्वाद सदा आप पर रहे।

स्वस्ति भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन स्वामी

नवग्रह तीर्थ, वरुर

डॉ. शेखरचन्द्र जैन हमारे समाज के जाने–माने और उच्चस्तरीय विद्वान हैं।

हमारा उनसे करीब २५ वर्ष से संबंध रहा है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा में विशिष्ट विद्वत्ता, प्रभावशाली वकृत्व, धर्मसभाओं का संयोजन, उदार जीवनदृष्टिकोण, निर्भीक पत्रकारत्व और मानवसेवा के प्रति जागरूकता आदि मुख्य हैं।

उनके दीर्घ, निरामय और समाजोपयोगी जीवन के लिये हमारा शुभाशीर्वाद है।

आत्मानंद

संस्थापक– अधिष्ठाता, श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र

वर्तमान युग में मनुष्य भौतिकता की अंधाधुंध दौड़ में स्वार्थ में दौड़ रहा है। लेकिन ऐसे समय कुछ लोग साधुवाद के पात्र होते हैं, अभिनंदन के योग्य होते हैं जिससे भावी पीढ़ी को मार्गदर्शन प्राप्त हो।

ऐसे भव्य प्राणियों में डॉ. शेखरचन्द्र जैनने साधारण परिवार में जन्म लेने के बाद अनेक आरोहों–अवरोहों से गुजरते हुए आत्म पुरूषार्थ से सिद्धि के शिखर तक उन्नति की है। अध्यापन क्षेत्र से जुड़े शेखरजी जहाँ कुशल संपादन व लेखन प्रतिभा के धनी हैं वहीं समाज सेवा में भी उनकी गहरी रुचि है। देश–विदेश में जैन धर्म और संस्कृति के प्रचार–प्रसार के कारण वे अनेक पुरस्कारों एवं उपाधियों से पुरस्कृत और सम्मानित हुए हैं। ग.आ. ज्ञानमती की प्रेरणा से गठित भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष रहे हैं तो साथ ही दि. जै.त्रि.संस्थान द्वारा संचालित ग.ज्ञानमती पुरस्कार से सन २००५ में सम्मानित हुए हैं। आप चहुँमुखी प्रतिभा के धनी, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान और निर्भीक वक्ता हैं।

वस्तुतः आपका अभिनंदन जिनवाणी सेवा का अभिनंदन है न कि व्यक्ति विशेष का। उनका प्रकाशित हो रहा अभिनंदन ग्रंथ प्रसन्नता का विषय है।

मेरी शेखरजी के प्रति बहुत–बहुत शुभकामना हैं कि वे इसी प्रकार जैन वाङ्मय की, जिनवाणी माता की सेवा में अर्हनिश तत्पर रहकर आत्मोन्मुखी उन्नति करें तथा वर्तमान विद्वत् समूह के प्रेरणास्रोत बनें। उनके लिए बधाई है।

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन

अध्यक्ष– दि. जैन त्रि.शोध संस्थान, हस्तिनापुर

नवलकिशोर शर्मा
राज्यपाल, गुजरात

राजभवन
गांधीनगर–३८२०२०

दिनांक १५–११–२००६

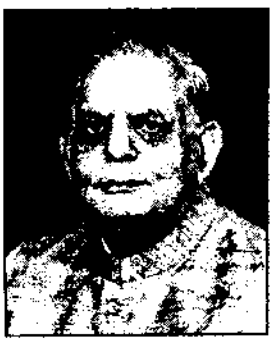

प्रिय श्री विनोदभाई हर्ष!

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने डॉ. शेखरचन्द्र जैन का अभिनंदन करने के लिए एक अभिनंदन ग्रंथ–२००७ में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। डॉ. शेखरचन्द्र जैन से मेरी भी मुलाकात हो चुकी है। उनके बारे में जो संलग्न पत्रिका में पढ़ा, उससे जाना कि उनकी जैन धर्म के प्रति आस्था है और वे भगवान महावीर स्वामी के सिद्धांतों को अपने जीवन में ग्रहण कर, लोगों की सेवा करने का कार्य करते आ रहे हैं।

लोगों की सेवा करने से बड़ा कोई कार्य व धर्म नहीं है। इनके द्वारा किये गये कार्यों को देखकर पू. मुनिराजगण, मित्रगण, शुभेच्छक, साथियों ने उनका राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान करने का संकल्प किया है यह और भी प्रसन्नता की बात है। मुझे आशा है प्रकाशित अभिनंदन ग्रंथ में इनके जीवन से संबंधिथ सभी बातों को छापा जायेगा जिससे लोगों को प्रेरणा मिलेगी।

मैं अभिनंदन समारोह तथा प्रकाशित होने वाले अभिनंदन ग्रंथ की सफलता हेतु अपनी शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ।

नवलकिशोर शर्मा

સંદેશ

સમાજ જીવનનની કેટલીક વ્યક્તિઓ એવી હોય છે કે જે આપણા ધર્માચાર્યો પાસેથી જ્ઞાન અને સંસ્કાર પ્રાપ્ત કરીને તેનો સમાજના સંસ્કાર-ઘડતર, સમાજસેવા અને લોક-જાગૃતિમાં સદુપયોગ કરે છે.

આવા જ જૈન વિદ્વાન અને સામાજિક કાર્યકર **ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન** વિશેનો અભિનંદન ગ્રંથ પ્રકાશિત થઈ રહ્યો છે તે આનંદની વાત છે.

આ ગ્રંથ માત્ર જૈન સમાજને જ નહીં પણ જૈનેતરને પણ પ્રેરણા પૂરી પાડશે તેવી શ્રદ્ધા સાથે શુભેચ્છા પાઠવું છું.

નરેન્દ્ર મોદી

(મુખ્યમંત્રી- ગુજરાત રાજ્ય)

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि डॉ. शेखरचन्द्र जैन के अनुकरणीय एवं प्रेरणादायी कार्यों को समाज के सामने लाने के लिये डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन समिति, अहमदाबाद द्वारा अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है।

डॉ. साहब द्वारा अपने मानवीय और सामाजिक दायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन समाज के लोगों के लिये अनुकरणीय एवं प्रेरणादायी है। जीवन के मर्म को आत्मसात कर मनुष्य जन्म को सार्थक करने के लिये शेखरचन्द्र जी ने जैन दर्शन का गहन अध्ययन कर ''तीर्थंकर वाणी'' पत्रिका के रूप में जैन धर्म का प्रचार–प्रसार तो किया ही साथ ही निर्धन और निःसहाय लोगों को निःशुल्क चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध करवायी हैं। जैन समाज के गौरव डॉ. शेखरचन्द्रजी से प्रेरणा लेकर प्रत्येक व्यक्ति को मानव सेवा का संकल्प लेना चाहिये।

मैं इस अभिनंदन समारोह के अवसर पर डॉ. साहब के स्वस्थ, सुदीर्घ और यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

शिवराजसिंह चौहान

मुख्यमंत्री– मध्यप्रदेश

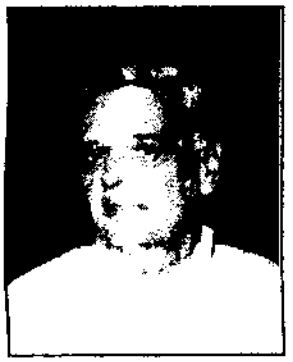

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અભિનંદન સમિતિ દ્વારા ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અભિનંદન ગ્રંથ ૨૦૦૭ પ્રકાશિત કરવામાં આવી રહેલ છે. તે જાણીને ખૂબ જ આનંદની લાગણી વ્યક્ત કરૂ છું.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન, સમન્વય ધ્યાન સાધના કેન્દ્રના અધ્યક્ષ અને 'તીર્થંકર વાણી'ના પ્રધાન સંપાદક તરીકે પોતાની માનદ સેવાઓ આપી રહ્યા છે. આ માનદ સેવાઓ ઉપરાંત તેઓશ્રી અનેક સામાજિક અને ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓ સાથે સંકળાયેલ છે. તેઓની આ ધાર્મિક અને સામાજિક પ્રવૃત્તિઓની સુવાસ ચોતરફ ફેલાઈ છે. આ ઉપરાંત ભારત વર્ષના જૈન સંઘો ધ્વારા તેઓને વાણી ભૂષણ, પ્રવચનમણિ તેમજ જ્ઞાનવારિધિની ઉપાધિથી વિભૂષિત કરવામાં આવ્યા છે. આવા ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનનું અભિવાદન, અભિનંદન સમિતિ ધ્વારા કરવામાં આવી રહેલ છે. તેઓને મારા અભિનંદન અને ખુબ ખુબ શુભેચ્છાઓ પાઠવું છું.

અશોક ભટ્ટ

મંત્રીશ્રી કાયદો, ન્યાય અને પરિવાર કલ્યાણ, ગુજરાત રાજ્ય

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश के मूल निवासी हिन्दी, जैन साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा अलंकृत डॉ. शेखरचंद जैन की सेवाओं को गौरव प्रदान करने की दृष्टि से जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों द्वारा डॉ. जैन का सम्मान दिनांक 11 फरवरी, 2007 को अहमदाबाद में किया जा रहा है। डॉ. जैन के स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य तथा अन्य पदों के विगत 40 वर्षों के अनुभव तथा विचारों को 'स्मृतियों के वातायन से' नामक ग्रंथ में लिपिबद्ध किये जाने का सराहनीय प्रयास है। डॉ. जैन ने विगत 15 वर्षों से प्रकाशित 'मासिक तीर्थंकर वाणी' नामक पत्रिका के माध्यम से देश ही नहीं इंग्लैंड, अमेरिका में भी जैन मनीषियों के चिंतन को जनसामान्य तक पहुंचाने का प्रयास किया है।

डॉ. शेखरचंदजैन के उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ आशा करता हूँ कि ऐसे विद्वान एवं विचारक की सेवाओं का लाभ दीर्घ अवधि तक समाज को निरंतर प्राप्त होता रहे।

कार्यक्रम के सफल आयोजन हेतु हार्दिक शुभकामनायें।

जयंतकुमार मलैया

मंत्री– नगरीय प्रशासन एवं विकास आवास एवं पर्यावरण (म.प्र.)

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન નો જન્મ સાધારણ પરિવારમાં થયો હોવા છતાં જીવનના અનેક આરોહ અવરોહમાંથી પસાર થઈ આજે એક ઉચ્ચતમ જીવનના શિખરે પહોંચી સમાજની અનેક ક્ષેત્રે સેવા કરી રહ્યાં છે તે ખરેખર ગૌરવની વાત છે.

તેઓએ અધ્યાપક તરીકે ઉત્કૃષ્ટ સેવા આપી યુવાવર્ગને જ્ઞાન તથા સાચા માર્ગદર્શનની ભૂમિકા બજાવી છે.

તેઓએ હિન્દી સાહિત્ય તથા જૈન સાહિત્યમાં અનેક વિષયો જેવા કે ઉપન્યાસ, કહાની, કવિતા, તથા જૈન ધર્મમાં નવી શોધ કરી પુષ્કળ પ્રમાણમાં સાહિત્ય સર્જન કરેલ છે તે ખરેખર પ્રશંસનીય છે.

તેઓ ભાવનગરમાં રોટરી ક્લબના વિવિધ પદો પર સક્રીય રહ્યાં છે તથા ભગવાન ઋષભદેવ જૈન વિદ્વત મહાસંઘમાં ત્રણ વર્ષ સુધી અધ્યક્ષ તરીકે સેવા આપી છે.

ડૉ. જૈન એક કુશળ વક્તા હોવાને લીધે જૈન ધર્મ ઉપર પ્રવચન તથા વ્યાખ્યાન અર્થે વિવિધ દેશોમાં જેવાકે અમેરિકા, યુરોપ, આફ્રિકા પ્રવાસ કરેલ છે.

ડૉ. જૈનની અકલ્પ્ય તથા વિરલ વ્યક્તિત્વ ધરાવતા હોઈ તેમને અનેક વિધ પુરસ્કારોથી સન્માનિત કરવામાં આવેલ છે તેમાં શિરમોર સન ૨૦૦૫માં ગણિની જ્ઞાનમતી પુરસ્કાર પ્રાપ્ત થયેલ છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનને પરમ કૃપાળુ પરમાત્મા દીર્ઘાયુ બક્ષે તેવી અભ્યર્થના.

હરીન પાઠક (સાંસદ)

પૂર્વ કેન્દ્રીય રાજ્યમંત્રી ગૃહ/રક્ષા મંત્રાલય

સ્નેહીશ્રી વિનોદભાઈ,

ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન અભિનંદન સમિતિ દ્વારા માનનીય ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈનના સેવાકાર્યોને અનુમોદન આપી રાષ્ટ્રીય સ્તરે તેઓનું અભિનંદન કરવાના હેતુથી અભિનંદન ગ્રંથ પ્રકાશિત કરવામાં આવી રહ્યો છે તે જાણીને આનંદ. આંતરરાષ્ટ્રીય ખ્યાતિપ્રાપ્ત જૈન વિદ્વાન અને સામાજિક કાર્યકર તરીકે ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈને જૈન સમાજની એકતા માટે નિરંતર પ્રયત્નો કર્યા છે જે સરાહનીય છે. તેની સાથે-સાથે ગરીબો માટે 'શ્રી આશાપુરા મા જૈન હોસ્પિટલ' સહિતની શૈક્ષણિક તેમજ અન્ય સેવાકીય પ્રવૃત્તિઓ માટેના સંનિષ્ઠ પ્રયત્નો અભિનંદનીય હોવાની સાથે માર્ગદર્શક બની રહેશે તેમાં બે મત નથી. વિદ્વાન ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈનની સેવાકીય સુવાસ રાષ્ટ્રીય સ્તરે અભિનંદન ગ્રંથની પ્રસિદ્ધિ મારફતે વધુ ને વધુ ફેલાતી રહે તેવા અભિનંદન સમિતિના પ્રયાસો સરાહનીય છે અને આ પ્રસંગે અભિનંદન ગ્રંથની પ્રસિદ્ધિની સફળતા ઇચ્છુ છું.

અમિત શાહ

મેયર- અમદાવાદ મ્યુનિસિપલ કોર્પોરેશન

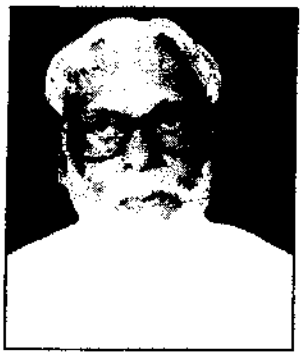

धरातल से शिखर

डॉ. शेखरचंद जैन बहुविधाओं के व्यक्तित्व के धनी हैं, जो विरलों को ही प्राप्त होती है। एक दो विधाओं के धनी व्यक्तित्व तो अनेक मिल जावेंगे लेकिन बहुविधाओं के धनी विरले ही होते हैं।

एक साधारण परिवार में जन्म लेकर अपनी कर्मठता एवं परिश्रम से उच्च शिक्षा प्राप्त कर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की, एवं जीवकोपार्जन के लिए प्राथमिक शाला के शिक्षक के पद से प्रारंभ कर कालेज में प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य पद पर रहकर कुशल प्रशासक एवं उत्कृष्ट शिक्षक के रूप में कीर्ति अर्जित की। विद्वत्ता के क्षेत्र में भी विशिष्ट स्थान है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में तीर्थंकर वाणी एक साथ तीन भाषाओं में प्रकाशित कर जैन पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। जो बहुआयामी सोच दर्शाता है। पत्रिका में समय–समय पर डॉ. साहब की संपादकीय लेख समाज को झकझोर देते हैं। उनके लेख मार्मिक होते हैं।

मानव सेवा के क्षेत्र में माँ आशापुरा अस्पताल अपने मित्रों के सहयोग से अहमदाबाद में प्रारंभ किया। यह कार्य करूणा एवं दया को प्रदर्शित करता है।

माँ जिनवाणी की सेवा करते हुये। अनेक ज्ञानोपयोगी धार्मिक पुस्तकें लिखीं।

एक कुशल प्रवचनकार के रूप में जो ख्याति अर्जित की उससे भारत ही नहीं अमेरिका में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर जैन समाज समान रूप से आपका प्रवचन सुनकर इनका सम्मान करती है।

डॉ. शेखरचन्द्र के स्वस्थ यशस्वी एवं दीर्घायु जीवन की कामना करता हूँ।

श्री डालचंद्र जैन
(पूर्व सांसद)

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा (गांधीनगर)
पि. ३८२ ००७
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

■ *જૈનધર્મ અને સાહિત્યના જાણીતા વિદ્વાન*

શ્રી શેખરચંદ્ર જૈનનો અભિનંદન ગ્રંથ તૈયાર થઇ રહ્યો છે તે જાણી આનંદ થયો. આપ આ કાર્ય નિર્વિઘ્ને સંપૂર્ણ કરો તેવી શુભેચ્છા પાઠવું છું.

શ્રી શેખરચંદ્ર જૈનને મારે બે-ત્રણ વખત જુદા જુદા અવસરે મળવાનું થયું છે. તેઓ જૈનધર્મનાં અને સાહિત્યના જાણીતા વિદ્વાન છે. તેમનું વક્તવ્ય ઘણું જ સુંદર હોય છે અને જનતાને આકર્ષી રાખે તેવું હોય છે. તેઓએ જૈનધર્મના પ્રવચન જુદા જુદા પ્રદેશોમાં અને દેશ-વિદેશમાં આપ્યા છે અને તે દ્વારા જૈનધર્મનો સુંદર પ્રચાર-પ્રસાર કરી રહ્યા છે તે ખૂબ આનંદની વાત છે. તેઓ માનવસેવાનું કાર્ય પણ કરી રહ્યા છે તે અનુમોદનીય છે. તેઓ નીરોગી અને દીર્ઘાયુષ્ય પ્રાપ્ત કરે તેવી શુભેચ્છા પાઠવું છું.

શ્રેણિક કસ્તૂરભાઇ *(અમદાવાદ)*

■ *जैन धर्म और संस्कृति के उद्‌बोधक*

हर व्यक्ति को स्वप्न होने का महसूस कराना, वह शक्ति केवल डॉ. शेखरचन्द्र जैन में ही है। हमारे कुटुंब के प्रति उनका प्रेम और भक्ति अनन्य रही है। मेरे पिताश्री स्व. शांतिभाई शाह के प्रति उनका आदर और आत्मीयभाव कभी भूल नहीं सकता हूँ।

जैनधर्म और भ. महावीर की वाणी को सच्चे अर्थ में वे समझे हैं, और वह अपने तक ही सीमित न करते हुए औरों को जिसतरह जैन दर्शन का रसदर्शन करवाते हैं वह उनकी एक अनन्य सिद्धि है। संसार में रहते हुए भी साधुओं की वाणी की तरह निष्काम वाणी द्वारा जैनधर्म का प्रचार–प्रसार करना वह उनकी विशिष्टता रही हऐ। मैं प्रभू से प्रार्थना करता हूँ कि वे आजीवन जैनधर्म का और संस्कृति का सच्चे अर्थ में प्रचार और प्रसार करते रहें। ऐसी शक्ति उन्हें प्राप्त हो।

जैनों के चारों संप्रदाय की एकता के लिए उन्होंने जो श्रम किया है वह सफल हो और जैन एकता मजबूत बने यही भावना मेरी भी है। मैं उनके सुखी स्वस्थ जीवन की शुभकामना करता हूँ।

श्री श्रेयांसभाई शाह

तंत्री– 'गुजरात समाचार' (दैनिक), अहमदाबाद

❀ *જૈન એકતાના હિમાયતી વિદ્વાન*

શ્રી શેખરચંદ્ર જૈનના અભિનંદન ગ્રંથના વિમોચન પ્રસંગે બે શબ્દો કહેતા અત્યંત આનંદ અનુભવુ છું.

શ્રી શેખરચંદ્રજીએ જૈન ધર્મ, જૈન તીર્થ અને શાસનના વિવિધ પાસાઓને આવરી લેતા ઘણા પુસ્તકો અને લેખો લખ્યા છે અને તે અંગે દેશ અને પરદેશમાં પ્રવચનો આપ્યા છે. તે દ્વારા તેઓ જૈન શાસનની ઉત્તમ સેવા કરી રહ્યા છે. ખાસ કરીને જૈન એકતા અંગે તેમને ઘણુ લખ્યુ છે અને તે અંગેનો સંદેશો દેશ-પરદેશમાં પહોંચાડવાનું જે કાર્ય તેઓ કરી રહ્યા છે તે ખૂબજ અનુમોદનીય છે. આજે જૈન શાસનની પ્રભાવના વધારવી હશે તો જૈનોમાં એકવાક્યતા લાવવાની અને જૈનોની શક્તિ અને સાધનોને એકત્ર કરી તેનો અસરકારક રીતે ઉપયોગ કરવાની ખૂબ જ જરૂર છે. એટલું જ નહી પરંતુ જૈન ધર્મ અને તેની પ્રાચીન ભાવનાઓ અને ઉત્તમ પરંપરાઓને આગળ વધારવાની મહત્ત્વની જવાબદારી શ્રમણ પ્રધાન ચતુર્વિધ સંઘની છે. તેમાં શ્રી શેખરચંદ્રજી જેવા મહાનુભાવનું યોગદાન ખૂબ જ મહત્ત્વનું બની રહેશે તેવી મને શ્રદ્ધા છે. આજે જ્યારે તેમની પ્રવૃત્તિઓને બિરદાવતા અભિનંદન ગ્રંથનું પ્રકાશન થઈ રહ્યું છે ત્યારે તેઓ આ દિશામાં વધુ શક્તિથી કામ કરતા રહે તેવી મારી શુભેચ્છા પાઠવું છું.

સંવેગ લાલભાઈ *(અધ્યક્ષ- આણંદજી કલ્યાણજી પેઢી)*

❀ *उत्कृष्ट समाज सेवक विद्वान*

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि धार्मिक शिक्षा एवं समाज सेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के उपलक्ष्य में पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमतिजी द्वारा ''ज्ञानमति अवार्ड'' से सम्मानित डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन समाज के एक उत्कृष्ट विद्वान एवं विभूति है।

देश–विदेश में जैन धर्म के प्रचार–प्रसार एवं एकता के लिए समर्पित रहकर तीर्थंकर वाणी पत्रिका के माध्यम से धार्मिक शिक्षा के प्रचार में संलग्न है।

शिक्षा के साथ चिकित्सा के क्षेत्र में भी आपका महान योगदान आशापुरा माँ जैन हॉस्पिटल को देकर असमर्थ और कमजोर वर्ग की सेवा में अमूल्य समय दे रहे हैं।

आपके सफल एवं सुखद दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

अशोक पाटनी

(आर.के. मार्बल ग्रुप, मदनगंज–किशनगढ़)

❀ *ऊर्जावान व्यक्तित्त्व*

कमेटी का जो निर्माण हुआ है वह स्तुत्य है। डॉ. शेखरचंद्र जैन एक साधारण परिवार में जन्में महान् व्यक्तित्व के धनी हैं, उन्होंने अपने को बड़ी कठिन परिस्थितियों में बनाया। इस देश की यह परिपाटी रही है कि राष्ट्र में जितने भी महान् व्यक्ति पैदा हुए हैं, वे सब बहुत ही साधारण परिवार में पैदा हुए, परंतु वे अपनी प्रतिभा के धनी हुए। उन्होंने अपना जीवन समाज एवं राष्ट्र को दिया उसे हमेशा समाज एवं राष्ट्र स्मरण करता रहेगा।

डॉ. शेखरचंद्रजी जैन का जीवन वृत्त पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने इस देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपनी ऊर्जा के द्वारा कार्य किया। गुजरात के महामहिम् राज्यपाल महोदय एवं अनेक संस्थाओं ने उनके उत्कृष्ट कार्य हेतु उन्हें सम्मानित किया। सबसे बड़ी बात यह है कि इतने शिक्षित होने पर भी उन्होंने धार्मिक प्रवृत्ति को नही छोड़ा, वे सदैव जैनधर्म की प्रभावना से कार्य करते रहे हैं एवं कर रहे हैं। आप समाज में समन्वय

एवं सद्भावना के निष्ठावान् कार्यकर्ता रहे। अपने जीवन को उन्होंने अध्यापन कार्य से शुरू किया एवं निरन्तर प्रगति के पथ पर आरूढ़ होते हुए सदैव अग्रेषित होते रहे।

मैं डॉ. शेखरचंद्रजी जैन के यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ एवं जिनेन्द्र देव से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वस्थ शरीर के साथ समाज की एवं धर्म तथा संस्कृति की सेवा करते रहें।

''डॉ. शेखरचंद्रजी जैन युग–युग तक जिये'' यही मंगल कामना है।

श्री बाबूलाल जैन पाटोदी *(इन्दौर)*

જૈન એકતાના પ્રહરી

જાણીતા સાહિત્યકાર શ્રી ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈને પોતાની કલમથી જૈન સમાજ માટે ઘણી ઉમદા કાર્યો કરેલ છે, સાથે સાથે મન, વચન અને કાયાથી પણ અવિરત સેવાઓ આપેલ છે. તેમાંથી જૈનસમાજની એકતા માટે અને સંપ્રદાયના ભેદ દૂર કરવા તેઓએ કરેલ પ્રયત્નો સરાહનીય છે.

હજુ પણ તેઓશ્રી ઉત્તરોત્તર વધુ સુંદર સેવા જૈન-સમાજને આપતા રહે તેવી અમારી હાર્દિક શુભેચ્છાઓ સાથે આશીર્વાદ પાઠવીએ છીએ.

શારદાબેન યુ. મહેતા *(અમદાવાદ)*

उच्च कोटि के विद्वान एवं मुनि-भक्त

हमें जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि प्रसिद्ध विद्वान एवं समाजसेवी डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन को सम्मानित करने के लिए 'डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनन्दन समिति' का गठन हुआ है और जिसकी अध्यक्षता आप कर रहे हैं। विद्वानों का ऋण हमेशा समाज पर रहता है और समाज हमेशा विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करने को अपना कर्तव्य समझकर उसका निर्वाह करता रहता है।

डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन उच्चकोटि के विद्वान हैं और उन्होंने जैन समाज की अपनी प्रवचनों एवं लेखन के माध्यम से एवं जगह–जगह यात्रा करके जिनशासन की प्रभावना की है जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। आपने विदेशों में भी यात्रा करके जैन धर्म की बहुत प्रभावना बढ़ाई है, जिसको हम कभी नहीं भुला सकते। आप मुनियों के अनन्य भक्त हैं।

इस ग्रन्थ के लिए गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का आशीर्वाद प्राप्त है और इसके परामर्शदाता ब्र. रवीन्द्र कुमार जी जैन एवं पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाईजी हैं, यह हमारे लिए बहुत ही सौभाग्य की बात है। आपने हमेशा अपने जीवन में महासभा को भी अपना भरपूर योगदान दिया है जिसकी हृदय से प्रशंसा करते हुए इनका आभार प्रकट करता हूँ।

मैं 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा', 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा', 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन श्रुत संवर्धिनी महासभा' एवं 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला महासभा' की ओर से डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन के दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

निर्मलकुमारजी जैन सेठी

(अध्यक्ष– भा.दि. जैन महासभा, लखनऊ)

निर्भीक एवं ओजस्वी वक्ता

किसी भी साहित्यकार एवं समाज–सेवी का अभिनन्दन वस्तुतः समाज का अपना ही अभिनन्दन होता है। यह प्रसन्नता की बात है कि प्रख्यात विद्वान, लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता एवं चिन्तक डॉ. शेखरचन्द जैन का अभिनन्दन समाज द्वारा किया जा रहा है।

डॉ. शेखरचन्द जैन अपने विद्वतापूर्ण एवं ओजस्वी उद्‌बोधन के लिए विशेष रूप से पहचाने जाते हैं।

६९ वर्षीय डॉ. जैन ने अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष देश के नोनिहालों एवं युवकों का जीवन संस्कारित करने में व्यतीत किया। अध्यापन कार्य के साथ साथ हिन्दी साहित्य और जैन साहित्य में लगभग 100 शोध ग्रन्थों, उपन्यासों, कहानियों, कविताओं एवं पुस्तकों की समीक्षाओं से आपने अपनी सरसता एवं सहृदयता का परिचय दिया है। ''कापडिया अभिनन्दन ग्रंथ'' के सम्पादक के रूप में तथा ''पूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी अभिनन्दन ग्रंथ'' एवं ''50वें स्वर्ण जयन्ती दीक्षा समारोह ग्रंथ'' के सह–सम्पादक के रूप में आपने अपनी साहित्यिक प्रतिष्ठा को पूर्णतः प्रतिष्ठापित किया है। पिछले 15 वर्षो से ''तीर्थंकर वाणी'' का सम्पादन करते हुए डॉ. शेखरचन्द जैन ने भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी – तीनों भाषाओं के माध्यम से समाज को जागृत करने का अनुकरणीय कार्य किया है।

डॉ. जैन लम्बे अर्से से सामाजिक सेवा के कार्यों से भी अभिन्नता के साथ जुड़े हुए हैं। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के वरिष्ठ पदाधिकारी के रूप में आपने अपनी दक्षता एवं नेतृत्व का अनूठा प्रदर्शन किया है। भगवान ऋषभदेव जैन विद्वत महासंघ के कार्याध्यक्ष एवं अध्यक्ष के रूप में तथा समन्वय ध्यान साधना केन्द्र के संस्थापक–ट्रस्टी–अध्यक्ष के रूप में पिछले 10 वर्षो से अहमदाबाद के पिछड़े इलाके में 'श्री आशापुरा जैन अस्पताल' द्वारा गरीबों की सेवा कर रहे हैं। आप पिछले 15 वर्षो से पश्चिम जगत में धर्म प्रचार में कार्यरत है। पत्रिका के श्रेष्ठ प्रकाशन और विद्वत्ता के कारण अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत है।

जैन एकता के लिए सदैव प्रयासरत रहने वाले डॉ. शेखरचन्द जैन का अभिनन्दन देश के सभी मनीषियों के लिए प्रेरणादायक व अनुकरणीय सिद्ध हो और डॉ. शेखरचन्द जैन स्वस्थ रहते हुए शतायु हों और मानव मात्र की, समाज की, एवं धर्म की अनवरत सेवा करते रहें, इसी शुभ कामना के साथ–

नरेश कुमार सेठी *(अध्यक्ष– भा.दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी)*

सेवाभावी व्यक्तित्व

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप लोग डॉ. शेखरचंदजी का अभिनन्दन करने जा रहे है। डॉ. शेखरचंद्र अत्यन्त निर्भीक व्यक्ति हैं। लेखनी में समाज के लिए पीड़ा छिपी हुई है सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में अन्धविश्वासों के विरुद्ध में बराबर 'तीर्थंकर वाणी' में अपने विचार देते रहते हैं ऐसे स्पष्ट विचार प्रगट करना दुष्कर कार्य है, लेकिन डाक्टर साहब तो अपनी बात के पक्के हैं। ज्ञान में तो बेजोड़ हैं जैनधर्म ही नहीं सारे धर्मों के अच्छे जानकर हैं साथ ही साथ हास्पीटल के माध्यम से सेवा के कार्यो में भी दिल से लगे हुए हैं। विद्वता एवं सेवा दो संगम कम देखने मिलते हैं डाक्टर साहब धार्मिक कुरीतियों से काफी दुःखी हैं। मेरा सौभाग्य रहा कि कई बार डाक्टर साहब के साथ रहने का अवसर मिला उनमे लाग लपेट एकदम नहीं है। ऐसे योग्य पुरुष का सम्मान करके हम लोग खुद ही सम्मानित होंगे। डाक्टर साहब स्वस्थ रहते हुए शतायु हों देश एवं समस्त धर्म की कुरीतियों पर प्रहार करते रहें ऐसी मंगलकामना के साथ उन्हें सादर प्रणाम।

सरदारमल काँकरिया *(कोलकाता)*

■ कर्मठ समाज सेवक एवं जागृत संपादक

बहुत ही प्रसन्नता एवं गर्व की बात है कि डॉ. शेखरचंद जैन प्रधान–संपादक 'तीर्थंकर–वाणी' के द्वारा किए गये समाज हित के कार्यों की प्रशंसा एवं सराहना हेतु अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है।

इस ग्रन्थ को तो दो वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था। डॉ. शेखरचंदने अपने शैक्षणिक काल में जो समाज सेवा की वह तो अनुकरणीय है ही, परन्तु पिछले चौदह वर्षों से लगातार 'तीर्थंकर–वाणी' पत्रिका तीन भाषाओं में निर्भीकता पूर्वक संपादन कर सभी जैन संप्रदायों में एकता एवं समन्वय स्थापित करने का भागीरथ प्रयत्न कर रहे हैं वह स्तुत्य भी है और अनुकरणीय भी। डॉ. शेखरचंदजीने देश–विदेश में सभी जैन संप्रदायों में समन्वय स्थापित करने का तो अनूठा कार्य किया ही है। अमरीका में १४ वर्षों से जैन दर्शन का प्रचार कर रहे हैं। डॉ. शेखरचंद जैन द्वारा स्थापित हास्पीटल एक स्तुत्य कार्य है। आपकी निष्ठा लगन और समर्पण की भावना से ही इतना विशाल कार्य इतने अल्प काल में संभव हो सका। अभी समाज को डॉ. शेखरचंदजी से बड़ी–बड़ी उम्मीदें हैं जिनको उन्हें अंजाम देना है आशा ही नहीं अपितु पूर्व विश्वास है कि उनके द्वारा समाज हित सदैव होता रहेगा। डॉ. शेखरचंदजी के स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन की मैं ईश्वर से सदैव प्रार्थना करता हूँ।

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा॥

मोतीलाल जैन *(सागर)*

■ साहित्यकार एवं लोकसेवी – डॉ. शेखरचंद्र जैन

विरल व्यक्तित्व के धनी हैं श्री शेखरचंद जैन। वे जितने बड़े साहित्यकार हैं उतने ही बड़े लोकसेवक भी हैं। विगत ३० वर्षों पूर्व से मैं आपके संपर्क में आया। उनके जीवन में साहित्य एवं लोकसेवा की दोनों विधायें सशक्त प्रवाहमान हैं। ७० वर्ष की उम्र में आज भी शेखरचंदजी के भीतर जो तेजस्विता और कर्मठता है वह अनुकरणीय है। जब वे बोलते हैं तो कई बार ऐसा लगता है शब्द नहीं, मंत्र बोल रहे हैं।

जैन धर्म के विकास और निर्माण में उनका जीवन केन्द्र बिन्दु तो है ही। अपने साथी कार्यकर्ताओं के प्रेरक मात्र ही नहीं है, उनके लिए महत्व के श्रोता भी हैं। गुट, दलबंदी एवं जातिवाद पहचान से मुक्त रहते हुए सर्व स्तर के कार्यकर्ताओं से चाहे वे धनपति हों या गरीब, साहित्य सेवी या समाज सेवी अथवा राजनेता या धर्मगुरु, सभी से संपर्क बनाये रखना आपका सहज स्वभाव बन गया है। समाज की सही स्थिति का चित्रण करते हुए श्री शेखरचंदजी किसी को नहीं छोड़ते, चाहे वे धर्मगुरु हों या राजनेता।

ऐसे समर्थ शब्दशिल्पी को शत् शत् अभिनंदन।

मेरी हार्दिक कामना है कि श्री शेखरचंदजी शतायु हों और आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहें।

श्री शुभकरण सुराणा *(संस्थापक– अधिष्ठाता, अनेकान्त भारती प्रकाशन)*

■ समन्वयवादी जैनत्व की पताका फहराने वाले

यह जानकर अपार सुखद अनुभूति हुई कि 'जैन जगत' के लब्ध प्रतिष्ठित, अध्येयता एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में धर्म प्रभावना हेतु कीर्तिमानों की श्रृंखला अर्जित करने वाले श्रेष्ठ विद्वान डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन को विद्वत् समाज द्वारा सम्मान से अलंकृत किये जाने की बेला पर प्रकाशित हो रहे 'स्मृतियों के वातायन से' डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन अत्यन्त प्रेरणा दायक, प्रशंसनीय प्रयास है।

इस पावन मंगलोत्सवकी बेला पर अभिनन्दन, समिति को कोटिशः बधाई एवं अनन्त शुभकामनायें।

पूज्य आचार्य विद्यासागर महाराज ने झाँसी प्रवास मध्य अपने संदेश में कहा था कि 'मानव' में एक शब्द 'ता' जुड़ जावे यानी कि मानवता आ जावे तो सारी पीड़ा मिट जावे। संयोगवश बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. शेखरचन्द्रजी को मानवीय सुसंस्कार विरासत में मिले हैं। जिनके फलस्वरूप वह 'तीर्थंकर वाणी' के श्रेष्ठतम सम्पादक एवं शिक्षण/प्रशिक्षण जैन सद्--साहित्य के लेखन द्वारा समाज एवं युवा पीढ़ी को निरन्तर दिशा, बोध दे रहे हैं। उनकी सृजनात्मक रचना धर्मिता ने समग्र समाज को गौरवान्वित किया है।

'समाजवादी जैनत्व' की पताका फहराने वाले एवं महामहिम राज्यपाल जी सहित अनेकानेक शीर्षस्थ जैन संस्थाओं द्वारा उत्कृष्ट उपाधियों से अलंकृत डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन ने परम पावन 'माँ जिनवाणी' की भारी धर्म प्रभावना एवं मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हुये देश, धर्म, समाज की समर्पित भाव से सेवा की है।

सम्मान अलंकरण के अवसर पर उनका हार्दिक अभिनंदन करते हुये चन्द पंक्तियों में उनके सपरिवार यशस्वी, सुदीर्घ जीवन की मंगलकामनायें सादर समर्पित है।

करता मंगल कामना सदा 'विश्व परिवार'
करें और उपकार वह -- जीकर वर्ष हजार

श्री कैलाशचन्द्र जैन
झाँसी (प्रधान सम्पादक-- दैनिक 'विश्व परिवार')

अकेला चलो रे.....

डॉ. शेखरचंद्रजी जैन से मेरा परिचय 1984 में गोमतीपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय हुआ। उस प्रतिष्ठा के कार्य के सफल संचालन में भी डॉ. शेखरचंद्रजी जैन का ही मार्गदर्शन तथा उन्ही की कड़ी महेनत का फल था। मुझे उस पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के अध्यक्ष के रूप में उनके साथ में काम करने का अवसर मिला। मैंने पाया कि डाक्टर साहब एक सनिष्ठ अध्यापक, ख्यातिप्राप्त विद्वान, समाजसेवी, धर्म के प्रति लगाव होने के अलावा अपने व्यक्तिगत विचारधारा पर अडिग रहनेवाले हैं, वे जिस कार्य को करने का संकल्प लेते हैं, उसे पूरा करके ही दम लेते हैं।

उसके बाद से मेरा उनसे निरन्तर सम्पर्क बना हुआ है चाहे वह तीर्थंकर वाणी के सम्पादन का कार्य हो अथवा श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल के संचालन का।

तीर्थंकर वाणी की सफलता तथा अस्पताल के विकास का जितना भी कार्य है, उन सबका श्रेय डोक्टर साहब को ही जाता है। अगर मैं यह कहूं कि इनकी सफलता के पीछे 'One Man Show' है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। डॉक्टर साहब की प्रेरणा से उपरोक्त अस्पताल के दो केम्प हम 'असारवा मिल्स के स्टाफ तथा मजदूर भाईयों के लिए असारवा मिल में आयोजित कर चुके हैं, जिसमें आँख, दांत, कान की चिकित्सा का लाभ ले चुके हैं। उसमें हमे काफी सफलता मिली तथा मिल स्टाफ व मजदूर भाई काफी प्रसन्न रहे हैं।

मैं डॉक्टर साहब के दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ जिससे कि देश व समाज को उनकी विभिन्न सेवाओं का निरन्तर लाभ मिलता रहे तथा जो योजनाएँ उन्होंने चालू की हैं तथा भविष्य में और नई योजनाएँ बनाने वाले हैं, उसमें उनको भरपूर सफलता मिले तथा उनकी प्रतिष्ठा देश ओर समाज में ऊँची बुलन्दियाँ हासिल करे।

राधेश्याम सरावगी *(अहमदाबाद)*

शुभेच्छा

मुझे यह जानकर अपार प्रसन्नता हुई है कि डॉ. शेखरचन्द्र जैन के अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है।

समाज के सतपुरूषों का सम्मान करना और असत् पुरूषों की भर्त्सना करना समाज का नैतिक कर्तव्य है। डॉ. शेखरजैन ने जैन समाज का नाम देश विदेश में रोशन किया है। अतः उनका अभिनन्दन करना एक स्तुत्य कार्य है।

मेरी शुभेच्छा है कि वे स्वस्थ रहते हुए सौ वर्ष जीवें और ज्ञान की आराधना और समाज की सेवा करते रहें।

डॉ. अम्बाशंकर नागर *(अहमदाबाद)*

અપ્રતિમ પુરુષાર્થી વિદ્વાન

અપ્રતિમ પુરુષાર્થ, ઊંડી અભ્યાસનિષ્ઠા અને વૈચારિક પારદર્શકતાથી ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈને અનેકવિધ ક્ષેત્રોમાં આગવી સિદ્ધિ હાંસલ કરી છે. એમનો વિદ્યા-પુરુષાર્થ જેટલો મહત્ત્વનો છે, એટલો જ એમનો જીવન-પુરુષાર્થ પ્રેરણાદાયી છે. સામાન્ય પરિસ્થિતિમાં જન્મેલા ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈને અસામાન્ય મહેનત અને અવિરત ખંતથી પોતાના જીવનશિલ્પનું નિર્માણ કર્યું છે.

વિદ્યાના ક્ષેત્રમાં અધ્યાપક તરીકે એમની આગવી છાપ રહી છે અને શાળાના શિક્ષકથી આરંભીને કોલેજના આચાર્યપદના સુધીની એમની યાત્રા એમની વિદ્યાપ્રીતિનો પુરાવો છે. એમની વિદ્યા અને વિદ્યાર્થીઓ માટેની લાગણી અને મમતા છેક છાત્રાલયના વિદ્યાર્થીઓના જીવનઘડતરમાં પણ પ્રગટ થઈ છે અને વર્ષો સુધી એમને શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરીકે કપરી કામગીરી સફળ રીતે બજાવી છે.

એમના વિદ્યાપુરુષાર્થનું મહત્ત્વનું પાસું તે એમના માર્ગદર્શન હેઠળ પીએચ.ડી. મેળવનાર વિદ્યાર્થીઓ અને પૂ. સાધ્વીજી મહારાજો છે.

આ જ વિદ્યા પુરુષાર્થનું એક બીજું પ્રાગટ્ય તે તેમનું લેખનકાર્ય છે. નવલકથા, નવલિકા, નિબંધ જેવા સાહિત્યપ્રકારો ધરાવતી એમની સાહિત્યકૃતિઓ અને ધ્યાન

વિશેનાં એમનાં પુસ્તકોએ સહુનું ધ્યાન ખેંચ્યું છે. પ્રવાહી શૈલી, વિશદ આલેખન અને વિષયની સુંદર રજૂઆત તે એમની વિશેષતા છે. જૈનદર્શન વિષયક પરિસંવાદમાં ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન સંશોધનપત્ર સાથે ઉપસ્થિત હોય જ અને વિદ્વદ્ ગોષ્ઠિનો આનંદ માણતા હોય તેવાં દૃશ્યો વારંવાર જોવા મળ્યાં છે. એમની વિદેશયાત્રાઓ દ્વારા જૈન ધર્મ પ્રસારના કાર્યની સાથોસાથ એમણે ધર્મપ્રબોધિત સેવાભાવનાને હોસ્પિટલના નિર્માણ દ્વારા વાસ્તવરૂપ આપ્યું છે. કેટલાય ગરીબોની આંખનાં આંસુ લૂછવાનું અને એમની બીમારીઓ દૂર કરવાનું પુણ્યકાર્ય ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈને કર્યું છે.

આમ વિવિધ ક્ષેત્રોમાં પોતાની પ્રતિભાથી મહત્ત્વનું યોગદાન કરનાર ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનનું જાગ્રત અને પ્રબુદ્ધ વિચારક તરીકેના પાસાથી સમાજ અલ્પપરિચિત છે. કોઈનીય શેહ-શરમ રાખ્યા વિના ધર્મને અવરોધક એવી બાબતોને નિર્ભીક રીતે એ એમની લેખનીથી પ્રગટ કરે છે અને આજે ખમીરભર્યા જૈન-પત્રકારોમાં પણ એમણે પોતાની લેખનશક્તિથી આગવી ભાત ઉપસાવી છે.

એમના અંગતમિત્ર તરીકે ઘણાં વર્ષોથી એમની સાથે ગાઢ સંબંધ રહ્યો છે અને હંમેશા કર્તવ્યનિષ્ઠ માનવીની આત્મીયતાનો સતત અનુભવ થયો છે.

એમના અભિનંદન ગ્રંથના આ પ્રસંગને મારી અંતરની શુભેચ્છા આપું છું અને તેઓ દ્વારા ધર્મ, સમાજ અને સાહિત્યની વધુને વધુ સેવા થતી રહે એવી ભાવના સેવું છું.

પદ્મશ્રી ડૉ. કુમારપાળ દેસાઈ

■ *आत्मविश्वास के धनी विद्यापुरुष*

रावर्ट ब्राउनिंग ने कहा है ''When the fight begins within himself, a man's worth something'' **अर्थात् जब मनुष्य अपने अंदर युद्ध करने लगता है, तब वह अवश्य ही किसी योग्य होता है।**

डॉ. शेखरचन्द्र जैन प्रबल आत्मविश्वास एवं सहानुभूति में श्रद्धा रखनेवाले कर्मयोगी हैं। वास्तव में आत्मशक्ति की पहचान ही धर्म का प्रथम सोपान है। डॉ. जैन प्रोफेसर भी रहे और प्राचार्य भी। किन्तु उनका मन था अपने समस्त व्यक्तित्वको सौंदर्य की दीप्ति में ढालने के लिए, इसीलिए कहा गया है कि अपनी प्रतिभा को तराशना तब तक बन्द न करो, जब तक उसमें से दैवी गुणों की आभा विकीर्ण होकर तुम्हें आलोकित न कर दे।

विद्वता साध्य नहीं, साधन है, आत्मज्ञान का। अन्ततोगत्वा ज्ञान का परम एवं चरम उद्देश्य दसलक्षण धर्म द्वारा मनःशुद्धि है, जो मनुष्य को मुक्तिपथ का अधिकारी बनता है।

डॉ. जैन विद्योपासना एवं धर्मोपासना के संगमतीर्थ हैं। 'आचारांग सूत्र' में उचित ही कहा गया है कि धर्म गाँव में भी हो सकता है, अरण्य में भी, क्योंकि धर्म न गाँव में होता है, न अरण्य में, वह तो अन्तरात्मा में होता है।

ज्ञानसाधना में 'विद्यापुरुष', धर्म साधना में 'प्रज्ञापुरुष' एवं पत्रकारिता में मूल्यनिष्ठा के आदर्श को चरितार्थ करनेवाले डॉ. शेखरचन्द्र मानते हैं अनंत जीवन का एकमात्र पाथेय धर्म है। धर्म विषयक अनेक पुस्तकों के लेखक, हिन्दी–साहित्य के समर्थ सर्जक, धर्म–ज्योतिर्धर पत्रकार एवं समर्पित समाजसेवी डॉ. जैन का अभिनंदन, जैनत्व का अभिनंदन है। उनके निरामय एवं शतायु के लिए शुभकामाएँ।

(डॉ.) चन्द्रकान्त मेहता *(अहमदाबाद)*

GOOD WISHES

It is a matter of great pleasure to write a few words of appreciation, for some one who was a past collegue.

When Dr. Jain came to my college as a lecturer in Hindi, I was impressed by his confidence and method of delevering lectures. His speech was so impressive that we utilised his services for public speaches. At that time, I anticipated that he would easily go up on the ladder of progress and academic achievements. I feel happy for what he has achieved. I wish him good health, innate happiness and satisfaction.

Shri B. M. Peerzada *(Ahmedabad)*

आर्ष परंपरा के रक्षक

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद के कर्मठ कार्यकर्ता एवं मेरे परम मित्र डॉ. शेखरचन्द्र जैन के राष्ट्रीय अभिनन्दन और उनके गुणानुवाद से समन्वित अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की शास्त्रि परिषद के सभी पदाधिकारी एवं सदस्य भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन का व्यक्तित्व और कृतित्व प्रभावक है। इसने भारतीय ही नहीं अपितु पाश्चात्य सुधी समाज को प्रभावित किया है। यही कारण है कि विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न डॉ. जैन हिन्दी साहित्य के विद्वान् होकर भी संस्कृत प्राकृत साहित्य में अपने को सतत लगाये रहे जिससे जैन, जैनेतर में इनके लेखन और व्याख्यानों का विशेष बहुमान है। शास्त्रि परिषद् ने इनकी महत्वपूर्ण कृति 'मृत्युञ्जयी केवलीराम' को प्रकाशित कराया।

इनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसी विलक्षणता है कि एक और सत्य के लिए संघर्ष करने की वृत्ति और दूसरी ओर परिस्थितियों से जूझने का अटल साहस। इसका उदाहरण है जब एकान्तवाद (कहानपन्थ) ने धर्म के स्वरूप को विकृत करने की कोशिश की। गुजरात के साथ साथ सम्पूर्ण देश की समाज को जागृत किया। कोर्ट में केश दायर कर एकान्तवादियों के खिलाफ मुकदमा लड़ा। अपनी बात को जितने निर्भीक और बेवाकरूप से प्रस्तुत करने की क्षमता आप में उतनी अन्य में मिलना कठिन होती है। आपने शास्त्रि परिषद का अहमदाबाद में ऐतिहासिक अधिवेशन सम्पन्न कराया।

दुनिया में सम्मान / अभिनन्दन अनेकों का होता है, जब किसी अपने का होता है तब कुछ विशेष ही आनन्द की अनुभूति होती है। मुझे भी इससे विशेष आनन्दानुभूति हो रही है। इनकी अनेक कृतियों ने समाज को ही लाभान्वित नहीं किया है अपितु जैन–जैनेतर विद्वानों को भी लाभ पहुँचाया है। आपके कर्तृत्व के फलस्वरूप ही आपको गणिनी आर्यिका ज्ञानमती पुरस्कार, श्रुत संवर्धन पुरस्कार आदि से तो पूर्व में ही सम्मानित किया जा चुका है। अब पूरे जैन जगत की ओर से आपका सम्मान हो रहा है।

प्रज्ञा–प्रतिज्ञा के धनी डॉ. जैन पुरुषार्थ में विश्वास करनेवाले हैं अतः आपका अभिनन्दन होना ही चाहिए था। शत शत वसन्त ऋतुओं के सुमनों से सुवासित आपका जीवन हो और जैसा आर्ष परम्परा के संरक्षण में आपका योगदान रहा है वैसा ही आगे रहे। इसीके साथ कामना करता हूँ कि परिवार आपकी ऊँचाईयों के गौरव से गौरवान्वित होता हुआ समाज और धर्म के लिए सदा समर्पित हो। मेरी भावना है–

वह चाल चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी।
वह काम कर कि याद सबको रहे तेरी॥

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

अध्यक्ष– भा.दि.जैन शास्त्रि परिषद (बड़ौत)

शुभाकांक्षा

डॉ. शेखरचन्द्रजी को मैं पिछले लगभग द्विदशाब्द वर्षों से जानता हूँ। वे ऐसे मनीषी हैं, जिनकी पहचान वैसाखियों से नहीं, बल्कि उनकी स्वयं की श्रम–साधना की पहचान है। वे विचारों में खुले, साफ और निर्भीक, व्यवहार में धवल और निष्पक्ष, रचने में निरंतर लगनशील, पर इस सबके साथ ही साथ विषम से विषम परिस्थिति में सधे स्थिति–प्रज्ञ हैं। इस अभिनंदन के अवसर पर मैं उनके दीर्घ जीवन व सम्यक् विचार साधना के दिन–प्रतिदिन बढ़ने वाले पल्लवन की शुभाकांक्षा करता हूँ।

वृषभ प्रसाद जैन

प्रोफेसर व अध्यक्षः भाषा विद्यापीठ. वर्धा

बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. शेखरचन्द

डॉ. शेखरचन्द निःसंदेह बहुमुखी प्रतिभावान वरिष्ठ विद्वान हैं। आप अपने अध्यापन काल में प्रगतिशील सफल शिक्षक तो रहे ही हैं, पत्रकारिता के क्षेत्र में निर्भीक लेखक के रूप में यशस्वी सम्पादक हैं। तीर्थंकर वाणी पत्रिका के माध्यम से तो मैं पहले जानता था, पर प्रसंग जब आपका जयपुर आना हुआ तो साक्षात्कार होने से जानने के साथ पहचान भी हुई और वह पहचान प्रीति में भी परिवर्तित होती गई।

जानना मात्र एकपक्षीय होता है, जबकि पहचान में दोनों पक्ष एक दूसरों के अन्तर–बाह्य व्यक्तित्व में सुपरिचित हो जाते हैं।

डॉ. शेखर उन विरले व्यक्तित्वों में हैं, जो धर्मप्रेमी तो हैं ही, स्वाध्यायशील भी हैं तथा अच्छे सामाजिक कर्मठ कार्यकर्ता भी हैं। सैद्धान्तिक मतभेदों के बावजूद भी आप सामाजिक एकता के पक्षधर रहे हैं। अतः सभी के अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने में आप सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। एतदर्थ आपको अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं।

डॉ. शेखरचन्द्रजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सामाजिक और शिक्षा जगत में अत्यन्त सराहनीय और अभिनन्दनीय है। ऐसे व्यक्तित्व के अभिनन्दन के सुअवसर पर मैं उनके प्रति अपनी मंगल कामनायें प्रेषित करते हुए भावना भाता हूँ कि आप स्वस्थ रहते हुए चिरायु हों और स्व–पर कल्याण में सतत संलग्न रहें।

रतनचन्द भारिल्ल *(जयपुर)*

निर्भीक विद्वान

विद्वान समाज व राष्ट्र के दर्पण होते हैं। वे समाज के प्रतिनिधि पथ प्रदर्शक व उन्नायक होते हैं। उन्हीके विचारों व प्रेरणाओं से समाज को बल मिलता है। समाज उनकी सेवाओं से कभी उऋण नहीं हो सकता है।

सम्प्रति विद्वानों में अग्रणी डॉ. शेखरचन्द्र जैन निर्भीक वक्ता, लेखक, मित्रजनों की झूठी प्रशंशा से विमुख हैं। मैंने आपको अनेक संगोष्ठियों / समारोहों में सुना है, समझा है, परखा है उनके कथन में विद्वत्ता व निर्भीकता टपकती है। आपके आलेखों में मौलिक–चिन्तन के साथ व्यावहारिक एवं प्रायोगिक पक्ष अधिक प्रस्तुत होता है। आप समन्वयात्मक स्वभाव के हैं। कहीं कोई छिपाव या दुराव नहीं, जो कहते हैं स्पष्ट सरल शब्दों में कहते हैं। ऐसे अजस्र एवं निर्भीक लेखनी के धनी डॉ. शेखरचन्द्र जैन के अभिनन्दन के अवसर पर अपनी हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ तथा कामना करता हूँ कि दीर्घायु होकर जैनवाङ्मय की सेवा निरन्तर करते रहें।

डॉ. शीतलचन्द जैन

अध्यक्ष– अ.भा.दि.जैन विद्वत् परिषद. जयपुर

※ *विनोदी व्यक्तित्व*

भाई श्रीमान् डॉ. शेखरचन्द्रजी का व मेरा शास्त्रि परिषद और 'तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ' दोनों संस्थाओं में एक लम्बे समय तक साथ रहा है। वे कुशल एवं विनोदी व्यक्तित्व के बहुमुखी प्रतिभावान् मनीषी हैं। उनके अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर मेरी शुभकामनायें। वे दीर्घजीवी होकर जैनधर्म का प्रचार–प्रसार कर विद्वानों को प्रेरणा प्रदान करते रहें।

श्री शिवचरणलाल जैन *(मैनपुरी)*

संरक्षक–भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

※ *बहुमुखी प्रतिभा के धनी*

वर्तमान जैन विद्वानों की श्रृंखला में डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक स्थापित नाम है जिनकी बहुमुखी प्रतिभा को फूल की सुवास की तरह सर्वत्र मेहसूस किया जा सकता है; चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या पत्र सम्पादन का स्वास्थ्य सेवा का क्षेत्र हो या मंच संचालन का। चाहे शोध–वाचन हो या शास्त्र वाचन, वे अपनी वाक् प्रतिभा से सर्वत्र प्रभावित करते हैं।

जैन सम्प्रदायों में समन्वय के पक्षधर, जमीन से उठकर शिखर तक पहुंचने वाले डॉ. शेखरचंद्रजी से मेरा करीब एक दशक का परिचय है। उन्हें मैंने सदैव प्रफुल्लित एवम् ऊर्जा से परिपूर्ण पाया है।

ऐसे विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न डॉ.जैन का अभिनन्दन वस्तुतः उनके व्यक्तित्व एवम् कृतित्व की समीचीन अनुमोदना है। इस अवसर पर मुझे आशा और विश्वास है कि 'स्मृतियों के वातायन से' पुस्तक का प्रकाशन, समाज को एक नई चेतना देगा तथा युवा पीढ़ी को पुरूषार्थ की यथार्थ परिभाषा से अवगत कराने में सक्षम होगा।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन के लिए तो इस अवसर पर मैं यहीं कहूँगा कि Still there are Miles to Go before Sleep. मेरी उनके लिए हार्दिक शुभकामनाएँ तथा अभिनन्दन समिति के आयोजन कर्ताओं को हार्दिक बधाई एवम् अनेकशः साधुवाद।

श्री चीरंजीलाल बगड़ा

प्रधान संपादक 'दिशाबोध', कोलकाता

※ *शुभकामना*

यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि बन्धुवर डॉ. शेखरचन्द्र जैन का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। अनेक उपाधियों से अलंकृत, विविध पुरस्कारों से पुरस्कृत, हिन्दी साहित्य और जैन साहित्य की अभिवृद्धि में रत, बहु आयामी प्रतिभा के धनी शेखरचन्द्रजी वस्तुतः अभिनन्दनीय हैं।

१४ नवम्बर, १९९४ ई., को मुझे साहित्यमनीषी पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद', खुरई (सागर), द्वारा संकलित–सम्पादित तथा श्री खेमचंद्र जैन चैरिटेबल ट्रस्ट, सागर, द्वारा प्रकाशित, 'भक्तामर–भारती' की प्रति प्राप्त हुई थी। उसमें भक्तामर स्तोत्र के विभिन्न भाषाओं के १२१ पद्यानुवाद समाहित थे और 'सचित्र भक्तामर रहस्य' से उद्धृत मेरे पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 'आविर्भाव' शीर्षक से विशद प्रस्तावना थी। साथ ही, प्रवचनमणि वाणीभूषण डॉ. शेखरचन्द्र जैन की अमर काव्य–कृति भक्तामर के अनुवादों पर

समीक्षात्मक दृष्टि डालते हुए २० पृष्ठीय भूमिका थी। उनकी समीक्षात्मक भूमिका ने मन मुग्ध किया था। 'भक्तामर–भारती' पर मैंने अपना अभिमत 'शोधादर्श–२४', नवम्बर १९९४ ई., में अभिव्यक्त किया था।

डाक्टर साहब द्वारा सम्पादित त्रिभाषी मासिक पत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' मेरे यहाँ आती रही है और सम्पादकियों में व्यक्त उनके विचार ध्यान आकर्षित करते रहे हैं।

२९ दिसंबर को शेखरचन्द्र जी का ६९वां जन्मदिवस है। मेरी शुभकामना है कि वह स्वस्थ रहें, दीर्घकाल तक समाजसेवा और साहित्य साधना में संलग्न रहें और उनका सुयश वृद्धिंगत रहे।

श्री रमाकान्त जैन

संपादक– शोधादर्श, लखनऊ

■ *आदर्श शिक्षक, साहित्यसाधक और समाजसेवी*

यह जानकर परम प्रमोद का अनुभव कर रहा हूँ कि निरन्तर पुरुषार्थ के बल से प्रगति–शिखर पर आरोहण करने वाले डॉ. शेखरचन्द्र जैन के अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। डॉ. जैन की जैन विद्वानों में एक अलग पहिचान है। लाग–लपेट से दूर स्पष्टवादिता उनका मौलिक गुण है, जो प्रायः अन्यत्र दुर्लभ सा ही दृष्टिगोचर होने लगा है। एक आदर्श शिक्षक के रूप में प्राथमिक कक्षाओं के सुकोमल मति बालकों से लेकर अनुसंधान के तर्क–वितर्क से कर्कश प्रौढ़ छात्रों में भी उनकी अतुलनीय प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सृजन राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं समृद्ध प्रान्तीय भाषा गुजराती को अनुपम भावराशियों का अनुकरणीय उपहार प्रदान करने में समर्थ रहा है। उपन्यास लेखन के क्षेत्र में उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है तो कहानी लेखन में वे एक उपदेष्टा के रूप में दृष्टिगत होते हैं। शोध–ग्रन्थ एवं समीक्षा लेखन में उनका आलोचक पक्ष निर्भय होकर समाज की सही स्थिति प्रस्तुत करता है। एक अच्छे सम्पादक के गुण देखना है तो डॉ. जैन द्वारा सम्पादित 'तीर्थंकर वाणी' मासिक को देखा जाता है। इसमें जहाँ एक ओर गुरुभक्ति है, तो दूसरी ओर उनके शिथिलाचार–अनाचार पर घातक प्रहार भी हैं।

सामाजिक सेवा के क्षेत्र में डॉ. जैन कुशल नेता हैं। पिछले २५ वर्ष से मुझे उनका आशीर्वाद, निर्देश एवं परामर्श प्राप्त होता रहा है। उनके अनुकरण से मुझमें स्पष्टवादिता, निर्भयता और आगमनिष्ठा दृढतर हुई है। पुरस्कार पाकर भी वे पुरस्कार प्रदाता संस्थान के गुलाम नहीं बनते हैं, अपितु उसकी कमियों को दूर करके उसके विकास की भावना भाते हैं।

अग्रज डॉ. शेखरचन्द्र जैन के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर मैं भावना भाता हूँ कि वे स्वस्थ एवं चिरायु रहें तथा देश, समाज एवं धर्म की और अधिक निष्पक्ष भाव से सेवा करते रहें। उनके प्रति मेरे विनम्र प्रमाण स्वीकारें।

श्री जयकुमार जैन

वरिष्ठ उपाध्यक्ष– शास्त्रि परिषद, मुजफ्फरनगर

■ *बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, समन्वयवादी व्यक्तित्व*

आज समन्वयात्मक दृष्टि सम्पन्न कुशल लेखकों एवं निर्भीक प्रवचनकारों का अभाव सा होता जा रहा है, किन्तु यह देखकर गौरवकी अनुभूति होती है कि मूलतः शिक्षक किन्तु वर्तमान में पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी यश पताका फहराने वाले डॉ. शेखरचन्द्र जैन अहमदाबाद में उक्त तीनों गुण समाहित हैं।

मानव मात्र के प्रति असीम स्नेह रखने वाले डॉ. साहब जितने दिगम्बरों में लोकप्रिय है उससे कहीं अधिक श्वेताम्बरों में। इतना ही क्यों, वे जैनेतर बन्धुओं में भी अपनी साहित्यिक अभिरूचि तथा बेबाक प्रस्तुति के लिये लोकप्रिय हैं। आपको देश के प्रतिष्ठित गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार 2005 से सम्मानित किया जाना तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु लगातार अनेक वर्षों से अमिरिका, कनाडा आदि देशों में जाकर वहाँ के ज्ञान पिपासु बन्धुओं को पर्यूषण पर्व के 18 दिनों में (8 श्वेताम्बर एवं 10 दिगम्बर)ज्ञानामृत का पान कराना आपकी महती धर्म सेवा है। आपके इन सतत् प्रयासों से प्रवासी जैन बंधुओं में धर्म के प्रति अभिरूचि बढ़ी तथा जैनधर्म के मूल सिद्धांतो अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकान्त को वह बेहतर तरीके से समझ सकें हैं। विदेशों में रहनेवाले जैन बन्धु सम्प्रदायजगत रूढ़ियों से उपर उठकर धर्म के रहस्य एवं जैन जीवन शैली को समझने लगे हैं। आपका मिशन समन्वय ध्यान साधना ट्रस्ट के माध्यम से निरन्तर प्रगति कर रहा है। ऐसे अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न विद्वान का अभिनन्दन निश्चय ही श्लाघनीय है। मैं इस प्रशस्त निर्णय हेतु अभिनन्दन समारोह समिति के सभी सदस्यों को साधुवाद देता हूँ तथा स्वयं अपनी ओर से तथा तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की ओर से डॉ. शेखरचन्दजी के स्वस्थ, सुदीर्घ एवं यशस्वी जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

डॉ. अनुपम जैन, महामंत्री *(इन्दौर)*

■ *औषधि दान के समर्थक*

जैन परम्परा में चार प्रकार के दान कहे गए है– औषधि, शास्त्र, अभय एवं आहार। प्रायः सरस्वती पुत्र शास्त्र या ज्ञान दान तो देते है लेकिन डॉ. शेखरजी औषधि दान के रूप में चिकित्सालय का संचालन कर विशेष पुण्य का बन्ध कर रहे हैं।

सम्पादक के रूपमें आप निर्भीक पत्रकार के पक्ष में भी आप भूमिका निभा रहे है। संगोष्ठियों में राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मलित होकर जैनधर्म की प्रभावना कर रहे हैं। जैन समाज की एक में आपका योगदान महत्वपूर्ण है। गुजरात प्रान्त में दिगम्बर जैन विद्वान के रूप में आप प्रतिनिधि विद्वान हैं।

डॉ. शेखरजी के अभिनन्दन के अवसर में उनकी शतायु की कामना करता हूँ।

डॉ. विजयकुमार जैन

सम्पादक - श्रुतसंवर्धनी, लखनऊ

■ *स्पष्टवादिता एवं सरलता के प्रतीक*

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भाई डॉ. शेखरचन्द्र जैन अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है। इस अवसर पर मेरी ओर से बहुत–बहुत शुभ कामनाएँ।

मेरी उनसे दो बार मुलाकात हुई। पहली बार माँ कौशल के ऋषभांचल में विद्वानों की गोष्ठी मे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गोष्ठी के बाद मेरे साथ मेरे दिल्ली निवास स्थान पर भी आये और दो दिन रुके। जिस

बात से मैं उनसे प्रभावित हुआ, वह थी उनकी स्पष्टवादिता और सरलता। दूसरी बार मेरा उनसे मिलना हुआ जुलाई–२००५ में अमरीका के सान्ताक्लारा शहर में हुए जैन एसोसिएशन आफ नार्थ अमरीका (जैना) के सम्मेलन में, जहाँ उन्होंने और मैंने जैन धर्म पर प्रवचन किए थे।

अन्त में फिर मेरी ओर से बहुत शुभ कामनाएँ।

डॉ. जगदीशप्रसाद जैन 'साधक'

अध्यक्ष–जैन मिशन, नई दिल्ली

❋ *बुन्देल भूमि के गौरव*

बुन्देल भूमि को वर्तमान में भारत एवं भारतोत्तर देशों के अनेक क्षेत्रों में कार्यरत जैन विद्वानों एवं व्यवसायियों की जननी होने का गौरव प्राप्त है। आदरणीय डॉ. शेखरजी इसी क्षेत्र की एक विभूति हैं। साधारण परिवार में जन्मे उन्होंने अपने अथक परिश्रम एवं निष्ठा से उच्चतर अध्ययन किया और अध्यापन, विविधपूर्ण लेखन, शोध एवं शोधकरों को मार्गदर्शन, संस्था–प्रबंधन, प्रवचन एवं मंत्र ध्यान आदि क्षेत्रों में असाधारणता प्राप्त की है।

मैं उनसे अनेक वर्षों से परिचित हूँ। उन्होंने मेरे अनेक कार्यों में सहयोग दिया है। मैंने उनका आतिथ्य भी पाया है. उनकी एक लोकप्रिय पुस्तक का मैंने अंग्रेजी अनुवाद भी किया है। इन सभी अवसरों पर मुझे उनकी सरलता एवं सहजता ने मोहित किया है। उनके इस स्वभाव ने उनकी क्रियाशीलता को बहु–आयामी बनाया है। इससे उन्हें देश–विदेश के धार्मिक एवं सामाजिक नेतृत्व एवं साधु–संतों का आशीर्वाद एवं सहयोग मिला है। तीर्थंकर वाणी, आशापुरा मां जैन हास्पिटल एवं अनेक संस्थाओं का पदाधिकारित्व एवं मार्गदर्शन इसी का परिणाम है। स्पष्ट वक्ता होने से उनकी प्रभाविता में चार चांद लग गये हैं। मैं कामना करता हूं कि वे दीर्घजीवी होकर धर्म और समाज की सेवा करते रहें। बुन्देल भूमि ऐसे ही व्यक्तियों से गौरवान्वित होती रही है।

डॉ. नंदलाल जैन *(रीवा)*

❋ *कर्मठ विद्वान एवं निष्काम सेवक*

जिनवाणी के संदेश को जन–जन तक पहुँचाना महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य है। अध्ययन और स्वाध्याय द्वारा आगम ज्ञान को अर्जित कर कुछ विद्वान इस कार्य को गति दे रहे हैं तो कुछ पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से अपने और प्रबुद्ध चिंतकों के विचार पाठकों तक पहुँचा रहे हैं। डॉ. शेखरचन्द्र जैन ऐसी दोहरी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। आप आगम ज्ञान को भारत में ही नहीं विदेशों में भी प्रचारित–प्रसारित कर रहे हैं और 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका के संपादक के रूप में अपने प्रखर विचारों से जैन समाज को जागरूप बनाने और उन्हें धर्म–प्रभावना के लिए प्रेरित करने का सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

पिछले सात–आठ वर्षों से परम पूज्य आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव द्वारा आयोजित संगोष्ठियों व अन्य कार्यक्रमों में मेरा आपसे गहन सम्पर्क हुआ। 'जैना' संस्थान के वर्ष 2005 के स्वर्ण जयंति अधिवेशन में केलिफोर्निया में भी आपके साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ। आपकी प्रतिभा, निष्ठा, समर्पण और उत्साह से जिनवाणी की महती सेवा देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती है। समन्वय ध्यान साधना केन्द्र अहमदाबाद के माध्यम से निर्धन असहाय पीड़ितो को स्वास्थ्य लाभ पहुँचाना आपकी निष्काम सेवा भावना का अनुकरणीय उदाहरण है।

जिन शासन के ऐसे कर्मठ, विद्वान और निष्काम सेवक का अभिनंदन करना हमारा कर्तव्य है। अभिनंदन

समिति को यह कार्य सम्पादित करने के लिए साधुवाद। भाईश्री शेखरचन्द्रजी को शुभकामनाएं अर्पित करते हुए आशा करता हूँ कि आपकी सेवाओं का लाभ हमें लम्बे समय तक प्राप्त होता रहेगा और आप द्विगुणित उत्साह से समाज को धार्मिक प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे।

डॉ. नारायणलाल कछारा *(उदयपुर)*

संयोजन कला के सिद्धहस्त प्रखत मनीषी

हमें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि डॉ. शेखरचन्द्र जैन की सामाजिक सेवाओं के उपलक्ष्य में अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है।

मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय लगभग 3 दशकों से रहा है। वे जैन सांस्कृतिक जागरण के प्रमुख अग्रदूत हैं। एकान्तवाद की आंधी के ग्रस्त लोगों को अनेकान्त पथ पर अग्रसर करने में उनकी महती भूमिका है। उनकी पत्रकारिता में समन्वय शीलता विद्यमान है। वे सांस्कृतिक एकता के प्रबल पक्षधर हैं। अनेक भाषाओं के मर्मज्ञ मनीषी हैं। अंतर्राष्ट्रीय जगत में जैन–धर्म दर्शन के व्यापक स्वरूप के प्रचार–प्रसार में उनकी उल्लेखनीय भूमिका है। परम पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर महाराज के 2004 में सूरत चातुर्मास प्रवास के समय श्रावकाचार संग्रह अनुशीलन राष्ट्रीय संगोष्ठी में उनके साथ संयोजन करने का सुखद अवसर रहा। उस समय उनकी संयोजन कला से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। वाणी और लेखनी का विलक्षण संगम आपके व्यक्तित्व की विरल विशेषता है। सामाजिक सेवा की प्रबल भावना से ओतप्रेत होकर निःस्वार्थ भावना से जन–जन को औषधि दान देकर योगक्षेम की अभिवृद्धि में निरन्तर संलग्न है। वस्तुतः डॉ. शेखरचन्द्र जैन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहु आयामी है। मैं इस सुखद उपक्रम के मंगलिक प्रसंग पर उनके यशस्वी एवं दीर्घ जीवन की मंगलकामना करता हूँ।

डॉ. अशोककुमार जैन *(लाडनूं)*

संघर्षों से शिखर तक पहुँचने वाला व्यक्तित्व

जिनवाणी के आराधक मनीषी डॉ. शेखरचन्द जैनजी का जन्म साधारण परिवार में हुआ। आपने विपरीत परिस्थितियों में भी अहमदाबाद में रहकर उच्च शिक्षा तक अध्ययन किया। आपने मुख्यतः अध्ययन कार्य को ही अपना कर हजारों शिष्यों को पढ़ाया तथा विभागाध्यक्ष पद पर रहते हुए अनेक शोधार्थियों तथा साधु–साध्वियों को शोध उपाधि प्राप्त कराई।

आप हिन्दी, अंग्रेजी तथा गुजराती आदि भाषाओं पर पूरा अधिकार रखते हैं। शताधिक शोधपत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं। अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आपके कुशल संपादन में ''तीर्थंकर वाणी'' (तीनों भाषाओं में) मासिक पत्रिका का प्रकाशन निरन्तर पन्द्रह वर्षों से करते हुए उसमें पाठशाला के माध्यम से, सरल–सुबोध शैली से देश–विदेश के बच्चों–बच्चों तक कठिन से कठिन बातों (सिद्धान्तों) को सहज ही ज्ञान कराये रहते हैं। सहजानन्दवर्णी की पाँच पुस्तकों का हिन्दी से गुजराती में अनुवाद भी आपने किया है। आपने कई ज्वलंत मुद्दों पर निर्भीकता से कलम चलाई है।

आपने विदेश भूमि पर अनेकों बार यात्राएं करते हुए प्रवचन वा ध्यान के माध्यम से प्रभावी ढंग से जिनवाणी का प्रचार–प्रसार किया है / कर रहे हैं। आपका (समय–समय) अनेक विशिष्ट पुरस्कारों से बहुमान किया जा चुका है। आप विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष रह चुके है। वर्तमान में भारत जैन महामण्डल गुजरात के उपाध्यक्ष पद

पर हैं। आप व्यसनमुक्ति का आन्दोलन चलाकर लाभान्वित कर रहे हैं। आप मुनिभक्त तथा आर्ष परम्परा के पारंगत विद्वान् हैं। आपको अपनी शुद्ध बुन्देली बोली बहुत पसंद है। आप अपने देशी अंदाज के साथ जड़ों (मूल) से सम्पर्क रखते हुए व्यापक दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विद्वान हैं।

अखिल भारतीय सम्पूर्ण जैन समाज (सभी सम्प्रदायों) द्वारा आपका अभिनन्दन समारोह आपके व्यक्तित्व की व्यापकता को दर्शाता है। दीर्घायु एवं सुयश की शुभकामनाओं सहित हम आपका अभिनन्दन करते हैं।

डॉ. श्रीमती मुन्नी पुष्पा जैन *(वाराणसी, बनारस)*

उपरोक्त शुभेच्छा का ब्राह्मी लिपि में अनुवाद

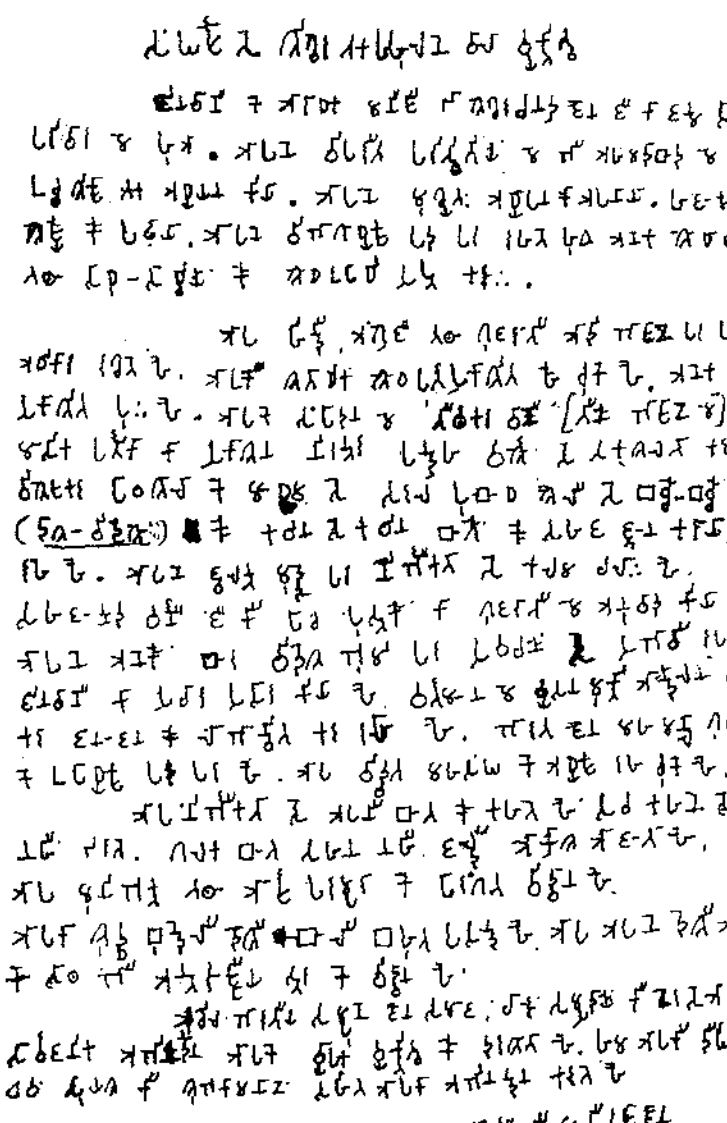

नारी जागरण के प्रेरणा–स्त्रोत

जैन जगत् के लब्ध प्रतिष्ठ मनीषी डॉ. शेखरचन्द्र जैन के अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशन का वृत्त जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। उनके नाम से तो कई वर्षों से परिचित थी परन्तु परमपूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के सान्निध्य में आयोजित श्रावकाचार संग्रह अनुशीलन राष्ट्रीय संगोष्ठी में आपसे प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त हुआ। वे संयोजन कला के निष्णात मनीषी हैं। जैन साहित्य चेतना हेतु महिलाओं को सतत् मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देकर उनको आगे बढाने में डॉ. जैन की उल्लेखनीय भूमिका है।

अभिनन्दन के इस पावन प्रसंग पर में उनके उज्ज्वल सुखद भविष्य हेतु मंगलकामना करती हूँ।

श्रीमती क्रान्ति जैन *(लाडनूँ)*

समाजसेवक और समताभावी पत्रकार

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि डॉ. शेखरचन्द्र जैन का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। यह गुजरात राज्य में संभवतः यह पहला अवसर है जब किसी दिगम्बर जैन विद्वान का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस कार्य के लिए मैं आयोजकों को धन्यवाद देना चाहता हूँ क्योंकि यह गुजरात के समस्त विद्वानों का सम्मान है।

यूँ तो डॉ. जैन के विविध कार्य कलापों पर नजर डालें तो उन्हें राज्य विशेष की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। प्रारम्भ में ये गुजरात राज्य में हिन्दी साहित्य जगत से जुड़े रहे तथा हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार में अपना अमूल्य योगदान दिया। कालान्तर में आप जैन समाज व धर्म की सेवा के कार्यों के लिए समर्पित हो गये। आपने 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल' की स्थापना की तथा उसी के साथ 'तीर्थंकर वाणी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पिछले आठ वर्षों में अस्पताल में बहुत विकास हुआ है तथा १४ वर्षों में पत्रिका ने भी जैन समाज में अपनी एक पहिचान बनाई है। इस सबके लिए डॉ. जैन का समर्पण ही रहा है।

डॉ. जैन वर्षों से पर्यूषण के दिनों में विदेशों में जाते हैं तथा धर्म प्रचार करते हैं। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों समाजों में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है, इसी कारण विदेशों में भी दोनों सम्प्रदायों के अनुयायियों के मध्य अपने विचार रख पाते हैं।

डॉ. जैन जैन–समाज के एक जाने–माने विद्वान व लेखक हैं। ये 'श्री ऋषभदेव विद्वत् महासंघ' के राष्ट्रीय अध्यक्ष पद को भी सुशोभित कर चुके हैं। इनकी विद्वता के कारण इन्हें अनेक पुरस्कारों द्वारा अनेकबार सम्मानित किया जा चुका है।

आगे आने वाले वर्षों में डॉ. जैन सपरिवार स्वस्थ व प्रसन्नचित्त रहें, समाज व धर्म की सेवा करते रहें, ऐसी भावना के साथ में उनका हृदय से हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

डॉ. अनिलकुमार जैन *(अहमदाबाद)*

अभिनंदनीय व्यक्तित्व

श्रीमान् डॉ. शेखरचन्द्रजी स्पष्ट निर्विवाद एवं कर्मठ व्यक्तित्व के धनी हैं। आपने सिद्धान्त नीति एवं स्वाभिमान को आधार बना कर अपने जीवन एवं कार्यशैली को सुरभित किया है। आपके वक्तव्य में स्पष्टवादिता, निष्पक्षता एवं हास्य का समावेश होता है। आपने निर्भीकता से विपरीत परिस्थितियों में भी सूझ–बूझ से जैनदर्शन आगम आदि के संरक्षण में महती भूमिका का निर्वाह किया है। जिस प्रकार आपका वाणी कौशल प्रभावक है। उसी

प्रकार आपकी लेखनी भी नुकीली, चुटीली एवं प्रेरक है। आपके द्वारा सम्पादित 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादकीय लेखों का अपना एक विशेष आकर्षण रहता है, बड़ी से बड़ी बात को, विकृति को शिथिलाचार के विरोध को सरल ढंग से लिखने की आपमें अनुपम कला है। आपने अपने जीवन को, जैन धर्म, आगम और सिद्धान्त के प्रचार–प्रसार में लगाकर अपने आपको अभिनन्दनीय बना लिया है। अभिनंदन की इस मधुरबेला पर हम आपके दीर्घ स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए आपका अभिनंदन करते हैं।

पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन
संयुक्त मंत्री– अ.भा. शास्त्रि परिषद

मंगल भावना

श्री डॉ. शेखरचन्द्र जी सा. से मेरा प्रथम परिचय लगभग आज से १५–२० वर्ष पहले दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अधिवेशन में अहमदाबाद में हुआ था। आपके प्रथम मिलन में ही जिस आत्मीयता की छाप मेरे ऊपर पड़ी वह अमिट है। सामने वाले के ऊपर अपनी वार्ता से प्रभाव डालना आपकी विशेषता हैं। आपका प्रारम्भिक जीवन सामान्य रहा है किन्तु पूनम की चांद की तरह यह विकसित और प्रकाशित होता रहा। डॉ. शेखर सा. की एक विशेषता है जो पं. वर्ग में बहुत कम पाई जाती है वह है अपनी कमाई का कुछ अंश दान में देना। आपने भी एक फंड कायम किया है। जिसके आधार पर समाज के गरीब, निर्धन, असहाय छात्रों को अध्ययन में सहयोग मिलेगा निश्चित ही यह सराहनीय कदम है मैंने इनके प्रवचनों और व्याख्यानों में एक कला और परिलक्षित की है कि अपनी क्षमता औ दवंगता के कारण सभा पर व अन्य विद्वानों पर छा जाते हैं। इनके इस सम्मान के समय इनके उत्तरोत्तर यशस्वी सम्मानस्पद बनने की शुभ मंगल कामना व सम्मानजंलि अर्पित है।

श्री वैद्य धर्मचन्द्र जैन *(इन्दौर)*

शुभकामना संदेश

विख्यात साहित्यकार डॉ. बनारसी दात चतुर्वेदी प्रायः कहा करते थे कि हर व्यक्ति, चाहे श्रीमान हो, धीमान् अथवा उच्च पदस्थ अधिकारी हो या सामान्य कर्मचारी में कुछ न कुछ गुण अवश्य होते हैं। किसी भी व्यक्तित्व में छिपे उन गुणों का प्रचार और प्रकाशन होना चाहिए। हमारे मनीषियों ने भी हमेशा 'गुण ग्रहण का भाव रहे नित' की ही प्रेरणा दी है।

डॉ. शेखरजी ने अपने जीवनकाल में छोटी उम्र में ही शैक्षणिक क्षेत्र में प्रवेशकर व्याख्याता, प्राध्यापक, विबागाध्यक्ष एवं प्राचार्य पद पर कार्य कर जैन विद्यालयों में गृहपति के रूप में रहकर विद्यार्थियों में धर्म के संस्कारों से सिंचित किया है। आपने हिन्दी साहित्य एवं जैन साहित्य, शोध ग्रन्थ में लेखन कार्य करके साहित्य जगत में अमूल्य सेवा प्रदान की।

गत 15 वर्षों से 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादक के रूप में एक निडर सम्पादक के रूप में उभर रहे हैं, तो श्री आशापुरा मां जैन अस्पताल की स्थापना करके सामाजिक प्रवृत्ति में अमूल्य योगदान प्रदान किया है।

श्रेष्ट लेखन कार्य, सामाजिक सेवा एवं धार्मिक प्रवृत्तियों को मद्देनजर रखते हुए कई उपाधियों से सम्मानित किये गये हैं।

मैं भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना करता हूँ कि डॉ. श्री शेखरचन्द्रजी दीर्घायु हों। शिक्षा, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जो योगदान दे रहे हैं वो सदैव निभाते रहें।

श्री ज्ञानमल शाह *(अहमदाबाद)*

■ *समन्वयात्मक दृष्टि के विश्वविख्यात विद्वान*

अभिनन्दन समिति ने आप जैसे विश्व विख्यात, सत्यनिष्ठ प्राध्यापक, समाज एवं जैन संस्कृति के संरक्षक तथा सम्पादक के गरिमामय पद रूप में पाकर जो समारोह एवं ग्रंथ प्रकाशन का निर्णय किया है वह सभी के लिए हार्दिक उल्लास एवं प्रसन्नता की बात है।

प्रायः सभी दिशाओं में उच्चतम पहुँच के साथ ही आपकी समन्वयात्मक दृष्टि हमें यही पाठ सिखाती है–

सत्य स्वयं की है जो कसौटी, नहीं चाहती अन्य परस को।
स्वर्ण शुद्धतम से भी शुद्धतर, नहीं मांजना अतिकर उसको॥

इस शुभ अवसर पर अपने मंतस्तः से स्नेहरंजित एवं भावभीनी शुभकामनाएँ भेज रहा हूँ कि आप शतायु से भी अधिक आयु, स्वास्थ्य एवं समृद्धि की चरम सीमा पार करें।

डॉ. एल.सी. जैन *(जबलपुर)*

■ *प्रबुद्ध एवं यशस्वी पुरूष*

आप देश के प्रबुद्ध एवं यशस्वी पुरूष हैं आपने अपनी कर्त्तव्य भावना, सेवानिष्ठा एवं अवदान से न केवल अपनी भूमि को ही वरन् पूरे भारत देश के विद्वानों का गौरव बढ़ाया है।

आपका स्वभाव सरल एवं व्यक्तित्व गुणों से भरपूर है। जैन समाज को आपको सामाजिक एवं धार्मिक सेवाएँ विगत कई वर्षों से प्राप्त हो रही हैं। आप अपने व्यस्त जीवन में से सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में अग्रगण्य रहते हुए अपनी महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। आपकी उल्लेखनीय सेवाओं एवं जैन धर्म के शाश्वत सिद्धांतों का पालन करने के उपलक्ष्य में सन् 2005 का गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के पुरस्कार से नवाजा जा चुका है।

आप सरल स्वभाव के प्रज्ञापुरूष है। आपका मानस मैत्री, सहानुभूति और दया से ओतप्रोत है।

सकल जैन समाज को आपके सृजनशील रचनात्मक कार्यों पर गर्व है। आप समाज के आन, बान और शान हैं। आपने जिनशासन की प्रसन्नता में चार चाँद लगाए हैं। आप दीर्घायु, स्वस्थ एवं सुखी रहें, इसी मंगलभावना के साथ मैं एवं मेरी पत्नि डॉ. जयंती जैन आपको हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहे हैं।

प्रो. विमलकुमार जैन एवं डॉ. जयंती जैन *(सागर)*

■ *बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी*

प्रवचनमणि, वाणी भूषण, विद्यावारिधि, गुजरात के महामहिम राज्यपाल द्वारा अभिनंदित, जैन धर्म दर्शन के प्रकांड विद्वान, लेखक, समीक्षक कुशल संपादक, कर्मठ समाजसेवी, देश–विदेश में ख्याति प्राप्त, स्पष्ट वक्ता, डॉ. शेखरचंद जैन के अभिनंदन ग्रंथ के प्रकाशन का निर्णय प्रशंसनीय है।

'णमोकार मंत्र ध्यान शिविर' जैन धर्म के विद्वान एवं प्रवचनकार द्वारा सफल प्रयोग कर उन्होंने पर्यूषण प्रवचन एवं दशलक्षण धर्म साधना को नई दिशा दी है।

जैन धर्म का प्रचार जैन–जैनेतर तक पहुंचे, धर्मसेवा का माध्यम बने– इस उद्देश्य से आपने समन्वय ध्यान साधना केन्द्र की स्थापना की। इसमें सभी धर्मों और वर्गों का सहयोग लेकर एक सर्व सुविधायुक्त चिकित्सा केन्द्र जिसमें एक छत के नीचे विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की स्थापना कर रोगियों को एक अनूठी इलाज की सुविधा उपलब्ध कराई है।

आपने जैन धर्म के विभिन्न संप्रदायों को अपनी सेवायें प्रदान कर एवं समाज सेवा कार्यो में विभिन्न धर्मानुयायी को जोड़कर समन्वय की एक अनोखी, अनुकरणीय एवं स्तुत्य मिसाल कायम की है।

मैं डॉ. शेखरचंदजी के स्वस्थ, सुदीर्घ जीवन एवं सुयश की कामना करता हूँ।

डॉ. जीवनलाल जैन *(सागर)*

अध्यक्ष– अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद, म.प्र.

ओजस्वी वाणी के धनी

आ. डॉ. शेखरचन्द्र जैन जैन जगत के प्रसिद्ध विद्वान, तत्वचिंतक, प्रखर वक्ता हैं। देश–विदेश में जैन धर्म की पताका फहराने वाले डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन अनेक भाषाविद हैं। अपनी ओजस्वी वाणी से किसी भी बात को दो टूक रूप से प्रस्तुत करना आपकी महती विशेषता है। आपके द्वारा संपादित तीर्थंकर वाणी विविध प्रसंगों को प्रस्तुत कर साहित्य जगत में अपनी एक विशेष स्थान रखती है। आप उत्तरोत्तर यशस्वी जीवन को प्राप्त करें।

डॉ. सरोज जैन *(बीना)*

જૈન ધર્મના મર્મજ્ઞ

ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન અભિનંદન ગ્રંથ 'સ્મૃતિયોં કે વાતાયન સે'નું પ્રકાશન થઈ રહ્યું છે તે જાણીને આનંદ થયો.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન સાચા અર્થમાં મર્મજ્ઞ છે. કોઈપણ વ્યક્તિ, વસ્તુ કે વિચારનું તટસ્થ ભાવે અવલોકન કરવાની તેમની આગવી સૂઝ છે. ક્યારેક કડવું સત્ય ઉચ્ચારીને, ક્યારેક વ્યંગ્ય-વિનોદ કરીને તો ક્યારેક મૌન રહીને ય એમણે પોતાનો અભિપ્રાય વ્યક્ત કર્યો છે. તેઓ જિજ્ઞાસુ અને અભ્યાસુ છે.

આ બધાથી ય વિશેષ વાત તો એ છે કે ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન મૈત્રીના માણસ છે. પારદર્શક મૈત્રી માણસની માણસ તરીકેની ઓળખ હોય છે.

તેમના અભિવાદન પ્રસંગે પ્રસન્નતા અને દિલની શુભેચ્છાઓ પાઠવું છું.

રોહિત શાહ *(અમદાવાદ)*

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि

જૈન સાહેબના જીવન વિશે જેટલું કહીએ તેટલું ઓછું છે. ગુજરાત વિદ્યાપીઠ, આંતરરાષ્ટ્રીય જૈન વિદ્યા અધ્યયન કેન્દ્રમાં ટૂંક સમય માટે જ અધ્યાપક તરીકે સેવા આપી તે દરમ્યાન તેમના ઉમદા સ્વભાવનો પરિચય થયો.

જૈન સાહેબનો સ્વભાવ ગુસ્સાવાળો છતાં સહજ, સરળ અને લાગણીશીલ, કોઈ ભેદ-ભાવ કે દુરાગ્રહ વગરનો, તેમનામાં વ્યાખ્યાનકાર જેવી વિવેચનશૈલી, સિદ્ધાંતકાર જેવી દૃઢતા અને સાહિત્યકાર જેવી સંવેદનશીલતા જોવા મળે છે વસ્તુતઃ તે-

''वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।''

પ્રકાણ્ડ પાણ્ડિત્ય અને સારસ્વત પ્રતિષ્ઠા ઉપરાંત અત્યંત પ્રેમાળ છે. તે જ્યાં જાય ત્યાં પોતાના પ્રશંસકો, વિદ્યાર્થીઓની સાથે સમાન રૂપથી આત્મીય વ્યવહાર કરે છે. પોતાના જ્ઞાનાનુભવનો લાભ બધાને સમાન રૂપથી આપતા રહે છે.

એમણે અધ્યયન-અધ્યાપનના માધ્યમથી સમાજની સાથે સાથે સ્વયંને પણ આચાર-સંહિતાના પથમાં

ઢાળ્યું છે. નિરભિમાની, તત્ત્વચિંતક અને મોટા આત્મ-સાધક છે. જૈન દર્શનના મર્મજ્ઞ અને જૈન આચારના આદર્શ પથિક છે.

ડૉ. શોભના આર. શાહ *(અમદાવાદ)*

■ સાંપ્રદાયિક સંકીર્ણતાથી પર વ્યક્તિત્વ

ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન જૈન દર્શનના ઉચ્ચકોટિના વિદ્વાન, સરસ્વતીના સાધક અને પ્રભાવશાળી પ્રવચનકાર છે. સ્વયં એક વિશેષ સંપ્રદાયના હોવા છતાં હમેશા સાંપ્રદાયિક સંકીર્ણતાથી પર રહ્યા છે. ભગવાન મહાવીર સ્વામીના અનેકાંતવાદને એમણે પચાવ્યો છે. વિદ્વત્તાના શિખરે બિરાજતા ડૉ. શેખરચંદ્ર બહુમુખી પ્રતિભા ધરાવે છે. વ્યક્તિ તરીકે સરળ, નમ્ર અને મિલનસાર ડૉ.શેખરચંદ્ર મળવા જેવા, વાંચવા જેવા અને સાંભળવા જેવા માણસ છે.

શ્રી રશ્મિભાઈ ઝવેરી *(મુંબઈ)*

■ तत्त्वजिज्ञासु

भारतीय फलक पर जैन दर्शन अंगे यशस्वी कार्य करनार सेवा संनिष्ठ अध्यापक, विद्वान, समाजसेवी अने संस्कृति विचारक डॉ. शेखरचंद्र जैनना कार्यथी सौ परिचित छे. तेओओ जैन समाजनी एकता माटे संप्रदाय भेदथी दूर रही निरंतर लेखन द्वारा सेवा करी छे. आंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त तेओओ अनेक सामाजिक कार्यो कर्या छे.

भावनगरमां भारत जैन महामंडळना निमित्ते प्रथम परिचय थयो हतो त्यारबाद अमदावादमां तेमनी साथे स्नेहसंबंध स्थपायो. तेमनी यशगाथा देश-परदेशमां अजवाळां पाथरती रही छे. तेओ मानवमूल्योने निरंतर पोतानी सेवाथी उच्चस्तरे लई गया छे. आ अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशन समये शब्दो पण ओछा पडे. हुं तो प्रभुने प्रार्थना करुं के तेओ सतत साहित्य क्षेत्रमां, धर्मक्षेत्रमां यशस्वी बने.

डॉ. मनहरभाई शाह
तंत्री 'अंतरधारा' अमदावाद

■ एक कर्मपुरुष की धर्मयात्रा

सुदूर वीरभूमि मध्यप्रदेश से संतों की, धीमंतों की एवं श्रीमंतों की धरती अहमदाबाद में आकर डॉ. श्री शेखरचन्द्र जैन ने अपनी कर्मयात्रा आरंभ की। दो संस्कृतियों के सुगम संयोग ने उन्हें धर्मयात्रा की प्रेरणा दी। अपनी कर्तव्य निष्ठा को धर्मनिष्ठा में तबदील कर दिया।

श्री शेखरचन्द्र जैन ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को कुरुक्षेत्रीय धर्मयुद्ध समझकर अपने आपको सफल सिद्ध किया। एक सखा के रूप में, प्राथमिक शाला से विश्वविद्यालय तक शिक्षक के रूप में, महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में, प्रशासक के रूप में, धर्म प्रचारक के रूपमें, उनकी यात्रा एक सम्पूर्ण जीवन का इतिहास बन गई। प्रत्येक क्षण को प्रेम प्लावित बनाने के आयास में वह स्वयं प्रेम स्वरूप हो गये। जैन धर्म के अनुरूप जीवन जीने और धर्म का प्रचार करने के प्रयास में वह स्वयं एक पाठशाला बन गये।

क्या भुलूं, क्या याद करुँ? स्मृतियों के वातायन आयतन बन सामने खड़े हो गये हैं। एक लंबी स्मृति सूची है। पुरा ग्रंथ चाहिये। अभिनंदन समिति और जैन समाज इस पुनीत कार्य के लिये अभिनन्दन सह अभिवादन के पात्र है।

हम डॉ. शेखरचन्द्र जैन की निरामय, उद्देश्य पूर्ण चिरायु की कामना करते हैं।

सर्वेन्द्रमणि त्रिपाठी *(मै.ट्र. श्री कमलामणी एज्युकेशन ट्रस्ट)*

जनसेवक

डॉक्टर साहब आपने ओढ़व, अहमदाबाद में जो अस्पताल का प्रारंभ किया और आप गरीब, मध्यमवर्ग के लोगों की जो सेवा कर रहे हैं, उसके लिए हमारी शुभकामनायें है। इसी प्रकार आपकी उन्नति हों और आप लोगों की सेवा करते रहे। आप इस अस्पताल को और भी उन्नतिशील बनायें इन भावनाओं के साथ आपके प्रति मैं अपनी शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ।

गोपालदास भोजवाणी
पूर्व विधायक, अहमदाबाद

एक सफल संशोधक

विश्व की धरती पर हर क्षण लाखों लोग जन्म लेते हैं, और अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। ऐसे जीवन लाभ में न तो कोई ध्येय होता है न कोई नवीनता और न ही कोई प्राप्ति। बहुत कम जीव ऐसी विशेषताओं को लेकर जन्मते हैं जो पूर्णतः समर्पित होकर समाज, देश और विश्व को बहुत कुछ देकर अपना विशेष परिचय बनाते हैं।

आदरणीय श्री शेखरचन्द्र जैन का व्यक्तित्व ऐसा ही महामूल्यवान है। जैनधर्म के प्रचार एवं प्रसार के साथ–साथ उन्होंने कई संशोधन भी किये हैं जो समाज में आनेवाली पीढ़ियों के लिए उत्तम व प्रेरक साबित होंगे। उनके इन प्रयत्नों और समर्पण की जितनी ही सराहना की जाय वह कम ही है।

आज के इस मंगल अवसर पर मैं स्वयं और अपने परिवार की ओर से उनके दीर्घ, निरामय एवं यशस्वी जीवन की कामना करती हूँ।

दिव्या रावल *(गाँधीनगर)*
अध्यक्षा–'अशी' एवं 'श्री प्रबोध रावल मेमोरीयल ट्रस्ट'

વિચક્ષણ વક્તા

બહુમુખી પ્રતિભા ધરાવતા ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન આંતરરાષ્ટ્રીય વક્તા છે. તેઓએ વિવિધ ક્ષેત્રોમાં સેવાઓ આપીને સમગ્ર જૈન અને જૈનેતર સમાજમાં એક આગવી પ્રતિષ્ઠા અને પ્રતિભા પ્રસ્થાપિત કરી છે.

ગુજરાત યુવક કેન્દ્ર દ્વારા આયોજિત પર્યુષણ વ્યાખ્યાન માળામાં વિવિધ વિષયોમાં

પોતાની લાક્ષણિક શૈલીમાં તલસ્પર્શી પ્રવચનો આપીને વ્યાખ્યાનમાળાને એક આગવી ઓળખ આપી છે.

ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન સન્માન સમિતિ દ્વારા જ્યારે ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈનનું અભિવાદન થવાનું છે, ત્યારે તેઓને મારી અંતરની શુભેચ્છાઓ અને શુભકામનાઓ પાઠવું છું. તેઓના દીર્ઘાયુષ સાથે તેઓની તંદુરસ્તી સારી જળવાઈ રહે અને તેઓના અધૂરાં રહેલાં નિર્ધારિત સમાજોપયોગી કાર્યો પ્રભુ પાર પાડે તેવી અભ્યર્થના.

પ્રમોદ શાહ

પ્રમુખ, ગુજરાત યુવક કેન્દ્ર, અમદાવાદ

Good Wishes for Our Beloved Colleague

We have great pleasure in recalling our experiences of working with Dr. Shekhar Jain. He joined Valia college in 1972 June and worked for quite a few years till he switched over to Ahmedabad for better prospects.

As a colleague the entire common room felt his warmth as he always made the whole environment light in his own way without hurting anybody. Indeed this was a great thing.

We often heard him with apt attention when he was discussing some important points pertaining to current situation of the country or sports or literature. He was always ready to help in any activity of the students' welfare. In fact he handled students' union for some years very successfully. His knack of handling students was superb. Within a short time we found him switching over to philosophy and various aspects of Jainism of the same time maintaining interest in Hindi literature. He was often invited by other institutions and colleges for lectures on Hindi literature, Jainism and current problems. His prestige spread over Gujarat and India and finally to U.S.A. where he delivered a number of lectures and brought credit to out country.

Personally we were close friends and he was always ready to help us. We missed him badly when he left Bhavnagar.

We wish him a long, healthy, prosperous and peaceful life.

Dr.I.M. Trivedi,
Former head of Dept. of Economics
Bhavnagar University

Dr. B. K. Oza
Former Vice Chancelor
Bhavnagar University

સ્મૃતિઓના ગર્ભથી....

અદ્‌ના મિત્ર, લેખક, આલોચક, વ્યાખ્યાતા અને પ્રાચાર્ય જેવાં અનેક નામાભિધાનથી અલંકૃત ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનનું વ્યક્તિત્વ અને કૃતિત્વ અજીબોગરીબ છે. સાધારણ પરિવારના આ પનોતા સપૂતનું સાંસ્કૃતિક અને સાહિત્યિક પ્રદાન ઉલ્લેખનીય તો છે જ સાથોસાથ ધર્મક્ષેત્રે તેઓનાં ચિંતન, મનન અને આત્મખોજ પણ એટલાં જ દીપ્તમાન છે. ભાષા, સમાજ અને ધર્મ તેઓને સંકુચિત દાયરામાં બાંધી શક્યા નથી. તેઓની બિનસાંપ્રદાયિક વિચારસરણીએ મારા જેવા અનેકને પ્રભાવિત કર્યા છે. લાંબા સમયનો તેમનો મારી સાથેનો સંપર્ક, સાથ અને સથવારો મારા પ્રત્યેકની તેઓની સદ્‌ભાવના છે. જીવન તો બધા જીવે છે પરંતુ 'રાગ'ને નહિ, 'રોગ'થી 'રોગી' ને મુક્ત કરે એ જ જીવન. શેખરચંદ્ર આવું જ જીવન જીવ્યા છે. તેઓએ ધર્મના, જાતિના, સમાજના, ભાષાના અને સરહદોના અંતરાયો દૂર કરી માનવતાનો સૂર

ફૂંક્યો છે. અદ્‌ના સેવક, કઠોર પરિશ્રમી, નિઃસ્વાર્થ ભાવસભર માનવીના કાર્યોના મૂલ્યાંકન સબબ 'અભિનંદન ગ્રંથ'નું પ્રકાશન સાંપ્રત યુગનું સ્તુત્ય ચરણ બની રહેશે. લાંબુ આયુષ્ય ભોગવી તેઓ સદ્‌કાર્યોને પ્રેરિત કરતા રહે એ જ અભ્યર્થના.....

ડૉ. અબ્દુલરશીદ એ. શેખ

પ્રાચાર્ય- શામળદાસ આર્ટ્સ કોલેજ, ભાવનગર

■ Devoted Personality

It is heartening to learn from your letter that Dr. Shekhar Chandra Jain is being honoured by the World Jain Society, and an Abhinandan Granth is to be brought out acknowledging the life long services of Dr. Jain to the Jain society in particular and the entire society in general. His 50 years incessant service as teacher from Primary school to Higher education : college teacher and Principal and then as a scholar of Jain Philosophy, preaching human values in the Jainism, is a remarkable and commendable work.

When we honour a person, we do not honour an individual, but we recognise with reverance his devotion to the area of his choice, his dedication to the work and his contribution to the society in particular and the country in general.

He lives his life with dignity as a good son, a succesful father, a friend in need and revered teacher and preacher.

I wish all the success to the praiseworthy efforts of Abhinandan Samiti.

I wish Dr. Shekhar Chandra Jain, a healthy and purposeful long life.

Dharma Vijay Pandit *(Ahmedabad)*

Secretary General, AIFTO

■ *शुभकामना*

अंतर–राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान, वक्ता एवं समाज सेवक डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन के सामाजिक, धार्मिक एवं शैक्षणिक कार्यों के लिये उनका अभिनंदन करके हम अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। अभिनंदन समिति का यह कार्य एक प्रशंसनीय कदम है। अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन तथा उनके जीवन–कवन तथा क्रिया कलापों का लेखा जोखा आनेवाली पीढ़ी का मार्गदर्शक बनेगा तथा उन्हें उनके आदर्शो पर चलने की प्रेरणा मिलेगी। इस अवसर मैं उनके कार्यों की सराहना करते हुये अभिनंदन समिति के प्रयासों सराहना करता हूँ। इन कार्यों की सफलता के लिये मेरी एवं मेरे परिवार की हार्दिक शुभकामनायें हैं।

सुखनंदकुमार जैन 'प्रशांत' *(अहमदाबाद)*

■ *शुभकामना*

आदरणीय डॉ. शेखरचन्द्र जैन जी, जो कि जैन जगत के जाने माने एवं प्रसिद्धि प्राप्त गणमान्य विद्वान हैं, आपने आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती माताजी के शिक्षण शिविरों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, आपकी ओजस्वी लेखनी द्वारा जैन समाज को अपार ज्ञान प्राप्त हुआ है। आशा है आप लम्बे समय तक दीर्घ जीवन के साथ यशस्वी पथ प्रदर्शक बनकर जैन समाज का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

श्री कैलाशचन्द्र जैन सर्राफ *(लखनऊ)*

■ *शेखर : शिखर–सिरमौर–सरस्वती*

मुझे उस समय प्रसन्नता हुई कि श्री शेखरचंद्रजी जैन का अभिनंदन ग्रंथ छपने जा रहा है। वर्षों से आपसे मिलने, चर्चा करने, समझने और जानने का सुअवसर मिला। चुम्बकीय आकर्षण, नम्रता, कवि हृदय, कभी नरम तो कभी कठोर लेखनी, कहीं साहित्यिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान तो कही गरम–नरम वक्तव्य।

शस्य श्यामला गुर्जर भूमि में आजीवन से कार्यरत् और सेवारत रहे यह गौरव की बात है। आपकी अप्रतिम बुद्धिमता, एकाग्रता और यादशक्ति से किसी को भी आकर्षित न होना संभव नहीं है। हसमुख निर्दोष चहेरा, शुद्ध उच्चकोटि की भाषा एवं मृदुवाणी आपके संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति में गहरी छाप छोड़ जेते हैं। स्पष्ट वक्ता होते हुए भी मृदुभाषी होना आपकी विशेषता है।

प्रत्येक व्यक्ति के चित्त को अनुपम आनंद की अनुभूति कराने वाले व्यक्तित्व को प्रणाम।

संतोषकुमार सुराणा *(अहमदाबाद)*
महामंत्री, भारत जैन महामण्डल

■ *शुभकामना*

डॉ. शेखरचन्द्रजी ने समस्त जैन संप्रदायो की एकता के लिये कार्य किया है तथा अभी तन मन से लगे हुए है। आप आंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान हैं। उनका राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान करना शुभ संकल्प किया– आप को साधुवाद। अभिनंदन ग्रंथ को पढकर बड़ा चेन मिलेगा। मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें।

प्रतापसिंह जैन (बैद) *(सिलीगुड़ी–प.बं.)*

■ *उत्तम वहीवट कर्ता अने सहकर्मचारीओ साथेनो प्रेमसंबंध*

વળિયા આર્ટ્સ એન્ડ મેહતા કોમર્સ કોલેજમાં ૧૯૭૨માં હિન્દીના વિભાગાધ્યક્ષ તરીકે જોડાયેલા અને ૧૯૮૧થી ૬ વર્ષ સુધી આચાર્યપદે રહીને ડૉ. જૈને અધ્યાપક મંડ, વિદ્યાર્થીગણ અને વહીવટી કર્મચારીઓ સાથે સુમેળથી રહી પ્રત્યેકને પોતાના કૌટુંબિક ગણી પ્રત્યેકના વ્યક્તિગત પ્રશ્નોમાં રસ લઈ કેમ ઉપયોગી થવાય તે જ તેમનું ધ્યેય રહેલ. પ્રાચાર્ય તરીકે વહીવટી કર્મચારીઓ સાથે તેમણે કુશાગ્ર બુદ્ધિથી સહકારભર્યું વાતાવરણ ઊભું કરેલ. એકબાજુ તેઓ વહીવટી અધિકારી તરીકે કડકાઈથી કામ પણ કરાવતા તો બીજી તરફ પ્રેમદૃષ્ટિથી પ્રત્યેકને એવી અનુભૂતિ કરાવતા કે તેઓ તેમના પોતાના જ છે. અમને લાગતુ કે ગુરુદેવ ચિત્રભાનુનું મૈત્રી ભાવનું પવિત્ર ઝરણું એમના જ અંતરમાં વહેતુ હતું. કેટલાક અધ્યાપકોની જગ્યા ભરવા માટે જ્યારે ઉચ્ચ શિક્ષણમાં ગલ્લાં-તલ્લાં થતાં હતાં ત્યારે તેમણે પોતાની આગવી શૈલીથી સાનમાં તેમને સમજાવી બધી જગ્યાઓ મંજૂર કરાવી ઉત્તમ વહીવટનો અનુભવ કરાવેલ.

ભાવનગર છોડ્યા પછી પણ તેમનો અમારા સહુ પ્રત્યે જે પ્રેમ છે તે તેમની 'વસુધૈવ કુટુમ્બકમ્'ની ભાવનાને પ્રસ્તુત કરે છે. પરમકૃપાળુ પ્રભુ તેમને દીર્ઘાયુ બક્ષે અને તેઓ સમાજ, કુટુંબ સહુની સેવા કરી શકે તેવી શક્તિ આપે.

પ્રવીણભાઈ ભટ્ટ *(ભાવનગર)*

■ *शुभकामना*

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. शेखरचन्द्र जैनने अपने संपादकीय विचारों द्वारा समाजमें क्रान्ति लाने का कार्य 'तीर्थंकर वाणी' के माध्यम से किया। वहीं 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल'के जरिये करुणा के स्रोत को प्रवाहित किया है। माँ सरस्वती की कृपा आप पर बरस रही है।

आप चिरायु व स्वस्थ रहकर निरंतर चहुँ और प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे यही शुभकामनायें।

जे. के. संघवी

पूर्व संपादक- शाश्वत धर्म, बीकानेर

■ *मंगल शुभेच्छा*

विश्वस्तरीय धर्म प्रभावना, मानवसेवा, समाजसेवा एवं साहित्य में आपका योगदान उत्तम एवं प्रशंसनीय है। आपने राष्ट्र, राज्य, समाज का नाम गौरवान्वित किया है। वीरप्रभु आपको लक्ष सिद्धि करने की दिशा में अग्रसर होने के लिए शक्ति प्रदान करे।

सुरेन्द्रकुमार डी. जैन *(अहमदाबाद)*

■ *मेरे आदरणीय*

डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन एक प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले व्यक्ति हैं, जिन पर मां सरस्वती की असीम कृपा है। उनसे मेरा परिचय मेरे भैय्या (श्री रविन्द्रकुमार जैन / श्रीमती अर्चना जैन दुर्ग) की शादी के बाद हुआ। वैसे तो वे मेरे लिए सदा ही आदरणीय रहे हैं मगर जब मैं खुद पी–एच.डी कर रही थी तब उन्होंने हर तरह से मेरा उत्साह वर्धन, मार्गदर्शन किया जिसके लिए में सदा आभारी रहूंगी।

डॉ. मनु रविकुमार जैन *(विदिशा)*

■ चुंबकीय व्यक्तित्व के धनी

चुंबकीय व्यक्तित्व के धनी डॉ. शेखरचंदजी एक व्यक्ति ही नही गोलालारीय जैन समाज के सूरज हैं जो सदैव चमकते रहते हैं।

मैं डॉ. शेखरचंदजी को अपनी बाल्य अवस्था से जानता हूँ। मेरे पूज्य ताऊजी पंडित भुवनेन्द्रकुमारजी जैन जो एस.पी. जैन गुरुकुल हायर सेकण्डरी स्कूल में छात्रावास अधीक्षक थे, उनके सान्निध्य में डॉ. साहब का कुछ समय पठन पाठन चला है और इसी गुरु शिष्य परम्परा को निभाते हुए डॉ. साहब अक्सर खुरई आने पर हमारे निवास स्थान में जरुर पधारते थे। अपने गुरु के प्रति उनका आदर भाव देखते ही बनता था।

डॉ. साहब एक प्रेरक वक्ता, विद्वान, सहयोगी, स्नेही और जैन समाज के ऐसे व्यक्ति हैं जो परंपरावादी विचाराधारा एवं आधुनिकता में जो तालमेल हो सकता है उसकी एक कडी हैं।

आज भी डॉ. साहब अपने लोगों से बुन्देलखण्डी भाषा में बात करने में सहजता महसूस करते हैं वही दूसरी ओर भारत एवं भारत से बाहर डूबी आधुनिकता से उन्हें परहेज नहीं।

उनके सम्मान में प्रकाशित अभिनंदन ग्रंथ के माध्यम से मुझे भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का सुअवसर मिला जिसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

प्रा. डॉ. अनिल जैन *(भिलाई)*

I am pleased to have this opportunity to send greetings to each of you involved in 'Dr. Shekharchandra Jain's Abhinandan Granth'.

This Granth will not only be a tribute to Dr. Jain but also an incredible testament to the noble principles of the Jain Religion. Dr. Jain is a unique example of a person practicing Spiritual and Humanitarian preaching of Lord Mahaveer.

Dr. Jain, your efforts to promote Jain unity, Jain ideals and helping those who need most are commandable and deserve support from everyone.

As you reflect upon such a noteworthy achievement, I extent best wishes to Dr. Jain and all of you.

Dhiraj H. Shah M.D.

Former President of JAINA, N.Y.

I known Dr. Shekharchandra Jain since my College years, When I was in Shri Mahavir Jain Vidyalaya, Bhavnagar, He was my superintedent. He is very learned knowledgable individual, his knowledge about Jainism is incredible. He is so versatile that he can speak endlesly in Hindi, Gujarati and English on any given topic. He does not need time to prepare lecture on Jainism. He is known all over India and USA among Jain community as well as non jains. His oratory is very impressive.

He has dedicated himself for the community and his selfless act is for the needy people. His dream was to start a charitable hospital which became a reality.

He has given the best education to his children. His action speaks volumes for his family and the community.

I wish him all the best on the day when he is awarded and for his future. God bless him.

Pradip Bavishi

(Tempa-FL, U.S.A.)

We recieved your Letter dated 24th July 06. Glad to know that you are preparing Abhinandan Granth for Shri Shekharchandra Jain.

We are in contact with him for the last 15 to 18 years. He is really doing great things for society above and beyond his mean. His work is really appriciable. We the Zaveri Family wish him all the best in future and present efforts.

Amit Shah, Khusali Z. Shah, Sajiv Shah, Vedika Shah
Pradhuman Zaveri, Dhanlaxmi Zaveri,
Pavan Zaveri, Meenal Zaveri, Manan Zaveri

સુજ્ઞ મહાશય, આપશ્રી ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન અભિનંદન ગ્રંથ 'સ્મૃતિયોં કે વાતાયન સે' એ નામથી પ્રકાશિત કરવાનો નિર્ણય કર્યો છે એ શુભ સમાચાર જાણી અમારો સમાજ (JSOU ના સમગ્ર સમાજને) ઘણો જ આનંદ વ્યક્ત કરે છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અમેરિકામાં આવી અમારા સમાજમાં ઘણાં વ્યાખ્યાનો કર્યા, પૂંજામાં પણ હાજરી આપી યોગ્ય માર્ગદર્શન આપેલ છે. તેમજ પાઠશાળાના વિદ્યાર્થીઓને જૈન ધર્મના સિદ્ધાંતો તથા પૂજાનો મહિમા સમજાવી અમારા સમાજને જૈન ધર્મનું જ્ઞાન આપી ઘણા જ ઉપયોગી થયા છે.

તેઓએ શ્રી આશાપુરા મા જૈન હોસ્પિટલ માં ગરીબોની સેવા થઇ શકે તે ધ્યાનમાં રાખી તીર્થંકર વાણીના લાઇફ ટાઇમ મેમ્બર્સ બનાવી અમારા સમાજ તરફથી હોસ્પિટલ અંગે દાન પ્રાપ્ત કર્યુ, સાથે-સાથે તીર્થંકર વાણી દ્વારા અમારા સમાજને ઘેર બેઠાં જૈન સિદ્ધાંતો તથા અન્ય મુનિ મહારાજો, જ્ઞાનમતી માતાજીનાં વ્યાખ્યાનો, ઉપદેશો વગેરે અમારા સમાજને હિન્દી, ગુજરાતી, ઇંગ્લીશ ભાષામાં મોકલી આપી સમાજને જ્ઞાનધારા આપી છે તે બદલ સમાજ એમનો આભારી છે.

જૈન સમાજ ઓફ યુ એસ એ તેમના અભિનંદન અને વિવાહ તિથિ પ્રસંગે ખૂબ ખૂબ અભિનંદન પાઠવે છે તેમજ તેઓ તંદુરસ્ત રહે, દીર્ઘાયુષી થાય તેવી અમો જિનેન્દ્ર ભગવાનને પ્રાર્થના કરીએ છીએ.

અંતમાં સમસ્ત સમાજનું કલ્યાણ થાય એ જ શુભેચ્છા.

કુમારપાળ એ. શાહ
(પ્રમુખ- ન્યુજર્સી, જૈન સમાજ ઓફ યુ.એસ.એ.)

સ્મૃતિયોં કે વાતાયન સે, ડૉ. શેખરચન્દ્ર અભિનંદન ગ્રંથ ૨૦૦૭ પ્રકાશિત કરવાનું નક્કી કરેલ છે તે બદલ અભિનંદન સમિતિને અમારા અભિનંદન.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનના પરિચયમાં અમો છેલ્લાં પાંચ વર્ષથી આવ્યા છીએ અને અમોએ તેમની સેવાઓ સંસ્થાઓમાં તન-મન અને ધનથી આપી રહ્યા છે.

'તીર્થંકર વાણી'માં તેઓએ હિન્દી, ગુજરાતી અને ઇંગ્લીશમાં જે વિચારો દર્શાવ્યા છે અને જૈન શાસ્ત્રોનું લખાણ આપ્યુ છે તે વાંચી અમોને ઘણું બધું જૈનધર્મનું જ્ઞાન મળેલ છે.

બાલ જગત ભાગ-૧ તથા બાલજગત ભાગ-૨, ઇંગ્લીશ તથા ગુજરાતીમાં તેઓએ અમોને તૈયાર કરી આપ્યા છે અને સમગ્ર વિશ્વમાં અમો તેનો પ્રચાર કરવાના છીએ. આ કાર્ય અભિનંદનીય છે.

પૂજા સંગ્રહ બુક જૈન સમાજ ઓફ યુ.એસ.એ.ની જે પ્રિન્ટિંગ કરી આપી છે તેમા તેઓએ જે યોગ્ય માર્ગદર્શન આપી અને તેઓએ ખૂબ જીણવટ ભરી પ્રકાશિત કરી આપી છે તે બદલ તેઓને અભિનંદન

પાઠવીએ છીએ.

તેઓએ સમન્વય ધ્યાન કેન્દ્ર દ્વારા શ્રી આશાપુરા માં જૈન હોસ્પિટલ તૈયાર કરવામાં, સેવા તથા ફંડ એકત્રિત કરવાની જે પ્રથા અપનાવી છે છે કે કાંકરે કાંકરે પાળ બંધાય તે પ્રમાણેની ઉત્કૃષ્ટ સેવા છે.

ડૉ. જૈન ઘણા જ શાંત, જ્ઞાની છે. જિનેન્દ્ર ભગવાન તેઓને દીર્ઘાયુષ્ય અર્પે તે જ પ્રાર્થના.

નિતિન રમણલાલ શાહ અને પરિવાર
ન્યૂજર્સી

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અભિનંદન સમિતિએ અભિનંદન ગ્રંથ પ્રકાશિત કરવાનું નક્કી કર્યું છે. તે સમાચાર જાણી ઘણો જ આનંદ થયો છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન જેઓએ જૈન ફિલોસોફીમાં જે કારકીર્દી વધારી છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

તેમજ તન સાધો : મન બાંધો તેમજ અન્ય પુસ્તકો પ્રકાશિત કર્યા છે તે વાંચી, અમો ઘણું બધું જીવનમાં શીખ્યા છીએ. અને આવા જ પુસ્તકો પ્રકાશિત કરવાની શક્તિ આપે તેવી જિનેન્દ્ર ભગવાનને પ્રાર્થના કરીએ છીએ. તેમજ તીર્થંકરવાણી, બાલજગત ભાગ-૧ અને ભાગ-૨ ગુજરાતી તથા ઇંગ્લીશમાં અનુવાદ કરી જે પ્રકાશિત કરવામાં જે ફાળો છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

તેઓ તેમની સેવા જે સમન્વય ધ્યાન સાધના કેન્દ્રમાં આપી રહ્યા છે તેમજ શ્રી આશાપુરા મા જૈન હોસ્પિટલમાં ગરીબોની સેવા થઇ શકે તે ધ્યાનમાં રાખી ટોકન રૂા. લઈને જે સેવા કેન્દ્ર ઊભું કરેલ છે તેની પાછળ તેઓશ્રીએ તન મન ધનથી જે કાર્ય કરી રહ્યા છે તે બદલ અભિનંદનને પાત્ર છે.

તેઓ છેલ્લા ૨૫ વર્ષથી અમેરિકા, ઇન્ડિયા, યૂરોપ, આફ્રિકા વગેરે દેશોમાં જે રીતે જૈન પ્રચાર તેમજ પર્યુષણ પર્વ ઉજવાઈ રહ્યા છે તે પણ એક જૈન ધર્મ પ્રચારમાં તેમનો મહત્ત્વનો ફાળો છે.

શ્રી ૧૦૦૮ અરિહંત દેવ તથા મા પદ્માવતીજીને અંતઃકરણપૂર્વક પ્રાર્થના કરીએ છીએ કે આપશ્રી તંદુરસ્ત દીર્ઘાયુષી થાય.

ભૂપેન્દ્ર ચંપકલાલ શાહ અને પરીવાર
ન્યૂજર્સી

''ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન અભિનંદન સમિતિ'એ - 'स्मृतियों के वातायन से' ગ્રંથ પ્રકાશિત કરવાનો નિશ્ચય કર્યો છે એ શુભ સમાચાર જાણી મને તથા અહીંના અમેરિકાના સમસ્ત જૈન સમાજને ઘણો જ આનંદ થયો છે.

ગ્રંથની રચના પણ વિવેકપૂર્વક કરેલી લાગે છે. પ્રથમ ખંડમાં પૂ. સંતોના આશીર્વાદ તથા મહાનુભાવોની શુભેચ્છા. દ્વિતીય ખંડમાં ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈનની જીવન ઝરમર તથા તેઓશ્રીએ લખેલ સાહિત્યનું વિવેચન તથા ''જૈસા જાના'' તથા તૃતીય ખંડમાં જૈન ધર્મ, જૈન દર્શન વિગેરે આ રીતે આ એક અલૌકિક ગ્રંથ તૈયાર થશે.

ધન્ય છે તેમનાં માતા પિતાને કે જેમને આવું રત્ન પેદા કર્યું છે. ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈનને એક હરતું ફરતું તીર્થ પણ કહી શકીએ. દેશ વિદેશની જાત્રા કરી જૈન ધર્મનો પ્રચાર કરવામાં તથા આધ્યાત્મિક ક્ષેત્રે જૈન સમાજને ઉન્નતિના શિખરે લાવવામાં કોઇ પાછી પાની કરી નથી.

તેમની કાર્યદક્ષતા, માર્ગદર્શન, પ્રામાણિકતા તથા તેમનામાં રહેલા અનંત ગુણોને વર્ણવવા શબ્દો પણ ઓછા પડે છે. તીર્થંકર વાણીના માધ્યમ દ્વારા સમસ્ત જૈન સમાજને અનોખી શૈલી દ્વારા બધા જ પ્રકારના સમાચાર આપી સમાજ અને ધર્મની ભાવભરી સેવા બજાવી રહ્યા છે.

મુનિગણમાં પણ જે ત્રુટિઓ છે તે દૂર કરવા વિના સંકોચે બતાવવામાં ખચકાટ અનુભવતા નથી.

ઘણી બધી સંસ્થાઓમાં સંલગ્ન રહી નિઃસ્વાર્થ ભાવે સેવાઓ આપી રહ્યા છે.

શ્રી આશાપુરા મા જૈન ચેરિટેબલ હોસ્પિટલમાંના અસંખ્ય ગરીબ દર્દીઓની અંતરના ઊંડાણથી દુવા પ્રાપ્ત કરી છે.

ગિરનાર ક્ષેત્રે ભગવાન નેમિનાથની નિર્વાણ ભૂમિ છે તેનો ઉકેલ લાવવામાં થઈ રહેલ પ્રયત્નોમાં તેઓશ્રીનું યોગદાન મહત્ત્વનું છે.

શ્રી ૧૦૦૮ અરિહંત દેવ ત્થા મા પદ્માવતીજીને અંતઃકરણ પૂર્વક પ્રર્થના કરીએ છીએ કે તેઓશ્રી તંદુરસ્તીભેર દીર્ઘાયુષી થાય કે જેથી તેમની સેવાનો લાભ સમાજને લાંબા વખત સુધી મળતો રહે.

અંતમાં સમસ્ત વિશ્વનું કલ્યાણ થાવ એ જ શુભેચ્છા.

ભોગીલાલ શાહ

ન્યૂજર્સી

I am very pleased to know that the distinguished Jains from India and abroad have formed a Committee, under the auspicious benevolence of our most distinguished Jain Nun Jnanamatiji-a beacon of light for the Jain faithful everywhere, to honor Professor Shekharchandra Jain.

I had two occasions to encounter Prof. Shekharchandra Jain, a long time ago in Toronto, Canada and in the past two years at Surat, India. I am very happy to learn from your letter that Prof. Shekharchandra, as a Jain individual, has accomplished much larger than his life through munificent activities at home and abroad. He has invigorated the Jain literati through the undertaking of writings, editing and lecturing but also by living the life and its ethos under the multitude philosophical shades of Jain religion.

On behalf of Bramhi Jain Society of Canada and the Unites States, and our Journal Jinamanjari, my heartfelt congratulations are due to Prof. Shekarchand Jain.

Dr. Bhuvanendra Kumar

(Editor- Jinamanjari)

Please convey my best wishes to Dr. Shekharchandra Jain Abhinandan Granth' committee and to him for all the work he has done to enhance the quality of Jain education through out India and USA in particular. He has to be congratulated for his hard and dedicated work.

I am very fortunate to have associated with him.

I wish him all the best and we will keep him in our daily prayer for his long life so that he can continued providing service to "Jin Sashan Dev".

Dr.Tansukh Salgia *(Former President of JAINA)*

डॉ. शेखरचंद जैन एक बहुआयामी व्यक्तित्व

डॉ. शेखरचंद जी का जीवन 'फर्श से उठकर अर्स तक पहुंचने' के सतत संघर्ष की कहानी है।

वर्ष १९५७ में मेरी उनसे रिश्तेदारी हुयी। वे मेरे साले बने तब से आज तक मैं उनके संघर्षपूर्ण जीवन एवं उपलब्धियों का दृष्टा रहा हूँ। वर्ष १९५७ में वे मात्र इंटरमीडियेट पास थे तथा प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे उनके परिवार में उनकी पत्नी के साथ–साथ उनके माता पिता,दो छोटे भाई एवं एक छोटी बहिनथी। पिता की आर्थिक स्थिति साधारण थी और श्री शेखरचंद जी के ऊपर पूरे परिवार का भविष्य निर्मित करने का दायित्व था।

वे तो मानो कह रहे थे–

मैं जबसे चला हूँ, मेरी मंज़िल पर नज़र है
आँखों ने कभी मील का पत्थर नहीं देखा॥

इन विपरीत परिस्थितियों में श्री शेखरचंदजी सतत संघर्ष करते हुए डॉ. शेखरचंद जैन बने, जो उनकी अन्तहीन मेहनत साहित्य एवं दर्शन के प्रति गहरी साधना एवं आंखों से झाँकती गहन जिज्ञासा का परिणाम है, जो सचमुच आश्चर्यजनक है।

उन्होंने अपने पारिवारिक दायित्वों को अत्यन्त सम्मानजनक ढ़ंग से निभाया और अपने दोनों पुत्रों को एवं एक भाई को डाक्टर बनाया तथा अपने छोटे भाई को स्थापित किया और सबकी शादियाँ की। उनके पुत्र एवं भाई आज अहमदाबाद में अपने–अपने परिवार के साथ सम्मानित एवं प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जो डॉ. शेखरचंद जैन का सपना था।

उनका जीवन संघर्ष की यात्रा का लेखा–जोखा है। विभिन्न जिम्मेदारी के पदों पर रहे। अहर्निश चरैवैति के सिद्धांत को ही जीवन बना लिया। इन धूप–छाँव ने उन्हें कभी–कभी कटु भी बना दिया। सत्य के परम समर्थन में अन्याय के सामने घुटने नहीं टेके। जो उन्हें समझ नहीं पाते उन्हें के कुछ रूक्ष भी मानने लगे पर यदि शेखरजी से ही पूछे तो वे कहेंगे–

पत्थर मुझे कहता है मेरा चाहने वाला
मैं मोम हूँ उसने मुझे छू कर नहीं देखा।

अहमदाबाद में श्री आशापुरा मां जैन हॉस्पिटल की स्थापना की है जिसमें अनेक

विभाग कार्यरत हैं, जिनमें निःशुल्क उपचार का प्राविधान किया गया है। उपरोक्त अस्पताल को निर्मित करने में डॉ. शेखरचंद जैन ने सर्वप्रथम स्वयं आर्थिक योगदान दिया तथा अपने परिवार के सदस्यों से दिलाया व श्रद्धालु महानुभावों से आर्थिक योगदान प्राप्त करके समन्वय ध्यान साधना केन्द्र के नाम से ट्रस्ट स्थापित किया तथा अस्पताल की देखरेख में वे आज भी अपना समय देते हैं। आज लोग उनकी सफलता को बधाई दे रहे हैं पर यदि उनके अंतर में झांके तो आवाज आती है

ये फूल क्या मुझको विरासत में मिले हैं।
तुमने मेरा काँटो भरा बिस्तर नहीं देखा॥

डॉ. शेखरचंद जैन का बहुआयामी व्यक्तित्व है जिन्हें कुछ शब्दों में नहीं बांधा जा सकता है इन सब उपलब्धियों के साथ–साथ वे अत्यन्त विनम्र एवं मिष्टभाषी हैं। उनको देखकर उनकी उपलब्धियों का अंदाजा लगाना मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव है। इस बात को इस तरह भी कहा जा सकता है।

तुम कर न सकोगे उनके कद का अंदाजा।
वे आसमान हैं पर सिर झुकाये बैठे हैं॥

मैं उनके स्वस्थ एवं लम्बे जीवन की हृदय से कामना करता हूँ।

कपूरचन्द्र जैन एडवोकेट *(ललितपुर)*

मेरे बड़े भैय्या

आज मुझे बड़ा गर्व हो रहा है कि परम पूज्यनीय श्री डॉ. शेखरचंद्रजी जैन अभिनंदन ग्रंथ–२००७ में अपनी ओर से शुभकामना देने का सुअवर पाया है।

आप श्री अन्तरराष्ट्रीय विद्वान एवं प्रखर वक्ता हैं। जिनकी ख्याति देश–विदेशों में है। मेरा सौभाग्य है कि आपश्री मेरे बड़े भ्राता हैं– इनका भ्रातृ प्रेम तो हम पर सदा बरसता रहा है, व बरस रहा है। परंतु इन्होंने हमें पितृ प्रेम (पैतृक प्रेम) भी बेहद दिया है। हमने सदा इनसे कुछ पाया है। हमें सदैव आशीर्वाद व अपने स्नेह से अभिसिंचित किया है। आज में जो कुछ भी हूँ यह इनका आशीर्वाद है। मैं सदैव उनका ऋणी रहूँगा।

हम छोटे भाई उन्हें क्या दे सकते हैं? हम तो ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वे इस ग्रंथ के बाद शतायुग्रंथ प्रकाशित करें व मुझे पुनः उस ग्रंथ में शुभ कामना का सुअवसर प्राप्त हो।

अपने जीवन काल के दौरान स्वयं संघर्ष से जूझते रहे व हमे तनिक भी आंच न आने दी। आपने अपनी परवाह कभी भी नहीं की। आपने सदैव वृक्ष की भांति हमें शीतल छाया देकर हमें उन्नति के मार्ग पर ला खड़ा किया है। जिससे हम सभी अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं।

आपके इस अभिनंदन ग्रंथ एवं शादी की ५१वीं वर्षगांठ पर मेरी बहुत–बहुत शुभ कामना हैं एवं आप हमें हमेशा मार्गदर्शन देते रहें– ऐसी आशा के साथ..

पूज्यनीय–सम्मानीय विद्वान धर्मप्रेमी, न्याय नीतिवान, आप गुणों के भंडार हैं।
वाणीभूषण, प्रवचनमणि, ज्ञानवारिधि हैं, विचार सागर के विशुद्ध दुनिया के पार हैं॥
सरल, मृदुभाषी हैं, शिरोमणी सिद्धांत के हैं, सभी निवारण के ज्ञान गज पे सवार हैं।
हमारे भाई को सराहें कैसे, हम पर आपके अपार उपकार हैं॥

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन *(भाई)*

■ *सफलता की ऊँचाइयाँ*

मनुष्य अपनी मेहनत लगन तथा परिश्रम से सफलता के चरम शिखर पर पहुँच जाता है। सफलता की ऊँचाइयों पर पहुँचने केलिये तन–मन–धन से सम्पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करने की आवश्यकता होती है। इसीका एक उदाहरण मेरे बड़े भाई सा डॉ. शेखरचन्द्र जैन हैं। उन्होंने अपने अथक परिश्रम से सफलता के चरम शिखर पर देश विदेश में अपनी कीर्ति का झंडा फहराया है।

सामान्य परिवार में जन्मे हमारे भाई सा. प्रारम्भ से ही अपनी जिम्मेदारियों में जकड़े हुये थे। इनके कंधों पर अपने मातापिता के अतिरिक्त भाई बहनों की शिक्षा एवं भरण पोषण का उत्तरदायित्व था। एक ओर स्वयं अध्ययन करना अपने परिवार की देखभाल करना तथा दूसरी ओर अत्यधिक परिश्रम करके पारिवारिक खर्चों को चलाना भी इनकी जिम्मेदारी थी। जिसको भैया ने भली भाँति निभाया। अपनी सुख दुःख की परवाह किये बिना परिवार की उन्नति के लिये उन्होने कठिन से कठिन परिश्रम करके, परिवार को एवं सभी भाई बहन को शिक्षा दिलाई तथा शिक्षा के उपरांत परिवार के सभी सदस्यों की यथा अनुकूल उनके कारोबार में सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करते हुये चरम सीमा तक सभी सदस्यों को पहुँचाया।

वर्तमान में चेरीटेबल संस्था द्वारा निर्धनों निःशुल्क औषधालय भी चलाया जा रहा है। जिसमें जनसाधारण एवं गरीब जनता के माध्यम से उनकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है।

जैनधर्म के आचार्यों की एवं साध्वी ज्ञानमती माताजी का आपको पूर्ण आशीर्वाद है। एवं साधु संतों की सेवा में अपना मन लगाये रहते है। प्रत्येक धर्म कार्यों में भी तन–मन–धन से पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं।

अपने बड़े भाई की हम जितनी भी प्रशंसा करें वो कम है। मैं तो अल्पज्ञ हूँ इतना ही लिख सकती हूँ– उनके रहते हमें पिता की कमी नहीं खली उनका स्नेह पिता के समान ही है। हम तो भगवान से इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि उनकी कीर्ति इसी प्रकार फैलती रहे। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि मैं उनकी बहन हूँ।

भैया की छोटी बहन पुष्पा *(बबीना)*

■ *हमारे समधी डॉ. शेखरचंद जैन*

डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन अत्यंत– मितव्ययी, व्यवसायिक, व्यवहार कुशल और गुणग्राही व्यक्ति हैं।

मेरी नजर में उनके जीवन की सबसे बड़ी सफलता अपने छोटे सुपुत्र डॉ. अशेष जैन को एम.डी. (मेडिसिन) होने के बाद सरकारी नौकरी में न भेजकर उनके लिए प्रायवेट दवाखाना एवं नर्सिंग होम खुलवाकर, उसके सफल और लाभदायक संचालन और उसके विकास में सहयोग देना है। बड़े प्रोजेक्ट / निवेश को प्लान करके लाभदायक तरीके से सफल करना अत्यंत दुरूह कार्य है। ईश्वर उन्हें भविष्य में भी उन्नति और यश प्रदान करे। शुभकामनाओं सहित।

रतनचंद जैन *(दुर्ग)*

■ *हमारे समधी डॉ. शेखरचंद जैन*

बहुयामी व्यक्तित्व के धनी, बहुमुखी प्रतिभावान हमारे समधी, माननीय डॉ. शेखरचंदजी जैन, वाणी भूषण, प्रवचनमणी आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त कुशल प्रवचनकार, निडर वक्ता हैं।

अनेक सम्मानों से विभूषित, आपके द्वारा स्थापित संस्था ''समन्वय ध्यान साधना केन्द्र'' की तीन भाषाओं

में प्रकाशित पत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' के सफल निर्भीक सम्पादक हैं। पत्रिका के माध्यम से आप समाज एवं साधु संस्था सब मर्यादा में रहें ऐसा श्रम साध्य प्रयास कर रहे हैं।

मूल रूप से आप एक सफल शिक्षक हैं। अहमदाबाद और भावनगर के महाविद्यालयों में प्राध्यापक के रूप में अपने विद्यार्थियों में अत्याधिक लोकप्रिय रहे हैं। प्रवचनों के लिये अनेकों बार विदेश यात्रा करने वाले आप, दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों समुदाय में लोकप्रिय हैं। आप सिद्ध हस्त लेखक हैं। हिन्दी–गुजराती भाषाओं में विभिन्न विषयों में आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

आपकी सबसे बड़ी उपलब्धि आशापुरा मां जैन अस्पताल की स्थापना है। पीड़ित मानवता की सेवा का आपने जो बीड़ा उठाया है, वह स्तुत्य कार्य है। कहते हैं कि जिस वृक्ष की जड़ में अमृत होता है, वह हमेशा फूलता–फलता है, इसी प्रकार आशापुरा मां जैन अस्पताल की बुनियाद में आपकी सुयोग्य सोच, अदम्य साहस और श्रम साध्य मेहनत का योगदान ने ही, उसे इतना अच्छा विशाल स्वरूप प्रदान किया है। अस्पताल के माध्यम से गरीबों का जो उपकार हो रहा है, वह शताब्दियों तक याद किया जावेगा, औषधि दान महादान माना गया है।

मूल रूप से बुन्देलखण्ड वासी परिवार में जन्में डॉ. शेखरचंदजी ने बुन्देलखण्ड की सारी परम्पराओं को सहेज कर रखा है।

मैं, परिवार सहित आपके यशस्वी, दीर्घ जीवन की कामना करते हुए, आपका अभिनन्दन करता हूँ।

चौ. रतनचंद जैन एवं परिवार *(सागर, मध्यप्रदेश)*

■ *पापाजी मेरी प्रेरणा*

कहते हैं कि अंग्रेज अगर भारत में न आये होते तो भारत आज भी सभ्यता में पिछड़े होता। दुनिया अगर शिस्त से रहना सीखी है तो अंग्रेजों से। मेरे परिवार का हाल भी कुछ ऐसा है। 99 प्रतिशत सगे–संबंधी एवं समाज के लोग कहते हैं कि पापा का स्वभाव खूब कड़क और गुस्से वाला है। अगर वे कड़क अनुशासन के हिमाईती न होते तो आज हमारा परिवार जिस मुकाम पर पहुँचा वहाँ न होता। हमारी ये प्रगति उनके अनुशासन से ही संभव हो पाई। हमारे बच्चे जो आज के जेट युग में पैदा हुए हैं उन्हें दादाजी का स्वभाव उनके नीति नियम कुछ ज्यादा ही कड़क लगते हैं। पर उनके प्यार के सामने वो सब भूल जाते हैं। आज हमारे जीवन में नियमितता, एकाग्रता, निर्णय शक्ति, कठिन परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति जैसे गुणों का विकास उन्हीं के आभारी है।

प्यार करने की सबकी अपनी अलग रीत होती है। कोई सिर पर हाथ फेरता है, कोई छाती से लगाता है, तो कोई मुख से प्रसन्नता व्यक्त करता है। ऐसा ही हमारे पापा के साथ है उनका प्यार हमेशा आँखो से प्रगट होता है। हमारी प्रशंसा हमारे सामने नहीं करेंगे, पर अपने मित्रों, संबंधी के सामने जरूर करेंगे।

बच्चों के विकास के लिए पापाजी का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है 'अच्छा खिलाओ और खूब पढ़ाओ' स्वस्थ शरीर, उच्च शिक्षण होगा तो व्यक्ति जीवन में पीछे नहीं रहेगा।

मुझे अच्छी तरह याद है कि बचपन में जब भी हम नये कपड़े सिलवाने की जिद करते थे तो पापा कोई न कोई बहाना करके टाल देते थे लेकिन पढ़ाई के लिए कोई भी पुस्तक चाहें कितनी भी मँहगी क्यों न हो उसे खरीद लाते थे। उनका एक सिद्धांत था हमेशा पुस्तक नई खरीदना ही और उसे कभी भी बेचना नहीं। पापा कभी ट्युशन नहां करते थे उनका नियम था विद्या बेचूंगा कभी नहीं। जिसे भी पढ़ाते थे मुफ्त में पढ़ाते थे।

पापा ने पैसा कम कमाया, पर प्रतिष्ठा एवं सम्मान उन्हें इतना मिला कि जो दौलत से ज्यादा कीमती है।

अन्याय सहन करना उनके स्वभाव में नहीं है। न कभी अन्याय के सामने झुके हैं, चाहे फिर सामने समाज हो या परिवार, रिस्तेदार हो। मैं आज जिस जगह हूँ पापा की प्रेरणा की वजह से हूँ। मेरी परवरिश उनके सिद्धांतो के अनुसार ही हुई है। उनका गुस्सा उनकी जिद्द पहले तो हमें गलत ही लगता है पर बाद में सोचने पर लगता है कि वे अपनी जगह सही हैं।

आज का उनका सम्मान सही अर्थ में उनके सिद्धांतों का, उनकी न्याय प्रियता का है। ये सम्मान सिर्फ उनका नहीं हमारे परिवार एवं समग्र जैन समाज का है। जैन एवं जैन धर्म के लिए कुछ करने की तमन्ना आज उन्हें यहां तक ले आई है।

अंत में तीर्थंकरों की अनुकम्पा, मुनि भगवंतो एवं आचार्यों के आशीर्वाद, बुजुर्गों की कृपा दृष्टि एवं मित्रों की शुभेच्छा सदा उनके साथ रहे।

डॉ. राकेश जैन *(पुत्र)*

❀ *My Father a Devoted Person*

God has given him in abundance. God has given him good health, good wife, good children, hard working and never tiring mind. His mind is always fll of various ideas for society. He has pain for everybody except his own body. He has many dreams for family and society which must be fullfilled. By Brain he is very strong, full of knowledge but anger also. He sets his own goals in life and achieves it. His some ideas are rigid also. He earned knowledge, money, reputation, medals and faith of family and society many truths and ideas are bitter so many time he has uttered harsh truths.

He has got spring of energy, unmeasurable joy and probobly some hidden sorrow in his heart. He has opened all his mind to society, his body to time his heart to family and lovers. Pain for poors and needy is disolved in his heart - which can be seen on his face. May his heart remain full of joy, full of godbliss, full of fragrance of love to all of us.

Dr. Ashesh Jain *(Younger Son)*

❀ *मेरे पापा – जिन्हें मुझसे विशेष वात्सल्य है*

'बच्चों की हर खुशी पर अपनी कुशियां कुर्बान करते हैं मां–बाप' इस बात को जब मैं खुद मां बनी तब मैंने जाना।

मेरे पापाने 18 साल की उम्र से ही अपने जीवन में संघर्ष किया। अपने भाइयों की,– बहनों की और साथ में बीवी–बच्चों की परवरिश करना, उसी दौरान पढ़ना–पढ़ाना और कमाना इन सारे कार्यों को उन्होंने बखूबी संभाला। हाँ वे थोड़े से क्रोधी जरूर हैं, लेकिन दिल के साफ हैं। आज मेरे दोनों बच्चे जब अपने पापा से प्यार करते हैं तब मुझे भी पापा से प्यार करने की इच्छा जरूर होती है, तब मैं पापा से फोन पर बात कर लिया करती हूँ।

मुझे अपने पापा पर बहुत गर्व है। उन्हें हर कदम पर सफलता प्राप्त हुई लेकिन मैं इतना जरूर कहूंगी कि पापा की हर सफलता के पीछे मेरी मम्मी का साथ हमेशा रहा है।

पापा की बेटी अर्चना *(दुर्ग)*

■ *एक विनयांजलि मेरी – ससुर जी के लिए*

मेरे ससुरजी कठोर अनुशासन प्रिय, मृदु हृदय के धनी है, उन्होंने अपने परिवार को सुसंस्कारित किया, परिवार को एक माला में पिरोकर रखने की अद्‌भुत क्षमता है मेरे सास ससुर में।

शादी के पूर्व जो सुसंस्कार मेरे माता–पिता से मुझे मिले। तदनुसार ही ससुराल में भी वैसी ही अनुभूति हुई। कोई फर्क महसूस नहीं हुआ। जो स्नेह मुझे मेरी ससुराल में मिला उसे मैं अपना सन्मान मानती हूँ।

मेरे ससुरजी जो बहुत संवेदनशील हैं, गरीब मानवता की सेवा में अपना जीवन लगाकर 'आशापुरा माँ जैन होस्पिटल' में अपना तन–मन–धन अर्पण करने में निरंतर रत हैं। जो करूणा व्यक्तियों के प्रति उनके मन में है अन्यत्व देखने में विरल ही मिलती है।

सच्चे देव शास्त्र गुरू में उनकी पूर्ण आस्था है जो 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका और उनके लिखे साहित्य से परिलक्षित है। निर्भीक होकर स्पष्ट और सत्य व्यवहार का ही पक्ष लेते हैं।

मैं इसे अपना सौभाग्य मानती हूँ कि इतने अच्छे सुसंस्कारित सरल व्यवहारी दयालु हृदय के परिवार की बड़ी बहू हूँ।

मैं कामना करती हूँ कि मेरे ससुरजी की कीर्ति चारों ओर फैले और दीर्घ काल तक उनकी छत्रछाया हम सबको मिलती रहे।

सौभाग्यवती ज्योति राकेश जैन

(पुत्रवधु)

■ *मेरे ससुरजी*

आपका अहमदाबाद जैन समाज द्वारा जो सम्मान होने जा रहा है उससे हम सभी बहुत प्रसन्न हैं। आप चहुँमुखी प्रतिभा के धनी हैं और आपको कई अंतराष्ट्रीय ख्यातियाँ प्राप्त हैं। साथ ही आपको भारत एवं विदेश में भी जैनधर्म के प्रवचनार्थ बुलाया जाता है।

आपने जीवन के हर पहलू और धर्म की क्षितिज को अपनाते हुए जो कार्य किये हैं वे सचमुच प्रशंसनीय और सम्मान के पात्र हैं।

मैं अर्थात् आपकी पुत्रवधु को यह लिखते हुये अत्यन्त गर्व की अनुभूति महसूस हो रही है कि आपको इतना बड़ा सम्मान प्राप्त होने जा रहा है। आपके विचारों को समाज में इसी तरह प्रतिष्ठा मिलती रहे ऐसी भगवान से प्रार्थना है।

आपकी पुत्रवधु नीति

■ *हमारे दादाजी*

हम लोग बहुत खुश हैं कि मेरे दादाजी का टागोर हॉल में इतना सम्मान हो रहा है। हमारे लिए ये बड़े गर्व की बात है। मैंने तो अपनी सब सहेलियों को भी बताया है। मेरे दादाजी हमें बहुत अच्छे लगते है। लेकिन कभी–कभी गुस्सा भी हो जाते हैं। हमें बहुत दुःख होता है लेकिन वो हमारे अच्छे के लिए ही करते हैं। या हमने कोई भूल करदी होती है। मेरे दादाजी अमेरिका या कहीं और बाहर जाते हैं तब घर सूना–सूना लगने लगता है। लेकिन जब

वहाँ से वापिस आते हैं तब उन्हें इनाम के रूप में ट्रोफी आदि लेकर आते हैं और हमारे लिए अच्छी चीजें लाते हैं तो हमें खुशी होती है। हम लोग हमेशा प्रयत्न करेगें की हमें हमारे दादाजी जैसा सम्मान प्राप्त हो और मेरे दादाजी का आशीर्वाद तो साथ ही है।

किंजल *(पौत्री)*

मेरे दादाजी डॉ शेखरचन्द्र जैन राष्ट्रीयस्तर से सम्मानित हो रहे हैं यह मेरे लिए बहुत खुशी की बात है। साथ ही साथ मेरे दादाजी का अभिनन्दन हो रहा है यह मेरे लिए बहुत गर्व की बात है और मज़े की बात तो यह है कि मेरे दादाजी डॉ. शेखरचन्द्र जैन और दादीजी आशादेवी जैन की ५१वीं शादी की सालगिरह भी उसी दिन है। मेरे दादाजी बहुत अच्छे हैं। मेरे दादाजी थोड़े कड़क स्वभाव के हैं। वह शिस्त के आग्रही हैं। वे कभी–कभी हमें डाँटते हैं पहले मुझे अच्छा नहीं लगता है, पर फिर लगता है कि दादाजी हमारी भलाई के लिए ही तो डाँटते हैं। दादाजी को खूब सारे एवार्ड मिलते हैं। कभी देश में तो कभी विदेश में। मेरे दादाजी के पास अनेक एवार्ड हैं। मेरे दादाजी हर साल विदेश जाते हैं। वहाँ से वह ढ़ेर सारी चॉकलेट और खिलौने लाते हैं।

मेरे दादाजी को ज्ञानमती पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। दादाजी का ऐसा सम्मान होते देख, ऐसे पुरस्कार मिलते देख मुझे भी ऐसा लगता है कि, बड़े होकर मेरा भी ऐसा सम्मान हो। मेरे दादाजी मुझसे बहुत प्यार करते हैं। मुझे मेरे दादाजी बहुत अच्छे लगते हैं। मेरे दादाजी हमेशा मुझे अलग–अलग नाम से बुलाते हैं। मुझे गर्व है कि डॉ. शेखरचन्द्र जैन मेरे दादाजी हैं। मेरे दादाजी जैसा कोई नहीं हो सकता। मेरे दादाजी दुनिया के सबसे अच्छे दादाजी हैं।

निशांत *(पौत्र)*

मुझे बहुत खुशी हो रही है कि आपको जैन समाज की तरफ से पुरस्कार प्राप्त हो रहा है। मुझे इस बात से बहुत अच्छा लगता है कि हर महिने आपकी नई–नई तीर्थंकर वाणी निकलती है और आप हर साल विदेश जाकर प्रवचन देते हैं।

जब दादाजी मुझे डाँटते हैं तब बहुत ही बुरा लगता हैं पर बाद में लगता है कि दादाजी मेरी भलाई के लिए ही डाँटते हैं। मैं चाहता हूँ कि दादाजी को आगे भी इसी तरह समाज में सम्मान प्राप्त होता रहे। मैं भी बड़ा होकर दादाजी की तरह बनूँगा। मुझे भी दादाजी के जैसा सम्मान और ज्ञान प्राप्त हो।

निसर्ग *(पौत्र)*

काव्यांजली

डॉ. शेखरचन्द्रस्य करकमलयो
सादरं समर्पिताऽभिनन्दनाञ्जलिः

वैद्यराज पं. राजकुमार जैन *(इटारसी)*

सौम्यभाव समायुक्तः विदुषांश्चानुरागि यो।
शलाका पुरुषश्चैव विशेषज्ञो महामतिः॥१॥

गम्भीरो पुरुषार्थीच कृतः कर्मसु कौशलम्।
जिन धर्मानुरक्तश्च शेखराय तस्मै नमः॥२॥

श्रावकस्यकुलोत्पन्नं शुभलक्षणभूषितम्
श्रीयुतं समृद्धिकरं परिवार सौख्यास्पदम्॥३॥

सत्वशीलगुणोपेतं साम्यभावसमायुतम्।
धर्मपरायणं चैव समाजस्य च गौरवम्॥४॥

हितं मितं प्रियं मृदु वक्तारं मधु भाषिणम्।
वन्दे सरस्वती पुत्रं शेखरं चन्द्रभूषितम्॥५॥

लेखकः बहू ग्रंथानां लेखानां च समीक्षकः।
निदेशकश्च शोधनां शोधपत्राभिभाषकः॥६॥

प्रशान्तः गरिमायुक्तः धर्मध्वजाभिवाहकः।
शेखरं तं महाभागं सोत्साहमभिवादये॥७॥

बहुश्रुतः कृताभ्यासः बहुमानसमान्वितः।
सम्पादन क्रिया विज्ञः जिनसंस्कृति घोषकः॥८॥

वाक्पटुः निपुणः धीमान् सात्विकभावेन पूरितः।
विचक्षणः प्रतिभावान् शालीनोकुल भूषणः॥९॥

अभिनन्दन योग्यः सः करोमि तस्याभिनन्दनम्।
कामये दीर्घमायुष्यमा रोग्येन समन्वितम्॥१०॥

श्री शेखरचंद्र जैन

आ. १०८ भरतसागरजी महाराज

श्री – श्री वीरप्रभु के पथ पर चलकर करना तुम आत्मकल्याण !
शे – शेखर से दमको, हो अंतिम जीवन का लक्ष्य महान !
ख – खारा है संसार यहाँ, यही जानकर करें त्याग महान !
र – रत्नत्रय को धारण कर, आतम का होवे निज कल्याण !
चं – चंदन का शीतल मन हो, यही आत्म का मूल सिद्धांत !
द – दमन शमन हो इंद्रिय जाल, पा जाओ तुम सिद्धालय जान !
जै – जैनधर्म 'तीर्थंकर वाणी' श्रद्धा की सत्पथ की खान !
न – नमन करो सम्मेद शिखर को, शेखर तुम सत्पथ का आशीष जान !

सुबन्धु शेखरचन्द्र को, मेरा विनम्र प्रणाम है।

पं. लालचन्द्र जैन राकेश *(गंजबासौदा)*

इस धटा पर रोज ही हैं, जन्म लेते कोटि जन।
और प्रतिदिन कोटि ही जन, ओढ़ सोजाते क़फन॥
कौन उनको जान पाया, व्यर्थ ही आये–गये।
जबतक जिये वे इस धरा पर, बोझ ही बनकर जिये॥१॥

किन्तु जिनके आगमन से, वंश का गौरव बढ़े।
देश–धर्म–समाज, उन्नति के शिखर ऊपर चढ़े॥
ऐसे मनुज का जन्म लेना, सार्थक, अति नेक है।
श्रीमान् शेखरचन्द्र का, प्रिय नाम उनमें एक है॥२॥

उन्नीस–सौ, अड़तीस सन्, उन्तिस दिसम्बर शुभाधना।
पिता पन्नालाल, माता जयश्री ललना जना॥
वही शेखरचन्द्रजी ये, पढ़–लिख हुये पी.एच–डी.।
हार मानी भाग्य ने, फहरी ध्वजा पुरुषार्थ की॥३॥

पर की बनाई राह पर, दौड़ना सबको सरल।
राह खुद अपनी बनाते, होते मनुज अति ही विरल॥
राह खुद की, खुद बनाके, खुद ही बढ़ते आये हैं।
श्रीमान् शेखरचन्द्रजी, उनकी बने पर्याय हैं॥४॥

कौन कहता है मनुज का, भाग्य लिखता अन्य है।
पुरुषार्थ है जिसने किया, बस वही होता धन्य है॥

दूर मत जाओ, पढ़ो, इतिहास शेखरचन्द्र का।
थे कहाँ पर, हैं कहाँ अब, सुफल निज पुरुषार्थ का॥५॥

हर मनुज करता स्व–शक्त्या, सरस्वती आराधना।
पर कौन कितना कर सका, पढ़के उसे अपना बना॥
कौन उसको ग्रहण करके, कर सके प्रवचन भला।
विद्वान् शेखरचन्द्र को, आती है यह उत्तम कला॥६॥

कश्मीर तो है दूर, पर केशर सुरभि हृदि वास है।
अरि–मित्र को दिल से पिलाते, लक्ष्य हित ही खास है॥
स्वातन्त्र्य पूर्ण विचार वाले, आप हैं निर्भीक नर।
सम्प्रदायों से परे, तुम हो अनन्वय भक्त–वर॥७॥

समाजसेवा में प्रमुख हैं बहुमुखी प्रतिभा धनी।
ज्ञानवारिधि, वाणिभूषण, धर्म में प्रवचनमणि॥
दीन–दुखियों के लिये, तुमरे उठी मनपीर है।
'आशापुरा माँ' पीड़ितों की, बनगयी तकदीर है॥८॥

चालीस वर्षों तक जलाये, ज्ञान–दीप स्नेहभर।
सिर झुका स्वीकारते, कृतज्ञता सुप्रदीप वर॥
कहाँ तक गिनायें आपके गुण, आप गुण की खान हैं।
विज्ञ हैं, बहुज्ञ हैं, विख्यात हैं, विद्वान् हैं॥९॥

जो अँधेरे से घिरे हों, उन्हें आप मशाल हैं।
उत्कर्ष देना साथियों को, उसकी आप मिशाल हैं॥
अतिथि के आतिथ्य में, ये अग्रणी हैं मित्रवर।
साहित्य रचना क्षेत्र में, उत्कृष्ट हैं विद्वद्प्रवर॥१०॥

जो पँक्ति में पीछे खड़ा है, चाहता उत्कर्ष है।
श्री जैन शेखरचन्द्र का, आमन्त्रण उसे सहर्ष है॥
देंगे सहारा हाथ का, ले जायेंगे मंजिल, तलक।
ज्ञान–विद्या के चषक, वह पी सकेगा बेझिझक॥११॥

यह नहीं है कल्पना, अनुभूति सिद्ध प्रयोग है।
'सदलगा के संत' से कवि का हुआ संयोग है॥
पुरस्कृत करना, कराना, यह भी उत्तम काम है।
सुबन्धु शेखरचन्द्र को, मेरा विनम्र प्रणाम है॥१२॥

करते हैं अभिनंदन

पं. शिखरचंद्र जैन 'साहित्याचार्य'

आदिनाथ से महावीर तक, चौबीसों जिनवर वंदन।
सरस्वती पुत्र श्री शेखरजी का, करते हैं हम अभिनंदन॥

भूमि अहमदाबाद धन्य है, शेखरचन्द्र ने जन्म लिया।
पन्ना–जयश्री देवी हर्षित, गौरव सुत प्रसूत हुआ॥

कष्टकंटकों में है जिनका, जीवन सुमन खिला करता।
गौरव–गंध उन्हें ही उतना, निशिवासर विकसित करता॥

ऐसे गौरव गरिमा मंडित, सरस्वती पुत्र से हर्षित मन।
सरस्वती पुत्र श्री शेखरजीका, करते हैं हम अभिनंदन॥

लघुता–प्रभुता विद्या सेवा, शिक्षक–प्राध्यापक स्तर।
चहुंमुखी प्रतिभा विकसित की, गरिमामय है उच्च शिखर॥

लेखन प्रवचन चुम्बक शैली, आकर्षण और प्रकर्षण।
सहज–सौम्य व्यवहार है जिनमें, अभिमत जिनवाणी घर्षण॥

निर्देशन काव्य गठन प्रभुता का, आशीष ज्ञानमति वन्दन।
सरस्वती पुत्र श्रीशेखरजी का, करते हैं हम अभिनंदन॥

णमोकार मंत्र साधना, देश–विदेशी क्षेत्र चयन।
जाति भेद संकीर्ण न है मन, सबसे मृदुतातर है मन॥

सम्पादन–लेखन मन हर्षित, चहुँमुखी प्रतिभा रत रह।
सादा जीवन उच्च विचारों की, धारा में हर्षित रह।

बहुआयामी गुण मंडित है, जम्बूद्वीप से हर्षित मन।
सरस्वती पुत्र श्री शेखरजी का, करते हैं हम अभिनंदन॥

श्रेष्ठी–राजगण–विद्वत–मंडल के, नक्षत्र सौरभ तारे।
सभी सनेही शुभचिंतनमय, रोगीजन के दुख निखारे॥

आशापुरा–साधना कर्मठ, ध्येय एक सेवा नरधारी।
देवशास्त्र गुरु भक्ति धारे, सेवामय नित उपमाधारी॥

तमसावृतयामिनी हरती, शशिमय हर्षित मन चंदन।
सरस्वती पुत्र श्री शेखरजी का, करते हैं हम अभिनंदन॥

सहजानंद–ज्ञानमति महिमा, वर्णी–गणिनी हर्षित मन।
मुनिजन बुधजन सेवारत रह, जिनवाणी गुरुता वंदन॥

वंदनीयजन होता जग में, प्रतिभा अर्पित हो सुयश वचन।
बहुआयामी गुण से मंडित हो, सका आज यह विद्वज्जन्॥

सुखी और नीरोग रहें नित, शिखर कामना हर्षित मन।
सरस्वती पुत्र श्री शेखरजी का, करते हैं हम अभिनंदन॥

स्वर्णाक्षरों में.....

हुकुमचंद सोगानी *(पूना)*

अभिनन्दन की बेला अपूर्व, महक उठे हृदय के फूल।
चंदन के मानिन्द हो गई, चरण कमल की धूल॥
तीर्थंकर वाणी घर घर पहुँची, गौरवान्वित हुई धरा समूची।
ज्ञान रवि एक उदित हुआ है, शेखरभाई ने शिखर छुआ है॥
सेवायुक्त स्तुत्य कार्य से, आदर मिला समाज राष्ट्र से।
प्रेमभाव विकसित है कितना, दिलों के जुड़े हुए तार से॥
संपादक हैं आप प्रखर, रचनाएं कितनी गई निखर।
छू लिया जिसे अपने हाथों से, मुद्रित हुई स्वर्णाक्षरों में॥

जैसा तुमको पहिचाना....

विनोद 'हर्ष',
सहसंपादक 'तीर्थंकर वाणी'

अनवरत बहते ऊर्जा प्रवाह को, कैसे जाना जा सकता है?
जानी जा सकतीं उनकी पर्यायों को।
तीर्थंकर वाणी के सह संपादक के रूप में,
पंद्रह साल साथ साथ जिया हूँ, परिवार के सदस्य की भाँति।
ज्यादातर उनके स्नेह से सिक्त होता रहा,
कभी उनके क्रोध का शिकार भी हुआ।
लेकिन उनके स्वभाव और परभाव से,
ज्ञात होने की वजह से न खेद हुआ न खिन्न हुआ।
अपनों के, संकट युद्ध में, वे कभी निमंत्रण की राह नहीं देखते–
कृष्ण की तरह, खुद सारथी की जगह ले लेते हैं।
इसलिये तो देश और परदेश में
उनके प्रियों की बड़ी लंबी सूची है– इसमें एक मैं भी हूँ।
साहित्य, आध्यात्म, संपादकीय लेखन के माहिर,
प्रवचनपटु हैं।
ज्ञात और अज्ञात अनेकों के स्नेहभाजन हैं,
सत्यनिष्ठ होने से, कटु सत्य कहने के कारण
कुछ लोगों को नापसंद भी हैं।
लेकिन लोगों की पसंद–ना पसंद से उनको क्या लेना देना?
वो तो 'चल एकेले' के पक्षधर हैं।

न शास्त्री हैं, न पंडित
फिर भी विद्वानों के शिरमौर हैं– प्रिय हैं,
मानव मन के पारखी हैं, इसीलिये विद्वानों के लिए जूझते हैं
क्रोधित होते हैं, गुटबंधी से, विद्वानों की अवहेलना से,
श्रमण और श्रावक की पतन की बात उजागर करने से,
बहुत बार विवाद और आतंक के घेरे में भी आते रहे
लेकिन हरबार विजय का शंखनाद किया है–
क्योंकि सत्य का साथ और संतों का आशीर्वाद साथ रहा है।
जैन एकता के हिमायती होने से, संप्रदाय की संकीर्णता से मुक्त रहे।
यह बात कुछ लोगों को पसंद नहीं आई
फिर भी चलित नहीं हुए, अपने ध्येय से
इसीलिए जैन समाज में आदरणीय हैं, देश और परदेश में।
अपने मूल स्रोत से बँधे शेखरचंद्रजी बुंदेलीभाषा के माहिर हैं
मित्रों की मेहफिल में जब मिलते हैं तो हास्य के फुव्वारे झरते हैं,
तब लगता नहीं ये आंतरराष्ट्रीय विद्वान हैं।
ऐसे सहदय के धनी है डॉ. शेखरचंदजी।
अपने अनुभव से अभावों की पीड़ा को समझते हुए,
अस्पताल का निर्माण कर निःशुल्क सेवा प्रदाता हैं।
मानवता की महक से महकते हैं शेखरचंदजी,
सही में शेखरचंदजी शीखरस्थ हैं।
मेरे आत्मीय, आप निरोगी, स्वस्थ और सेवारत रहो
यही प्रार्थना है जिनेन्द्र देव से।

'शुभाशंसनम्' अभिनन्दन

डॉ. विमलाजैन 'विमल' *(फिरोजाबाद)*

डॉक्टर शेखरचंद्रजी शुभकामना अनंत
शत वसना हर्षित रहे, वैश्विक हो यशवन्त।
आशिष अरु शुभकामना, भरि अभिनन्दन ग्रन्थ,
चर्तुविधि संघ दे रहा, रही न कोई ग्रन्थ।
आप 'आप' अनुपम रहे, अद्वितीय कर्तृत्व,
वाणी वरदा प्रिय रमा, युगलाशीष व्यक्तित्व।
वृष वर्षा वारिद बने, घूमे देश–विदेश
जैन संस्कृति सभ्यता, किया प्रचार विशेष।

चर्तुमुखी प्रतिभा धनी, अन्तर्राष्ट्रीय मान,
पुरुष्कार–सम्मान से, बहती रहती शान।
गौरव–गरिमा अतुल है, विद्वत् रत्न महान
वाणी भूषण प्रवचनमणि, ज्ञान वारिधि सुजान।

सम्पादन सम्यक किया, लेखन श्रेष्ठ सटीक
'तीर्थंकर वाणी' बनी त्रैभाषा में नीक।
अस्पताल अध्यक्ष हो, कर्मठ सहित विवेक
शिक्षक–शिक्षार्थी स्वयं, विद्या व्यसनी एक।

पुरुषारथ के संग में, रखते सम्यक् बोध।
शाम–दाम–दण्ड भेद से प्राप्त सफलता शोध।
पूज्य ज्ञानमती मात का, हार्दिक रहा दुलार
अध्यक्ष विद्वत् संघ के प्रगतिशील व्यवहार।

कृतित्व और कर्तृत्व की बनी श्रृंखला ज्येष्ठ
जीवन के हर क्षेत्र में प्राप्त फलश्रुति श्रेष्ठ।
शाश्वत सुख, चिरायु सुख सर्व सुमंगल इष्ट
'विमल' शब्द सुमनांजली, मंगल भाव विशिष्ट॥

मानसपुत्र डॉ. शेखरचन्द्र जैन

महाकवि योगेन्द्र दिवाकर

बोध वाक्य सत् शिव सुन्दर
अक्षर पुरुष सूक्ति प्रभाकर
'स्मृतियों के वातायन से'
मानसपुत्र डॉ. शेखरचन्द्र जैन
आगम और अध्यात्म मार्ग पर
भगवत्ता को व्यक्त कर रहे
तीर्थंकर वाणी का सम्पादन कर
उत्कृष्टता जिनकी कालातीत श्रुत
सत्य लिये साहित्य गगन पर
आच्छादित, अनुपम, असीम
अनंत की ओर आत्मिक
लिये सर्वज्ञता के शाश्वत स्वर।
विपुलबोध मानस तरंग की पूर्ति पर॥
बोधवाक्य सत् शिव सुन्दर।
अक्षर पुरुष सूक्ति प्रभाकर॥

स्वागत सप्तपदी

डॉ. कपूरचंद जैन *(खतौली)*

बोलिये स्वागत के दो बोल
दीजिए हृद्तंत्री को खोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(१)
अहमदाबाद नगर है प्यारा
सारे जग से है यह न्यारा
साबरमती नदी का कलकल
जिसका नहीं है मोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(२)
शेखरचन्द्र यहाँ हैं रहते
करुणा की धारा में बहते
दुःखी दलित मनुजों को लखकर
दिया हास्पिटल खोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(३)
बहुत दिनों तक खूब पढ़ाया
जैनागम को भी समझाया
खोज और संधान क्षेत्र में
नहीं है इनका तोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(४)
विद्वज्जन सब मिलकर आये
बड़े बड़े श्रेष्ठी पधराये
सब मिल अभिनन्दन करते
बोलें मीठे बोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(५)
एक और अवसर है आया
पाकर जन-जन है हर्षाया
दाम्पत्य की स्वर्णजयंती
रही सौभाग्य को खोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(६)
सम्पादक मण्डल हर्षाया
चुन-चुन शब्द कुसुम है लाया
'स्मृतियों के वातायन' में
भाव भरे अनमोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

(७)
हम सभी कामना हैं यह करते
अभिनंदन! अभिनंदन! कहते
आप शतायु होकर के दें
राष्ट्र दिशा अनमोल
बोलिये स्वागत के दो बोल

स्मृतियों के वातायन से

खंड : 1 (ब)

जैसा जाना

नज़रिया अपना-अपना

डॉ. शेखरचन्द्र को जिसने जैसा जाना

पृष्ठ 67 से 114

■ सेहरचंदो सेहरो

समप्पिद–मणीसी – सिरी सेहरचंदो अप्प–कुलस्स सेहरो अत्थि। सो बुंदेलखंड–वसुंधराए सुपुत्तो णो केवलो सिक्खाविदो, अवित्तु अत्थि माणव–जीवणस्स सिक्खणस्स पाण–वंतो समप्पिद–मणीसी। सो गुज्जर–पंत–णिवसंतो हिन्दी–जगे वि पासिद्धो। उच्चे पदे ठियोवि जण–जणाण पेरणप्पदायिणी–संजीवणी सम – दायिणी साहिच्च– सिरमोर – मणीसी महाविज्जालए वि पियो मणीसी समप्पिद जेणो साहिच्चे हिन्दीए। विस्सविज्जालए सुं च उच्चं–अज्झयण – अणुसंधाण – कत्तारापं चं णिद्देसगो।

पढमं णाणं तओदया– सेहरचंदो णिं भीग–सुद्ध– फुडु–विचारगो वि। सो पढमं णाणं अज्झयणं अज्झावणं चं महच्चं देज्जा, पच्छा दया–दाणं कुव्वेदि। माणव–जीवणस्स सव्वंगणिज्ज–महच्च–पुण्णं ठाविदुं सो सिक्खणं दाणं। पठणं – पाठणं च उद्देसं णेऊण पजण्णमाणो सेहरचंदो णाणं सव्वुवरिं मण्णिदूण णाणा विह–किरियं कुव्वेदि।

तमसो मा जोइ– गमयो – सिद्धंतं णेदूण धम्मे वि णव–णूदण–पजोगं कुव्वेदि। सो णवयार–महाजंत–पाढं पडि जणाण पेरदि। तस्स महामंतस्स झाण–पजोग–जोग–गुण–आचार–वियार–णीइं जणाणं सिक्खेदि। झाणं चं णवयार–महामंतस्स अपुव्वप्पजोगो। सो देसे विदेसेसु पसिद्धो। सहज–सरल–भावादो तं मंतं पाढ एदि जणाणं। जेहिं णिरोगा हुंति जणा, केंसर–आहि–बाहि–रोगं उवसंतं च पव्वेंति।

सो छत्ताणं विज्जत्थीणं च सहज–उवलहो। विज्जत्थी विसव्वे णम्मीभूया पणमेंति। सो णाणं दंसणं चरित्रं च रयणत्तयं च मूलगुणं मूलदिट्ठि धरिदूण आरियाणं अज्जिगाणं समणाणं समणीणं सेयंवर–जणाणं दिगंबर–परंपरा–जणाणं च मण्ण–मणीसी सेहरचंदो सेहरो।

सव्वप्पियो स सिक्खाणं, सिक्खग–गण–माणवी।
देसेसुं च पियो वाची, विदेसेसुं च सेहरो॥
से हरचंदो सेहरो
सिक्खग–सिक्खा मेहरो।
साहु–जणाण लेहरो
सेट्ठि–गुणाण णेहरो।

एग–सफल–कम्म–जोगी – तुमं धण्णो सेहरो कम्मठो कम्मगुणी कम्मधणी। सो जो

कज्जं णिय–हत्थे णएदि तं पुण्णं कुव्वेदि। सिक्खाए सह–सहेव धम्मं पडि समप्पिदो णिट्ठावंतो णिरंतरमेव णिय–उद्देसे वि संलग्गो। जो कल्लाण–कारिणी–सव्व–हिय–णिरोगिणी–संजीविणी–तेगिच्छं णिरोग–आरोग्ग–बड्ढणं इच्छमाणो तुमं सेहरो सेहरो होदि। सो धम्म–उवासगो कम्म–उवासगो णिम्मल–भावणा–जुतो सेहरो अहिणंदण–जोग्गो अहिवंदणं च।

जीवेज्ज सद–वासेज्जं, सिक्खग–सिक्ख–णायगो।
विण्ण जणाण विण्णेयो, दुक्ख–जणाण सेहरो॥

डॉ. उदयचंद्र जैन

अध्यक्ष, पालि–प्राकृत विभाग, सुखाड़िया यूनि., उदयपुर

■ विद्वानों के क्षेत्रपाल : डॉ. शेखरचन्द्र जैन

विद्वान्, ज्ञानी, डाक्टर (शब्द–पारखी) और पण्डित शब्द प्रायः पर्यायवाची माने जाते हैं। मनीषियों ने इन शब्दों की अनेक प्रकार से व्याख्यायें की हैं। एक नीतिकार ने कहा है– *''योऽन्तस्तीव्रपरव्यथाविधटनं जानात्यसौ पण्डितः''* अर्थात्– जो अपने हृदय में दूसरों की पीड़ा को दूर करना जानता है, वह पण्डित है। डॉ. शेखरचन्द्र जैन पर यह परिभाषा सही–सही घटित होती है। किसी भी सभा– सम्मेलन में यदि आयोजकों के द्वारा किसी विद्वान् की उपेक्षा या अनादर होता हुआ दिखाई देता है तो डाक्टर साहब को हमने अनेक बार भूल–सुधार न होने तक उनसे उलझते देखा है। उनके इसी गुण के कारण हमने एक बार उन्हें 'विद्वानों का क्षेत्रपाल' कह दिया था। बाद में यह सम्बोधन सर्वप्रिय हुआ। आज सभी यह मानते हैं कि विद्वानों के स्वत्व, स्वाभिमान और सम्मान की सुरक्षा के लिए आवाज उठाने वालों में डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक अग्रणी विद्वान हैं।

डॉक्टर साहब एक अतिथिसत्कार – परायण व्यक्ति हैं। जब कभी किसी निमित्त से हमारा अहमदाबाद जाना हुआ, उनका आतिथ्य ग्रहण किए बिना वहाँ से लौटना सम्भव ही नहीं हो सका। ऐसा ही अनुभव सभी विद्वानों का है। जो भी एक बार उनके सम्पर्क में आता है, उनकी इस आत्मीयता के कारण हमेशा के लिए उनसे जुड़ जाता है। उनकी महेमाननवाजी से आंग्लभाषा की यह उक्ति पूर्णतः सही सिद्ध होती है– ''To Welcome guest is a high Conduct'' अर्थात् – अतिथि–सत्कार करना एक श्रेष्ठ आचरण है। अक्षरजीवी पुरुष प्रायः एकान्तप्रिय एवं शुष्क स्वभावी होते हैं, परन्तु डाक्टर साहब के व्यक्तित्व में मिलनसारिता और मृदुभाषिता का संगम दृष्टिगत होता है।

डॉ. शेखर जैन कोरे पण्डित नहीं है, एक प्रेक्टीकल व्यक्ति हैं। साहित्य, शिक्षा, पत्रकारिता, संस्कृति–संरक्षण, धर्म–प्रचार, चिकित्सा और समाज–सेवा के क्षेत्र में उन्होंने अपनी सृजनात्मक क्षमता का अच्छा परिचय दिया है। जैसा वह बोलते या लिखते हैं, वैसा ही करके भी दिखाते हैं। आदिपुराण में कहा गया है– ''क्रियावान् पुरुषो लोके, सम्मतिं याति कोविदैः'' – सकारात्मक सोच वाले सक्रिय पुरुष ही सुविज्ञ पुरुषों के द्वारा सम्मानित होते हैं। डॉ. साहब को समाज में जो अत्यधिक समादर प्राप्त है, उसका श्रेय उनकी कर्मठता को ही है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर समाज के मध्य वह पुल का काम कर रहे हैं। आज की प्रथम आवश्यकता यही है कि संख्या–बल की दृष्टि से मुट्ठी भर हम सभी जैन लोग एकजुट दिखाई दें। जैन एकता की इस आवाज को वह हमेशा बुलन्द करते रहे हैं। देश–विदेश में अपने प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अपने इसी चिन्तन को आगे

बढ़ाया है। सैद्धान्तिक मतभिन्नता भले ही बनी रहे, किन्तु व्यावहारिक धरातल पर हमें एकमत दिखना ही चाहिए, अन्यथा हमारा वजूद ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाएगा।

ज्ञान और अनुभव की अपेक्षा हमारी और उनकी आयु में पाँच वर्ष और दो दिन का अन्तर कोई ज्यादा बड़ा अन्तर नहीं है, परन्तु उन्होंने हमें हमेशा अपना बड़ा भाई मानकर यथेष्ट समादर दिया है। अपनी इस स्वभावगत शालीनता के बल पर ही वह 'विशेष' की श्रेणी में अवस्थित हैं। अनेकानेक पुरस्कारों से सम्मानित होकर उन्होंने विद्वज्जगत का ही गौरव बढ़ाया है। उनकी अप्रतिम सेवाओं के प्रति सम्मान व्यक्त करने की भावना से इस अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन भारतीय संस्कृति की मूल पहचान 'कृतज्ञता' का संवाहक ही सिद्ध होगा। हमारी मंगल कामनायें हमेशा विद्वानों के इस क्षेत्रपाल के साथ हैं।

नरेन्द्र प्रकाश जैन *(फिरोजाबाद)*

संरक्षक- श्री भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद

❀ *जुझारू मनीषी डॉ. शेखरचन्द्र*

बुन्देलखण्ड प्रान्त की माटी में पला-बढ़ा आदमी अपनी अलग पहचान रखता है। यहाँ के लोगों की यह विशेषता जताने के लिये जन-मानस ने एक अच्छी कहावत गढ़ ली है- 'सौ दण्डी : एक बुन्देलखण्डी'। इस कहावत का अर्थ है- 'दण्ड बैठक लगाने वाले सौ पहलवानों का सामना करने के लिये एक सीधा-सादा बुन्देलखण्डी पर्याप्त है।'

बस, कुछ ऐसे ही जन्मजात जुझारू चरित नायक हैं हमारे भाई डॉ. शेखरचन्द्र।

विपन्न परिस्थितियों में जन्म और अभावों के आनन्द में लालन-पालन, यही उनके बालपने की कथा रही। नून-तेल-लकड़ी की चिन्ता से जूझती जवानी में जो समय बचा पाये उसका एक-एक क्षण 'अपने बल पर अपना उत्कर्ष' करने में नियोजित करके वे नित-प्रति पग-पग आगे बढ़ते गये। एक कवि मित्र ने कहीं लिखा था-

कुछ लिख के सो, कुछ पढ़े के सो। जिस जगह जागा सबेरे, उस जगह से बढ़ के सो।

सो मुझे लगता है यह पंक्ति बालक शेखर ने कहीं पढ़ ली थी और तब से अब तक व्यवहार में आठों याम उसका अनुवाद कर रहे हैं। इसके लिये उन्हें किस किस से कितना जूझना पड़ा है इसका कोई हिसाब नहीं है। कदम कदम पर विकटता न मिले तब तक कोई स्वावलंबी बन भी कैसे सकता है। शेखरचन्द्र सही अर्थों में 'सेल्फ मेड परसन' हैं, और इसका उन्हें गौरव है। इसीलिये तो उन सा मित्र या भाई पाकर हम भी गौरवान्वित हैं।

आज उनके लिये अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना हो रही है यह हमारे लिये प्रसन्नता की बात है। इस बात का पछतावा जरूर है कि इसमें कुछ देर हो गई। उनके कई शिष्यवत् महानुभावों तक के अभिनन्दन कब के निपट चुके और शेखरचन्द्र बैठे रहे। यह आश्चर्य की बात नहीं, उनकी चलती तो वे जीवन भर बैठे ही रहते। यह तो उनके मित्रों की करामात है कि बलात् यह आयोजन कर डाला और इस उपसर्ग को सहने के लिये उन्हें जैसे-तैसे तैयार कर लिया है। उन सभी आयोजक मित्रों को बारम्बार बधाई।

हम इस आयोजन की सब प्रकार सफलता की कामना करते हुए भाई शेखरचन्द्र के लिये निरोग दीर्घायु और यशवृद्धि की कामना करते हैं।

श्री नीरज जैन *(सतना)*

■ नहीं जन्मा पुरुष यह हारने को

डॉ. शेखरचन्द्र जैन बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। 'चलना हमारा काम है' उनका जीवनसूत्र है। वरना ७० वर्ष की आयु में लोग 'बांध गठरिया' का सूत्र का स्मरण करते हुए जीवन एवं जनजीवन से विमुख हो जाते हैं। 'दिनकर' साहित्य पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त करनेवाला यह विद्वान 'रश्मिरथी' में कर्ण के बारे में श्रीकृष्ण द्वारा कही गई उक्तिको सार्थक करता है : 'नहीं जन्मा पुरुष यह हारने को'।

डॉ. जैन हिन्दी के जानमाने विद्वान एवं जैनधर्म के प्रकाण्ड पंडित हैं। वलिया आर्ट्स–कोमर्स कालेज के प्राचार्य के रूप में सुदीर्घ अवधि तक सेवारत रहने के पश्चात् श्रीमती सद्गुणाबहन आर्ट्स कालेज, अहमदाबाद में हिन्दी के विभागाध्यक्ष के रूप में अवकाश–प्राप्ति तक काम करते रहे।

जब वे भावनगर में स्थित वलिया कालेज में प्राचार्य थे, प्राकृत भाषा एवं जैन–साहित्य के प्रति वे प्रबल रूचि रखते थे। इस विषय में विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त करने की भी उनकी इच्छा थी, लेकिन विश्वविद्यालय के कठोर नियमों के कारण उनका यह सपना साकार नहीं हो सका।

एक तरफ उनकी कलम काव्यरचना एवं गद्यलेखन के प्रति सक्रिय थी, तो दूसरी ओर उनका मन पंछी धर्म के ज्ञात–अज्ञात रहस्यों को पूरी तरह समझने के लिए बेचैन था।

जैनधर्म के प्रति लगाव एवं समर्पण भाव के कारण 'मुक्ति का आनंद',जैन धर्म सिद्धान्त और आराधना 'तन साधो, मन बाँधो', मृत्यु महोत्सव, मृतुंजयी केवली राम (उपन्यास) ज्योतिर्धरा (कहानी संग्रह), आचार्य कवि विद्यासागरका काव्य वैभव, आर्यिका ज्ञानमती (जीवनी) जैन शब्दावली एवं श्री कापडिया अभिनंदन ग्रंथ, आर्यिका ज्ञानमती अभिवंदन ग्रंथ, गुजरात की निर्देशिका, गुजराती कल्पसूत्र एवं जिनवाणी का संपादन आदि किताबों एवं शोधलेख उनकी विद्याव्यासंगिता के सबूत हैं।

डॉ. जैनने गुजरात विद्यापीठ की जैन शोधपीठ का दायित्व भी संभाला। उनकी विद्वता एवं प्रशासकीय कुशलता को ध्यान में रखते हुए जैन विश्वभारती, लाडनू (राजस्थान) के कुलपति चयन की पेनल में भी उनका नाम प्रस्तावित हुआ था। उनको जैनधर्मलक्षी प्रवचन के लिए अमरिका, यू.के. आदि से लगातार आमंत्रण मिलते रहे हैं और अनेक उल्लेखनीय पुरस्कारों से उनका साहित्य सम्मानित होता रहा है। साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारी के रूप में डॉ. जैन की सेवाएँ काबिल–ए–तारीफ रही हैं।

डॉ. जैन को मैं तीन दशकों से जानता हूँ। उनका व्यक्तित्व अनेक विकट परिस्थितियों के बीच विकिसत हुआ है। वे संकल्पव्रती हैं। झुकना उनका स्वभाव नहीं। सच्चाई के लिए वे जुझारू भी बन सकते हैं, लेकिन दिल में कटुता कभी नहीं। उनके हृदय में मैत्री भावना का निर्मल निर्जर अहर्निश बहता रहता है। इस अर्थ में वे शतप्रतिशत जैन हैं। सेवा भावना ने ही उनको आम आदमी की चिन्ता करना सिखाया है। 'समन्वय ध्यान साधना केन्द्र' के ट्रस्टी एवं द्वारा संचालित 'श्री आशापुरा माँ जैन चेरिटेबल अस्पताल' की सफलतापूर्वक अध्यक्षता करते हुए उन्होंने मानवता का महान आदर्श चरितार्थ किया है।

डॉ. जैन एक सन्निष्ठ पत्रकार एवं सम्पादक हैं। वर्ष–२००० के जैन पत्रकारिता के श्रेष्ठ राष्ट्रीय पुरस्कार 'श्रुतसंवर्धन' से एवं गुजरात के महामहिम राज्यपालश्री ने भी 'जैन विद्वान' के रूप में उन्हें सम्मानित किया है।

डॉ. शेखर जैन मनस्वी भी हैं और तपस्वी भी। उनका जैनत्व कायरता का समर्थक नहीं, वीरत्व का परिपोषक है। वे 'शेखरचन्द्र' भी है और 'चन्द्रशेखर' भी। वाणी में ब्राह्मणत्व, साहित्यिकता में क्षात्रत्व, एवं निस्वार्थ सेवा

में जैनत्व ने डॉ. जैन की विश्वफलक पर एक अलग पहचान प्रस्थापित की है। उनका अभिनंदन, कंटकाकीर्ण राह पर चलते प्रज्ञापुरुष के स्वावलम्बन का सम्मान है।

जिनवरों से हमारी प्रार्थना है कि इस कर्मठ सेवाव्रती एवं धर्मनिरत विद्वान को निरामय एवं शतायु का वरदान परिप्राप्त हो।

डॉ. चन्द्रकान्त मेहता

पूर्व उपकुलपति, गुज. युनिवर्सिटी, अहमदाबाद

■ *एक विरल व्यक्तित्व*

डॉ. शेखरचंद्र जैन के संबंध में कुछ कहना आसान काम नहीं है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी ही नहीं कैलडोस्कोपिक है। वे प्रारंभ में प्राध्यापक थे, फिर लेखक, साहित्यकार हुए, फिर प्राचार्य हुए, कृतकार्य होकर जैनाचार्य हो गए। विचित्र बात यह है कि आस्तिक होते हुए भी साहित्य को छोडकर किसी धर्म–संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुये और मेरे शिष्यों में एक राधावल्लभी, दूसरा ब्रह्मकुमारी, तीसरा स्वामिनारायण चौथा वैष्णव और पाँचवा जैनाचार्य हुआ। डॉ. शेखर जैन अच्छे वक्ता तो प्रारंभ से ही थे। आचार्य रजनीश की शैली, छटा और उन्मुकता से वे बोलते हैं। फिर वे कवि भी हैं उससे उनके भाषण प्रभावशाली होते हैं। मैंने अभी गत वर्ष ही जैन इण्टरनेशनल सेनफ्रांसिस्को में उन्हें सुना। जैन दर्शन के वे अध्येता हैं, किन्तु कहने का ढंग उनका अपना है। उनकी वाणी में ओज है, वे शब्द को साकार कर देते हैं, वे जब कोई बात कहते हैं तो ठेट हृदय तक पहुँचती है।

मैं किसी बज्म तक नहीं महदूद, अंजुमन अंजुमन हुनर मेरा।
लब्ज को छूकर फूल कर दूं, यही है फन, यही हुनर मेरा॥

डॉ. शेखर को मैं बहुत लम्बे अर्से से जानता हूँ। वे एम.ए. में पढ़ते थे तब से। किन्तु मेरे निकट संपर्क में वे तब आये, जब उन्होंने मेरे निर्देशन में शोध–छात्र के रूप में प्रवेश प्राप्त किया। धुन के वे पक्के हैं, जो ठान लेते हैं, करके ही मानते हैं। शोधार्थी के रूप में मेरे पास आये तो कहने लगे, 'मुझे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि दिनकर पर शोधकार्य करना है।' उन दिनों भाषा भवन के निदेशक ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता उमाशंकर जोशी थे। वे मानते थे कि जीवित कवियों पर शोध नहीं हो सकती। मेरे सामने एक समस्या उपस्थित हो गई। विभागाध्यक्ष के रूप में मैंने शेखर का समर्थन किया। प्रवेश विलंबित हो गया, किन्तु अन्ततोगत्वा जोशीजी सहमत हो गए और शेखर को पीएच.डी. में इच्छित विषय पर प्रवेश मिल गया। मेधावी और परिश्रमी तो वे थे ही, जल्दी ही उनका शोध–प्रबंध पूरा हो गया।

उनकी मौखिक परीक्षा के लिए नियुक्त हुए अलीगढ मुस्लिम युनिवर्सिटी के वाईस चान्सेलर प्रो. हरवंशलाल शर्मा। बड़े आदमियों की बड़ी बातें। बहुत लिखा पढ़ी की तब जाकर आने को राजी हुए। आखिर आये। मौखिक परीक्षा हुई। जमकर प्रश्नोत्तर हुए। बोलने में तो शेखर तेजर्रार थे ही, बोलते चले गए। लगभग एक डेढ घण्टे में मौखिकी पूरी हुई। परीक्षा के बाद उनको बाहर भेज दिया और मौखिकी की रिपोर्ट लिखना शर्मजी ने शुरू किया अंग्रेजी में एक पेज लिखा, दूसरा पेज लिखा, तीसरा पेज पूरा होने को आया। मैं दम साधे देखता रहा, शांत बैठा रहा। परीक्षा शेखर की थी, पर इतनी लम्बी रिपोर्ट देखकर धबरा मैं रहा था कि डॉ. शर्माजी मेरे शोध–छात्र को पास करेंगे या फैल। मेरे निर्देशन में दो दर्जन शोधार्थी पीएच.डी. हुए पर मौखिकी परीक्षा की इतनी बड़ी रिपोर्ट तो कभी किसी परीक्षक ने नहीं लिखी। आखिर शर्माजी ने रिपोर्ट पूरी की। अंतमें लिखा, 'शोधार्थी को ससम्मान

पीएच.डी. की उपाधि प्रदान कर दी जाय।'

जैसे ही उन्होंने यह वाक्य लिखा, मेरे जी में जी आया। मेरे मुंह से निकला, 'यही लिखना था तो फिर तीन पेज लिखने की क्या आवश्यकता थी?' शर्माजी ने एक अर्थ भरी दृष्टि से मुझे देखा और फिर अपनी लिखी रिपोर्ट फाड कर रद्दी की टोकरी में डाल दी। कहने लगे– 'अच्छा तो आप लिखिए।'

मैंने हिन्दी में संक्षिप्त, सारगर्भित रिपोर्ट लिखी। उन्होंने हस्ताक्षर किये। युनिवर्सिटी रजिस्ट्रार को रिपोर्ट देकर हम बाहर निकले वहाँ शेखर के दोस्त उन्हें घेरे खड़े थे। हमें देखकर कहने लगे, 'शेखर को इतनी जल्दी आपने पीएच.डी. की डिग्री दे दी। हमें तो बरसों लग गये थे।'

यह सुनकर शर्माजी ने कहा, 'तुममें और इनमें बहुत फर्क है। तुम अंगुली के थे, ये गोदी के हैं।' फिर स्पष्ट करते हुए कहने लगे कि एक बार किसीने ज्ञानदेव से भक्ति का मार्ग पूछा। ज्ञानदेव ने कहा मैं क्या जानूं मैं तो गुरू की गोदी में था। अंगुली पकड़े पकड़े तो कबीर चल रहे थे मार्ग वहीं जानते हैं। उससे पूछो।'

शर्माजी के वचन वेधक ते। उनका मर्म मैं समझ सकता था। किन्तु जो उन्होंने कहा वह सच था। शेखर सचमुच अन्य शिष्यों की तुलना में श्रद्धालु थे। इसी कारण उनके प्रति मेरा विशेष ममत्व था। जिसको लक्ष्य करके डॉ. शर्माजी ने यह कहा था। वह ममत्व आज भी है और आगे भी रहेगा।

डॉ. शेखर की एक ध्यानपात्र विशेषता यह है कि दिगंबर जैन मतावलंबी होते हुए भी वे सर्वधर्म समभावी हैं। भारतीय संस्कृति के वे संवाहक हैं। साहित्य, दर्शन के मर्मज्ञ हैं। अध्ययन–अध्यापन, लेखन, मनन उनका अध्यव्यसाय है। तार्किक प्रवृत्ति के कारण कुछ लोगों को वे कठोर लग सकते हैं किन्तु 'नारिकेल समाकारा दृष्यंते ही सुहृदजना' कथनानुसार वे मित्रों के लिए नारियल के समान उपर से कठोर अंदर से कोमल हैं विरोधियों के लिए भले 'अन्येबदरिकाकार बहिरेव मनोहरा।' झरबेरी के बेर के समान उपर से मनोहार होते हुए भी कठोर हो जाते हैं। ऐसे श्री शेखरचंद्र जैन की धर्मचेतना विद्वत्ता और पुनीत साधना निरामयी रहे। उनका ऐसे सरल और विरल व्यक्तित्वों के लिए ही महर्षि चाणक्य ने कहा है–

"शैले–शैले न माणिक्यं, मौक्तिकम् न गजे गजे,
साधवो न हि सर्वत्र, चंदनं न वने वने।"

डॉ. अम्बाशंकर नागर

निदेशक– भारतीय भाषा संस्कृति संस्थान, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

■ *જૈન સમન્વયના પ્રખર હિમાયતી*

હું ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈનને ૧૯૯૫થી ઓળખું છું. તેઓની સાથે પ્રથમ મુલાકાત જ્યારે તેઓ ફ્રેંકફર્ટ થી ન્યૂયોર્ક જઈ રહ્યા હતા ત્યારે થઈ હતી. પછી અઠવાડિયા પછી ટેક્સાસના શહેર ડલાસમાં તેઓ દેરાસરમાં પ્રવચન કરી રહ્યા હતા ત્યારે થઈ અને હું તેમનાં પ્રવચનોથી ખૂબ જ પ્રભાવિત થયો. તેઓને મારા ગામ વેકો લઈ ગયો. જોકે ત્યાં જૈન હું એકલો જ છું પણ બધા ભારતીય પરિવારોને બોલાવી તેમનું પ્રવચન રાખેલ. ત્યારપછી પણ એક-બે વખત તેઓ મારા ઘરે આવ્યા. અમો પરિચિત માંથી મિત્રો બની ગયા અને પછી તો અવાર-નવાર મળવાનું બનતું જ રહ્યું.

હું સૌથી વધુ પ્રભાવિત થયો તેમની પ્રવચન શૈલીથી. તેઓ જૈન ધર્મના ગૂઢ તત્વોને ખૂબ જ સરળ ભાષામાં સમજાવી શકે છે. શૈલી ખૂબ જ રમતિયાળ છે જેથી સાંભળવાનું ગમે. બીજું પાસું તેમનું નમસ્કાર

ધ્યાન અંગેનું છે. તેઓ પંચ પરમેષ્ઠીનો સાક્ષાત્કાર કરાવવાની અદ્‌ભુત ક્ષમતા ધરાવે છે. જેનો મને પ્રત્યક્ષ અનુભવ છે. ત્રીજું તેઓ સમાજસેવા અને સૌથી વધુ ગરીબોની સેવા કરવાની ભાવના અને ધગશવાળા છે. તેઓએ ખરા અર્થમાં જૈનધર્મનું હાર્દ કરુણા-સેવા, અને દાનમાં પ્રમુખ ઔષધિ દાન ને સફળ કરી બતાવ્યું છે. 'શ્રી આશાપુરા મા જૈન હોસ્પિટલ' કે જ્યાં હું બે વખત પોતે જઈ આવ્યો છું અને ત્યાં ટાંચાં સાધનોથી જે રીતે તેઓ ગરીબોની સેવા કરી રહ્યા છે તે તેઓની ક્ષમતા, ભાવના અને કાર્યકુશળતાનું પ્રતિબિંબ છે. હું તેમના આ કાર્યને ખૂબ બિરદાવું છું.

'જૈના'ના કન્વેનશનમાં પણ તેઓ બે વખત પધાર્યા અને પોતાના પ્રવચન અને ધ્યાન શિબિર દ્વારા લોકપ્રિય બન્યા. આ વાનતે દક્ષિણ ભારતમાં ગયેલી જૈનાની યાત્રામાં તેઓએ ૧૫ દિવસ સાથે રહી જે સ્વાધ્યાય કરાવ્યો અને સૌની સાથે દૂધમાં સાકર ભળે તેમ ભળ્યા તે તેમના સ્વભાવની નિખાલસતા અને પ્રેમાળપણું સૂચવે છે.

જૈન એકતા માટે તેઓના મનમાં સતત ચિંતા રહી છે. બધા એકમાત્ર જૈન તરીકે જ ઓળખાય એવી તેમની ખેવના રહી છે અને તે માટે પ્રયત્નશીલ રહ્યા છે. સંકુચિત દૃષ્ટિવાળાની પરવા કર્યા વગર કે દબાણ ને વશ થયા વગર તેઓ જૈન એકતા માટે ઝઝૂમતા રહ્યા છે.

આવા સાહિત્યકાર, વક્તા, જૈન સેવક, જૈન એકતાના સમર્થક ડૉ. જૈનનું સન્માન તે ખરેખર જૈનત્વનું જૈન એકતાનું સન્માન છે. હું તેમની દીર્ઘાયુ અને સ્વાસ્થ્ય માટે પ્રભુને પ્રાર્થના કરું છું કે તેઓ વધુ ને વધુ સેવાકાર્યો કરતા રહે.

કિરીટભાઈ દફતરી *(પ્રેસીડેન્ટ, જૈના, અમેરીકા)*

■ *ડૉ. શેખરચન્દ્ર જૈન - જેવા નિહાળ્યાં*

જાહેર જીવનમાં અનેક વ્યક્તિઓના પરિચયમાં આવવાના પ્રસંગો બનતા હોય છે પણ અનાયાસે થતો પરિચય એક આત્મીય મૈત્રીમાં પરિણમે એ એક સુખદ અનુભૂતિ હોય છે. આવી સુખદ અનુભૂતિ ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનના પરિચયથી થઈ. મૈત્રી થવા માટે દીર્ઘ પરિચય જરૂરી નથી. પ્રથમ પરિચયે ગાઢ મૈત્રીનું સ્પંદન અનુભવાય અને લાંબા પરિચયના અંતે પણ મૈત્રીની ઉષ્મા ન અનુભવાય એવું બનતું હોય છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનના પ્રથમ પરિચયે જ મૈત્રીભાવ અનુભવ્યો જે આજ સુધી અકબંધ છે. આજથી લગભગ ૨૦ વર્ષ પહેલાં તેઓ કોઈ કામ પ્રસંગે મને મળવા ગાંધીનગર આવ્યા હતા. તે વખતે તેઓ ભાવનગરની કોલેજમાં હિન્દીના પ્રાધ્યાપક તરીકેની સેવાઓ આપતા હતા. તેઓ જ્યારે પ્રથમ મળ્યા ત્યારે જ તેમની વાત કરવાની પ્રભાવશાળી શૈલી, આત્મવિશ્વાસથી છલકાતો રણકાદાર અવાજ; તાર્કિક રજૂઆત, ઉત્કૃષ્ટ ભાષાવૈભવ અને આરોહ-અવરોહ સાથેના સ્પષ્ટ ઉચ્ચારો વગેરેથી હું પ્રભાવિત થયો. અલબત્ત આ બધા પાછળ વિદ્વત્તા તો હતી જ. આમ એક સમગ્ર વ્યક્તિત્વનો અનુભવ થયો. આ પહેલો પરિચય જે ત્યારે જ મૈત્રીમાં પરિણમ્યો. આમ એક બુદ્ધિશાળી, વિદ્વાન સૌજન્યપૂર્ણ, સાહસ, સહૃદયી અને ઉષ્માપૂર્ણ વ્યક્તિ તરીકેની છાપ મારાં માનસપટ પર અંકિત થઈ. જે આજ સુધી માત્ર જળવાઈ જ નથી રહી પરંતુ ઉત્તરોત્તર બળવત્તર બની છે. માનું છું કે આજ બાબત વ્યક્તિનું ખરું હીર છે. જે એની અસલિયત ને જાળવી રાખે છે. આ થઈ એમના અંગત વ્યક્તિત્વની પિછાન. એક ગમે એવું વ્યક્તિત્વ.

પ્રાધ્યાપક તરીકે તેઓ એક આદર્શ દૃષ્ટાંત પુરું પાડી શકે તેવી વ્યક્તિ ઉત્તમ પ્રાધ્યાપકમાં બે ગુણ મુખ્ય

હોવા જોઈએ. એક તો પોતાના વિષયની સજ્જતા-વિદ્વતા અને બીજુ પોતાના વિદ્યાર્થીઓ પ્રત્યે વાત્સલ્યભાવ-પ્રેમ. ડૉ. શેખરચંદ્ર બન્ને ગુણો ધરાવે છે. ડૉ. શેખરચંદ્ર પોતાના વિષયમાં અદ્‌ભુત પ્રભુત્વ ધરાવે છે. તેમની સાથેની વાતચીતમાં તેમના વિશાળ વાચન અને ઊંડા અભ્યાસ- અધ્યયનની પ્રતીતી સતત થતી રહે છે. તેમની સાથે તમે કોઇ પણ વિષયની ચર્ચા કરો તો તેઓ પોતાનો અભિપ્રાય-મંતવ્ય તર્કબદ્ધ રીતે માહિતી સભર વિગતો સાથે રજૂ કરે.

પોતાના અધ્યાપનને લગતાં વિષયની સાથે જૈન તત્ત્વજ્ઞાન જેવા અતિગહન અને ઊંડાણભર્યા વિષયનું ખેડાણ કરીને તેમાં સિદ્ધહસ્ત થવું અતિ દુષ્કર કાર્ય છે. આ કાર્ય ડૉ. જૈન સહજતાથી કરી શક્યા છે. આ બાબત તેમની જ્ઞાન-પિપાસા, લગન, નિષ્ઠા અને પરિશ્રમ જેવાં ઉમદા ગુણોને આવિષ્કૃત કરે છે. જૈન તત્વજ્ઞાન અતિ વિશાળતમ અને અતિ સૂક્ષ્મતમ વિભાવનાઓ (Concepts)ના તર્કબદ્ધ ગહન ચિંતનને સ્પર્શે છે. ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન, જૈન તત્વજ્ઞાનની આ વિભાવનાઓને સરળ સ્પષ્ટ અને સરળતાથી સમજાય તેવી સાદી ભાષામાં અભિવ્યક્ત કરી શકે છે. વિદ્વત્તાની આ એક પારાશીશી છે.

પોતાના વિદ્વત્તાપૂર્ણ પ્રવચનો દ્વારા તેઓ દેશ અને વિદેશમાં જૈન ધર્મ-દર્શનના મર્મથી અનેક લોકોને અવગત કરાવીને એક મોટી સેવા કરી રહ્યા છે. પોતાના પ્રકાશન ''તીર્થંકર વાણી''ના ઉપક્રમે પણ લોકો સુધી જૈનતત્ત્વજ્ઞાન નો લાભ પહોંચાડીને એક મોટી સેવાકીય પ્રવૃત્તિ તેઓ નિઃસ્વાર્થ ભાવે કરે છે. જે અભિનંદનને પાત્ર છે.

ડૉ. શેખરચંદ્રના વ્યક્તિત્ત્વનું બીજું એક પાસું પણ નોંધનીય છે. તે છે સેવાકીય પ્રવૃત્તિનું. તેઓએ પોતાની વિદ્વતા પ્રવચનો પૂરતી સીમિત નથી રાખી. પણ સેવાકીય પ્રવૃત્તિ મારફતે કાર્યાન્વિત પણ કરી છે. આ એક સુભગ સમન્વય ગણી શકાય. ડૉ. શેખેચંદ્ર વાણી અને વ્યવહારથી ઉત્તમ જૈન છે. તેઓ એક ટ્રસ્ટની રચના કરીને તબીબી ક્ષેત્રે સેવાકીય પ્રવૃત્તિ કરી રહ્યા છે. તેઓ પાતાના વિસ્તારના સામાન્ય અને ગરીબ લોકોને રાહતના દરે અથવા નિઃશુલ્ક તબીબી સેવા આપવાનો સ્તુત્ય પ્રયાસ કરીને ઉમદા ઉદાહરણ પુરુ પાડી રહ્યા છે.

આવી બહુમુખી પ્રતિભાસંપન્ન વ્યક્તિનું જાહેર અભિવાદન થાય તે ખૂબ જ પ્રશંસનીય અને આવકારદાયક પગલું છે. આ માટે સંબંધિત તમામ આયોજકો અભિનંદનના અધિકારી છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર પોતાની ઉત્તમ અને ઉમદા પ્રવૃત્તિઓ દીર્ઘકાલ કરી શકે અને તેમના દ્વારા સમાજને વધારે ને વધારે લાભ મળતો રહે તેઓ તંદુરસ્ત દીર્ઘાયુ ભોગવે એવી મંગલકામનાઓ પાઠવું છું.

અરવિંદ સંઘવી *(અમદાવાદ)*

પૂર્વ શિક્ષણ અને નાણાં મંત્રી, ગુજરાત રાજ્ય

■ *सतह से शिखर तक शेखर जैन*

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके हृदय में रही हुई चेतना एवं उससे जुड़े अनेक प्रकार के संस्कारों में निहित होता है। जितनी गहरी जड़ें अतीत से जुड़ी होती हैं; उतनी ऊँची फुनगियाँ आकाश को छूती हैं। कभी–कभी तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व ही एक विचारधारा या उसका प्रतीक बन जाता है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरश्चरैति॥

'ऐतरेय ब्राह्मण' से उद्धृत उक्त श्लोक किसी भी व्यक्ति में विद्यमान गतिशीलता के गुण की महत्ता दर्शाता है। प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि "गतिशील व्यक्ति मधु पा लेता है और आगे बढ़नेवाला स्वादिष्ट उदुम्बर फल भी प्राप्त कर लेता है। देखो, अविराम रूप से रात-दिन गतिशील रहने के कारण सूर्य सारे विश्व में वन्दनीय है। अतः दृढ़ निश्चय से जीवन में निरन्तर कदम बढ़ाते चलो।"

मैंने अपने जीवन-काल में अनेक ऐसे व्यक्तियों को देखा है जो सतह से शिखर तक पहुँचने में कामयाब रहे हैं। संस्कारों की धरोहर ने उसे आगे बढ़ने में हवा-पानी का कार्य किया, वे सतत गतिशील रहे तथा परिस्थितियों की परवाह न करते हुए आगे बढ़ते रहे। मंजिल के लक्ष्य को अपने सामर्थ्य के अनुसार आगे ढकेलते गए और नए-नए, कभी-कभी बहुआयामी शिखर भी बनाते गए। श्री शेखर जैन भी उनमें से एक हैं।

अपने मित्र डॉ. शेखरचंद्र जैन की जिन्दगी के बड़े हिस्से से मैं परिचित हूँ। साधारण व्यापारी परिवार में जन्मे डॉ. जैन, प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक बनें और वहीं से प्रारम्भ हुई उनकी अध्ययन-अध्यापन की जिन्दगी। गुजरात के विभिन्न कॉलेजो में हिन्दी-प्राध्यापक के पद पर कार्य करते हुए उन्होंने अपने अध्ययन का दायरा बढ़ाया एवं जैन-दर्शन में विद्वता प्राप्त की। आज वे जैन धर्म के विद्वान, ज्ञाता और वक्ता माने जाते हैं। वर्ष में एक-दो बार अमेरिका सहित पश्चिम के देशों के निवासी जैन धर्म के अनुयायी, उन्हें सुनने के लिए आग्रह करके बुलाते हैं।

परिवार धर्म निभाने में भी डॉ. जैन, खूब सफल हैं। डॉ. जैन ने इन दिनों एक चेरिटेबल होस्पिटल का कार्य आरम्भ किया है। अपने स्वभाव के अनुसार रातो-दिन उसी कार्य में पूरी लगन से जुटे हुए हैं।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह डॉ. जैन को अच्छा स्वास्थ्य एवं इतनी लम्बी उम्र दें कि इस सेवाभावी व्यक्ति का लाभ समाज को लम्बे समय तक मिलता रहे।

जे.पी. पाण्डेय *(अहमदाबाद)*
उपाध्यक्ष, गुजरात प्रदेश कांग्रेस

■ *સ્નેહી આત્મીય વિદ્વાન મિત્ર*

સ્નેહીશ્રી શેખરચંદ્ર જૈનનો પરિચય પર્યુષણ વ્યાખ્યાનમાળાથી થયો. વિદ્યાર્થી અવસ્થામાં હું પર્યુષણ વ્યાખ્યાનમાળા સંભાળવા જતો હતો ત્યારે શેખરભાઈનું વ્યાખ્યાન અચૂક સાંભળતો હતો. તે સમયે બીજો કોઈ ખાસ પરિચય બંધાયો નહીં પરંતુ તેઓ એક સુંદર વ્યાખ્યાતા છે. તેમના વિશે જાણ્યું કે તેઓ કોલેજમાં પ્રાધ્યાપક છે. ત્યારબાદ જુદા જુદા સેમિનારમાં મળવાનું થયું અને સંબંધમાં ઘનિષ્ઠતા વધતી ગઈ. સર્વપ્રથમ પૂ. આચાર્યભગવંત વિજયશ્રી ચંદ્રોદયસૂરિજી મ.સા.ની નિશ્રામાં અમદાવાદમાં પાંજરાપોળમાં વિદ્વદ્ ગોષ્ઠિનું આયોજન થયું હતું તે વખતે તેમની સાથેના સંબંધમાં અભિવૃદ્ધિ થઈ. ત્યારબાદ તો દિનપ્રતિદિન આ સંબંધ વધુ ને વધુ ઘનિષ્ઠ બનતો ગયો. આજે તો અમારી મૈત્રી અતૂટ બની છે. અમદાવાદમાં અવારનવાર મળવાનું થાય પણ દરેક વખતે અમે મળ્યા છીએ માત્ર આત્મીય સ્વજન તરીકે જ. તેમણે ક્યારેય પોતાના પદનો કે હોદ્દાનો રૂઆબ દાખવ્યો નથી તેમજ ક્યારેય તેમના મુખ ઉપર પદભાર પણ જોવા મળ્યો નથી.

મૂળ હિન્દી ભાષી પ્રદેશના હોવા છતાં શેખરભાઈ ગુજરાતમાં રહી સંપૂર્ણ ગુજરાતી બની ગયા છે. તેઓ ગુજરાતી બોલે ત્યારે તેમની ગુજરાતી ભાષા ગુજરાતીઓ કરતાં વધુ મધુર અને કર્ણપ્રિય લાગે છે.

આથી તેઓ જ્યારે પ્રવચન આપે ત્યારે તે વધુ પ્રિય લાગતા હોય છે. તેઓએ ગુજરાતના વિભિન્ન ભાગોમાં અધ્યાપન કાર્ય કર્યું છે. મૂળે અધ્યાપકનો જીવ હોવા છતાં તેઓ પહેલા જૈન શ્રાવક છે. જ્યાં પણ જાય ત્યાં સર્વપ્રથમ જૈન ધર્મના નિયમો પ્રમાણે સુવિધા પ્રાપ્ત થશે કે નહીં તેની ખાતરી કરી લે. નવકારશી અને ચૌવિહાર અચૂક કરે. આથી તેમની ધર્મ પ્રત્યેની નિષ્ઠાનો ખ્યાલ આવે છે. ભોજનમાં પણ જૈન ધર્મના નિયમાનુસાર ભોજનની ખાતરી પણ કરી લે. આથી તેમની સાથે યાત્રા કરવામાં હંમેશા રાહત રહે. અમે ઉદયપુર યુનિ.માં સેમિનાર પ્રસંગે સાથે હતા તથા આચાર્ય મહાપ્રજ્ઞજીની નિશ્રામાં આયોજિત શ્રાવકાચાર સેમિનાર માટે સુરત સાથે ગયા હતા. તેમના વિચારો સ્પષ્ટ અને જે વાત ન સમજાય તે માટે તેઓ હંમેશા જિજ્ઞાસા દાખવે. ક્યારેય કોઈનીય શેહમાં તણાય નહીં. સાચું કહેતાં કે પૂછતાં જરાય ખચકાય નહીં; આ તેમની ખાસિયત છે. તેમની અભ્યાસરુચિ જબરી છે. કોઈપણ વિષય ઉપર બોલતાં પહેલાં તે વિષયને આત્મસાત્ કરી લે અને પછી જ તે વિષય ઉપર બોલે.

અમુક વર્ષ પૂર્વે તેઓ ગુજરાત વિદ્યાપીઠમાં આંતરરાષ્ટ્રીય જૈન વિદ્યાકેન્દ્રમાં જોડાયા હતા. આ કેન્દ્રના પ્રથમ વડા શ્રીમતી મધુસેન હતા. તેમના અવસાન પછી આ કેન્દ્રની ગતિવિધિ મંદ પડી ગઈ હતી. જૈન કેન્દ્રની પ્રવૃત્તિ વેગવંતી બને તે માટે શ્રી શેખરભાઈને પસંદ કરવામાં આવ્યા. તેમણે જૈન કેન્દ્રમાં અધ્યયન કાર્ય વધુ સઘન બને તથા જૈનકેન્દ્ર વધુ પ્રભાવી ઢંગે કાર્ય કરે તે માટે ઘણા ફેરફારો કર્યા અને તેને પરિણામે એક નવી ચેતનાનો ઉદય થયો હતો. નવી નવી પ્રવૃત્તિઓ શરૂ કરી જનતામાં જૈનવિદ્યા પ્રત્યે અભિરુચિ પેદા કરવામાં તેઓ સફળ રહ્યા હતા. પરંતુ દુર્ભાગ્યે જૈનવિદ્યાકેન્દ્ર આવા સન્નિષ્ઠ કાર્ય કરનારની સેવાઓ લાંબા સમય સુધી લઈ ન શક્યું.

શ્રી શેખરભાઈ જન્મે દિગમ્બર જૈન હોવા છતાં તેમનામાં દિગમ્બરત્વ કે સંપ્રદાયનું અભિનિવેશપણું જોવા મળતું નથી. તેઓએ મહાવીર જૈન વિદ્યાલયમાં ગૃહપતિ તરીકેની વર્ષો સુધી સેવાઓ આપી એક નવો આદર્શ રચ્યો હતો. માત્ર જૈન તરીકે જ રહી જૈન શાસનની કેટલી મોટી સેવા થઈ શકે તેનો આ એક ઉત્તમ નમૂનો છે. મહાવીર જૈન વિદ્યાલય શ્વેતામ્બર સંચાલિત સંસ્થા હોવા છતાં તેમણે ત્યાં જૈન ધર્મના મૂળભૂત સિદ્ધાંતોનું અધ્યાપન કરાવ્યું અને વિદ્યાર્થીઓને જૈન ધર્મના અનુરાગી બનાવ્યા હતા. તેમણે તીર્થંકર વાણી નામનું સામયિક પ્રસિદ્ધ કર્યું. ત્રણ ભાષામાં પ્રકાશિત થતા આ સામાયિકમાં જૈનધર્મના મૌલિક સિદ્ધાન્તો વિષયક લેખો તો લખ્યા પણ સાંપ્રત સમસ્યાઓ અને પ્રશ્નો બાબતે નિષ્પક્ષ ચર્ચાત્મક તંત્રી લેખો લખી સમાજને સાચી માહિતી પૂરી પાડવાની ઉમદા કામગીરી બજાવી છે. સામયિક પ્રગટ કરવું તો સરળ છે પણ નિયમિત અને સ્તરીય લેખો છપાતા રહે તે જોવું અત્યંત કપરું કામ છે. શેખરભાઈ આ કાર્ય નિર્વિઘ્ને, એકલા હાથે કરી રહ્યા છે તે માટે તેમને ખૂબ ખૂબ ધન્યવાદ આપવા ઘટે.

શેખરભાઈ આદર્શ ગૃહપતિ, પ્રબુદ્ધ અધ્યાપક, ઉત્તમ સેવક, ઉમદા વ્યક્તિ, સ્નેહી મિત્ર, સાચા શ્રાવક, વિદ્યાર્થીવત્સલ શિક્ષક છે. તેમનું જીવન અત્યંત સરળ અને સાદું હોવા છતાં વિચારો ઊંચા છે અને તેઓ પોતાના સિદ્ધાન્તમાં અડગ છે. તેમને શાસનદેવો નીરોગી દીર્ઘાયુષ્ય બક્ષે તેવી પ્રાર્થના કરું છું.

જિતેન્દ્ર બી. શાહ

નિદેશક- એલ.ડી. ઈન્સ. ઓફ ઈન્ડોલોજી, અમદાવાદ

❋ डॉ. शेखरजैन का अप्रिय सत्य

यदि आपको किसलय की मादकता और शूल की वेधकता का एक साथ अनुभव करना है, यदि आपको स्नेह और शत्रुता की जुगलबंदी देखनी है, यदि आपको एक आँख में करुणा और एक आंख में क्रूरता देखनी है, यदि आपको निंदा और प्रशंसा दोनों का एक साथ आनंद लेना है, यदि आपको प्रसन्नता और खिन्नता की प्रतीति एक ही समय करनी है, यदि आपको आनंद के सागर को और आक्रोश के महासागर को एक ही तट पर नूतय करते देखना है, यदि आपको भौतिकता और आध्यात्मिकता को एक ही व्यक्ति में समायोजित होते देखना है और यदि आपको क्षर और अक्षर के प्रखर तथा मुखर शिखरों को एक ही साक्षर में अन्तर्निहित होते देखना है, तो आप शेखरचन्द्र जैन से मिलिए। अतिशयोक्तियों और आडम्बरों से रहित इस व्यक्ति को स्पष्टता और सपाटबयानी का सम्राट कहा जा सकता है, शहंशाह कहा जा सकता है, सिद्ध पुरुष कहा जा सकता है, प्रसिद्ध पुरुष कहा जा सकता है।

डॉ. शेखर जैन से मेरा प्रथम परिचय उस समय हुआ, जब वे शोध की नाव में पाँव पसार कर बैठ चुके थे और मैं तट पर खड़ा अपनी नाव की प्रतीक्षा कर रहा था। हम दोनो ही उस समय श्रद्धेय डॉ. अम्बाशंकर नागर के शोध–छात्र थे। वे भी मध्यप्रदेश के, मैं भी मध्यप्रदेश के पर जब वे व्यंग में मुस्कराते या वाणी का तीर छोड़ते तो मेरा पूरा मध्यप्रदेश काँप जाता। अन्य शोधकर्ताओ में सबके बीच शेखर जैन से मुझे डर लगता क्योंकि उनकी मुस्कराहट में मुझे रामायण और महाभारत के कई पात्र दिखाई देते। यह ३६ वर्ष पुरानी बात है। आज देखता हूँ कि इस व्यक्ति में भागवत के पात्र भी आशीर्वाद की मुद्रा में छिपे हुए हैं। मैं उन्हें उस समय देख नहीं सका, परख नहीं सका, उनका साक्षात्कार नहीं कर सका।

शेखर–जैन ने अभावों की परवाह किए बिना दुर्दयनीय पुरुषार्थ एवं अध्यवसाय के बल पर वह सब प्राप्त किया है, जो प्रारब्ध से भी नहीं प्राप्त होता है। नन्हें उपेक्षित बीज को आकाश छूने और घटादार वृक्ष बनने में जिन–जिन अवरोधों का सामना करना पड़ता है, शेखर को भी उपलब्धियों के शिखर तक पहुँचने में उतना ही संघर्ष करना पड़ा है। राष्ट्रीयता कवि दिनकर और उनकी काव्यकला, विषयक शोध प्रबन्ध के अतिरिक्त साहित्यिक, आध्यात्मिक एवं साधनात्मक कृतियों के लेखक डॉ. शेखर ने क्षेत्रीय प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई संस्थानों, सम्मेलनो, महासंघो, मण्डलों एवं ट्रस्टों की सदस्यता से लेकर अध्यक्षता तक के दायित्वों को बड़ी ही निष्ठा, आस्था एवं गरिमा के साथ निभाया है। समन्वय ध्यान साधना केन्द्र आपकी दीर्घ कठिन तपस्या और आर्ष दृष्टि का मूर्तिमन्त प्रतीक हैं। 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादक के रूप में तो आपने यश एवं सम्मान प्राप्त किया ही है, जैन दर्शन के प्रखर वक्ता एवं आचार्य के रूप में भी देश एवं विदेशों में कीर्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की है। कई पुरस्कारों, सम्मानोपाधियों एवं पदों को प्राप्त करके भी डॉ. जैन जिस सरलता, सहजता एवं आत्मीयता से परिचितों, अपरिचितों एवं नवपरिचितों में घुलमिल जाते हैं, वह सभी के आश्चर्य में डालता है। शेखर जैसे खरे, मुँहफट एवं दोटूक बातें करनेवाले 'रफ' एवं 'टफ' व्यक्ति को करुणाई होते मैंने देखा है, अन्तरंग आनन्द सागर में भीगते और भिगोते मैंने देखा है। अश्रु और हास्य के बीच कहीं डॉ. शेखर को परखा जा सकता है।

भावनगर के कुछ प्रसंग याद आ रहे हैं। अपने कॉलेज में आयोजित कविगोष्ठियों में एवं नगर के सार्वजनिक कवि सम्मेलनों में वे मुझे नियमित रूप से बुलाते। मेरी काव्य–साधना को वे मुग्धभाव एवं अहोभाव से देखते रहे हैं और मुझ पर जैसे उनका सारस्वत–अधिकार हो– इस तरह आदेश देकर आयोजनों में बुलाते रहे हैं। शेखर

ने न केवल मेरे प्रबन्धो–काव्यों की सुदीर्घ समीक्षाएं की है, बल्कि मेरे धनुषभंग खण्डकाव्य को भावनगर युनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम के बड़े सम्मान के साथ लगाया है उनके द्वारा बोएं गए बीज व्यर्थ नहीं गए और यही कृति 'सौराष्ट्र युनिवर्सिटी' में वर्षों तक पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती रही है। वस्तुतः प्रत्यक्ष के स्थान पर परोक्ष अनुग्रह शेखर का स्वभाव है।

जब मैं उनके निमन्त्रण पर भावनगर कवि–सम्मेलन में जाता तो वे लोगों से मेरा इस तरह परिचय कराते, जैसे मैं बहुत ही बडा एवं महत्वपूर्ण व्यक्ति हूं और किशोर काबरा की खोज जैसे उन्होंने की है। मुझे भी ऐसा लगता है कि मेरे पिछले ३८ वर्षों में पूरी ईमानदारी के साथ जिन स्नेही मित्रों एवं काव्यप्रेमी साथियों ने मुझे गहैतुक आत्मीयता प्रदान की है, उनमें डॉ. शेखर शिखर पर है। यह मैं उनकी झूठी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि झूठी प्रशंसा और ठकुर सुहाती वृत्ति उन्हें पसंद नहीं है। कभी–कभी डर भी लगता है कि मेरा निर्व्याज यशगान उन्हें रुचे, न रुचे। सत्यं ब्रूयात् को तो वे पसंद करते हैं, पर प्रियं ब्रूयात् को वे चापलूसी मानते हैं। अप्रिय सत्य उन्हें परम प्रिय है। यही कारण है कि प्रायः कई प्रियजन उनसे नाराज़ रहते हैं, क्योंकि अप्रिय सत्य वे पचा नहीं पाते।

डॉ. शेखर जैन अच्छे मित्र हैं, अच्छे शत्रु हैं, अच्छे हँसाने वाले हैं, अच्छे रुलाने वाले हैं, अच्छे प्रशंसक हैं, अच्छे निन्दक हैं। गृहस्थ भी हैं और साधु भी हैं, वे स्वस्थ भी हैं और अस्वस्थ भी हैं, वे सबकुछ हैं, वे कुछ भी नहीं है।

अनुराग और वीतराग के बीच में किसी महाराग को साधे हुए शेखरचन्द्र जैन कौन है– यह कौन कह सकता है?

डॉ. किशोर काबरा *(अहमदाबाद)*

■ *डॉ. शेखरचंद्र जैन : व्यक्ति के रूप में*

आत्मकेन्द्रित होते जाने के इस समय में डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक ऐसे मित्र व्यक्ति हैं जिन्होंने बाहर की दुनिया को भी सदैव आदर और स्नेह से देखा है। बाह्य संसार से निभने की जो कला उनके पास है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति को चाहे वह छोटा हो या बड़ा उनसे समान रूप से निकट आने का सुख मिलता है। बात की तह तक जाना, परिस्थिति को भाँपना, उसे अनुकूल मोड़ देना उनके बाएं हाथ का काम है। ऐसे तमाम मौकों पर उनकी असाधारण वाक्पटुता भी उनकी मदद करती है। बड़ी सभा हो या किसी समिति की छोटी–सी बैठक वे सभी श्रोताओं / सदस्यों का खास ध्यान रखते हैं। वे सभी को उनके नाम से जानते हैं। बड़ी–बड़ी सभाओं में दूर बैठे श्रोता को भी वे नाम से पुकार कर सभा में उसकी हिस्सेदारी को सक्रिय बना देते हैं।

आप डॉ. शेखरचंद्र के महेमान हों और वे आपकी चिन्ता करें यह तो ठीक है पर अगर वे आपके महेमान हैं तो भी वे आपकी चिन्ता करेंगे।

जीवन के बहुविध व्यवहारों में डॉ. शेखरचन्द्र का विभिन्न भाषाओं का ज्ञान भी एक कारगर हथियार है। वे हिन्दी के विद्वान हैं। लेकिन गुजराती भी धड़ल्ले से बोलते हैं। म.प्र. शासन द्वारा प्रकाशित मेरी एक पुस्तक 'भगवान महावीर का बुनियादी चिन्तन' का 'भगवान महावीरनुं बुनियादी चिंतन' के नाम से सन् 2004 में उन्होंने गुजराती अनुवाद किया। इस अनुवाद की सर्वत्र प्रशंसा हुई और गुजराती भाषा भाषियों में इसने इतनी लोकप्रियता हासिल की कि प्रकाशन को एक साल के भीतर ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। इस तरह गुजराती बोलने पर ही नहीं गुजराती लिखने पर भी उनका अच्छा खासा अधिकार है। हर महीने प्रकाशित

होनेवाली उनकी पत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' के अलावा हिन्दी के अलावा गुजराती एवं अंग्रेजी खण्ड भी नियमित प्रकाशित होता है। डॉ. शेखरचन्द्र की मातृभाषा हिन्दी हैं। गुजराती उनकी अर्जित भाषा है। पर उन्हें सुनकर यह भ्रम हो सकता है कि गुजराती ही उनकी मातृभाषा है।

मेरे साथ उनका संवाद एक और भाषा बुन्देली में भी होता है। यह उनके पूर्वजों के जनपद और गाँव की बोली है। लगता है, जैसे इसे बोलने के लिए उनमें छटपटाहट होती है। बात आमने–सामने हो रही हो या दूरभाष पर वे इसे बोलने के लिए अवकाश और अवसर निकाल लेते हैं। उनका कहना है कि 'बुन्देली तो उनके रक्त और संस्कार में है। उससे कैसे बच सकते हैं?'

जीवन में जब भी कोई तनाव या उदासी घेरती है और मैं हँसना चाहता हूँ मुझे डॉक्टर शेखरचन्द्र याद आते हैं। उनसे मिलकर, उनसे बात करके, दूरभाष पर बात करके भी सारे तनाव और उदासी को अलविदा किया जा सकता है। वे उन विरले जैन विद्वानों में से हैं जो हँसी–मजाक समझ सकते हैं, खुदभी हँसी–मज़ाक कर सकते हैं, उसका लुत्फ उठा सकते हैं और इससे भी बड़ी बात यह कि खुद अपने ऊपर भी दिल खोलकर हँस सकते हैं। अपने प्रवचनों को हिन्दी, उर्दू की स्तरीय कविता–पंक्तियों के द्वारा अधिक ग्राह्य और अर्थपूर्ण बनाते हैं और पंक्तियों को सही रूप में उद्धृत करते हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र पथरीली जमीन से उठे हुए व्यक्ति हैं। इसलिए उनकी जड़ें बेहद मजबूत और गहरी हैं। जीवन में वे कभी डगमगाए भले ही हों पर उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी। वे निरन्तर चलते हुए सभी मोर्चों पर प्रायः अकेले ही लड़ते रहे। उन्होंने कभी सन्तुलन नहीं खोया। महावीर के अनेकान्तवाद में विश्वास रखते हुए हर पक्ष को देखा। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक आदि में से किसी भी पक्ष / क्षेत्र को उपेक्षित नहीं किया। उनका कभी कोई गोडफादर नहीं रहा। आज जब दूर–दूर के लोग उनका अभिनन्दन कर रहे हैं, तब महसूस होता है कि दरअसल दुनिया में न तो गुण खोया है और न गुणग्राहक।

डॉ. जयकुमार जैन 'जलज' *(रतलाम)*

■ *अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अद्वितीय विद्वान्*

चहुँमुखी प्रतिभा के धनी, विद्वानों की शान, सरल, सुबोध सरस निर्भीक स्वतंत्र लेखन व विचारों के प्रस्तोता– डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन से राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय जगत पूर्णतः परिचित है। उनका विद्वानों द्वारा सम्मान करना तथा 'अभिनन्दन ग्रन्थ' निकालना, स्वस्थ्य मानसिकता का प्रतीक हैं। डॉ. साहब का लेखन कार्य, सम्पादन व सामाजिक सेवा, धार्मिक प्रवृत्ति अनुकरणीय है। उनका वक्तव्य जब मैं सुनती तो सुनती रह जाती। वह जो भी कुछ बोलते वह जैन सिद्धांत के आधार पर निडर होकर बोलते, उनके वक्तव्य में गर्जना व पीड़ा होती है। उनकी सदैव भावना रहती– अगर–मगर के साथ नहीं सत्यता के साथ आगम सम्मत बात होनी चाहिए। वह ऊपर से जितने कठोर दिखते उतने ही अन्दर से मुलायम हैं। उनके अन्दर प्रेम भाव इतना कि जिससे व्यक्ति से वह बात करते वह सहज में ही आपका हो जाता। आप हास्य वातावरण उत्पन्न करने तथा सरलता, सहजता, निश्छल व्यवहार के लिए सर्व प्रिय हैं। आपकी अधिकार पूर्ण बात में अपनेपन की महक आती है। आपका स्नेह–प्यार मुझे सदैव बेटी के रूप में मिलता है यह मेरा सौभाग्य है। ग.आ. ज्ञानमतीजी की जयन्ती कार्यक्रमादि सम्पन्न होने के पश्चात वापिसी में जब हम लोग स्टेशन पहुँचे तो अंकलजी थकान महसूस करते हुये वहाँ पड़ी सीट पर बैठ गये और अपने घुटने सहलाने लगे। मैंने बेटी होने का अधिकार जताते हुए कहा, 'जब आपका

स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता चलने–फिरने में दिक्कत होती है तो इतना क्यों आते–जाते हैं, कुछ दिन के लिये घर में बैठिये, आराम कीजिए' कहने लगे, ''बेटा जब तक साँस है तब तक माँ जिनवाणी सेवा में ही रहना है।'' यह है आपका धर्म के प्रति सच्चा राग व समर्पण। लखनऊ आने का आग्रह किया। आपने तुरंत उसका स्वीकार किया। आपकी स्नेहमयी वाणीने अपनत्व का बोध कराया।

आपसे सम्बोधित एक और संस्मरण याद आता है जो अविस्मरणीय व अनुकरणीय है। बात 12 मार्च 2006 की है 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल' में आई सेन्टर का उद्घाटन और आन्टीजी की हार्ट बाईपास सर्जरी होनी थी। अतः वह अस्पताल में एडमिट थीं, लेकिन जरा भी विचलित न होते हुये तन–मन–धन से आई सेन्टर का उद्घाटन सम्पन्न कराया। जब मैंने फोन पर बधाई दी तो ज्ञात हुआ मेरी आन्टीजी का ऑपरेशन है, मैंने कहा आपको यह कार्यक्रम अग्रिम तारीख के लिये बढ़ा देना चाहिये, कहने लगे वह भी चलता रहेगा, देखने वाले हैं, यह कार्य आवश्यक है, कितने लोग लाभान्वित होंगे और आप इस कार्य में संलग्न रहे। ऐसे सेवाभाव के धनी विरले ही होते हैं। आपको हस्तिनापुरजी में 2005 में गणिनी ज्ञानमती माँ के जन्म जयन्ती महोत्सव के सुअवसर पर पुरस्कारों में शिरमौर पुरुस्कार सन् 2005 का गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार से नवाजा जाना था। मैंने अपनी व अपने परिवार की ओर से बधाई दी उन्होंने पूछा आ नहीं रही हो, मैंने अपनी बात से अवगत कराया, कहने लगे ठीक है दूसरे ही पल डाँटकर बोले तुम्हें अपने मम्मी पापा को लेकर आना है, मैं नहीं जानता, मैं तुमसे कभी बात नहीं करूँगा। प्यार भरे शब्दो को सुनकर मेरे नेत्र सजल हो उठे और मैं अपनी सासुमाँ के साथ हस्तिनापुर जा पहुँची।

अन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि अंकलजी मेरे प्रेरणास्रोत, मार्गदर्शक हैं। ऐसे अनेक गुणों से अलंकृत वरद पुत्र के अभिनन्दन के शुभ अवसर पर श्रद्धा अर्पित करती हुई हार्दिक यशोर्जित सुख–स्वास्थ्य, समृद्धि से समन्वित दीर्घायु की मंगल कामना करती हूँ।

''महकने के लिए सौरभ का खजाना चाहिए,
नींद के लिए गमों को भुलाना चाहिए।
धर्ममय, आदर्श जीवन बनाना है तो,
डॉ. साहब के जीवन को प्रेरणास्रोत बनाना चाहिए॥''

डॉ. श्रीमती अल्पना जैन 'अभि' *(लखनऊ)*

■ *डॉ. शेखरजी : आशाजी के पति भी सखा भी*

डॉ. शेखरचंद्रजैन कठोर वाणी बोलने वाले मृदुल–व्यक्ति हैं। नजरें गड़ा कर सामने वाले को देखना और प्रहारात्मक शब्दों से वार्ता शुरु करना उनके वर्तमान व्यक्तित्व की विशेषता है। यह स्वभाव, सच कहा जावे तो, आजकी जरूरत भी है। सीधे–सरल व्यक्ति को कोई भी चतुर–पुरूष अपने जेब में रखकर चलता बनता है। डॉ. साब में, सौभाग्य से, ऐसी सिधाई नहीं है; वे किसी की जेब में नहीं समा सकते। कोई प्रयास करे भी, तो मुझे लगता है; वे जेब फाड़कर निकल आवेंगे। (काटकर नहीं कह रहा हूँ)

वे अनेक विद्वानों और धनपतियों को जेब में रख कर चलते हैं; यह उनका सर्वाधिक सशक्त और पवित्र परिचय है। उनके द्वारा किसी को जेब में रखना दोषपूर्ण वृत्ति नहीं है; बल्कि वह उनकी कला और कुशाग्रता का एक हिस्सा ही है।

अभी कुछ समय पूर्व जब श्रवणबेलगोला में 28 दिसम्बर 05 से 1 जनवरी 06 तक 'अखिल भारतीय जैन विद्वत सम्मेलन' सम्पन्न हुआ था; तब उन्हें करीब से जानने–समझने का शुभअवसर प्राप्त हुआ था। उसी बीच उनके आत्म–कक्ष में भरे हुए वात्सल्य और आदर के कुंड देखने मिले थे। हुआ यह कि मैं गोष्ठी सत्र में धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पाजैन सरल (अब स्वर्गीय) के साथ ही बैठता था। उन्हीं से अंतरंत वार्ताएँ भी करता था। डॉ. शेखचंद्रजी मेरे इस पारिवारिक लगाव को हर सत्र में देख–समझ रहे थे। इसी दौरान अनेक विद्वानों के साथ कर्नाटक–प्रदेश की तीर्थयात्रा पर निकले तो सांध्यकालीन भोजन की व्यवस्था धर्मस्थल में सम्पन्न हुई। भोजनों के बाद सभी विद्वान स–समूह आ. वीरेन्द्रकुमार जी हेगड़े से मिलने उनके 'सभा–भवन' में गये। वहाँ भी विशाल–कक्ष में, मैं पुष्पाजी के बगल में ही बैठा। इस बार डॉ. साब से न रहा गया; वे विनोद के स्वर में, अपनी कुर्सी के पास खड़े–खड़े ही, मुझे पुकार उठे– 'सरलजी, भाभीजी के साथ ही बैठे रहोगे, यहाँ आगत विद्वानों के पास नहीं बैठोगे?' चूँकि मैं उनसे 15 फुट दूर था, अतः उनकी आवाज तेज थी। विनय पूर्वक मैंने विनोद में ही उत्तर दिया– 'इनसे बड़ा विद्वान कोई हो तो उसके पास बैठूँ?' वाक्य सुन पुष्पाजी लज्जा गई। किन्तु डॉ. साब सोच में पड़ गये, उनके भीतर चिंतन जाग उठा। सभाकक्ष के कार्यक्रम के बाद, वे हम दोनों के पास आये, मेरे कंधे पर हाथरखकर बोले– 'भाई साब, भाभीजी को बहुत सम्मान देते हो। यह अच्छी बात है।

वे तो कहकर आत्मिक–आनंद दे चुके थे, परंतु उनके 'पत्नीप्रेम और पत्नी आदर' के दृश्य मेरी आँखो के समक्ष झूल गये, जब दो वर्ष पूर्व वे, आदरणीय भाभी श्रीमती आशाजी का उपचार कराने जयपुर में संघर्ष कर रहे थे। थे वे अपने कर्तव्य पथ पर। विद्वानों का यह 'पत्नी–बोध' ही उनकी पत्नियों की सर्वाधिक कीमती धरोहर होता है। मैं, गत अनेक वर्षों से, आदरणीय भाभीजी के प्रति उनका लगाव बाँच रहा था और शिक्षा भी ले रहा था।

सुख–दुःख, हर्ष–पीड़ा में अर्धांगिनी को पूरा–पूरा समय देने वाले विद्वानों में आ. शेखरजी का नाम रखना, उनके अनेक गुणों में से एक है।

श्री सुरेश जैन 'सरल' *(जबलपुर)*

■ *ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન વ્યક્તિ નહીં પણ એક સંસ્થા છે*

જેમને ''જૈન સાહેબ''ના હુલામણા નામથી આપણે સૌ જાણીએ છીએ તેવા ડૉ. શ્રી શેખરચંદ્ર જૈન એક આગવી અને વિશિષ્ટ પ્રતિભા ધરાવનાર વ્યક્તિ છે. તેઓશ્રી અનેકવિધ ક્ષેત્રે અને સિદ્ધિઓના સર્વોચ્ચ શિખરે હંમેશા બિરાજમાન રહ્યા છે અને આજે પણ છે.

ખૂબ જ નાની ઉંમરથી જ સંઘર્ષ તેમનો સાથી રહ્યો છે. જે સંઘર્ષે જ તેમને સિદ્ધિઓના સરતાજ પહેરાવ્યા છે.

નાનપણથી જ સાહિત્યજગત સાથે તેમનો સંબંધ રહ્યો છે. એક શિક્ષક થી પ્રોફેસર અને પ્રિન્સીપાલ સુધીની મંઝીલ તેમણે સર કરી છે.

સરસ્વતી આવ્યા પછી કદી પાછી જતી નથી પણ વધુને વધુ સાથ આપે છે. તેમ શ્રી જૈન સાહેબના જીવનમાં ઉત્તરોત્તર બન્યા જ કર્યું છે. જે હકીકતથી આપણે સહુ વાકેફ છીએ.

કદી સિદ્ધાંતમાં બાંધછોડ નહીં. સદાય નિર્ભય કોઇપણ ચમરબંધીની ચશમપોશી નહી કે તેમનાથી દબાવું નહી. સત્યનું કે સિદ્ધાંતનું ખંડન કરવુ નહી. કઠોર પરિશ્રમ થી લીધેલા કાર્યને કોઇપણ ભોગે પરિપૂર્ણ કરવુ. મુસીબતો આવે પણ ઝૂકવું નહી. મજબૂત મનથી હિંમત સાથે તેનો સામનો કરી સતત આગળ વધતા જ રહેવુ અને છેલ્લે સફળતા પ્રાપ્ત કર્યા પછી જ ઝંપવુ. નાદુરસ્ત તબિયતને પણ કદી તેમણે

ગણકારી નથી. પળે પળનો સદ્‌ઉપયોગ કરી લેવો જે તેમનો મુદ્રાલેખ - ધ્યેય રહ્યો છે.

શ્રી જૈન સાહેબે સાહિત્ય ક્ષેત્રે ખુબજ લાંબુ ખેડાણ કર્યું છે અને જગતને તે દ્વારા અઢળક જ્ઞાન સભર સાહિત્ય પીરસ્યુ છે. 'તીર્થંકર વાણી' દ્વારા તેમણે દેશ-પરદેશમાં જૈન દર્શનનો ખૂબ જ પ્રચાર અને પ્રસાર કર્યો છે. તેમજ તીર્થંકર વાણી દ્વારા બાલજગત વિભાગના માધ્યમથી બાળકોને જૈન ધર્મનું રૂચિકર શિક્ષણ તેઓ આજે પણ આપી રહ્યા છે જે તેમની હરતી ફરતી પાઠશાળા છે. તીર્થંકર વાણી ચારે ફિરકાનું તટસ્થ માસિક છે. 'તીર્થંકર વાણી' દ્વારા તેમના અગ્ર લેખોમાં ધર્મ, સમાજમાં જયાં-જયાં અને જયારે-જયારે દૂષણો જણાયાં છે તેને બહુજન સમાજ સમક્ષ રજુ કરવામાં કદી પણ સાધુ સમાજની કે સમાજના અગ્રણીઓની શરમ ભરી નથી. તેમની હિંમતને બીરદાવવી જોઈએ.

જૈન દર્શન વિષે તેમણે ઘણા આધ્યાત્મિક પુસ્તકો હિન્દી- અંગ્રેજી અને ગુજરાતી ભાષામાં પ્રકાશિત કર્યાં છે. અને જૈન દર્શન વિષે અનેક પ્રવચનો સમગ્ર ભારતમાં તેમજ અમેરિકા - બ્રિટન - આફ્રિકા વિગેરે દેશોમાં આપ્યા છે અને હજુ પણ આ ઉંમરે આ સિલસિલો ચાલુ જ છે. જે જૈન ધર્મ સાથેનો તેમનો અનહદ લગાવ અને અપાર પ્રેમનું પરિણામ છે.

શ્રી જૈન સાહેબનું સમગ્ર જૈન સમાજમાંથી અનેક પારિતોષકો-શિલ્ડો દ્વારા અભિવાદન-બહુમાન થયુ છે. જે હું કાયમ જોઈ રહ્યો છું અને આ પ્રવાહ અવિરત પણે ચાલુ જ છે.

તેઓને દિગંબર-શ્વેતાંબર તેરાપંથ અને સ્થાનકવાસી સંપ્રદાય ના તેમ ચારે ફિરકાના અનેક આચાર્યોના તેમને સતત આશિર્વાદ અને આશીર્વચન હરહંમેશ મળતાં જ રહે છે. જે તેમના જ્ઞાનની અને જૈન એકતાના પ્રતીક રૂપે છે.

નાનપણથી જ ગરીબોની સેવાની ભાવનાથી તેઓ પ્રેરિત હતા અને તે માટે તેમણે ''સમન્વય ધ્યાન સાધના કેન્દ્ર''ની સ્થાપના કરી અને આ સંસ્થાના પ્રથમ સોપાન તરીક 'તીર્થંકર વાણી' નામના માસિકના સંપાદકની જવાબદારી સંભાળીને પ્રકાશન શરૂ કર્યું. જેના પ્રથમ અંકનું વિમોચન શ્રી વિદ્યાચરણ શુક્લના વરદ હસ્તે ભોપાલમાં કર્યું અને વિમોચનનાં પ્રસંગે સમાજના દરેક ક્ષેત્રના મહાનુભાવો, શ્રેષ્ઠીઓ અને પંડિતોની ઉપસ્થિતિમાં ભવ્ય બન્યો. જે શ્રી જૈન સાહેબની સમાજમાં ફેલાયેલી સુવાસનું પરીણામ હતું.

નબળા વર્ગના રોગીઓને ખૂબ જ નજીવા દરે સેવા સુશ્રુષાનો લાભ મળે તે માટે નબળા વર્ગના એરિયામાં એક હોસ્પિટલ સ્થાપવાનો નિર્ણય કર્યો જે વાત તેમણે તીર્થંકર વાણીના માધ્યમથી દેશ પરદેશમાં વહેતી કરી અને તેના ફળ સ્વરૂપે પોતાના સ્વજન જેવા મિત્રોના સાથ સહકારથી 'શ્રી આશાપુરા માઁ (ગાધકડા) જૈન હોસ્પિટલની શરૂઆત કરી અને ઉત્તરોત્તર જુદા જુદા વિભાગો માટે દાન પ્રવાહ મેળવતા રહ્યા અને નવા નવા વિભાગો શરૂ કરતા રહ્યા. અનેક સગવડ સાથેની ત્થા આંખની સંપૂર્ણ લેટેસ્ટ પદ્ધતિથી ઓપરેશન થઈ શકે તેવાં અદ્યતન સાધનોથી સજ્જ હોસ્પિટલ અમદાવાદના ઓઢવ વિસ્તારમાં નબળા વર્ગ માટે આશીર્વાદરૂપ બની છે. આજે હોસ્પિટલ જૈન સાહેબનો જીવન મંત્ર બની ગયો છે. આવો સમાજસેવાનો ભેખ ધારણ કરનારને સંતનો દરજ્જો આપોઆપ મળી જાય છે. હોસ્પીટલને ગુજરાત સરકારની માન્યતા પણ પ્રાપ્ત થઈ છે.

પરમ આદરણીય શ્રી જૈન સાહેબને મારા અગણિત અભિનંદન અને હૃદયપૂર્વકની શુભેચ્છા પાઠવતા હું અનન્ય આનંદ અનુભવું છું. પરમકૃપાળુ પરમાત્મા ત્થા જગત જનની જગદંબા શ્રી આશાપુરા મા (ગાધકડા)ને કરબદ્ધ વિનમ્ર પ્રાર્થના કરું છું કે અમારા શ્રી જૈન સાહેબને અપાર શક્તિ અને આશિષ આપે

અને તેમના જીવનના દરેક ક્ષેત્રના માર્ગ સફળ બનાવે જેથી તેઓશ્રી વધુ ને વધુ પરીપૂર્ણ થાય.

છેલ્લે એક વાક્ય લખવાનું પ્રલોભન છોડી નહી શકુ કે 'શ્રી જૈન સાહેબ એક વ્યક્તિ નહીં પણ સંસ્થા છે.'

ધીરુભાઈ દેસાઈ *(અમદાવાદ)*

❀ *જૈન દર્શનના પ્રચારક, સંનિષ્ઠ વિદ્વાન વક્તા, તત્વ ચિંતક*

શૂન્યમાંથી સર્જનની જેમ પ્રારબ્ધ અને પુરુષાર્થથી આપબળે આગળ આવી કર્મભૂમિ ભાવનગરને બનાવી પ્રોફેસર અને પ્રિન્સિપાલના ઉચ્ચ હોદ્દાઓ કેળવણી ક્ષેત્રે શોભાવી અમદાવાદમાં બિરાજતા ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન ખરેખર સમાજના જૈન સમાજના અભિનંદનના અધિકારિ છે. તેની વિદ્વત્તા પાસે હું નાનકડો સાહિત્યરસિક જીવ છું પણ મને યાદ આવે છે ૧૮ વર્ષ પહેલાંનો પરદેશની ધરતી ઉપરનો લેસ્ટરમાં થયેલ પ્રતિષ્ઠા મહોત્સવ જેમાં મારે ૪૫ દિવસ તેમના સત્સંગમાં રહેવાનો અણમોલ અવસર સાંપડેલ.

ઘણા સમયથી તેમની ઇચ્છા પરદેશ પ્રવાસની હતી- તેમાં આ તક સાંપડતા તેઓ ખૂબ જ ખુશ થયા.

અમો બન્ને સાથે ભાવનગરથી વાયા મુંબઈ પ્લેન દ્વારા ઉપડ્યા. યુરોપ જૈન સમાજના પ્રમુખશ્રી ડૉ. નટુભાઈ શાહના બંગલે ડૉ. નટુભાઈ તથા તેમના પ્રેમાળ પત્ની શ્રીમતી ભાનુબહેને અમોને આવકાર્યા- અમારી કાળજીપૂર્વક સરભરા કરી તેમને ત્યાં ૪૨ દિવસ અમને રાખ્યા હતા.

પ્રતિષ્ઠાની વિશિષ્ટતા એ હતી કે- એકજ મંદિમાં જૈનોના ચારે ફિરકાનો સમન્વય કરવામાં આવેલ.

આપણે ભારતમાં નથી તેવી સાચી એકતાના મહાવીર સ્વામી ભગવાનના એકતાના સંદેશનું પાલન અહીં ઉત્સાહભર થતું હતું.

મને અને ડૉ. જૈનને ઘણી કામગીરી સોંપાણી હતી અમો દહેરાસર અને નિવાસસ્થાન સિવાય કશું જ જોવા જતા નહીં. ફક્ત કામ-કામ ને કામજ કરવું તે અમારો ઉદ્દેશ હતો.

આ પ્રસંગે અદ્‌ભુત જાણકારી સાથેનું સોવિનિયર 'The Jain' વિશાળ દળદાર અંક બહાર પાડવાનું પણ મોટુ કામ હતુ. અમને તે જવાબદારી પ્રેસમાં લઇ બધા લેખો-વગેરે વ્યવસ્થિત કરવા પ્રૂફ સુધારવાં વગેરે કાર્યમાં ડૉ. જૈન ખરેખર અદ્‌ભૂત કાર્ય કર્યું હતું જે હું વિસર્યો નથી. ટાઇમસર પ્રગટ થાય તે માટે અમો બન્ને છેલ્લા બે દિવસ સતત પ્રેસ ઉપર જ રહ્યાં અને ડૉ. જૈનના અથાગ શ્રમથી સફળતાપૂર્વક કાર્યકરી અમે ટાઇમસર અંક પ્રગટ કરાવ્યો. જેમાં ડૉ. જૈનની વિદ્વત્તાનાં દર્શન થયાં.

દિગમ્બર સમાજના ભગવાન કલ્યાણ પ્રસંગે એક મુખ્ય પાત્રની ગેરહાજરી હતી ત્યારે ડૉ. જૈને તુરત જ વ્યવહાર કુશળતા અને સમજણથી તે પાત્ર જરૂરી વેશભૂષા ધારણ કરી સફળતાપૂર્વક પાર પાડ્યું અને સૌને ખુશ કર્યા.

સતત ૪૨ દિવસ અમે સત્સંગમાં સાથે જ રહ્યાં હું ઉંમરમાં મોટો પરંતુ વિદ્વત્તામાં નાનો છતાં મારા સહાયક સાથીદાર તરીકે મને ખૂબ જ આદર આપતા હતા તે તેમની નમ્રતા હતી જે હું ભુલ્યો નથી. તે પ્રસંગે ડૉ. જૈન તથા મને સ્ટેઈજ ઉપર બોલાવી સન્માન કરી મોમેન્ટો અર્પણ કરેલ અને લંડનમાં પણ ઘણી સંસ્થાઓએ સન્માનેલ તેમણે યોગ સાધનાના વર્ગો ચલાવી તેના અઢળક જ્ઞાનની પ્રતીતિ કરાવેલ. આવા વિદ્વાન સાથે / પરદેશની ધરતી પર સાથે રહેવાનુ બન્યું તેનુ મને ગૌરવ છે. પછી તો તેમણે પ્રવચનો-યોગના વર્ગો માટે ઘણા પરદેશ પ્રવાસ ર્ક્યા છે.

મનુભાઈ સેઠ *(ભાવનગર)*

बहुमुँखी प्रतिभा के धनी

डॉ. शेखरचन्द्र जैन सुधी साहित्यकार, यशस्वी शिक्षा शास्त्री, मनस्वी चिंतक, सतर्क संपादक, में ही केवल व्यंजक नहीं हैं अपितु उनका नाम साहित्य संस्कृति एवं जैन धर्म व समाज की निस्वार्थ सेवा में समर्पण के कारण भी शीर्षस्थ एवं वरेण्य है।

आपकी एक बड़ी पहचान आपके कुशल संपादन में नियमित निकलने वाली पठनीय, संग्रणीय, शिक्षा प्रद प्रत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' है जिसका आप पिछले 15 वर्षों से संपादन कार्य कर रहे हैं, इसके द्वारा आपने देश–विदेश में हिन्दी–गुजराती एवं अंग्रेजी तीनों भाषाओं के माध्यम से बालकों को शिक्षा देने का कार्य एवं युवाओं को जैन धर्म के प्रति लगाव उत्पन्न करने का कार्य किया है।

आपने हिन्दी–साहित्य और जैन साहित्य में साहित्य का सृजन किया, जिनमें शोध ग्रंथ, उपन्यास, कहानी एवं कविता व समीक्षा की पुस्तकों का समावेश है। आप कई सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक संस्थाओं में से भी जुड़कर अपनी अमूल्य सेवा निःस्वार्थ रूप से प्रदान करते रहे हैं। आप 10 वर्ष तक भावनगर की रोटरी क्लब में विविध पदों पर सक्रिय रहे तो भावनगर के भारत जैन महामंडल के संस्थापक व वर्तमान में गुजरात स्तर पर उपाध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। डॉ. जैनने कुशल नेतृत्व के कारण भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के 3 वर्षों तक अध्यक्ष पद पर आसीन रहे हैं, आप भा.दि. जैन शास्त्री परिषद में कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य रहे हैं।

आप समन्वय ध्यान साधना केन्द्र के ट्रस्टी अध्यक्ष हैं जो पिछले 10 वर्षों से अहमदाबाद के अति पिछड़े इलाके 'ओढ़व' में श्री आशुपारा माँ जैन अस्पताल के नाम से गरीबों की सेवा कर रह हैं। असहाय लोगों को निःशुल्क और निःशुल्क आँख व ऑपरेशन कराये जा रहे हैं। आप पिछले 15 वर्षों से भारत एवं विदेश (अमरीका, यूरोप, अफ्रीका) में जैन धर्म के प्रवचनार्थ आमंत्रित होते रहे हैं, जहाँ धर्म, संस्कृति के प्रचार–प्रसार के साथ–2 णमोकार ध्यान मंत्र के शिविर के माध्यम से जैन धर्म की साधना पद्धति का वैज्ञानिक संदर्भो में प्रस्तुतिकरण किया है, आपको अनेक उपाधि एवं पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

ऐसे चहुमुँखी प्रतिभा के धनी, आंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान, लेखनी के धनी, समाजसेवी, सतर्क संपादक डॉ. शेखरचंद्र जैन का अभिनन्दन पूर्ण गौरव–गरिमा के साथ सम्पन्न हो, मैं ईश्वर से डॉ. शेखरचन्द्र जैन के स्वस्थ जीवन व दीर्घायु होने की मंगल कामना करता हूँ।

डॉ. ताराचन्द्र जैन बख्शी *(जयपुर)*

'विद्वद शिरोमणि श्री डॉ. शेखरचंदजी का शिखर स्थान'

यथा हिमालय अपने शिखरों में शिरोमणि उच्च स्थान रखता है, उसी प्रकार गुजरात प्रान्त की राजधानी महानगरी अहमदाबाद प्रधान है। अहमदाबाद में एक प्रबुद्ध व्यक्तित्व के धनी 'पन्नालाल' नात गृह जन्म देनेवाली मां जयश्रीदेवी बड़ी भाग्यशाली पुण्यवान ने 'पन्नारत्न' राम सुत जन कर 'शेखर' को शिखर बनाया। डॉ. साहब प्रखर बुद्धि प्राप्त कर सूर्य–चन्द्र के समान विद्वद शिरोमणि के रूप में दैदीप्यमान हैं। आज जैन समाज के कर्मठ मूर्धन्य विद्वान, प्रतिभावान, ज्ञानवान विद्वद् शिरोमणि हैं। डॉ. शेखरचंदजी करूणा वात्सल्य की मूर्ति हैं। आपकी प्रतिभा ख्याति देश/विदेशों में गूंजी। आपने अमेरिका, यूरोप, कनाडा जैसे देशों में जैन धर्म पर प्रवचन कर जैन

धर्म का झन्डा फहराया। उनकी ओजपूर्ण वाणी जन–जन को प्रभावित करती है। आप अनेकानेक ज्ञानमयी संस्थाओं के संस्थापक जनक तुल्य हैं। आपने ऋषभदेव विद्वद् महासंघ के दो बार अध्यक्ष पद पर रहकर अपनी कुशलता का परिचय दिया। साधु संतो आर्यिका प्रमुख गणिनी ज्ञानमती माताजी के परम भक्त हैं अनेक संस्थाओं व जम्बूद्वीप हस्तिनापुर से दो बार पुरस्कृत मानव हैं।

आपका जीवन समुज्जवल रूप से समाज राष्ट्र साहित्य निर्माण में अग्रसर है व अग्रहणी है।

ऐसे लोकोपकारी 'मानव शिखर' डॉ. शेखरचंदजी का अभिनन्दन करता हूँ और मंगल कामना करता हूँ कि आपका जीवन 'याव चेन्द्रादिवाकरौ' सम उज्ज्वल हो। और शतशत चिरायु की कामना करता हूँ।

सह परिवार। चिरंजीवी रहकर धर्म समाज राष्ट्र के ज्योर्तिमान बनें। मंगल कामना के साथ–

पं. बाबूलाल जैन 'फणीश', शास्त्रि *(ऊन)*

निर्भीक-कर्मशील-प्रसन्न व्यक्तित्व

डॉ. शेखरचंद्र जैन का परिचय जैनदर्शन संबंधित कार्यक्रमों के संदर्भ में होता रहा। प्रखर आत्मविश्वास और कर्मनिष्ठा का पर्याय – अर्थात् शेखरचंद्र जैन। अपने निर्दिष्ट लक्ष्य को सिद्ध करने के लिये अदम्य उत्साह और पुरुषार्थ से लगे रहना – वह उनकी लाक्षणिकता है। वे प्रसन्नता और स्फूर्ति से मंज़िल की ओर आगे बढ़ते रहते हैं।

गुजरात विद्यापीठ के अंतर्राष्ट्रीय जैनविद्या अध्ययन केन्द्र में उनके साथ कार्य करने का मौका मिला था। अपनी कार्यसिद्धि और कार्य पद्धति के बारे में वे अपने विचारों में स्पष्ट और सज्ज होते थे। हृदय में सच्चाई होने से कार्य पूर्ण करने के लिये निर्भीकता से आगे कदम उठा सकते थे।

'जैन शब्दावली' – जैनदर्शन का पारिभाषिक कोश हम उनके मार्गदर्शन में तैयार कर रहे थे, तब उनकी विशेष कार्यपद्धति का भी परिचय हुआ। समग्र कार्य का स्वरूप इस तरह आयोजित करते थे कि लक्ष्य को त्वरा से हॉसिल कर सकें। विरोध और अवरोधों से डरना उन्होंने कभी नहीं सीखा। कैसा भी कठिन कार्य हो, निष्ठा और पुरुषार्थ से उसे परिपूर्ण करना – वह उनके स्वभाव की सहज लाक्षणिकता है।

आप बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न हैं। जैनदर्शन के तलस्पर्शी और सर्वविध आयामों के प्रखर अभ्यासी और पुरस्कर्ता हैं। आचार–विचार में शुद्ध जैनत्व के आग्रही होने पर भी सांप्रदायिक संकुचितता से परे हैं। चिंतक होने के साथ उपन्यासादि के सर्जक साहित्यकार और 'तीर्थंकर वाणी' जैसे सामायिक के कुशल संपादक भी हैं। समय की आवश्यकता के अनुसार बच्चों और युवावर्ग को भी धर्म और जैनत्व का सत्य संदेश पहुँचाने के लिये अपनी पत्रिकाओं के द्वारा उत्तम और प्रशंसनीय प्रयास कर रहे हैं।

उनके व्यक्तित्व में प्रखरता है, साथ में सेवा–सहिष्णुता और करुणा की भावना से भी हृदय छलकता है। अतः दुःखी और दरिद्र लोगों की सेवा के लिये भी सदा कार्यरत रहते हैं।

डॉ. शेखरचंद्र जैन जिन शक्ति, स्फूर्ति, सूझ, कार्यनिष्ठा, कार्यसिद्धि की तत्परता, प्रसन्नता और सहिष्णुता के गुणों से संपन्न हैं – उनकी सदा वृद्धि हो और सदा सफलता प्राप्त करते रहें – ऐसी ही शुभ प्रार्थना, इस अवसर पर करती हूँ।

डॉ. निरंजना वोरा

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

■ श्रावक शिरोमणी डॉ. शेखरचंद्र जैन

श्रावक शिरोमणी, आदरणीय डॉ. शेखरचंद्रजी जैन, भारतासारख्या अध्यात्मिक संस्कृति संपन्न देशात गुजरात सारख्या समृद्ध राज्याच्या राजधानीत अहमदाबाद सारख्या ख्यातनाम औद्योगिक शहरात एका सामान्य जैन कुटुंबात आपला जन्म झाला. यात आपल्या पूर्ण सुकृताचे वरदान आपणाला निसंशय लाभले आहे.

प्रतिकूल परिस्थितीतही तीव्रज्ञान लालसेने प्रेरित होऊन आपण शिक्षण क्षेत्रातील पीएच्.डी. पदवी संपादन करून उच्चविद्या विभूषित झालात।

जैन साहित्य प्रचारक डॉ. शेखरचंद्रजी! ज्या जैन कुटुंबात आपण जन्म घेतलात, त्या जैन धर्म तत्त्वज्ञानाचा आपण सखोल अभ्यास करून, त्यासंबंधी अनेक शोध निबंध, टीका ग्रंथ, समीक्षा ग्रंथ, कथा, कादंबऱ्या, काव्य आणि स्फुट लेख लिहून, हिंदी गुजराती आणि इंग्रजी साहित्यात मोलाची भर घालून, आपण नव्या पिढीला दीपस्तंभाप्रमाणे मार्गदर्शन करीत आहात.

करूणानिधी डॉ. शेखरचंदजी! आपण समन्वय ध्यान साधना केन्द्राचे संस्थापक आहात या संस्थेद्वारा 'श्री आशापुरा माँ जैन होस्पटिल' हा धर्मार्थ दवाखाना चालवून अनेक मागासवर्गीय गरीब दलित रूग्णांना व्याधिमुक्त करून रूग्णसेवा हीच ईश्वरसेवा या शुभाषिताची सत्यता पटवून देत आहात.

गेली अखंड १५ वर्शे तीर्थंकर वाणी च्या संपादनातूत देशविदेशातील युवक–युवतीना जैन धर्माच्या अभ्यासाची अभिरुची निर्माण करण्याचे महान कार्य आपण करीत आहात. हे आपणाला भूषणावह आहे.

आपण जैन धर्माचा प्रचार केवळ आपल्या देशातच नव्हे तर युरोप, अमेरीका आदि प्रगत देशातही साहित्य आणि प्रवचन द्वारा करीत आहेत त्याचप्रमाणे 'णमोकार ध्यान मंत्र' शिबीराद्वारा जैन धर्माचार्य सिद्धांतांची सत्यता वैज्ञानिक स्तरावर कशी आहे हे सिद्ध करण्याचे कार्य आपण सतत करीत आहात.

आपण जिनप्रभूंचे प्रेषित असून, षट्खंडागमाचा मतितार्थ सांगणाऱ्या आधुनिक गणधराचे पवित्र कार्य आपण करीत आहात.

जैन समाजातील गुणग्राहक विद्वत्जनांनी आपल्या महान कार्याच्या गौरवार्थ ज्या अभिनंदन ग्रंथाचे आयोजन केले आहे. त्या ग्रंथमालेत आपल्या सन्मान पत्राचे हे पुष्प गुंफून आले अभिनंदन करण्यात आम्हाला धन्यता वाटते।

यापुढेही आपण अंगिकारलेले समाजप्रबोधनाचे कार्य अखंड चालावे यासाठी आपले व आपल्या कुटुंबियांचे उर्वरित आयुष्य आरोग्य संपन्न ज्ञान संपन्न धर्मकार्यात व्यक्ति व्हावे अशी जिनेश्वर चरणी विनम्र प्रार्थना!

प्रो. डी. ए. पाटील

चेयरमेन दक्षिण भारत जैन सभा

■ जैन एकता के प्रतीक

तीर्थंकर वाणी के जन्म से ही आदरणीय शेखरजी से मेरा सतत जीवंत संपर्क रहा है। उनसे बुन्देलखण्ड एवं देश के विभिन्न क्षेत्रों में, भोपाल में, श्रवणबेलगोला में और गत वर्ष अमेरिका में भेंट होती रही है। उनका प्रफुल्लित एवं स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व अत्यधिक सराहनीय एवं अनुकरणीय है। वे सदैव जैन एकता के पक्षपाती रहे हैं। वे सामाजिक विखराव के प्रति सदैव चिंतित रहे हैं। उनका अनेकांती सहिष्णुता का आग्रह निश्चित ही सराहनीय

है। उन्होंने जैन समाज के घटते हुए राजनैतिक प्रतिनिधित्व पर अपनी चिंता प्रगट की है और आग्रह किया है कि एन.डी.ए. एवं यू. पी.ए. की गठबंधन की भाँति जैन समाज भी महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर अपने बीच एकता स्थापित करे।

वे मानते हैं कि जैनधर्म साम्प्रदायिक कट्टरता और घृणा का पोषक नहीं है। जैनधर्म व्यापक दृष्टिकोण अपनाता है। समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना करता है। अतः हम समाज के विघटन की भाषा छोड़कर समाज के एकीकरण की भाषा बोलें और जानबूझकर आध्यात्मिक विवाद और वैचारिक भ्रम उत्पन्न न करें। संप्रदाय, जाति और रूढ़ धार्मिक परंपराओं के नाम पर समाज को बाँटने और तोड़ने के स्थान पर एकीकृत करें। हम सदैव अंतर साम्प्रदायिक टकराव (Inter Communal hostility) से बचें। पंथ की संकीर्णता के प्रति सजग रहते हुए हम प्रत्येक पंथ की गतिशील परम्परा और अच्छाई को ग्रहण करें।

हम विविधता में एकता स्थापित करें। विविधता की विघटनकारी प्रवृत्तियों से दूर रहें। हम अपने समाज को सहमतिमूलक एवं उत्पादक रचनात्मक कार्यों एवं गतिविधियों के लिए प्रेरित करें। उन्हें कलह मूलक प्रतिद्वन्दता के अनुत्पादक एवं विघटनकारी कृत्यों और प्रवृत्तियों से दूर रखें।

अंत में मेरा सभी विद्वतजनों एवं श्रेष्ठीजनों से विनम्र अनुरोध है कि हम डॉ. शेखरचन्द्र जैन की भाँति सदैव जैन समाज की एकता के लिए विशेष प्रयास करें। मुझे विश्वास है कि जैन समाज की एकता देखकर श्रद्धेय शेखरजी अत्यधिक अभिनन्दित होंगे।

श्री सुरेशचन्द्र जैन *(आई.ए.एस.) भोपाल*

■ આપ કમાઈથી પ્રતિષ્ઠિત કરેલું નામ

'ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન'એ આપ કમાઈ દ્વારા પ્રતિષ્ઠિત કરેલું નામ છે.

અમદાવાદ મ્યુનિસિપલ કોર્પોરેશન દ્વારા ચાલતી પ્રાથમિક શાળાઓની શાખ પાંજરાપોળ જેવી છે. આવી સ્કૂલમાં અભ્યાસ કરનાર એક વિદ્યાર્થી કોલેજના પ્રોફેસર બની પી.એચ.ડી જેવા ગૌરવાન્વિત ડીગ્રી હાંસલ કરે તેમાં ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનની સંઘર્ષ સામે ઝઝૂમવાની અડીખમતા મુખ્ય જણાય છે. ડૉ. જૈન સ્પષ્ટ છે કે કોઈપણ સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરવી હોય તો નિષ્ઠાપૂર્વકની તપશ્ચર્યા અનિવાર્ય છે. શ્રમ, સાધના, તપ, નિષ્ઠા આ બધી એવી પ્રક્રિયા છે કે એને આત્મસાત કર્યા વિના માણસ કોઈ કામ પાર પાડી શકતો નથી. ડૉ. શેખરચંદ્રે પળેપળનો ઉપયોગ કર્યો છે, આત્મવિકાસ માટે, સમાજ ઉત્થાન માટે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનના જીવનનો ગ્રાફ જોશો તો જણાશે કે તેમની ચેતનાની ઉત્કૃષ્ટતાની માત્રા ઉત્તરોત્તર વધતી રહી છે. જેમ જેમ આ વૃદ્ધિ થતી રહી છે તેમ તેમ અનાસક્તિ અને નિર્લેપતાની માત્રા પણ વધતી રહી છે. એમને મળેલાં માન-અકરામ, ચંદ્રક તેમને છેતરી ના જાય એ માટે એ સદા સતર્ક રહે છે. માનવીય સ્વભાવોની દુર્બળતાથી તેઓ પરિચિત છે. એટલે બીજાથી પોતે ચડિયાતા છે એ ભાવ એમણે ઊગવા જ દીધો નથી.

ડૉ. જૈન કોરા સિદ્ધાંતમાં માનતા નથી. તેઓ માને છે કે સિદ્ધાંતોની ચાદર ગમે તેટલી સફેદ હોય પરંતુ આચરણ જો દોષયુક્ત હોય તો વ્યક્તિની પ્રતિભા ખંડિત થાય છે. પોતાની પ્રતિભા ખંડિત ન તાય એવું જીવન એ જીવે છે. શ્રી આશાપુરા મા જૈન હોસ્પિટલને મળતાં દાન એની ગવાહી છે. તેમણે પોતાના જીવનમાં ધર્મ અને માણસાઈને એકસૂત્રે વણ્યાં છે. આપણા બધા જ ધર્મો છેવટે તો માણસની જિંદગી સાથે

શરૂ થાય છે અને માણસની જિંદગી સાથે પૂરા થાય છે. વિદ્યા અને વિદ્યાર્થી સાથે જીવનના મહત્તમ વર્ષો તેમણે ગાળ્યા હોઈ વધતી ઉંમરે પણ તેમણે થાકનો અનુભવ નથી કર્યો. યુવાન વિદ્યાર્થીઓની યુવા ચેતના તેમને નિત્ય તાજપ આપતી રહે છે. મોટા ભાગના માણસોનું આયખું જિંદગીને જાણવામાં જ પૂરું થઈ જાય છે. શેખરચંદ્રને બાળપણથી જ જિંદગીની આંટીઘૂંટીનો અણસાર મળી ગયો હતો. કિશોરાવસ્થાથી જ અનેક સંકડામણોની સામે એમને ઝઝૂમવાનું આવ્યું અને હર તોફાનમાંથી પાર ઊતરતા રહ્યા અને આજે એ એવા મુકામ પર પહોંચ્યા છે કે જ્યાં બેસી જીવન જીવ્યાનો સંતોષ લઈ શકે.

પરમાત્મા પ્રતિ શ્રધ્ધાને તેમના જીવનમાં અને લેખનમાં મહત્ત્વનો ભાગ ભજવ્યો છે. પરમાર્થ વૃત્તિ, દંભરહિત જીવન શૈલી, સમદૃષ્ટિ વગેરે સદ્‌ગુણો તેમના સહજપણે પાંગર્યા છે. **તત્ત્વચિંતક બર્ટ્રાન્ડ રસેલ** લખે છે કે **માણસને તેના કાર્ય દ્વારા સમજવો જોઈએ. ચહેરાથી, સ્ટાઈલથી, ભ્રમથી કે આભાસથી માણસને સમજવામાં કે સ્વીકારવામાં થાપ ખાઈ જવાનો ખતરો છે.** ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન જેવા અંદરથી એવા જ બહાર છે. એટલે એમની સંગતિમાં થાપ ખાવાના ખતરાથી બચી શકાય છે.

કોલેજના એક કાર્યક્રમમાં ઉભડક મળવાનું બન્યું હતું. એ વખતે એમણે કહેલું એક વાક્ય સહુએ સ્મરણમાં રાખવા જેવું છે : **"જીવન કહે છે પ્રવૃત્ત રહેવું, હૃદય કહે છે અખંડિત રહેવું, સંજોગ કહે છે સંઘર્ષમાં રહેવું, સમય કહે છે નિશ્ચિત રહેવુ અને વિચાર કહે છે કે અખિલ રહેવું."** માનવસંબંધનો મર્મ પામવો હોય તો અલપ ઝલપ પણ આ જણને મળવું જરૂરી છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનને મારી ખૂબ ખૂબ શુભકામના છે.

શ્રી ધૂની માંડલિયા *(અમદાવાદ)*

■ *એક તેજસ્વી અને હૂંફાળુ વ્યક્તિત્વ*

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન સાહેબના અભિનંદન ગ્રંથ માટે લખવાનું નિમંત્રણ મળ્યુ તેનો ખૂબ આનંદ છે. તેનાં મુખ્ય બે કારણો છે. પહેલું કારણ એ છે કે જૈન સાહેબની (અમે સૌ મિત્રો તેમને કોલેજમાં જૈન સાહેબના નામથી જ બોલાવીએ છીએ) બહુમુખી પ્રતિભા નિમિત્તે એક અભિનંદન ગ્રંથ તૈયાર થઈ રહ્યો છે અને બીજુ કારણ એ છે કે આ ગ્રંથમાં જૈન સાહેબ વિશેની મારી લાગણીઓ વ્યક્ત કરવાની મને તક મળી છે. મિત્રો વિશે લખવાની તક જવલ્લે જ મળતી હોય છે. સરદાર પટેલ, ગાંધીજી, વિવેકાનંદ વિગેરે પર લખવું હોય તો આનંદ તો આવે પણ તેમાં આત્મીયતાની મીઠાશ ના હોય. આવા મહાનુભાવોને આપણે કદી પાસેથી જોયા ન હોય, તેમને મળવાના, તેમની સાથે વાતો કરવાના કે અન્ય અંગત પ્રસંગો થયા ન હોય અને માત્ર ઈતિહાસની નોંધોને આધારે લખવાનું હોય તો તેનો આનંદ હોવા છતાં તેમાં એ રંગ ન હોય જે મિત્રો વિષે લખવામાં હોય. મિત્રોની આપણી પાસે First hand information હોય છે.

હૃદયના મળેલા તાર : યોગાનુયોગ જૈન સાહેબ અને હું અમદાવાદની સદ્‌ગુણા ગર્લ્સ કોલેજમાં સહયોગી પ્રાધ્યાપકો હતા. અમને કેટલાંક વર્ષો સુધી સાથે કામ કરવાની તક મળી. એકજ સ્ટાફરૂમમાં દરરોજ પાંચ કલાક સાથે ગાળવાના, કોલેજના કાર્યક્રમોમાં ભાગ લેવાનો, વાતો- હંસી-મજાક કરવાના તે સોનેરી દિવસો જીવનનું સંભારણુ બની ગયા છે. ભગવાનની કૃપાથી મતભેદ અને મનભેદ વગરના અમારા સંબંધો રહ્યા છે. આપણે સૌ જાણીએ છીએ કે જૈન સાહેબની વાત કરવાની પોતાની આગવી અને લાક્ષણિક શૈલી છે. તેમના વ્યક્તિત્ત્વમાં કોઈ ચુંબકીય તત્વ પડેલુ છે જે કોઈને પણ તેમની પાસે ખેંચી જાય.

અમારા હૃદયના તાર ક્યારે એની કેવી રીતે મળી ગયા તેની ખબર જ પડી નહીં. અમારા બંનેના મિત્ર પ્રિ. વાડીભાઈ પટેલ એક સરસ વાત કહે છે કે; 'જેઓ નોકરીમાં સાથે મિત્રો હોય તેમની મૈત્રી જો નિવૃત્તિ પછી પણ ટકી રહે તો તે સાચી મૈત્રી કહેવાય.' આ સંદર્ભમાં, જૈન સાહેબની અને મારી મૈત્રી અમારી નિવૃત્તિના અનેક વર્ષો પછી પણ આજે ટકી રહી છે. મળવાનું કે ફોન પર વાત કરવાનું પણ વિશેષ થતુ નથી છતાં બંનેના હૃદયના કોઇ ખૂણામાં એ સંબંધ આજે પણ પાંગરી રહ્યો છે.

સ્વભાવની ભિન્નતા વચ્ચેની સંવાદિતા : મૈત્રી કદી કોઇ કારણ નથી જોતી. મૈત્રી જો અકારણ હોય તો તેની મઝા હોય છે. અમારી મૈત્રીનું પણ પ્રેમ સિવાય અન્ય કોઇ કારણ જડતુ નથી, કારણકે અમારા બંનેની પ્રકૃતિ સાવ ભિન્ન છે. જૈન સાહેબ સાહિત્ય ભણાવે છે અને હું આંકડાશાસ્ત્ર ભણાવું, તે ફરતારામ અને હું ઘરકૂકડી, તેમને સતત પ્રવૃત્તિ ગમે અને મને નિવૃત્તિ ગમે, તેમને વાતો કરવાનું ગમે અને મને મોટા ભાગે ઓછુ બોલવાનું ગમે. આવા સ્વભાવ વૈવિધ્યમાં પણ અમારે એકબીજા સાથે અકારણ અને નિઃસ્વાર્થ પ્રેમનો સંબંધ રહ્યો. Unity in diversity ની વાત અમારા સદાબહાર સંબંધોમાં જોવા મળે છે.

ઇન્દ્રધનુષી વ્યક્તિત્વના સાત રંગો :

કઠોર તપશ્ચર્યા : જૈન સાહેબ સાથેની વાતો પરથી હું જાણી શક્યો છું કે તેઓ સામાન્ય અને ગરીબ કુટુંબમાં ઉછર્યા છે. ગરીબી અને અન્ય મુશ્કેલીઓ તેમણે નજીકથી જોઇ છે. તેમનું જીવન સંઘર્ષોથી ભરેલું છે. અંગ્રેજીમાં કહેવાય છે કે 'Tough gets going, When going is tough'. આ ઉક્તિ જૈન સાહેબના જીવનમાં જોવા મળે છે. તેમણે જીવનની મુશ્કેલીઓને સફળતાઓમાં પરિવર્તિત કરી. ડગલું ભર્યું તે ના હટવું, ના હટવું ને મનમાં રાખીને હસતા મોઢે તેઓ જીવનમાં આગળ વધતા જ ગયા. ઘણા સમયથી પીઠના દુઃખાવાની તેમને તકલીફ છે પરંતુ તેની આગળ હાર કબૂલે તો તે જૈન સાહેબ શાના? થોડું ઘણું દર્દ સ્વીકારીને અને ઘણુંબધું દર્દ અવગણીને કલાકો સુધી કામ કરવાની તેમની વર્ષોની આદત છે. તેઓ સાચા અર્થમાં Self-made man છે.

કડક અનુશાસન : જૈન સાહેબે પોતાના જીવનમાં અનુશાસનને કેન્દ્રસ્થાને રાખ્યું છે. રહેણીકરણી અને ખોરાકમાં સાદગી, નિયમિત જીવન (લગભગ ઘડિયાળના કાંટા પ્રમાણે ચાલનારું જીવન), સાંજે અમુક સમય પછી નહીં જમવાનું એટલે નહીં જમવાનું, ઉત્તમ પ્રકારનું time-management જેમાં ભક્તિ, અભ્યાસ, સાહિત્યસેવા, સંશોધન કાર્ય, સમાજકાર્ય, લેખન, કુટુંબ..... બધા માટે સમય ફાળવેલો, સમય પાલનના આગ્રહી. ફાઇલો-કાગળો-પુસ્તકો- પોતાની વસ્તુઓ... બધામાં સંપૂર્ણપણે વ્યવસ્થિત. આ અનુશાસનને લીધે જ અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓ કરી શકે છે. નક્કી કરેલી સમય મર્યાદામાં પોતાનું કામ કરીને જ ઝંપે, કારણ કે આગળ બીજુ કામ રાહ જોતુ હોય. તેમને સફળ બનાવવામાં તેમના અનુશાસનનો બહુ મોટો હિસ્સો છે. દરેકને માટે, ખાસ કરીને યુવાનો માટે, તેમના જીવનનો આ જ સંદેશ છે કે, 'Self-discipline is a key to success'

સ્વપ્નદ્રષ્ટા : સ્વપ્નો નથી તો જીવન નથી. જેવા સ્વપ્નો તેવુ જીવન. સ્વપ્નો જોવા અને તેમને આકાર કરવા એ જૈન સાહેબના જીવનની વિશેષતા છે. મારે આટલા સમયમાં આ પુસ્તક લખીને પૂરું કરવું છે, મારે આ પ્રકારના સામયિકનું નિયમિત પ્રકાશન કરવું છે, મારે એક એવી હોસ્પિટલ બનાવવી છે જેમાં ગરીબ અને મધ્યમ વર્ગના લોકોને મદદ થાય, મારે ધર્મપ્રચાર અને ધર્મપ્રસાર માટે વિદેશનો પ્રવાસ કરવો છે. એવા અનેક સ્વપ્નો જૈન સાહેબે જોયા, તેમના માટે પરિશ્રમ કર્યો અને તેમને સાકાર કર્યા. એમના સ્વપ્નોને પણ

સમજવા જેવા છે. તેમના સ્વપ્નોમાં પણ ધર્મ, સાહિત્ય, સેવા, સમાજ... કેન્દ્રસ્થાને રહ્યા છે. ફરી એકવાર યુવાનોની વાત કરીએ તો તેમને જૈન સાહેબના જીવનમાંથી સ્વપ્નદષ્ટા બનવાની શીખ મળે છે.

સાહસિકતા : પ્રભુ સાહસિક લોકોને મદદ કરે છે. 'God helps them, Who help themselves'. સફળતા કદિ સસ્તી હોતી નથી. તેની સૌને ભારે કિંમત ચૂકવવી પડતી હોય છે. જૈન સાહેબ તેમાં અપવાદ નથી. કલાકોનું આયોજન, કલાકોની મહેનત, અનેક લોકોનો સહયોગ, અનેક મુશ્કેલીઓનો સામનો, અનેકવાર મળેલી નિરાશા... એ બધાની વચ્ચે જૈન સાહેબ આગળ વધતા ગયા. 'He can, who thinks he can'- એ ઉક્તિને એમણે પોતાના ઉદાહરણ દ્વારા સાબિત કરી બતાવી. પોતાના આત્મવિશ્વાસ, પરિશ્રમ અને શ્રદ્ધાના બળ પર તેમણે પોતાની ડીક્ષનરીમાંથી 'નિષ્ફળતા' શબ્દને રજા આપી દીધી છે. જૈન સાહેબ સંજોગોને વશ ન થયા, સંજોગોને તેમણે વશ કર્યા.

કુટુંબ વત્સલતા : જૈન સાહેબમાં સંસાર અને પરમાર્થનું અદ્‌ભુત સંયોજન જોવા મળે છે. તેમણે ધર્મના ભોગે કુટુંબ અને કુટુંબના ભોગે ધર્મકાર્ય કરવાનું પસંદ કર્યું નહીં. બંને વચ્ચે તાલમેલ સાધતા રહ્યા. સંતાનોને સારી રીતે ભણાવ્યા, આર્થિક રીતે અને સાંસારિક રીતે ગોઠવ્યા, તમામ કૌટુંબિક જવાબદારીઓ ઉત્તમ રીતે નિભાવી અને પોતાના સગાસંબંધીઓ સાથે જીવંત સંપર્ક રાખ્યો. કુટુંબ અને પોતાની બહારની પ્રવૃત્તિઓનું સંતુલન તેમણે કદિ ગુમાવ્યું નહીં. આ બધું તેમની કુટુંબ-વત્સલતાને આભારી છે. પોતાનું ઘર એ તેમની તમામ પ્રવૃત્તિઓનું ગુરુત્વ મધ્યબિંદુ બનીને રહ્યું.

માનવી પરખ : એક માનવની સાચી સફળતા બીજા માનવને સમજવમાં રહેલી છે, એ રહસ્ય જૈન સાહેબ સારી રીતે પામી ગયા છે. તેઓ જેના પણ સંપર્કમાં સાથે તેને આત્મીય બનાવી લેવાની તેમનામાં ગજબની આવડત છે. તેની વિશેષતાઓ તથા જમા-ઉધાર પાસું શું છે તે પરખવાની તેમની વિશેષ શક્તિને લીધે તેમણે વ્યક્તિમાં પડેલા ગુણોનો સમાજના લાભાર્થે ભરપૂર ઉપયોગ કર્યો. કોઈને લખતા સારું આવડે, કોઈને બોલતા સારું આવડે, કોઈને અંગ્રેજી સારું આવડે, કોઈને આયોજન ફાવે, કોઈને પ્રિન્ટિંગનું જ્ઞાન હોય, કોઈને કોમ્પ્યુટરનું જ્ઞાન હોય, કોઈને મકાનના બાંધકામનું જ્ઞાન હોય, કોઈના સરકારમાં સારા સંબંધો હોય... એ બધું જૈન સાહેબ પારખી શકે છે. પારખીને તેની આંતરિક શક્તિઓને અત્યંત ખૂબીપૂર્વક ક્રિયાન્વિત પણ કરી શકે છે. આ બધાની તેમને તેમના કામમાં તો મદદ થઈ જ પણ તેઓ એક વિશાળ મિત્ર-વર્તુળ પણ ઊભું કરી શક્યા. દેશ-વિદેશમાં તેમના શુભેચ્છકો અને સમર્થકોની એક શ્રૃંખલા તે ઊભી કરી શક્યા. માત્ર ફોન કરવાથી કામ થઈ જાય એવા સંબંધો ઊભા કરી શક્યા.

મૌલિક ચિંતક અને વિચારક : જૈન સાહેબની સાથે રહેનાર કોઈને પણ તેમની અંદરના મૌલિક ચિંતક અને વિચારકો પરિચય થયા વગર રહે નહી. તેમની કલમ પર અને જીભ પર સરસ્વતીનો વાસ છે. જૈન સાહેબને કોઈપણ કાર્યક્રમમાં સાંભળવા એ જીવનનો લહાવો છે. જ્ઞાન, હળવાશ અને રમૂજથી સભર તેમની અસ્ખલિત વાણી મુગ્ધ કરનારી છે. તેમણે પોતાના જીવનની વધુમાં વધુ ક્ષણો ધર્મને માટે આપી, સાહિત્યને માટે આપી કે પછી સામાજિક કામને માટે આપી તે નક્કી કરવુ મુશ્કેલ છે. તેમનામાંનો સાહિત્યકાર, કવિ, સૂક્ષ્મ વિચારક હજુ પણ જીવંત છે. તેમનું હૃદય સાચા અર્થમાં ધબકતું રહ્યું તેથી સાચા અર્થમાં ધન્ય બન્યું.

આવા એક બહુઆયામી વ્યક્તિત્વને ખૂબ ખૂબ અભિનંદન. સંસ્કૃતિ આવા અસંખ્ય લોકોની ઋણી છે. જૈન સાહેબ એક હાલની ચાલતી સંસ્થા જ છે. તેમનું જીવન અનેક લોકો માટે ઉદાહરણ અને પ્રેરણા પૂરુ

પાડનારું છે. તેમની અંદરના સ્વપ્નદ્રષ્ટાને આ પ્રસંગે હું ખૂબ ખૂબ શુભેચ્છાઓ પાઠવું છું. તેમની સમષ્ટિલક્ષી દૃષ્ટિ દિવસે ને દિવસે દિવ્ય બનતી જાય તેમનું સ્વાસ્થ્ય તેમના મનોરથોને પૂરા કરવામાં મદદરૂપ થાય એવી શુભેચ્છાઓ પાઠવું છું. મને ખાતરી છે કે Sky is the limit for him. જૈન સાહેબની ઘણી સ્મૃતિઓ મારા મનમાં પડેલી છે. પણ શ્રેષ્ઠ સ્મૃતિ તો અમારા નિસ્વાર્થ, અનન્ય અને મધુર સંબંધની જ રહેશે. અંતમાં કવિશ્રી નિરંજન ભગતની પંક્તિઓ સાથે વિરમું છું.

કાળની કેડીએ ઘડીક સંગ, રે ભાઈ! આપણો ઘડીક સંગ;
આતમને તોય જનમોજનમ લાગી જશે એનો રંગ!

પ્રો. અરૂણ યાદી *(અમદાવાદ)*

■ *बहुमुखी प्रतिभा के धनी*

परम आदरणीय डॉ. शेखरचन्द्र जैन से मेरा परिचय अनेक वर्षों पुराना है। मैं उन्हें अपना धार्मिक और साहित्यिक गुरू मानता हूँ। जब मुझे पता चला कि आदरणीय डाक्टर साहब के सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया जायेगा तो मैं हर्ष विभोर हो उठा। डॉ. शेखरचन्द्रजी का सम्पूर्ण जीवन जैन धर्म और समाज के प्रति समर्पित रहा है। उनका अभिनन्दन उनके द्वारा की गई समाज की सेवाओं का अभिनन्दन है। इस अभिनन्दन पर समाज को गर्व होना चाहिए।

डॉ. शेखरचन्द्रजी को, मुझे जितना भी देखने, सुनते तथा जानने का सौभाग्य मिला है, उसके आधार पर मैं दृढ़ता पूर्वक रह सकता हूँ कि वे एक समर्पित व्यक्तित्व के धनी हैं तथा अपनी सारी शक्ति के साथ वे समाज एवं संस्कृति की सेवा करने के लिए कृत संकल्प हैं। उनकी दृष्टि अत्यन्त दूरगामी, बुद्धि अत्यंत प्रखर तथा हृदय बहुत ही निर्मल है। वे पूर्णतः निर्भीक एवं निर्भय हैं– कदाचित् इसलिए कि वे लोभ–लालच से परे हैं। वे अत्यन्त ओजस्वी हैं तथा जो कुछ भी उन्हें कहना होता है, उसे स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं। सत्य बात कहने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। वे आचार–विचार में बहुत ही दृढ हैं तथा उनका व्यवहार बहुत ही मधुर एवं मृदु रहता है।

डॉ. शेखरचन्द्रजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। एक ओजस्वी एवं प्रभावशाली वक्ता होने के साथ–साथ आप एक कुशल लेखक भी हैं। प्रसिद्ध त्रिभाषी पत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' में आपके सम्पादकीय लेख समस्त जैन समाज में अत्यन्त चाव से व आग्रह पूर्वक पढ़े जाते हैं। आप प्रगतिशील विचारों के एक सुलझे हुए व्यक्ति हैं। समाजसेवा एवं प्रगतिशीलता में आपकी गहरी दिलचस्पी हैं। आप समन्वय ध्यान साधना केन्द्र के संस्थापक–ट्रस्टी–अध्यक्ष हैं जो पिछले दश वर्षों से अहमदाबाद के अति पिछड़े इलाके ओढ़व में 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल' के नाम से गरीबों की सेवा कर रहे हैं। असहाय लोगों को निःशुल्क दवा और निःशुल्क आँख के ऑपरेशन कराये जा रहे हैं।

डाक्टर साहब अन्ध विश्वास, सामाजिक कुरीतियों तथा वर्तमान में जैन मुनि संस्था में फैले हुए शिथिलाचार के प्रबल विरोधी हैं। आप कट्टर आर्षमार्गी मुनि भक्त हैं किन्तु मुनियों के शिथिलाचार की आलोचना करने में भी आप चूकते नहीं है। आपका मानना है कि मुनियों की आलोचना करना मुनि निन्दा नहीं है बल्कि उन्हें अपने कर्तव्यों का स्मरण कराना है।

विद्वानों की विनय करना, उनका स्वागत करना, सम्मान करना, अभिनन्दन करना तथा उनकी पूजा करने वाला समाज हमेशा जीवित रहा है और हमेशा जीवित रहेगा। वह समाज कभी जिन्दा नहीं रह सकता जिसमें विद्वानों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। विद्वान समाज के प्रकाशमान नक्षत्र होते हैं जो समाज में फैले हुए अंधकार को दूर कर समाज को नई दिशा– एक नई गति– एक नया जीवन प्रदान करते हैं। इसलिये वह समाज

धन्य है जो अपने में छिपे हुए विद्वानों को खोजता है तथा उनको समुचित आदर प्रदान करता है।

डाक्टर शेखरचन्द्र जैन सभा संचालन व अनुशासन तथा शास्त्र प्रवचन के सबल प्रहरी के रूप में कार्य करते हैं। आपके भाषण ओजस्वी व वीर रस पूर्ण होते हैं जो आज के युवकों को सही दिशा निर्देश व चेतावनी का रामबाण कार्य करते हैं। शास्त्र प्रवचन में आपकी अतीव प्रवीणता के कारण आपको विभिन्न जैन संघों द्वारा वाणी भूषण, प्रवचनमणि, ज्ञानवारिधि की उपाधियों से विभूषित किया गया है। पुरस्कारों के शिरमोर सन् 2005 का गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार से भी आपको नवाजा गया है।

ऐसे महान् परोपकारी, समाजसेवी, धर्मरक्षक, समाज सुधारक, ओजस्वी वक्ता, शास्त्र प्रवक्ता, धर्म प्रचारक, शिथिलाचार एवं रूढ़िवादी किलों को धराशायी करनेवाले श्रद्धेय डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन के त्याग, तपस्या एवं जीवन के बहुमूल्य आदर्शों एवं मान्यताओं के आगे मेरा मस्तक श्रद्धा से नतमस्तक है तथा मैं आपके गरिमामय जीवन की उत्तरोत्तर उन्नति व दीर्घायु की मंगल कामना करता हूँ।

श्री कपूरचन्द जैन पाटनी *(गौहाटी)*
संपादक– जैन गजट

■ हमारे अपने

भारतीय क्षितिज पर जैन धर्म के यशस्वी कार्यकर्ता, सन्निष्ट अध्यापक, विद्वान समाजसेवी एवं संस्कृति के प्रचारक, व प्रसारक डॉ. शेखरचंद्र जैन के कार्यकलापों से सभी भली भांति परीचित हैं। हम उनके साथ (महेन्द्र व आशा) न्यूयार्क में उनके सम्पर्क में रहे हैं। उनका जैन समाज के लिये किया गया कार्य अति ही सराहनीय है। हमें उनके साथ रहने के जो क्षण प्राप्त हुए हैं, उनको कभी भूल नहीं सकते हैं। वह कोई हमारे अच्छे ही कर्मों का उदय था। आजके तेज गति से चलते समय में ऐसा विद्वान, समाजसेवी मिलना बहुत मुश्किल है। मेरे मन में जो भाव respect है। वह लिखना बड़ा ही मुश्किल है। वह हमारे साथ जैना की यात्रा में साथ रहे। समय समय पर बस में और गाडी में अपने अनमोल वचनों से प्रेरित करते रहे। ऐसा लगता था कि उनका और हमारा कोई धर्म का रिश्ता है। वह जो अस्पताल चला रहे है उस सेवाका तो कहना ही क्या है। भगवान ऐसी बुद्धि व मन सबको प्रदान करे। प्राणी को सही मार्ग दिखलाने के लिए ऐसे ही लोगो की आवश्यकता है। इसी आधार पर तो धरती माता खड़ी है। ऐसे ही सपूत के कंधो की तो धरती को आवश्यकता रहती है।

(1) मुख से बोलकर धर्म का प्रचार करना (2) हाथों से तीर्थंकर वाणी लिखकर प्रचार (3) पैरों से जगह जगह पर जाकर प्रचार करना (4) आंखो से असहाय लोगो को देखकर अस्पताल चलाना (5) कानो से दुखी लोगो की चित्कार सुनकर उनकी सहायता करना।

यहाँ जीवन का लक्ष्य है जो डाक्टर साहब कर रहे हैं। पाँचों इन्द्रियों से और मन वच काय से सही कर्म कर रहे हैं। ऐसे ही मनुष्य गति के धारक को असली योगी कहा गया है। प्रभु को ऐसा ही योगी सबसे प्यारा लगता है। ऐसा योगी कोई विरला ही पैदा होता है। ऐसे उस योगी का नाम है डॉ. शेखरचंद्र जैन व उनकी पत्नी। ऐसे योगी का साथ मिलना हमारे लिये बडे भाग्य की बात है। भगवान करे ऐसी बुद्धि सब को प्रदान हो, और आगे भी इसी तरह से समस्त कार्य करते रहें। भगवान उनको व उनके परिवार को ऐसी समता व सद्बुद्धि कायम रखे। यही हमारी शुभ कामनाएं उनके साथ हैं।

महेन्द्र व आशा जैन *(न्यूयार्क)*

■ जुझारू व्यक्तित्व के धनी

डॉ. शेखरचन्द्र जैन को मैं सन् १९७७ के भाद्रपद मास से जानता हूँ, जब मैं भावनगर समाज की ओर से दशलक्षण पर्व पर प्रवचनार्थ आमन्त्रित था। उस समय वे भावनगर के किसी कॉलेज में हिन्दी विभाग में प्रवक्ता के रूप में कार्यरत थे। यद्यपि उनका जन्म अहमदाबाद में हुआ, वहीं शिक्षा वगैरह हुई किन्तु वे पूरी तरह बुन्देलखण्डी हैं; क्योंकि उनके माँ बाप और समस्त परिवार बुन्देलखण्डी हैं। जब वे टेट बुन्देलखण्डी बोलते हैं, तो हम लोग पीछे रह जाते हैं और लगता नहीं कि इस व्यक्ति का जन्म और पालन पोषण गुजरात में हुआ। उनके व्यक्तित्व की विषेषता है कि जितना मैं उन्हें बुन्देली मानता हूँ, उतना ही गुजरात के लोग उन्हें गुजराती। वे दिगम्बर, श्वेताम्बर सबमें घुले मिले हैं। उनका पर्युषण पर्व श्वेताम्बरों के साथ शुरू होता है और दिगम्बरों के साथ अनन्त चतुर्दशी को समाप्त होता है। वे पण्डित, समाज सुधारक, समाजसेवी, ओजस्वी वक्ता और सुयोग्य लेखक भी हैं। ग्राम्य लोगों में बैठा दिया जाय तो ग्रामीण हैं और शहर में रहने के कारण नागरिक तो हैं ही। अपने व्यक्तित्व के कारण वे सब जगह प्रतिष्ठित हैं और हर जगह अपनी धाक जमाने के कारण मैं उन्हें जुझारू व्यक्तित्व का मानता हूँ। कठिनाईयों से यह व्यक्ति लड़कर आगे बढ़ा है, अतः इसमें सहृदयता है। अस्पताल के माध्यम से वे समाजसेवा कर रहे हैं। किसी संस्था को खड़ी करना आसान है, किन्तु उसे निरन्तर चलाना और आगे बढ़ना, उतना ही कठिन है। बिना समर्पण और योग्यता के यह कार्य नहीं हो पाता। उन्होंने कानजीभाई के एकान्तवाद की आँधी को रोकने में अपना योगदान दिया है।

उनकी विदेश यात्रायें भी सार्थक रही हैं। मैं उनके प्रति हार्दिक शुभकामनायें व्यक्त करता हूँ। वे इसीप्रकार धर्म और समाज की सेवा करते रहें। उन्हें दीर्घायुष्य प्राप्त हो।

डॉ. रमेशचन्द जैन *(बिजनौर)*

भू.पू. अध्यक्ष– अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद

■ जैन एकता के सक्रिय प्रतिनिधि

यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन के सम्मान में अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है। आज ६८ वर्ष की आयु में भी आप साहित्य तथा समाज–सेवा में पूर्णरूप से सक्रिय हैं।

अत्यन्त साधारण स्थिति में भी श्री शेखरचन्दजी शिखरकी और ऊपर चढ़ने में सदैव तत्पर और आशावान रहे और आज समाज में बहुमुखी सेवाओं में उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति प्रकाशमान् हैं।

मेरा इनसे साक्षात् परिचय तो अभी–अभी का है; जब वाराणसी तथा सारनाथ में पूज्य आर्यिका गणिनीजी आर्यमती माताजी के सान्निध्य में भगवान् पार्श्वनाथ और श्रेयांसनाथ की पूजा–अर्चना तथा पंचकल्याणक के प्रसंग पर अनेक गणमान्य विद्वानों के साथ यहाँ पधारे हुए थे। उस समय व्यस्त कार्यक्रम में से थोड़ा समय निकालकर हमारे अभयकुटीर पर पधारने की कृपा की। ये मेरे लिए सुखद क्षण थे।

यह विशेष तौर पर उल्लेखनीय प्रसन्नता की बात है कि आप जैन एकता के लिए सतत सक्रिय हैं और भारत जैन महामण्डल जैसी एक मात्र असाम्प्रदायिक संस्था के भी सक्रिय प्रतिनिधि कार्यकर्ता हैं। तीर्थंकर वाणी के माध्यम से आप सभी जैन सम्प्रदायों में भाईचारा और समन्वय स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं।

सम्पूर्ण जैन समाज में, मेरा अंदाज है कि लगभग चार सौ पत्र–पत्रिकाएँ अनेक रूपों, आकारों में, संस्थाओं,

साधुओं और सम्पन्न श्रेष्ठियों की ओर से प्रकट होती हैं। अधिकतर तो दानदाताओं के नामों, चित्रों, प्रशंसाओं से भरी होती हैं। तीर्थंकर वाणी जैसी गिनी–चुनी दो चार पत्रिकाएँ ही ऐसी हैं जिनमें शोध–खोज तथा विशेष तात्विक, ऐतिहासिक जानकारी होती है। यदि इस दिशा में समन्वयात्मक प्रयास हो और वर्तमान विश्व की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक बदलती स्थितियों को ध्यान में रखकर जीवन–धर्म की प्रासंगिकता को उजागर करने में प्रबुद्ध वर्ग मिल जुलकर सहयोग करे तो कम से कम संख्या में अच्छी, पठनीय सामग्री देश को प्राप्त हो सकती है।

श्री शेखरचंदजी ने शिक्षा के क्षेत्र में, साहित्य सृजन के क्षेत्र में, बालकों में धर्मज्ञान फैलाने की दिशा में तो विपुल कार्य किया ही है, जन–स्वास्थ्य के लिए अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। यह मूल्यवान समाजसेवा है।

सेवाभावी विद्वान समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक होते हैं। इनका अभिनन्दन, अभिवन्दन समाज की गरिमा और गुणग्राहकता को बढ़ाता है। श्री डॉ. शेखरचंद्रजी इसके सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं। मेरी अनेक शुभकामनाएँ इनके साथ हैं और धीरेधीरे ही सही हम और निकट आयेंगे।

ऐसे कर्मठ ज्ञानी बंधुवर को पुनः पुनः आदरांजलि।

श्री जमनालाल जैन *(सारनाथ–वाराणसी)*

☆ *क्या भूलूँ क्या याद करूँ*

यह जिन्दगी एक मेला है। मेले में सुदूर स्थानों से लोग आते हैं, एक दूसरे से मिलते हैं, बतियाते हैं, अपना सुख–दुख कहते हैं, दूसरों के सुनते हैं, तनावग्रस्त जीवन में कुछ पल हँसकर, गाकर व्यतीत करते हैं और फिर अपने घरौंदो में वापिस चले जाते हैं। फिर वही मशीनी दिनचर्या जहाँ 'रातें सुधियों के घर गिरवी, दिन दो रोटी ने छीन लिया। कभी–कभी इस मेले में ऐसे चुम्बकीय व्यक्तित्व भी टकरा जाते हैं जो अनायास हमें अपनी ओर खींच लेते हैं, ऐसे व्यक्ति जाने पर भी हमारे दिल से नहीं जाते। उनका गम्भीर चिन्तन, मधुर संभाषण, स्नेहिल, आत्मीयता पूर्ण व्यवहार, अविश्वसनीय क्रियाशीलता, उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण हमारे मन मस्तिष्क पर ऐसी गंभीर छाप अंकित करता है, जिसे समय की कोई धूल मिटा नहीं पाती। वे हमारी मनोभूमि पर ऐसा अंगद पाँव गड़ाते हैं जो टस से मस नहीं होता। वे अक्सर याद आते हैं और जब आते हैं तब आभास होता है कि स्मृतियों के वातायन से वासन्ती बयार का मंद सुगंध शीतल झोंका आया हो और हमारे तनाव से तप्त तन–मन को अपने स्नेह की आद्रता से अभिसिंचित कर गया हो। ऐसे गिने–चुने व्यक्तित्व हमारे स्मृति कोष की अमूल्य धरोहर होते हैं।

ऐसे ही मेरे अग्रज तुल्य डॉ. शेखरचन्द्र जैन मेरे स्मृतिकोष के ऐसे देदीप्यमान रत्न हैं, जिससे मैं स्वयं को गौरवान्वित एवं सौभाग्यशाली अनुभव करती हूँ।

आदरणीय भाई शेखरजी से मेरी पहली मुलाकात हस्तिनापुर में सम्मेलन में हुई थी। सम्मेलन के समापन पर पूज्य माताजी ने भगवान ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के गठन की इच्छा प्रकट की। सर्वानुमोदित इस अच्छा के क्रियान्वयन का गुरुत्तर भार भाई शेखरजी के सुदृढ़ कंधों पर था। जिसका उन्होंने कुशलता से निर्वाह किया।

मैं अपनी कुछ महिला–मित्रों के साथ एक कोने में खड़ी यह नज़ारा देख रही थी। मन में विद्वत् संघ की सदस्यता ग्रहण करने की तीव्र लालसा थी। जब हम कुछ महिलाओं ने शास्त्रिय परिषद् की सदस्य बनने का प्रस्ताव रखा था तो प्रतिक्रिया नकारात्मक थी। भाई शेखरजी की पैनी निगाह से हम महिलाओं की उलझन छिपी न रह सकी। वे हम लोगों के समीप आकर बोले – इस 'तिरिया पल्टन' में क्या गुफ्तगूँ हो रही है? मुझे उनके

'तिरिया पल्टन' सम्बोधन में किंचित् व्यंग्य की गंध लगी, मैंने व्यंग्यात्मक टोन में ही प्रत्युत्तर दिया– तिरिया तो आँचल में दूध और आँखों में पानी वाली अबला होती है। उसकी पल्टन बनने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? शेखरजी ने पैंतरा बदला बोले– कौन कहता है? आप अबला हैं। पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी में तो हजारों पुरुषों की ऊर्जा है। जब मैंने डॉ. शेखरजी से शास्त्रि परिषद् की घटना का उल्लेख किया तो उन्होंने तपाक से रजिस्टर मेरे समक्ष रखते हुए कहा – 'विद्वत् संघ की सदस्यता का प्रारंभ आपसे ही होगा। जैनधर्म तो स्त्री–पुरुष की समानता का उद्घोषक है। कोई भेदभाव नहीं। हमारे समक्ष तीर्थंकर ऋषभदेव की पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी का आदर्श है। ऋषभदेव ने अपने पुत्रों के समान ही पुत्रियों को भी लिपि और अंक विद्या की शिक्षा प्रदान की। आदिपुराण के 16वें पर्व का निम्न् श्लोक इस तथ्य का प्रमाण है–

विद्यावान् पुरुषो लोक सम्मतिं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं॥

भाई शेखरजी के स्त्री जाति के प्रति इस उदार और व्यापक दृष्टिकोण ने मुझे भावाभिभूत कर दिया। आज भी जब किसी समारोह में अपनी सहेलियों के साथ शेखरजी से साक्षात्कार होता है – तो मैं 'तिरिया पल्टन' शब्द को दोहरा कर हँसी की फुलझड़ी छोड़े बिना नहीं रहती।

कुण्डलपुर की कार्यकारिणी में कुछ देर से पहुँचने पर बोले– आप उपाध्यक्ष की कुर्सी पर बैठकर समय की प्रतिबद्धता और अनुशासन का उदाहरण प्रस्तुत नहीं करेंगी तो सामान्य सदस्यों से हम किस मुँह से इन नियमों का पालन करने का आग्रह करेंगे? कथन सटीक था। बात मन को छू गई।

कुछ व्यक्तियों को शेखरजी की यह स्पष्टवादिता अखरती है पर कितनों में सच को सच कहने का नैतिक साहस होता है। विरोधियों के बाग्वाणों को सहते हुए भी डॉ. शेखर अपने कथन पर अडिग रहते हैं और उचित समय पर ईंट का जवाब पत्थर से देने में भी नहीं हिचकते। उनके अटल व्यक्तित्व की यह निर्भीकता उन्हें सामान्यजन से पृथक करती है।

यादों के झरोखे से एक और झोंका– मेरे निर्देशन में पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी के साहित्य पर एक अजैन शोध–छात्र ने आगरा विश्वविद्यालय में शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत किया। जैन धर्म और दर्शन के अधिकारी विद्वान डॉ. शेखरजी को शोध–प्रबन्ध का परीक्षक नियुक्त किया गया। शोध–प्रबन्ध पर उनका विद्वतापूर्ण, सारगर्भित, प्रतिवेदन प्राप्त होने पर विश्वविद्यालय ने उन्हें ही मौखिक परीक्षा के लिए आमंत्रण प्रेषित किया। परीक्षा विश्वविद्यालय परिसर में ही सम्पन्न होनी थी। उन्होंने सर्वप्रथम शोध छात्र की इस बात के लिये प्रशंसा की कि उसने अजैन होते हुए भी जैन संत पर शोध–कार्य करने का साहस किया। प्रश्नोत्तर के मध्य छात्र के सही उत्तर देने पर वे उसकी भरपूर प्रशंसा करते और जिस किसी प्रश्न पर वह अटक जाता, भाई शेखरजी मेरी ओर देखकर मुस्कराकर कहते– मैडम, सम्भवतः out of course मैं ही तो नहीं पूछ रहा?

पश्चात् डॉ. साहब ने स्वयं अपनी लेखनी से छात्र को पी.एच.डी. उपाधि प्रदान करने की संस्तुति की। ताजमहल परिसर में छात्र ने स्मृति स्वरूप डाक्टर साहब का मेरे साथ छाया चित्र लेने का अनुरोध किया। डॉक्टर साहब ने छात्र की श्रद्धा एवं आदर–भाव का सम्मान करते हुये हँसते हुए कहा– भई, मैं और मैडम तो उपाधि–प्राप्ति के शुभ कार्य में निमित्त मात्र हैं, उपादान तो तुम्हारा ही है, तुम भी हमारे साथ चित्र खिंचवाओ। इस अविश्वसनीय व्यवहार से छात्र विमुग्ध था।

प्रेरणास्पद घटनाओं, रोचक प्रसंगों की एक सुदीर्घ श्रृंखला मेरे स्मृतिकोष में है।

हम सबके लिये यह अत्यन्त हर्ष एवं गर्व का विषय है कि बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. शेखरचन्द्र जैन का राष्ट्रीय स्तर पर अभिनन्दन समारोह सम्पन्न होने जा रहा है। इस मांगलिक अवसर पर मेरी कामना है कि भाई शेखरजी जीवन के शतमधुमास देखें और उनकी अजस्र वाग्धारा हिमालय से कन्याकुमारी एवं द्वारिका से जगन्नाथपुरी ही सीमित न रहे अपितु अपनी उत्ताल तरंगों से ब्रिटेन, अमरीका, अफ्रीका, फ्रान्स आदि विदेशों के निवासियों की भावभूमि को भी अपने स्नेह–सलिल से अभिसिंचित कर दे। उनकी सशक्त लेखनी एवं ओजस्वी वाणी के माध्यम से 'तीर्थंकर वाणी' विश्व के कोने–कोने में ध्वनित हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आदरणीय भाई डॉ. शेखरचन्द्रजी एक दिन अपनी सात्विक उपलब्धियों के बल पर 'विधुशेखर' की ऊँचाई का स्पर्श करेंगे।

डॉ. कु. मालती जैन *(मैनपुरी, उ.प्र.)*

■ *બહુમુખી પ્રતિભાવંત શ્રુતઉપાસક*

ડૉ. શેખરચંદ્રજી જૈનને અભિનંદન આપવાનો અવસર એટલે વિદ્વતા અને જ્ઞાનની અનુમોદનાની પાવન ક્ષણ. ઇ.સ. ૧૯૯૫માં અમારી પર્યુષણ વ્યાખ્યાનમાળામાં વ્યાખ્યાન આપવા માટે અમારા નિમંત્રણને માન આપી મુંબઈ આવ્યા ત્યારે પ્રથમ પરિચય થયો.

જૈનધર્મનાં ગહન રહસ્યોને સરળતાથી રજૂ કરવાની આવડતને કારણે એમનાં પ્રવચનોમાં શ્રોતાઓની વિશેષ ઉપસ્થિતિ રહે.

પ્રાણ ગુરુ જૈન રિસર્ચ સેન્ટર મુંબઈ દ્વારા પૂ. શ્રી નમ્ર મુનિજીની નિશ્રામાં યોજાતા જૈન સાહિત્ય જ્ઞાનસત્રમાં ડૉ. શેખરચંદ્રની અચૂક હાજરી હોય જ. જ્ઞાનસત્રમાં વિભાગીય બેઠકનું અધ્યક્ષસ્થાન શોભાવી બેઠકને અંતે વિષયનું સુંદર રીતે સમાપન કરે.

કોઈક વિરોધાભાસી કે વિવાદાસ્પદ મુદ્દા અંગે નિશ્ચિતતાથી સ્પષ્ટ રીતે પોતાનો મત પ્રગટ કરે પરંતુ તેમની અભિવ્યક્તિ સંપૂર્ણ વિવેકયુક્ત હોય.

દેશના વિવિધ ભાગોમાં યોજાતાં સાહિત્ય સંમેલનો, જ્ઞાનસત્રો, પરિસંવાદ અને વ્યાખ્યાનમાળાઓમાં ભાગ લઈને તેમણે શ્રુત ઉપાસક તરીકેની આગવી પ્રતિભા ઉપસાવી છે.

વિદેશોમાં યોજાતી કોન્ફરન્સ, વ્યાખ્યાન શ્રેણીઓમાં જૈનધર્મના પ્રસાર-પ્રચારના ઉમદાકાર્ય દ્વારા તેઓશ્રી શ્રમણ સંસ્કૃતિના સંવર્ધનનું સુંદર કાર્ય કરી રહેલ છે.

'તીર્થંકર વાણી'ના સંપાદન દ્વારા સત્વશીલ સાહિત્ય ઘરે ઘરે પહોંચાડવાનું ઉત્તમ કાર્ય કરીને જૈન પત્રકારત્વમાં યોગદાન આપી રહેલ છે.

આશાપુરા મા જૈન હોસ્પિટલ દ્વારા સમાજસેવાના તેમના ઉમદા કાર્યની આપણે અનુમોદના કરીએ.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનનું તન અને મનનું સુંદર આરોગ્ય જળવાઈ રહે, દીર્ઘ આયુષ્ય સહ કુટુંબ પરિવાર અને મિત્રો વચ્ચે જીવનની સ્વસ્થ ક્ષણો માણે, સ્વાધ્યાય ભક્તિ અને સેવાનો ત્રિવેણીસંગમ તેમના જીવનમાં કાયમ રહે તેવી શુભેચ્છા સહ તેમના કાર્યની અભિવંદના કરું છું.

શ્રી ગુણવંત બરવાળિયા

મુંબઈ

■ बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी

जैनदर्शन के प्रभावी उपदेशक श्रीमान् डॉ. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद से मेरा परिचय जैन साहित्य सम्मेलन, पालनपुर में हुआ। विगत 20 वर्षों में उनसे मित्रता प्रगाढ़ होती गयी। इतना स्पष्टवादी और जैनधर्म का व्यापक ज्ञान रखनेवाला विद्वान् समाज में कम ही प्रतिष्ठित होता है। किन्तु डॉ. जैन इसके अपवाद हैं। उनके मिलनसार व्यक्तित्व और निस्पृही वृत्ति ने उन्हें देश–विदेश में अच्छी ख्याति प्रदान की है। गुजरात शिक्षा विभाग में हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्यकार और प्राचार्य के रूप में डॉ. जैन अत्यन्त लोकप्रिय शिक्षक रहे हैं। जैनविद्या के विद्वान् के रूप में आपकी प्रतिष्ठा ने उन्हें जैन विद्वानों की राष्ट्रीय संस्था का अध्यक्ष भी बनाया। डॉ. जैन साधु–सन्तों के अनन्य भक्त और साधक भी हैं। आपने नई पीढ़ी को साधना के कई प्रयोग कराये हैं। डॉ. शेखरचन्द जैन के व्यक्तित्व के कई आयाम हैं। आपने समाजसेवा के रूप में अहमदाबाद में एक अस्पताल भी संचालित किया है, जो कम खर्चे में रोगियों की सेवा कर रहा है।

डॉ. जैन एक निर्भीक पत्रकार हैं। समाज की कई समस्याओं पर आपने महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लिखे हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका तीन भाषाओं में निकलने वाली प्रतिनिधि जैन पत्रिका है। साहित्य, समाज और धर्म के क्षेत्र में आपके महनीय योगदान के लिए कई राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। ऐसे समाजसेवी, जिनवाणी सेवक एवं निर्भीक पत्रकार डॉ. जैन चिरायु होकर स्वस्थ एवं सुखद जीवन व्यतीत करें, यही हार्दिक शुभेच्छा हैं।

प्रो. डॉ. प्रेमसुमन जैन

पूर्व डीन, सुखाड़िया विश्व विद्यालय, उदयपुर (राज.)

■ प्रखर समन्वयवादी

डॉ. शेखर जिनका अभिनंदन ग्रन्थ छपना हमारे गौरव का विषय है। आपका सम्पूर्ण जीवन शिक्षा को समर्पित रहा आप एक अच्छे शिक्षाविद होने के साथ–साथ महान लेखक और संपादक भी हैं। आपकी लेखनी वे रोक टोक विषय वस्तु का सत्य प्रतिपादन करने से नहीं चूकती। तीर्थंकर वाणी के अनेक संपादकीय लेखों ने हमारे मानस को अनेक शंकाओं से मुक्त कराया। आपने अनेक गूढ़ ग्रन्थों के रहस्यों को अपनी सुबोध शैली में लिखकर समाज पर अद्‌भुत उपकार किया है। आपके लेख दिगम्बर–श्वेताम्बर दोनों परंपराओं में सर्वमान्य एवं ग्राह्य रहते हैं।

जहां आप दिगम्बर आम्नाय के चारों अनुयोगों के निष्ठावान विद्वान हैं वहीं आप श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थों से भिज्ञ हैं। यही कारण है कि आपको दिगम्बरों के साथ–साथ श्वेताम्बर समाज मे भी उतना ही महत्वपूर्ण माना जाता है। आपने अपनी ओजस्वी एवं विद्वतापूर्ण शैली से समाज के इन दोनों वर्गो में पड़ी खाई को पाटने का अद्‌भुत कार्य किया जो सराहनीय एवं अनुकरणीय है। आपका यह समन्वयवादी विचार निश्चित ही एकता स्थापित करने में नीव का कार्य कर रहा है।

अध्यापन–लेखन पठन के साथ साथ आपने वैय्यावृत्य का अद्‌भुत कार्य किया जो कालान्तर में कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। आशापुरा मां जैन अस्पताल स्थापित कर जो मानवसेवा का उत्कृष्ट कार्य आपके द्वारा किया जा रहा है उसे जैनधर्म में वैय्यावृत्य की संज्ञा दी गई है। इससे प्रतिदिन सैंकडो लोग लाभान्वित होकर अपने को धन्य मान रहे हैं। आपकी यह सेवा स्तुत्य एवं आदरणीय है।

पं. उदयचंदजैन शास्त्री *(सागर)*

पुरुषार्थ की प्रभा से प्रकाशित डॉ. शेखरचन्द्र

अभाव से प्रारंभ जीवन पुरुषार्थी को प्रारब्ध से लड़ने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है, ज्ञान की ललक ज्ञानार्जन के अवसर न मिलने पर भी पुरुषार्थ को विद्वान बना देती है। यह मेरे अनुभूत तथ्य हैं और डॉ. शेखरचन्द्र इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

पंडित शेखरचन्द्रजी ने अपने चिन्तन मनन के बल पर लेखन और प्रवचन में कैसी दक्षता प्राप्त की है तथा अपने अध्यापकीय गुण के माध्यम से विद्वत्ता को प्रज्वलित करते हुए देश विदेश में कैसा सम्मान प्राप्त किया है, इसे मैंने निकट से देखा जाना है। यह भी अनुभव किया है कि उनके ये गुण ईर्षा के कारण भी बने हैं जो प्रसिद्धि के परिचायक हैं।

सन 1988 में लीस्टर (इंग्लेण्ड) में सम्पन्न पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में सम्मिलित होने के साथ ही मुझे एक माह की विदेश यात्रा का अवसर मिला था। उसी यात्रा में शेखरचन्द्रजी से मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। कुछ समय बाद एक कार्यक्रम में उनका सतना पधारना हुआ तो अपनी कुटिया में उनके स्वागत का अवसर भी मिला।

अहमदाबाद के टाउन हाल में वहां की श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा पर्यूषण पर्व में एक सप्ताह प्रातःकालीन प्रवचन सभा का आयोजन होता है। जिसमें प्रतिदिन दो विद्वानों के प्रवचन होते हैं। डॉ. शेखरचन्द्र के माध्यम से मुझे सन 1972 और सन 1977 में वहां से आमंत्रण मिले, मेरा एक एक प्रवचन हुआ। वहां मेरे मित्र भरतभाई शाह ने बताया और मैंने स्वयंभी देखा कि वहां श्वेताम्बर जैन समाज में शेखरचन्द्रजी की अच्छी प्रतिष्ठा है। जो उनके समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है।

विद्वत संगोष्ठियों में प्रायः पंडित शेखरचन्द्रजी से मिलना होता रहता है। अव्यवस्थाओं और अनियमितिताओं पर उनकी स्पष्ट और तीखी प्रतिक्रियायें उनकी उपस्थिति का सहज ही अहसास करा देती है।

इस मंगल अवसर पर मैं उनके यशस्वी दीर्घ जीवन की कामना एवं उन्हें हार्दिक शुभकामनायें अर्पित करता हूँ।

निर्मल जैन *(सतना)*

विद्वत् समाज के गौरव ही नहीं शिरमौर भी हैं

जैन जगत के नक्षत्र पर एक नाम गौरव के साथ लिया जाता हैं वह नाम है डॉ. शेखरचन्द्र जैन। आपने दि. जैन समाज की अ.भा.दि. जैन संस्थाओं में आमूल चूल परिवर्तन किये, समाज को नई दिशा व नई राह दी। कुरीतियों, कुमार्गो का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और कर रहे हैं।

आप जैन समाज के प्रखर प्रवक्ता, वाणी के धनी, ओजस्विता लिये हुए है। समाज की दिशा–दशा बदलने में सक्षम/स्वाभिमानी निर्लोभी– अनेक सुगुणो से विभूषित।

आप अ.भा.क्षेत्रीय स्थानीय शताधिक संस्थाओं के पदाधिकारी, प्रबन्ध समिति– कार्य समिति से सम्बन्धित हैं। देश की कोई संस्था नहीं है जो सभी आपकी सहभागिता न हों।

आप वर्तमान विद्वानों में अग्रणी और शिरमौर हैं। व्यक्तित्व के धनी–भारतीय जैन समाज में आप एक विलक्षण प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के धनी हैं।

ऐसे विद्वान का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन होना तथा सम्मान होना समाज के गौरव पूर्ण है। हम ऐसे महान विद्वान के प्रति शत्–शत् वन्दन–नमन करते हुये दीर्घायु की कामना करते हैं।

पं. सरमनलाल जैन 'दिवाकर' शास्त्रि *(सरधना)*

देशी-ग्लोबल व्यक्तित्व के धनी

आदरणीय डॉ. साहब को मैं बाल्यकाल से ही जानता हूँ। पूज्य पिता प्रो. डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी जी के अभिन्न मित्र एवं अग्रज होने के नाते आपको मैंने हमेशा 'अंकलज' कहकर संबोधित किया है यद्यपि इस संबोधन के पीछे मेरे अव्यक्त संबोधन 'ताऊ जी' का भाव ही सदा प्रबल रहा है। मैंने हमेशा उन्हें इसी भूमिका में पाया भी है। 'गलत को गलत और सही को सही निर्भीकता पूर्वक कहना और चाहे वह घर हो अथवा कोई भी मंच तत्काल उसी स्थान पर कहना'– मैं सदा से आपकी इसी अदा पर कायल रहा हूँ। बातचीत का शुद्ध देशी अंदाज और ग्लोबल चिन्तन जहाँ आपको बुन्देलखण्ड की मिट्टी से जोड़कर रखता है वहीं दूसरी ओर आपको विश्व व्यापक भी बनाता है। पूरी दुनिया के दिलों पर राज करनेवाले जितने भी लोग हुये हैं वो कभी किसी की तरह नहीं बने बल्कि हमेशा अपनी ही तरह रहे और अपने ही अंदाज में लोगों को प्रभावित किया है। डॉ. साहब को मैं उन्हीं लोगों की श्रेणी में मानता हूँ।

मेरा अहमदाबाद जाना भी हुआ, आपके घर पर अपने घर की तरह रहा भी। छात्र जीवन में जब कभी भी आप संगोष्ठियों में मिलते हमेशा मेरा उत्साहवर्धन करते और नवांकुर लेखक होते हुए भी मेरा उत्साह बढ़ाने की दृष्टि से मेरे आलेख तीर्थंकर वाणी में भी आपने प्रकाशित किये। आज भी आप मेरे प्रेरणास्रोत हैं, हमेशा मार्गदर्शन देते हैं। इस दुनिया में कोई भी बड़ा कार्य करना हो तो उत्साहवर्धन करने वाले कम मिलते हैं। मुझे स्मरण है श्रवणबेलगोला में मस्तकाभिषेक–2006 के उपलक्ष्य में आयोजित ऐतिहासिक जैन विद्वत् सम्मेलन की तैयारियों के दौरान उपसर्गों का जब दौर चला तब आपने उत्साहवर्धन किया था और उस सम्मेलन ने ऐतिहासिक सफलता भी प्राप्त की।

आपकी संपादकीय, मौलिक चिन्तन तथा वक्तव्यों में वो प्रभाव रहता है कि लोग बरबस ही आकर्षित हुए चले जाते हैं। मेरी भावना है कि आपकी वाणी आपका ज्ञान इसी प्रकार देश विदेश में फैलता रहे और आप हमेशा जिन शासन की ध्वजा दिग्दिगंत में फहराते रहें।

डॉ. अनेकान्तकुमार जैन *(नई दिल्ली)*

एक बहु-आयामी व्यक्तित्व

डॉ. शेखरचन्द्र जैन जैन विद्या के उन अध्येताओं में है, जो अपनी स्पष्टवादिता और प्रखर पत्रकारिता के कारण अधिक जाने जाते हैं। डॉ. शेखरचन्द्र जैन से मेरा परिचय लगभग दो दशक से भी अधिक का है। वे एक सफल अध्यापक, लेखक एवं पत्रकार हैं फिर भी उनकी प्रतिभा को जो निखार मिला है वह उनकी स्पष्टवादी पत्रकारिता के कारण ही है। आजकी स्वार्थ लिप्त चाटुकारी पत्रकारिता से कोसों दूर हैं। दूसरे आपकी विशेषता यह है कि आप पत्रकारिता के क्षेत्र में भी साम्प्रदायिक आग्रहों और दुराग्रहों से मुक्त रहे हैं। यही कारण है कि आपकी 'तीर्थंकर वाणी' को जैन समाज के श्वेताम्बर–दिगम्बर दोनों ही समाज में समान प्रतिष्ठा प्राप्त है। वे अच्छे लेखक और वक्ता तो हैं ही, किन्तु उससे अधिक एक समाजसेवी और मानवता के उपासक भी है। प्राणीमात्र के प्रति आपकी करूणा सदा प्रवाहमान रही है। आपके नेतृत्व में जो अस्पताल संचालित हो रहा है वह उनकी सेवा भावना का जीवन्त प्रमाण है। इस प्रकार डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक बहु–आयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। जैन समाज एवं जैन विद्या की जो वर्तमान स्थिति है, उसके लिए उनके मन में गहरी पीड़ा है– जिसने उन्हें अपने

जीवन वे इस उत्तरार्ध में भी सक्रिय बनाये रखा है। आपका कार्यक्षेत्र गुजरात रहा है। आपकी समन्वयवादी और सहिष्णु प्रकृति निश्चय ही आपके व्यक्तित्व को विशेष गरिमा प्रदान करती है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि समाज ने आपके अभिनन्दन का निर्णय लिया है। मैं आपके सुखद एवं मंगलमय भावी जीवन की कामना करते हुए यही अपेक्षा रखता हूँ कि आपकी लेखनी समाज को संकीर्णता की दिवारों से भूलकर एक समग्र एवं समन्वित दृष्टि प्रदान करे।

डॉ. सागरमल जैन *(शाजापुर)*

पूर्व निदेशक, श्री पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी

❀ *अविस्मरणीय पल*

मुझे ज्ञातकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि हम उम्र भाई डॉ. शेखरचन्द्र जैन का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। इस अभिनन्दन ग्रन्थ समिति के सभी पदाधिकारी गण व सदस्यगण बधाई के पात्र हैं। डॉ. शेखरजी के विषय में मैं अपनी पुत्रवधू डॉ. (श्रीमती) अल्पना जैन 'अभि' से सुनता रहता था। वह उनकी काफी तारीफ करती थी। जब डॉ. साहब का फोन आता तो वह मुझे से भी बात करा देती। फोनवार्ता से भले व्यक्ति सहज, सरल व्यक्तित्व के धनी प्रतीत हुये। मैंने उन्हें अपने घर आने के लिए आमन्त्रित किया। सुयोग्य से मेरा व मेरी धर्मपत्नीजी का जाना अल्पना के साथ अयोध्याजी हुआ। काफी धार्मिक चर्चा होती रही। मिलके ऐसा पहलीबार में ही लगा जैसे हम लोग कितने पुराने परिचित हैं। उनका व्यक्तित्व काबलेतारीफ है।

जब वह भाई विनोद हर्ष, इन्दू वी. शाह, कान्ताबेन, डॉ. सुशील के साथ हमारे निवास स्थान पर पधारे तो कुछ ही क्षण में ऐसा प्रतीत होने लगा न जाने हम सब कब से एकसाथ रह रहे हैं। बिना कोई तकुल्लक के अपनत्व के साथ हम सभीने दिन व्यतीत किया। जब हमने अपने यहाँ की निर्मित भगवान महावीर की मूर्ति (फाइबर ग्लास) भेंट की तो कहने लगे इसे तो हम हास्पीटल में लगायेंगे और उद्घाटन के लिए आपको आना है। इस सम्बन्ध में कईबार फोन प्राप्त हुआ। आपके आने पर ही रखी जायेगी। परन्तु कुछ कारणोंवश मैं नहीं पहुँच सका। उन्होंने मुझे भाई का सम्मान व स्नेह दिया। उनके साथ बिताये अविस्मरणीय पल मेरे आज भी हृदयांगत हैं।

सरल स्वभावी, ओजस्वी वाणी, प्रखर वक्ता के उज्ज्वल भविष्य, सुस्वास्थ्य की कामना करता हूँ। वह शतायु हों।

"हम भाई का फर्ज निभाते रहेंगे आपको सदा हम बुलाते रहेंगे॥
दुआ कर रहे है लम्बी उम्र हो आपकी यूँ ही ज्ञानामृत की वर्षा सदा करते रहेंगे॥"

श्री विनोदकुमार जैन

अवध ग्रामोद्योग संस्थान, लखनऊ

❀ *एक अजस्र निर्झर ज्ञान का*

डॉ. शेखरचन्द्र जैन एक नाम है श्रद्धा का, विश्वास का और सम्मान का। वे प्राज्ञ पुरूष हैं। पाण्डित्य के उस शिखर पर अवस्थित हैं जहाँ अतीत और भविष्य – सब कुछ दिखाई देता है। वे ऐसे 'गुनी' हैं जो केवल वाणी से ही सामने वाले के अन्तस को निर्विष कर देते हैं। सदैव तृप्त, मुस्कुराते हुए और जीवन्तता से लबालब भरे हुए, सदैव समशीतोष्ण व्यक्तित्व।

डॉ. साहब का ओजस्वी व्यक्तित्व विकास के हर सोपान पर उजालों का प्रदीप बनकर प्रेरणा का संचालन

करता है। उनकी कविताएं मृदुता की निर्झरिणी है। उनके शोधालेख शास्त्रोचित उद्धरणों तथा श्रमण संस्कृति के विचित्र स्तम्भों की कीर्ति का समावेश करते हैं। अपने गृहस्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक उत्तरदायित्वों का निर्वाहन जिस सूझ बूझ, लगन, निष्ठा, दूरदर्शिता, अदम्य साहस तथा उत्साह के साथ डॉ. साहब ने किया वह श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है।

मुझे अनेक संगोष्ठियों एवं साहित्यिक अवसरों पर एक साथ रहने का अवसर मिला हैं। निश्चय ही ऐसे अवसरों पर उनकी पत्रकारिता, साहित्यिक तेजस्विता एवं स्पष्ट वादिताने मुझे बेहद प्रभावित किया है उनका व्यक्तित्व एक तेजस्वी पत्रकार एवं मनस्वी साहित्यकार का समुचित व्यक्तित्व है।

स्वयं अपने पथ का सृजन करनेवाले कर्मयोगी डॉ. साहब की विनोदप्रियता एवं प्रत्युत्पन्नमति उनके व्यक्तित्व की एक निराली ही पहचान है। गम्भीर से गम्भीर विषय को हास्यपुट की ध्वनियों से अनुगूंजित कर देना उनकी अपनी विशेषता है। वाणी और अर्थ का सुमधुर संगम अनेक बार मुझे पुलकित कर गया और वे लोकप्रिय अध्यापक, कुशल कवि, प्रतिभाशाली वक्ता, सामाजिक कार्यकर्ता, साहित्यसेवी, संपादक एवं कुशल संचालन से भावमय भाषा से जनता को आवद्ध करने में पूर्णतः समर्थ हैं। विदेशों में भी मैंने उनके प्रभाव को देखा है 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादकीय अग्रलेख में वर्तमान की समस्याओं का प्रकटीकरण एवं समाधान जिस अभय–भाव से करते है उसकी पत्रकारिता जगत में द्वितीयता नहीं है। उनके विचारों में दृढ़ता होती है, ज्ञानालोक से दीप्त उनके सुचिन्तित विचार पाटकों को नई दृष्टि देते हैं। उनकी जैसी अर्थ गर्भ शब्दावली सम्पादन जगत में प्रायोविरल है।

अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन मात्र डॉ. साहब अभिनन्दनीय व्यक्तित्व का एक छोटा सा उपक्रम है। वे स्वर्णिम कविष्ट के तट की ओर ले जाने वाले समर्थ मांझी हैं। आपका अभिनन्दन समारोह हमारे लिए उत्सव है, महोत्सव है। हम डॉ. राहब के यशस्वी भविष्य स्वस्थ दीर्घायुष्य की मंगलकामना करते हैं। डॉ. साहब के व्यक्तित्व की सौरभ चतुर्दिक इसी प्रकार फैलती रहे उनके ज्ञान का अजस्र निर्झर इसी प्रकार झरता रहे और सबकी प्यास बुझाता रहे।

अनतंशः मंगलकामनाओं सहित

डॉ. नीलम जैन *(गुडगाँव)*
संपादिका– 'जैन महिला दर्श'

■ *तलहटी से शिखर तक*

शिखर की उच्च श्रृंखला पर पहुँचना अत्यन्त कठिन है परन्तु इरादे नेक हों, होसले बुलन्द हों तो हर कँटीले रास्ते भी फूलों की चादर बन जाते हैं, मन में संकल्प हो कि– 'हम होंगे कामयाब एक दिन....' ऐसे संकल्प को लगातार डॉ. शेखरचंद्र जैनजीने अपना लक्ष्य बनाया

उन्होंने अपना पूरा जीवन दूसरों के लिए समर्पित कर दिया हर क्षेत्र में अपना योगदान दिया।

उठ रहा मस्तक में तूफान, न तन का ध्यान, न मन का ध्यान
अधर पर ले फिर भी मुस्कान, गा रहा वो नव युग के गान

मेरा, इस प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का परिचय रोटरी में हुआ, उनका सालस, सरल और सहज स्वभाव निरन्तर स्मरण में रहता है, रोटरी में अपने मिलनसार स्वभाव के कारण अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं।

यह अचरज की बात नहीं, यह कोई बात अजानी
मिट्टी को अच्छी लगती है, मिट्टी की कहानी॥

वह मेरे अस्पताल में भी दर्दी बनकर आए, हकारात्मक वैचारिक दृढ़ता से ओपरेशन के दर्द को भी सामान्य दर्द बनाया। अपने आनंदी और हसमुँख स्वभाव से लोगों का मन जीतने की कला को वह बखूबी से जानते हैं। वे डॉक्टर को भी रिलेक्स कर देने की क्षमता रखते हैं।

वे प्रसिद्ध प्राध्यापक रह चुके हैं, और विद्यार्थियों के बीच तटस्थता से अपने हर विधान, विभाग और कार्य को सम्पन्न किया है। वर्तमान समय में भी अस्पताल में सेवा का कार्य करके सद्‌भाव और मैत्री के द्वारा लोगों को लाभान्वित कर रहे हैं।

मेरी यही शुभकामना है कि परमात्मा उनको दीर्घायु दे और काम करने की शक्ति दे। वृद्धत्व में भी युवाओं जैसा स्वास्थ्य दे।

मस्तक पर आकाश उठाएँ, धरती बाँधें पांवों से।
तुम निकलो जिन गाँवो से, सूरज निकले उन गाँवो से॥

डॉ. रमेश आर. बिरडीया *(भावनगर)*

■ *एक निर्भीक सेनापति*

कुछ मित्रता ऐसी होती है जिसको हम नाम नहीं दे पाते सिर्फ अनुभव ही कर पाते हैं जो संबंध, रिश्तेदारी से भी आगे होते हैं ऐसा ही कुछ रिलेशन संबंध मेरा डॉ. शेखरचंदजी के साथ है। मेरा उनका परिचय पिछले ५० वर्षों से है। सामाजिक धार्मिक प्रसंगो में मिलना जुलना होता था। मैं अपने धंधे में, वे अपने लेखन कार्य में व्यस्त रहते। करीबी मामला पड़ा जब १९८४ में हमने पंचकल्याणक किया। गोमतीपुर मंदिर का मुख्य ट्रस्टी होने के नाते पंचकल्याणक की सारी जिम्मेदारी मुझ पर थी। उस समय पंचकल्याणक बहुत कम होते थे। मेरी मनसे इच्छा थी कि ऐसा भव्य कार्यक्रम हो कि लोग सालों याद करें। मेरे पास सेना थी हथियार थे पर कमी थी सिर्फ सेनापति की। मैं चाहता था मेरे ही समाज का कोई ये कार्य वहन करे। उस समय डॉ. शेखरचंदजी भावनगर कॉलेज में प्रोफेसर थे। मेरा मन चाहता था कि वे इसे सम्हालें, उनसे फोन से बात की ओर सारी परिस्थिति बताई। मेरे आश्चर्य की सीमा ना रही उन्होंने तुरंत जवाब दिया 'हुकमचंद तुम चिंता मत करना अगर एक माह की छुट्टी भी लेनी पड़ी तो मैं अहमदाबाद आ जाउँगा। और वही हुआ। वे एक माह की छुट्टी लेकर अहमदाबाद आ गये। जब तक प्रतिष्ठा पूरी नहीं हुई वे रात दिन काम में लगे रहे। प्रतिष्ठा के कार्यक्रम की ऐसी रूपरेखा बनाइ कि वह पंचकल्याणक अहमदाबाद के इतिहास में सुवर्ण अक्षर से लिखा गया। कवि सम्मेलन, सर्वधर्म सम्मेलन, संगीत संध्या, गवर्नर श्री की उपस्थिति, मीनिस्टरों की भरमार ने कार्यक्रम में चार चांद लगा दिये। तब मुझे डॉ. शेखरचंद की प्रतिभा का गहराई से परिचय हुआ।

उनकी प्रवचन शक्ति, लेखन शक्ति और कंट्रोल पावर गजब का है। सभी कहते हैं उनका स्वभाव कडक है पर में कहूँगा अगर कडक अनुशासन ना हो तो कार्यक्रम शत–प्रतिशत सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसी प्रतिभा के धनी को साथ लेकर हमने शिवानंदनगर मंदिर का भी पंचकल्याणक किया और हम सफल रहे। हमने जो सहजानंद वर्णी पुरस्कार देना प्रारंभ किया उसकी प्रेरणा हमें उन्हीं से मिली है।

आज जो उनका अभिनंदन होने जा रहा है सही अर्थ में अभिनंदन उनका नहीं समग्र जैन समाज का है और

मुझे इस बात का गौरव है कि वो मेरे परम स्नेही मित्र हैं।

अभिनंदन के साथ आज उनकी शादी की ५१वीं वर्षगांठ भी मनाई जा रही है। उनके अच्छे बुरे वक्त में सदा उनका साथ निभाने वाली श्रीमती आशा जैन भी उतने ही सन्मान की पात्र हैं। कहते है हर इन्सान की सफलता के पीछे स्त्री का का हाथ होता है। श्रीमती आशाजी भी आज इस प्रसंग की गरिमा की सहभागी हैं।

हुकुमचंद जैन (पंचरत्न)

अध्यक्ष– गोलालारीय दि. जैन सेवा समिति, अहमदाबाद

'માનવીય સંબંધોના માણસ'

માનવીના જીવનમાં અનેક વ્યક્તિઓના પરિચયમાં આવવાનું થાય છે. જેમાંની કેટલીક વ્યક્તિઓ સાથેનો સંબંધ તૂટી જાય છે જ્યારે કેટલીક વ્યક્તિઓ એવી હોય છે કે ભલે રોજબરોજ સંપર્ક ન થતો હોય, પણ માનસપટ પર એક વિશિષ્ટ પ્રકારની છાપ મૂકી જાય છે. મારા વ્યવસાયિક જીવનમાં આપી એક વિશિષ્ટ વ્યક્તિનો પરિચય થયો અને તે છે પ્રોફેસર ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન.

હું સદ્‌ગુણા ગર્લ્સ કોલેજમાં અધ્યાપક હતો અને ડૉ. રવીન્દ્રભાઈ ઠાકોર અમારા આચાર્ય હતા. ત્યારે ૧૯૮૮માં અમારી કોલેજમાં હિન્દી વિષયમાં ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનની નિમણૂંક થઈ. તેમને અધ્યાપક તરીકેનો ઘણા વર્ષોનો અનુભવ, ભાવનગર કોલેજમાં આચાર્ય તરીકેનો પણ અનુભવ, ભાવનગર યુનિ.માં સત્તામંડળોમાં પણ ચૂંટાયેલા. પ્રૌઢ વ્યક્તિત્વ ધરાવતા એવા અનુભવી અધ્યાપક પ્રો. જૈન સાહેબ અમારી સાથે જોડાયા તેથી સંસ્થાને અને અમને પણ આનંદ થયો. અધ્યાપક તરીકે બહુ સહજ રીતે જ કુદરતની પ્રેરણાથી જ અમારી મૈત્રી બંધાઈ. જૈન સાહેબ અમારા સૌ અધ્યાપકોમાં દૂધમાં સાકરની જેમ સાવ સ્વાભાવિક રીતે જ ભળી ગયા અને એક આદરણીય વડીલ તરીકેનું સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું.

એપ્રિલ ૧૯૮૯માં હું આજ સદ્‌ગુણા કોલેજમાં આચાર્ય તરીકે નિમાયો. જે કોલેજમાં ૧૯૬૮ થી અર્થશસાસ્ત્રના અધ્યાપક તરીકે કાર્ય કરતો હતો તે જ કોલેજમાં આચાર્ય તરીકે નિમાયો ત્યારે મારા મનમાં એક એવી મૂંઝવણ હતી કે મારા કરતાં પણ કેટલાક અધ્યાપકો સિનિયર અને વધારે અનુભવી હતા. ઉંમરમાં પણ મોટા હતા તેમની સાથે કાર્ય કરવાનું ફાવશે કે કેમ? આવા સિનિયર અધ્યાપકોમાંના એક હતા ડૉ. જૈન સાહેબ. અગાઉ આચાર્ય તરીકે પણ ભાવનગરની કોલેજમાં કામ કરેલ. પરંતુ તેમણે મને ક્યારેય તેનો ભાર લાગવા દીધો નહિં. એક આચાર્ય તરીકે મેં તેમને જે કંઇ પણ કામ સોંપ્યું તે તેઓ ઉત્સાહથી અને આનંદથી કરતા. ઈ.સ. ૧૯૯૭માં જૈન સાહેબ નિવૃત્ત થયા ત્યાં સુધી અને ત્યાર પછી પણ અમારો મૈત્રી સંબંધ ચાલુ રહ્યો છે અને ટકી રહ્યો છે તેને હું મારા જીવનનો એક સુખદ અવસર ગણું છું.

એક સમૃદ્ધ વ્યક્તિત્વ

સદ્‌ગુણા કોલેજના તેમના પહેલા દિવસના આગમનથી જ જૈન સાહેબે મારા અને સૌ અધ્યાપક મિત્રોના મન પર પ્રભાવી છાપ પાડી. તેમની ઉપસ્થિતિમાં અમારી કોલેજનો અધ્યાપક ખંડ હંમેશા ભર્યો ભાદર્યો લાગતો. તેમની સહજ અને અનૌપચારિક વાતો, તેમની હળવી રમૂજો અને ખડખડાટ હાસ્યથી અધ્યાપક ખંડનું વાતાવરણ હળવું અને આનંદિત રહેતું. તે અને તેમનું અધ્યાપન કાર્ય અને તેમને સોંપેલી કોઇપણ પ્રવૃત્તિ ઉત્સાહથી અને સારી રીતે કરવી એ તેમનો કોલેજનો રોજિંદો ક્રમ હતો. કદાચ કોઇક બાર મારો કોઇ નિર્ણય ના ગમતો હોય તો મને રૂબરૂમાં પ્રેમથી કહેતા અને જરૂરી સલાહ તેમજ માર્ગદર્શન પણ આપે. મારા આચાર્યકાળ દરમિયાન હું કોલેજમાં બહુ જ સાહજિકપણે જે અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓ કરી શક્યો

તેમાં મારા કેટલાક અધ્યાપક મિત્રોની સાથે જૈન સાહેબનો પણ મહત્ત્વનો સહયોગ રહ્યો છે.

ઉત્તમ વક્તા

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અમારી કોલેજમાં હિન્દીમાં વ્યાખ્યાતા તરીકે જોડાયા ત્યારે મેં એવું સાંભળેલું કે તેઓ બહુ જ સારા વક્તા છે. કોલેજમાં એક સમારંભમાં મેં જ્યારે પહેલપહેલું તેમનું વક્તવ્ય સાંભળ્યું ત્યારે હું અને અમારા સૌ અધ્યાપકો, વિદ્યાર્થીઓ પ્રભાવિત થયા. તેઓ હિન્દીની સાથે ગુજરાતી ભાષામાં પણ તેમના વક્તવ્યથી શ્રોતાઓને પ્રભાવિત કરી દે. જૈન સાહેબ પાંચ મિનિટ બોલે, પંદર મિનિટ બોલે કે એક કલાક બોલે અને તે પણ કોઈપણ વિષય પર, કોઈપણ પ્રસંગે, એક વાત નક્કી કે તે શ્રોતાઓને રસતરબોળ અને મંત્રમુગ્ધ કરી દે.

કવિ-વિચારક, ચિંતક અને લેખક

જૈન સાહેબના સ્વભાવની સરળતા, મોં પરની હળવાશ અને આનંદિત ચહેરો જોઈને કોઈને ખ્યાલ પણ ના આવે કે તેઓ બહુ મોટા ગજાના કવિ, વિચારક, ચિંતક અને લેખક હશે. તેમની બહુમુખી વિદ્વતાનો અણસાર પણ ના આવે. જૈન સાહેબના ચહેરા પર કે તેમન સાથેની વાતચીતમાં કે તેમના વ્યક્તિત્વમાં વિદ્વત્તાનો ભાર ક્યારેય જોવા ન મળે. જૈન સાહેબ હિન્દી સાહિત્યના ઉત્તમ કવિ. તેમના કાવ્યો અને તે પણ તેમના મુખેથી સાંભળવા એ લ્હાવો હતો. અમારી કોલેજમાં તેમના આવ્યા પછી પ્રતિવર્ષ હિન્દી અને ગુજરાતી કવિ સંમેલનો થતાં, મુશાયરાઓ થતા અને તેમાં પણ જૈન સાહેબનું સંચાલન હોય! સૌ મંત્રમુગ્ધ બની જતા. કવિ હોવા ઉપરાંત તે ઉત્તમ લેખક પણ ખરા. તેમણે હિન્દી સાહિત્ય અને જૈન સાહિત્યનાં અનેક લેખો, પુસ્તકો પણ લખ્યા. અત્યારે પણ તેઓ આ ક્ષેત્રમાં પ્રવૃત્ત છે. જૈન ધર્મના સિદ્ધાંતોના પ્રચાર-પ્રસાર માટે તેઓ અમેરિકા, ઇંગ્લેન્ડ, આફ્રિકા વિગેરે દેશોમાં ઘણીવાર ગયા છે. અત્યારે પણ આ પ્રવૃત્તિ કરે છે. જૈન ધર્મના ઘણા રાષ્ટ્રીય અને આંતરરાષ્ટ્રીય સેમિનારમાં તેમના સંશોધન લેખો રજૂ કર્યા છે. આ રીતે જોઈએ તો જૈન સાહેબને કવિ, લેખક, ચિંતક, વિચારક અને સંશોધકની કક્ષામાં મૂકી શકાય.

માનવીય સંબંધોના માણસ

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનમાં ઉપરનાં ગુણોની સાથે નાના મોટા સૌને સ્પર્શે તેવું એક વિશિષ્ટ પાસું તે છે તેમના વિવિધ ક્ષેત્રના લોકો સાથેના વ્યાપક અને આત્મીય સંબંધ. મેં જે રીતે જૈન સાહેબને અને તેમના સંબંધોને જોયા છે, જાણ્યા છે અને માણ્યા છે તેથી ટૂંકામાં કહેવું હોય તો કહી શકાય કે- 'ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન એટલે માનવીય સંબંધોના માણસ'. તેમને વિવિધ ક્ષેત્રના અનેક લોકો અને મહાનુભાવો સાથે વ્યાપક અને આત્મીય સંબંધો બંધાયા છે. જૈન સાહેબ માત્ર સંબંધો બાંધી જાણે એટલું જ નહીં પરંતુ ટકાવી પણ જાણે. વિવિધ પ્રસંગોમાં મિત્રોને બહુ ભાવથી બોલાવે. કોલેજમાંથી નિવૃત્ત થયા હોવા છતાં આજે પણ તેમનું ભાવભીનું નિમંત્રણ ઘેર આવવા માટેનું અમારા જેવા સૌ મિત્રોને હોય જ.

હું કોલેજમાં આચાર્ય હતો ત્યારે અમારા સાંસ્કૃતિક કાર્યક્રમમાં જૈન સાહેબનાં પ્રભાવ-પ્રતિષ્ઠાથી અમે બન્ને તે સમયના રાજ્યપાલશ્રી શાસ્ત્રી સાહેબને લાવી શક્યા.

હું કોલેજના એન.એસ.એસ.ના રાષ્ટ્રીય એકતા શિબિરમાં પંજાબમાં ભટીંડા મુકામે જવાનો હતો. તે સમય દરમ્યાન જ દિલ્હીમાં ઇન્ટરનેશનલ જૈન સેમિનાર હતો અને તેમાં જૈન સાહેબ તેમનો સંશોધન લેખ રજૂ કરવાના હતા. તેમને મને આગ્રહ કરીને આ સેમિનારમાં હાજર રહેવા માટેનું નિયંત્રણ આપ્યું. હું આ સેમિનારમાં ગયો ત્યારે ભારત અને અન્ય દેશોમાંથી જૈન ધર્મના વિદ્વાનો અને દિલ્હીના શ્રેષ્ઠીઓ સાથેનો જૈન સાહેબનો પરિચય જોઈને મને તેમના સંબંધોની વ્યાપકતાનો સવિશેષ ખ્યાલ આવ્યો.

જૈન સાહેબને વ્યાપક સંબંધો તો ખરા જ. પરંતુ વિશેષતા એકે આ સંબંધોનો તેઓ માનવીય અને સામાજિક સેવાના કાર્યોમાં ઉપયોગ કરે. જૈન સાહેબનાં પુત્ર અશેષ એમ.ડી. ડોક્ટર છે. ઓઢવમાં પ્રેક્ટીસ કરે છે. તે પણ સેવાભાવી છે. અમારી કોલેજનાં કર્મચારી રામહજુરની તેઓએ નિઃશુલ્ક સારવાર કરી આપી. દવાના ખર્ચની વ્યવસ્થા મેં કરી આપી. તેઓએ ઓઢવમાં આશાપુરા જૈન હોસ્પીટલ દ્વારા ગરીબ ભાઈ-બહેનોને સેવા કરીને માનવતાનું ઉદાહરણ પુરું પાડ્યું છે. બહુઆયામી વ્યક્તિત્વ ધરાવતા જૈન સાહેબ મારા મિત્ર છે તેનો મને આનંદ છે એટલું જ નહિ, અમારા બંનેની નિવૃત્તિ પછી પણ આ મૈત્રી રહી છે.

આ અભિનંદન ગ્રંથ પ્રકાશન પ્રસંગે હું તેમની સિદ્ધિઓ માટે તેમને અભિનંદન પાઠવું છું.

પ્રિ. વાડીભાઈ પટેલ *(અમદાવાદ)*

❀ *एक निर्भीक स्पष्ट प्रवक्ता*

मैंने पढ़ा है कि सौ व्यक्तियों में कोई एक शूर होता है, हजारों में एक पण्डित होता है पर दस हजारों में कोई एक वक्ता होता है– इस दृष्टि से वे एक सफल वक्ता–संचालक हैं। चाहे हस्तिनापुर की गोष्टि हो, सूरत का विद्वत् सम्मेलन हो या श्रवणबेलगोला के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर संपन्न अ.भा. विद्वत् गोष्ठी–सम्मेलन हो– वे फटाक से जो भी मन में आये वह बोल ही देते हैं। कभी हम सत्य कहने में हिचक भी जायें, पर वे चाहे साधू हो, भट्टारक हो सबको अपनी प्रतिक्रिया देते हैं, और विद्वानो में अपनी स्पष्ट हृदयगत गरिमा के लिये जाने जाते हैं।

डॉ. शेखरचंद्र जैन एक कुशल दूरदर्शी, समर्थ, सभा संयोजक संचालक हैं। वे भलीभाँति जानते हैं कि इस सभा को गरिमा और विषय की व्यापकता कैसी हो, अतः जहाँ भी संगोष्टि या परिचर्चा होती है– डॉ. शेखरचंदजी का नाम अग्रगण्य होता है।

डॉ. शेखरचंद्र जैन अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान हैं। जिन्होंने जैन धर्म एवं दर्शन के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित एवं प्रकाशित कर विदेशों में आमंत्रित होकर अपने बहुआयामी व्यक्तित्व को निखारा है। इसका एक प्रबल कारण है कि वे बहुभाषी हैं। उनके हिन्दी, गुजराती कथा साहित्यने उन्हें साहित्य सृजन के क्षेत्र में एक श्रेष्ठ साहित्यिक के रूप प्रस्थापित किया है।

कुशल संपादक डॉ. शेखरचंदजी जैन हमारी जाति के हैं, अर्थात वे तीर्थंकर वाणी के कुशल संपादक हैं। वे सदैव तटस्त लिखते हैं। चाहे श्रावक या मुनियों का शिथिलाचार हो या तीर्थ संबंधी कोई विवाद हो वे अपनी प्रतिक्रिया प्रभावपूर्ण शब्दो में देते हैं। वे अपनी प्रबुद्ध सेवाओं के कारण भ. ऋषभदेव विद्वत् जैन महासंघ के अध्यक्ष एवं शास्त्रि परिषद की कार्यकारिणी के जागरूक सदस्य रहे हैं। उन्हें विद्वत्ता और संपादन के कारण अनेक पुरस्कार मिले हैं जिनमें ग.आ.ज्ञानमती पुरस्कार सर्वोपरि है। पुरस्कार की एक लाख राशि उन्होंने असहाय बालकों की शिक्षा हेतु दान में दी है। मानों वे कह रहे हैं "हे स्वामिन्! ये तुम्हारा है तुम्हे ही अर्पित है।" ऐसा निर्लोप प्रवृत्ति का व्यक्ति विद्वानों में देखने को नहीं मिलता।

मैं व्यक्तिगत और दिव्यध्वनि परिवार की ओर से उनकी दीर्घायु, आरोग्य की कामना करता हूँ।

डॉ. कुलभूषण लोखंडे

संपादक– 'दिव्यध्वनि' सोलापुर

डॉ. शेखरचन्द्रजी से मेरी पहली मुलाकात भावनगर (गुजरात) में हुई थी, जब मैं पर्यूषण पर्व में प्रवचनार्थ सन् १९८१ सितम्बर में वहाँ गया था। गुजरात में एक बुन्देलखण्ड की संस्कृति और भाषा में रचापचा एक बुन्दली व्यक्तित्व। चेहरे पर मुस्कान और मुझे बुन्देलखण्ड का जानकर बुन्देली लालित्य में अनेक मुहावरों से समिश्र भाषा ने अपनापन का बीज बो दिया।

25 वर्ष में पचासों मुलाकातें और बीना (म.प्र.) में निकट की रिश्तेदारी होने से आने जाने के क्रम में हर मुलाकात को एक नई समझ और वात्सल्य से आपूरित रखा। हर व्यक्ति के व्यक्तित्व को हर दूसरा व्यक्ति अपने दृष्टिकोण और भावना से रेखांकित करता है। मैंने 3 बातें डॉ. शेखर में देखीं–

(1) स्पष्टवादिता (2) अभिव्यक्ति की परिपूर्णता और (3) स्वाभिमान (बुन्देलखण्डी–टसक)

मेरी प्रशंसा करने में उन्होंने कभी भी शब्दों की कंजूसी नहीं की और यह उनकी गौरव गरिमा है कि दूसरों में अल्प का भी वे सम्मान करते हैं।

समाज ने विद्वानों का सम्मान करने और अभिनन्दन ग्रन्थों के माध्यम से व्यक्तित्व को विराट कहने की सीख उन्होने धर्म गुरु–दिगम्बर संतो की सत्प्रेरणा से लेकर सारस्वत और श्रीमन्त के बीच के सह सम्बन्धों में मिठास घोली है।

डॉ. शेखरजी का सम्मान, इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। जैन समाज के लगभग सभी पुरस्कारो को आपने प्राप्त किया है और अपनी जीवन क्रियाशीलता को इस ढलती उम्र में भी ऊर्ध्वारोहण पर कायम किया है। डॉ. शेखरचन्द्रजी एक "Self made man" हैं जिन्होने हर संघर्ष को भुनाया है और आज भारत में ही नहीं जहाँ परदेश में अमरीका–केनेडा–लंदन–आफ्रिका जाकर जैनधर्म संस्कृति और ध्यान का प्रशिक्षण देकर बहुश्रेयस और बहुश्रुत हुए हैं। मैं आपके दीर्घायु की मंगलकामना करता हूँ तथा विद्वान इसलिए ज्यादा जिये कि वह मानवता के श्रेयस के लिए जीता है। युग को एक दुष्ट के विनाश के लिए सौ सज्जन चाहिए। ऐसे व्यक्तित्व सज्जनों की पंक्ति को लम्बा करने और कराने में अपना अप्रतिम योगदान देते रहेंगे। इस भावना के साथ मैं डॉ. शेखरचन्द्र को अपना बड़ा भाई और मित्र मानकर अपनी सम्पूर्ण हार्दिकता उन्हे भेंट करता हूँ।

प्राचार्य पं. निहालचंद जैन *(बीना)*

■ ઇન્દ્રધનુષી વ્યક્તિત્વ

એક વ્યક્તિ અનેક કાર્યો લગભગ એકી સાથે સફળતાપૂર્વક કઇ રીતે કરી શકે છે તેનું જાગતું ઉદાહરણ શ્રી ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન છે. જેટલો પરિચય રહ્યો તેટલામાં સંકલ્પને સક્રિય કરવાની શક્તિ અને લીધેલા કાર્યો કોઇપણ સ્વરૂપે પૂરા કરવાની સક્ષમતા ઊડીને આંખે વળગતી.

કેળવણી જે શીખવે છે તેના કરતા જીવન પોતે ખૂબ શિખવાડે છે. શ્રી જૈન સાહેબ પોતાના જ જીવનમાંથી સતત પોતાને તૈયાર કરતા રહ્યા. નાનો મોટો અરોહ તેમને મન અવસર બની જાય છે. તેમણે આદરેલા અનેક કાર્યો જેમાં અવરોધો નિત નવા અને ન હોય ત્યાથી ડોકાઇ જતા પણ તેના અદ્‌ભુત પુરુષાર્થથી એ બધાને પાર કરી દેતા.

મને સ્મરણ થાય છે એ ઘટનાનું કે ત્યારે તેઓ એક ટ્રસ્ટ બનાવી જૈન દર્શનની પ્રવૃત્તિઓ વિસ્તારવાના

સંકલ્પ સાથે સક્રિય હતા અને તે સમયે તેમને કમરનું દર્દ તેને પીડા આપતું હતું. આ દર્દ એટલું હઠીલું હતું કે તેમને ચાલવા સુધ્ધાની તમા નહોતી તો પણ તેને માટે ગાંધીનગર- કે અન્ય કોઈપણ સ્થળે જવાનું હોય તો તરત જ તૈયાર થઈ જતા. તેઓ સત્ય સંકલ્પના વાહક-ચાલક-પરિપાલક છે.

તેમનો આરોગ્યનો એક પ્રકલ્પ હતો. ગરીબ ઓઢવ વિસ્તારમાં ટ્રસ્ટ દ્વારા દર્દીઓને સહાય થઈ શકે તે માટે તેમણે પોતાના જૈન દર્શનના પ્રવચનો દ્વારા નાણા એકત્રિત કરવાનો પ્રયત્ન આદરેલો અને એ પ્રકલ્પ પૂરો કરેલો.

આમ સંકલ્પ અને તેને પૂર્ણ કરવાના પુરુષાર્થ અને ત્યાં સુધી બીજું કશું જ નહિં એવા સફળ શેખરચંદ્ર કેટલાયને માટે આદર્શ ઉદાહરણ છે.

એક બીજો એમનો ગુણ જે મને ખૂબ ગમ્યો છે તે તેની હિન્દી સાહિત્ય પ્રત્યેની તેની ઉપાસનાનો છે. ઉપરોક્ત વિગત મેં દર્શાવી તે તો તેમનું સામાજિક સેવાકીય પાસું છે પરંતુ ધારો કે તે ન હોય તો પણ હિન્દીના એક અધ્યાપક તરીકે હું એમને સન્માનું છું.

હિન્દી સાહિત્યનું પ્રચુર અધ્યયન, અદ્‌ભુત વાક્‌છટા-અભિવ્યક્તિ અને અર્થગાંભીર્યના ગર્ભમાં પડેલી તેઓ એવી વસ્તુ શોધી લાવતા જે બહુ ઓછા અધ્યાપકોમાં મેં જોઈ છે. તેમનું પ્રવચન સાંભળવું તે લ્હાવો છે. હિન્દીમાં તેઓમાં કવિત્વ અને વિવેચનાના ગુણ ઉત્તમ રીતે ખીલેલાં જોવા મળતાં. મારા વડીલબંધુ સમાન શ્રી શેખરચંદ્ર જૈન સાહેબનું શેષ જીવન નિરામય અને પ્રસન્નતાભર્યું વીતે એવી શુભકામનાઓ સાથે તેમને વંદન કરું છું.

ડૉ. ભાલચંદ્ર જોષી

પ્રાચાર્ય- સીટી આર્ટ્સ કોલેજ, અમદાવાદ

■ *अर्जन - सर्जन और विसर्जन के प्रतीक*

तीनलोक की संरचना में सुमेरू पर्वत सबसे अधिक विस्तार वाला अपनी चूलिका सहित एक लाख चालीस हजार योजन प्रमाण है। परन्तु उसके एक हजार योजन की ऊँचाई (नीचे से) मध्य लोक की चित्रा भूमि पर अवस्थित है।

हमारे चरित्र नायक श्री शेखरजी भले ही गुजरात में रहे हों, परन्तु पूर्वजों की पृष्ट भूमि बुन्देलखण्ड सागर मंडलान्तर्गत ही रही है।

सृजन शीलता के 34 वर्ष में, वर्ष 1993 में सागर समाज के आमंत्रण पर पर्यूषण पर्व में प्रवचन हेतु पधारे। अब पांडित्य और डाक्ट्रेट इनके साथ आई, पर्व इनके सानिध्य में मनाया जिसमें ऊँ शब्द की व्याख्या विभिन्न आयामों से देकर इन्होंने माँ सरस्वती के भंडार का एक अनमोल रत्न समाज को दिया। पर्व में 10 दिन भक्तामर पाट के विभिन्न पहलुओं को समझाकर आचार्य मानतुंग की कीर्ति एवं यश की महती प्रभावना की जो एक युग बीत जाने पर भी आज भी श्रोताओं के हृदय में अंकित है।

आचार्य मानतुंग के इस भक्ति रस पूरित काव्य से अनुप्राणित करने वालों में पहला नाम आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी के प्रभावक शिष्य क्षुल्लक श्री 105 ध्यानसागरजी और दूसरा नाम डॉ. शेखर को जाता है।

यह इस नगर का सौभाग्य है कि आपका परिचय नगर के श्रेष्ठी उद्योगपति एवं चिन्तकमनीषी श्रीमान् सेठ

मोतीलालजी से हुआ दोनों की वैचारिक साम्यता ने ''तीर्थंकर वाणी'' पत्रिका को जन्म दिया। पत्रिका के प्रमुख संपादक के रूप में श्री शेखरजी ने अपनी प्रतिभा को जन–जन तक परोसा एवं जागृत किया।

अपनी स्वस्थ योजनाओं को विदेश के प्रवासी भारतीय मूल के लोगों के सामने रखा। यह सुयोग ही था कि डॉ. शेखर जिनवाणी के प्रवक्ता के रूप में विदेशी प्रवासियों तक विदेश यात्रा पर गये। अपनी पत्रिका के माध्यम से अपना व अपनी योजनाओं का निकट से उन्हें परिचय करा पाये। डॉ. शेखर के मन में प्रवचन के अतिरिक्त पीड़ित मानव की सेवा की भावना थी। अतः अहमदाबाद में एक ट्रस्ट का गठन कर अस्पताल भवन बनाया आशापुरा माँ जैन अस्पताल प्रारंभ किया जिसमें प्रायः सभी ओ.पी.डी. हैं। आँख के विभाग को शासकीय मान्यता प्राप्त हुई है।

डॉ. शेखर ने अपनी मौलिक रचनाओं, शोध प्रबंधों, प्रवचनों एवं साधना शिविरों के माध्यम से अपनी कार्य कुशलता का परिचय दिया। एक कुशल पत्रकार की हैसियत से एवं कुशल संपादक के नाते ग.आ. ज्ञानमती पुरस्कार एवं उपा. ज्ञान सागर 'श्रुतसंवर्धन पुरस्कार' आदि प्राप्त किये हैं।

आपका अभिनंदन समय की आवश्यकता एवं एक विद्वान की विद्वत्त का मूल्यांकन है।

अर्जन के 25 वर्ष, सृजन के 24 वर्ष, विसर्जन के 9 वर्ष पूर्णकर 68 वर्षीय यह मनीषी विद्वान आज भी एक धावमान क्रिकेटियर (स्पोर्टमेन्स स्पिरिट) लिये समाज के समक्ष उपस्थित है।

हम सब की शुभकामनायें आपके साथ हैं। आप शतायु हों।

सिंघई जीवनकुमार *(सागर)*

▪ *प्रखर अभिव्यक्ति के धनी*

भाई शेखरजी से परिचित हुए आज लगभग पच्चीस वर्ष हो चुके हैं। कदाचित वह कलकत्ता महानगरी थी, अधिवेशन चल रहा था। एक अपरिचित पर जाना–सुना नाम कुर्सी से उठा, बोलना शुरू किया, पाया डॉ. शेखर अहमदाबाद माईक पर हैं। गजब की अभिव्यक्ति, विषय की मधुर प्रस्तुति, व्यवस्था के प्रति तीखी प्रतिक्रिया, बेवाक टिप्पणी और स्वाभिमान को झकझोरती कथन–वल्लरियां। लगा विद्वत्ता की परिधि में अभी भी कुछ दम–खम है।

'मूक मीटी : चेतना के स्वर' मेरी ऐसी अनन्य कृति हैं। शेखरजीने जब इस कृति को देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। उसकी महत्ता को जानकर इतने उत्साहित हुए कि उन्होंने इस पर कुछ छात्रों को शोधकार्य कराने का निश्चय कर लिया। यह उनकी गुणग्राहिता का प्रतीक है।

इस तरह की ढेरों स्मृतियों मनमें उभर रही हैं पर उन्हें फिर कभी के लिए संजोकर रख रहा हूँ। बस, शेखर की प्रगति से मन फूला हुआ है। चाहता हूँ, और भी फूलता रहे। प्रसन्नता हो रही है यह सोचकर कि महाकवि दिनकर की कविताओं से जूझता–उलझता शेखर आज शिखर पर पहुंचा जाजल्यमान नक्षत्र है, उसकी अपनी ऊंची पहचान है। एक ओर जैनधर्म की सांस्कृतिक परम्परा को प्रवचनों के माध्यम से देश–विदेश में वे प्रचार–प्रसार कर रहे हैं तो दूसरी ओर चिकित्सालय जैसे सार्वजनिक प्रकल्प स्थापित कर उन्हें सस्वर चला रहे हैं।

सामाजिक समरसता को प्रस्थापित करने में 'तीर्थंकर वाणी' के पदचिन्हों पर चलनेवाला यह मुस्कराता व्यक्तित्व निरामय रहकर शतायु हो और इसी तरह अपनी सात्त्विक प्रतिभा के प्रसून बिखेरता रहे, यही हमारी शुभकामना है।

प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' *(नागपुर)*

प्रधान संपादक– 'जैन तीर्थ संरक्षिणी'

सरलता में मुस्कराता व्यक्तित्व

जैन साहित्य जगत में भला ऐसा कौन होगा जो शेखरजी के बहुमुखी व्यक्तित्व को न जानता हो। समन्वयवादी दृष्टिकोण से परिपूर्ण उनका सादगीभरा जीवन युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्रोत है।

कुर्सी पर बैठी–बैठी स्मृतियों को कुदेर रही हूँ। ध्यान सन् १९९० के आसपास घूमने लगता है। शेखरजी यहाँ नागपुर में पर्यूषण पर्व में प्रवचन देने आये थे। एक दिन आ. भाभीजी के साथ घर भी आये। पारिवारिक संदर्भ था। हम लोग भी अहमदाबाद गये, तभी से आत्मीयता अधिक स्थापित हुई और निकट से जानने का मौका मिला। इसके बाद तो शेखरजी के सम्पर्क में आने के अनेक प्रसंग आये।

शेखरजी ने अपने पी.एच.डी. शोध प्रबंध में महाकवि दिनकर के कृतित्व का बड़ा सुंदर हृदयग्राही मंथन किया है। दिनकरजी मेरे भी प्रिय साहित्यकार रहे हैं। पढ़कर प्रसन्नता हुई कि विद्वान लेखक ने दिनकर की गहराई को छूने का अच्छा प्रयत्न किया है। डॉ. शेखरजी की हिन्दी साहित्य सेवा, प्रेम, सृजनशीलता अप्रतिम रही।

यथार्थ में शेखरजी की वाक्पटुता स्पृहनीय है, सराहनीय है। विषय की प्रस्तुति में उनकी स्पष्टता और निर्द्वन्द्वता झलकती रहती है। सरलता के साये में उनका व्यक्तित्व छिपता नहीं बल्कि छलकने लगता है। 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादकीय भी अपनी कहानी कहते नजर आते हैं। सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों को उजाकर करना उन्हें बखूबी आता है। एक सफल पत्रकार का उत्तरदायित्व भली भाँति निभाते चले आ रहे हैं।

अंत में मेरी कलम बड़ी प्रसन्नता और खुशी से लिख रही है कि शेखरजी का खिलखिलाता मधुर व्यक्तित्व सामाजिकता और समरसता को जगाता रहे और स्वस्थ रहते हुए साहित्यिक क्षेत्र को समृद्ध करता रहे।

प्रो. डॉ. पुष्पलता जैन *(नागपुर)*

सदाचारी एवं निर्भीक विद्वान्

भारत की भूमि त्यागी–तपस्वी एवं संत मुनियों की पावन रज से प्रसिद्ध एवं पवित्र है। विद्या के क्षेत्र में सेवा करने वाले सरस्वती पुत्रों का भारतीय एवं जैन संस्कृति के उत्थान में अनुकरणीय योगदान हैं। जैनधर्म के विद्वानों का स्वागत सम्मान होना चाहिए। यह सम्मान व्यक्ति का नहीं, ज्ञान का जिनवाणी का है। जिनागम की रक्षा के लिए विद्वानों की रक्षा अनिवार्य है।

कुछ प्रतिभाएं व्यक्तित्व, कार्यशैली, वैदुष्य और व्यवहार की सुगंध स्वयंमेव ही दिग्दिगंत को सुवासित करती रहती हैं। ऐसे विशाल, गंभीर, मधुर व्यक्तित्व के धनी समाजोत्थान, सम–सामायिक चिंतक, स्नेहिल मनीषी श्री डॉ. शेखरचंद जैन के परिचय की आवश्यकता नहीं रहती हैं। आप अपने कुशल नेतृत्व के द्वारा जन–जन के हृदयों तक पहुंच गये हैं। आप श्रमण और श्रावकों में बढ़ रहे शिथिलाचार के विरोधी हैं। आपने अनेक मंचों से गोष्ठियों के माध्यम से एवं व्यक्तिगत चर्चाओं के द्वारा पूर्वाचार्यों के उदाहरण देकर मुनियों का संवर्धन भी किया हैं। आप परम मुनिभक्त होते हुए भी शिथिलाचारी त्यागियों का सख्त विरोध भी करते हैं और उपगूहन एवं स्थितिकरण भी करते हैं।

आप सूरत में नवयुग आर्ट्स एवं सायंस कॉलेज में प्रोफेसर ते तब हमारे जैन विजय प्रिन्टींग प्रेस में एवं जैनमित्र कार्यालय में प्रकाशन के कार्य में हमारे दादाजी श्री मूलचंदजी कापडिया की निश्रा में कार्य करते थे। १९८१ में श्रवणबेलगोला में बाहुबली महामस्तकाभिषेक के समय राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य विद्यानंदजी महाराज के सानिध्यमें ''कापड़ियाजी– अभिनंदन'' समारोह सम्पन्न हुआ था। कापड़ियाजी का अभिनंदन ग्रन्थ

तैयार किया गया था, उसके प्रधान संपादक डॉ. शेखरचंद जैन थे।

हमें भी उनके निर्देशन में सभी तरह का पत्र व्यवहार, पुस्तकालय का कार्य एवं जैनमित्र का प्रूफ रीडिंग वगैरह सीखने का मौका मिला।

सूरत में मुनि पुंगव श्री १०८ सुधासागरजी महाराज के सानिध्य में चातुर्मास के समय श्रावकाचार संग्रह के विषय में तीन दिन की गोष्ठी का आयोजन हुआ उस गोष्ठी का मंच संचालन भी डॉ. शेखरचंद जैन ने किया था, उस समय मुझे उनके साथ सहभागी के रूप में काम करने का मौका मिला था।

मैं श्री वीर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि डॉ. शेखरचंद्र जैन शतायु हों और जिनवाणी का जीवन पर्यंत तक प्रचार प्रसार करते रहें।

शैलेष डी. कापडिया

संपादक– 'जैनमित्र' सूरत

■ *तमोने अमारा गृहपति तरीके जेवा जाण्या तेवा अहीं वर्णव्या*

भावनगरनी "महावीर जैन विद्यालय" नामनी संस्थामां सन-१९७५ थी १९७९ना पांच वर्ष हुं आपना सान्निध्यमां रह्यो. आपश्री अमारा गृहपति होवा उपरांत आपश्री वाणिया आर्ट्स एन्ड कोमर्स कोलेजना प्राध्यापक अने पछी प्रिन्सिपाल पदे बिराजमान होवा छतां, अमने कोईने, क्यारेय, आपश्री एक "मोटाभाई" के "पिताजी"नी भूमिकाथी उपर देखाया नथी. अलबत्त आपना निर्मळ अने अहंकार२हित हृदयने लीधे आपे ज अमोने ए रीते पाळ्या-पोष्या-सांभळ्या के जेथी अमे आपने अमारा स्वजन सिवाय बीजी कल्पनामां विचारी पण न शकीए.

आप अत्यंत कडक शिस्तपालनमां मानवावाळा, समय अने संयममां उच्चतम ध्येयवाळा, क्यारेय कोईनी शेहशरम राख्या विना, संपूर्ण तटस्थताथी निर्णय करवावाळा, संस्थाना बंधारण अने नीति-नियमोने चुस्ततायी वळगी रहेनारा, कडक स्वभावनी प्रकृतिवाळा होवा छतां पण आपे अमारामां जे छाप ऊभी करी छे, तेमां मने देखाय छे, आपनी निर्मळता, सहृदयता, लागणीसभर, मातृहृदयी, पितृहृदयी, वडील, बंधुत्वनी भावनावाळा, एक एवा साचा पथदर्शक के जेणे अमारा कोलेजकाळना, सर्वरीते वगोवायेला, कहेवाता गोल्डन पिरियडने साचा अर्थमां गोल्डन पिरियड बनावी दीधो.

हुं एक-बे प्रसंग अहीं वर्णवीश.

(१) संस्थामां छेल्ला २-३ वर्ष दरम्यान में भोजन व्यवस्थानी जवाबदारी लीधेली. दरम्यान पंचावन विद्यार्थीना भोजन माटे अमारा माटे मान्य सींगतेलनो जथ्थो 'चटाकेदार भोजन'नी अपेक्षाओ ओछो पडता, येनकेन प्रकारे बहानाबाजीथी अमे तमारी पासेथी सींगतेल वधारे मेळवता रह्या अने अंदर-अंदर मलकाता रह्या के साहेबने केवा बनाव्या? पण ज्यारे आपे बिलकुल सहज भावे पूछी लीधुं हतुं के, भोजनमां कोई तकलीफ तो नथीने? भले गमे ते बहाने सींगतेल वधारे लई जाव पण शांतिथी सारुं जमवानुं तो मळे छे ने! आपनां आ वाक्योओ आपनुं मातृहृदय-पितृहृदयनी हाजरी बतावी आपी.

(२) एकवखत सार्वजनिक ईस्त्रीनी कोईल बळी जवाथी. ते कोना द्वारा थयुं ते जाणवानुं हतुं. कोई विद्यार्थी पकडातो नथी. त्यारे तेमणे मारुं नाम लीधु. हुं गुस्साथी भरेलो आपनी समक्ष मोटा अवाजे बोलवा लाग्यो त्यारे तमारा एक वाक्ये मने ठंडो पाडी दीधो "अंधारामां तीर मारवानी जेम में तारुं नाम

આપીને સાચો ગુનેગાર શોધી કાઢ્યો છે, તારે ચિંતા કરવાની જરૂર નથી.'' અને તે વખતે મને જે શિખામણ આપેલી 'ઇન્દ્રવદન, તારા સ્વભાવમાં ફેરફાર કરજે, જિંદગી સરસ બની જશે.' આમ ઘણાં પ્રસંગો છે જેનાથી હું ઘડાયો છું.

આમ, આપશ્રીએ એક ગૃહપતિના હોદ્દા ઉપર રહીને અમારા માટે અને ખાસ મારા માટે, અનેકવિધ પ્રતિભાનો રોલ અદા કરીને બહું ઊંડી છાપ ઉભી કરી છે. આથી હું તમને મારા જીવતા-જાગતા ભગવાન ગણું તો પણ તે ઓછું કહેવાશે.

ઇન્દ્રવદન વેલચંદ પારેખ

(ભૂતપૂર્વ વિદ્યાર્થી) અમદાવાદ

■ જૈન એકતાના પ્રખર હિમાયતી

વર્તમાન સમયમાં જૈને ધર્મની બાગડોર સંભાળતા, જૈને સંઘો દ્વારા વાણીભૂષણ - પ્રવચનમણિ-જ્ઞાનવારિધિ જેવી અનેકવિધ ઉપમાઓથી અલંકારિત ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અધ્યાપક, જૈન સાહિત્યકાર, સંપાદક, સામાજિક કાર્યકર જેવી બહુઆયામી વ્યક્તિત્વના ધની છે.

તે બધાથી ઉપર એમના વ્યક્તિત્ત્વનું આગવું પાસુ હોય તો તે છે કે જૈન એકતાના પ્રખર હિમાયતી ડૉ. શેખરચંદ્રજી સારી રીતે જાણે છે કે ''unity is our strength'' જૈન સમાજના સંગઠનની આવશ્યકતા તેમના દિલો દિમાગમાં હંમેશા છવાયેલી રહે છે. આથી તેઓના સાહિત્યમાં, સંપાદકીય લેખમાં, સામાજિક કાર્યોમાં, પ્રવચનોમાં સતત જૈન એકતાની વાત ખુલ્લા મને સંપૂર્ણ નિડરતાપૂર્વક અચૂક રજૂ કરે છે. તેથી તેઓ જૈનોના ચારેય ફિરકાઓના સંકલનમાં આદરણીય છે.

તેમના મતે ણમોકાર મંત્ર એક હોય, ભક્તામર સ્ત્રોત હોય, ચોવીસ તીર્થંકર ભગવંતો એક હોય, તત્વાર્થ સૂત્ર એક હોય તો જૈનો જૈનો વચ્ચે અલગતા શા માટે? આચરણનો તફાવત એ આગમ સામે ગૌણ છે. જૈનોની અલ્પવસ્તીના અસ્તિત્વને ટકાવી રાખવા અંદર અંદરના મતભેદો ભૂલી જઈ ઉદારતા દાખવી જૈનોએ એક થવાની આજની અતિ આવશ્યકતા છે.

ડૉ. જૈન દ્વારા સંપાદિત 'તીર્થંકર વાણી' માસિક પત્રિકામાં જૈન સમાજના તમામ ફિરકાઓના સમાચારો સ્થાન પામે છે. તમામ ફિરકાઓના અગ્રણી સંતોના આલેખો પણ ગૌરવમય રીતે પ્રકાશિત કરાતા હોઈ દેશ-વિદેશમાં આ પત્રિકાના સંપ્રદાયના ભેદભાવ વગર ગ્રાહકો છે.

છેલ્લા ઘણા વર્ષોથી પર્યુષણમાળામાં પ્રવચનાર્થે પરદેશ જાય છે. તેઓ દશ કે આઠ દિવસના નહીં પરંતુ અઢાર દિવસના પર્યુષણ ઉજવે છે. પ્રવચન લાભ આપે છે. દેશ-વિદેશમાં આધ્યાત્મિક પ્રવચનકર્તા તરીકે સારી નામના મેળવી છે.

જૈન જગતના પ્રથમ પંક્તિના લોકપ્રિય વિદ્વાન એવા શ્રી શેખરચંદ્ર જૈનને ભગવાન નિરોગી દીર્ઘાયુ બક્ષે એવી અભિલાષા....

પ્રદીપભાઇ બી. કોટડીયા

મંત્રી- ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અભિનંદન સમિતિ

सफल संपादक

जैन धर्म जैने सम्यक् धर्म के प्रगाढ़ प्रचारक डॉ. शेखरचंद्र जैन भारत वर्ष के प्रायः सभी बड़े शहरो में आमंत्रित किये गये हैं। साथ ही उनकी ओजस्वी वाणी द्वारा अमेरिका, इंग्लेन्ड, आफ्रिका जैसे देशों में प्रचार–प्रसार हुआ है। आपने जैनधर्म के सत्य, अहिंसा, अनेकांत, शाकाहार, अपरिग्रह आदि सिद्धांतों को और जैनधर्म के मर्म को समझाया है। कहीं पर्युषण व्याख्यानमाला में, कहीं दशलक्षण पर्व पर तो कहीं महावीर जयंति के उपलक्ष्य में उपस्थित हुए है। लंदन में लेस्टर की प्रतिष्ठा के उत्सवमें संचालन किया एवं 'दि जैन' सुवेनियर के सह संपादन किया। उनकी प्रसिद्धि का कारण है धर्म की विशिष्टता का वर्णन करने का कौशल। वर्तमान और विज्ञान के साथ धर्म के सिद्धांतो के ताल–मेल की दक्षता। श्रोताओं के प्रश्नों को पूरी तरह से समझकर आगम के अनुरूप उसे वर्तमान संदर्भ में समझाने की कला।

विशाल हृदय और जैन एकता के प्रखर हिमायती, सर्वधर्म के प्रति समभाव और विकसित मानस उनके व्यक्तित्व में सोने पर सुहागा है। अनेक पुरस्कार से पुरस्कृत एवं अनेक उपाधियों से विभूषित होना उनके प्रखर व्यक्तित्व के परिचायक हैं। णमोकार मंत्र के ध्यान शिबिर द्वारा ध्यान के अनूठे प्रयोग उनकी विशेष देन है। आपका अभिनंदन ग्रंथ के माध्यम से जिस गौरव और गरिमा के साथ सम्मान होने जा रहा है वह एक उत्कृष्ट भावांजलि है। मैं यही प्रार्थना करती हूँ–

तुम जीयो सो सो साल स्वस्थ, करते रहो धर्म का प्रचार प्रशस्त।
धर्म की ध्वजा फहराती रहे देश–विदेश, विश्व सुनता रहे वर्धमान का पावन संदेश॥

श्रीमती इन्दुबहन शाह *(अहमदाबाद)*

विदेशों में धर्म-ध्वजा वाहक

तलस्पर्शी ज्ञाता सरस्वती साधक, कुशल लेखक, प्रभावी वक्ता निर्विवाद विद्वत्ता के मूर्धन्य सचेतक/वाहक, श्रेष्ठ सम्पादक मेरे बालसखा भाई डॉ. शेखर जैन भारत के उन विद्वानों में अग्रगण्य हैं जिन्होंने जैनदर्शन, धर्म, साहित्य–संस्कृति को सुदूर देशों में अपनी सूझबूझ तथा तर्कणाशक्ति के साथ जन–जन तक पहुँचाने का बहुशः प्रयास किया है। सिवनी के पं. स्व. सुमेरचन्दजी दिवाकर, सतना के पं. नीरजजी जैन, रीवाँ के डॉ. नन्दलालजी भी विदेशों में व्याख्यान हेतु / धर्मसभा में विश्वस्तरीय सम्मेलनों में आमंत्रित होकर विदेशों में यश–पताका फहराते रहे हैं, किन्तु डॉ. शेखर जैन का लगातार पच्चीस वर्षों से अफ्रीका, युरोप और अमरीका स्थित विभिन्न नगरों में जैनधर्म के प्रसार–प्रचार हेतु अनवरत रूपसे आमंत्रित होना समस्त जैन समाज के गौरव का विषय है। उनका विदेश प्रवास इसलिए भी सार्थक है कि वे अहमदाबाद स्थित "श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल" के निमित्त धनराशि लाकर विपन्न, असहाय और अतिदरिद्र जनों के हितार्थ / स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

शिक्षा जगत तथा शिक्षण से जुड़े डॉ. शेखर का अपना रचना–संसार है। उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध तथा समीक्षा उनके प्रिय विषय हैं। 'तीर्थंकर वाणी' के माध्यम से हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी भाषाओं में जैनधर्म की शिक्षाओं, जैनदर्शन की सूक्ष्म विवेचना तथा प्राचीन आचार्यों द्वारा रचित जैन साहित्य को सुबोध बनाते हुए

जन सामान्य के बीच पहुँचाना उनका प्रशंसनीय लक्ष्य है।

विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत डॉ. शेखर जीवन के अमूल्य क्षणों को जीने में सिद्धहस्त हैं। अपने लेखन में, प्रवचन में कथ्य विषय को साधु, श्रावक, सामान्य श्रोता/पाठक तक ठेठ भाषा में अहिचक / लिखते हैं / कहते हैं।

आश्चर्य है अस्पताल, लेखन, प्रवचन, प्रवास, मित्रों–परिस्थितों, रिश्तेदारों से संबंधों का निर्वाह प्रभृति अनेक व्यस्तताओं के बीच डॉ. शेखर जैसा व्यक्तित्व ही निर्वाह करने में सक्षम है ऐसा मैं मानता हूँ। अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद के अधिवेशनों में साक्षात भेंट कर चुके डॉ. शेखर की मधुर मुस्कान, आत्मीयता, सहज–सरलवाणी से प्रभावित मेरी पत्नी (श्रीमती विमलाजी) का कथन सचमुच उपयुक्त है ''कर्म निष्ठ व्यक्ति ही सफलता के सोपानों पर बढ़ते हैं'' और डॉ. शेखर उनमें अग्रणी हैं।

परमपूज्या ग.र.आ. ज्ञानमती माताजी के आशीर्वाद, ब्र. श्री रवीन्द्रकुमारजी, पद्मश्री कुमारपाल देसाई के सत्परामर्श एवं विनोदभाई 'हर्ष' के प्रधान संयोजन में सृजित अभिनन्दन ग्रंथ जैन समाज के प्रत्येक सदस्य को उत्साह / प्रेरणा / सृजन के प्रति नवचेतना का संचार करेगा यह विश्वास है।

डॉ. शेखर दीर्घायु हों, सत्साहित्य सर्जन में दत्तचित्र रहें उन्हें श्री जिनेन्द्रदेव सदैव सहायक रहें।

मोतीलाल जैन 'विजय' *(कटनी)*

■ *नारियली व्यक्तित्व के धनी*

मेरी डॉ. शेखरचंद्रजी से प्रथम मुलाकात उस समय हुई जब वे शिरोमणी सोसायटी में चैत्यालय का निर्माण करने का कार्य कर रहे थे। उस समय मैंने उनके काम करने का जो तरीका और उत्साह देखा उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। इसके पश्चात मैं उनके साथ 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल' के साथ जुड़ा। मैं निरंतर यह देखता रहा और अनुभव करता रहा कि– इस उम्र में भी एक व्यक्ति कितना काम कर सकता है! यद्यपि यह कार्यशक्ति उनके उत्साह के कारण ही इतनी प्रबल थी।

जब मैंने उनके जीवन के विषय में जाना और समझा तब मुझे लगा कि यह संकल्प एवं मनोबल का दृढ़ व्यक्तित्व है। उनके संपर्क में आकर मुझे यह गुण ज्ञात हुआ कि वे स्पष्ट वक्ता हैं। बिना किसी लाग लपेट के सत्य को प्रस्तुत करते हैं। इससे उनकी बात का वज़न भी लोगों पर पड़ता है। यह अलग बात है कि वर्षों तक व्यवस्थापन में रहने के कारण एवं मिलिट्री ट्रेनिंग के व्यक्ति होने के कारण असत्य–अन्याय सहन नहीं कर पाते हैं और इसलिए कभी–कभी स्पष्ट कहने में उनका क्रोध भी झलक उठता है। सामने वाला उनके क्रोध से कभी–कभी उनके प्रति नाराज़ भी हो जाता है, पर गहराई से सोचते हैं तो लगता है कि उनकी बात सही थी। कहा भी जाता है कि 'सत्य कड़वा ही होता है'। वे कड़वा बोलें और हम कड़वा पचा सकें यह शक्ति हम में भी होनी चाहिए।

जैन दर्शन जैसे गहन विषय को वे इतनी सरलता से प्रस्तुत करते हैं कि छोटा बालक भी उनकी बात को समझ सके। वे जैनधर्म को कोरा क्रियाकाण्ड नहीं मानते, अपितु उसे आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, और उसे इतनी गहराई से समझाते हैं कि धर्म जीवन का ही अंग लगने लगता है। वे मंच पर जिस निर्भीकता से और सरलता से तथा साहित्यिक रूप से कार्यक्रम का संचालन करते हैं वह उनकी एक विशेष शैली है, और यही कारण है कि अनेक व्याख्यानों में उनका व्याख्यान लोग बड़े ही मनोयोग से सुनते हैं। यह वक्तृत्व कला जैसे उन्हें ईश्वरीय भेंट है।

मैंने उनकी कुछ किताबें पढ़ीं और मुझे लगा कि वे एक उत्तम वक्ता ही नहीं अच्छे लेखक भी हैं, जो जैनधर्म के गहन विषय को कहानी और उपन्यास के माध्यम से या निबंधों की ललितशैली में समझाने में सिद्धहस्त हैं।

इतने बड़े विद्वान् होकर भी वे विद्वत्ता के अहम् और भार से मुक्त हैं। जिस सरलता से सबसे मिलते हैं और उसीके अनुरूप हो जाते हैं यह उनके व्यक्तित्व की सरलता है। दूसरा पक्ष यह है कि विद्वान समाज सेवा में कम ही देखे जाते हैं, परंतु उन्होंने जैसे अपना सारा जीवन जनसेवा के लिए अर्पित किया है और वे अपना तन–मन–धन अस्पताल के विकास में और गरीबों के आँसू पोछने में ही समर्पित कर रहे हैं। ऐसा विरल व्यक्तित्त्व कम ही देखने को मिलता है।

सत्य यह है कि यह हमारे दिगम्बर जैन समाज का ही नहीं पूरे जैन समाज का गौरव है कि डॉ. शेखरचंद्र जैसे विद्वान् हमारे अपने हैं। मैं उनकी इन चहुँमुखी प्रतिभा के कारण उनका अंतःकरण से प्रशंसक हूँ और यही भावना करता हूँ कि वे ऐसे ही गौरवमय शिखर पर पहुँचकर समाज को मार्गदर्शन देते रहें एवं धर्म के प्रचार–प्रसार में समर्पित रहें।

नरेश जैन *(विसत डिटर्जन्ट, अहमदाबाद)*

■ *पुरुषार्थी व्यक्तित्व*

डॉ. शेखरचंद्र जैन से हमारा प्रथम परिचय हमारे कोमन मित्र श्री धीरूभाई देसाई के शॉ रूम पर हुआ। उस समय वे चिंतित थे कि अस्पताल के लिए मकान तो ले लिया परंतु अब कार्य को कैसे बढ़ाया जाय। आर्थिक परेशानियाँ उनके चेहरे पर झलक रही थीं। उसी समय हमारे मित्र श्री रमेशभाई धामी भी वहाँ पहुँचे, और उस समय अस्पताल की योजना समझ कर हम आशापुरा माताजी के भक्तों ने उन्हें २१ लाख रू. देने की ओफर की, और हमने सिर्फ यही चाहा कि वे अस्पताल को 'श्री आशापुरा माँ जैन (गाधकड़ा)' नाम दें। जिसका उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। उस समय उनसे बातचीत के दौरान हमें महसूस हुआ कि यह अवश्य कुछ करना चाहते हैं, मुझे याद आ रहा है कि जब आँख के निःशुल्क नेत्र ऑपरेशन के कार्यक्रम का गुजरात के महामहिम राज्यपालश्री प्रारंभ करा रहे थे तब उन्होंने कहा था– 'इस आदमी में दम है और मुझे विश्वास है कि यह व्यक्ति इस अस्पताल को वृद्धिंगत करेगा।' ये शब्द मैं तो सन् 1998 से ही कह रहा था और मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि डॉ. जैन ने इन शब्दों को सार्थक किया।

अस्पताल का जिस भव्यता से उद्घाटन कराया और इसके बाद विविध प्रसंगों पर राज्यपाल महोदय, मंत्री महोदय या गण्यमान्य श्रेष्ठिजनों को बुलाकर जो भव्य कार्यक्रम किये उससे यह स्पष्ट है कि वे कितने कर्मठ और समर्पित हैं। मैंने उनके अंतर में अस्पताल के लिए एक ऐसा पागलपन देखा है कि वे उसके लिए अपना घर, परिवार भी भूल जाते हैं और अस्पताल के विकास के लक्ष्य के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। उनके ही शब्दों में कहें तो 'अस्पताल के विकास के लिए उनका दान प्राप्ति हेतु कटोरा खुला ही रहता है'। उन्होंने परदेश से जिस प्रकार की आर्थिक सहायता अपने ज्ञान के माध्यम से प्राप्त की है वह अतुलनीय है। मैं समझता हूँ कि धर्म, भाषा, प्रदेश इन सबसे ऊपर उठकर उन्होंने मानवता की सेवा का जो व्रत लिया है वह हम सब लोगों के लिए अनुकरणीय है, और हम भी उनके इस अभियान में सहयोगी बनें यही मेरी व मित्रों की भावना है।

त्रिलोचनसिंह भसीन *(दिल्ली)* **रमेशभाई धामी** *(सूरत)*

स्मृतियों के वातायन से

खंड : 2

जीवनी

अभाव - संघर्ष एवं सफलता की कहानी

साक्षात्कार

एवं

डॉ. शेखरचन्द्र जैन के साहित्य की समीक्षा

पृष्ठ 115 से 218

अभाव - संघर्ष एवं सफलता की कहानी

मेरी कलम से.....

– डॉ. शेखरचन्द्र जैन

मेरा जन्म अहमदाबाद में हुआ या पैतृक गाँव अस्तारी (तह.निवाड़ी जि. टीकमगढ़) में इसका मुझे कोई स्मरण नहीं। मुझे यह पता है कि पिताजी ने जब मेरा नाम स्कूल में लिखवाया तो जन्मस्थान में अहमदाबाद लिखवाया था। जबकि मेरे दादाजी कहते थे कि मेरा जन्म गाँव में हुआ था और तुरंत ही कुछ महिनों बाद पिताजी मुझे अहमदाबाद ले गये थे। सत्य जो भी हो मैं इतना जानता हूँ कि मैंने जबसे कुछ होश संभाला अपने को अहमदाबाद में ही पाया और इसलिए मैं अपनी जन्मभूमि अहमदाबाद को ही मानता हूँ।

स्कूल के प्रमाणपत्र के आधार पर मेरी जन्मतारीख २ दिसंबर १९३६ लिखी है जबकि मेरी जन्मकुंडली के अनुसार मेरा जन्म सन् १९३८ की २८ दिसंबर की रात्रि में पोष कृष्ण सप्तमी को लगभग १२ बजे के पश्चात हुआ जैसाकि मुझे मेरी माताने बताया और कुंडली में भी ग्रहों के अनुसार यही समय बनता है। जैसाकि मेरी माँ ने मुझे बताया प्रथम संतान पुत्र के जन्म से पूरा परिवार प्रसन्न हो उठा। आर्थिक स्थिति के अनुसार आनंदोत्सव मनाया गया। प्राचीन रिवाजों के अनुसार सारे कार्यक्रम होते रहे।

पिताजी का अहमदाबाद आना

मेरे पिताजी की गाँव छोड़कर अहमदाबाद आने की भी एक करूण कथा है–

चौधरी रज्जूलाल मेरे दादा अपने पिता चौधरी खुमानलाल के द्वितीय पुत्र थे। वे कटेरा गाँव में गोलालारीय समाज के प्रतिष्ठित व्यापारी श्रावक थे। अति धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने कटेरा गाँव में वेदी प्रतिष्ठा करवाई थी। अतः समाज की ओर से उन्हें 'चौधरी' की पदवी प्रदान की गई थी। उस समय बुंदेलखंड में ऐसा प्रचलन था कि वेदी प्रतिष्ठा कराने वाले को 'चौधरी' की पदवी एवं पंचकल्याणक कराके गजरथ चलवाने वाले को 'सिंघई' की पदवी प्रदान की जाती थी। इसलिए वेदी प्रतिष्ठा कराने के कारण हमारे तत्कालीन परिवार को चौधरी की पदवी से विभूषित किया गया था।

इन्हीं खुमानलाल चौधरी के कुल तीन पुत्र थे। सबसे बड़े श्री दौलतलालजी, दूसरे मेरे दादाश्री रज्जूलालजी एवं तीसरे श्री हल्केलालजी। यद्यपि परिवार सुखी था, अच्छी खेती थी, लेन–देन था, पर कटेरा के पास तीन मील दूर स्थित अस्तारी गाँव जिसमें एक भी व्यापारी का घर नहीं था– पूरा गाँव किसानों का था। ये लोग अपना सारा लेन–देन कटेरा से ही करते थे। उन सबकी इच्छा थी कि उनके गाँव अस्तारी में भी एकाद व्यापारी का घर हो। किसानों के आग्रह से मेरे दादा चौधरी रज्जूलालजी ने वहाँ जाकर रहना स्वीकार किया। अपने परिवार के साथ वे अस्तारी गये। वहाँ अपना निवास तो बनाया ही खेती के लिये जमीन भी खरीदी और देव दर्शन का नियम होने के कारण छोटा सा चैत्यालय भी स्थापित किया। इस तरह अस्तारी गाँव में उनका स्थायी निवास हुआ और जिन चैत्यालय भी। इन्हीं चौधरी रज्जूलालजी ने अपने सादू भाई श्री पचौरीलालजी एवं अन्य रिश्तेदार श्री घुरकेलालजी को भी बुला लिया। इस प्रकार गाँव में जैनों के तीन घर हो गये।

चौधरी रज्जूलाल अपने तीनों भाइयों में सबसे सुंदर, गोरे चिट्टे, छह फुट से भी ऊँचे जवान थे। बड़ी–बड़ी मूछें, सिर पर बंधा हुआ साफा लोगों में उनके ठाकुर होने का भ्रम पैदा करता और इसीलिए अन्य गाँव के लोग उन्हें ठाकुर समझकर दाऊसाहब कहकर राम–राम करते थे। मकान भी गाँव के बीचोबीच था। अतः हर आने–जाने वाले को यहाँ से गुजरना ही पड़ता था और यह राम–राम की ध्वनि सर्वत्र गूँजा करती थी। दादाजी ने अस्तारी में खेती भी की, व्यापार भी किया और धीरे–धीरे स्थायी होते गये। उनके सरल स्वभाव, वाणी की मृदुता एवं गाँव के लोगों के सुख–दुःख में निरंतर सहायक बने रहने के कारण वे पूरे गाँव के 'साव ददूदा' बन गये। गाँव के सभी जाति के अबाल वृद्ध उन्हें इसी प्यार भरे नाम से पुकारने लगे।

खेती, व्यापार करते–करते घर समृद्ध हो गया। 'साव ददूदा' को घोड़े सवारी का शौक था। निरंतर अति स्वच्छ कपड़े पहनना, पगड़ी बाँधना उनके विशेष शौक थे। घर पर घोड़ा रखते। उसकी पूरी सेवा स्वयं करते और उसे बड़ा प्यार करते। कद्दावर कद, गोरा रंग, बड़ी–बड़ी मूछें और घोड़े पर बैठे साव रज्जूलाल किसी ज़मीनदार से कम रोबदार नहीं लगते थे।

उनके चार पुत्र एवं चार पुत्रीं थीं। सबसे बड़े थे मेरे पिता श्री पन्नालालजी। उनके बाद श्री कमलचंदजी, श्री छक्कीलालजी एवं श्री मूलचंदजी। चार पुत्रियों में सबसे बड़ी थी श्रीमती बेटीबाई, श्रीमती ठगोबाई, श्रीमती केसरबाई एवं श्रीमती कस्तूरीबाई। इनमें अभी सबसे बड़ी श्रीमती बेटीबाई एवं श्री कस्तूरीबाई जीवित हैं। उनके चारों पुत्रों में आज एक भी जीवित नहीं हैं।

चौधरी रज्जूलालजी यद्यपि पढ़े–लिखे नहीं थे पर व्यवहार कुशल थे। स्वभाव से अति सरल बालकवत थे। वे मानते थे कि लड़के–लड़कियों को क्या पढ़ाना। लड़के बस पूजा पाठ करलें और हिसाब–किताब लिख लें यह बहुत है। और लड़कियों को तो चूल्हे–चक्की में ही जुतना है। इसी कारण किसी लड़के–लड़की को शिक्षा नहीं दिलाई। गाँव में जो भी पटवारी का छोटा सा स्कूल था उसमें ही थोड़ी बहुत शिक्षा लड़कों को दिलवा पाये। परंतु बच्चों को उत्तम भोजन कराने एवं गहने आदि पहनाने से कभी नहीं चूके।

सन् १९५८, दिसंबर २४ की रात्रि में अपने सादू के लड़के की सगाई कराई। घर के द्वारे के अलाव के पास गाँव के लोगों के साथ रात्रि में १२ बजे तक तापते रहे, कहानियाँ सुनाते रहे बाद में जाकर सो गये। लगभग २ बजे अपनी पत्नी (हमारी दादी) से बोले 'देखो मेरी नाड़ी छूट रही है' बस इतना कहकर परलोक सिधार गये। वे स्वभाव के जितने सरल थे मृत्यु भी उतनी ही सरलता से उन्हें अपने आगोश में ले गई।

यहाँ उनके जीवन के कुछ कठिन दुःखद क्षणों को भी उल्लेखित करना चाहूँगा। क्योंकि इन प्रसंगों की मेरे

जीवन में अहम भूमिका है।

जैसाकि पिताजी ने बताया अस्तारी गाँव जो मध्यप्रदेश के डकैती एरिया का गाँव है। घर पर दो बार सशस्त्र डकैतियाँ पड़ीं। डाकू द्वारा सारा माल तो गया ही डाकुओं के अत्याचार से दादाजी बुरी तरह जख्मी हुए। लगभग सन् १९४२–४३ में पिताजी मुझे और माँ को कुछ दिनों के लिए गाँव छोड़ आये थे। मैं लगभग चार–पाँच वर्ष का रहा होऊँगा। संक्रांति का दूसरा दिन अर्थात् १५ जनवरी का दिन था, अतिशय ठंड पड रही थी। मेरे मझले चाचा श्री कमलचंदजी की सगाई हो चुकी थी। उनके विवाह की तैयारियाँ चल रहीं थीं। शाम के धुँधलके में पाँच बंदूकधारी एकदम घर में घुस आये। संयोग से मैं अपने पड़ौसी चाचा बालचंदजी के साथ जंगल में गया था। सुना है डाकुओं ने सबसे पहले हमारे चाचा पर बंदूक तानकर पूछा कि 'तू कौन है?' चाचा समझ गये कि ये डाकू मुझे नहीं पहचानते हैं – चाचा ने जनोई पहना हुआ था अतः सद्यः बुद्धि से कहा 'हुजूर मैं तो ब्राह्मण हूँ यहाँ विवाह की तिथि निकालने आया हूँ।' डाकुओं ने उनपर विश्वास करते हुए डंडा जमाते हुए कहा कि 'यहाँ से टस से मस मत होना नहीं तो जान से मार देंगे' वे डरकर वहीं बैठे रहे। मेरी माँ से भी आग्रह किया कि वे चलकर बतायें कि गहने कहाँ रखे हैं? पर माँ उनके साथ नहीं गई तो उन्होंने उन्हें मार–पीट कर एकओर बैठा दिया। अब वे सभी दादाजी पर टूट पडे और लाठी–धारिया से उनपर वार किये। उन्हें यहाँ तक मारा कि मरा समझकर ही छोड़ गये। डाकुओं ने पूरा घर तितर–बितर कर दिया। जो भी गहने–नकदी उनके हाथ लगी वे सब लेकर चले गये। बचाकुछा सारा सामान धरती पर बिखेर गये। यह कांड दो–तीन घंटो चलता रहा। यह कांड हमारे घर के साथ पड़ौस में श्री घुरकेलालजी के यहाँ भी होता रहा। जिसमें मार के कारण उनकी धर्मपत्नी को जान से हाथ धोना पड़ा।

डाकुओं से पूरा गाँव भयभीत था। कोई भी घर से बाहर आने की हिंमत नहीं कर पा रहा था। आखिर लूट करने के बाद डाकुओं के जाने के पश्चात गाँव के लोग आये। मैं भी चाचा के साथ लौटा। चूँकि यह सब उस समय मेरी समझ से बाहर की बातें थीं। लोग खटिया पर डालकर दादाजी को कटेरा ले गये। जहाँ उनका महिनों इलाज चलता रहा। इतना आघात सहने पर भी दादाजी के आत्मविश्वास ने उन्हें जीवित रखा और वे स्वस्थ हुए। इस डकैती में घर के ज़ेवर तो गये ही, जो किसानों के ज़ेवर आदि गिरवी रखे थे वे भी चले गये।

अब समस्या यह थी कि दादाजी ठीक हों और लोगों के ज़ेवर कैसे लौटाये जायें। उधर सरकारी कानून से जमीनें भी हाथ से निकल रही थीं। गिरवी की जमीनें भी किसानों को लौटानी थी। दिये हुए पैसे लौट नहीं रहे थे। परेशानियाँ बढ़ रहीं थीं। एक प्रकार से हरा–भरा खेत सूख गया था। वसंत में पतझड़ आ चुका था। किसी तरह चाचा का विवाह तो हुआ पर धूमधाम नहीं थी। गम में ही सारे कार्य संपन्न हुए। अब घर चलाने की समस्या थी। पिताजी पढ़े–लिखे नहीं थे, पर घर में सबसे बड़े थे। इस डकैती की खबर सुनकर वे गाँव आये यहाँ की विकृत हालत देखकर वे टूट से गये। पुनः हिंमत जुटाई और हम सब लोगों को अहमदाबाद वापिस ले आये।

ग्राम्यजीवन

यद्यपि मेरा लालन–पालन अहमदाबाद में हुआ पर दो–चार साल में एकादबार गाँव जाता रहा। क्योंकि वहाँ मेरे दादा–दादी रहते थे। मेरा गाँव झाँसी से लगभग ५० कि.मी. दूर निवाड़ी तहसील में है। नाम अस्तारी। म.प्र. और उ.प्र. की सीमा पर स्थित। हमारे गाँव से उ.प्र. की सीमा सिर्फ २ कि.मी. है। हमें झाँसी मानिकपुर लाईन पर टेहरका स्टेशन उतरना पड़ता था। वहाँ से ६–७ कि.मी. दूर पैदल चलना पड़ता। मुझे स्मरण हैं कि जब मैं

छोटा था तबसे गाँव के पास सड़क बनने का कार्यक्रम बना था जो आजतक पूरा नहीं हो पाया। हमारे सांसद, विधायक को अपना घर भरने से समय मिले तब तो सड़क का काम करें! तात्पर्य कि गाँव पहुँचना अर्थात् गुलीवर की यात्रा करना जैसा था।

मेरा गाँव बहुत छोटा, पिछड़े इलाके का, जहाँ आज भी सड़क नहीं बन पाई। गाँव में दो–चार हम लोगों के पक्के घर, बाकी सब कच्चे घर। गाँव में एक ब्राह्मण का घर, एक ठाकुर का घर, तीन जैनों के, शेष में सर्वाधिक यादव लोगों की आबादी वाले कच्चे घांसफूस के छप्पर थे। हमारा घर गाँव के बीचोबीच सबसे बड़ा। सामने ही सघन वृक्ष की छाया में बना चबूतरा जिसे बुंदेलखंडी में 'अथाई' कहते हैं वहाँ प्रायः शाम या दोपहर सभी लोग अपनी–अपनी जाति की हैसीयत से बैठते। ठंडी के दिनो में (दिवाली की छुट्टियों में) खेतों में मटर और चना तोड़कर खाते तो कभी गन्ने का रस और कभी गुड़ भी खाते। गरमी के दिनो में रहँट पर खेत में नहाने जाते और ताजे महुओं को चूसने का आनंद लेते। रात्रि में कटे धान की लोग रखवाली करते या दाँय करते (अनाज को साफ करने की क्रिया)। इसी दौरान रात्रि में ग्रामनृत्य 'राई या रावला' होता। जिसमें कभी धार्मिक कथायें होतीं तो कभी सामाजिक तो कभी भौंडे दृश्य। गाँव के लोग जुटते। मैं उन जुटे हुए लोगों में देखता कि आधे से अधिक लोगों के तन पर कोई कुर्ती तक नहीं। धोती भी चीथड़ों से भार से लदी है। ठीक वैसे ही जैसे किसान हम लोगों के कर्ज से लदे रहते। हमारे दादाजी की दुकान थी। अनाज और घी के बदले उन्हें आवश्यक सामग्री देते। वास्तव में हमलोग उनसे मनमाना भाव लेते थे।

मेरे दादाजी को सभी साव ददूदा कहते। ठंडी में रात को अलाव जलता, गाँव के बच्चे–जवान–बूढ़े सभी समूह में तापते और ददूदाजी कहानी सुनाते। एक बार गाँव में मैंने होली का हुडदंग भी देखा। कीमती रंग तो वहाँ नहीं थे, पर कीचड़–गोबर और थोड़े से गुलाल में भी गाँव के लोग खुश थे। सभी में परस्पर अच्छा भाईचारा था। गाँव के पास तालाब– जो कभी भरा देखा था– अब तो सूखा पड़ा है। हाँ सुना है प्रतिवर्ष तालाब खोदने की सरकारी ग्रांट का धन अवश्य आता है पर वह तालाब की जगह नेताओं के गट्ढे भरता है। तालाब के पास घने चार–पाँच वटवृक्ष जिसकी छाया में जुगाली करती गायें और बेकार युवक और बच्चों की भीड़ आराम करती या खेलती। लोग जंगल से लकड़ी काटकर लाते और ईंधन प्राप्त करते। एकाद बार मैं भी छोटी सी कुल्हाडी लेकर जंगल से लकड़ी काटकर शिरपर रखकर लाया हूँ ऐसा स्मरण है।

हाँ गाँव छोटा पर डाकुओं का भय बड़ा। उसके हम भुक्त भोगी रहे जिसका ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ।

सन् १९७२ में मेरे चाचा चौधरी छक्कीलालजी ने गाँव में सिद्धचक्र विधान कराया था तब आठ–दस दिन गाँव में बड़ी धूम रही। फिर लगभग बीस वर्षों तक गाँव जाना नहीं हुआ। फिर एक–दो बार कुछ घंटों के लिए ही गये। सन् ९५–९६ के करीब हम अवश्य एक दिन के लिये पैतृक जमीन बेचने गये फिर राम..राम...। एक घर तो हमारे छोटे चाचा बेच ही आये थे। दूसरे हमने पिताजी के मौसी के लड़के को किराये पर दुकान चलाने दिया था सो वे मर गये। सुना है उनके लड़के ने घर बेचकर रू. हड़प लिये।

आज भी गाँव की याद आती है। भले ही बुजुर्ग लोग अब नहीं रहे हैं। सुना है गाँव की भी कुछ प्रगति हो रही है। आज भी गाँव जाने का मन होता है। बस परेशानी है समय की कमी और शारीरिक अशक्ति। याद आती है वहाँ की ताजी सब्जी जो लोग चाह से बुलाकर देते। महुओं की सुगंध और बेर–मकोरे का स्वाद। डाली से आम तोड़कर खाना और गरीबी में भी लोगों की मस्ती।

पिताजी की अहमदाबाद में आजीविका

जैसाकि पहले उल्लेख कर चुका हूँ, पिताजी डकैती होने के बाद ही घर की समस्या से निपटने, कर्ज चुकाने और घर खर्च की समस्या से जूझने हेतु अहमदाबाद आ गये। चूँकि पढ़े–लिखे लगभग नहीं थे। कभी मेहनत मजदूरी का काम नहीं किया था परंतु यहाँ अहमदाबाद आकर मजदूरी करना प्रारंभ किया। अहमदाबाद में हमारे कुछ संबंधी श्री अयोध्या प्रसादजी सिंघई, श्री ठाकुरदासजी आ चुके थे। उनकी सहायता से पिताजीने केरोसीन की फेरी का कार्य प्रारंभ किया था। इसी तरह यहाँ मजदूरी करते। पेट काटकर भी रू. बचाते और गाँव के लोगों के भरण–पोषण हेतु पैसा भेजते रहते।

मुझे स्मरण है कि हम लोग नागौरी की चॉल में एक मकान लेकर रहते थे। जिसका किराया ८ रू. महिना था। मकान में एक छोटा ६ x ६ का रसोई घर, १२ x १२ का कमरा और १२ x ६ का बरंडा था। घर में पानी, बिजली, संडास की कोई व्यवस्था नहीं थी। बिजली के स्थान पर चिमनी जलाते और पानी म्युनिसिपालिटी के नल से लाईन में लगकर भरते। निस्तार के लिए म्युनिसिपालिटी की टट्टियों का इस्तेमाल करते। वे इतनी गंदी व भीड़भाड़ वाली होतीं कि वहाँ नर्क की कल्पना ही साकार हो जाती।

पिताजी पहले सर पर डब्बा रखकर केरोसीन बेचते। कुछ ग्राहकी बढ़ी तो बाँस की कावड़ पर दो डिब्बे बाँधकर मीलों फेरी करने जाते। जब धंधा कुछ जमने लगा तो हाथलारी पर माल ले जाकर फेरी करने लगे। उन्हें साईकल चलाना नहीं आता था। अतः चार पहिये की हाथलारी पर माल रखकर फेरी करते थे। लोगों की मदद से उन्हें केरोसीन बेचने का सरकारी लायसन्स प्राप्त हो गया था। अतः थोड़ी स्थिरता थी। मुझे स्मरण है कि वे नागौरी चॉल से आठ–दस कि.मी. लारी पर १०–१२ डिब्बे केरोसीन लादकर मणिनगर तक जाते। दोपहर १–२ बजे आते थे। उनकी उस महेनत की कल्पना से ही आज रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वे दोपहर में एक–दो घंटे ही खाना खाकर आराम कर पाते और पुनः शाम ४ बजे चालियों में माल बेचने चले जाते। इसप्रकार १०–१२ घंटे से अधिक मजदूरी करते थे।

एक सच्चे श्रावक

इस थकाने वाले काम को करते हुए भी उन्होंने कभी जैनधर्म के श्रावक के नियमों को नहीं तोड़ा। वे बिना जिनदर्शन किये पानी तक नहीं पीते थे। यदि कभी प्रातःकाल दर्शन चूक जाते तो पानी पिये बिना ही रह जाते। धंधे से आने के पश्चात स्नान करके दर्शन–पूजन के पश्चात ही कुछ लेते। उन्होंने कभी होटल, बाजार का खाना तो क्या पानी तक नहीं पिया था। गल्ले की चाय या पान खाने का तो प्रश्न ही नहीं था। कभी–कभी मुसाफरी में दो–दो दिन लग जाते। देव–दर्शन नहीं मिलने पर उपवास कर लेते पर नियम का भंग कभी नहीं करते। जीवनभर कभी रात्रि में भोजन नहीं किया। अभक्ष्य का सेवन नहीं किया और पूजा पाठ में नियमित रहे। वे परम मुनिभक्त थे। उस समय मुनि दर्शन भी दुर्लभ थे। पर यदि कहीं अवसर मिलता तो वे मुनिदर्शन करना और चौका लगाने से नहीं चूकते। उन्होंने पू. गणेशप्रसादजी वर्णीजी से बरुआसागर में आजीवन डालडा घी का त्याग किया था और हाथचक्की से पीसे हुए आटे को ही उपयोग में लेने का नियम लिया था। जिसका निर्वाह अंतिम क्षण तक किया। मेरी माताजी सदैव हाथ चक्की से पीसती और उनके नियम निर्वाह में पूरी समर्पित रहतीं।

अहमदाबाद की चॉल में रहकर मजदूरी करके भी उनका मन सदैव धार्मिक बना रहता। उन्हें एक ही बातकी चिंता रहती की यहाँ इस गोमतीपुर एरिया में समाज द्वारा निर्मित मंदिर नहीं तो एक छोटा सा चैत्यालय ही बन

जाये। गोमतीपुर में किराये के मकान में एक चैत्यालय बनाया। परंतु मकानमालिक के केस करने पर समाज को वह मकान खाली करना पड़ा। तब पिताजीने, श्री देवकीलालजी, श्री पंचमलालजी, सेठश्री मातादीनजी, श्री घासीरामजी व श्री नानकरामजी तथा श्री ग्याप्रसादजी की मदद से दिन–रात मेहनत कर गोमतीपुर में मंदिर के लिए एक छोटा सा मकान खरीदा। आज गोमतीपुर के मंदिर की विशालता व भव्यता की नींव में वे नींव की ईंट बने। उनकी लगन, धर्मनिष्ठा व लोगों के सहयोग से यह कार्य संपन्न हो सका।

नारियली व्यक्तित्व

मेरे पिताजी का जीवन जो संघर्ष का जीवन रहा। इस संघर्ष और विशेष श्रम के कारण वे कुछ चिड़चिड़े हो गये। क्रोध की मात्रा भी उनमें बढ़ गई। इस क्रोध के पीछे एक कारण यह भी था कि वे कभी गलत बात या कार्य न करते और अन्य कोई करे तो उसे सहन नहीं कर पाते थे। वे शिस्त के आग्रही और सामाजिक मर्यादा के पक्षधर थे। मुझे लगता है कि बचपन के सुख भोगनेवाले उन्हें यौवन में कड़ी मजदूरी करनी पड़ी। अतः कुछ रुखापन इससे भी बढ़ा।

वे प्रातः ५ बजे उठकर म्यु. के पब्लिक नल से पानी भर लेते। नल को माँजते थे क्योंकि बाद में वह शुद्धता नहीं मिल पाती थी। मैं लारी निकालकर डब्बे आदि रख देता। उनके क्रोध से हम सभी भाई–बहन बहुत डरते थे। हम हमेशा यही कोशिश करते कि हम ऐसे काम करें कि वे खुश रहें। रात्रि को उनके पाँव दबा देते तो खुश हो जाते। एक ओर बराबर डाँटते रहते तो दूसरी ओर ऐसा कोई दिन नहीं गया जिस दिन फेरी से लौटते समय कुछ न कुछ खाने को न लाये हों। प्रातः स्वयं दूध वाले के यहाँ से अपने बर्तन में दूध दुहाकर लाते उसमें घी डालकर जबरदस्ती हम लोगों को पिलाते।

इस जगह हम अपने निवास नागोरी चॉल का भी कुछ वर्णन करना चाहेंगे जो हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है।

नागौरी चाल जिसमें मील मजदूर, छोटीमोटी फेरी करनेवाले व्यापारी रहते थे। पीछे की लाईनो में रबारी (गोपालक) और हरीजनों की बस्ती थी। एक ही नल था जिस पर अपार भीड़ रहती। पानी के लिये प्रायः लड़ाई झगडे, गाली–गलौच और कभी–कभी लोगों की आपस में हाथापाई भी हो जाती। यहाँ चाली में कुछ गुण्डा टाईप के लोगों का माफियापन चलता। यह चाली ऐसे विस्तार में है जहाँ थोड़ी सी भी बारिश आती तो पूरा तालाब ही बन जाता। न उस समय रोड़ थे, न गटर की सुविधा थी। पानी बरसता तो दो तीन दिन तक बड़ी परेशानी रहती। पर हम सब बच्चों के लिये तो वही भरा हुआ गंदा पानी आधुनिक भाषा में कहे तो 'वाटर पार्क' बन जाता। उसमें खूब नहाते। पानी पूरी गंदगी के साथ बहता पर हम लोगों को क्या पता की गंदगी क्या है बस एक मस्ती रहती थी....

ऐसी ही एक रात खूब पानी भर गया। घर का सामान दीवारों पर लगे पाटियों पर, मचान पर चढ़ाया। लारी पर रख दिया। चिंता थी घर में पानी न घुस जाय। इधर मेरी छोटी बहन पुष्पा को न्युमोनिया हो गया था। लगता था इसका जीवन दवा के अभाव में पानी में ही बह जायेगा। रात किसी तरह काटी। जाते भी कहाँ? पास में कोई डॉक्टर तो था नहीं। और फिर पानी भी बाढ़ की तरह बढ़ रहा था।

सुबह कम से कम चार–पाँच फुट पानी में जैसे–तैसे रोड़ पार कर गोमतीपुर में श्री गोविंदप्रसादजी वैद्य के यहाँ पिताजी गये। मात्र रोग का वर्णन सुनाकर दवा ले आये। पुष्पा की जीवन डोरी लंबी थी सो बच गई। पानी भी उतरा। गाड़ी पटरी पर चलने लगी।

बचपन से वर्तमान तक की अवस्थाओं की चित्रावली

बारह वर्ष की उम्र में

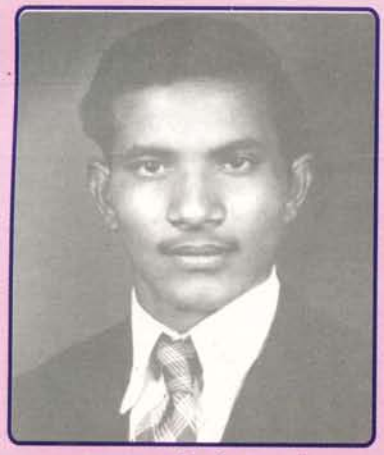

अठारह वर्ष की उम्र में

पच्चीस वर्ष की उम्र में

स्नातक की पदवी के साथ

कंपनी कमान्डर (लेफ्टीनेन्ट) के रूप में

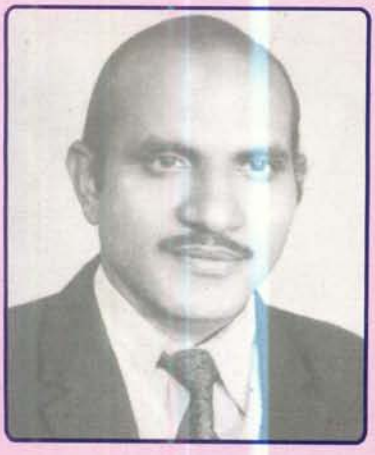

चालीस वर्ष की उम्र में

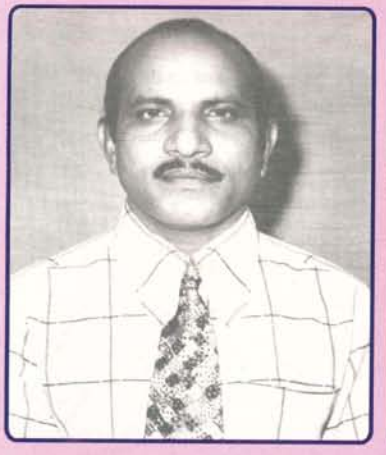

पचास वर्ष की उम्र में

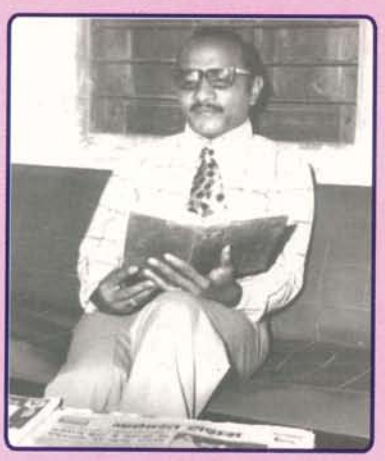

अध्ययन करते हुए

विविध स्थलों की विविध मुद्राएँ

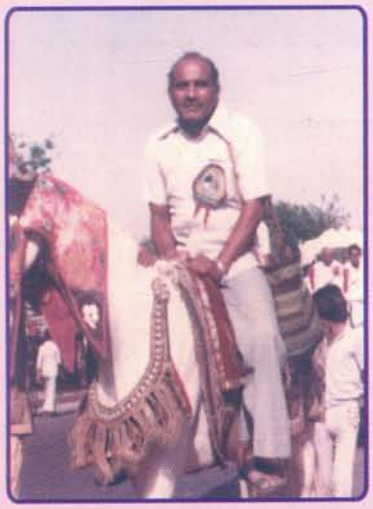

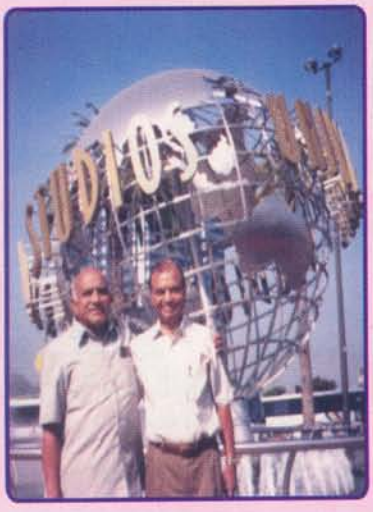

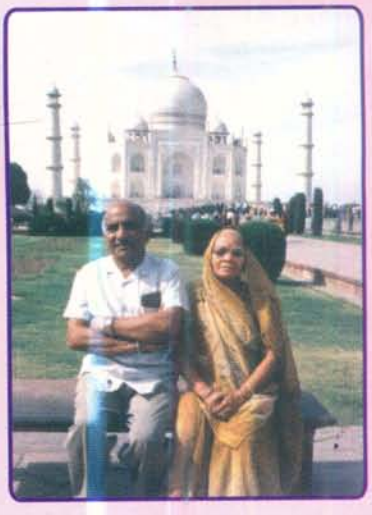

परिवार की चित्रावली

दादा स्व.श्री रज्जूलालजी

पू.स्व. पिता श्री पन्नालालजी एवं माताश्री जयश्रीदेवी

पू.स्व.काकाश्री कमलाप्रसादजी-काकी बेनीदेवी

पू.स्व काकाश्री छक्कीलालजी-काकी कपूरीदेवी

भाई डॉ.महेन्द्र-चंद्रप्रभा एवं चि. हिमांशु

भाई श्री सनतकुमार, सौ. उषादेवी

पुत्र श्री राकेश-ज्योति, चि. किंजल-चि. निशांत

पुत्र श्री अशेष-नीति, चि. निसर्ग-चि. आयुषी

आ.जीजा श्री कपूरचंदजी एड.-बहिन सावित्रीदेवी

आ.जीजा श्री प्रकाशचंदजी-बहिन श्री पुष्पादेवी

आ.दामाद श्री रवीन्द्रकुमार
चि. अपूर्वा-

सौ.कां. बेटी अर्चना
चि. मास्टर अमन

प्रवचन की विविध मुद्राएँ

स्वागत की कतिपय झांकियाँ

कलकत्ता में श्री सरदारमलजी कांकरिया

कलकत्ता में श्री एम.सी. भंडारी

राष्ट्रीय गोष्ठी में डॉ. एन.एल. कछारा

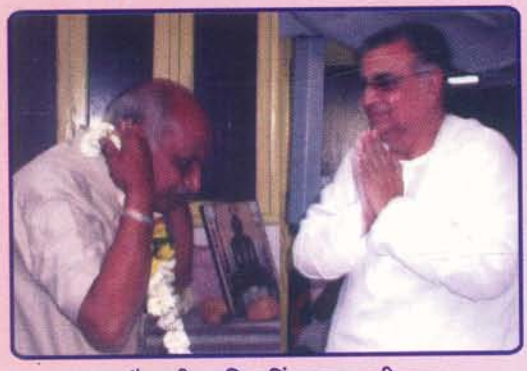

इन्दौर श्री अजितसिंह कासलीवाल

उदयपुर में श्री कुन्थुकुमार

सागवाड़ा में डॉ. प्रभातजी

मुंबईमें डॉ. श्रीमती शाह

श्रवणबेलगोला में

भिवंडीमें श्री बेनाड़ाजी

हस्तिनापुर में श्री अनिलजी

दिल्ली में अहिंसा इन्टनेशनल के अध्यक्ष एवं श्री सतीषचंदजी

हस्तिनापुर में कलप्पाजी (पूर्व सांसद)

गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री स्व.श्री हितेन्द्रभाई देसाई द्वारा अभिनंदन

ऊदयपुर में श्री प्रकाशचंदजी एवं धर्मपत्नी

ऊदयपुर में श्री महावीरजी मींडा

राजनेताओं का सान्निध्य (विविध प्रसंग)

प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी
के साथ डॉ. श्री भरतभाई ओझा
एवं एशियाड ७२ के प्रवासी विद्यार्थी

प्रधानमंत्री स्व. श्री मोरारजीभाई देसाई
के साथ आ. श्री वशी साहब
एवं अध्यापक गण

महामहिम राज्यपाल श्री चांडीसाहब

महामहिम राज्यपाल स्व. श्री सुंदरसिंहजी भंडारी

भाई-बहन

सन् १९४१ से १९५० तक मैं व मेरी छोटी बहन सावित्री दो ही संतान थे। पश्चात १९५०, १९५२ व १९५५ में क्रम से बहन पुष्पा, भाई महेन्द्र व भाई सनत का जन्म हुआ। मुझसे छोटी बहन सावित्री यहीं नागोरी चाल में रहकर म्यु. के स्कुल में राजपुर हिन्दी शाला में पढ़ती थी। बहनों में वह बड़ी थी। माँ घर पर अकेली ही सारा कामकाज करती थी। अतः सावित्री को पढ़ने का कम ही समय मिलता। वह छोटे भाई–बहनों को ही खिलाती रहती उनकी देखरेख करती। इन सबसे समय निकालकर पढ़ने जाती। वह सातवीं कक्षा में थी। घर की ऐसी ही परेशानियों के कारण उसे पढ़ाई से उठा लिया गया। उस समय लड़की का विवाह १५–१६ वर्ष की उम्र में ही कर दिया जाता था। सावित्री १३–१४ वर्ष की थी। उसे घरकामभी सीखना था। इसलिए वह बचपन के खेल व किशोरावस्था के किसी भी पारिवारिक सुख को नहीं पा सकी। मुझे यहाँ लिखते हुए प्रसन्नता है कि उसने अपनी ससुराल में जाकर अपनी बेटियों को डॉक्टरेट तक पढ़ाने के साथ स्वयं भी एम.ए. तक की पढ़ाई की।

मेरी छोटी बहन सावित्री के विवाह की चिंता पिताजी को थी। चूँकि मेरा विवाह १९५६ में हो गया था अतः बहन के लिए लड़का ढूँढने की मेरी भी जिम्मेदारी हो गई थी। मैं भी पिताजी के आदेश से झाँसी, ललितपुर आदि स्थानों पर लड़के ढूँढने जाता। एक तो दूर का मामला... फिर लड़के वालों के नखरे... बड़ा परेशान। हम सावित्री को इसीलिए अपनी बुआ और फूफाजी के यहाँ बीना लिवा ले गये और वहीं से उसे दिखा देते। लड़के वाले आते कोई न कोई बहाना बनाकर चले जाते। कई घरों में बड़ी उपेक्षा भी होती, बुंदेलखंड में वैसे भी लड़कीवालों के साथ सौतेला सा व्यवहार होता है। आखिर मेरे फूफाजी व उनके बड़े भाई के माध्यम से ललितपुर में बात बन गई। लड़की बीना में दिखाई गई। पहली बार तो 'ना' ही सुनना पड़ा। पर एक–दो अन्य रिश्तेदारों की मदद से सविशेष पं. परमेष्ठीदासजी एवं देलवारे वाले श्री परमानंदजी के सहयोग से बात बन गई। पिताजी भी प्रसन्नता से अहमदाबाद लौटे। पर दो–चार दिन में ही समाचार आया की लड़का हाथीपाँव है। पिताजी परेशान..... माँ व्याकुल..... हम लोग पिताजी पर नाराज.....। आखिर विवाह की जो तिथि तय की थी उसी तिथि में विवाह करने का संकल्प करके एकमाह पूर्व पिताजी एवं काका कमलाप्रसादजी सपरिवार बीना गये। वहाँ से फूफाजी को लेकर ललितपुर गये। पर हरदासजी से कहे कौन? हरदासजी का स्वभाव अर्थात् अंगारे पर पाँव रखना। जब उन्हें इसकी भनक लगी तो वे उग्र रूप से जो भी पहले तय करते समय पिताजी शगुन दे गये थे उसे फेंकते हुए उन्होंने सगाई की बात तोड़ने को कहा। बात बिगड़ी भी। पर जब पं. परमेष्ठीदासजीने कहा 'हरदासजी अगर कोई तुमसे कहता कि लड़की लंगडी है या अन्य खराबी है तो क्या पुनः लड़की देखते या नहीं? जीवनभर का सौदा है। अगर वे चाहते हैं तो नाराज क्यों होते हो?' बात उनके समझमें आई और संबंध यथावत रहा।

विवाह अहमदाबाद से न करके पैतृक गाँव कटैरा से किया गया। रसोईया भी उन्होंने ललितपुर से भेजा। असली घी की मीठाई ही बने यह तय हुआ। पिताजी अपने गाँव अस्तारी गये। सारे किसान प्रसन्न थे कि हम लोग गाँव से शादी कर रहे हैं। उस समय घी पाँच रू. का सेर था और उन लोगो ने चार -- साढ़े चार रू. के भाव से घी दिया। ग्यारह डब्बे घी खरीदा गया। लगभग दो सौ बाराती इस अंदरुनी गाँव में आये। ठंडी के दिन..... पर गाँव के ढीमर (पानी भरने वाले) सभीने बड़ी तन्मयता से काम किया। सौ बाराती तो रात्रि को टीका के बाद ही लौट गये।

उसी रात एक विचित्र घटना घटी। हमारा गाँव डकैती ऐरिया का गाँव है। हमारे ही चचेरे चाचा श्री चंद्रभानजी ने यह बात उड़ाई की गाँव के आसपास डकैत हैं। शादी दरवाजा बंद करके अंदर ही कर ली जाये। सब लोग घबड़ा

गये। बहिन को सौ तोले से ऊपर सोने के गहने चढ़ाये गये थे। सभी भयभीत थे। पर शाह हरदासजी बड़े ही निपुण, चाणक्य के समान चतुर थे। उन्होंने सारा ज़ेवर उतारकर चंद्रभानजी को ही पहना दिया। क्योंकि वे चंद्रभानजी को अच्छी तरह जानते थे। अब तो उल्टे चंद्रभानजी को ही पूरी रात ज़ेवर की रखवाली करनी पड़ी। विवाह सानंद संपन्न हुआ।

यहाँ एक बात कहना चाहूँगा कि श्री शाह हरदासजी स्वभाव से ऊपर से अति कटु, गुस्सैल एवं गाली–गलौच में माहिर थे। पर हृदय के कोमल थे जो दूसरों की मदद के लिए सदैव तैयार रहते। उनका दबदबा ललितपुरमें इतना था की पूरा जैन समाज ही नहीं सभी उनका रोब मानते थे। और इसीलिए वे जगत 'कक्का' कहलाते थे। शायद दो–तीन दर्जा ही पढ़े थे। पर अपनी कार्यक्षमता से वर्षों तक ललितपुर की म्युनिसिपालिटी में चुने जाते रहे। अनेक कमीटियों के चेयरमैन रहे। हमारी बहन को कभी भी उन्होंने कोई कष्ट नहीं होने दिया। उनके स्वभाव के विपरीत मेरे बहनोई बाबू कपूरचंदजी एडवोकेट क्षमा और सरलता के प्रतीक रहे। पिता–पुत्र के स्वभाव में अजीब भिन्नता !

मेरे लिए वे सदैव प्रेरणास्रोत रहे। मैं आज जीवन में जो कुछ भी बन पाया उसमें श्री शाह हरदासजी एवं बाबू कपूरचंदजी की बड़ी ही अहम् भूमिका रही है। सन् १९५८ में जब मैं सावित्री को लिवाने गया तो उन्होंने कहा था 'देखो बेटा! कभी किसी से काका–बाबा मत कहना। हमेशा बाप बनने की कोशिश करना। काका–बाबा कहोगे तो लोग तुम्हें तुच्छकार से काम करने का आदेश देंगे। पर बाप बनना सीखोगे तो लोग हाथ जोड़कर पूछेंगे कि पिताजी क्या आज्ञा है?' उनकी यह शिक्षा एवं आगे चलकर दिनकरजी की रचना का ओज़ मुझे स्वाभिमानी स्वावलंबी बनाने में सहायक हुआ। यद्यपी लोगों ने इसे मेरा जिद्दी होना ही बताया।

मेरी दूसरी छोटी बहन पुष्पा जो बी.ए. के द्वितीय वर्ष में थी उसका विवाह सन् १९६९ को बबीना में किया गया। उसके श्वसुर श्री लक्ष्मीचंदजी ठकुरई गाँव के शाहुकार और जमीदार थे। जमीने तो सेना की चाँदमारी में जाने से उन्हें गाँव छोड़कर बबीना आना पड़ा। लंबा छह फूट का स्वस्थ शरीर, बड़ी मूछें, बंदूक के साथ चलने वाले, दबंग व्यक्तित्व के श्री लक्ष्मीचंदजी की एकाएक धर्म के प्रति अध्ययन और रूचि बढ़ने लगी। अतः सबकुछ त्यागकर वे संस्कृत एवं आगम ग्रंथों के स्वाध्याय में समर्पित हो गये। उनका ज्ञान इतना बढ़ा कि मुनियों को भी वे पढ़ाने लगे। पुष्पा का विवाह इन्हीं के पुत्र श्री प्रकाशचंदजी से हुआ। प्रकाशचंदजी यद्यपि एलएल.बी. तक पढ़े हैं। प्रेक्टिस का प्रयत्न भी किया पर प्रेक्टिस न करके सरकारी नौकरी में गये और आज सीनीयर फूड इन्स्पेक्टर के पद पर हैं।

मेरे छोटे भाई महेन्द्र ने प्रथम वर्ष बी.एस.सी. किया और उसे थोड़ा बहुत डोनेशन देकर उज्जैन की आयुर्वेदिक कॉलेज में दाखला दिलवाया गया। और उसने वहीं से बी.ए.एम.एस. किया। वह स्वभाव से कुछ स्वाभिमानी या जिद्दी रहा। उसके विवाह के कई प्रस्ताव आये। पर उन्हें ठुकराता रहा। आखिर हम लोगों के दबाव से वह विवाह के लिये तैयार तो हुआ पर उसने कहा कि ''अब वह लड़की देखने नहीं जायेगा। हमलोग जो तय करेंगे उसे मंजूर होगा।'' आखिर हम पति–पत्नी मंडी बामौरा लड़की देखने गये। हमने श्री शाह भगवानदासजी की सबसे छोटी पुत्री चंद्रप्रभा को देखा। लड़की भी पढ़ी लिखी थी। हमने बिना किसी दहेज माँग के शादी तय कर दी।

सबसे छोटा भाई सनत जिसे पढ़ने का कम ही मौका मिला। पिताजी की बीमारी, घर का खर्च चलाने हेतु वह पिताजी के साथ फेरी को जाता, दुकान चलाता, बचे–खुचे समय में पढ़ने जाता। इन्हीं परेशानियों के कारण वह बी.कॉम में अच्छे अंक नहीं ला पाया। यदि मैंने उस ओर महेन्द्रकी तरह ध्यान दिया होता तो आज वह सबसे अच्छे

स्थान पर होता। घर की आर्थिक परेशानी के कारण उसका जीवन रुँध गया। उसकी यह त्याग और तपस्या थी कि उसने अपने श्रम से बड़े भाई महेन्द्र को पढ़ाने में मदद की। उसका विवाह अहमदाबाद में ही हुआ। आज वह अपनी छोटी सी दुकान और पार्ट टाईम नौकरी करके घर चला रहा है। पर बच्चों को पूरा सुख और सुविधा दी है।

अभाव का जीवन

मेरा बचपन आर्थिक विपन्नता में ही बीता। मुझे स्मरण है कि जब मैं प्राथमिक स्कूल में पढ़ता था उस समय अनाज, तेल, शक्कर का कंट्रोल था। रेशनींग कार्ड पर वस्तुयें मिलती थीं। उस समय लगभग (सन् १९४६–४७–४८) लगभग जहाँ अब ऊषा टॉकीज है उसके सामने एक रेशनींग की दुकान थी जिसपर अनाज के नाम पर लाल ज्वार, मकई आदि मिलती थी। गेहूँ भी सड़े अधिक, अच्छे कम ही होते थे। शक्कर मुश्किल से आधा सेर (आजका २५० ग्राम) मिलती। पर उसका स्वाद हमे कम ही मिलता। वह शक्कर तो केरोसीन के लायसंस दाता या केरोसीन के व्यापारी के मुनीम की भेंट चढ़ जाती। हाँ एकबात अवश्य थी कि पिताजी इस परेशानी में भी काले बाजार से अच्छे गेहूँ लाते थे। (उस समय एक मन का भाव १२ से १५ रू. था) हाथ से दूध दोहवाते और असली घी (उस समय ४ रू. का ५०० ग्राम था) लाते। मैं प्रातः काल से रेशनींग की लाईन में पाँच–छह थेलियाँ लेकर घंटो लाईन में खड़ा रहता। कभी तो नंबर आते–आते वस्तु ही खत्म हो जाती।

बचपन एक प्रकार से उन अभावो में बीत रहा था जो वर्तमान संदर्भ में अति दारूण कहा जा सकता है। खेल के नाम पर कभी कोई साधन उपलब्ध नहीं हुआ। हाँ धूल में कबड्डी जरूर खेलते थे। क्योंकि उसमें साधनों की आवश्यकता ही कहाँ होती है? जीवन १२ X १२ के कमरों में जिया जा रहा था। बाहर का १२ X ६ कमरा कम बरंडा में आधा पार्टीशन था। एक ओर केरोसीन व लारी का गोड़ाऊन होता। शेष आधा भाग ही आज की भाषा में ड्रोइंग रुम बना रहता। जहाँ फर्निचर के नाम पर होती एक खटिया। अंदर का एक ही कमरा दिन को रीडिंग रुम, डाइनिंग रूम सभी कुछ होता। और रात्रि में बेड़रूम बन जाता। उसमें भी पार्टीशन कराया गया। ताकि मर्यादा बनी रहे। ६ X ६ का रसोई घर प्रातःकाल बाथरूम का काम करता, पश्चात रसोईघर का और रात्रि को जगह कम पड़ने पर शयनकक्ष बन जाता। पर कभी दुःख का एहसास नहीं होता। क्योंकि इससे अधिक सुख कभी देखा ही नहीं था। मुझे याद है कि हम कक्षा ५ से ७ तक रायपुर स्कूल में पढ़ने जाते जो नागौरी चॉल से लगभग पाँच कि.मी. दूरी पर था। पश्चात ८ से ११ तक की पढ़ाई हेतु भारती विद्यालय खाड़िया में पढ़ने जाते। वह भी लगभग इतना ही दूर था। हम चार–पाँच लड़के पैदल ही जाते। चप्पल या जूते का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। ब्लू चड्डी और सफेद कमीज ही हमारा गणवेश था और उस समय जब तक एक चड्डी फट न जाय तब तक दूसरी आती ही नहीं थी। अधिक से अधिक एक या दो ड्रेस ऐसे होते जो किसी प्रसंग विशेष पर उत्सव, त्यौहार या शादी में ही पहने जाते। कक्षा १०वीं में आने पर ही पिताजी ने साईकल दिलवाई। साईकल रोबीनहुड थी जो लगभग २०० रू. में आई थी। उस समय नई साईकल का आनंद आज की कार से अधिक था। चूँकि उस समय वस्तुओं के भाव भी आजकी तुलना में कल्पना के बाहर थे। अच्छा गेहूँ २० रू. मन, चावल २ रू. शेर, मूँगफली का तेल ८ आने से १ रू. सेर, घी पाँच रू. शेर, चाँदी २ रू. तोला, सोना ९६ से १०० रू. तोला और दूध ४ आने का सेर। मेरी शादी में ९६ रू. तोले के भावसे सोना खरीदा गया था।

स्कूल की फीस ६ रू. मासिक थी। वह भी समय से देना दुर्लभ था। खर्च के लिए एक आना या दो पैसे प्रतिदिन मिलते। उसमें भी दो पैसे में पेटभर चटर–पटर खाते। महिने में एकादबार इन पैसो में भी बचत करके

सिनेमा जाते तो पाँच आने की लाईन में घंटो खड़े रहते। टिकट प्राप्त करते। तिथि या त्यौहार पर अवश्य एक या दो रू. मिलते। जो हमें धनाढ्य होने का एहसास कराते। कभी–कभी पैसो की तंगी होने पर पिताजी की जाकिट की जेब में से चार आठाना निकाल लेने का पराक्रम भी करते। चार आने का ढोसा भद्रकाली के मंदिर के पास मद्रासी कॉफे में कई कटोरी दाल के साथ खाते और किसी पंचतारक होटल के सुख का आनंद मनाते।

इस गरीबी–लाचारी में एक ही कल्पना होती काश! हमारे पास एक बोरी गेहूँ होता, एक बोरी चावल, दश सेर शक्कर, एक डब्बा तेल। इतनी ही तो थी हमारी अमीर होने की कल्पना। उस समय पूरे विस्तार में फोन भी सिर्फ गोविंदप्रसादजी वैद्य के यहाँ या पटेल मील में था। दो आने देकर फोन करते थे। घर में कभी फोन हो इस स्वर्ग के सुख की कल्पना बनी रहती थी।

मुझे पता है कि सन् १९६१ बी.ए. तक घर में बिजली नहीं थी। सन १९६२–६३ में बिजली प्राप्त कर सके तो लगा घर में दिवाली ही आ गई है। पिताजी एक रेडियो, एक टेबल फेन ले आये। रेडियो तो हम लोग अपनी मरजी से सुन लेते। पर पंखा विशेष रूप से हारे थके आये पिताजी के लिए ही विशेष उपयोगी बनता। हमारे रेडियो से आसपास के लोग भी लाभान्वित होते। इस एक पंखे और रेडियो से ही हमें दूसरों के कुछ अधिक अमीर होने का एहसास होने लगा। मुझे याद है कि घर में कभी कोई विशेष मेहमान या किसी को जाँचने कोई डाक्टर या वैद्य आ जाय तो हम कुर्सी बगल से माँगकर लाते थे। हमारे पास कुर्सी तो थी नहीं। और होती तो उसे रखने को जगह कहाँ थी? घर का आधा सामान तो दीवारों पर लगे पाटियों पर या मचान पर रहता। इसी नागौरी चॉल के माहौल में मेरे भाई–बहनों का जन्म हुआ और शादियाँ भी हुईं। हम सब इसी छोटे से घर में वैसे ही समाते जाते थे जैसे एक ही कमरे में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है। आज मुझे लगता है कि हमारा घर उस कहानी की पृष्ठभूमि सा था जहाँ भौतिक जगह तो कम थी पर हृदय में विशेष जगह थी।

घर में नौकर रखने का तो प्रश्न और विचार ही कैसे होता? माँ ही सुबह ४ बजे से रात्रि के १०–११ बजे तक सभी कार्य स्वयं करतीं। नियमधारी पिताजी को खुद हाथ से आटा पीसतीं। धार्मिक तिथि के दिनो में कुएँ से दूर–दूर से पानी लातीं। कच्चा घर होने से उसे गोबर से लीपतीं। यह सब वे बड़े ही उत्साह से करतीं। पिताजी से कड़वे व गुस्सेल स्वभाव से वे सदैव प्रताडित रहतीं। सबकुछ झेलने पर भी हम लोगों का पूरा ध्यान रखतीं। वह सब लाड़ लड़ातीं जो एक गरीब माँ लड़ा सकती है। मेरी माँ स्वभाव से कुछ कड़क होने से हम सब लोगों को गलत कार्यों से बचाये भी रहतीं। क्योंकि चाली का माहौल कभी ऊँचे संस्कार नहीं दे पाता।

जैसाकि मैंने कहा हमारे यहाँ लाईट नहीं थी। पढ़ना आवश्यक था। अतः मैं रात को उस बिजली के खंभे के नीचे बैठकर पढ़ता था जो म्युनिसिपालिटी द्वारा रोड़ पर लगाया गया था। जो कि मेरे घर के सामने ही था। उस समय कच्ची सड़क थी। लोगों का आना–जाना बहुत कम होता था। अतः मैं रात्रि को १० बजे से पाँच–छह घंटे उसी के प्रकाश में पढ़ता। दिन को स्कूल की छुट्टियों में हाथीखाई बगीचे में जाकर के पढ़ाई पूरी करता। इस प्रकार १९५६ में मैंने मेट्रिक की परीक्षा पास की।

स्थानांतर (मकान बदलना)

हमारे पिताजीने अपनी गाढ़ी कमाई से जो भी बचत की उससे अमराईवाड़ी विस्तार में बन रही एक सोसायटी उमियादेवी नं. २ में एक मकान बुक कराया जो १९६९–७० में हमें प्राप्त हुआ। लगभग ८५ वर्ग गज के मकान में चार कमरे थे, वरंडा चौक वगैरह सुविधा अच्छी थी। पर हमें अपनी पसंद का मकान न मिला। ड्रो में हमें कोने

का मकान मिला। जिसका मलाल २७ वर्षों तक १९६९ से १९९८ तक जबतक यहाँ शिरोमणी में नहीं आये तब तक बना रहा। भाई सनत और महेन्द्र, पुत्र राकेश, अर्चना और अशेष के विवाह और मेरे विवाह की ४१वीं वर्षगाँठ १९९७ में यहीं मनाई गई।

एक प्रसंग और लिख दूँ। सन् १९५४ में मुझे टाईफोईट हो गया। उस समय पूरे विस्तार में गोमतीपुर में श्री गोविंदप्रसादजी वैद्य का दवाखाना था। एक–दो छोटे वैद्य या डॉक्टर थे। चूँकि ऐसी मान्यता थी कि टाईफोईड या मोतीझरा किसी देव–देवी का प्रकोप है। अतः एक कमरे के एक कोने में बिस्तर लगाया गया। नीम के पत्ते बाँधे गये। बिना हाथ–पाँव धोये किसी का भी अंदर आना वर्जित हो गया। परदे के नाम पर बोरी या चद्दर को बाँधा गया। चूँकि मेरे पिताजी इसपर कम विश्वास करते थे। उन्होंने गोविंदप्रसादजी वैद्य से जाँच करवाई। उस समय पाँच रू. फीस देकर वैद्यजी को घर बुलवाना, दवा लाना यह खर्च भी भारी लगता था। मेरे पिताजी ने खर्च की चिंता न की और पूर्ण रूपेण इलाज कराया। यह बात मेरे बाल मानस पर घर कर गई कि दवा का खर्च कितना परेशान करता है। उसपर फल–फलादि और मोसंबी का रस भी आवश्यक हो जाता है। मेरे किशोर मन पर यह भाव अंकित हुआ कि जब कभी मैं बड़ा होऊँगा, पैसे–टके से कुछ समर्थ होऊँगा, कुछ बन सकूँगा तो एक औषधालय का निर्माण कराऊँगा जिसमें गरीबों की अच्छी जाँच हो सके। उन्हें दवा आदि देकर मदद दे सकूँ। सन् १९५४ में किशोरावस्था में बोया गया यह बीज मन के अज्ञात कोने में दबा रहा वह सन् १९९८ में ४४ वर्ष के पश्चात अंकुरित हुआ और इसी भावना से मैं 'श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल' का प्रारंभ करा सका। मेरी दृष्टि से यही सर्वश्रेष्ट मंदिर है।

शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा

मुझे याद है कि पिताजी मुझे अहमदाबाद नगरपालिका के रखियाल हिन्दी प्राईमरी स्कूल में दाखिला दिलाने ले गये थे। वहाँ हेड मास्टर साहब ने पिताजी से पूछा की लड़का कितने साल का है तो उन्होंने अंदाज से कहा कि– होगा छह सात वर्ष का। और हेडमास्टर साहबने कद–काठी देखकर आठ वर्ष का लिख दिया। इस प्रकार मेरी जन्मतारीख जो कुंडली के अनुसार २८ दिसंबर १९३८ पड़ती है। वह स्कूल में २ दिसंबर १९३६ लिखी गई। मुझे स्मरण है कि १५ अगस्त १९४७ को जिस दिन देश स्वतंत्र हुआ था उसदिन हमें स्कूल में पेड़े बाँटे गये थे। और तिरंगे का एक एल्युमिनियम का बेज दिया गया था। हमारे प्राथमिक स्कूल के हेड़मास्टर थे श्री मन्नालालजी तिवारी। कक्षा ४ तक रखियाल स्कूल में पढ़ाई की। कक्षा ५ से ७ तक रायपुर हिन्दी स्कूल में अध्ययन किया। यहाँ श्री विश्वनाथजी मिश्र आचार्य थे। यह वह समय था जब अहमदाबाद में हिन्दी माध्यम की कक्षा १ से ४ तक चार–पाँच स्कूले ही थीं। श्री विश्वनाथजी ने अपनी जिम्मेदारी से कक्षा ५ से ७ तक की कक्षायें प्रारंभ कराई थीं। जो बादमें म्युनिसिपालिटी में मान्य हुई। रायपुर हिन्दी स्कूल उस मकान में था जहाँ वर्तमान में एम.पी. आर्ट्स महिला कॉलेज है। यहाँ श्री रमाकान्तजी शर्मा अध्यापक थे। जो इस प्राथमिक स्कूल में अध्यापक थे। बाद में तो वे युनिवर्सिटी और कॉलेज में प्राचार्य हुए। वे बड़े ही संवेदनशील युवक थे। कुछ करने की तमन्ना वाले थे। उनका मुझपर विशेष स्नेह था। मेरे मन में भी उनके प्रत्ये अति आदरभाव था। वे कवि थे और विद्यार्थीओं को निरंतर प्रोत्साहित करते थे। इस प्रकार १९५२ में मैंने कक्षा ७ की परीक्षा जो बोर्ड की होती थी उसे पास की।

खुरई गुरुकुल में शिक्षा

मेरे पिताजी के मनमें निरंतर यही बात रहती थी कि वे मुझे जैनधर्म का पंडित बनायें। वे प्रायः पंडितों के प्रवचन सुनते– उनकी प्रतिष्ठा देखते और बस.. एक ही संकल्प करते– मेरा पुत्र भी पंडित बने। आखिर वे मध्यप्रदेश स्थित खुरई के श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल में मेरे फूफाजी वैद्यराज पं. सुरेन्द्रकुमारजी की सहमति से वहाँ दाखिल करा आये। उस समय गुरुकुल में फुल पेड फीस २०/– मासिक लगती थी। जिसमें रहना, खाना–पीना सबका समावेश था। वहाँ पं. श्री भुवनेन्द्रकुमारजी सुप्रिन्टेन्डेन्ट थे। तथा श्री श्रीकुमारजी एतवडे (कारंजावाले) प्रधानाध्यापक थे। नई जगह थी। नया वातावरण था, नये लोग थे। जीवनमें पहली बार घर छोड़कर आया था। अतः बड़ा ही अकेलापन लगता था। यहाँ घर पर चाहे जितनी बार खाते थे। पर वहाँ नियम से दो बार भोजन व दोपहर में थोड़ा सा नास्ता मिलता था। सूर्यास्त से पूर्व भोजन करना अनिवार्य था। पं. भुवनेन्द्रकुमारजी गाँव में जाकर उत्तम गेहूँ, शुद्ध घी आदि लाकर विद्यार्थीयों को खिलाते थे और पितृवत् स्नेह भी करते थे।

यहाँ गुरुकुल में एक ही भवन था। उसीमें कक्षा लगती और वहीं कमरा रात्रि को सामूहिक शयनकक्ष बन जाता तो दिनको उसीमें कक्षायें भी लगतीं। यहाँ लौकिक शिक्षा के साथ धर्म शिक्षण अनिवार्य था। गुरुकूल में कक्षा ५ से विद्यार्थी लिये जाते थे। यहाँ कक्षा ९ तक की पढ़ाई का प्रबंध था। कक्षा ५ में बालबोध के चार भाग, कक्षा ६ में छहढाला एवं द्रव्यसंग्रह, कक्षा ७ में रत्नकरंड श्रावकाचार, कक्षा ८ में सागारधर्मामृत और कक्षा ९ में सर्वार्थसिद्धि का अध्ययन कराया जाता था। इस कारण मुझे कक्षा ७ में रत्नकरण्ड श्रावकाचार का अध्ययन करना था। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि मैं अहमदाबाद से कक्षा ७ पास करके आया था। पर संस्कृत, धर्म एवं अंग्रेजी के नये विषय होने से मुझे बड़ी मुश्किल से पुनः कक्षा ७ में लिया गया।

गुरुकुल में रहनेवाले विद्यार्थी की दिनचर्या पूर्ण ब्रह्मचारी की दिनचर्या होती थी। प्रातः ४.३० बजे उठना। उठकर समूहमें प्रार्थना, अध्ययन का कार्य लगभग ६.३० बजे तक चलता। पश्चात् नित्यक्रिया से निवृत्त होकर स्वयं कुएँ से पानी खींचकर खुले में स्नान करते और देव–दर्शन और पूजन अनिवार्य रूप से करते। १०.३० बजे पूर्ण शुद्ध भोजन प्राप्त होता। शाम को खेल–कूद सूर्यास्त से पूर्व भोजन, फिर भ्रमण। रात्रि को आरती, प्रवचन और अध्ययन। रात्रि को १० बजे सोना अनिवार्य था।

शाम का भोजन सूर्यास्त से पूर्व करना पड़ता था, इससे रात्रि को खूब भूख लगती। अतः हम बच्चे जब शाम को घूमने जाते तो बेर, केंत, इमली आदि फल तोड़ते उन्हें छिपाकर रखते और रात्रि को उसे खाते। साथ ही रात्रि में एक विद्यार्थी को चोरी छिपे सामने ही रेल्वे स्टेशन पर सिंधी की दूकान पर भेजते और मूँगफली, गजक आदि नास्ता मँगाते। सभी नास्ता बाँट लेते फिर चादर ओढ़कर मुँह ढ़ककर खाते रहते। मज़ा तब आता जब प्रातः कमरे में गुठली और छिलके मिलते। चूँकि कमरे हमें ही साफ करना पड़ते थे अतः शिकायत किससे करते? मुझे स्मरण है कि १४ जनवरी १९५३ का दिन था। मकरसंक्रांति थी। दुर्भाग्य या सौभाग्य से उसदिन चतुर्दशी थी। जबरदस्ती का एकासन या दो बार भोजन का नियम था। उस दिन नास्ता भी नहीं मिलता था। अतः खेत में जाकर खूब मटर और चने खाये। इस बात का पंडितजी को पता चल गया। बस फिर क्या था हम लोगों की धुलाई हुई और तीन–चार दिन को नास्ता बंध। प्रतिकार के रूप में उन्हें कोसते रहे।

तीन–चार दिन नास्ता बंध रहा इसकी बड़ी झुँझलाहट थी। कुछ दिन बाद लगभग फरवरी महिने में जबकुछ गरमी पड़ने लगी थी, हमारे सुप्रिन्टेन्डेन्ट श्री भुवनेन्द्रकुमारजी नीचे कार्यालय में खिड़की खोलकर सो रहे थे। हमारा कमरा ठीक कार्यालय के ऊपर था। मुझे रात्रि को पेशाब लगी। एक शरारत सूझी। संक्रांति की सजा का

गुस्सा उतारने की भावना जागी और मैंने वहीं खिड़की पर बैठकर पेशाब कर दी। पेशाब खिड़की पर लगे टीन के वेन्टीलेशन पर गिरी और उसके छींटे पंडितजी पर गिरे। फिर क्या था..? पंडितजी रात्रि में २ बजे हाथ में टार्च लिये और डंडा लिये रौद्र रूप में आ धमके। मैं तो तुरंत दुबक कर सो गया था। पंडितजी ने सबको जगाया। मुझे घूरते हुए शंका व्यक्त करते हुए पूछा 'तुमने मूता है?' मैं भी अनजान सा बनकर अपनी चड्डी देखकर बोला 'नहीं साहब।' पंडितजी ने सबसे पूछा। सभीने 'ना' कहा। बस फिर क्या था। सभी का नास्ता अनिश्चितकाल के लिए बंद। आखिर पंडितजी थक गये। यह बात किसी को बर्षों तक पता नहीं चली। हाँ! अपनी बहादुरी की चर्चो में मैंने अवश्य गुरुकुल छोड़ने के बर्षों बाद कुछ मित्रों से कही। आज उसका स्मरण आता है तो लज्जा और दुःख दोनो होते हैं।

खुरई गुरुकुल में पूजा, दर्शन, स्वाध्याय के जो बीज अंतरमें अंकुरित हुए वे ही कालांतर में वटवृक्ष बने। वास्तव में जैन संस्कारों की नींव यहीं से रखी गई। इसी प्रकार गुरूकुल में निरंतर आयोजित वाक्प्रतियोगिता, निबंध लेखन में अभ्यास के कारण मैं वक्ता और लेखक बन सका।

गुरुकुल में सभी छात्रों को शिर मुडवाना पड़ता था और टोपी पहनना अनिवार्य था। खुरई के बाज़ार में पूर्व अनुमति के बिना नहीं जा पाते थे। वहाँ हमें लोग गुरुकुल के मुंडे या गुरुकुल की टोपी के नाम से ही जानते थे।

मैंने किसी तरह एक वर्ष यहाँ पूरा किया और आते समय अपनी पेटी में फालतू सामान भरकर वहाँ से जो भागा बस फिर कभी उस तरफ नहीं गया। मैं खुरई से तो पिंड छुडाकर भाग आया। अहमदाबाद में स्कूल में प्रवेश की समस्या खड़ी हुई। मैं यहाँ से ७वीं पास करके गया था, और वहाँ भी सातवीं में ही लिया गया था। फिर मेरा नाम भी बदल गया था। कुछ परिचितों के साथ अहमदाबाद के खाड़िया विस्तार में स्थित भारती विद्यालय में दाखिला लेने पहुँचा। पुराना ७वीं पास का ही प्रमाणपत्र बताया। बीचके एक वर्ष का क्या हुआ यह पूछने पर मैंने कहा कि मैं म.प्र. खुरई में आठवीं में पढ़ता था– मैं आठवीं पास हूँ। श्री के.टी. देसाईजी ने मेरे कुछ टेस्ट लेकर मेरी मनगणंत कहानी पर शिक्षणाधिकारी से स्वीकृति लेकर कक्षा ९वीं में भरती कर दिया। यहीं से मैंने ११वीं तक शिक्षा प्राप्त की। आज भी मुझे स्मरण आने पर उस असत्य के प्रति शिकायत होती है। यहाँ गुजराती माध्यम था। अतः मुझे प्रारंभ में कठिनाई पड़ी। पर मैं उसमें भी पार उतरता रहा।

कॉलेज शिक्षा

१९५६ में मेट्रिक पास करने के पश्चात मैं प्राथमिक स्कूल में अध्यापक के रूप में नौकरी करने लगा था। मुझे मेट्रिक में कौन से विषय लेना चाहिए, इसका कुछ पता भी नहीं था। मैंने तो फिजिक्स, केमेस्ट्री एवं अंकगणित जैसे विषय रखे थे। बीजगणित और भूमिति छोड़ दी थी। यद्यपि गणित से मेरा ३६ का संबंध रहा है। पर उत्तीर्ण होने जितने अंक ले ही लेता था। इसी वर्ष अहमदाबाद में सेंट झेवियर्स कॉलेज में सायंस विभाग का प्रारंभ हुआ था। मुझे प्रवेश भी मिल रहा था। पर सायंस पढ़ना मेरे बूते की बात नहीं थी। अतः उसी वर्ष गुजरात लॉ सोसायटी द्वारा प्रारंभ किये गये एच.ए. कॉलेज ऑफ कोमर्स के प्रथम वर्ष में दाखिला ले लिया था। यहीं से मैंने प्रथमवर्ष कामर्स की परीक्षा अच्छे अंको से पास की। परंतु आगे पढ़ना संभव नहीं था। क्योंकि नौकरी पर पहुँचने के लिए कुछ पीरियड छोड़ने पड़ते थे।

उसी समय एक नया मोड़ भी आया। उस समय बृहद मुंबई राज्य होने से अहमदाबाद उसी का अंग था।

उसके मुख्यमंत्री श्री मोरारजीभाई देसाई थे और स्वास्थ्य मंत्री थे श्री कन्नवरमजी। अहमदाबाद में रायपुरमें रहनेवाले श्री गोरसाहबने होम्योपेथी कॉलेज का प्रारंभ किया। जिसमें एल.सी.ई.एच. के डिप्लोमा की पढ़ाई का प्रारंभ हुआ। मेट्रिक के आधार पर प्रवेश मिलता था। मेरे मन में भी डॉ. बनने की तीव्र इच्छा थी। अतः कोर्पोरेशन में श्री के.टी. देसाई के प्रयत्न से सुबह की पाली में अपना तबादला करा दिया और इस मेडिकल कॉलेज में दाखिला ले लिया। यहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था– बायोलोजी जैसे विषय में चीरफाड़ सिखाते थे। एक तो अंग्रेजी माध्यम, दूसरे प्रातःकाल स्कूल में पढ़ाकर भोजन करके आना..... अतः कक्षा में नींद अधिक आती–विषय कम समझ में आता। लगा बेकार फँस गये। पर इससे बड़ी दुर्घटना तो यह हुई की ट्रस्टीगण कॉलेज चला नहीं पाये और वह बंद हो गई। लड़कों का वर्ष बिगड़ रहा था। पर सरकारने अहमदावाद के लड़कों को बंबई की होम्योपेथी कॉलेज में प्रवेश दिलाया। कई लड़के गये भी। पर आर्थिक परेशानी से मैं नहीं जा सका। पर इससे एक बात मेरे हृदय में घर कर गई कि मैं भले ही डॉक्टर नहीं बन पाया पर परिवार में डॉक्टर जरूर बनाऊँगा। मेरा यह संकल्प दृढ हुआ और मैंने छोटे भाई महेन्द्र को उज्जैन भेजकर डॉक्टर बनाया। मेरे दोनो पुत्र जिन में बड़े ने बी.ए.एम.एस. और छोटेने एम.डी. किया। वास्तव में यह सब मेरी ही भावनाओं का प्रतिबिंब था।

मेडिकल कॉलेज बंध होने से मेरा वर्ष बिगड़ रहा था उसी समय अहमदाबाद के रायपुर विस्तार के एक बंध मील– जहाँ आज बिग बाजार और मल्टीप्लेक्स थीयेटर हैं.... वहाँ पार्टीशन करके सर्वोदय आर्ट्स कॉलेज का प्रारंभ हुआ था। उसमें श्री प्रेमशंकर भट्ट आचार्य थे। उन्हें सारी परिस्थिति बताई तो उन्होंने मुझे प्रवेश तो दिया पर मेरा मनपसंद विषय अर्थशास्त्र मुझे नहीं मिला। अतः हिन्दी लेकर के ही मैंने पढ़ना प्रारंभ किया। उस समय एक ही भावना थी कि किसी तरह ग्रेज्युएट हो जाऊँ।

उस समय हिन्दी का श्रेष्ठ विभाग एल.डी. आर्ट्स एवं सेन्ट झेवियर्स कॉलेजों का माना जाता था। अतः जुनियर बी.ए. में सेन्ट झेवीयर्स कॉलेज नवरंगपुरा में प्रवेश प्राप्त किया। वहाँ कॉलेज के प्राचार्य थे फादर वोलेस और हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे प्रो. विश्वनाथ शुक्ल और अन्य अध्यापको में थे प्रसिद्ध कवि, कथाकार डॉ. रामदरस मिश्र। प्रथम वर्ष बी.ए. यहाँ से पास किया। उधर पुरानी सर्वोदय कॉलेज कि जिसका नाम अब 'श्री स्वामीनारायण कॉलेज' हो गया था वहाँ हिन्दी डिपार्टमेन्ट प्रारंभ हो गया था। पर विद्यार्थी नहीं थे। प्रो. लोधा साहबने हमें इन्टर में पढ़ाया था। उनके प्रति हमारी सम्मान की भावना थी। अतः उनके आग्रह पर मैं सेन्ट झेवियर्स कॉलेज से एवं भाईश्री जगदीश शुक्ल एल.डी. आर्ट्स कोलेज से यहाँ दाखिल हुए। हम दोनों से यहाँ हिन्दी डिपार्टमेन्ट प्रारंभ हुआ। पढ़ाई के साथ हमने यहाँ हिन्दी साहित्य मंडल बनाया। अनेक प्रवृत्तियाँ कीं, इनाम भी जीते और रेडियो स्टेशन पर कार्यक्रमों के मौके भी प्राप्त किये। मुझे गीत–नाटक–लेखन–पठन में रूचि थी। अतः कॉलेज के वार्षिकोत्सव में नाटक का पूरे जोन (विभाग) के श्रेष्ठ अभिनय का कप भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार सन् १९६१ में मुख्य विषय हिन्दी, गौण विषय इतिहास के साथ बी.ए. ओनर्स की डिग्री प्राप्त कर सका।

अनुस्नातक

१९६१ में बी.ए. पास करने के पश्चात गुजरात युनिवर्सिटी में एम.ए. में प्रवेश प्राप्त किया। उस समय युनिवर्सिटी का हिन्दी का सेन्टर सेंट झेवियर्स कॉलेज में चलता था। यहीं दो वर्ष में एम.ए.उच्च द्वितीय श्रेणी में ५७ प्रतिशत प्राप्त करके उत्तीर्ण हुआ। यहीं हमारे साथ अध्ययन करते थे गुजराती के प्रसिद्ध उपन्यासकार कवि श्री रघुवीर चौधरी, श्री भोलाभाई पटेल और गुजरात युनिवर्सिटी के पूर्व कुलपति डॉ. चंद्रकांत महेता। हमारे इन सहपाठियों में अधिकांश गुजरात के कॉलेजो में प्राध्यापक हुए।

एम.ए. की पुस्तकें तो खरीद ली थीं पर उनपर विविध विषयों के विवेचनों के संदर्भ ग्रंथ एक विद्यार्थी को खरीदना सरल नहीं था। अतः हम चार–पाँच मित्र जिसमें श्री सुमन अजमेरी, श्रीमती शांताबेन कालुस्कर, श्री छाबड़ा जी, श्री जगदीश शुक्ल और मैंने एक ग्रुप बनाया। एक–एक व्यक्ति एक–एक लेखक की टीका या विवेचन की पुस्तक खरीदता। सब एक दूसरे को देकर पढ़ते इससे हम एक पुस्तक पर पाँच–पाँच टीकाग्रंथ पढ़ लेते। यह पढ़ाई पहले श्री सुमन अजमेरी के घर पर होती। इसके बाद सात–आठ महिने के बाद श्रीमती शांताबेन कालुस्कर के रायपुर के निवास पर होती। सबलोग पढकर आते, चर्चा करते इससे बहुत ही अच्छी स्पष्टता होती और विषय समझ में आ जाता। फिर उन चार–पाँच पुस्तको में से एक नोट तैयार होती। यह काम मुझे सौंपा जाता। मेरी विवेचना शक्ति व दृष्टि पहले से ही अच्छी थी अतः सभी पुस्तकों को पढ़कर उसपर मैं नोट लिखवाता। सबलोग नोट लिखते। एक कार्बन कोपी मेरे लिए भी बनाई जाती। दिसंबर जनवरी तक हमारे श्रेष्ट नोट तैयार हो चुके थे।

अप्रैल में परीक्षा थी। पाँच दिन के पाँच पेपर थे। हाईस्कूल से जहाँ नौकरी करता था कोई विशेष छुट्टी नहीं मिली। पाँच केज्युअल लीव लेकर परीक्षा दी। परीक्षा का माहौल भी बड़ा विचित्र था। यही तो जीवनभर का अंतिम वर्ष था जिसपर पूरे जीवन का आधार था। श्री सुमन अजमेरी सर्वाधिक तेजस्वी छात्र थे। वे प्रथम श्रेणी में आयेंगे ऐसा सबका विश्वास था पर वे परीक्षा में ड्रोप लेकर चले गये। हम लोगों का विश्वास भी डगमगाने लगा।

भाषा विज्ञान के पेपर की परीक्षा का प्रथम दिन ही निराशाजनक लगा। मैंने सोचा चलो सुमनजी की तरह ड्रोप ले लें। उस शाम पढ़ना भी बंद कर दिया। दूसरा पेपर दो दिन बाद था। जब यह पता मेरे प्राईमरी के सर्वाधिक हितैषी अध्यापक जो अब कॉलेज में प्राध्यापक थे– उन श्री रमाकांतजी को पता चला तो वे मेरे घर आये। मुझसे अधिक चिंतातुर वे लगे। उन्होंने मुझे खूब समझाया और प्रोत्साहित भी किया। उन्होंने जो मानसिक उपचार किया वह मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने बड़ा ही मानसिक प्रयोग करते हुए मुझसे कहा– 'अपने मन और आत्मा से पूछो कि क्या मैंने इतना बड़ा कोई पाप किया है कि जिससे मेरी १६ वर्ष की महेनत निरर्थक हो जाये। यदि तुम्हारा मन कहें की हाँ पाप किया है तो परसों पेपर मत देना। और यदि मन कहे तो ऐसा कोई पाप नहीं किया तो पेपर देना।' मैंने वैसा ही किया और दिलसे आवाज आई कि ऐसा कोई पाप नहीं किया है। बस मैं जी–जान से पढ़ाई में जुट गया और सभी पेपर अच्छे गये और रिजल्ट में ५७ प्रतिशत अंक प्राप्त कर हिन्दी विषय लेकर एम.ए. करनेवाले लगभग ७० विद्यार्थियों में मेरा तीसरा स्थान रहा।

विवाह

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे पढ़ने देरी से बैठाया गया था। कक्षा ११वीं में आते–आते मैं १७ वर्ष का और स्कूल सर्टीफिकेट से १९ वर्ष का हो चुका था। शरीर स्वस्थ था अतः बड़ा लगता था। उस समय विवाह कम उम्र में ही होते थे। मेरे दादाजी की इच्छा थी की पौत्र का विवाह उनके सामने ही हो जाये। मेरे पिताजी भी यही चाहते थे। उस समय समाज की दृष्टि से भी मैं शादी के योग्य हो चुका था। फिर जल्दी शादी होने से परिवार की प्रतिष्ठा भी बढ़ती थी। अतः मेरी सगाई की बातचीत चल रही थी। उस समय अहमदाबाद में गोलालारीय समाज के ४०–५० घर हो चुके थे। स्व. श्री रघुवरदयालजी गोरवालों के भाई स्व. रज्जूलालजी की पत्नी अपनी दोनों बेटियों के साथ श्री महावीरजी के महिलाश्रम में रहकर पढ़तीं थी। उनकी बड़ी भतीजी जिसका नाम मक्खनदेवी था– उनकी सगाई के लिए मेरे पिताजी से मिले। पिताजी इस बारे में बड़े सरल थे। उन्हें इस बात की प्रसन्नता

थी कि महिलाश्रम में पढ़नेवाली जैन संस्कारों की लड़की मिल रही है। वे श्री महावीरजी में लड़की देखने गये। पसंद किया। वहाँ से लौटे तो कोई स्टेशन पर उनके ही जूते पहनकर उनकी पूरी थैली लेकर चंपत हो गया। वे खाली हाथ लौटे। इतना सब होने पर भी मुझसे तो कुछ पूछने का सवाल ही नहीं था। उन दिनों ना तो लड़कों से पूछा जाता था और न ही लड़की देखने की छूट होती थी। मैंने प्रारंभ में हल्का सा विरोध किया। ''अभी मेरी मेट्रिक की परीक्षा नहीं हुई है– मैं शादी नहीं करूँगा।'' यह बात मैंने बुजुर्ग श्री राजधरलालजी से कही.... पर मेरी सुनता कौन था? शादी की तैयारियाँ शुरू हो गईं और फरवरी की शादी तय हो गई। वैसे मेरा ढुलमुलपना भी एवं शादी का मीठा सपना भी इसमें महत्वपूर्ण कारण थे।

बारात इन्दौर गई। उस समय ना तो रेलगाड़ी में रिजर्वेशन होते थे और हम लोग कुली करने में तो मानते ही नहीं थे। इन्दौर के लिए गाड़ी, बड़ौदा और रतलाम बदलनी पड़ती थी। लगभग ४०–५० बाराती थे। सभी सहनशील थे। अपना सामान खुद उठाते। डिब्बो में ठुसने पर बाराती होने का आनंद भी उठाते। खैर... विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह क्या था। मेरे लिए एक नई घटना थी। पिताजी मुझे बच्चा समझते थे। सो उनका आदेश पालन ही सबकुछ था। उन्होंने कहा घोड़े पर बैठ जाओ सो बैठ गये। यह कपड़ा पहन लो सो पहन लिया। उन्होंने मेरे लिए सूट सिलवाया वह भी ससुराल से आये सार्सकीन कपड़े का। पहनने नहीं दिया। क्योंकि वह उन्हें देना था लड़की वालों को द्वार पर देने के लिये। अतः वयोवृद्ध श्री सेतूलालजी के पुराने कोट को ही पहनकर संतोष मानना पड़ा। हाँ टीका के बाद अवश्य नया सूट पहिना। इसी प्रकार टीका में पाँव पखराई में जो भी रू. मिले वे पिताजी ने इसलिए ले लिये की कहीं मेरे पास से गिर न जायें। पिताजी को अपने अरमान पूरे करने थे सो महू का मिलेट्री बेंड मंगवाया। पर घोड़ा समय पर नहीं आ पाया। सो हमारे मामा श्री हीरालालजी साईकिल वाले एक तांगे की मरीयल घोड़ी ले आये उससे काम चला। बारात लौटकर आयी। नागौरी चाल के डेढ़ कमरे के मकान में महेमान खूब थे, जगह कम थी, पर वे सब परेशानियों के बीच भी खुश थे कि उन्हें अहमदाबाद आने का मौका तो मिला।

एक बड़ी दिलचश्प घटना है। सुहाग रात भी एक नई बात थी। अनुभव रहित बात थी। चूँकि पत्नी को उनकी भाभी–बहन आदिने सिखा दिया था कि बिना भेंट लिए समर्पित मत होना। जब वे ज़िद करने लगीं तो हमने भी एक अँगूठी दे दी। सुबह पिताजी ने ऊँगली पर अंगूठी नहीं देखी तो समझे गुम हो गई और लगे कोटमार्शल करने। मैं कहूँ भी तो क्या कहूँ मैं चुप था। पर माँ ने आकर उन्हें समझाया तब वे शान्त हुए।

भयावह दुर्घटना

विवाह के दूसरे ही दिन एक बहुत बड़ी दुर्घटना हुई। जिसकी कल्पना मात्र से सिहरन दौड़ जाती है। विवाह के दूसरे दिन प्रातः नहा–धो कर तैयार हुआ। मंडप खुल रहा था। लाईट का वायर खुला हुआ पड़ा था। मैंने सोचा इसे एक तरफ रख दूँ। बिज़ली और उसके प्रभाव से अनभिज्ञ था। सो उसे छूते ही तीव्रतम करंट लगा। वायर उँगली में घुस गये और मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरी माँ–बुआ सबने यह देखा। वे दौड़कर मुझे छुड़ाने लगीं। चिल्लाने लगीं पर वे भी चिपकने लगीं। तभी बगलमें रहनेवाले पंचमसिंहने यह देखा और दौड़कर जिस पनचक्की से लाईट ली थी (हमारे घर में तो लाईट थी नहीं) उसे एकदम बंद किया। तभी सब छूटे। अच्छा हुआ किसी को कोई खतरा नहीं हुआ। मैं जरुर बेहोश था। शरीर काला सा हो गया था। पूरे घर में शोक का वातावरण छा गया। पिताजी को पता चला तो धबड़ा गये। आखिर एम्ब्यूलेन्स से वाड़ीलाल होस्पीटल ले गये। पर सब नोर्मल था। यह

जानकर सबकी जान में जान आई चार–पाँच दिन आराम करना पड़ा। इस पूरी घटना में दुःखी थी तो नव वधु। वह खुलकर रो भी नहीं सकती थी.....। संकोच जो था। खैर! यह दुःख भी टल गया।

जिंदगी की गाड़ी पुनः रफ्तार से चलने लगी। एक ओर विवाह की खुशी। दूसरी ओर मेट्रिक की परीक्षा की चिंता। आखिर पढ़ने के ध्येय ने विजय प्राप्त की और आठ–दस दिन बाद पुनः पढ़ाई में लग गये। क्योंकि अब परीक्षा के सिर्फ २५ दिन ही बाकी थे।

पत्नी और उनका स्वभाव

मेरी पत्नी जिनकी पसंदगी मेरे पिताजी ने की थी। जैसा कि मैंने जाना मेरी पत्नी अपनी छोटी बहन और माँ के साथ श्री महावीरजी के महिलाश्रम में रहकर अध्ययन करतीं थीं। अध्ययन तो ठीक एक प्रकार से गुजारा करती थीं। जैसाकि मुझे बाद में पता चला मेरे श्वसुर साहब श्री रज्जूलालजी का कम उम्र में देहावसान हो गया था। मेरी सासूजी उस समय पूर्ण युवा थीं, मात्र दो ही पुत्रियाँ थीं। हमारे श्वसुर चार भाई थे। जिनमें सबसे बड़े श्री जालमचंद जी, दूसरे श्री चंद्रभानजी, तीसरे श्री रज्जूलालजी और सबसे छोटे श्री रघुवरदयालजी थे। सबसे बड़े श्वसुर साहब की पुत्री का विवाह प्रसिद्ध संत श्री सहजानंदजी वर्णी से हुआ था। यह मेरा गौरव है कि मुझे उनका साढूभाई होने का गौरव प्राप्त हुआ। रज्जूलालजी की मृत्यु होने के पश्चात मेरी सासू और उनकी दोनों बेटियाँ लगभग अनाथ सी हो गई थीं। मेरी सासुजी यद्यपि निरक्षर थीं पर भविष्य का ख्याल करके पुत्रियों सहित महिलाश्रम में दाखिल हो गईं। उन्होंने श्री महावीरजी एवं इन्दौर के श्राविकाश्रम में रहकर स्वयं अध्ययन किया और दोनों बेटियों का लालन–पालन किया। इस अनाथालय में उन तीनो में ऐसी सहनशक्ति आई कि जैसे सबकुछ सहन करने का उनका स्वभाव बन गया।

सन् १९५६ के फरवरी में मेरा विवाह हुआ और मक्खनदेवी पत्नी बनकर घरमें आईं। प्रथम दिन की दुर्घटना से वे बड़ी दुखी थीं। रोतीं पर मन ही मन। उन्हें यह भय सताता था कि कहीं मुझे या मेरे आगमन को इसका कारण न मान लिया जाय। औरतो में वैसे खुसुर–पुसुर तो हुई भी पर मेरे पिताजी व परिवार के लोगों ने ऐसा कुछ नहीं माना अतः वे एक मानसिक तनाव से बच गईं।

बचपन की परिस्थिति कहो या जन्मजात स्वभाव.... वे सदैव सरल व क्षमाशील रही हैं। कभी भी कोई संघर्ष न करना, किसी से ऊँच–नीच नहीं बोलना, (झगड़े का तो प्रश्न ही नहीं था) बड़ों की आज्ञा मानना उनके संस्कार थे। यही कारण है कि सदैव संयुक्त कुटुंब में रहने पर भी कभी किसी से अनबन नहीं हुई। मेरी माँ थोड़ी कड़क थीं पर पत्नी की सरलता से वे भी उनसे प्रसन्न थीं।

चूँकि मेरा स्वभाव पिताजी की तरह कड़क या यूँ कहूँ कि गुस्सैल था– आज भी है। मैं प्रातः छह बजे से रात दस बजे तक स्वयं कॉलेज जाकर पढ़ने, स्कूल में पढ़ाने एवं ट्यूशन करने में व्यस्त रहता। इस अधिक दौड़धाम से भी स्वभाव में विपरीतता आ रही थी। जो कभी कभार पत्नी पर भी गुस्सा बनकर उतरती । भला–बुरा कहना तो स्वभाव सा हो गया।

मेरे विवाह के समय मेरी बहन सावित्री विवाह योग्य थी। पुष्पा छह–सात वर्ष की थी, महेन्द्र चार वर्ष का एवं सनत डेढ़ वर्ष का था। इन सबकी परवरिश मेरी पत्नी ने भाभी की जगह भाभी माँ की तरह की थी। आजभी सभी भाई–बहन उनकी भाभी से अधिक मातृव्रत इज्जत करते हैं। दोनों भाईयों की शादियाँ कीं। पर कभी किसी देवरानी से कभी भी मनमुटाव नहीं रहा। वास्तव में तो मौन रहकर अपनी पीड़ा को दरगुजर कर उन्होंने हमलोगों

की पूरी सेवा ही की है। मैं निरंतर पढ़ाई में आगे बढ़ रहा था। बी.ए. कर चुका था। एम.ए. कर रहा था। नौकरी में उन्नति हो रही थी, कुछ नई हवा भी लग रही थी, जिससे कभी कभी मेरे मनमें कुविचार आते कि जल्दी विवाह न हुआ होता, बी.ए. के बाद होता तो अपनी पसंद की खूबसूरत लड़की, भरीपूरी ससुराल व सबकुछ अच्छा मिलता। यह हीन भावना कभी–कभी मुझमें वितृष्णा भरती और उसकी सजा जैसे पत्नी ही पाती।

विवाह के पाँच वर्ष तक संतान न हो ऐसा मेरा संकल्प था। क्योंकि छोटी उम्र में विवाह, संतान यह सब प्रगति के अवरोधक होते हैं। पर घर में दूसरे तीसरे वर्ष से ही संतान क्यों नहीं होती इसकी चिंता और दवा शुरू हो गई। खैर! १९६१ में प्रथम पुत्र का जन्म हुआ। १९६४ में द्वितीय पुत्र का एवं १९६५ में पुत्री का जन्म हुआ। १९६७ में पुनः पुत्र का जन्म हुआ। जो विकलांग था और थोड़े ही दिनो में गुजर गया। इस पुत्र के जन्म होते ही मैंने अपने परिवार और सासूजी के घोर विरोध के बावजूद पत्नी का ऑपरेशन करवा दिया। इस समय भी वे तटस्थ ही थीं। ऑपरेशन कराओ तो भी राज़ी, न कराओ तो भी राज़ी। उनका पूरा जीवन मेरे ही सुख की कामना व कर्तव्य में बीता।

नौकरी के सिलसिले में दो वर्ष अमरेली अकेला ही रहा १९६५ में राजकोट व १९६६ में सूरत पत्नी को अवश्य ले गया। बच्चे भी साथ थे। पर मैं उनकी अच्छी परवरिश नहीं कर पा रहा था। आर्थिक तंगी के कारण तथा छोटेभाई महेन्द्र को उज्जैन में डाक्टरी पढ़ाने के खर्च के कारण बच्चों को वह कोई सुविधा नहीं दे सका जो उन्हें बचपन में मिलनी चाहिए। मेरे कड़क, रुक्ष्य स्वभाव के कारण बच्चे कभी खुलकर वह सब नहीं माँग सके जो उन्हें जिद्द करके माँगना चाहिए था। उन्हें बस माँ का वात्सल्य ही सर्वाधिक मिला।

मेरे पूरे जीवन में सही अर्थो में पत्नी ही जीवनसंगिनी रही। यद्यपि उनकी पढ़ाई कम थी पर व्यवहार ज्ञान श्रेष्ठ था। जीवन के विवाह के ५१ वर्ष अर्धशताब्दी निकल गई। शायद परिवार की चिंता, मेरे स्वभाव की कटुता एवं पितृपक्ष की ओर से अवहेलना ने उन्हें डायाबीटीस का मरीज़ बना दिया। पर इस बिमारी को भी वे सहजता से लेती रहीं। दवा खाती रहीं। पर घर कार्य में कभी कोई कोताही नहीं की। स्वयं दवा खाने में व मुझे नियमित दवा देने में कभी भी भूल नहीं की। मैंने सन १९८१ में रीढ़ की हड्डी का ऑपरेशन कराया था तब से आजतक दवा देती हैं और सेवा करती हैं। वे डायाबीटीस के साथ उच्च रक्तचाप एवं हृदय की बीमारी से पीड़ित हैं पर अपनी तबीयत से अधिक मेरा ध्यान रखती हैं। पिछले वर्ष हृदयरोग का आक्रमण हुआ। एन्जोयोग्राफी के पश्चात दो स्टेन डाले गये। पुनः हृदयरोग का आक्रमण हुआ पर सभीकुछ शांति से सहन किया। आजभी पूरी निष्ठा से जितना बनता है उतना काम करती हैं। इस सब आंतरिक शक्ति का कारण उनकी भगवत भक्ति, धर्म में श्रद्धा, बच्चों का प्यार, बहुओं का सद्भाव ही है।

मैं यूँ कह सकता हूँ कि आज मैं जिस मुकाम पर पहुँचा हुँ उसमें मेरे श्रम, कर्म, भाग्य के साथ उनका सर्वाधिक व्यक्तिगत समर्पण महत्वपूर्ण है। वे दीपक की लौ की तरह जलती रहीं, जलन सहती रहीं पर मुझे प्रकाश देती रहीं। मैं आज सोचता हूँ कि मैं उन्हें वह स्नेह नहीं दे पाया जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। पर उन्होंने मुझे वह सबकुछ भरपूर रूप से दिया । आज मेरे जीवन की संध्या में भी उनके स्नेह और प्रेम की लालिमा ही बिखरी है।

बच्चे

जैसाकि मैंने उल्लेख किया मेरे दो लड़के एवं एक लड़की जीवित हैं। प्रारंभ में कुछ दिन बच्चे मेरे साथ रहे। सन् १९६७ में जब मैं सूरत था, बच्चे मेरे साथ थे। एकबार मेरे पिताजी सूरत आये। जब मैं कॉलेज से लौटा तो देखा दोनों बच्चे उनके साथ अहमदाबाद जाने को तैयार थे। मुझे आश्चर्य था..... बच्चे डर रहे थे कि कहीं

मैं उन्हें रोक न लूँ। मैं भी सोचने लगा ठीक है यहाँ मेरी जिम्मेदारी कम हो जायेगी। फिर उन बच्चों को मुझसे मिला ही क्या था? सिवाय नाराजगी के। फिर बच्चे लगभग १९७२ तक मेरे साथ नहीं रहे। उन्हें मेरी माँ (उनकी दादी) से जो स्नेह और प्यार मिला वह सर्वाधिक था। वे जैसे मुझे तो भूल ही गये थे। हाँ माँ की याद अवश्य करते। एकबार बाल नहीं कटाने की जिद में मैंने छोटे बच्चे अशेष को बापगीरी बताते हुए फेंक दिया। बस वह दिन था कि जैसे वह बाल सुलभ जिद्द या सभी माँग करना ही भूल गया। अन्तर्मुखी हो गया। उसके मन में परोक्ष रूप से मेरे प्रति भय या नफरत सदैव बनी रही। शायद अभी भी उसका अंश है। १९७२ में भावनगर में स्थायी होने के बाद बच्चे साथ रहे। वहाँ भी बड़े पुत्र ने ११वीं तथा एक वर्ष सायंस का और एक वर्ष बी.ए.एम.एस. का किया। और छोटे ने १२वीं तक पढ़ाई थी। बाकी दोनों ने अहमदाबाद आकर अपना अध्ययन पूरा किया। बड़े राकेश ने बी.ए.एम.एस. तथा छोटे अशेष ने एम.डी. तक अध्ययन किया।

भावनगर में मैं श्री महावीर जैन विद्यालय में रहता। बच्चों को भावनगर की श्रेष्ठ स्कूल 'घर शाला' एवं 'दक्षिणा मूर्ति' में भरती कराया। रिक्सा में भेजने की आर्थिक सुविधा नहीं थी। पर हमारे चौकीदार दलुभा दरबार अशेष और बेटी अर्चना को साईकल पर छोड़ने और लेने जाते यह क्रम बच्चों के सातवीं कक्षा तक आने तक चलता रहा।

बड़ा पुत्र डॉ. राकेश स्वभाव से कुछ तोफानी, कुछ न कुछ करने की भावना वाला डायनेमीक व्यक्तित्व का है तो छोटा अशेष पढ़ने में विशेष रूचि, काम से काम... बाकी राम..राम...। बड़े पुत्र का विवाह सागर एवं छोटे का विवाह गुना में हुआ। दोनों बहुए एम.ए. पास हैं। सुंदर, सुशील, आज्ञाकारी और संस्कारी हैं। छोटे पुत्र का सुंदर नर्सिंग होम है और उसी में बड़े पुत्रने अपनी निजी प्रेक्टिस बंध करके दवा की दूकान खोल ली है।

दोनों पुत्रों के १–१ पुत्र व १–१ पुत्री हैं।

दोनों पुत्रों के बाद एक पुत्री अर्चना है। वह सदैव मेरे साथ रही। उसने १०वीं के पश्चात मेरे आग्रह पर पोलीटेक्नीक में सेक्रेटीरीयल प्रेक्टिस का तीन वर्ष का डिप्लोमा किया। फिर बी.कोम. और प्रथम एल.एल.बी. तक अध्ययन किया। अभी उसकी उम्र २० वर्ष की ही थी कि हमें दुर्ग में अच्छा मध्यमवर्गीय परिवार जो मेडिकल के व्यवसाय में था– मिला। श्री शाह रतनचंदजी के सुपुत्र श्री रवीन्द्रकुमार के साथ उसका विवाह संपन्न किया। वे आज दुर्ग के अच्छे दवा के व्यापारिओं में माने जाते हैं। मेरी पुत्री सदैव दोनों परिवारों के बीच संस्कारों की सेतु बनी है। कभी उसने ससुराल की बुराई नहीं की उल्टे उनलोगों के सम्मिलित परिवार की एकता के गुणगान गाये हैं। एक योग्य गृहिणी के रूप में प्रसन्न है। उसके १ बेटा १ बेटी है।

अध्यापन कार्य

प्राथमिक शिक्षण

मैं १९५६ में मेट्रिक पास हो गया। जून में रिझल्ट निकला। मैं पास हो गया था। मेरे पास होने पर मेरे काका श्वसुर श्री रघुवरदयालजीने लड्डू बाँटे थे। अहमदाबाद की गोलालारीय समाज में मैं पहला मेट्रिक जो हुआ था। अतः पिताजी उस समय हम सबके पूज्य मान्य बुजुर्ग श्री पं. छोटेलालजी वर्णीजी के पास ले गये। उनके बड़े पुत्र देवेन्द्र कुमार बैंक में थे। उन्होंने कहा बैंक में क्लर्क हो जाओ। नौकरी लग जायेगी। पर मन नहीं माना। सोचा कारकून कौन बने? अतः मैं वहाँ नहीं गया।

एकदिन बैठे–बैठे विचार आया कि चलो मास्टर हो जायें। मज़ा रहेगा। बच्चों पर रोब झाडेंगे। उसी रखियाल

स्कूल में पहुँचा जहाँ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ हेड़मास्टर श्री मन्नालालजी तिवारी से मिला। उन्होंने कहा म्युनिसिपल कोर्पोरेशन जाकर फार्म ले आओ और भर दो। फिर देखा जायेगा। हम तीन चार लड़के फार्म लाये। फार्म का मूल्य था सिर्फ १ आना। फार्म भर दिया। हम सब लड़को में सिर्फ मेरा ही नंबर लगा। साधारण इन्टरव्यू हुआ। ४–१०–१९५६ को दो महिने की अवेजी (बदली) पर रायपुर हिन्दी स्कूल में अध्यापकके रूप में नियुक्ति हुई। उस समय कुल वेतन ७२ रू. प्रतिमाह मिलता था। इस नौकरी से सभी खुश थे। परिवार या यों कहें समाज खुश था कि उसका एक लड़का मास्टर जो बन गया था। मेरे ऊपर पढ़े–लिखे होने का लेबल लग गया। उस समय हिन्दी स्कूल में अध्यापक को पंडितजी कहा जाता था। अतः अब मैं पंडितजी हो गया था।

जीवन की गाड़ी चलने लगी। अध्यापक हो ही गया। दो महिने पूर्ण होने से पूर्व ही प्रोबेशन पर नियुक्ति हो गई। स्कूल था बहेरामपुरा हिन्दी स्कूल। अति संक्षेप में यहाँ का भी परिचय देना उपयुक्त लगता है। रायपुर में कक्षा ७ तक की स्कूल थी। कक्षा ७ में लगभग १३ से १५ वर्ष की आयु के लड़के–लड़कियाँ होते। १४–१५ वर्ष की लड़की अर्थात् मुग्धावस्था। सीधी सरल। अध्यापक उनके लिए देवता के समान। सभी बच्चे अध्यापक से घुल–मिल जाने की होड़ सी लगाते। लड़कियाँ विशेष रूप से। फिर हम जैसे १८–१९ वर्ष के युवा अध्यापकों की ओर उनका आकर्षण स्वाभाविक रहता। इससे हमारे हेड़ मास्टर श्री त्रिभुवनदास विंदेश्वरीप्रसाद चौहान सदैव सतर्क रहते। बेचारे जासूसी भी करते और चेताते भी रहते। हम नये अध्यापक उन्हें मूर्ख भी बनाते रहते। प्राथमिक शाला के बड़े ही रसप्रद किस्से रहे। वेतन कुछ नहीं था पर साहबी पूरी थी। मास्टरी का यही सुख बादशाह शाहजहाँ समझे थे तभी तो औरंगजेब की कैद में भी उन्होंने काम के प्रकार में मास्टरी ही चाही थी।

बहेरामपुरा में आचार्य थे श्री गुरूदयालजी यादव। सरल हितचिंतक। उनकी सरलता का दुरुपयोग भी लोग करते। वे नये अध्यापकों को आगे पढ़ने में सदैव मदद करते। कभी तो वे अध्यापकों के पीरिडय स्वयं लेते और उन्हें पढ़ने की सुविधा देते। मुझे भी ऐसी ही सुविधा देते रहे। मेरी मेट्रिक से बी.ए. की कहानी भी संघर्षों की कहानी रही है। मैं नागौरी चाल से प्रातः ६.३० बजे टिफिन लेकर साईकल से सैंट जेवियर्स कॉलेज जाता जो घर से कम से कम १० मील दूर था। मेरे साथ ही चाली में रहनेवाले श्री ब्रह्मानंद त्रिपाठी जाते। लगभग ५० मिनिट साईकल चलाते और ठीक ७.१५ पर कॉलेज पहुँचते। यद्यपि उन दिनों ट्राफिक बहुत कम था। स्कुटर इक्के–दुक्के थे। कार तो गिने चुने सेठों के ही पास थी। अतः रास्ते भीड़–भाड़ वाले नहीं थे। वहाँ से ९.३० बजे निकलकर काँकरिया के पास फुटबाल ग्राउन्ड के पीछे जो बगीचा बन रहा था वहाँ बैठकर टिफिन का खाना खाते और बेहरामपुरा हिन्दी स्कूल में पहुँच जाते। वहाँ पाँच बजे तक नौकरी करते फिर जगदीश मंदिर में एक ट्यूशन करते। शाम ७ बजे तक घर आ पाते। यहाँ पाँच–छह लड़के ट्यूशन को आते। खाना खाकर उन्हें पढ़ाते एवं रात्रि को बिजली के खंभे के नीचे बैठकर पढ़ाई करते। इसी प्राथमिक शाला में नौकरी करने के दौरान एक धुन सवार हुई कि क्यों न पुस्तकों और स्टेशनरी का व्यापार किया जाय। सो चाली के ही बाहर के बरंडे में पार्टीसन करके स्टेशनरी व पुस्तकों की दुकान की। दुकान ठीकठाक चली पर नौकरी के कारण दुकान पर अच्छी तरह ध्यान न दे सका। और आखिर घाटा उठाकर उसे बंद कर देना पड़ा।

अध्यापक की इस नौकरी में पैसा तो कम मिलता था। पर रोब झाड़ना अच्छा लगता था। रही बात पढ़ाने की सो वह तो चलता ही रहता था। समस्या थी बच्चों को पढ़ाने के साथ स्वयं पढ़ने की। इस कारण कई बार बच्चों के साथ पूर्ण न्याय नहीं हो पाता था। मैं अधिकांशतः कक्षा ३ का अध्यापक होना पसंद करता था। क्योंकि बच्चे थोड़े से बड़े होते थे। लेखनकार्य कम होता था और जिम्मेदारी भी कम होती थी। हमारे हेड़मास्टर जानते थे कि

मैं स्वयं पढ़ रहा हूँ अतः ऐसी कक्षा देकर मदद भी करते थे।

इसी दौरान म्यु.कोर्पोरेशन की ओर से कक्षा १ से ४ तक के विद्यार्थियों को दूध देने की योजना प्रारंभ हुई। प्रत्येक बालक को १०० ग्राम के हिसाब से दूध आता था। दूध भी बहुत अच्छा। ६–७ फेट का होता था। बच्चों को तो दूध मिलता ही था पर अध्यापक अधिक तंदुरस्त हो रहे थे। एक तपेली प्राईमस पर चढ़ी रहती और उसमें चार पाँचसो ग्राम दूध गरम होता रहता। अध्यापक बारी–बारी से जाते और स्वयं दुग्धानुपान कर पुनः तपेली में दूध डाल आते। बच्चों को ८०–९० ग्राम से अधिक दूध मिल ही नहीं पाता क्योंकि सभी अध्यापक दूध पीने के बाद दो–चार लीटर दूध जमा देते और बारी–बारी से दूसरे दिन दहीं खाकर सगुन करते। सो हमारा स्वास्थ्य भी बन रहा था और पढ़ाई के लिए दिमाग भी स्वस्थ रहता था। हम विद्यार्थियों को अपनी सेवा करने का पूरा मौका देते थे।

एक मजेदार बात और। वार्षिक परीक्षा होती थी। हमीं लोग भाग्यविधाता होते थे। बच्चों के माँ–बाप से प्रेम से पास कराई व मिठाई निःसंकोच माँग लेते थे। क्योंकि प्रेम में शरम कैसी? परीक्षा से लेकर रिज़ल्ट तक पूरा घर और कभी–कभी पड़ौसी भी मिठाई खाकर आशीष देते थे। जब पालक रिजल्ट लेने आते और उनका बच्चा पास होता तो हम लोग उसे धन्यवाद देते और बदले में दहीं की लस्सी और पेड़े खाकर आशीर्वाद भी देते।

इसप्रकार बी.ए. की पढ़ाई तक गाड़ी सरकती रही। और डीग्री भी प्राप्त हुई ओनर्स के साथ। इधर बी.ए. हुए उधर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। एक साथ दो–दो खुशियाँ। पर वेतन अभी कुल ७२ रू. से बढ़कर पाँच वर्षो में ८२ रू. ही हुआ था। हम जैसे निम्न मध्यमवर्गीय लोगों के यहाँ संतान प्राप्ति भगवान की कृपा होती है और गरीबी भाग्य का ही कारण होती है।

हाईस्कूल

१९६१ में बी.ए. हुआ। भावना थी की अब किसी हाईस्कूल में स्थान प्राप्त करूँ। उस समय ट्रेन्ड होना अनिवार्य नहीं था। चूँकि बी.ए. में द्वितीय श्रेणी प्राप्त की थी। स्वामिनारायण कॉलेज में हमारे विभागाध्यक्ष प्रो. लोधाजी से चर्चा की कि किसी अच्छी हाईस्कूल में जगह दिलवा दें। वे हमारे अध्यापक ही नहीं शुभचिंतक भी थे। भाग्य से स्वामिनारायण कॉलेज में ही मनोविज्ञान विभाग की अध्यक्षा थीं श्रीमती डॉ. लीलाबहन शाह। वे प्रतिष्ठित घराने से थीं। वे शहर के उत्तम महिला हाईस्कूल 'आर.बी.एम.के. गर्ल्स हाईस्कूल' की सेक्रेटरी भी थीं। श्री लोधाजीने उनसे सिफारिश की। बहन ने मेरे प्रति सद्भाव दर्शाते हुए मुझे बिना अर्जी के ही साक्षात्कार के लिए बुलवाया। इसी स्कूल में मेरे मित्र, सहपाठी श्री जगदीश शुक्ल पहले से ही अध्यापक थे। उनका भी पूरा सहयोग था। अनेक प्रश्न आचार्या रमाबहन जानी ने पूछे और मैं सभी में उत्तीर्ण रहा। आखिर मुझे वहाँ का आदेश प्राप्त हो गया और १५ जून १९६१ में मैंने इस नई जगह पर काम करने का प्रारंभ किया। वेतन था १७७ रू. प्रति माह।

कन्याओं की इस हाईस्कूल में मुझे सीधे कक्षा १० का वर्गशिक्षक नियुक्त किया गया। यह अहमदाबाद की श्रेष्ठ कन्याशाला मानी जाती थी। शहर में अधिकांशतः उच्च वर्ग के, उच्च मध्यमवर्ग की लड़कियाँ पढ़ती थीं। प्रारंभ में मुझे बड़ा संकोच भी होता था। मेरी उम्र २३–२४ वर्ष की थी और लड़कियाँ भी १६ से १८ वर्ष की उम्र की बीच की होती थीं। अतः कभी–कभी झेंप सी लगती। सविशेष उस समय जब कोई प्रेमगीत या कविता या कहानी पढ़ानी हो। पर धीरे–धीरे झिझक दूर हो गई। स्कूल में मैं सबसे कम उम्र का अध्यापक था। हिन्दी अच्छी बोलता था। नाटक व कविता लिखने की की भूमिका अंतर में थी ही, अतः लड़कियों में लोकप्रिय भी हुआ। इससे अनेक पुरानी अध्यापिकाओं के मनमें खटकने भी लगा। अनेक जैन लड़कियाँ मेरे जैन होने से

अधिक वात्सल्यभाव भी रखती थीं। आचार्या रमाबहन ने अनेक ऐसे काम मुझे सौंपे जिसमें लड़कियों से अधिकाधिक संपर्क बढ़े। जैसे वार्षिक दिन पर ग्रीनरूम की ड्युटी या पर्यटन में साथ–साथ जाना वगैरह... शायद वे परोक्ष रूप से मेरा निरीक्षण ही कर रहीं थी। पर मैं सर्वत्र उत्तीर्ण हुआ।

कॉलेज अध्यापक

इसी दौरान मैं इस अध्यापन कार्य के साथ साथ एम.ए. का अध्ययन भी सेंट जेवियर्स कॉलेज में कर रहा था। १९६३ में मैं एम.ए. की परीक्षा दे चुका था। रिज़ल्ट आना बाकी था। रिज़ल्ट यथासमय आये यह जरूरी था। क्योंकि यहाँ गुजरात युनिवर्सिटी में रिज़ल्ट बड़ी देरी से आते थे और तब तक कॉलेजो में नियुक्तियाँ हो जाती थीं। अतः हम लोगों ने तत्कालीन कुलपति साक्षर श्री उमाशंकरजी जोषी के समक्ष अपने प्रश्न रखे। इसके अन्य कारण भी थे। एक तो यहाँ कॉलेजो में हिन्दी विभाग में प्रायः उत्तर भारत के प्राध्यापक थे जो विभागो में अपने रिश्तेदारों या संबंधियों को बुलाते थे। हमारी लड़ाई इस बात की थी कि यदि हिन्दी के स्थान बाहर वालों से ही भरने हैं तो हम लोगों को यहाँ हिन्दी से एम.ए. क्यों करवाते हो? गुजरात में पहले हम लोगों को मौका मिलना चाहिए। हमारी बात कुलपतिजी को समझ में आई और इस वर्ष रिज़ल्ट कॉलेजें प्रारंभ होने से पहले घोषित हुए।

मेरे मनमें जब में प्राथमिक शिक्षक था तभी से यह भाव थे के कि मैं कॉलेज में प्रोफेसर बनूँ। एम.ए. की परीक्षा देने के बाद वह भाव अधिक लहलहा उठे। कॉलेज में पढ़ाना एक स्वप्न ही था। पर मेरी पहले से ही आदत रही है कि यदि कोई संकल्प करूँ तो उसे पूरा करने के हर प्रयत्न करूँ। यद्यपि अभी एम.ए. का रिजल्ट आना बाकी था, मुझे पता चला कि अमरेली सौराष्ट्र में प्रतापराय आर्ट्स कॉलेज में हिन्दी के व्याख्याता का स्थान खाली है। योग्यता में एम.ए. द्वितीय श्रेणी पास होना जरूरी था। बड़ी कश्मकश हो रही थी। तभी एक दिन विचार आया क्यों न कॉलेज के अध्यक्ष एवं मंत्रीजी से मिला जाय। पता चला कि कॉलेज के अध्यक्ष हैं गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री डॉ. जीवराज महेता। एवं मंत्री हैं तत्कालीन गुजरात राज्य सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री राघवजीभाई लेऊवा। इतनी बड़ी हस्तियाँ उनसे मिलूँ तो कैसे मिलूँ? कोई परिचय तो था नहीं। कोई सिफारिश भी नहीं थी। फिर हम चाली में रहनेवाले निम्न मध्यमवर्गीय लोगों को जानता भी कौन था! अभी यह मानसिक परेशानी चल रही थी कि अंतर में एक स्फुरणा हुई कि चलो खुद चलकर मिलें जो होना होगा देखा जायेगा। एकदिन शाम को खोजते–खोजते श्री लेऊवाजी के सरकारी आवास पर पहुँचा। एक बुजुर्ग धोती बनियान पहने लॉन में कुर्सी पर बैठे थे। मैंने उन्हीं से पूछा 'राघवजीभाई लेऊवा साहब कौन हैं?' वे कुछ क्षण मुझे देखते रहे फिर बोले 'क्या काम है?' मैंने कहा 'काम उन्हीं से है।' तब वे बोले 'बोलो मैं ही राघवजीभाई हूँ।' मैं सकपका गया। हड़बड़ाहट में नमस्ते की और खड़ा हो गया। वे बोले 'बैठो क्या काम है?' मैंने कहा 'सर! मैंने एम.ए. की परीक्षा दी है। मैं निश्चित रूप से अच्छे अंक पाऊँगा। मैंने अमरेली कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक के लिए आवेदन दिया है। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे मौका दें। सर! यह भी जान लें कि मैं गरीब घर से हूँ। मेरे पास कोई परिचय भी नहीं है कि आपसे कहलवाऊँ। मेरे पास सिर्फ मेरी डिग्री होगी और मैं।'' एक ही श्वास में सबकुछ बोलकर चुप हो गया।

इस दौरान वे मेरे मुख को देखकर मेरी बातें ध्यान से सुन रहे थे। बोले 'ठीक है। पर हमारे पास एम.ए. कर चुकने वाले उच्च श्रेणी वाले पास व्यक्तियों की अर्जियाँ हैं। तुम्हारा तो रिजल्ट ही नहीं आया पर कोई बात नहीं। हम इन्टरव्यू तब रखेंगे जब रिजल्ट आ जाये तो आना।' रिजल्ट आने के पश्चात मैं उनके घर पहुँचा तो उन्होंने कहा परसों शाम को आ जाना। पर मुझे चैन कहा था। मैं सुबह ही पहुँच गया। तो उन्होंने कहा 'मैंने शाम को आने को कहा है।' मैं लौट आया। मन में लगा जाने क्या होगा। शाम को उनके घर पहुँचा। वे ओफिस से आये

और सीधे अपने कक्ष में चले गये। मुझसे बात तक नहीं की। मैं डर गया। क्या नाराज़ हैं। मैं भी बाहर बैठा रहा। घंटे भर बाद वे बाहर आये और मुझे अपने हाथ से लिखा एपाईन्टमेन्ट लेटर देकर बोले, ''जाओ अमरेली पहुँच जावो।'' मैं तो भौचक्का रह गया। कोई इन्टरव्यू नहीं। बस वे प्रभावित थे मेरी प्रथम दिन की मुलाकात और मेरी स्पष्टवादिता से। मेरी खुशियों का ठिकाना नहीं था। स्वप्न सच जो हो रहा था। पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया और आशीर्वाद लेकर घर चला आया। यह समाचार घर पर और मित्रों को सुनाने को मन उमड़ रहा था। जब यह समाचार लोगों को दिया तो उनकी बधाई और आशीर्वाद प्राप्त हुए। अपनी बेच के उत्तीर्ण छात्रों में मैं ही ऐसा था जिसे पूर्णकालीन व्याख्याता का पद प्राप्त हुआ था।

जीवन में पहली बार नौकरी के लिए अहमदाबाद व परिवार से दूर जाना था। एकबार १९५२ में पिताजी की इच्छा से दूर खुरई पढ़ने गया था सो भाग आया था। पर अब तो आजीविका और कैरियर का प्रश्न था।

१४ जून १९६३ को अहमदाबाद से दूर सौराष्ट्र के सुदूर अमरेली के लिये प्रयाण किया। इसी ट्रेन में मेरी तरह फिजिक्स, राजनीतिशास्त्र में जिन युवाओं को एपोइन्टमेन्ट मिला था वे भी मेरे साथ थे। दिनांक १५ जून १९६३ को प्रातः अमरेली पहुँचे और सबसे पहले पथिकाश्रम (पंचायत की धर्मशाला) में पहुँचे। कमरा लिया। घर से लाया नास्ता किया और ११ बजे कॉलेज पहुँचे।

अमरेली सौराष्ट्र का जिला कक्षा का शहर है। अभी शहर बनने की ओर प्रयाण हो रहा था। श्री प्रतापराय सेठ और श्री कामानी ग्रुप के दान से स्टेशन के पास विशाल भूमि पर 'श्री प्रतापराय आर्ट्स एण्ड कामानी सायंस कॉलेज' का भवन निर्माण हो रहा था। कक्षाओं में आधुनिक कुर्सी की बैठके बनीं थीं। यहाँ आचार्य थे श्री कपिलभाई दवे गणित के जानेमाने विद्वान। अहमदाबाद के ही निवासी। पुराने स्टाफ में अहमदाबाद निवासी श्री जे.के. पटेल राजनीति शास्त्र के अध्यापक थे। अर्थशास्त्र में थे डॉ. बी.एच. जोषी, अंग्रेजी में श्री त्रिवेदी जो नागपुर से अध्ययन करके आये थे। इसके उपरांत संस्कृत में मेरे ही अध्यापक श्री शास्त्रीजी जो अहमदाबाद के थे और मनोविज्ञान में थीं कु. अनंताबेन शुक्ल।

हमारे साथ आये व्याख्याताओं में फिजिक्स में श्री शाह, बोटनी में श्री हीराभाई शाह जो स्थानिक म्युज़ियम के क्युरेटर भी थे। और भी अन्य मित्र नये नियुक्त हुए थे। अध्यापकों ने हमें बड़ा ही सहयोग दिया।

कॉलेज का समय दोपहर १२ से ४ था। अतः प्रातः लगभग फ्री होते थे। नए--नए एम.ए. हुए थे। पढ़ाई से थके हुए थे, नए व्याख्याता थे। गाँव नया था और गाँव में कॉलेज के व्याख्याता का रोब भी खूब होता था। उसी आनंद को लेते थे। रोज़ शाम कॉलेज से छूटकर सात--आठ मित्र मकान खोजने निकलते और शाम टावर के पास निब्बू सोड़ा पीते और रात्रि में लॉज में खाकर सो जाते। लगभग एक सप्ताह के पश्चात हमें शहर में ही टावर के पास श्री कानाबार वकील साहब के मकान के ऊपर के दो कमरे फर्निचर के साथ मात्र ३१ रू. महिने में प्राप्त हुए।

यहाँ भोजन की समस्या थी। मैंने कभी होटल में खाना नहीं खाया था। अतः अहमदाबाद से ही एक पेटीमें रसोई का सारा सामान, मसाले आदि लेकर आया और रोज़ प्राईमस पर खाना पकाता। दाल--भात तो रोज बनाना कठिन था और हमारे लिए दाल--भात किसी लक्ज़री भोजन से कम नहीं थे। रोज़ प्रातः सब्जी रोटी या परोंठे बनाता और सुबह ही इतना बना लेता कि शाम की झंझट से बच जाता। आवश्यकता पड़ने पर शाम को सब्जी बना लेता। वैसे शाम का भोजन बनाना अनियमित ही था। अधिकांशतः शाम को तो मेरे जैसे स्वयंपाकी मित्र के यहाँ खा लेते थे या फिर लोज़ जिन्दाबाद। लोज़ का चार्ज भी दोनों टाईम भोजन का कुल ३० रू. मासिक होता था।

उस समय गुजरात विधानसभा में श्री राघवजीभाई लेऊवा स्पीकर बन चुके थे। उनके छोटेभाई प्रेमजीभाई

लेऊवा मेरे अच्छे मित्र बन गये थे। वे स्वयं विधायक थे। वे भी मेरे घर आकर कभी–कभी मेरे बनाये परोठों का स्वाद लेते।

कॉलेज में सह शिक्षण था। लड़के–लड़कियाँ भी यौवन की देहरी लाँघ रहे थे। मैं भी २४–२५ वर्ष का ही था। अतः विद्यार्थियों से मैत्रिक भावना अधिक बनी। साहित्य का अध्यापक, कविता कहानी, लिखने का शौक, वाणी की वाचालता से मात्र हिन्दी विभाग में ही नहीं पूरे कॉलेज में मेरा प्रभाव बढ़ रहा था। मेरे साथ सायंस विभाग में फिजिक्स के ट्यूटर श्री मौलेश मारू जो अभी २२ वर्ष के ही थे। अत्यंत खूबसूरत, आकर्षक व्यक्तित्व, संगीत के शौखीन एवं अच्छे बंसरी वादक थे। वे अविवाहित थे। अतः कन्याओं के आकर्षण के केन्द्र भी थे। हम लोग दत्त निवास में एक ही कमरे में रहते और उम्र के अनुसार लड़के–लड़कियों की बातें रूचि पूर्वक करते।

अमरेली कॉलेज में एक बड़ी विचित्र घटना मेरे साथ घटी। जिसका आज भी चित्रवत स्मरण है। एक लड़की दुर्गा खेतानी बड़ी ही चुलबुली.... खुबसूरत लगभग २० वर्ष की किशोरी। वह शायद सेकण्ड बी.ए. में थी। एक दिन उसे कुछ मस्ती सूझी। मेरी साईकल से वालट्यूब निकालकर हवा निकाल ली। चार बजे जब घर जाने का समय आया तो साइकल पंचर थी। परेशान था। तभी दुर्गा हँसती हुई आई और मज़ाक सा करने लगी। मैंने अनुमान लगाया कि यह कारस्तानी इसीकी है। थोड़ा डाँटकर पूछा तो उसने इस शरारत का स्वीकार किया। मैंने उससे कहा ऐसी शरारत ठीक नहीं। पर अभी भी वह मस्ती में ही थी। तब मैंने कहा 'दुर्गा जानती हो लोग क्या कहेंगे? लोग कहेंगे कि दुर्गा ने जैन साहब की साईकल की हवा क्यों निकाली..... कहीं कुछ.....' बस वह भी गंभीर हो गई मैंने कहा 'अब तुम्हे एक ही सजा है कि साईकल को पैदल लगभग दो फर्लांग ले जाओ और हवा भराकर लाओ।' उसने ऐसा ही किया। बात आई–गई हो गई। पर दो वर्ष मैं वहाँ रहा उससे व उसके परिवार से बड़े ही पारिवारिक संबंध रहे। दुर्गा भोली थी। खेल–कूद में सांस्कृतिक कार्यक्रमोमें रूचिपूर्वक भाग लेती थी। एकबार वह गिर पड़ी। कमर में चोट आई। मैं देखने गया तो शेंक कर रही थी। मैंने कहा 'देखा मुझे सताने का फल मिल गया।' मेरे इस वाक्य को सुनकर इस पीड़ा में भी वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

मुझे कॉलेज में नाटक आदि सांस्कृतिक विभाग सौंपा गया। वार्षिकोत्सव में मैं लड़कों को तैयार कराता। युवक महोत्सव का इन्चार्ज बनाया गया और मित्रों की मदद एवं छात्र–छात्राओं के अपूर्व सहयोग से कार्यक्रम बड़ा ही सफल रहा। हम सब युवा अध्यापकों के कार्य पर बुजुर्ग अध्यापकों की नज़रे तो रहती ही थीं।

एक प्रसंग मुझे और याद है जो तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. जीवराज महेता के व्यक्तित्व से संबंधित है। एकबार डॉ. जीवराज महेता जो कॉलेज के अध्यक्ष भी थे– कॉलेज पधारे। हमारे आचार्य श्री दवे साहब अपनी कुर्सी से खड़े हो गए और श्री महेताजी को बैठने का विनय किया। डॉ. मेहता साहब बड़ी नम्रता से टेबल के सामने बैठे और कहा 'प्रिन्सीपाल साहब यह आपकी कुर्सी है और आप यहाँ के मुखिया हैं। इस कुर्सी पर बैठने का मेरा अधिकार नहीं।' ऐसी नम्रता और विवेक था डॉ. जीवराज महेता का।

राजकोट में

१९६५ में राजकोट में नये कॉलेज का प्रारंभ हुआ था और उसमें हिन्दी के अध्यापक हेतु विज्ञापन प्रकाशित हुआ था। अमरेली जो सौराष्ट्र से सुदूर कोने में था उसके स्थान पर राजकोट जो सौराष्ट्र की राजधानी था– विकसित औद्योगिक शहर था – वहाँ जाने का मन बनाया। मैंने अर्जी की, इन्टरव्यू हुआ और एक इजाफे के साथ पसंद भी हो गया। अमरेली कॉलेज में त्यागपत्र भेजा और १५ जून १९६५ को राजकोट आ गया।

राजकोट बड़ा शहर, औद्योगिक विकास की ओर कदम बढ़ाता शहर। धर्मेन्द्रसिंह आर्ट्स कॉलेज जैसा बड़ा

सरकारी कॉलेज। यहाँ मकान की समस्या तो थी ही। यहीं परिचय हुआ धर्मेन्द्रसिंहजी कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. सुदर्शन मजीठियाजी एवं विभाग के अध्यापक श्री घनश्याम अग्रवाल, साथ ही समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष श्री निर्भयरामजी पंड्या के साथ। अच्छी दोस्ती हुई और एक मकान जागनाथ प्लॉट में ढूँढा। जहाँ मैं, डॉ. मजीठीया और निर्भयराम रहने लगे। दोपहर में बाहर से टिफिन मंगाते और सब लोग मिलकर खाना खाते। बाद में मैंने प्रहलाद प्लोट में अलग से मकान लिया और पत्नी तथा चार वर्ष के पुत्र राकेश के साथ वहाँ रहने चला गया।

यहाँ राजकोट में डॉ. इन्दुभाई व्यास जो प्रायः सभी कॉलेजों के अध्यापकों के गोड़फाधर या मार्गदर्शक थे। उनके यहाँ रोगियों से अधिक प्राध्यापक ही आते थे। शाम को जैसे उनका दवाखाना सेनेट हॉल बन जाता। कॉलेज के चुनाव, सेनेट के चुनाव सबकी रूपरेखा यहीं बनती। लगता जैसे यह दवाखाना नहीं, शैक्षणिक गतिविधियों का केन्द्र है। डॉ. मजीठीया आदि के कारण मैं भी उनके दरबार का अंग बन गया। डॉ. इतने भले थे कि किसीके भी सुख–दुःख में तन–मन–धन से सहायक होते। मेरे तो वे जैसे गार्जियन ही बन गये थे। घर पर सामान से लेकर दवा आदि वे वैसे ही करते थे जैसे कोई अपने छोटे भाई के परिवार की मदद करता हो। मुझे उनका बड़ा सहारा था।

हमारे कॉलेज का अभी नामकरण नहीं हुआ था। मात्र आर्ट्स कॉलेज नाम था। बाद में इसका नाम दाता के नाम पर वीराणी आर्ट्स कॉलेज हुआ। यह कॉलेज उस समय राष्ट्रीय शाला के मकान में सुबह ७ से ११ तक लगता था। इसके आचार्य थे श्री हरसुखभाई संघवी जो राजकोट के माने हुए कानून के अध्यापक एवं रोटरी क्लब के अध्यक्ष थे। पक्के खादीवादी थे। कॉलेज में खादी पहनना उन्होंने अनिवार्य किया था। इतना ही नहीं संघवी साहब वर्ष में एकदिन सभी को सर्व धर्म के स्थानों की वंदना हेतु ले जाते। वह भी बिना जूता–चप्पल पहने। यह भी एक मनोतरंग थी उनकी। उनका स्वभाव तानाशाह जैसा था। वे अध्यापकों का उचित सन्मान भी नहीं कर पाते। कान के कच्चे होने से अपने दो–तीन कथित विश्वसनीय अध्यापकों की बात ही मानते। और दूसरे अध्यापकों पर जासूसी कराते। हम चार–पाँच नये लोग, नई उम्रके लोग अच्छे मित्र थे। वह उन्हें नहीं सुहाता था। उन्हें सदैव यही लगता था कि हम उनके विरुद्ध कुछ प्लान बना रहे हैं।

मज़ाक जो भारी पड़ा

एकबार अपनी मज़ाकिया आदत के कारण मैंने कॉमन रूम में कहा कि 'खादी पहनने से बड़ा फायदा है। यदि कोई काम न हो तो बैठे–बैठे खादी के छूछने निकालते रहो।' इस बात को उनके चमचों ने मिर्च मसाला लगाकर संघवी साहब से की। परिणाम हुआ १५ मार्च को मुझे सेवा से मुक्त कर दिया गया। उस समय प्राईवेट कॉलेजो में १५ मार्च को किस पर गाज गिरेगी इसका भय रहता था। सविशेष तो प्रोबेशन पर नियुक्त होनेवाले अध्यापकों को होता था। सरकार में कोई सुनवाई नहीं थी। अतः संघवी साहब की कृपा से मैं १५ मार्च को पुनः बेकार हो गया। मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने उनकी उस नोटिस को उन्हीं की चैम्बर में जाकर फाड़ा और कहा कि इसे अपनी..... में डाल देना। वातावरण बड़ा तंग हो गया। बेचारे साथी अध्यापक मित्र भी डरे हुए थे। उन्होंने अलग एक होटेल में छिपकर मुझे बिदाई दी। मैंने उस समय प्रिन्सिपल से कहा था कि "यदि एक बाप का होऊँगा तो १५ जून से पूर्व तुझे तीन ओर्डर बता दूँगा।" पर कैसे ओर्डर पाऊँ यह भय लगा। पर शुभकर्मो ने मदद की। मेरे अमरेली के साथी मित्र डॉ. जोषी साहब कपडवंज में प्राचार्य हो चुके थे। मैंने उनसे बात की। उन्होंने कुछ ही दिनों में कपड़वंज कॉलेज की नियुक्ति का नियुक्ति पत्र दिया। उसी समय सूरत से भी इन्टरव्यू कॉल आया। सूरत

खूबसूरत जगह। इस इन्टरव्यू में सफल भी रहा और उसी समय भावनगर के पास महुवा कॉलेज का इन्टरव्यू कॉल भी आया। चूँकि मैं वहाँ गया ही नहीं। भगवान ने मेरी तीन जगह की बात जैसे पूरी की।

मेरे मन में दुविधा थी कि कपड़वंज जाऊँ या सूरत रहूँ। जोषी साहब के एहसान से दबा था। मेरा मन सूरत के लिए मचल रहा था। आखिर मैंने जोषीजी से पूरी बात की। उन्होंने सरलता से सूरत जाने की सम्मति दी। इस तरह सूरत के नवयुग कॉलेज जो इसी वर्ष प्रारंभ हो रहा था। उसमें नियुक्ति हो गई और १४ जून १९६६ को सूरत पहुँचा।

यहाँ एक छोटा सा प्रसंग लिखना आवश्यक लगता है। १९६६ में जब मैं राजकोट था उस समय पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ गया था। जामनगर पर बंबमारी हुई थी। लोगों में अफरा–तफरी मचने लगी। वैसे भी हम गुजरात के लोग धबड़ाते जल्दी हैं। पर गुजरात सरहदी राज्य होने से निड़र भी बने रहते हैं। राजकोट के अनेक लोग अपने गाँव जाने लगे। मुझे भी अहमदाबाद से बार–बार लौटने के फोन आते। पर मैंने यही कहा कि यह विज्ञान का युग है। यह बंब अहमदाबाद पर भी गिर सकता है। अतः मैं वहीं रहा। रात्रि के अंधकार पट का भी एक रोमांचक अनुभव होता है जो वह यहाँ पर प्राप्त हुआ। दिनरात रेड़ियों से गरमा–गरम खबरें सुनते। हमारे बहादुर सैनिकों के कारनामे हम में भी उत्साह भरते। इसी समय मैंने प्रधानमंत्री स्व. श्री लालबहादुर शास्त्री के आह्वान पर एक वर्ष के लिए चावल खाना छोड़ दिया।

सूरत में

सूरत आने से पूर्व जब मैं इन्टरव्यू के लिए आया था उस समय 'जैन मित्र' साप्ताहिक में श्री मूलचंदजी कापड़िया के साथ पं. ज्ञानचंद जैन स्वतंत्र संपादन का कार्य करते थे। उन्हीं के पास रुका था। मैं जब १४ जून को सूरत पहुँचा तो पता चला कि स्वतंत्रजी जैनमित्र से त्यागपत्र देकर कल ही अपने वतन बासौदा जा रहे हैं। उन्हें सभीने खूब समझाया पर वे न माने। या यों कहूँ कि सूरत में उनका अंतिम दिन और मेरा पहला दिन था। हालाँकि बाद में उनसे मिलने पर और अन्य लोगों से सुनने पर पता चला कि सूरत छोड़कर उन्हें पछतावा हुआ। जिस भावना से वे बासौदा आये थे। वह पूरी न हो सकी। उल्टे बच्चे जो अंग्रेजी मीडियम से अच्छी तरह पढ़ाई कर रहे थे– होनहार थे – उनको भारी नुकशान हुआ।

सूरत में नवयुग आर्ट्स एन्ड सायन्स कॉलेज का इसी वर्ष प्रारँभ हुआ था। सूरत शहर से तापी नदी के उस पार रांदेर रोड़ पर निजी भवन में कॉलेज का प्रारंभ हुआ था। उस समय तापी नदी और रांदेर के लगभग ७–८ कि.मी. तक के रास्ते में एकमात्र यही बिल्डींग थी। बाकी पूरे खेत या जंगल था। वातावरण बड़ा ही रमणीय एवं प्राकृतिक था। श्री दिनकरभाई वशी साहब इसके ट्रस्टी और प्राचार्य थे। वे गणित के जानेमाने विद्वान थे। शिस्त के चुस्त पालक थे। वे थोड़े से तानाशाह भी थे। पर व्यवस्था बड़ी ही उत्तम रखते थे। नया कॉलेज होने से सभी लोग नये थे अतः मैत्री भी जल्दी हो गई। यहाँ स्टाफ में अंग्रेजी विभाग में प्रसिद्ध नाटककार डॉ. ज्योति वैद्य और अभिनेता संजीव कुमार के चचेरेभाई प्रो. जरीवाला थे। यहाँ हेडक्लार्क में मि. संपत थे जो वशी साहब के रिश्तेदार थे। उनका वर्चस्व कॉलेज में आचार्य से कम नहीं था।

एन.सी.सी. ट्रेनिंग की पूर्व भूमिका

यहाँ श्री किशोर नायक जो मेरे अच्छे मित्र बन गये थे– पी.टी. टीचर थे। और एन.सी.सी. में सेकण्ड लेफ्टिनेन्ट थे। उस समय कॉलेज में एन.सी.सी. अनिवार्य थी। संख्या की दृष्टि से दूसरे ऑफिसर की आवश्यकता

थी। उस समय श्री भट्टजी दूसरी युनिट के इन्चार्ज थे। उन्हें ही ट्रेनिंग में भेजा जाना था। पर उनका काम शिथिल और अव्यवस्थित था। वशी साहब उनसे खुश नहीं थे। एकबार एन.सी.सी. का केम्प कहीं बाहर गया हुआ था। वहाँ केम्प में नदी में कुछ छात्र तैरते–तैरते दूर चले गये.... परेशानी हुई। भट्टजी ने छात्र के डूबने का समाचार दिया। इससे पूरा कॉलेज एवं मैनेजमेन्ट परेशान हो गया। यद्यपि कोई डूबा नहीं था। बस वशी साहब ने भट्टजी को तुरंत इन्चार्ज से हटा दिया और मुझे चार्ज दे दिया। दूसरे ही महिने ट्रेनिंग का सिलेक्शन होना था। मैंने तो कभी स्काऊट तक की ट्रेनिंग नहीं ली थी। पर शरीर व स्वास्थ्य के मद्देनजर मेरा ही नाम भेजा गया। अहमदाबाद में मिलिट्री के बड़े ऑफिसर शायद ब्रिगेडीयर कक्षा के समक्ष इन्टरव्यू था। उन्होंने जैन सरनेम देखते ही व्यंग्य किया 'आप भाजी पाला खानेवाले क्या इतनी कठिन ट्रेनिंग ले पायेंगे?' मैं भी दृढ़ था। मैंने भी उसी दृढ़ता से उत्तर दिया कि 'सर! हाथी और घोड़े घास खाते हैं। पर सबसे शक्तिशाली प्राणी हैं। मैं चेलेन्ज उठाने को तत्पर हूँ।' मेरी दृढ़ता हाजिर जवाबीपना देखकर मेरा चयन हो गया।

कामटी में ट्रेनिंग

सूरत लौटा। एन.सी.सी. ऑफिस से केप्टन साहब का फोन आया। उन्होंने मुझे बुलाकर कामटी जो नागपुर के पास है वहाँ का टिकट वोरंट और ड्रेस आदि देकर मिलिट्री ट्रेनिंग में भेज दिया। नये अनुभव का नया जोश, नया आनंद...।

ओ.टी.एस. (ओफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल) कामटी नागपुर से लगभग १०–१५ कि.मी. की दूरी पर है। हमारी बैच में २१७ कैडेट थे। प्रायः पूरे भारत के कॉलेजों से अध्यापकगण इस सैकण्ड लेफ्टीनेन्ट की ट्रेनिंग और कमीशन हेतु भेजे गये थे। लगता था पूरा भारत एक जगह इकट्ठा हो गया था। विविध धर्म, भाषा, बोली, रीति–रिवाज के लोगों का जमघट था। बड़ा अच्छा लगता था। हम लोगों को रहने के लिए बैरेक थी। एक बैरेक में हम ४०–५० लोग रहते। सबको एक पलंग, टेबल, कुर्सी, एक कपबोर्ड दिया गया था। खाना मैस में और नहाना कॉमन बाथरूम में। यह समूह जीवन का केन्द्र था। प्रारंभ में हमें यहाँ के तौर तरीके बताये गये। दूसरे दिन से ही परेड़ प्रारंभ हुई। मिलेट्री के जे.सी.ओ. एवं एन.सी.ओ. हमें ट्रेनिंग देते। वे लोग चूँकि नियमित मिलिट्री के लोग थे अतः बड़े ही मुस्तैद, कड़क व पूरे समय श्रम कराते थे। यहाँ कोई छूटछाट या मश्कबाजी नहीं थी। पहलीबार पता चला कि परेड़ क्या होती है। जी भी धबड़ाता। पर सब मिलजुलकर एकदूसरे को हिम्मत देते। प्रातः लगभग ५ बजे उठना। प्रतिदिन दाढ़ी बनाना। ड्रेस बराबर पॉलिश वाली चमचमाती रखना। प्रतिदिन बूटपॉलिश अनिवार्य था। एक मिनट की देरी भी दंड दिलवाती। परेड के बूट अलग, कैनवास के अलग, खेल के अलग। दिनभर ड्रेस और बूट ही बदलते रहते। हर सीनियर को सेल्युट मारते मारते हाथ ही दुःख जाते। पर शिस्त या डिसिप्लीन क्या होती है यह सीखने का मौका मिला। हमें यहाँ हरप्रकार की परेड एवं हथियारों में बंदूक (३०३), एल.एम.जी., गन, ग्रेनेड, पिस्तोल, क्लोजअप बैटल आदि की ट्रेनिंग दी गई। पूरी ट्रेनिंग प्रेक्टिकल ही होती थी। उसके दौरान कूदना, ऊँची कूद, लंबी कूद, छलांग, दीवार फांदना, रस्से से उतरना आदि ट्रेनिंग के साथ सिविल डिफेन्स की भी ट्रेनिंग दी गई। शाम को कोई न कोई गेम खेलना भी अनिवार्य था। एक–एक दिन पहाड़ सा बीत रहा था। ट्रेनिंग की स्मृति से ही आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ट्रेनिंग बड़ी कठिन थी। क्रोलिंग सबसे कठिन, कष्टदायक, हाथ में वज़नदार एल.एम.जी, कंधे पर बंदूक, बैल्ट में बँधी हुई पानी की बोतल, पीठ पर बंधा हुआ थैला..... चलना ही चलना....। जरा भी थके तो फटीक.... थक कर चूर हो जाते। अरे कमर में पानी की बोतल तो होती पर बिना आज्ञा के पानी पी ही नहीं सकते थे। रिलेक्स के समय के अलावा पानी पीना भी गुनाह। परेड में कई

बार कुछ कैडेट गिर जाते पर पास का कैडेट भी उसे उठा नहीं सकता। वह व्यवस्था मिलिट्री वाले स्वयं करते। अग्नि परीक्षा से गुजर रहे थे। सुबह समय से पहुँचने के लिए एक ही बाथरूम में दो–तीन लोग निर्ग्रन्थ होकर स्नान करते।

भोजन की समस्या

कामटी में पहले ही दिन से भोजन का प्रश्न खड़ा हुआ। वहाँ शाकाहारी व माँसाहारी भोजनालय थे। हमारे अधिकांश साथी २७० मैं से लगभग १७५ माँसाहारी थे। हम ८०–९० कैडेट ही शाकाहारी मैस में खाते थे। हमारे साथ भी लगभग ६०–७० ऐसे कैडेट थे जो अंडे खाने से परहेज नहीं करते थे। माँसाहारिओं को नास्ते में ऑमलेट बड़ा खाने में माँसाहारी व्यंजन मिलता था। परिणाम यह हुआ कि शुद्ध शाकाहारी हम १०–१५ कैडेट ही रह गये। मैं इसका सैक्रेटरी चुना गया। मैं ब्रिगेडीयर साहब से मिला और हमने उनसे निवेदन किया कि प्रातःकाल का नास्ता, भोजन, बड़ा खाना में जो भी बजट माँसाहारिओं को दिया जाता है उतना ही बजट हमें भी दिया जाये। वे बोले 'शाकाहार में ऐसा क्या है?' उन्होंने मुझे ही मैनु बनाने का कार्य सौंपा। मैंने भी प्रातःकालीन नास्ते में दूध, सीरीयल, ब्रेड, जॉम, बटर व फल रक्खे। बड़ा खाने में नागपुर से मिठाई, नमकीन, खीर आदि का मैनु दिया। मज़े की बात तो यह हुई कि हमारा बजट माँसाहारियों से भी अधिक हो गया। तीन महिने ठाट से भोजन किया। पासींग आऊट परेड में सफल रहे और सैकण्ड लेफ्टिनन्ट का कमिशन प्राप्त किया।

इन तीन महिनों के दौरान कुछ मज़ेदार घटनायें भी हुईं। सेन्टर के पास ही एक गर्ल्स हाईस्कूल था। कैडेट्स शाम खेल–कूद के समय लड़कियों को देखकर आँखे सेका करते। रात्रि में उलल–झलूल बाते, नौनवेजीटेरीयन जोक्स और धूम्रपान चलता रहता।

हमलोग इतवार को अपनी–अपनी साईकलें ट्रेन में लादकर नागपुर आते। पूरा दिन घूमते, खरीदी करते। मैं अपने काका ससुर श्री चंद्रभान जैन के वहाँ जाता, खाना खाता, शाम को सभी लौट आते।

इस प्रकार खट्टी–मीठी यादों को लेकर ट्रेनिंग पूरी कर सैकण्ड लैफ्टिनेन्ट बनकर सूरत लौटा।

पद की खुमारी

सैकण्ड लैफ्टीनन्ट होने का एक खुमार ही अलग था। पूरे ड्रेस में निकलते तो एक गौरव का अनुभव होता। रैंक में हमारा स्थान सब इन्स्पेक्टर से ऊँचा होने से जब कोई पुलिस सब इन्स्पेक्टर सेल्युट करता तो हमारा मन प्रसन्न होता और थोड़ा अभिमान भी। परेड़ पर २०० कैडेट होते। उन्हें परेड़ कराने एन.सी.ओ., जे.सी.ओ. आते। उन सब पर रौब जमाना भी आनंद देता।

सन १९६८ में २६ जनवरी को परेड में एन.सी.सी. की प्लाटून भी थी। प्रश्न खड़ा हुआ कि आगे कौन रहे? एन.सी.सी. या पुलिस। दूसरे हम सभी कमिशन्ड ऑफिसर थे। पुलिस सब इन्स्पेक्टर की रैन्क के लोग हमें सैल्युट करते थे। मामला कुछ गरमाया। पर प्रॉटोकोल के अनुसार हमारी ही बात मानी गई। वह भी एक विशेष परेड थी।

पूरी कॉलेज में छात्रों पर अत्यंत प्रभाव रहता। मेरे और किशोर नायक दोनों का कॉलेज में विद्यार्थियों पर सर्वाधिक प्रभाव था। हमारे काम भी अत्यंत व्यवस्थित होने से आचार्य श्री वशी साहब बहुत खुश रहते। हमारे नवयुग कॉलेज का युनिट नया था अतः हमारे पास सर्विस रायफल होतीं और हम पूरे युनिट के इन्चार्ज थे। कॉलेज द्वारा हमें स्पेश्यल ऑफिस, प्यून और हथियार कक्ष दिये गये। इस विशेष सुविधा से हमारा स्थान कॉलेज में विशेष था।

उन दिनों परैड में उपस्थित कैडेट को प्रति परेड सात क्रीम बिस्कीट दिये जाते थे। कभी–कभी बिस्कुट की

कमी होने से युनिट से समय पर नहीं आते थे। ६–७ परेड के बिस्कुट कभी–कभी इकट्ठे आते। बड़ा स्टॉक आता। कैडेट तो बिस्कुट खाते ही पर हमलोग भी बिस्कुट खाते। कैडेट को ४२ या ४९ बिस्कुट में से एक परेड के जो सात बिस्कुट कम देते वे सब हम लोगों के घर के लोग महेमान, जे.सी.ओ., एन.सी.ओ. के घर के लोग खाते। हम लोग यह कार्य मिल बाँट कर करते। सभी खुश। पर आज लगता है कि वह गलत काम था।

विचित्रघटना

सूरत में कॉलेज के समय एक बड़ी ही विचित्र घटना घटित हुई। कॉलेज जंगल में था चारों ओर खेत थे। वहीं एकदिन एक छात्र ने एक छात्रा जिससे उसका प्रेम था– उससे शारीरिक संबंध स्थापित किये। उन्हें खेत के रखवाले ने देख लिया। शिकायत आचार्य तक पहुँची। केस मुझे सुपुर्द किया गया। मैंने पूरा केस मनोवैज्ञानिक ढंग से हल किया। दो–चार दिन लड़के और लड़की पर वॉच रखा। फिर एक दिन लड़की से परोक्ष रूप से पूछा और उसे बदनामी से बचने के लिए कॉलेज बदलने की सलाह दी। लड़की ने रोते–रोते सबकुछ कबूल किया। कॉलेज बदली और लड़के को भी कॉलेज से निकाल दिया।

जैन मित्र में

मैं नवयुग कॉलेज में कार्य कर ही रहा था। इधर आदरणीय श्री स्वतंत्रजी के सूरत छोड़ने पर जैनमित्र साप्ताहिक में स्थान रिक्त हुआ। बुजुर्ग श्री कापड़ियाजी ने मुझसे कहा कि दोपहर में ४–५ घंटे आ जाया करो। उन्होंने रहने को निःशुल्क मकान दिया एवं २०० रू. प्रति माह अतिरिक्त देने को कहा। मैंने उसका स्वीकार किया। दोपहर ११ बजे कॉलेज से आता, खाना खाकर प्रेस जाता। वहाँ सबसे बड़ा फायदा वह हुआ कि मुझे जैन साहित्य– सविशेष दिगम्बर जैन साहित्य पढ़ने का अवसर मिला। यहाँ प्रेस के साथ पुस्तक विक्रय का कार्य भी होता। अतः भारत वर्ष के जैन प्रकाशनों का यहाँ संग्रह था। यहीं अनेक ग्रंथों को पढ़ने और देखने का मौका मिला। साथ ही जैन मित्र के लेखों का चयन, प्रुफरिडिंग, ले आऊट और शिक्षा भी प्राप्त हुई। आदरणीय श्री कापड़ियाजी लगभग ७५ वर्ष के थे। वे एक ही आसन पर बैठकर ८–१० घंटे काम करते। मुझे सिखाते। उनके पुत्र श्री डाह्याभाई पुस्तक बिक्री और जैनमित्र का पूरा कार्य देखते। मेरी उनसे अच्छी मित्रता हुई।

रोज शाम को कापड़ियाजी अपनी एक घोड़े की बग्गी में घूमने जाते। मुझे नीचे से आवाज देते और रोज अपने साथ कभी स्टेशन तो कभी चौपाटी पर घूमने ले जाते। वे प्रायः दो केले लेते एक स्वयं खाते और एक मुझे खिलाते। पूरे भारत वर्ष में दिगम्बर जैन साधुओं, श्रेष्ठियों पर उनका अच्छा प्रभाव था, व प्रतिष्ठा थी।

मैंने अपने रिश्तेदार श्री ज्ञानचंदजी वड़नगर वालों को काम दिलाने की भावना से बुलाया और उन्हें जैनमित्र में रखवाकर स्वयं काम छोड़ दिया। यहाँ मेरे पड़ौस में कचहरी में मुन्शी श्री राणा साहब रहते थे। उनकी दो पुत्री तरू और मंजू। तरू सीधी सादी घरेलू लड़की थी। और मंजू फैशनेबल, चुलबुली और बिन्दाश्त लड़की थी। उनका हमारे परिवार के साथ घरोबा हो गया था। तरू बच्चों की बुआ थी तो मंजू मौसी। मंजू के इस चुलबुले पन का उसके युवा पुरूष मित्रोने दुरुपयोग भी किया। इस घरसे हमारे करीबी रिश्ते हुए।

सूरत में मुझे जैन समाज का भी भरपूर स्नेह और सन्मान मिला। 'जैनमित्र' में राष्ट्रीय स्तर के विद्वान पं. दामोदरजी सागरवाले, पं. परमेष्ठीदासजी ललितपुरवाले, एवं पं. ज्ञानचंदजी स्वतंत्र आदि जिस गद्दी पर बैठे थे मैं भी उसी गद्दी पर था। अतः समाजने मुझे एक विद्वान के रूप में इज्जत प्रदान की। उस समय सूरत इलेक्ट्रीसिटी में इन्जीनियर थे श्री मोदीजी, समाज के प्रतिष्ठित श्री जैनी साहब एवं पोप्युलर पब्लिकेशन के श्री नटुभाई आदि

प्रमुख लोग थे। पर इन सबसे अधिक आत्मीय बने श्री साकेरचंदभाई सैरैया जो पं. परमेष्ठीदासजी के अभिन्न मित्र थे। चूँकि मैं पं. परमेष्ठीदासजी का रिश्तेदार था। अतः सैरैयाजी ने मुझे खूब स्नेह और वात्सल्य दिया। वे मेरी व घर की छोटी-छोटी समस्याओं को हल करते। मुझे पुत्रवत वात्सल्य देते। जैन समाज की सभाओं और प्रवचनों में मुझे आमंत्रित करते।

यहीं मेरा परिचय और प्रगाढ़ संबंध सेठ श्री मुरारीलालजी अग्रवाल दिल्लीवालों के साथ हुआ। वे कपड़े के सविशेष साड़ी के बड़े व्यापारी और निर्माता थे। सूरत टेक्सटाईल मार्केट में उनकी गद्दी थी। उनके भाई थे श्री ओमप्रकाशजी जैन जो आज सूरत जैन समाज के अध्यक्ष हैं। श्री मुरारीलालजी मुझे बड़ी इज्जत देते। व्यापारी होते हुए भी उनकी शिक्षा में विशेष रूचि थी। दूसरों का हित करना उन्हें सुख देता था। उनके एक पुत्र प्रमोद थे। वे मुझसे कहते कि यह नौकरी छोड़ो मेरे साथ कपड़े के व्यवसाय में आओ देखो कैसे समृद्ध बनते हो। पर मेरा मन तो अध्यापन के रंग में रंग गया था। पढ़ना और लिखना ही मेरी रूचि बन गई थी।

श्री मुरारीलालजी व उनके युवा पुत्र दोनों का असमय निधन हो गया। घर की जिम्मेदारी श्री ओमप्रकाशजी व भाभीजी तथा उनकी युवा बहु ने बखूबी संभाली। वर्षों बाद दो वर्ष पूर्व उनसे मिला। सारा अतीत आँखों के समक्ष वर्तमान बन गया।

प्रथम कृति का प्रकाशन

यहीं सूरत में मेरी प्रथम कृति घरवाला का प्रकाशन श्री कापड़ियाजी ने किया। स्व. भगवत स्वरूपजी की व्यंग्य कृति घरवाली का प्रकाशन होकर खूब प्रचलन हो गया था। जब मैं १९५८ में इन्टर में पढ़ता था तभी उसके प्रत्युतर में मैंने यह १२६ चतुष्पदी का व्यंग्य काव्य लिखा था। दस वर्षों तक किसीने प्रकाशित नहीं किया पर कापड़ियाजीने प्रकाशित किया। फिर तो इसकी दसों एडिशन निकल गईं। विवाहोपलक्ष्य में यह कृति खूब बँटी। इससे एक उत्साह पैदा हुआ कि मैं लिख भी सकता हूँ और प्रकाशित भी हो सकता हूँ। कविता लिखने के बीज तो मैट्रिक के बाद ही कवि मित्रों की संगति और श्री रमाकांतजी शर्मा की प्रेरणा से पनपने लगे थे। वैसे फिल्मी धुनों पर जैन भजन तो लिखने ही लगा था।

इसप्रकार सन १९६६ से १९६८ तक सूरत में बड़ी ही इज्जत और प्रतिष्ठा से सेवा की।

अहमदाबाद में आगमन

सन १९६८ में अहमदाबाद में गिरधरनगर में एक आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज का प्रारंभ हुआ। गर्मी की छुट्टियों में उसके इन्टरव्यू हुए। यहाँ वेतन में वृद्धि के साथ नियुक्ति हुई। अहमदाबाद अपने घर लौटने की लालच में इसका स्वीकार किया, और सूरत का साम्राज्य छोड़कर १५ जून १९६८ को यहाँ आ गया।

गिरधरनगर कॉलेज निम्न मध्यमवर्गीय विस्तार में था। लगता था कि यहाँ अच्छी संख्या होगी। इसके संचालक भी एक मिल मालिक थे और आचार्य थे श्री रसिकभाई सी. त्रिपाटीजी। जिन्हें लॉ सोसायटी के कॉलेज में आचार्य पद न मिलने से वे यहाँ आये थे। वैसे यहाँ स्टाफ तो बहुत ही योग्य चुना गया था। अर्थशास्त्र में विद्वान प्रोफेसर बी.एम. मूले, मनोविज्ञान में प्रो. मनोज जानी, अंग्रेजीमें बेझन दारूवाला, गुजराती में प्रसिद्ध कवि चिनु मोदी आदि थे। परंतु कॉलेज में संख्या में आशा के अनुरूप वृद्धि न हुई। इसका कारण था कि यहाँ के लड़के नदी पार कॉलेज में पढ़ने जाना चाहते थे। लगता था १२वीं तक इसी विस्तार में रहने के कारण वे भी मुक्त हवा में श्वास लेना चाहते थे। फिर यहाँ मकान भी एक हाईस्कूल का पुराना था। अतः इतना अच्छा स्टाफ होने पर भी संख्या

का प्रश्न खड़ा रहा। किसी तरह दो वर्ष गाड़ी चली। संस्था को नियमानुसार ग्रांट भी मिली। पर आर्थिक परेशानी बढ़ने लगी। हमलोगों ने संख्या के लिए सभी प्रयत्न किए। पढ़ाने के उपरांत संख्या जुटाने में स्कूलो में घूमते। स्कूलों में जाकर आचार्य और अध्यापकों को समझाना पड़ता। कभी–कभी तो विद्यार्थियों से कहना पड़ता कि दस विद्यार्थी लाने वाले विद्यार्थी को एक फ्री एडमीशन दिया जायेगा। कैसी करूण परिस्थिति!

प्रायः सभी मुख्य डिपार्टमेन्ट चल रहे थे। पर संख्या का प्रश्न जटिल था। आर्थिक स्थिति बिगडती जा रही थी। कुछ अध्यापक अन्य कॉलेजो में जगह प्राप्त करने में सफल हो गये। संचालक भी पैसा देने में आना–कानी कर रहे थे। हालत तीसरे वर्ष तो यह हुई कि थोड़ी भी फीस आती तो सभी बाँटने को दौड़ते। ग्रांट आती तो किसी तरह थोड़ी–बहुत पूर्ति होती। सभी असंतुष्ट थे– परेशान थे। मैं सोचता कि सूरत छोड़कर बड़ी गलती की। एन.सी.सी. का काम भी छूट गया था। जब संचालको ने कॉलेज बंद करने का निर्णय लिया तो हम लोगो ने आंदोलन किया। गवर्नर के सामने धरने दिये। युनिवर्सिटी से मध्यस्थता करने की माँग की। कॉलेज हम अध्यापक चलायेंगे ऐसा प्रस्ताव भी रखा। सभीने सहानुभूति तो बताई पर ठोस मदद नहीं मिली। उल्टे गवर्नर के यहाँ धरने पर बैठने के कारण हम लोगों के फोटो दैनिक अखबार में छपे सो अन्य कोई भी कॉलेज आंदोलनकारी मानकर लेने के लिए तैयार नहीं था। समस्या विकराल होती जा रही थी।

चूँकि मैं १९७० से धंधुका कॉलेज में पी.जी. की कक्षायें लेने जाता था। अतः वहाँ के आचार्य श्री पीरजादा जी से अच्छा परिचय था। वे उस समय युनिवर्सिटी में विशेष प्रभाव रखते थे। हमने सारा प्रश्न श्री पीरजादाजी के सामने रखा। उन्होंने कहा कि हम कॉलेज ले लेंगे। नया भवन भी बनायेंगे। पूरे स्टाफ को रक्षण देंगे पर आचार्य हमारा होगा। हम श्री त्रिपाठीजी को जो वेतन है, वह देंगे पर वे उपाचार्य के पद पर रहें। यह बात श्री त्रिपाठीजी को मंजूर नहीं थी। वे तो कहते थें कि मैं जाऊँगा पर सबको ले जाऊँगा (हम तो डूबेंगे ही पर तुमको भी ले डूबेंगे)। इस कारण श्री पीरजादाजी ने प्रस्ताव वापिस ले लिया।

गिरधरनगर कॉलेज की खश्ता हालत– बंद होने के कगार पर – १९७२ में बंद भी हो गई। मैं जीवन में संघर्ष करते हुए पार्ट टाईम धंधुका कॉलेज में अनुस्नातक कक्षा को पढ़ाने जाता। पाँच दिन भवन्स कॉलेज डाकोर में जाता। आ. श्री पीरजादा अर्थशास्त्र के विद्वान प्राध्यापक थे। अत्यंत कुशल और स्टाफ के साथ आत्मीयता के साथ काम करते। उन्हें अर्थशास्त्र के साथ साहित्य में भी रूचि थी। मेरे इन्टरव्यू में बात निकली 'भोगा हुआ सत्य'। उन दिनों साहित्य में नवप्रयोगवाद आदि विचारधारायें चल रही थीं। यह 'भोगा हुआ सत्य' भी अपनी रट लगाये हुए था। पीरज़ादा साहबने यह सब पढ़ा होगा। सो बार–बार 'भोगा हुआ सत्य' ही सर्जनात्मक साहित्य होता है वगैरह... वगैरह... पूछते रहे। मैं भी तीन चार बार सुनकर अपनी पर आ गया और मैंने पूछा 'सर! मुझे आपके यहाँ कोई प्रेमकाव्य पढ़ाना हो तो क्या पहले किसी लड़की से प्रेम करना पड़ेगा? अन्यथा प्रेम के सत्य को कैसे समझाऊँग।' इससे वे नरम पड़े और बड़ी सद्भावना से नियुक्ति की।

पीरज़ादा साहब यद्यपि जन्म से मुसलमान, पर उनके संस्कार किसी भी उच्च कुलीन ब्राह्मण से कम नहीं। अहमदाबाद एवं गुजरात के अच्छे से अच्छे प्राध्यापकों को अधिक वेतन देकर भी बुला लेते। उन्हें यही प्यास रहती कि उनके छात्र उत्तम ज्ञान कैसे प्राप्त करें। प्रोफेसर अलघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय विद्वान उनके यहाँ आते जो बादमें भारत सरकार के प्लानिंग कमीशन के सदस्य और केन्द्रीय मंत्री भी रहे। जितने भी प्राध्यापक धंधुका पढ़ाने आते उन्हें कॉलेज के समय का ध्यान ही नहीं रहता। क्योंकि स्वयं पीरज़ादाजी ने कभी कॉलेज में मस्टर नहीं रखा और न कभी समय की चिंता की। कॉलेज ही उनका घर था और घर पर होते तो अध्यापकों का जमघट लगा रहता

और एकेडेमिक चर्चा ही होती। पीरज़ादाजी आजीवन अपरणित रहे। हाँ! उनकी अम्मी जान सबका ध्यान रखतीं। सबको खाना खिलातीं। पीरज़ादाजी के यहाँ कभी माँसाहार तो क्या अंडा भी नहीं आता। यदि उन्हें खाना भी होता तो अहमदाबाद चले जाते। उनके साथ तीन वर्ष काम किया पर कभी लगा ही नहीं कि नौकरी की है।

इधर प्रिन्सिपाल त्रिपाठीजी के मन में यह गलतफहमी भर दी गई (उनके एक–दो चमचों द्वारा) कि श्री जैन आचार्य बनना चाहते हैं। जबकि यह बात पूर्ण तथ्यहीन थी। मैंने तो ऐसा सोचा भी नहीं था। अध्यापकों के हित के आंदोलन में सक्रिय अवश्य था। उनकी फालतू बाते नहीं मानता था। लगभग ८० प्रतिशत स्टाफ मेरे साथ था। इधर वेतन नहीं मिलता था। कुछ अध्यापक अनुभव के लिए निःशुल्क सेवा देते थे। ऐसे अध्यापक लाइब्रेरी की कीमती पुस्तकें ले गये और फिर कभी नहीं लौटाईं। समस्या कठिन थी।

प्रिन्सिपल पीरज़ादाजीने मुझे ढाँढस बँधाते हुए कहा 'चिंता मत करो तुम्हे तीन दिन के २५० रू. मासिक धंधुका से मिलेगे व तीन दिन कड़ी में मेरे मित्र प्रिन्सिपल जोषी के यहाँ नियुक्ति दिलवाकर २५० रू. महिना वहाँ से दिलवा दूँगा।' उसी समय एक बहुत ही शुभेच्छु राज्य के मंत्री श्री जो अच्छे मार्गदर्शक थे उन्होंने व कुछ स्कूल चलानेवाले मित्रों ने सलाह दी कि एक हाईस्कूल खोल दो। एक–दो वर्ष में ग्रांट भी मिलेगी। अभी अध्यापक भी सेवाभाव से मिलेंगे। पर मेरा मन दो कारणों से नहीं माना। एक तो इतना पैसा नहीं था कि स्कूल के लिए मकान, फर्निचर और स्टेशनरी खरीद सकूँ, दूसरे मैं खोखरा की अर्चना स्कूल में भ्रष्टाचार को देख चुका था जहाँ अध्यापकों की नियुक्ति के लिए पैसे लिए जाते थे। मैं मानता था और मानता हूँ कि स्कूल या शिक्षण संस्था सरस्वती के मंदिर होते हैं। यह सिद्धांत मैं अंत तक पकड़े रहा और कॉलेज के आचार्य पद पर पहुँचकर भी उसका निर्वाह करता रहा।

पी-एच.डी. करने की ललक

पी–एच.डी. करने का मन बन चुका था। क्योंकि मेरे मित्र भाई डॉ. रामकुमार गुप्त एवं भाई श्री महावीरसिंह चौहान आदि पी–एच.डी. कर चुके थे। मैं भी इसी चाहत को मन में लेकर भाई रामकुमारजी के साथ डॉ. श्री अंबाशंकरजी नागर से मिला। श्री नागरजी उस समय गुजरात युनिवर्सिटी में हिन्दी विभाग में रीडर विभागाध्यक्ष थे। जिनके निर्देशन में डॉ. रामकुमार, डॉ. भँवरलाल जोषी, डॉ. अरविंद जोषी आदि पी–एच.डी. कर चुके थे। मैं भी उन्हीं के मार्गदर्शन में पी–एच.डी. करना चाहता था। भाई रामकुमारजी गुप्त पूरी कोशिश कर रहे थे। डॉ. अंबाशंकरजी नागर ना–नुकुर कर रहे थे। पर मेरी दृढता देखकर आखिर १९६५ में उन्होंने स्वीकृति दी। मैंने अनेक विषयों के बारे में सोचा। उसमें 'वृंदावन लाल वर्मा एवं कन्हैयालाल मुन्शी के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' पर विशेष चिंतन किया। उस समय दोनों महानुभाव जीवित थे। दोनों को पत्र लिखे। संमति भी प्राप्त की। पर तुलनात्मक अध्ययन का निष्कर्ष तटस्थता में बाधक भी हो सकता है और अन्य लोगों की दृष्टि में पूर्वाग्रहयुक्त भी। अतः विषय पर पुनः विचार करना पड़ा।

उस समय राष्ट्रीय कवि श्री दिनकरजी की प्रतिष्ठा का सूर्य तप रहा था। उनकी रचनायें जोश भर रहीं थीं। उनका उवर्शी के काव्य सौंदर्य से पूरा साहित्य जगह अभिभूत था। मैंने विचार किया कि दिनकरजी पर ही शोधकार्य किया जाय। श्री नागरजी के समक्ष विचार रखा। वे भी सहमत व संतुष्ट थे। कविश्री दिनकरजी पर समीक्षात्मक पुस्तकें तो प्रकाशित हुई थीं पर शोधकार्य नहीं हुआ था। अतः हमने 'राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्यकला' विषय तय करके गुजरात युनिवर्सिटी में आवेदन प्रस्तुत किया। उस समय कुलपति श्री

उमाशंकरजी जोषी ने यह प्रश्न भी खड़ा किया कि जीवित व्यक्ति पर संशोधन बराबर नहीं– योग्य नहीं। पर हमने कई उदाहरण प्रस्तुत किए। डॉ. नागरजीने भी उन्हें अपने ढंग से समझाया और विषय तय हो गया।

सन् १९६५ में रजिस्ट्रेशन हो गया। इधर अब पी–एच.डी. करने का उत्साह– उधर नौकरी का संघर्ष। रजिस्ट्रेशन कराया तब राजकोट में था। पूरा अध्ययन किया जब सूरत में था। लेखन कार्य भी वहीं प्रारंभ हो चुका था। डॉ. नागरजी काम कराने में बड़े ही कठोर रहते। वे एक भी पंक्ति ऐसी नहीं चलाते जो उपयोगी न हो। आश्चर्य तो यह है कि मेरी थीसिस पूरी होते होते उन्होंने लगभग ४०० पृष्ठ रिजेक्ट किये। पुनर्लेखन करना पड़ा। पर मैं कभी हताश नहीं हुआ। पूरे श्रम से कार्य करता रहा। १९६८ में अहमदाबाद आया। गिरधरनगर कॉलेज की समस्या थी पर मैंने उस समय इस समस्या से अधिक महत्व अपने शोधकार्य को दिया। और १९६८–६९ के डेढ़ वर्ष के समय में थीसिस का कार्य पूर्ण किया। वल्लभविद्यानगर में टाईप कराया और युनिवर्सिटी में थीसिस प्रस्तुत की। एक बड़े बोझ से मुक्ति मिली। इधर थीसिस का कार्य तो पूरा हुआ पर उधर कोलेज की बिगड़ती हुई स्थिति में आजीविका का प्रश्न मुँह बाये खड़ा था।

मेरी थीसिस के परीक्षक थे बंबई की के.सी. कॉलेज के विभागाध्यक्ष डॉ. श्री सी.एल. प्रभात एवं अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के विभागाध्यक्ष डॉ. श्री हरवंशलाल शर्मा। डॉ. नागरजी ने अंत तक इनके नाम नहीं बताये। मौखिकी (वायवा) के दिन ही महानुभावों का पता चला। डॉ. हरवंशलालजी मौखिकी लेने आये। बड़ा डर लग रहा था। डॉ. हरवंशलालजी इस वयोवृद्ध उम्र में भी आँखो में सुरमा लगाते– व्रजभाषा की लहक उनकी हर बात और व्यवहार में टपकती। उन्होंने दिनकरजी पर अनेक प्रश्न किए। मैंने उत्तर दिए। एक प्रश्न उनका भाषा और छंद को लेकर था। मैं उनके विचारों से सहमत नहीं हुआ और मैंने उनसे स्पष्ट कहा 'सर थीसिस मैंने लिखी है, मैंने दिनकरजी की कृतियों को आद्योपान्त पढ़ा है। अतः मेरे निष्कर्ष ही सही हैं।' इस बात से नाराज़ होने के बदले मेरी दृढ़ता पर वे प्रसन्न हुए और यह कहकर कि 'तुमतो नागर जी के गोदी पुत्र हो।' मुझे सफल घोषित किया। उस दिन शाम को पार्टी भी डॉ. नागरजी ने दी। अपने विद्यार्थी की सफलता पर वे वैसे ही प्रसन्न होते जैसे बेटे की सफलता पर पिता खुश होता है। खैर! १९६९ में पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त हो गई। डॉ. लिखने की महत्वाकांक्षा पूरी हो गई। इस डिग्री से कॉलेज के अनेक द्वार भी खुले।

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

१९६९ का वर्ष अहमदाबाद के लिए बड़ा अशुभ था। इसबार कोमी दंगे बहुत बड़े पैमाने पर हुए थे। करोड़ों की संपत्ति व सेंकड़ो लोग मरे थे। उस समय हम नागौरी चॉल में ही रहते थे। लोगों की पशुता व बहशीपन इतना बढ़ा कि दोनों कोमो के लोगो ने एक–दूसरे को जिंदा जला दिया। जलती आग में जिंदा आदमी को फैंककर जला देने की घटना हमने शराफ चॉल और भीखाभाई चाल के तिराहे पर देखी। ऐसी रोंगटे खड़े कर देनेवाली घटना को देखकर मन महिनों तक खिन्न रहा। आदमी इतना राक्षस हो सकता है उसकी कल्पना करना भी मुश्किल था। किसी तरह उसी समय की एक घटना आज भी स्मृति पटल पर बार–बार ताज़ी हो जाती है।

हम लोगों का घर रोड़ पर था। सामने ही गोमतीपुर पुलिस स्टेशन था। एक मुस्लिम दंपत्ति अपने छोटे बच्चे के साथ जो उसकी पत्नी की गोदी में था उसे लेकर जल्दी–जल्दी भयभीत होकर लगभग भाग रहे थे कि उसी समय पुलिस स्टेशन से २०० मीटर पूर्व कुछ दंगाईयों ने उन्हें घेर लिया। पुरूष बिचारा गिड़गिड़ा रहा था। लोग उसे मार रहे थे, पत्नी लाचार थी। लोग तो जैसे उन तीनों को काटकर फेंक देने को पागल थे। वह महिला बच्चे

को बचाने उसे कभी इस कंधे, कभी उस कंधे पर चिपका लेती, कभी छाती से लगाकर छिपाती। लोगों का बहशीपन बढ़ रहा था। उस दृश्य को देखकर मेरा मन व्याकुल हो उठा। हम दो–तीन लोग दौड़कर गये और लोगों को समझाने, उनका ध्यान बटाने लगे और उस परिवार को सुरक्षित पुलिस स्टेशन पहुँचा आये। इससे हमारे धर्मरक्षक बड़े नाराज रहे। हमें जैसे हिन्दु विरोधी ही करार दे दिया। पर मुझे बड़ा आत्मसंतोष था कि तीन लोगों की जान बचा सके। खास तो उस शिशु की भोली सूरत, तटस्थ नज़र जैसे कह रही थी– 'भाई मैं क्या जानूँ हिन्दु क्या और मुसलमान क्या?'

उसी समय मैंने हाटकेश्वर जो हमारे नये अमराईवाड़ी के घर के पास ही है– वहाँ एक माह पूर्व ही दुकान खरीदकर फर्निचर तैयार कराके स्टेशनरी और नोवेल्टी स्टोर्स खोलने की योजना बनाई थी। वहाँ का पूरा कार्य हो चुका था। बस उद्घाटन करना था। पर इन कोमी दंगो से सबकुछ स्थगित करना पड़ा। एकदिन पुलिस रक्षण में कर्फ्यू के दौरान दुकान देखने गये। पर क्या कहें। गोमतीपुर से हाटकेश्वर तक के चार–पाँच कि.मी. के मार्ग पर थे जले घर, टूटेफूटे झोंपड़े, लूटी दुकानें और अनेक क्षत–विक्षत शव। जो घरों से झाँक भी रहे थे उनके चहरे शहमे–शहमे थे। इस दृश्य को देखकर मैं घर लौट आया। और एकमाह भगवान भरोसे दुकान छोड़कर कभी उस ओर गया ही नहीं।

जहाँ हमारी उमियादेवी सोसायटी बनी थी वहीं सामने गुजरात हाउसींग बोर्ड के मकानों में कुछ मुस्लिम परिवार रहते थे। हमारे कथित हिन्दु धर्म रक्षकों ने उन सबको उन्हीं के मकान में भूँज डाला। जो बचे वे फिर कभी लौटकर नहीं आये। पूरे विस्तार पर जैसे हिन्दु धर्म की ध्वजा लहरा रही थी।

जब पूरा माहौल ठीक हुआ तब हम लोग यहाँ रहने आये और दुकान भी खोली।

दुकान तो की –बैठने भी लगा, पर लगा इसमें फँस गये हैं। महिलाओं के सौंदर्यप्रसाधन बेचना..... सबसे बड़ा धैर्य और संयम का काम था। फिर मैं कॉलेज में नौकरी करता– उधर गिरधरनगर कॉलेज का भविष्य अंधकारमय हो रहा था। नौकरी की अन्यत्र कोशिश करता.. सो दुकान बंद हो गई। दुकान तो जैसे–तैसे बेची पर फर्निचर व सामान दो–तीन वर्षों तक नये घर के एक कमरे में रखना पड़ा। बाद में घाटा उठाकर सामान बेचा। लगा अपने हाथ में व्यापार की रेखा ही नहीं थी। हम लोग १९७० से १९९७ तक उमियादेवी सोसायटी में रहे।

भवन्स कॉलेज- डाकोर

नये घरमें रहने आ चुके थे। पर नौकरी की नई जगह की तलाश थी। सन १९७१ में डाकोर के भवन्स कॉलेज में एक वर्ष के लिए अस्थायी जगह हुई। भाई डॉ. रामकुमार गुप्त वहाँ विभागाध्यक्ष और आर्ट्स फेकल्टी के डीन थे। उनके अपने आचार्य श्री डॉ. एल.डी. दवे से अच्छे संबंध थे। कॉलेज के अध्यक्ष थे जस्टिस श्री दीवानजी। डॉ. रामकुमार गुप्त मेरी वर्तमान कॉलेज की स्थिति से वाकिफ थे। अतः उन्होंने मुझे उस जगह के लिए साक्षात्कार हेतु बुलवाया। चूँकि पी–एच.डी. होने पर गिरधरनगर कॉलेज में हिन्दी डिपार्टमेन्ट का प्रारंभ कर मुझे व्याख्याता से प्राध्यापक के पद की उन्नति प्रदान की थी। नये ग्रेड में भी रखा था। अतः अब में प्रोफेसर से नीचे पद पर नौकरी करने को राज़ी नहीं था।

विशेष इन्टरव्यू

मैं भवन्स कॉलेज के इन्टरव्यू के लिए अहमदाबाद में जस्टिस दीवानजी और आचार्य दवेजी द्वारा बुलवाया गया। मेरी योग्यता आदि देखकर दोनों संतुष्ट थे। उन्होंने कहा कि 'डॉ. रामकुमार गुप्तजी प्रोफेसर और

विभागाध्यक्ष हैं, अतः प्रोफेसर का पद देना कठिन है। हाँ आपको प्रोफेसर का ग्रेड अवश्य दे सकेंगे। पर पद व्याख्याता का होगा।' मैंने भी दृढ़ता से कहा 'सर! आप ग्रेड भले ही व्याख्याता का ही दें, पर पद तो प्रोफेसर का ही देना होगा। डॉ. गुप्त विभागाध्यक्ष रहेंगे। डॉ. दवेजी ने मजाकिया स्वर में कहा कि 'आपका कॉलेज बंद हो रहा है आप यह स्वीकार कर लें अन्यथा परेशान होंगे। और आखिर आप क्या करेंगे?' मैंने भी उसी अंदाज में कहा 'देखिए सर! मैं व्यवसायीपुत्र हूँ। आप ऐसा न कहें। मैं यदि शाम तक चार पैंट बुशर्ट के पीस बेच लूँगा तो इस नौकरी से प्राप्त होनेवाली राशि से अधिक कमा लूँगा। इसकी आप चिंता न करें। मैं नौकरी के लिए मजबूर हो सकता हूँ पर स्वमान के भोग से नहीं।' उन्हें मेरी दृढ़ता अच्छी लगी और मुझे प्रोफेसर के रूप में ही विभाग में एक वर्ष की नियुक्ति प्राप्त हुई।

मैंने उनसे एक शर्त और रखी 'देखें साहब हमारे गिरधरनगर कॉलेज का प्रश्न चल रहा है। उसके लिए मुझे कभी भी जाना पडे तो आप मुझे छुट्टी देंगे। दूसरे मैं धंधुका पी.जी के पीरियड लेने जाता हूँ उसके लिए शनिवार को कॉलेज नहीं आ सकूँगा। हाँ आपके नियमित कुल पीरियड मैं सोम से शुक्रवार में ले लूँगा।' उन्होंने मेरी यह बात भी सहानुभूति पूर्वक स्वीकार की। गिरधरनगर में वेतन तो मिलता नहीं था। अतः उन लोगों ने एक वर्ष की छुट्टी मंजूर कर दी। मैंने भवन्स कॉलेज जोइन कर लिया। भाई डॉ. रामकुमारजी ने पूरी सुविधा से टाईमटेबल दिया। मुझे रहने के लिए एक कमरा भी एक पोल में दिलवा दिया। पूरे वर्ष भोजन की व्यवस्था उन्होंने अपने ही घर कर दी। उनकी पत्नी इस मामले में पूरी अन्नपूर्णा थीं। वे बड़े ही स्नेहभाव से पूरे वर्ष परिवार के सदस्य की तरह नास्ता से लेकर दोनों समय का भोजन कराती रहीं। इस मामले में भाई रामकुमार व भाभीजी का यह भाव मैं आजीवन नहीं भूल पाया हूँ और न भूल सकूँगा। भाभीजी में माँ का वात्सल्य था और रामकुमारजी में बड़े भाई का स्नेह।

सन १९७१ इस तरह व्यतीत हुआ। नौकरी की समस्या और गहरी होती जा रही थी। परेशानी थी– सूरत छोड़ने का पश्चाताप था– पर क्या करता। सब कुछ भाग्य और भगवान पर छोड़कर उपायों को खोजता रहा।

भावनगर की पृष्ठ भूमि

जब मैं १९६५ में राजकोट था उस समय डॉ. मजीठिया जी से अच्छा परिचय व स्नेह बढ़ा था। एक ही कमरे में ५–६ महिने रहे भी थे। अतः उनके मनमें मेरे प्रति सद्भाव था। उनका ट्रान्सफर राजकोट से भावनगर शामलदास आर्ट्स कॉलेज में विभागाध्यक्ष के रूप में हो चुका था। वहाँ उन्होंने अपना अच्छा प्रभाव जमाया था। वे स्वयं अध्यापक के अलावा एक प्रतिष्ठित लेखक और अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित थे। वहाँ के स्थानिक कॉलेजों एवं युनिवर्सिटी में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

भावनगर में २–३ वर्ष पूर्व ही एक नया आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज 'वळिया आर्ट्स एण्ड महेता कॉमर्स कॉलेज' प्रारंभ हुआ था। भावनगर में 'भावनगर केळवणी मंडल संचालित' यही एक प्राईवट कॉलेज था। कॉलेज विद्यानगर शिक्षण संकुल में सरकारी पोलीटेकनिक के सामने ही था।

इस नये कॉलेज में विकास की दृष्टि से अन्य स्पेश्यल विषयों के साथ हिन्दी में भी ओनर्स कोर्स खोलने का प्रस्ताव था। उस समय कॉलेज के आचार्य थे शहर के प्रसिद्ध शिक्षणविद् श्री एन.जे. त्रिवेदी जो एन.जे.टी. के नाम से प्रसिद्ध थे। वे पहले शामलदास कॉलेज में अंग्रेजी के अध्यापक थे। शहर में अति लोकप्रिय, स्पष्ट वक्ता और शिस्त के आग्रही थे। वे डॉ. मजीठियाजी के अच्छे मित्र थे। वहीं शहर में श्री जयेन्द्रभाई त्रिवेदी एक विशेष

हस्ती थे। वे हिन्दी के प्राध्यापक थे। हिन्दी के विकास में उनका उस क्षेत्र में विशेष योगदान था। राष्ट्रभाषा प्रचार से जुड़े थे और भावनगर की न.च. गाँधी महिला कॉलेज के प्राचार्य थे। अच्छे वक्ता और स्वाध्यायी थे। उनकी व्यक्तिगत लाईब्रेरी अति समृद्ध थी जो उनकी वाचन प्रियता की द्योतक थी। वे नई कॉलेज के संचालक मंडल के सदस्य थे, और डॉ. मजीठियाजी के भी मित्र थे। वैसे डॉ. श्री अंबाशंकरजी नागर के कारण मेरा भी उनसे थोड़ा परिचय था। वे मेरी वाक्कला से परिचित थे।

तत्कालीन सौराष्ट्र युनिवर्सिटी में कॉलेज में नये विषय स्पेश्यल (ओनर्स) प्रारंभ करने के लिए विषय के दक्ष प्राध्यापकों की कमिटी बनाई गई। हिन्दी के लिए डॉ. मजीठिया एवं प्रा. जयेन्द्रभाई को नियुक्त किया गया।

उस समय गुजरात की प्रत्येक युनिवर्सिटी में ऐसा नियम था कि जहाँ भी ओनर्स विषय प्रारंभ किया जाय वहाँ विभाग में एक प्रोफेसर की नियुक्ति आवश्यक की जाये। तदनुसार वहाँ प्रोफेसर की पोस्ट की विज्ञप्ति दी गई थी। मैं उस विज्ञापन के आधार पर आवेदन तो दे चुका था। मैंने पुराने परिचय के संदर्भ में डॉ. मजीठियाजी से चर्चा की। अपने कॉलेज की बिगड़ती हालत को बताया। मैं स्वयं एकदिन भावनगर गया। वहाँ डॉ. मजीठियाजी एवं श्री जयेन्द्रभाई से मिला। डॉ. नागरजीने भी श्री जयेन्द्रभाई को मेरे नाम का प्रस्ताव किया था।

डॉ. मजीठियाजी व्यंग्य लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार थे। उन्होंने प्रा. नर्मदभाई से स्पष्ट कहा था (जो मुझे उन्होंने बादमें बताया था)कि आप यदि शेखरचन्द्र जैन को प्राध्यापक के रूप में लें तो हम सब कमेटीवालों का पूर्ण समर्थन रहेगा। डॉ. शेखरचन्द्र पी–एच.डी. हैं, अनुभवी हैं, अच्छे अध्यापक हैं। इस प्रकार पूर्वभूमिका बंध गई थी।

मैं प्राध्यापक के रूप में पसंद कर लिया गया। मेरे जीवन की यह सबसे उत्तम उपलब्धि थी। एक बहुत बड़े काले भविष्य से बच गया था। बेकारी के राक्षस के पंजों से छूट गया था। मुझे लगा कि मेरा भाग्य, मेरा पुण्य एवं मेरी मैत्री काम आई।

भावनगर में प्रारंभ

१५ जून १९७२ को मैंने भावनगर में एक नये अध्याय के साथ जीवन का प्रारंभ किया। मैं १९७२ से १९८८ तक १६ वर्ष भावनगर रहा। भावनगर शहर है पर छोटा– अन्य शहरों की तुलना में। छोटा पर खूबसूरत शहर। बड़े–बड़े प्लॉटो में घनी वृक्षावली के बीच लोगों के घर। शांतिप्रिय शहर। पूरे सौराष्ट्र में सर्वाधिक साक्षर शहर। महाराजा कृष्णकुमार जैसे प्रजावत्सल राष्ट्रीयता के रंग में रंगे राजा की जिस पर छत्र छाया रही। सरप्रभाशंकर पटनी जैसे कुशल विद्वान मंत्री का जिसे मार्गदर्शन मिला। जिसे कवि मेघाणी की कर्मभूमि बनने का गौरव मिला। जिसके शामलदास कॉलेज में पू. गांधीजीने शिक्षा प्राप्त की। जो नानाभाई भट्ट, गिजुभाई बधेका एवं हरभाई त्रिवेदी जैसे महान राष्ट्रभक्त बालशिक्षा के पुरोधा एवं शिक्षण शास्त्रियों द्वारा सिंचित भूमि रही। जहाँ शिक्षा और शिक्षकों का सदैव सन्मान रहा। जहाँ का शामलदास कॉलेज पू. गांधीजी के कारण विश्वप्रसिद्ध हुआ। जहाँ का केन्द्रीय नमक संस्थान विश्वप्रसिद्ध संस्थान है। जहाँ के भावनगरी गांठिये चटाकेदार होते हैं। ऐसे भावनगर में पहली बार ट्रेन से आया। भारत का यही एक ऐसा रेल्वे स्टेशन है जहाँ महिलायें कुली हैं। यहाँ के लोग इतने शांतिप्रिय, अहिंसक हैं कि कभी–कभी लोग व्यंग्य में कहते कि भावनगर तो रिटायर्ड व्यक्तियों का भजन गानेवालों का शहर है। सरकारें भी जैसे इस शहर के प्रति उदासीन ही रहीं। कोई बड़ी इन्डस्ट्रीज की स्थापना नहीं हुई, न विकास के साधन लगाये गये। उस समय यहाँ मीटरगेज ही थी और भावनगर से महुवा तक

नेरोगेज की बापुगाड़ी भी स्वयं में आनंदवर्धनी रेल थी। समुद्र के किनारे घोघा बंदर के निकट– खाड़ी तो बिलकुल शहर को छूती हुई। यहाँ घोघा बंदर में लोक गेट पद्धति है, जहाँ ज्वार के समय पानी को लोक करके मालवाहक जहाजों को तट पर लाया जाता है। जहाज खाली होने तक लोक रहता है। बाद में लोक खुलने पर भाटा के समय जहाज पुनः मूल समुद्र में पहुँच जाता है। यहीं घोघा के प्राचीन जैन मंदिर हैं। जिनका सहस्रकूट मंदिर दर्शनीय है।

शहर राजा साहब के प्रबंधन में होने से भव्य इमारतें, चौड़ी सड़कें मनमोहक हैं। मज़ेदार बात यह है कि बहुत बड़ा विशाल मैदान पर नाम गधेड़िया। यद्यपि सरकार ने नामकरण जवाहर मैदान के नाम से किया है पर सभी परिचित हैं गधेड़िया नाम से ही। यहाँ लोग सुखी–संतोषप्रिय हैं। शहर के प्रमाण में शिक्षण का व्याप अधिक है। अब यहाँ भावनगर युनिवर्सिटी भी विद्यमान है। यहाँ सहशिक्षण के दो आर्ट्स कॉलेज, दो कॉमर्स कॉलेज, एक सायंस कॉलेज, दो महिला कॉलेज, एक पोलिटेकनिक, एक इन्जीनीयरींग कॉलेज, एड मेडिकल कॉलेज, एक बी.एड् कॉलेज, एक लॉ कॉलेज एवं अनेक हायर सेकण्डरी, सैकण्डरी और प्राथमिक स्कूल है। शहर में प्रायः सभी जातियों के छात्रालय हैं। जिसमें ग्राम्य विस्तार से आनेवाले छात्रों के निवास व भोजन की पूरी सुविधा है। यद्यपि शहर में सभी जाति, वर्ण, धर्म के लोग रहते हैं, परंतु दरबार (क्षत्रिय) व पटेलों के साथ शाह (जैनों)की विशेष संख्या है। व्यापार अधिकांश जैनों के हाथो में है।

श्री महावीर जैन विद्यालय (जैन छात्रालय)

यहीं भावनगर में १९६९ में 'श्री महावीर जैन विद्यालय' (वास्तव में जैन छात्रालय) की स्थापना हुई थी। तीन मंजिल का मकान था जो शहर से दूर तलाजा रोड़ पर था। जो संस्कार मंडल से लगभग १ कि.मी. की दूरी पर था। संस्कार मंडल से विद्यालय तक और आगे मीलों तक कोई बस्ती नहीं थी। कुछ रबारियों के कच्चे घर व ढ़ोर बाँधने की जगह थी। पास ही नाले के किनारे कुछ छुट–पुट झोंपड़े थे। जहाँ अधिकांशतः देशी शराब की भट्टियाँ गेरकानूनी तौर पर कार्यरत थीं। यहाँ ये सब असामाजिक लोग गेरकानूनी कार्य करते थे। इस कारण से होस्टल में विद्यार्थी डर के मारे कम ही आते थे। कोई गृहपति के रूप में रहने को तैयार नहीं था। होस्टेल में ३०–४० विद्यार्थी थे, जबकि १०० विद्यार्थियों के रहने की पूर्ण व्यवस्था थी। विद्यालय का स्थानिक ट्रस्टी मंडल गृहपति की खोज में था।

हमारी कॉलेज में श्री शशीभाई पारेख जो जैन थे– प्राध्यापक थे। अच्छे व्यवसायी के पुत्र थे। विनल मोटर नामकी फर्म थी। एकदिन आ. त्रिवेदीजीने उनसे कहा, 'क्या जैन–जैन की रट लगाते हो। यह शेखरभाई तुम्हारे जैन हैं। उन्हें मकान क्यों नहीं दिलवाते?' शशीभाई ने आश्वासन दिया। उन्होंने विद्यालय के मंत्री श्री वाड़ीभाई शाह से चर्चा की। मेरी बात–चीत कराई वाड़ीभाई स्वयं अच्छे व्यापारी एवं रोटेरीयन थे। व्यवस्थापक की दृष्टि से बड़े चुस्त थे। उनके सामने समस्या थी कि बोर्डिंग श्वेताम्बर जैनों द्वारा, श्वेताम्बर विद्यार्थियों के लिये है। और मैं था दिगम्बर जैन। उन्होंने मुंबई हेड़ ऑफिस संपर्क किया और वहाँ से आदेश प्राप्त हो गया।

मुझे मकान चाहिये था और उन्हे गृहपति। सो बात बन गई। मैं निडर होकर कुछ कर दिखाने की तमन्ना से इस जंगल में भी सहर्ष आ गया। मुझे रहने के लिये पूरा बड़ा मकान जिसमें बड़े–बड़े बैडरूम, किचन आदि पूर्ण सुविधा थी। पहली बार इतना बड़ा मकान रहने को मिला था... अपार संतोष मिला। नौकर–फोन की सभी सुविधा थी। २०० रू. और वेतन के रूप में स्वीकृत हुए। यह तो वैसा ही हुआ कि चाही थी बैटने को झाली और मिल गया पूरा वृक्ष। मकान की समस्या हल हुई। सो अपने परिवार के साथ यहीं आकर रहने लगा। कॉलेज का

समय सुबह का था। सो लगभग १२ बजे से पूरे दिन–रात विद्यालय में ही रहता। विद्यार्थियों के साथ उनकी व्यवस्था, सुविधा, अभ्यास, परेशानियों में उनका मार्गदर्शक, दोस्त, शिक्षक एवं उनका पालक बनकर रहने लगा। विद्यालय में १९७२ से १९८२ तक दश वर्ष रहा।

विद्यालय की खट्टी-मीठी स्मृतियाँ

यहाँ भावनगर में जैसा कि मैंने पहले लिखा है विद्यालय शहर से दूर नाले के किनारे एकांत में था। यहाँ कुछ गुंडा तत्व विद्यार्थियों को दबाकर छोटी रकमे वसूल करते थे। विद्यार्थी भयभीत रहते थे। एक रबारी कमरों में जाकर विद्यार्थियों से पैसे वसूल करता था। भय के कारण वे मुझसे कहने में भी डरते थे। किसी तरह मुझे पता चला। विद्यार्थियों ने भी हकीकत बताई। हमारा चौकीदार भी रबारी था। पर थोड़ा डरपोक। मैंने उससे कहा 'कल शाम तक उसे मेरे पास लाओ अन्यथा तुम्हारी नौकरी नहीं रहेगी।' दूसरे दिन वह उस रबारी को लाया। मेरे अंदर एन.सी.सी. के सैकण्ड लैफ्टिनेन्ट का खुमार था– फिर अपनी धाक भी जमानी थी अतः कुछ दृढ़ निश्चय कर खुमारी से उस रबारी को अपने कार्यालय में ले गया। दरवाजा बंद किया। एक झूठा फोन डी.एस.पी के नाम से किया और बैल्ट निकालकर उसे मारने की धमकी भी दी और प्रहार करने को हाथ भी उठाया। रबारी मेरे उग्र रूप व पुलिस से संपर्क को समझकर गिड़गिड़ाने लगा। उसने माफी माँगी और जितने भी पैसे ले गया था वह सब लौटाने का वचन देकर गया। शाम को पैसे तो लौटा ही गया उस दिन सभी विद्यार्थियों को मुफ्त में दूध भी पिला गया। इस घटना से इस एरिया में मेरी धाक जम गई। विद्यार्थी भी मेरी निडरता से स्वयं को रक्षित मानने लगे।

इसी प्रकार एक बार एक रसोईया के साथ घटना घटी। वह शरीर से ताकतवर था। गुंडों के संपर्क में था। अतः खराब रसोई होने पर भी विद्यार्थियों पर रोब जमाता था। डर के मारे विद्यार्थी उसकी शिकायत नहीं करते थे। एकदिन मैंने उसे कार्यालय में बुलाकर समझाना चाहा। पर वह तो उल्टे मुझ पर बरस पड़ा। मुझे धोंस में लेना चाहा और ऑफिस से बाहर निकल गया। मुझे भी गुस्सा आया। चार–पाँच लड़के भी खड़े थे। मैंने उसे जोर से थप्पड़ मारा, सो वह रेलींग से लगभग चार–पाँच फुट नीचे गिरा। हमारे दो–तीन लड़के भी उस पर टूट पड़े। खूब पिटाई की। वह भाग कर पीछे सरदारनगर में गुंडों के पास गया। जब उन गुंडो को पता चला कि वह मेरे विरुद्ध कार्यवाही कराने आया है तो वे सब मुकर गये बोले– 'जैन साहब के विरुद्ध हम कुछ नहीं करेंगे। वे बड़े पहुँच वाले हैं– हमारे गुरू हैं।' इधर हमने पुलिस में भी फरियाद लिखाई सो पुलिस भी आ गई। उसे ढूँढकर ले गई और वहाँ उसे इतना पीटा कि उसे आठ–दस दिन अस्पताल में रहना पड़ा। इससे वह समझ गया कि यहाँ दाल नहीं गलेगी। लौटकर आया क्षमा माँगकर भावनगर ही छोड़कर चला गया।

ऐसी एक घटना थी कि आजूबाजू वाले गोपालक विद्यार्थी विद्यालय परिसर में अपने पशु चरने को छोड़ देते थे। इससे बागवानी नहीं हो पाती थी और परेशानी भी रहती थी। मैंने उन्हें बुलाकर समझाया पर वे अपनी अकड़ में रहे। एकदिन उसे बुलाकर कहा 'बता तुझे मार कहाँ खानी है। यहाँ ऑफिस में या पुलिस स्टेशन में या तेरे घर?' उसे लगाकि यहाँ कुछ नहीं चलेगा। सो दूसरे दिन से ढोरो का आना बंद हो गया। मैं वहाँ १० वर्ष रहा वहाँ कोई व्यवधान नहीं रहा। इन घटनाओं से विद्यार्थी तो सुरक्षित हुए ही पूरा व्यवस्थापक मंडल खुश था कि विद्यालय सुरक्षित हो गया है।

मैंने विद्यार्थियों में शिस्त, जैन पाठशाला, पूजा, दर्शन–आरती एवं अध्ययन के प्रति रूचि उत्पन्न करने के खूब प्रयत्न किये और महदअंशों में सफल भी हुआ। विद्यार्थियों को नित्य प्रक्षाल और पूजा के

प्रति प्रोत्साहित किया। उनकी रूचि बढ़ने से पाठशाला भी नियमित चलने लगी। विद्यार्थी रात्रि में पढ़ने के प्रति भी लगाव से पढ़ने लगे।

विद्यालय में जैन धर्म के नियमों का पालन आवश्यक था। कोई कंदमूल, अभक्ष्य न तो रसोईघर में खा सकता था और न अपने कमरे में। रात्रि भोजन का सर्वथा निषेध था। और रात्रि के दस बजे से पूर्व विद्यालय में उपस्थिति अनिवार्य थी। पहले यह नियम सिर्फ कागज पर थे। पर अब उनका पालन करना अनिवार्य हो गया। यद्यपि लड़कों को अच्छा नहीं लगा। पर नियम तो नियम। अनेक विद्यार्थियों को शाम देर से आने पर भूखा भी रहना पड़ता। रात्रि में देर से आने पर दंड भी भरना पड़ता और धार्मिक परीक्षा में फैल होने पर अगले वर्ष का प्रवेश भी रुक जाता।

मैं विद्यार्थियों के साथ पितृवत व्यवहार करता। उनकी सुविधाओं का ध्यान रखता। उनकी समस्यायें हल करना। उन्हें खेल–कूद, कॉलेज की विविध स्पर्धाओ में तैयार करने के लिए विद्यालय में स्पर्धाओं का आयोजन करता। इससे उनकी प्रतिभाओं का परिचय भी मिलता। हमारा यह विद्यालय भावनगर के ४०–५० ऐसे ही निवासी विद्यालयों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सका।

पढ़ने का प्रयोग

मैं चाहता था कि विद्यार्थी खूब पढ़ें। वर्तमान युग में नई हवा लगने से उनकी रूचि पढ़ने में कम और बाह्य मौज–शौक में अधिक बढ़ने लगी। जब मैं उनसे पूछता कि इतने कम अंक क्यों आते हैं? तब वे कहते 'सर कुछ याद नहीं रहता' मुझे बड़ा आश्चर्य रहता कि इस ऊगती युवावस्था में याद नहीं रहता!

सन् १९७७ में मैंने एक प्रयोग किया। यद्यपि में १९६९ में पी–एच.डी. कर चुका था। कॉलेज में विभागाध्यक्ष था पर विद्यार्थियों के लिए मैंने चेलेन्ज के रूप में विद्यार्थियों से कहा 'ठीक है– तुम्हें १८–२० वर्ष की उम्र में याद नहीं रहता और मैं ४२ वर्ष की उम्र में याद कर सकता हूँ। इसी हेतु मैंने एल–एल.बी. का रेग्युलर कोर्स करने की ठानी और कॉलेज में दाखिला ले लिया।' मैं विद्यार्थियों के साथ ही उनके कमरों में जाकर पढ़ता और तीन वर्ष में पूरा एल–एल.बी. का कोर्स पूर्ण किया और अच्छे अंकों से डिग्री प्राप्त की। होस्टेल के विद्यार्थी चकित भी हुए और उन्हें पढ़ने की प्रेरणा भी मिली।

विद्यालय परिसर में मंदिर निर्माण

ऐसा ही एक प्रसंग होस्टेल के प्रांगण में नवनिर्मित मंदिर के संबंध में भी है। यद्यपि होस्टेल श्वेताम्बर विद्यार्थियों के लिये था। स्थानिक व मुंबई का मैनेजेन्ट श्वेताम्बर लोगों के हाथ में था मैं एकमात्र दिगम्बर जैन उनके पूरे परिवार में गृहपति था। परंतु मेरी सहिष्णुता, आम्नायों के प्रति समन्वयभावना व तटस्थता से वे सभी अत्यंत प्रभावित थे। मुझ पर पूर्ण विश्वास करते थे अतः मंदिर की नींव से लेकर पूरा निर्माण व प्रतिष्ठा का कार्य मेरे ही तत्त्वावधान में संपन्न हुआ। इसे मैं जैनधर्म की एकता के लिए उदाहरण स्वरूप मानता हूँ।

सन् १९८१ में स्थानिक मैनेजमेन्ट से शिस्त के संदर्भ में कुछ खटाश आने लगी। कारण कि वे चाहते थे कि शिस्त के नियमों को कुछ ढीला किया जाय। पर मैं ऐसा करने में असमर्थ था। अतः मैंने १९८२ में विद्यालय के गृहपति पद से त्यागपत्र दे दिया और विद्यालय के सामने ही रूपाली सोसायटी में अपना मकान बना लिया। विद्यालय छोड़ने पर भी मेरा मन विद्यालय की प्रगति में ही लगा रहता था।

साक्षर श्री रमणभाई चि. शाह से परिचय एवं पर्युषण व्याख्यान माला

इस महावीर जैन विद्यालय में ही मेरा परिचय मध्यस्थ कार्यकारिणी के सदस्य गुजराती के प्राध्यापक विद्वान डॉ. श्री रमणभाई चि. शाह से हुआ। एकबार वे भावनगर विद्यालय के दौरे पर अवलोकनार्थ आये। दो दिन उनके साथ रहने का मौका मिला। मेरा पढ़ना–लिखना, वक्तव्य आदि से प्रभावित होकर उन्होंने मुझे देश की प्रसिद्ध संस्था 'मुंबई जैन युवक संघ' जो पर्युषण में आठ दिन में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कक्षा के विद्वान वक्ताओं को आमंत्रित करती है... उस मंच से पर्युषण व्याख्यान माला में प्रवचनार्थ बंबई के लिए आमंत्रित किया। भावनगर से बंबई इस पर्युषण व्याख्यान माला में प्रथमबार निमंत्रित हुआ। हृदय में बड़ा आनंद था। पर धुकपुकी भी लगी रहती थी कि क्या होगा। इतने बड़े मंच से बौद्धिकों के बीच एक घंटे बोलना..... पर आत्मविश्वास था, लगन थी सो लगभग एक माह पूर्व से विषय की तैयारी की। आलेख लिखा टाईप कराया, कैसेट में भरा और समय की सीमा में बोलने का कई दिन रिहर्सल किया। इसका परिणाम यह आया कि पहली बार ही अपेक्षा से अधिक सफलता मिली।

स्मरणीय प्रवचन

इस प्रकार एकबार इसी व्याख्यान माला में जो भारतीय विद्या भवन के विशाल सभा खंड में आयोजित था। उन दिनों आचार्य रजनीश की कृति 'संभोग से समाधि' की बड़ी चर्चा थी। इधर हिन्दी साहित्य जगत में भी मनोविश्लेषणवादी, अस्तित्ववादी साहित्य की गहन चर्चा थी। अज्ञेय जैसे साहित्यकार जो फ्रोईड, जुंग आदि से प्रभावित थे, सभी समस्याओं का निदान जैसे भौतिक और शारीरिक भूख की तृप्ति में खोज रहे थे। मैंने १९६९ में ही दिनकर जी पर पी–एच.डी. का कार्य संपन्न किया था। उर्वशी जैसी कृति ने एक ओर प्रेम, सौंदर्य और काम जैसे विषयों पर विस्तृत प्रस्तुति हुई थी। यद्यपि इससे पूर्व श्री जयशंकरप्रसादजी की कामायनी में भी प्रेम, सौंदर्य, काम, वासना आदि की बौद्धिक चर्चा हो चुकी थी। दोनों कृतियों में प्रेम, सौंदर्य, काम की चर्चा व आवश्यकता का स्वीकार तो किया था पर उसका शमन या परणति तो त्याग–तप–संतृप्ति में ही पाया गया था। जहाँ पश्चिमी साहित्य काम–तृप्ति पर ही अपनी इति कर लेता है वहीं भारतीय साहित्य काम की तृप्ति के पश्चात राम को खोजता है। पश्चिम की यात्रा काम तक सीमित है। पर हमारी यात्रा राम तक विस्तृत है। हमारा वानप्रस्थाश्रम इसका प्रतीक है। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर मेरा प्रवचन 'काम से मोक्ष' व्याख्यानमाला में प्रस्तुत हुआ। विषय के विज्ञापन के कारण बौद्धिकों की भी उपस्थिति और उसमें भी आचार्य रजनीश के शिष्यों की उपस्थिति विशेष थी। मैंने एक घंटे में यह सिद्ध किया कि हमारी मंज़िल तो काम से तृप्त होकर राम की ओर बढ़ना है। उस लोक में पहुँचना है जहाँ काम की इति और राम का जन्म होता है। अर्थात् भोग से मुक्ति पाकर योग और आत्मा के साथ जुड़ने का क्रम हो; उस लोक में जहाँ हर पुरूष शिव और हर नारी शिवा हो। प्रवचन खूब जमा। उसके कैसेट भी त्रिशला इलेक्ट्रोनिक्स वालों द्वारा खूब बेचे गये।

इस प्रकार इस व्याख्यानमाला में ७–८ वर्षों तक विविध विषयों पर वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर प्रवचन हुए। बंबई में ऐसा होता है कि जो वक्ता इस युवक संघ कि ओर से आमंत्रित होते हैं उन्हें वहाँ उपनगर के जैन संघ अपने यहाँ आयोजित व्याख्यानमाला में आमंत्रित करते हैं। इसी श्रृंखला में मैंने बंबई के अनेक उपनगरों में व्याख्यान दिये।

बंबई का यह मंच जिसमें प्रायः वक्ता को एकबार बुलाने के पश्चात, दूसरी बार जल्दी नहीं बुलाते। नित नये वक्ताओं को ही आमंत्रित किया जाता है। पर मेरा यह सौभाग्य रहा कि ६–७ वर्षों तक निरंतर आमंत्रित होता रहा। इससे बंबई के अनेक गण्यमान्य लोगों से परिचय व आत्मीयता बढ़ी। बंबई के उपरांत अहमदाबाद में गुजरात युवक केन्द्र की ओर से आयोजित व्याख्यानमाला में नियमित प्रवचन देता रहा। दश लक्षण में भी विविध नगरो में व्याख्यान के साथ णमोकार मंत्र के शिविर आयोजित करता रहा।

शिक्षण जगत की राजनीति

शिक्षण जगत की अपनी ही एक राजनीति होती है। मैं १९७२ में भावनगर की वलिया आर्ट्स एण्ड महेता कॉमर्स कॉलेज में विभागाध्यक्ष बनकर आया था उसका उल्लेख कर ही चुका हूँ। हम सात–आठ प्राध्यापक नये ही थे। जैसाकि स्वाभाविक रूप से होता है नये और पुरानों का अलग–अलग गुट सा बन जाता है। इसमें वह इर्ष्या भाव भी काम करता है जिसके कारण पुराने व्याख्याता जिन्हें पदोन्नति नहीं मिल पाती है। दूसरे प्रादेशिकता भी काम करती है। सौराष्ट्र में गुजरात के लोगों का समावेश कम ही हो पाता है। फिर अन्य प्रदेशों की तो बात ही क्या? मैं तो गुजराती भी नहीं था। पर गुजरात में ही जन्मा, बड़ा हुआ, पढ़ालिखा था। दूसरे सौराष्ट्र में अमरेली व राजकोट में तीन वर्ष काम कर चुका था। अतः विशेष तकलीफ नहीं हुई। दूसरे मेरे स्वभाव के कारण मेरा मित्र सर्कल बड़ा ही होता गया। इसका कारण यह भी था कि मैं सबसे अधिक सीनियर था। विभाग के अध्यापकों से भातृवत् व्यवहार करता था। उनकी स्वतंत्रता की कद्र करता था। थोड़ा सा शायराना मिज़ाज था, लेखन का शौक था इन सबसे अधिक प्रेम मिला। तदुपरांत शामलदास कॉलेज के अध्यक्ष डॉ. मजीठियाजी, उनकी धर्मपत्नी डॉ. कृष्णाबेन एवं श्री जयेन्द्रभाई का विशेष समर्थन था। इसीके साथ श्री महावीर जैन विद्यालय में गृहपति होने के कारण शहर में समाज के लोगों से भी परिचय बढ़ा। अतः सद्यः लोकप्रियता लोगों को अच्छी नहीं लगी। पर ऐसे लोग थोड़े ही थे।

कॉलेज में हम सिनियर प्राध्यापकों और व्याख्याताओं की मैत्री अधिक दृढ़ होती गई। मैं भी भावनगर में स्थिर होने का मन बना चुका था। बच्चे भी अब बड़े हो रहे थे। स्थान भी अच्छा था। वातावरण शांत था। अतः पूर्ण स्थायित्व की दृष्टि से यहाँ काम करता था। हमारे सर्कल में प्रो. शशीभाई पारेख, प्रा. भरतभाई ओझा (बाद में जो कुलपति भी हुए), प्रा. शरद शाह, प्रा. श्री पटेल, श्री ए.पी. बंधारा आदि प्रमुख थे। कॉलेज की एक घटना १९७२–७३ में घटी जिसने स्थायी रूप से अध्यापकों को दो दलों में विभाजित कर दिया। मैनेजमेन्ट से भी संघर्ष हुआ। घटना एक सिनियर अध्यापक एवं एक अध्यापिका के प्रेम प्रकरण के संबंध में थी। इस घटना से अध्यापकों का मतभेद, मनभेद में बदला और अंत तक चलता रहा; कॉलेज में सदैव दो दल बने रहे।

कॉलेज में स्थायित्व

१९७४ में कॉलेज में दो वर्ष पूर्ण होने को थे। हमारा ग्रुप जींजर ग्रुप था। सभी मस्त मौला– सत्य के लिए सदैव संघर्षरत। कॉलेज में सिनियोरिटी का प्रश्न था। श्री नर्मदाशंकर त्रिवेदी के रिटायर्ड होने पर श्री तख्तसिंहजी परमार आचार्य हुए। मैनेजमेन्ट अपनी नीति के अनुसार बाँटो और राज्य करो की नीति अपना रहा था। इधर हम लोगों के दो वर्ष पूर्ण हो रहे थे। अतः नियमानुसार सबको स्थायी करना जरूरी था। यद्यपि उस समय प्रोबेशन पर लगे अध्यापकों को सरकार से कोई विशेष रक्षण नहीं था। पंद्रह मार्च को ऐसे अध्यापकों पर तलवार लटकती

रहती थी। मैनेजमेन्ट की खुशी–नाखुशी पर नौकरी का दारो–मदार था। हम जींजर ग्रुप के लोगों पर ऐसे ही संकट के बादल मँडरा रहे थे।

मैनेजमेन्ट में श्री हरभाई त्रिवेदी जैसे महान शिक्षणकार, विद्याप्रेमी, सत्यनिष्ट एवं तटस्थ व्यक्ति थे तो साथही श्री जगुभाई परीख साहब जो कभी सौराष्ट्र राज्य में मंत्री थे– वे अध्यक्ष थे। दोनों महानुभाव सचमुच तटस्थ एवं न्यायप्रिय थे। श्री हरभाई त्रिवेदी तो ७०–७५ वर्ष की उम्र में भी युवकों की तरह उत्साही थे। वे मुझसे विशेष प्रीति रखते थे। मैं महावीर जैन विद्यालय का गृहपति था। वे विद्यालय पधार चुके थे। मेरे लेखन कार्य को पढ़ चुके थे अतः मुझे स्नेह से जैनमुनि कहते थे।

नवनिर्माण आंदोलन का लाभ

उस समय शिक्षण जगत में एक ऐसी घटना हुई जिससे १५ मार्च को अध्यापकों पर लटकने वाली तलवार तो दूर हो गई उल्टे सभी को नियमित रूप से स्थायी करना पड़ा। यह घटना थी नवनिर्माण के आंदोलन की। पूरे गुजरात में इसका नेतृत्व अध्यापकों और विद्यार्थियों के पास था। जिसमें अध्यापकों की भूमिका विशेष थी। वास्तव में यह आंदोलन गुजरात युनिवर्सिटी अध्यापक मंडल की ओर से प्रो. के.एस. शास्त्री के नेतृत्व में चलाया जाता था। जिसमें पूरे गुजरात के अध्यापक सक्रिय हो गये थे। जनता का अकल्पनीय सहयोग प्राप्त होने से गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल की सरकार ही धराशायी हो गई थी। मैंने भी उसमें भावनगर युनिवर्सिटी एवं कॉलेज के अध्यापक मंडल के कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में विशेष हिस्सा लिया। भावनगर में गिरफ्तारी दी और भागकर अहमदाबाद भी आ गये। इस अध्यापक आंदोलन की सबसे बड़ी फलश्रुति यह थी कि कॉलेज के मैनेजमेन्ट की मनमानी बंद हो गई। इससे नौकरी में एक स्थिरता प्राप्त हुई।

सीनियोरिटी

उन दिनों कॉलेज में अध्यापकों की तीन श्रेणियाँ हुआ करतीं थीं। (१) प्रोफेसर (२) व्याख्याता (३) ट्यूटर। हम सात–आठ नये विभागाध्यक्ष थे। एक–दो कॉलेज में से ही पदोन्नति पाकर प्राध्यापक बने थे। प्रश्न था कि सीनियोरिटी कैसे तय की जाय।

आचार्यश्री तख्तसिंहजी परमार के समक्ष प्रश्न को लाया गया। जो प्राध्यापक पहले से ही कॉलेज में थे उनकी प्रस्तुति थी कि कॉलेज की वर्षों की सेवा को ध्यान में रखकर उन्हें ही सीनियर माना जाये। जबकि हमलोगों की प्रस्तुति थी कि प्राध्यापक का पद ही सीनियोरिटी के लिये ध्यान में लिया जाय। चूँकि हम लोगों की सभी नियुक्तियाँ एक ही तारीख को हुई थी अतः तय किया गया कि सेवा की कुल अवधि ध्यान में ली जाय। साथ ही शैक्षणिक योग्यता को भी वरीयता प्रदान की जाय। इसपर सभी एकमत हो सके। सभी अध्यापकों में मैं ही अकेला पी–एच.डी. था। मेरा सेवाकार्य भी व्याख्याता एवं प्राध्यापक का ११ वर्ष का हो चुका था। अतः मुझे ही कॉलेज के आचार्य के बाद सीनियर मान लिया गया। परोक्ष रूप से यह उपाचार्य का ही पद था। नियमानुसार मुझे प्राचार्य की अनुपस्थिति में प्राचार्य का चार्ज प्राप्त होने लगा।

विभागाध्यक्ष होने से युनिवर्सिटी में पद

विभागाध्यक्ष होने के कारण सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के नियमानुसार (उस समय भावनगर युनिवर्सिटी अलग नहीं थी) मुझे हिन्दी की अभ्यास समिति का सदस्य बनने का अवसर मिला। इस हेतु अनेकबार राजकोट मीटिंगो में

जाने का, हिन्दी के अभ्यासक्रम को अधिक लोकोपयोगी बनाने का अवसर भी मिला।

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी की स्थापना १९६५–६६ में हुई। जिसका मुख्यालय राजकोट था। परंतु भावनगर के विरोध आंदोलन आदि के कारण युनिवर्सिटी के दो कार्यालय किये गये। शैक्षणिक विभागों का भी बँटवारा हुआ कुलपति राजकोट में होते थे तो उपकुलपति भावनगर में। यह व्यवस्था कुछ वर्षों तक चली और बाद में भावनगर युनिवर्सिटी को स्वतंत्र युनिवर्सिटी का दर्जा प्राप्त हुआ।

आचार्य पद

इधर आचार्य तख्तसिंहजी परमार जिन्हें शामलदास कॉलेज में ही आचार्यपद प्राप्त हो गया। हमारी कॉलेज में यह स्थान रिक्त हुआ। मेरी स्वयं की और पूरे अध्यापक खंड की यह भावना थी कि मुझे प्राचार्य पद दियाजाय। परंतु मैनेजमेन्ट और सविशेष व्यवस्थामंडल के एक मंत्री, जो गुजरात के विधायक थे.... वे नहीं चाहते थे कि मैं प्राचार्य बनूँ। अतः मुझसे जुनियर कम योग्यता वाले बाहर के एक प्राध्यापक श्री पंड्याजी को आचार्य पद पर नियुक्त किया। वे युवा थे पर अनुभव की कमी थी। जब उन्होंने जोश में आकर सौराष्ट्र के लोगों को ही भला–बुरा कहा तो बात और विगड़ गई। आखिर एकवर्ष के बाद ही वे त्यागपत्र देकर चले गये। पुनः आचार्य पद का स्थान रिक्त हुआ। चूँकि पंड्या साहब की निष्फलता, विद्यार्थियों में असंतोष और उसके कारण जो वातावरण बना उसके कारण इसबार मैं सर्वानुमति से आचार्य पद पर पसंदगी प्राप्त कर सका।

यद्यपि मैं इससे एकवर्ष पूर्व स्थानिक कापड़िया महिला कॉलेज में एकवर्ष के लियन पर प्राचार्य के रूप में कार्य करने लगा था। जून १९८० में अपनी ही कॉलेज में आचार्य पद पर नियुक्त हुआ। प्राचार्य पद पर नियुक्त तो हुआ परंतु गृहदशा ठीक न होने से मुझे रीढ़ की हड्डी की अतिशय वेदना ने जकड़ लिया। अनेक दवाएँ करानी पड़ी। पर परेशानी और दर्द बढ़ता ही गया। नया–नया आचार्य का पद और इस बीमारी के कारण कार्य में विघ्न और समस्याएँ बढ़ गई। परंतु मैनेजमेन्ट अध्यापक खंड और विद्यार्थियों के सहयोग से कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। किसी तरह डेढ़ वर्ष पूरा गुजरा और फरवरि १९८१ में रीढ़ की हड्डी में दरार पड़ने से असह्य स्थिति होने पर तुरंत अस्पताल में दाखिल कराना पड़ा और ऑपरेशन किया गया। पूरे तीन महिने बिस्तर पर पड़ा रहा। मेरे इस पूरे इलाज और ऑपरेशन में मेरे रोटेरीयन मित्र डॉ. श्री वीरडियाजी ने जो मदद की थी– आजीवन स्मरण रहेगी। डॉ. वीरडिया डबल एम.एस. थे। सर तख्तसिंहजी अस्पताल में ओर्थोपेडिक सर्जन थे। युवा और हँसमुख तथा परोपकार की भावना से भरे हुए थे। उन्होंने मेरा ऑपरेशन किया, मानो मुझे नया जीवन ही प्रदान किया। कॉलेज की गतिविधियाँ अपने ढंग से चलती रहीं। नये उत्साह में अनेक कार्यक्रम होते रहे। भावनगर युनिर्विसिटी में प्राचार्य पद की दृष्टि से सेनेट का सदस्य भी बन गया। डॉ. मजीठियाजी के पश्चात छह वर्ष तक हिन्दी अभ्यास समिति का चैयरमेन भी रहा तो तीन वर्ष के लिए एकेडेमिक काउन्सिल में निर्वाचित सदस्य के रूप में भी काम किया।

शिक्षण संस्थाओं में राजनीति का प्रवेश हो गया था। अध्यापकों में स्पष्ट रूप से दो विभाग हो गये थे। हमारी युनिवर्सिटी और कॉलेज में भी ऐसा ही माहौल था। मैं भी एक धड़े का पक्षधर नेता था। युनिवर्सिटी और कोलेज स्तर पर चलनेवाली उठक–पटक में हमारा पक्ष संख्या और शक्ति की दृष्टि से मजबूत था। स्थानिक युनिवर्सिटी होने से हम लोग अध्यापन के पश्चात इसी में उलझे रहते थे। अनेक स्थानों पर विजय भी प्राप्त हुई। लगता था तीन घंटे कॉलेज में अध्यापन करने के पश्चात पूरे दिन हमारे पास कोई काम ही नहीं। शाम का वक्त इसी उधेड़बुन में व्यतीत होता था। इससे समर्थकों और विरोधियों की होड़ सी लगी रहती थी।

जैन दर्शन में मार्गदर्शक

भावनगर युनिवर्सिटी के कुलपति के रूप में अहमदाबाद की गुजरात कॉलेज के प्रोफेसर श्री पंड्याजी की नियुक्ति हुई। वे फिलोसोफी के प्रोफेसर थे। उनके पदग्रहण करते ही विरोधी दल के लोगों ने हमारे ग्रुप के प्रति और सविशेष मेरे प्रति उन्हें पूर्वाग्रह से भर दिया। उस समय मुझे भावनगर युनिवर्सिटी में जैन दर्शन के विशेष अध्येता के रूप में जैन दर्शन में पी–एच.डी. के निर्देशक की मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। मैं शुभेच्छा मुलाकात के लिए श्री पंड्याजी से मिलने गया। पूर्वाग्रह से भरे हुए वे पद की गरिमा और सौजन्यता भूलकर मुझसे उलझ गये। उन्होंने पहला वाक्य ही यह कहा कि– 'मैं जैन दर्शन को कोई दर्शन नहीं मानता।' मैंने भी उन्हें अपने स्वभाव के अनुसार तर्क और आक्रोश से उत्तर दिया और बाहर निकल गया। उन्होंने बदले की भावना से मेरी जैनदर्शन की मार्गदर्शक की मान्यता रद कर दी। इससे मुझे कोर्ट में जाना पड़ा और उनके विरुद्ध लड़ना पड़ा।

हिन्दी भाषा के लिए संघर्ष

उस समय भावनगर में चार आर्ट्स कॉलेज थे और संयोगवशात चारों में प्राचार्य हिन्दी विषय के अध्यापक थे। यह बात वहाँ के सभी कॉलेजो के प्राध्यापकों को खटकती थी। पर हम चारों आचार्य श्री जयेन्द्रभाई त्रिवेदी, डॉ. सुदर्शन मजीठिया, डॉ. शेख और मैं। चारों की सक्षमता के कारण कोई हमारे सामने खुले रूप से टीका–टिप्पणी नहीं कर पाता था।

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी की परंपरा पर भावनगर युनिवर्सिटी ने भी कॉलेज के प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीनों वर्षो में अंग्रेजी विषय के विकल्प के रूप में हिन्दी विषय अनिवार्य था तो प्रथम व द्वितीय वर्ष में वह द्वितीय विषय के रूप में अनिवार्य था। इससे पूरे कॉलेज में हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापकों की संख्या अधिक थी। कुछ हिन्दी विरोधी तत्वों ने पूर्वाग्रही कुलपति के साथ एकबार ऐसा षड़यंत्र किया कि– एकबार की फैकल्टी मीटिंग में डॉ. मजीठीया, मेरी एवं शेख साहब की अनुपस्थिति में हिन्दी की अनिवार्यता को ही खत्म कर दिया। जब हमें यह पता चला तो बड़ा धक्का लगा। उस समय मैं हिन्दी अभ्यास समिति का अध्यक्ष था। मुझे लगा कि जब भी युनिवर्सिटी का इतिहास लिखा जायेगा तो यह उल्लेख होगा कि डॉ. जैन के अध्यक्षपद में हिन्दी विषय की दुर्गति हुई। हमलोग व्यक्तिगत रूप से सभी फैकल्टी के सदस्यों से मिले उन्हें अपना पक्ष समझाया। विरोधी लोग तो खुश थे। पर हमारी मुँहदेखी बात करके दोषारोपण दूसरों पर करते और हमारे सामने सहानुभूति प्रकट करते। प्रस्ताव पास हो चुका है। ऐसा बहाना बनाकर अपना बचाव कर लेते।

मैंने, डॉ. मजीठिया और डॉ. शेखने युक्ति की और सभी सदस्यों से कहा कि यह निर्णय जल्दबाजी में हुआ है, हमें पुनः विचार हेतु फैकल्टी की मीटिंग आहूत करनी चाहिए। हमारा पक्ष आप लोग सुन लें, फिर चाहें वह निर्णय करें। लोगों ने इसपर अपनी सहमति व्यक्त करते हुए हमें अपने हस्ताक्षर प्रदान किए। हमने कुलपति महोदय को पुनः फैकल्टी बुलाने हेतु निवेदन किया जिसे उन्होंने खारिज कर दिया। अतः मैं तत्कालीन गुजरात राज्य के महामहिम राज्यपाल श्री त्रिवेदीजी– जो पदानुसार युनिवर्सिटी के कुलाधिपति थे– उनसे मिलकर उन्हें पूरी परिस्थिति समझाई। इसमें श्री जे.पी. पांडे साहबने हमारी सहायता की। कुलाधिपतिजी ने हमारे पक्ष को सुना, समझा और कुलपतिजी को पुनः फैकल्टी की मीटिंग में इस विषय पर चर्चा करने का आदेश दिया। अनेक आनाकानी के बाद आखिर आर्ट्स फैकल्टी की मीटिंग हुई। पहली बार कुलपति स्वयं उपस्थित रहे। हम लोगों ने अपने पक्ष को राष्ट्रभाषा के महत्त्व के संदर्भ में प्रस्तुत किया और मतविभाजन पर आखिर हमारी विजय हुई। यह

हमारी प्रथम विजय थी। कुलपतिजी को यह विश्वास था कि भले ही फैकल्टी में यह लोग जीते हों पर ऐकेडेमिक काउन्सिल में यह प्रस्ताव वे निरस्त करा लेंगे।

ऐकेडेमिक काउन्सिल में सभी विषयों के डीन एवं विविध फैकल्टी के चुने हुए सदस्य होते हैं। हमने इसमें भी पूरा जोर लगाया क्योंकि मैं और डॉ. मजीठिया ऐकेडेमिक काउन्सिल के सदस्य थे। वहाँ अनेक दलीलें हुईं, तर्क हुए यहाँ तक कि कुलपतिजी से गाली–गलौच तक हो गया। लेकिन अंत में हमारी ही विजय हुई। कुलपतिजी ने हिन्दी की जो स्थिति पैदा की थी, नए सत्र से अनिवार्य के स्थान पर वैकल्पिक दर्जा दिया था– जिसका वे परिपत्र कॉलेजों को भेज चुके थे– वह उन्हें वापिस लेना पड़ा। इससे उनकी बड़ी किरकिरी हुई।

उस समय गुजरात राज्य के शिक्षा मंत्री श्री प्रबोधभाई रावल थे। भावनगर युनिवर्सिटी में श्री पंड्याजी का कार्यकाल पूरा हो रहा था, नये कुलपतिकी नियुक्ति का प्रश्न चल रहा था। पंड्याजी दूसरी बार पद के इच्छुक थे। श्री प्रबोधभाई रावल ने अपनी कार्य पद्धति के अनुसार भावनगर के प्रतिष्ठित शिक्षाविद अध्यापकों आदि से अभिप्राय प्राप्त किया। मैंने तो स्पष्ट रूप से लिखित रूप में यह दिया कि ऐसे शिथिल व्यक्तित्व को इस पद के लायक ही नहीं मानना चाहिए। आखिर पंड्याजी का चयन नहीं हो सका। पर जाते–जाते वे आम लोगों के बीच यह कहते गये की डॉ. जैन के कारण मैं पुनः इस पद को नहीं पा सका। उनके जाने से यह प्रकरण पूरा हुआ। हिन्दी तो बच गई पर पंड्याजी चले गये और मुझे भी जैनदर्शन में पुनः पी–एच.डी. के मार्गदर्शक के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

भावनगर की विविध प्रवृत्तियाँ

भावनगर में मुझे अनेक शिक्षणेतर प्रवृत्तियों में हिस्सा लेकर कार्य करने का मौका मिला। जिनमें मुख्य रूप से रोटरी क्लब, भारत जैन महामंडल, हिन्दी समाज एवं शिक्षण संस्कार पत्रिका चलाने के कार्य मुख्य था।

रोटरी क्लब

श्री महावीर जैन विद्यालय के मंत्री श्री वाडीभाई शाह के आग्रह पर एवं तत्कालीन भावनगर रोटरी क्लब के प्रेसीडेन्ट डॉ. श्री पोपट साहब जो सिविल सर्जन थे– उनकी प्रेरणा से मैं रोटरी क्लब का सदस्य बना और दस वर्षों तक उसका सक्रिय सदस्य ही नहीं विविध समितियों का सदस्य या कार्यकारिणी का सदस्य रहा। जिनमें सबसे महत्वपूर्ण था जेल समिति का चेयरमैन पद। मैं रोटरी क्लब की ओर से नियमित भावनगर की सेन्ट्रल जेल की मुलाकात के लिए जाता। वहाँ कैदिओं से मिलता, उनके जीवन का अध्ययन करता। इस अध्ययन से मैंने जाना कि अधिकांशतः किए गये अपराध क्रोध या भावावेश में ही किये गए हैं। ८० प्रतिशत कैदी अपने किये पर दुःखी थे, वे सुधरना चाहते थे। २० प्रतिशत कैदी आदतन गुनहगार थे। कई तो उच्च शिक्षा प्राप्त भी थे। मैं अनेक संतों, विद्वानों के वहां प्रवचन कराता था, खेल–कूद का आयोजन करवाता था और राष्ट्रीय त्यौहारों पर कार्यक्रम आयोजित करता था। जेल का यह बड़ा ही रोमांचक अनुभव था।

इसी प्रकार मैं रोटरी क्लब के बुलेटीन का चेयरमैन रहा और नियमित प्रकाशन करता रहा। रोटरी क्लब डिस्ट्रीक्ट ३०६ की क्लबों के महासम्मेलन में दो बार गया और दोनों बार वाक् प्रतियोगिता में मुझे प्रथम स्थान व पुरस्कार प्राप्त हुआ। क्लब की शिक्षण समिति आदि में मैंने कार्य किया। मैं ही एक ऐसा रोटेरीयन था जो जैन धर्म के सिद्धांतों के कारण रात्रि में भोजन नहीं करता था। प्रारंभ में मुझे व अन्य रोटेरीयन मित्रों को भी अटपटा लगा। पर मज़े की बात यह थी कि अन्य जैन रोटेरीयन मित्रों में से कुछ ने मेरे साथ ही रात्रिभोजन का त्याग

किया। रोटरी क्लब के सदस्य और विविध समितियों के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष रहने से भावनगर के अनेक लब्ध प्रतिष्ठित व्यापारी. वकील, जज, डॉक्टर्स, शिक्षाविद ऑफिसर्स से परिचय और मैत्री हुई।

हिन्दी समाज का गठन और संचालन

जैसे कि मेरी आदत रही है कहीं न कहीं कोई न कोई संगठनात्मक कार्य करना ही चाहिए ऐसा सोचता रहता था। सन् १९७४–७५ में मैं भावनगर रेल्वे डीवीज़न में हिन्दी सलाहकार समिति में मनोनीत सदस्य था। लगभग तीन वर्ष तक इसका सदस्य रहा। पूरे भावनगर डिविज़न में मुझे किसी भी रेल्वे स्टेशन पर जाकर हिन्दी की प्रगति, उसके शिक्षण आदि का जायजा लेने का अधिकार था। मुझे प्रथम दर्जे का प्रवास पास निःशुल्क प्राप्त था। इससे मेरा भावनगर डिविज़न के सभी वरिष्ठ पदाधिकारियों से परिचय तो हुआ ही अनेक हिन्दी भाषी पदाधिकारियों से मित्रता भी हुई। डिविज़न के वरिष्ठतम पदों पर अनेक बिन गुजराती लोग थे। यहीं से यह बीज अंकुरित हुआ कि क्यों न एक हिन्दी भाषी प्रदेशों के लोगों का संगठन बनाया जाये। जिस प्रकार अहमदाबाद में हिन्दी समाज गुजरात का संगठन हम लोगों ने बनाया था उसी तरह हमने हिन्दी समाज भावनगर की स्थापना की। प्रायः सभी लोग ऐसे संगठन की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। अतः रेल्वे, आयकर, बिक्री कर, सॉल्ट रिसर्च एवं अन्य कार्यालयों में जो भी गुजरात से बाहर के लोग थे वे तथा हिन्दी भाषी व्यापारी, अध्यापक आदि इसमें सदस्य बने। प्रथम अध्यक्ष रेल्वे डीवीज़न के वाणिज्य अधिकारी श्री वी.एन. उपाध्याय को चुना गया। डॉ. पी.एम. लाल उपाध्यक्ष चुने गये तो महामंत्री का भार मैंने वहन किया। इसमें स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र के उच्च पदाधिकारि श्री वार्ष्णेयजी एवं श्री चंद्रिकाप्रसाद मिश्र तथा सॉल्ट रिसर्च के श्री अखिलेश तिवारीजी मुख्य थे। ट्रस्ट रजिस्टर्ड कराया गया और अनेक प्रवृत्तियाँ प्रारंभ की गईं। जिनमें होली–दीवाली का स्नेह मिलन, कवि संमेलन, वाक्स्पर्धायें विशेष होती थीं। लेकिन दुःख के साथ यह लिखना पड़ रहा है कि मेरे, श्री चंद्रिकाप्रसाद मिश्र एवं वार्ष्णेयजी के भावनगर छोड़ने के पश्चात पूरा समाज ही अस्तित्वहीन हो गया।

भारत जैन महामंडल

भावनगर की अन्य सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तिओ में रूचि होने के कारण एवं राष्ट्रीय स्तर पर भारत जैन महामंडल से परिचिय होने के कारण मेरीभावना थी कि संस्था की स्थापना भावनगर में हो। भारत जैन महामंडल जैन धर्म के चारों संप्रदायों का मिलाजुला संगठन है, जो संप्रदाय भेद से ऊपर उठकर सिर्फ जैनधर्म की बात करता है। मैं तो प्रारंभ से ही ऐसी ही समन्वयात्मक भावना का समर्थक रहा हूँ। भावनगर में विशेष व्यक्तियों से चर्चा की और भारत जैन महामंडल की शाखा का प्रारंभ हुआ।

डॉ. भरतभाई भीमाणी प्रथम स्थापक अध्यक्ष बने और मुझे प्रथम स्थापक महामंत्री बनने का गौरव प्राप्त हुआ। हमारे संगठन ने भावनगर में जैनों के बीच भावात्मक एकता के हेतु अनेक कार्यक्रम किए जिसमें भगवान महावीर का जन्मदिन, पर्युषण एवं दशलक्षण के पश्चात विश्व मैत्री दिन का आयोजन विशेष महत्वपूर्ण थे। साथ ही कॉलेजों के गरीब जैन विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क ट्युशन क्लास प्रारंभ किए तो जैन डॉक्टरों द्वारा गरीब जैन रोगियों को मुफ्त या राहत दर से जाँचने या दवा देने का कार्यक्रम चलाया। तदुपरांत पुस्तकें भी निःशुल्क प्रदान की जाने लगीं। इससे सामाजिक निकटता बढ़ी व समाज सेवा का सुंदर अवसर मिला।

शिक्षण संस्कार

भावनगर में मैंने 'जैन एज्युकेशन ट्रस्ट' द्वारा 'शिक्षण संस्कार' मासिक पत्र का प्रारंभ किया। उसका संपादन किया। यह पत्र पूर्ण रूपेण शैक्षणिक समाचार, आलेख, विचारधारा से संबद्ध था। जिसमें शिक्षण जगत की

समस्यायें, विद्यार्थियों की समस्यायें व अपेक्षाओं का चित्रण प्रस्तुत करते हुए भारत में और विश्व में शिक्षण के स्तर के लेखों और समाचारों को स्थान दिया जाने लगा। लगभग दो वर्ष तक यह पत्र चला। आर्थिक बोझ बढ़ने से परेशानियाँ बढ़ीं। आखिर एक शिक्षण विशेषांक प्रकाशित कर विज्ञापन आदि द्वारा थोड़ा आर्थिक बोझ घटाया पर पत्रिका बंद करनी पड़ी।

भावनगर में लेखन कार्य

भावनगर ने मुझे धार्मिक भावनाओं से सभर बनाया तो लेखन की ओर भी विशेष प्रवृत्त किया। जैसाकि मैं पहले लिख चुका हूँ सन् १९८१ में मेरी रीढ़ की हड्डी का ऑपरेशन हुआ था। तीन महिने तक बिस्तर पर मजबूरन पड़ा रहना पड़ा। उस दौरान बड़ी मायूसी लगती थी। चूँकि होस्टेल में रेक्टर था अतः विद्यार्थियों की चहल–पहल रहती थी। अनेक विद्यार्थी सेवा कार्य में प्रस्तुत रहते थे। मेरी पत्नी मुझे प्रतिदिन भक्तामर का पाठ सुनाती। मेरी श्रद्धा भक्तामर की ओर वृद्धिंगत हुई। मैंने उसी दौरान भक्तामर के श्लोक पूरी तरह रट लिये। चूँकि इससे पूर्व सचित्र भक्तामर के संपादन में आ. कमलकुमारजी कुमुद एवं श्री पं. फूलचंदजी पुष्पेन्दु खुरईवालों के साथ काम कर चुका था। उस समय एक संशोधक की दृष्टि थी पर श्रद्धा का जागरण यह ऑपरेशन बना। मैंने भक्तामर पर सार्थ टीकायें और रचनायें पढ़ीं और मेरी संपूर्ण श्रद्धा भक्तिभाव से इस स्तोत्र पर दृढ़ हुई।

उसी समय मैंने विद्यार्थियों को बैठाकर गुजराती में 'जैन आराधना नी वैज्ञानिकता' पुस्तक का लेखन कार्य कराया। इसमें जैनधर्म के तत्वों एवं क्रियाओं का शास्त्रीय, आगमिक लेखन प्रस्तुत किया। आनंद की बात तो यह थी कि तपागच्छ के आचार्य विजयमेरूप्रभसूरीजीने इसकी भूमिका में आशीर्वाद के दो शब्द लिखे और मेरी अस्वस्थता में मेरी अनुपस्थिति में इसका लोकार्पण उन्हीं के आशीर्वाद के साथ हुआ। मेरी पुस्तक का इन साधु भगवंत द्वारा विमोचन स्वयं जैनधर्म की समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतीक था। इसी बिमारी के दौरान 'मुक्ति का आनंद' निबंध संग्रह का गुजराती अनुवाद भी किया। बाद में यह पुस्तक हिन्दी में 'जैनधर्म, सिद्धांत और आराधना' के नाम से प्रकाशित हुई। इस बीमारी में जहाँ यह लाभ हुआ वहीं एक बड़ा नुकसान भी हुआ। मैंने जैनमित्र के वयोवृद्ध संपादक स्व. श्री मूलचंदजी कापड़िया सूरत वालों का अभिनंदन ग्रंथ अकेले तैयार किया था उसका विमोचन सन् १९८२ में श्रवणबेलगोला में मस्तकाभिषेक के अवसर पर पू. आ. श्री विद्यानंदजी के तत्त्वावधान में एवं भट्टारक श्री चारूकीर्तिजी के सानिध्य में हुआ था। मैं आमंत्रित था पर जिसदिन मस्तकाभिषेक हो रहा था– पुस्तक का विमोचन हो रहा था– उस समय मैं अस्पताल के बिछौने पर मात्र कल्पना ही कर सकता था– यह टीस मुझे जीवनभर रही।

भावनगर के १६ वर्ष के कार्यकाल में मेरी हिन्दी साहित्य की रचनायें राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्यकला (मेरा शोध प्रबंध), टूटते संकल्प (कहानी संग्रह), कठपुतली का शोर (काव्य संग्रह) प्रकाशित हुए, तो साथ ही कहानी संग्रह का संपादन 'इकाईयाँ और परछाईयाँ' का प्रकाशन हुआ। डॉ. मजीठियाजी के साथ The Directory of Gujarat का सह संपादन भी किया।

इसी दौरान जैनधर्म सबंधी **जैनाराधना की वैज्ञानिकता, जैनधर्म सिद्धांत और आराधना**, मुक्ति का आनंद (निबंध), मृत्यु महोत्सव (निबंध), मृत्युंजयी केवली राम (उपन्यास), ज्योतिर्धरा एवं परिषहजयी (कहानीसंग्रह) प्रकाशित हुए। मेरी यह लेखन प्रवृत्ति आगे बढ़ती रही। मेरे इस लेखन की प्रेरणा में गुजराती के साक्षर डॉ. रमणलाल ची. शाह का विशेष योगदान रहा।

२५वें तीर्थंकर का संघर्ष

भावनगर में रहते हुए एक विशेष संघर्ष या झगड़े में उलझना पड़ा। दिगम्बर जैन संप्रदाय में १३ और २० तथा तारणपथ तो हैं ही। कानजीस्वामी व सोनगढ़ के कारण एक नया ही पंथ बन गया है। सोनगढ़ के समर्थक जिनमें कानजी स्वामी के साथ हजारों श्वेताम्बर स्थानकवासी दिगम्बर मत में परिवर्तित हुए थे वे एवं दिगम्बरों में से सोनगढ़ के समर्थन में जुटकर मूल आम्नाय के अनेक सिद्धांतों का विरोध के लिए विरोध करने लगे। उनके लिए भगवान महावीर और कुंदकुंदाचार्य के बाद बस कानजीस्वामी ही सर्वस्व थे। अन्य सभी आचार्य गौण हो गये थे। लगता है कि दिगम्बर संप्रदाय में परिवर्तित होने के कारण, विशाल दिगम्बर जैन समूह का समर्थन मिलने से उन्होंने अपना चौका अलग बनाने का एकांगी विचार किया। चाँदी के सिक्को से अनेक विद्वान उन्हें गरीबी और लाचारी के कारण मिल रहे थे और उनसे जुड़ रहे थे। कल तक जो आर्ष परंपरा के अध्यापक थे वे ही अब फेरबदल की बातें करने लगे। उन्होंने भावलिंगी मुनि के नाम पर वर्तमान मुनियों को नकारा और सिद्धांतो में अनेक प्रूफ रीडिंग किए। देश में जमकर वाद–विवाद और प्रतिकार चलने लगा। यद्यपि मैंने कानजीस्वामी के प्रत्यक्ष अनेक प्रवचन सुने थे, वे कभी हलकी भाषा का प्रयोग नहीं करते थे, मात्र सिद्धांत की चर्चा समयसार के आधार पर ही करते थे। नासमझ अनुयायी तो जैसे मुनियों के परम विरोधी ही बन गये। उन्होंने मुनियों को नमस्कार करना ही छोड़ दिया। इन लोगों के विरोध में पू. आ. विद्यानंदजी, पू.आ. कुंथुसागरजी, पं. श्री मक्खनलालजी आदिने सैद्धांतिक उदाहरणों को देकर इनकी विकृतियों को उजागर किया। वह अलग बात है कि आज विद्यानंदजी का विचार पलट गया है।

सोनगढ़ में प्रतिष्ठा महोत्सव था। लगभग २०० प्रतिमाएँ लाई गई थीं। उन सब को भविष्य में होनेवाले सूर्य कीर्ति की प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाना था। ये सूर्यकीर्ति कानजी स्वामी ही होनेवाले थे ऐसा भ्रामक प्रचार हो रहा था। भक्तगण कानजीस्वामी को २५वाँ तीर्थंकर कहने लगे थे।

हम लोगों को इसका पता चला। इसे रोकने के लिए कानूनी कार्यवाही करने का तय हुआ। केस भावनगर के हुमड़ के डेले में रहनेवाले श्री पूनमचंदभाई के नाम से करने का तय हुआ। मुझे एक विद्वान के रूप में उसमें जोड़ा गया। पर विचित्रता देखिए– केस करनेवाले श्रावक को ऐसा धमकाया गया कि वह केस प्रस्तुत करने कोर्ट में ही नहीं आया। भावनगर का कोई अच्छा वकील हमारा केस न लड़े ऐसे हथकंडे अपनाये गये। परिस्थिति बिगड़ रही थी। अतः मैंने स्वयं पार्टी बनने का तय किया। अहमदाबाद से श्री मीठालालजी कोठारी एवं श्री हुकुमचंद पंचरत्न को बुलवाकर, वकील के लिए श्री दिनुभाई गांधी– जो मेरे प्रोफेसर थे, उन्हें किसी तरह तैयार किया गया। इसमें एकदिन निकल गया और इस समय में सोनगढ़ वालों ने केवियट दायर कर दी। खैर! केस दूसरे दिन दाखिल हुआ। तीन दिन सलंग चलता रहा। पर हम हार गये। तुरंत हाईकोर्ट गये वहाँ भी यही हाल हुआ। इस क्षेत्र में नये थे सो सलाह के लिए तत्कालीन जज श्री सज्जनभाई तलाटी जो परम मुनिभक्त श्री मनहरभाई शाह– जो बाद में मुनि कीर्तिधरनंदीजी बने थे– उनके संबंधी थे। पर सोनगढ़ समर्थक थे। उनकी सलाह लेने की गलती की और हाईकोर्ट में भी केस हार गये। पर पुनः नये वकील के साथ डिविज़न में गये और इतनी सफलता मिली कि मूर्ति पर कानजी स्वामी या सूर्यकीर्ति आदि नाम न लिखे जायें जबतक कि केस का फाईनल निर्णय न आये।

इसी परिप्रेक्ष्य में एकबात और करना चाहता हूँ। मैंने केस तो कर दिया था पर मैं जैन आगम, जैन भूगोल का मुझे विशेष ज्ञान नहीं था। उस समय पू. आ. श्री विद्यासागरजी की खुरई में वाचना चल रही थी। शीर्षस्थ विद्वान पं. कैलाशचंद्रजी शास्त्री, पं. फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री, पं. बंसीधरजी व्याकरणाचार्य, पं. कोठियाजी

जैसे महान विद्वान वहाँ थे। इससे पूर्व मैंने कभी पू. आचार्य विद्यासागरजी के दर्शन नहीं किये। और वे भी उस समय इतने प्रसिद्ध नहीं थे। मैंने आचार्य श्री को केस का पूरा वर्णन कह सुनाया। उन्होंने अपनी आदत के अनुसार विद्वानों से मिलने को कहा। मैं विद्वानों से मिला। पं. कैलाशचंदजी ने सलाह दी कि– 'उन्हें सिद्ध करने दो कि २५वाँ तीर्थंकर होता है।' मैंने कहा पंडितजी जो केस दायर करता है उसे सिद्ध करना होता है, पर वे इधर–उधर का समझाने लगे। वे सोनगढ़ के प्रति स्नेहभाव रखते थे ऐसा सुना था। उनकी बातें सुनकर मैंने कहा 'पंडितजी आपने जैनदर्शन में बड़ी उपाधियाँ प्राप्त की हैं। पर कानून में नहीं। मैंने कानून पढ़ा है यदि मैं हार गया तो यही कहूँगा कि विद्वानों ने मेरा साथ नहीं दिया।' इतना कहकर मैं लौट आया।

उसी समय हस्तिनापुर में पंचकल्याणक था। पहली बार पू. ग. ज्ञानमतीजी से परिचय हुआ। हम कोर्ट में रिविज़न में कुछ प्राप्त कर सके थे। वहाँ हस्तिनापुर में मैंने ५ मिनट अपनी बात कहने के लिये समय माँगा। मुझे समय दिया गया। केस की प्रस्तुति की और लोगों ने मुझे ४५ मिनट तक सुना। मैंने चादर बिछाकर सबसे कहा कि इस पर चारआने–आठाने या एक रूपया चंदा के रूप में डाल दें। कई श्रेष्ठियों ने कहा कि आपको जितना पैसा चाहिए वह मिल जायेगगा ऐसा चंदा क्यों? मैंने कहा– 'मुझे पैसो की जरूरत नहीं है पर सबको यह लगना चाहिए कि वे भी इस यज्ञ में समिधा डालकर सहभागी बन रहे हैं।' बाद में शास्त्रि परिषद के विद्वानों ने सहायता की। दिल्ली के वकील श्री भारतभूषण जी का सहयोग मिला।

मैं सिद्धान्त के लिए यह लड़ाई लड़ा था। मेरा कभी व्यक्तिगत राग–द्वेष नहीं था। यही कारण है कि कोर्ट में लड़ने के बावजूद श्री शशिभाई, श्री हीरालालजी काला, श्री माणेकचंदजी काला से सदैव सामाजिक प्रेम के संबंध रहे। आज भी श्री रतनचंदजी भारिल्ल एवं श्री हुकुमचंदजी भारिल्ल से अच्छे संबंध हैं। मैं स्पष्ट मानता हूँ कि सिद्धान्त अपनी जगह है, सामाजिक और पारिवारिक संबंध अपनी जगह। उनमें कभी गड़बड़ नहीं करनी चाहिए।

प्रथम विदेश यात्रा

भावनगर के कारण ही विश्व स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त हुई। सन् १९८९–९० में इग्लैण्ड के एक शहर लेसेस्टर में नवनिर्मित विशाल मंदिर की प्रतिष्ठा थी। उसके कर्ता–धर्ता डॉ. श्री नटुभाई भावनगर पधारे। उन्हें एक–दो विद्वान कार्यकर्ताओं की आवश्यकता थी। उन्होंने भावनगर के प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री मनुभाई सेठ को आमंत्रित किया। उन्होंने दूसरे व्यक्ति के रूप में किसे बुलायें यह मनुभाई से पूछा, तो मनुभाईजी ने विद्यालय के नाते मेरा नाम सुझाया। बात बन गई और प्रथमबार मुझे इंग्लैण्ड जाने का अवसर प्राप्त हुआ।

इग्लैण्ड जाने की खुशी अवर्णनीय थी। पहली बार लगा कोई स्वप्न देख रहा हूँ। जिस व्यक्ति को बंबई दिल्ली जाने में ही रोमांच होता हो उसे लंदन जाने का अवसर मिले तो उसका दिल बल्लियों उछलने लगेगा– यह स्वाभाविक है। नियत दिन और समय पर हमलोग बंबई पहुँचे। विज़ा क्या होता है यह सब मालूम ही नहीं था। पर श्री मनुभाई सेठने इग्लैण्ड के दूतावास में इन्टरव्यू करवाया और विज़ा बनवाया। सिंगल एन्ट्री विज़ा था। छह महिने के लिए। इतनी दूर की प्रथम उड़ान थी। एक नया अनुभव था। वास्तव में विमान में बैठना ही पहलीबार सीखा। पूरे प्लेन में पूर्ण शांति, सभी अपने में खोये। ऐयर होस्टेस (पुरूष और स्त्री) दोनों का आकर्षक व्यक्तित्व। सरल व्यवहार अच्छा लग रहा था। चूँकि वहाँ हर प्रकार का भोजन और पेय उपलब्ध थे। पर मैंने धर्म भावना के कारण डिब्बे में बंद पेय लिया। भोजन में अपना ले गया था। बंबई का इन्टरनेशनल हवाई अड्डा पहलीबार देखा था। रात्रि के २ बजे की उड़ान थी। पूरा हवाई अड्डा रोशनी में नहा रहा था और मैं अंतर की प्रसन्नता से। ७ घंटे

की उड़ान के पश्चात हीथरो हवाई अड्डे पर हवाई जहाज उतरा। हमलोग नीचे उतरे। कुछ पता तो था नहीं सो श्री मनुभाई सेठ एवं अन्य यात्रियों का अनुकरण करते हुए कस्टम में पहुँचे। कस्टम से निपटकर बाहर आये। वहाँ अध्यक्ष श्री नटुभाई उपस्थित थे अगवानी के लिए।

उनकी ए.सी. कार लंदन की चौड़ी सड़कों से गुजरकर लेसेस्टर की ओर दौड़ रही थी। स्पीड की लगभग ८० से १०० मील। सवा घंटे में ही लेसेस्टर पहुँचे। वहाँ की जलवायु के अनुसार बड़े मकान, चौड़ी सड़के, बड़े–बड़े उद्यान सबकुछ नया नया। नटुभाई का विशाल घर जो अब प्रतिष्ठा का कार्यालय बन गया था। हम लोगों को ठहराने के लिये लेसेस्टर युनिवर्सिटी का होस्टेल तय था। पर वहाँ के रहनेवाले छात्रों का माँसाहारी होने के कारण मैं वहाँ नहीं ठहर सका। आखिर मैं और मनुभाई सेठ नटुभाईजी के घर में ही रहे।

यहाँ हम लोग प्रतिष्ठा के कार्य को अंजाम देते। पूरे दिन काम करते। मुझे कार्यक्रम पर प्रकाशित होने वाले सुवेनियर (स्मरणिका) के संपादन और प्रूफ रीडिंग का कार्य सौंपा गया। मैं प्रायः दिनभर प्रेस पर रहता। इतना बड़ा प्रेस पहली बार देखा। एक साथ मल्टीकलर छापने की ऑटोमेटीक मशीने, कम्प्यूटर पर कंपोज सब नया अनुभव था। प्रेस के मालिक मि. परमार युवा हँसमुख व्यक्ति थे। मेरी उनसे खूब बनती थी।

महान नाटककार शेक्सपीयर की जन्मभूमि के दर्शन

इसी दौरान हमको महान नाटककार सेक्सपियर की जन्मभूमि स्टेफर्डएवन देखने का सौभाग्य मिला। स्टेफर्ड नदी के किनारे बड़ा ही रमणीय छोटा सा शहर है। सेक्सपियर की इस जन्मभूमि में उनका पुराना मकान, म्युजियम देखने का मौका मिला। जहाँ उनके हस्ताक्षरित अनेक पृष्ठ ज्यों के त्यों रखे थे। वहाँ दो थीयेटर हैं, मीनी और बड़ा। पिछले साड़े चारसौ वर्षों से निरंतर उसमें सेक्सपीयर के नाटक खेले जाते हैं। सदैव दर्शकों की भीड़ रहती है। पुराने कलाकार रिटायर्ड हो जाते हैं या मृत्यु हो जाती है, नये कलाकार उनका स्थान लेते हैं। यह सब वहाँ की प्रजा का साहित्य और साहित्यकार के प्रति अगाध प्रेम का प्रतीक है।

लेस्टर का मंदिर

लेसेस्टर का भव्य मंदिर पूरे यूरोप की शान है। यहाँ जैसे पूरा देलवाड़ा ही उतर आया है। मंदिर में चढ़ते ही भगवान बाहुबली की कायोत्सर्ग दिगम्बर मुद्रा की मूर्ति है। अंदर विशाल श्वेताम्बर आम्नाय का कलापूर्ण मंदिर है तो स्थानकवासियों का उपाश्रय है। श्रीमद् राजचंद्रजी का साधना कक्ष है। वास्तव में यह सर्व जैन संप्रदाय, समन्वय का प्रतीक मंदिर है।

श्वेताम्बर प्रतिष्ठा हेतु पं. श्री बाबूभाई कड़ीवाला आमंत्रित थे तो दिगम्बर पंडित के रूप में प्रतिष्ठाचार्य पं. फतेहसागरजी आमंत्रित थे। प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम से हुई। प्रतिष्ठा का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि पूरी प्रतिष्ठा का प्रारंभ श्री निर्मल कुमारजी सेठी द्वारा किया गया तो दिगम्बर प्रतिष्ठा का प्रारंभ सेठ श्री श्रेणिकभाई द्वारा संपन्न कराया गया। परिचर्चा के दौरान निर्मलजी सेठी की अध्यक्षता में पं. हुकुमचंद भारिल्ल के प्रवचन हुए। तात्पर्य कि समता, समानता, समझदारी का यह अनुपम संगम था।

कार्यक्रम के पश्चात तीन–चार दिन लंदन में रुके। वहाँ सबका भव्य अभिनंदन हुआ। वहाँ हमारे नये बने मित्र श्री के.सी. जैन एवं अन्य मित्रों ने लंदन के दर्शनीय स्थानों की सैर कराई। रात्रि के प्रकाश में बकींगधम पैलेस (राजमहल) और लंदन की सड़कों पर घुमाकर अनहद रोमांचित किया। लगभग डेढ़ माह की यात्रा के पश्चात हम लोग लौट आये। हाँ लौटने पर बंबई एयरपोर्ट पर मेरा थैला जरूर चोरी हो गया जिसमें डायरी, गिफ्ट, खाने का सामान चला गया।

आचार्यपद से मुक्ति

भावनगर में सन् १९८० से १९८६ तक मैं प्राचार्य पद पर रहा। लेकिन स्वास्थ्य की प्रतिकूलता और अहमदाबाद की कुछ विशेष जिम्मेदारियों से मैंने अपने संचालक मंडल से आचार्य पद से निवृत्त होने का बार-बार निवेदन किया। वे मुझे छोड़ना नहीं चाहते ते। उन्होंने एक शर्त रक्खी कि आप एक अच्छा प्रिन्सीपाल ले आईये और मुक्त हो जाईये। मैं भी प्रयत्न में रहा और सावरकुंडला से वहाँ के प्रा. श्री गंभीरसिंहजी गोहिल को यहाँ पदभार संभालने को राजी करके लाया। मुझे प्रसन्नता इस बात की थी कि यह पद मैंने अपनी राजी खुशी से त्यागा था। आचार्य पद के दौरान मेरा व्यवहार अध्यापक खंड के साथ वैसा ही मधुर रहा जैसा प्राचार्य पद से पूर्व था। अतः पुनः प्राध्यापक के रूप में अपने अध्यापक खंड में आ गया। यद्यपि गोहिल साहब प्राचार्य बने परंतु मुझे सदैव पूर्व प्राचार्य के ही भाव से सन्मान देते रहे।

भावनगर से अहमदाबाद पुनरागमन

सन् १९८८ में भावनगर युनिवर्सिटी में हिन्दी विभाग का प्रारंभ हुआ। एक प्राध्यापक और एक व्याख्याता का स्थान मंजूर हुआ। डॉ. सुदर्शनसिंह मजीठिया जो शामलदास कॉलेज के प्राचार्य थे, उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे युनिवर्सिटी में प्रथम अध्यापक और अध्यक्ष बने। मैंने भी उन्हें सहयोग दिया और वे इस स्थान के लिए चुन लिये गये। मुझे भी दूसरे स्थान के लिए चुन लिया गया। मुझे जून से यह पदभार संभालना था। तत्कालीन कुलपति श्री डॉलरभाई वसावडा से मेरे अच्छे संबंध होने से उन्होंने यह वचन दिया कि तीन वर्ष बाद मजीठियाजी के रिटायर्ड होने पर आपको यह पद प्राप्त होगा।

इसी दौरान कच्छ में एक जैन साहित्य संगोष्टी का आयोजन श्री महावीर जैन विद्यालय मुंबई की ओर से आयोजित था। मैं उसमें अपना शोधपत्र प्रस्तुत करने गया था। लौटकर अहमदाबाद आने पर मुझे भावनगर से पत्नी ने फोन पर बताया कि अहमदाबाद की लॉ सोसायटी की कॉलेज में कोई इन्टरव्यू है। यद्यपि सन् १९६३ से १९८८ तक मैं प्रायः अहमदाबाद से बाहर ही सेवाकार्य में रहा। परंतु सदैव अहमदाबाद आने का प्रयास करता रहा। यहाँ इन्टरव्यू हुआ। इन्टरव्यू लेने वाले थे डॉ. रघुवीर चौधरी और डॉ. चंद्रकांत महेता जो इसमें एक्सपर्ट थे, उन्होंने मुझे देखते ही आश्चर्य व्यक्त किया कि और कहा कि- 'हम इनका क्या इन्टरव्यू लेगें, इनका इस संस्था में जुड़ना ही गौरव की बात है।' मेरी पसंदगी हो गई। परंतु मैं स्वयं दुविधा में था कि युनिवर्सिटी का पद छोड़कर कॉलेज में- वह भी ऐसी कॉलेज में जहाँ डिपार्टमेन्ट नहीं है। वहाँ रहूँ या न रहूँ। यह पद का मोह था। तभी मेरे बुजुर्ग मित्र डॉ. सुरेश झवेरी जो पुराने समय के लंदन से एम.आर.सी.पी. डॉक्टर थे जिन्होंने वर्षों से मात्र हिंसक दवाओं के परहेज के कारण हजारों रूपयों की प्रैक्टिस छोड़कर आयुर्वेदिक पद्धति द्वारा ही चिकित्सा की। जो गौवंश वध को रोकने, शाकाहार के प्रचार और मांसाहार के विरोध में आजीवन लड़ते रहे। उन्हें मैंने अपनी दुविधा बताई और उँचा पद छोड़कर नीचे पद पर आने की बात कही। तब उन्होंने कहा 'देखो सबसे बड़ा पद तो परमात्म पद होता है। छोटे-मोटे सांसारिक पदों की चिंता मत करो। यहाँ आ जाओ मुझे भी तुम्हारा सहयोग मिलेगा।' मैंने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए गुजरात लॉ सोसायटी संचालित श्रीमती सद्गुणा सी.यु.आर्ट्स महिला कॉलेज में प्राध्यापक का पद्भार सम्हाला। मुझे गुजरात सरकार की नीति के कारण कोई आर्थिक नुकशान नहीं हुआ। उल्टे छह सातसौ रू. अधिक ही मिले। दूसरे दिन भावनगर जाकर जब मैंने एकाएक त्यागपत्र दिया तो सभी मित्र, प्राध्यापक सन्नाटे में आ गये। वे इसे मज़ाक समझते रहे लेकिन मैं १६

वर्षों के भावनगर के प्रवास को सलाम करके अहमदाबाद अपने घर आ गया।

अहमदाबाद में कॉलेज जोइन कर ली। पर अनेक सरकारी नियमों की वैतरणी पार करनी पड़ी। यह जगह एस.सी., एस.टी. की होने से कुछ टेकनीकल कठिनाईयाँ भी हुईं। उधर तीन महिने का नोटिस पे देने का संकट भी खड़ा हुआ। आखिर छह महिने तक कानूनी चक्रव्यूह में उलझे रहने के बाद तत्कालीन शिक्षा मंत्री और मेरे हितेषी मित्र श्री अरविंदभाई संघवी की सहायता से उसमें भी पार हो सका। सभी झंझटें निपटीं।

नैरोबी का निमंत्रण

१९८८ में अहमदाबाद आ गया था। मेरा परिचय लंदन में ही नैरोबी से पधारे श्री सोमचंदभाई से हो गया था। उन्होंने नैरोबी आने का निमंत्रण दिया। सन् १९९०–९१ में नैरोबी में एक बहुत बड़ी अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी हुई जिसमें मुझे पाँच शोधपत्र प्रस्तुत करने का निमंत्रण मिला। तीन महिने पश्चात वहाँ जाना था। वहाँ बंधु त्रिपुटी तीनों महाराज पधारे थे। लगभग २१ दिन का कार्यक्रम था। नैरोबी के उपरांत मोम्बासा, थीका आदि स्थानों को देखने वहाँ के विशाल मंदिर और सोन्दर्य से भरपूर स्थानों को देखने का अवसर मिला।

नैरोबी बड़ा ही खूबसूरत हिल स्टेशन है जो कीनिया (पूर्व आफ्रिका) की राजधानी है। शहर बड़ा ही खूबसूरत, व्यवस्थित जैसा अंग्रेजों ने छोड़ा था वैसा ही है। यहाँ अनेक स्कूलों की मुलाकात भी की। यह मुस्लिम देश है परंतु यहाँ कक्षा १०वीं तक धर्म का अध्ययन छात्रों के लिए अनिवार्य है। जिसमें ख्रिस्ती धर्म, इस्लाम धर्म साथ ही हिन्दू धर्म जिसके अन्तर्गत सिक्ख धर्म, बौद्ध धर्म एवं जैनधर्म का अध्ययन कराया जाता है। यह जानकारी एक सुखद आश्चर्य था।

नैरोबी की सेन्चुरी विश्व की श्रेष्ठतम सेन्चुरी में एक है। जो लगभग ४००० मिल के विशाल क्षेत्र में फैली हुई है। नैरोबी के निवासी श्री डोडियाजी जो बहुत बड़ी मिल के मालिक हैं– मुझे पूरे दो दिन वहीं सेन्चुरी के फाईवस्टार हॉटल में रखकर प्राईवेट कोम्बी गाड़ी में घुमाते रहे। वन्य सृष्टि को इस स्वतंत्रता से घूमते हुए निकटतम दूरी से देखने का यह पहला रोमांचक अनुभव था। जंगलों में स्वच्छंद रूप से विचरते सिंह बड़ी संख्या में अपने परिवार के साथ स्वच्छंद रूप से घूम फिर रहे थे। कहीं सिंहनी अपने बच्चों को दूध पिला रही थीं, कहीं हिरन चौकडी भर रहे थे तो कोई हिरनी बच्चे को स्तनपान करा रही थी। कहीं वृक्ष पर चीते (तेंदुओ) चढ़े हुए थे तो अनेक जंगली भैंसे इधर–उधर दौड़ रहे थे। शुतुरमुर्ग जैसे प्राणी और कांगारू दौड़ते हुए दिखाई दे रहे थे।

शेर जब भूखा होता है तभी शिकार करता है। यदि जंगल में कहीं शेर ने शिकार किया हो और वह दृश्य पर्यटकों को देखने को मिल जाये तो उसे लोग पर्यटन की सार्थकता मानते है। हमें उस दिन पता चला कि शेरने किलिंग किया है अनेक पर्यटकों के साथ हम भी उस ओर गये। एक विशाल जंगली पाड़े को फाड़कर शेर अपने पूरे परिवार के साथ माँसाहार कर रहा था। चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं। बड़ा वीभत्स दृश्य था, जुगुप्सा पैदा हो रही थी। हमने जैसाकि उपर वर्णन किया है, अनेक फोटो लिये थे। सभी फोटो बहुत ही स्पष्ट आए परंतु यह किलिंग का फोटो दो–तीन बार लेने के बाद भी साफ नहीं आया। क्योंकि हमारे मन में एक तो मरे हुए पाड़े को देखकर जुगुप्सा पैदा हो रही थी। उसकी मौत पर पश्चाताप हो रहा था और ऐसे हिंसक दृश्य को देखकर मन विचलित हो रहा था। शायद हमारी इन्हीं भावनाओं के कारण वह चित्र स्पष्ट नहीं आया।

इसीप्रकार थीका के फोल्स (जल प्रपात) जहाँ सात नदियाँ एक साथ गिरती हैं, जहाँ सदैव धुँआधार रहता है। जहाँ पानी सिर्फ हवा में उड़ते हुए फैन के रूप में ही देखा जा सकता है, इसकी गर्जना मीलों से सुनाई देती है।

मोम्बासा का समुद्री किनारा विश्व के उत्तम सी बीच में से एक है। पूरे रास्ते में काजू से लदे हुए वृक्ष और हरियाली बरबस अपनी ओर खींच लेती है। नैरोबी से बाहर जो छोटे–छोटे गाँव है वहाँ के निवासी आज भी पूरी जंगली अवस्था में अशिक्षित और भूखमरी से लाचार हैं। यहाँ पर भी अल्पविकसित देशों में जो भ्रष्टाचार पनपा है वह नजर आता है। यहाँ के निवासियों के मनमें भारतीयों के प्रति बहुत नफरत है। उन्हें वे शोषक के रूप में देखते हैं। आये दिन चोरी डकैती करके हत्यायें करते रहते हैं। ऐसी ही एक घटना प्रसिद्ध जैन व्यापारी श्री घडियालीजी के साथ भी देखी थी जिसे हमने अपनी आँखों से देखा था।

नैरोबी जाने से पूर्व की विशेष घटना

नैरोबी का आमंत्रण तो तीन महिने पहले आ गया था। टिकट भी बुक हो गई थी। नैरोबी जाने का उमंग और उत्साह था। पर इधर मेरी माँ की तबीयत दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। जाने के लगभग एक महिना पूर्व से वे कोमा में चली गई और हालत बिगड़ गई। प्रश्न खड़ा हुआ जाऊँ या न जाऊँ। एक ओर परदेश में आलेख प्रस्तुत करने का लोभ था तो दूसरी ओर माँ की तबीयत का प्रश्न था। पारिवारिक सलाह मशवरा करने के बाद आखिर जाने का तय किया। जाने से पहले माँ के कान में इतना ही कहा 'मेरे आने से पहले चली मत जाना।' भगवान पर भरोसा करके चला गया। २२ दिन बाद लौटकर आया तो माँ की तबीयत वैसी ही थी। दिनभर माँ के पास बैठा। अहमदाबाद में चुनाव का माहौल था। लोगों ने प्रचार में चलने के लिए कहा। मैंने उन्हें यह कहकर टाल दिया कि आज थके हैं माँ के पास बैठेंगे, कल चलेंगे। वह रात माँ के पास बैठने की अंतिम रात थी। लगभग ११ बजे के करीब उन्होंने एक क्षण को आँखें खोलीं और सदा के लिए बंद कर लीं। यह मेरी धार्मिक आस्था का ही प्रतिबिंब था कि माँ मेरे आने तक मानों मेरी प्रतीक्षा कर वचन का पालन कर रहीं थीं।

समन्वय ध्यान साधना केन्द्र और 'तीर्थंकर वाणी' का प्रारंभ

अहमदाबाद आना मेरे लिए बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ। यहाँ आने के पश्चात छोटे पुत्र डॉ. अशेष जो एम.डी. कर रहा था और सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि उसको प्राईवेट नर्सींग होम प्रारंभ करा सका। आर्थिक समस्यायें थी परंतु लोन आदि की व्यवस्था से यह कार्य संपन्न हुआ। यहाँ आने के पश्चात सामाजिक और लेखन के कार्य भी अच्छे हो सके। यहाँ भी एक वर्ष श्री महावीर जैन विद्यालय में रेक्टर के रूप में सेवायें प्रदान कीं। लेकिन समय की प्रतिकूलता और कार्य का विस्तरण होने से यह कार्य छोड़ना पड़ा। यहाँ आने के पश्चात बड़े पुत्र की शादी का कार्य संपन्न किया। मकान की ऊपरी मंजिल का कार्य पूर्ण हुआ। इसी दौरान हम कुछ मित्रों ने मिलकर १९८८ में 'समन्वय ध्यान साधना केन्द्र' नामका एक ट्रस्ट बनाया और उसे रजिस्टर्ड कराया। भावना थी की इस ट्रस्ट के माध्यम से कोई अच्छा सामाजिक कार्य किया जाय।

प्रतिवर्ष पर्युषण और दशलक्षण पर्वमें प्रवचनार्थ जाता ही रहता था। सन १९९३ में सागर मध्यप्रदेश प्रवचनार्थ गया। वहाँ सेठ श्री डालचंदजी (पूर्व सांसद) और सेटश्री मोतीलालजी से परिचय और घनिष्ठता हुई। सेठ मोतीलालजी ने मेरे कार्यों के प्रति विशेष रूचि दिखाई। वे स्वयं बीड़ी के बड़े व्यापारी हैं और जिनके यहाँ से एक दैनिक पत्र प्रकाशित होता है। वे स्वयं भी एक अच्छे चिंतक और लेखक हैं। वहाँ पर मैंने समन्वय ध्यान साधना केन्द्र की स्थापना की चर्चा की ओर गरीबों के लिए एक छोटा अस्पताल प्रारंभ करने का संकल्प व्यक्त किया। हमारी भावनाओं से वे संमत हुए और सबसे पहले यह निश्चय किया गया कि अपने विचारों के प्रचार–प्रसार हेतु एक पत्रिका का प्रारंभ किया जाये। उनके पुत्र श्री सुनील जैन जो मध्यप्रदेश में विधायक थे। युवा–कर्मठ

कार्यकर्ता हैं, उन्होंने भी रूचि ली। और पत्रिका संबंधी कार्यवाही का प्रारंभ हुआ। सागर से ही यह कार्य प्रारंभ किया गया।

नियमानुसार भारत सरकार के पंजीकरण कार्यालय को सात नाम भेजे गये। जिनमें 'तीर्थंकर वाणी' नाम स्वीकृत हुआ। यह नाम हमारी भावनाओं के अनुकूल होने से हमें अत्यंत प्रसन्नता हुई। प्रकाशन का कार्य सागर से ही प्रारंभ किया गया। प्रथम अंक का विमोचन भोपाल में बड़े ही उत्साहपूर्ण वातावरण में भव्यता के साथ तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री विद्याचरणजी शुक्ल के द्वारा सितंबर १९९३ में संपन्न हुआ। अनेक गण्यमान्य अतिथि, विधायक, व्यापारी, अधिकारी सम्मिलित हुए और इस प्रकार 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका का प्रारंभ हुआ। सेठ श्री मोतीलालजी ने बड़ी ही उदारता से प्रोत्साहन देते हुए कहा– 'पूरे वर्ष की आय ट्रस्ट की होगी और पूरा खर्च वे उठायेंगे।' इससे मेरा उत्साह बढ़ा और एक वर्ष में ही मैंने अपने श्रम, शक्ति और प्रभाव से लगभग ५०० सदस्य बनायें जिनमें संरक्षक वर्ग के सदस्य एवं आजीवन सदस्यों का समावेश था।

अमरीका की प्रवचन यात्रा

सन् १९९४ में मुझे अमरीका के लगभग दस केन्द्रों पर प्रवचनार्थ आमंत्रित किया गया। मेरे लिए अमरीका यात्रा का यह प्रथम अवसर था। बड़ा ही रोमांचक और सुखद। महिनों तक उस देश की कल्पना में ही खोया रहा। अप्रैल–मई के दो महिनों में अमरीका के सेन्टरों का दौरा किया। उसी दौरान न्यूजर्सी के जैन संघ में श्वेताम्बर पर्युषण के लिए मुझे आमंत्रित किया और जूनमें लौटकर पुनः अगस्त में पर्युषणके लिए न्युजर्सी गया। वहाँ प्रवचनों से प्रभावित एवं मेरी योजना के समर्थन में लगभग तीर्थंकर वाणी के ५० सदस्य बने। इस यात्रा के दौरान मुझे लगभग १० सेन्टरों पर जाने का मौका मिला। यद्यपि सभी शहरों में कुछ न कुछ दर्शनीय स्थान होते ही हैं। श्रावक बंधुओं ने प्रायः अपने–अपने शहर के आस–पास के दर्शनीय स्थानों को बड़े ही प्रेम से और भक्तिभाव से दिखाया।

केन्द्रों पर प्रवचन करने सविशेष भक्तामर एवं णमोकार ध्यान शिविर का आयोजन करने का अवसर मिला। प्रचार और प्रभाव दोनों ही उत्तम रहे। मैंने पहले से ही अहमदाबाद से सभी केन्द्रों पर फैक्स करवा दिया था कि मैं टिकट के अतिरिक्त अन्य कोई भेंट व्यक्तिगत स्वीकार नहीं करूँगा। इससे भी लोगो में श्रद्धा की वृद्धि हुई।

इसी श्रृंखला में १९९५–९६–९७ में यात्रायें की। सन् १९९८ में मैंने अपनी अनिच्छा व्यक्त की। सो १९९९ में उन्होंने यह मानकर मैं नहीं आऊँगा तो निमंत्रण नहीं भेजा। जब मैंने पुनः इच्छा व्यक्त की तो सन २००० मे दो बार जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसमें एकबार दशलक्षण और जैना कन्वेशन सम्मिलित है। पुनश्च २००१–२००२ (जैना कन्वेन्शन), २००० में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। २००४ में नहीं गया। पुनश्च २००५ में दशलक्षण और जैना कन्वेन्शन में जाने का अवसर प्राप्त हुआ और २००६ में दशलक्षण एवं पर्युषण में क्रमशः टेम्पा (फ्लोरीडा) एवं केलिफोर्निया के लोस एन्जलिस में प्रवचनार्थ गया। इसप्रकार इन वर्षो में कुल निम्नलिखित केन्द्रों पर सत्संग, प्रवचन, शिविर आयोजित हुए।

अमरीका के १९९४ से सन २००६ तक निम्नलिखित केन्द्रों पर जाकर स्वाध्याय एवं णमोकार मंत्र का ध्यान शिविर आयोजित करने का तथा जैना के द्विवार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। यात्रा का प्रारंभ सेन्टलुईस से किया गया था। पश्चात् वोशिंग्टन डीसी, डलास, मयामी, ओकाला, ओरलेन्डो, लोस एन्जलीस, शिकागो, न्यूजर्सी, चेरीहील, न्यूयोर्क, एटलान्टा, पीट्सबर्ग, बोस्टन, ओरलिंग्टन, ह्युस्टनस

न्युहेवन, सानफ्रान्सिस्को, टेम्पा, सानहोजे, सिनसिनाटी, कनेक्टीकट, वेको, टोरेन्टो (केनेडा), मेम्फिस, कोलंबस, सानडियागो, डेट्रोईट आदि मुख्य हैं। इनमें अनेक सेन्टर जैसे डलास, ओरलेन्डो, लोस एन्जलिस, न्युयोर्क, बोस्टन, सानफ्रान्सिस्को, टेम्पा, सानडियागो आदि में दो बार से लेकर चार बार तक जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी यात्रा के दौरान न्यूजर्सी, कोलंबस, कनेक्टीकट, बोस्टन, टेम्पा में पर्युषण एवं न्यूयोर्क, लोस एन्जलिस, बोस्टन जैसे सेन्टरों पर दसलक्षण पर्व में जाने का मौका मिला। शिकागो एवं सानफ्रान्सिस्को में जैना के अधिवेशनों में भाग लेकर सक्रिय रूप से प्रवचनादि करने का मौका मिला। इन सेन्टरों पर जैन सेन्टरों के उपरांत जो भी दर्शनीय महत्वपूर्ण स्थान थे उन्हें भी देखने का मौका मिला। जिनमें स्टेच्यु ऑफ लिबर्टी, यूनो भवन, केनेडी सेन्टर, व्हाईट हाऊस, एडिसन म्युज़ियम, वोशिंग्टन डीसी के अनेक म्यूज़ियम, लास वेगास एवं एटलान्टीक सीटी के केसिनो, ग्रांड केनियन, किंग मार्टन ल्यूथर की जन्मभूमि, सानफ्रान्सिस्को के दर्शनिय स्थान, सानडियागो, मियामी, फ्लोरिडा के सी बीच, सेन्ट लुईस का आर्च, फोर्ड मोटर कंपनी, नायग्राफ हॉल, एपकोट सेन्टर, यूनिवर्सल स्टुडियो, डिज़नी वर्ल्ड, यशोमेटी की गिरीमालायें जैसे अनेक स्थानों का समावेश है।

अमरीका का वीज़ा लेना

अमरीका जाने का अनुभव ही वर्णनातीत था। सारी व्यवस्था वहाँ श्री निर्मलजी दोशी जो जैना की ओर से विद्वानों को आमंत्रित करनेवाली समीति के अध्यक्ष हैं– उन्होंने स्पोन्सर लेटर भेजा। मैं अपने एजन्ट से सारे कागजात तैयार कराके व्यवस्थित फाईल तैयार करके बंबई पहुँचा। वहाँ अमरीका के दूतावास में अपार भीड़– लंबी लाईन देखकर ही भौंचक्का रह गया। खैर! लाईन में लगे जबतक नंबर आये तब तक एक घोषणा हो गई कि श्याम–श्वेत फोटो नहीं चलेंगे। रंगीन ही चाहिए। समस्या खड़ी हुई दौड़े–दौड़े स्टुडिओ गये। जिसने १० रू. के १०० रू. लिये– वहाँ फोटो खिंचवाये। पुनः दूतावास आये। पर कहा गया कि आज का समय हो गया है। निराश होकर लौटे। उस समय श्री गणपतलालजी झवेरी जो जवाहिरात के व्यापारी से अधिक साहित्य और संगीत में रूचि रखते थे। विद्वानों का सदैव सन्मान करते और उनके साथ सत्संग करते। पर्युषण व्याख्यान माला में मेरा उनसे परिचय हुआ, मित्रता हुई जो आत्मीयता में परिवर्तित हुई। उनका घर पास ही था। अतः उस दिन वहीं रुक गये। दूसरे दिन प्रातःकाल जल्दी पहुँचा– इतनी जल्दी पहुँचकर देखा कि मुझ से पूर्व ही लगभग ५० लोग आ चुके हैं। अंदर प्रवेश मिला। वीज़ा हेतु पहले से ही पैसे भर देने पड़ते हैं। मुझे जिस खिड़की पर भेजा गया वहाँ अमरीकन महिला बैठी थी। मैं जो व्यवस्थित पूरी फाईल इन्डेक्स के साथ ले गया था वह उन्हें दिखाई। फाईल देखकर वे अति प्रसन्न हुई। इससे मेरी पूर्व भूमिका अच्छी बनी। उन्होंने मेरे अध्यापक होने से बड़ी इज्जत से बात की। इधर–उधर के प्रश्न पूछकर यही जानना चाहा कि मैं कहीं अमरीका में रुक तो नहीं जाऊँगा? उन्होंने पूछा 'कैसा वीज़ा चाहिए? सिंगल एन्ट्री का या मल्टीपल।' मैंने कहा 'जो आप दे सकें।' उन्होंने घुमाकर प्रश्न किया। ''यदि हम आपको मल्टीपल वीज़ा दे और वहाँ रहें तो क्या बुरा है?'' वास्तव में वे मुझे टटोल रहीं थीं। मैंने भी डायलोग मारा 'मैं आपके देश में क्यों रहूँगा? मेरा देश स्वयं समृद्ध है। मैं यहाँ सुखी हूँ। मैं तो आपके देश में भारतीय संस्कृति के आदान–प्रदान हेतु जा रहा हूँ।' मेरा उत्तर उन्हें अधिक प्रभावित कर गया। वे प्रसन्न होकर बोली 'सर! मैं आपको मल्टीपल वीज़ा प्रदान करुँगी।' मैंने भी उनका धन्यवाद किया। शाम ४ बजे वीज़ा मिला। इसप्रकार बहुत बड़ा विघ्न सफलता से पार हुआ। अमरीका के वीज़ा में ७० प्रतिशत लोग तो रिजेक्ट होते हैं। मुझे लगा यह धर्म का ही प्रभाव है।

अमरीका के अनुभव

श्री निर्मलजी ने वहाँ से टिकिट भेजी डेल्टा एयरलाईन की। बंबई से यात्रा का प्रारंभ हुआ। फ्रेंकफर्ट (जर्मनी) होकर सर्वप्रथम १८–१९ घंटे की उड़ान भरकर अमरीका की धरतीपर सर्वप्रथम सेन्ट लुईस पहुँचा। अमरीका भौतिक सुखों की चमक से चकाचौंध करनेवाला देश। विशालतम हवाई अड्डे जो अत्याधुनिक सुविधाओं से सज्ज। मैं ऐजन्ट द्वारा दी गई सूचनाओं के साथ साईनबोर्ड पढ़ते हुए सामान लेनेवाले बैल्ट तक पहुँचा। पहली बार देखा आनंदमिश्रित आश्चर्य था। सामान लिया। बाहर श्री मनहर सुराणाजी अपने मित्र के साथ लेने आये थे। इन्डियन द्वारा इन्डियन को पहिचानने में देर नहीं लगी। सड़कों पर कीड़ों की तरह दौड़ती बड़ी–बड़ी महँगी कारें पहली बार देखी। ४–६ लेन वाली चौड़ी सड़कें देखी। लगभग हर फर्लांग पर सिग्नल लाईट देखी और देखे हर मार्ग के इन्डिकेशन। सड़क पर गाड़ियों के अलावा एक भी व्यक्ति पैदल नहीं। याद आ गई भारत की जहाँ आप कभी भी किसी भी लेन में गाड़ी मोड़ सकते हैं। लोग अपने ढंग से चलते हैं। स्कूटर, रीक्षा, साईकल कहीं भी घुसाये जा सकते हैं। फिर सड़कों पर सदैव पुण्य प्राप्त होता रहे अतः गाय माता जुगाली करती हुई कहीं भी बैठी मिल सकती हैं। फुटपाथ तो होती ही नहीं और होती है तो उसपर दुकाने सज़ी रहती हैं। यहाँ बड़े विचित्र लोग लगे। आगे–पीछे कोई ट्राफिक नहीं फिरभी लाल लाईट पर खड़े ही रहते हैं। लगता है उन्होंने हिन्दुस्तान की स्वतंत्र ड्राइविंग नहीं देखी। सड़कों की सफाई व्यवस्था देखकर मन प्रसन्न हो गया।

आप अमरीका के बड़े से बड़े शहर में जाइये या छोटे से छोटे गाँव में सभी सुविधायें समान रूप से उपलब्ध हो जायेंगी। सर्वत्र एक सी सड़कें, पेट्रोल पंप जिसे गैसोलीन कहते हैं– मिल जायेंगे। सभी जगह बड़े–बड़े मॉल (बिग बज़ार) मकान प्रायः एक से, हाँ गरीब–अमीर के मकानो में यहाँ भी छोटे–बड़े का अंतर है। प्रायः प्रत्येक घर पूर्ण रूप से वातानुकुलित, २४ घंटे पानी, मकान प्रायः लकड़ी के पर अति खूबसूरत। कुछ बड़े शहरों को छोड़ दें तो मकान विशाल प्लोट में चारों और घना जंगल। प्रत्येक घर में घास लगाना अनिवार्य। और उसे अमुक समय मे कटावाना भी अनिवार्य। पूरे देशमें कहीं भी नंगी, खुली जमीन नहीं। जो सरकारी जमीने हैं उन पर सरकार की ओर से नियमित घास लगाई जाती है, उसे काटकर खूबसूरत बनाया जाता है।

घर भी सरकारी प्लान के अनुसार ही बनाये जाते हैं। कोई प्लान से अधिक एक इंट भी अतिरिक्त नहीं रख सकता। यह देखकर फिर याद आ गई भारत की। जहाँ आप चाहें वैसा मकान बना सकते हैं। बड़े शहरों को छोड़कर चाहें तो प्लान बनवायें, चाहे स्वयं बनायें। यदि कोई मकान प्लान के अनुसार ही बनाया हो, तो लोग उसमें अपने मनमाने ढंग से नया निर्माण कर लेते हैं। कहीं कहीं तो मूल निर्माण दिखता ही नहीं है।

सुना है वहाँ प्रत्येक व्यक्ति यथा समय मकान, कार, बीमा सभी टेक्ष आदि की अदायगी यथासमय या उससे पूर्व ही कर देते हैं। मुझे तो विश्वास ही नहीं हुआ। हमारे यहाँ तो हम टेक्ष की नोटिसें ही घोलकर पी जाते हैं। यदि वहाँ गाड़ी का टैक्स दिन को १२ बजे पूरा हो जाये तो कोई गाड़ी नहीं चलायेगा। जबकि हम तो वर्षों तक ध्यान ही नहीं देते या फिर लेट लतीफ भरते रहते हैं। हाँ पकड़े जाने पर या तो पुलिस की मुट्ठी गरम करनी पड़ती है या फिर टैक्स भर ही देते हैं। सुविधा की दृष्टि से यहाँ सड़कों के भी विशेष विभाग हैं। जैसे नेशनल हाईवे, स्टेट हाईवे एवं लोकल रोड़। इनमें भी टोलटैक्स रोड़ एवं टोलटैक्स बिना के रोड़ हैं। टोलटैक्स रोड़ में कहीं कोई रुकावट नहीं। रोड़ की हर गली, हर चार रास्ते पर लाईट के सिग्नल। इतना ही नहीं गाड़ी की स्पीड के अनुसार भी रोड़ के विभाजन हैं। स्पीड़ से अधिक तेज चलाने वाला पुलिस के राडार में आ गया तो कम से कम ५० डॉलर

का दंड। ट्रक के रोड़ अलग, गाड़ियों के अलग तो साईकिल के अलग। (साईकिल के रोड़ सिर्फ गाँव और शहर के बाहर हैं) हाईवे पर नियत स्थानों पर विश्राम गृह जैसी सुविधाजनक होटलें, पेट्रोल पंप और फोन की सुविधा है। सबसे बड़ी विशेषता है यहाँ सड़कों पर लगे सूचना पट्ट। यदि आपके पास रोड़ का नक्शा है तो आप बिना किसी से पूछे गंतव्य पर पहुँच जायेंगे। यहाँ के सिग्नल ही सबसे बड़े सूचना दर्शन हैं। लोग अपना पता भी ऐसे ही बताते हैं कि अमुक रोड़ पर अमुक नंबर के सिग्नल के बाद मुड़ना। यह अगर ध्यान न रहे तो आप घंटों और मीलों घूमते रहिए, मकान ढूँढना अति कठिन... क्योंकि मकान, गली, महोल्ले सब एक से। पार्किंग की व्यवस्था भी बड़ी सुंदर। आपको कहीं भी जाना है वहाँ रुकना है तो आपको पार्किंग में ही गाड़ी खड़ी रखनी पड़ेगी। फिर सशुल्क मीटर वाले पार्किंग हैं। जहाँ मिनिटों के अनुसार सिक्के मशीन में डालने होते हैं। कोईभी पार्किंग के अलावा पार्किंग करने की हिम्मत नहीं करता। क्योंकि तुरंत पुलिस की टीकट मिलने का भय रहता है।

अमरीका के जीवन की एक विशेषता यह भी है कि वहाँ के नागरिक की पूरी जिम्मेदारी वहाँ की सरकार की है। गर्भ से मरण तक सभी जिम्मेदारी सरकार की या यों कहें बीमा कंपनी की है। प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु, घर का बीमा अनिवार्य है। इसलिए हर वस्तु व्यक्ति एवं जीवन की जिम्मेदारी भी सरकार की है। जन्म का खर्च, बच्चों की पढ़ाई का अमुक खर्च, वृद्धा वस्था के खर्च अनेक प्रकार के खर्च मिलते हैं। सबसे बड़ा फायदा अस्पतालों के खर्च में होता है। इस सुरक्षा के कारण लोग अनेक मानसिक तनाव से मुक्त रहते हैं। परंतु वे अन्य भौतिक सुखों, खान–पान की स्वच्छंदता, यौन संबंधों की स्वच्छंदता के कारण मानसिक रोगों से पीड़ित हैं। अतः ऐसे लोग जुर्म की दुनिया में भी अधिक फँस जाते हैं। शिक्षा का व्याप यहाँ अधिक है। प्रायः हर स्टेट में कई युनिवर्सिटियाँ हैं। प्राथमिक माध्यमिक स्कूलों की तो कमी ही नहीं। यहाँ का सामान्य प्राथमिक स्कूल भी हमारे भारत के बड़े–बड़े कॉलेज से भी विशाल परिसर में सभी सुविधाओं से सज्ज होते हैं। विद्यार्थिओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उन्हें सभी सुविधा और साधन दिये जाते हैं। विद्यार्थी कौन सा विषय ले उसकी उसे स्वतंत्रता होती है। कॉलेजो में तो उन्हें प्रायः दूसरे शहरो में ही जाना पड़ता है। वहाँ होस्टेल में रहना अनिवार्य होता है। प्रथम वर्ष में विद्यार्थियों को प्रायः एक ही डोरमेटरी में रखा जाता है। बाद में उन्हें कमरे दिये जाते हैं। ये कमरे किसी पंचतारक हॉटल से कम सुविधाजनक नहीं होते। यहाँ विद्यार्थी मेडीकल के साथ चाहें तो कानून पढ़े, चाहे इन्जीनियरिंग, सभी छूट है। यहाँ का विद्यार्थी स्कूल के कोर्ष के अलावा भी अनेक कोर्ष लेकर विविध ज्ञान प्राप्त करते हैं। पढ़ाई का खर्च यहाँ बहुत अधिक होता है। या यों कहें कि आय का २५ प्रतिशत खर्च पढ़ाई का होता है।

यहाँ एक आश्चर्य जनक बात यह भी देखी की बच्चों में फिल्मो के कारण, घर में माता–पिता के मनमुटाव के कारण क्राईम और सेक्स के भाव अधिक देखे जाते हैं। सेक्स (काम–भोग) यहाँ बचपन से ही पनपता है। आप इसीसे अंदाज लगा सकते हैं कि यहाँ कुँवारी माताओं की संख्या अधिक है और ऐसे बच्चों के लिए स्कूलों में पालना घर बने हुए हैं। जहाँ कुँवारी मातायें पढ़ती हैं और बच्चे झूलते हैं। आप किसी भी स्थान पर पुरूष–स्त्रिओं को चुंबन करते देख सकते हैं। यहाँ यह चारित्रिक विकृति अधिक है। यही कारण है कि हमारे हिन्दुस्तानी भाई लड़के–लड़कियों के किशोरावस्था में पाँव रखते ही चिंतातुर हो उठते हैं। वैसे अब कुछ जैन लड़के–लड़कियों ने भी अमरीकनों के साथ विवाह किये हैं, यह प्रवृत्ति जैनेतरों में अधिक है।

विश्व के इस धनाढ्य देश में कोढ़ के ड़ाघ की तरह क्राईम भी अधिक होते है। जहाँ काले लोगों की बस्ती ही वहाँ चोरी डकैती के पाप भी होते रहते हैं। यहाँ के मूल निवासी रेड इन्डियन तो अब कहीं गाँव में ही इक्के–दुक्के

दिखाई देते हैं।

एक मज़ेदार बात ओर देखी। यहाँ बच्चा चाहे चौथी कक्षा पास हुआ हो या स्कूल की ८वीं या १२वीं या कॉलेज की कोई परीक्षा पास हुआ हो। ग्रेज्युएशन पार्टी अवश्य होती है। इसमें बड़ी धूमधाम होती है। वैसे वहाँ पार्टिओमें इतना अधिक हो–हल्ला व पश्चिमी धुनों पर डांस होता है कि उनके सामने हमारे डीस्कोथ भी फीके लगें। ऐसी कुछ पार्टियों में सम्मिलित होने का मौका मिला और यह सब देखा और जाना। यहाँ के बच्चे अंतर्मुखी अधिक लगे। वे अधिकांश समय एकांत में अपने कमरों में गुजारते हैं या फिर अपने ढंग के वांचन–टीवी–डांस–म्युजिक में बिताते हैं। इस कारण वे भारतीय संस्कारों से दूर होते जाते हैं।

अमरीका के विस्तृत वर्णन हेतु में शीघ्र ही 'हवा के पंखों पर' पुस्तक लिख रहा हूँ।

जैन सेन्टर

यहाँ अमरीका का जैनों के संदर्भ में एक सुखद पहलू यह है कि हमारे जैन लोग बड़े ही सतर्क रहते हैं। अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु उन्होंने प्रायः हर राज्य में जैन सेन्टरों की स्थापना की है। अमरीका में आज लगभग १ लाख जैनों की वस्ती है, और लगभग ८० सेन्टर कार्यरत हैं। जैन संस्कृति की रक्षा हेतु जैनधर्म के संस्कारों के सिंचन एवं प्रचार–प्रसार हेतु ऐसे जैन सेन्टरों की स्थापना की गई है। यहाँ विशेषता यह है कि सभी जैन अपने साम्प्रदायिक दायरे से निकलकर एकमात्र जैन बनकर कार्य कर रहे हैं। एक ही स्थान पर दिगम्बर–श्वेताम्बर–तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं तो स्थानकवासियों का साधना स्थल उपाश्रय है। अमरीका में श्रीमद् राजचंद्रजी के भक्तों की अच्छी संख्या होने से सेन्टरो में उनका साहित्य और साधना कक्ष भी होता है। सभी लोग मिलकर महावीर जयंति, दीपावली, नवरात्रि, पर्युषण, दशलक्षण उत्साह से मनाते हैं। प्रायः प्रति शुक्र–शनि–रवि पूजा–भजन–भक्ति के कार्यक्रमों के साथ बच्चों के लिए उनकी मातृभाषा की कक्षायें चलाकर उन्हें मातृभाषा सिखाई जाती है। साथ ही उनकी उम्र और श्रेणी के अनुसार जैनधर्म की शिक्षा भी दी जाती है। बड़े लोगों के लिए धार्मिक कक्षायें और प्रवचनों का आयोजन होता रहता है। लगभग शनिवार या रविवार को केन्द्रों में इस शिक्षण के साथ समूह भोजन भी होता है। जैन संस्कृति को अधिक दृढ़ बनाने हेतु विद्वानों को बुलाकर निरंतर सत्संग आयोजित होते रहते हैं। इस कारण यहाँ जैनों में आज भी भारतीय जैन संस्कार दृष्टिगत होते हैं। आज यहाँ न्यूयार्क, शिकागो, बोस्टन, ह्युस्टन, सिनसिनाटी, डेट्रोईट, वोशिंग्टन, न्युजर्सी, केलिफोर्निया, सानफ्रान्सिस्को आदि अनेक राज्यो व शहरों में विशाल जैन मंदिरों की स्थापना हुई है। ये विशाल परिसर इन भोजनशाला, पाठशाला, ग्रंथालय आदि से सज्ज हैं। यहाँ प्रति दो वर्ष में युवा जैनों का एवं हर दो वर्ष में जैना का अधिवेशन विशाल स्तर पर होता है। जिसमें ८–१० हजार जैन एकत्र होते हैं। अनेक संत विद्वानों के निरंतर शैक्षणिक प्रवचन होते हैं। मुझे भी शिकागो एवं सानफ्रान्सिस्को के अधिवेशन में जाने का व प्रवचन ध्यान शिविर के आयोजन का मौका मिला है।

मैंने चिंतन किया तो पाया कि अमरीका की समृद्धि का कारण है– (१) यहाँ लोग स्वयं शिस्त में विश्वास करते हैं या पुलिस या दंड का डर भी उन्हें शिस्त पालन में बाध्य करता है। (२) सबको अपने काम से लगाव है। क्योंकि प्रायः सभी प्राईवेट फर्म होने से काम को ही प्राथमिकता दी जाती है, और तदनुसार ही पैसे मिलते हैं। यहाँ 'जितना काम उतना दाम' की नीति है। (३) अधिक पैसा मिलने के कारण विश्व के देशों का उत्कृष्ट बुद्धि धन यहाँ आ गया है। सिर्फ ४०० वर्ष पुराना देश होन से एवं विश्व के प्रायः प्रत्येक द्वीप के लोगों के आने से

पंचरंगी संस्कृति विकसित हुई है। (५) जनतंत्र अत्यंत मजबूत है। (६) आर्थिक सम्पन्नता एक तो लोगो की कार्यक्षमता के कारण दूसरे प्रकृति प्रदत्त जलवायु के कारण भी है। बारह महिने जल, घने जंगल, अधिक गरमी न होना, प्रदूषण न होना आदि भी प्रगति के मूल कारण हैं। 'खूब कमाना खूब खर्च करना' यहाँ का सूत्र बन गया है।

धार्मिक प्रवचन श्रृंखला

प्रवचन की यह श्रृंखला वैसे तो लगभग १९५६ से चल रही थी। मैं १९५६ में मैट्रिक पास हुआ था। हमारे गोमतीपुर के मंदिर में किसी विद्वान को बुलाने के सुविधा नहीं थी। पूरी समाज में मैं अकेला मेट्रिक था अतः लोगों ने दशलक्षण पर्व में शास्त्र पढ़ने का आदेश दिया। मुझे भी शौक तो था ही सो रात्रि में शास्त्र पढ़ता। सविशेष दशधर्म दीपक के दशधर्म के पाठ पढ़ता। थोडा बहुत समझाता यद्यपि मैं भी जैनधर्म में विशेष कुछ नहीं जानता था। खुरई गुरूकुल के संस्कार अवश्य सहायक बनते थे। यह सिलसिला १९६३ तक चला। १९६३ से १९६८ तक बाहर रहने से सिलसिला टूट गया। सन् १९७२ से भावनगर में स्थायी हुआ। वहाँ १९७२ से ७६–७७ तक हुमड़ के डेला में दिगम्बर जैन मंदिर में दशलक्षण में प्रवचनार्थ बुलाया जाने लगा। इसीके साथ भावनगर की जैन संस्थाओ में भी प्रवचनार्थ आमंत्रित होने लगा।

सन् १९७९ में पहली बार वर्तमान झारखंड के डाल्टनगंज शहर में आमंत्रित हुआ। यह दशलक्षण पर्व में पूरे १० दिन के लिए पहली बार जाने का प्रसंग था। जब वहाँ स्टेशन पर पहुँचा तो आठ–दस लोग अगवानी के लिए आये। १० दिन बड़ा ही उत्सव व उत्साह का वातावरण रहा। यहाँ सभी घर खंडेलवाल जैनों के हैं। मुझे श्री राजकुमारजी जैन (लड्डूबाबू) के यहाँ ठहराया गया जो वहाँ के बड़े व्यापारी, उत्साही, युवा कार्यकर थे। खंडेलवाल समाज खिलाने–पिलाने में बड़ा ही उदार एवं आग्रही होने से भूख और पेट से ज्यादा खिलाते। सूखे मेवे मिष्टान खूब होता। ऐसे गरिष्ट भोजन के कारण क्या स्वाध्याय हो सकता है? दिन को खूब सोते। आखिर मैंने वहीं यह नियम लिया कि पर्युषण में तला हुआ, सुखे मेवे आदि नहीं लूँगा।

सन १९८० में दिल्ली के सरोजीनी नगर में आमंत्रित था। वहाँ श्री प्रेमसागरजी के वहाँ रुका हुआ था। वे एक बड़े सरकारी अफसर थे और अति सरल और उदार। दिल्ली में प्रायः अग्रवाल समाज अधिक है। धार्मिक क्रियाकांड में ये लोग खूब रूचि लेते हैं पर एकासन या उपवास कम ही करते हैं। रात्रि में दूध और फल भी ले लेते हैं। मुझे आश्चर्य तो उसदिन हुआ जब सुगंध दशमी के दिन चैत्यवंदन से लौटते समय शाम को लालमंदिर के परिसर में लोगों ने सायंकालीन भोजन किया। जिसमें अधिकांश के टिफिन में आलू के परोठे थे। मुझे बड़ा धक्का लगा। रात्रि को लोगों को धर्म की भाषा में डाटा, फटकारा। यह सिलसिला चलता रहा और इसी श्रृंखला में भोपाल, रतलाम, नागपुर, जबलपुर, कानपुर, सागर, उदयपुर, अहमदाबाद, मुंबई कई स्थानों पर दशलणो में जाता रहा हूँ। मेरा इस प्रवचन श्रृंखला में गौरव इस बात का रहा कि मैं दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी सभी संप्रदायों द्वारा आयोजित व्याख्यानमालाओं में आमंत्रित होता रहा हूँ। इसी श्रृंखला में १९९०–९१ में नैरोबी, १९९४ से २००६ तक श्वेताम्बर पर्युषण, दिगम्बर दशलक्षण, महावीर जयंति और जैना के कन्वेन्शनो में निरंतर जाता रहा हूँ।

इन प्रवचनों के उपरांत साधु भगवंतों के द्वारा आयोजित गोष्ठियों में पिछले २० वर्षों से जाकर अपने शोधपत्र प्रस्तुत करता रहा हूँ। कई गोष्ठियोंके सत्रों की अध्यक्षता की, संचालन किया तो कई गोष्ठियों का पूर्ण संयोजन करने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

जैन साहित्य समारोहों में गोष्ठियों में पंचकल्याणकों में तो यह अवसर मिला ही पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग द्वारा आयोजित अनेक गोष्ठियों में हिन्दी साहित्य पर शोधपत्र पढ़ने व इलाहाबाद, बेंगलोर जैसे स्थानों पर गोष्ठियों और कवि संमेलन का संचालन करने का मौका भी मिला।

चूँकि मैंने हिन्दी और जैन साहित्य का सृजन कार्य काव्य लेखन से किया था अतः कभी गोष्ठियों, कभी संमेलनो में भी जाने की मौका मिला। अनेक कवि संमेलनो का संचालन भी किया। मेरा यह गौरव रहा है कि मैं कवि संगीतकार रवीन्द्र जैन, शैल चतुर्वेदी, अंबाशंकर नागर, किशोर काबरा, हास्य सम्राट सुरेन्द्र शर्मा आदि कवियों के साथ काव्य पटन कर सका। मैंने स्वयं भावनगर, अहमदाबाद, सुरेन्द्रनगर, बैंगलोर में कवि गोष्ठियों का आयोजन या संचालन किया है। तात्पर्य कि मेरी यह प्रवचन, संचालन, आलेखन प्रस्तुतिकरण की प्रवृत्ति १९५६ से चल रही थी। वैसे अध्ययन के दौरान स्कूल, कॉलेज, युनिवर्सिटी में वाक् प्रतियोगिता व कवि सम्मेलनो से यह प्रवृत्ति अधिक मजबूत हुई।

लेखन कार्य

काव्य लेखन

लेखन कार्य का शौक तो बचपन से ही था। कॉलेज के समय से ही भींतपत्र में लिखता था। अनेक गोष्ठियों कवि संमेलनो में जाने के कारण कुछ न कुछ नया लिखता ही रहता था। प्रारंभिक कवि संमेलन की याद आज भी गुदगुदा जाती है।– अहमदाबाद के उपनगर बापूनगर में एक कवि संमेलन और मुशायरा था। मुझे भी आमंत्रण मिला। श्री शास्त्रीजी मुझे ले गये। कामील साहब भी परिचित थे। पहलीबार कविता के मंच पर गया था। पसीना छूट रहा था। ऊपर से रोब झाड़ने को किसी की काली शेरवानी पहनी थी। चुश्त पायज़ामा– मंच पर पहुँचे। ड्रेस देखकर लोग बड़ा शायर समझ बैठे। लोग सलामें ठोक रहे थे और मैं अंदर ही अंदर घबड़ा रहा था। दो घंटे में चार–पाँच बार तो पेशाब कर आया। खैर भगवान ने लाज रख ली। कविता पाठ सस्वर किया। इससे झिझक भी दूर हुई। फिर तो अनेक कवि संमेलनो में गया। काव्यपाठ किया और संचालन किया।

लेखन कार्य को सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया आदरणीय डॉ. रमाकांतजी शर्माने। हमारी काव्य गोष्ठी जो साबरमती नदी के किनारे महालक्ष्मी मंदिर में नियमित होती थी। भाई पारसनाथ, अनंतरामजी बड़े उत्साह से सभी आयोजन करते। अनेक मित्र इकट्ठे होते। कविता पाठ करते। हम सभी मित्रों की कविता का प्रथम संग्रह 'चेतना' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

जब में इन्टर आर्ट्स में था तब मैंने श्री भगवत स्वरूप भगवत का काव्य संग्रह घरवाली पढ़ा था। उस समय मुझे कविता के लिए निरंतर प्रेरित करनेवाले मेरे बुजुर्ग स्व. श्री रघुवर दयाल गुप्ताजी ने जो स्वयं कविता करते थे– ने प्रोत्साहित किया और कहा 'तुमई कछु लिख डारो' बस प्रेरणा मिली और मैंने घरवाली के उत्तर में १२६ चतुष्पदी का 'घरवाला' व्यंग्य काव्य लिख डाला जो बाद में १९६८ में सूरत से प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका लिखी थी प्रसिद्ध कवि काका हाथरसी ने। उसी श्रृंखला सन १९७५ में 'कठपुतली का शोर' लखनऊ से प्रकाशित हुई जिसकी भूमिका प्रसिद्ध कवि उपन्यास कार श्री भगवतीचरण वर्माने लिखी थी। अन्य कवियों के साथ भी एक–दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए।

गद्य लेखन

पद्य के साथ गद्य लेखन भी चलता रहा। सन १९७२–७३ में मेरी थीसिस 'राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला' जयपुर से प्रकाशित हुई जिसमें दो शब्द स्वयं दिनकरजी ने लिखने की कृपा की थी।

कहानी लेखन का विशेष शौक था। अतः 'इकाईयाँ–परछाइयाँ' संग्रह का संपादन डॉ. मजीठिया जी के साथ

किया तो मेरी स्वतंत्र कहानियों का संग्रह 'टूटते संकल्प' कानपुर से प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह की भूमिका प्रसिद्ध कथा लेखक डॉ. श्री रामदरशजी मिश्र ने लिखने की कृपा की थी। अन्य कहानियाँ भी लिखीं पर प्रकाशन के अभाव में अभी फाईल में ही प्रतिक्षारत हैं।

जैन साहित्य

हिन्दी साहित्य के लेखन से अधिक मुझे जैन साहित्य के लेखन में अधिक आनंद और आत्मसंतोष मिला। इसका कारण यह भी था कि हिन्दी जगत की राजनीति, प्रकाशकों की दुरंगी नीति, कमीशन के प्रश्न, मूल्यों की रकझक आदि थे। पर जैन साहित्य में ऐसा कम ही था। दूसरे यह मेरी रूचि का क्षेत्र भी था।

मैं छोटे–छोटे लेख जैन पत्र–पत्रिकाओ में लिखता रहता था। और १९८२ से इसे गति मिली। १९८१ में रीढ़ की हड्डी के ऑपरेशन के कारण जो तीन महिने का आराम का समय मिला (जबरदस्ती का आराम) उसमें प्रथम पुस्तक गुजराती में लिखी गई 'जैन आराधना की वैज्ञानिकता' पुनश्च इसीका हिन्दी अनुवाद 'जैन दर्शन सिद्धांत और आराधना' के नाम से प्रकाशित हुआ। चूँकि मेरे आलेख, निबंध, ठीक–ठीक प्रमाण में हो चुके थे। अतः उनका संकलन 'मुक्ति का आनंद' (हिन्दी–गुजराती), मृत्यु महोत्सव (हिन्दी) के नाम से प्रकाशित हुए। तदुपरांत पू. उपाध्याय ज्ञान सागरजी की प्रेरणा से 'पद्मपुराण'– 'पउमचरिउं' के आधार पर भगवान रामचंद्रजी को नायक बनाकर 'मृत्युंजय केवली' राम उपन्यास लिखा जो शास्त्रि परिषद ने छापा। उन्हीं की प्रेरणा से महान जैन दस सतियों पर कहानी संग्रह 'ज्योर्तिधरा' का लेखन कार्य किया। जो बुढ़ाना से प्रकाशित हुआ। इसी श्रृंखला में 'परीषहजयी' नौ मुनियों के उपसर्ग की कथायें नवीन शैली में कहानी के रूप में प्रकाशित हुई।

मैं १९८० से पर्युषण पर्व में णमोकार मंत्र का ध्यान शिविर आयोजन करता हूँ। पतंजलि, योगशास्त्र, आ. तुलसी एवं आ. महाप्रज्ञ के ग्रंथों का अध्ययन किया और सैंकड़ो पृष्ठों का तत्व सिर्फ ६०–७० पृष्ठों में प्रस्तुत किया। पुस्तक का नाम 'तन साधो मन बांधो' है। पुस्तक में ध्यान की समग्र क्रिया को चित्रों के साथ प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में गुरुदेव श्री चित्रभानुजी एवं पू. महाप्रज्ञजी के विचार आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त हुए। पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई की हिन्दी के उपरांत दो संस्करण गुजराती में हुए जिसमें एक संस्करण जैन सेन्टर बोस्टन ने प्रकाशित कराया था।

इसी प्रकार श्वेताम्बर पर्युषण में श्री कल्पसूत्र का प्रवचन करता रहा हूँ। जिसमें ११ गणधरों की कथा बड़ी ही रोचक और रोमांचक है। उससे प्रेरित होकर मैंने बोस्टन के एक मित्र के आग्रह पर गुजराती और अंग्रेजी में 'गणधरवाद' के नाम से पुस्तक लिखी।

मैं प्रारंभ से ही आचार्य विद्यासागरजी के काव्य साहित्य का पाठक रहा हूँ। जब उनका महाकाव्य मूकमाटी प्रकाशित हुआ तब प्रथम १०–१२ समीक्षाओं में मेरी एक समीक्षा थी। जो लगभग ४० पृष्ठो की थी। उस समीक्षा से ही मेरा पू. श्री के साथ सीधा संबंध बढ़ा। मूक माटी पर प्रथम बार बीना बारहा में आचार्यश्री के समक्ष समीक्षा करने का मौका मिला। बाद में उनके पाँच काव्यसंग्रहों का पठन–मनन–चिंतन और विवेचन करते हुए 'आ. कवि विद्यासागरजी का काव्य वैभव' ग्रंथ प्रकाशित किया। इसी श्रृंखला में बच्चों को ध्यान में रखकर आठ कर्मों की आठ कहानियाँ लिखकर कर्म के सिद्धांतों की सरल व्याख्या करते हुए जैनदर्शन में कर्मवाद पुस्तक का लेखन किया। जिसे अनपेक्षित लोकप्रियता प्राप्त हुई। अन्य निबंधों का संग्रह उदयपुर निवासी श्री महावीर मिंडा चेरीटेबल ट्रस्ट की ओर से 'जैन धर्म विविध आयाम' के नाम से प्रकाशित हुई।

इस स्वतंत्र लेखन के उपरांत संपादन कार्य किया। इसमें पू. स्व. मूलचंदजी कापड़िया अभिनंदन ग्रंथ जिसका

मैंने संपादन किया। इसी प्रकार पं. कमलकुमारजी शास्त्री एवं पं. फूलचंदजी पुष्पेन्दुजी के साथ 'सचित्र भक्तामर रहस्य' एवं 'भगवान महावीर चित्र शतक' ग्रंथ का संपादन किया। पं. कमलकुमारजी द्वारा भक्तामर के विविध भाषाओं में १२५ प्राप्त अनुवादों का संकलन 'भक्तामर भारती' का संपादन किया। जिसकी विस्तृत भूमिका लिखी जिसका प्रकाशन खेमचंद मोतीलाल ट्रस्ट सागर द्वारा कराया गया। इन्हीं के द्वारा संकलित पू. गणेशप्रसादजी वर्णी के पत्रों का भी संपादन करने का मौका मिला।

सेठ मोतीलालजी एक अच्छे विचारक और लेखक है। उनकी डायरीओं से उत्तम विचारों का संकलन कर 'चिंतन की गलियों' से पुस्तक का संपादन किया और भूमिका लिखी। इसी श्रृंखला में पू. आ. विरागसागरजी के कर्मवाद पर प्रकाशित ग्रंथ की भूमिका लिखने का गौरव प्राप्त हुआ।

पू.ग.आ. ज्ञानमतीजी के ६०वें जन्मदिन पर प्रकाशित अभिनंदन ग्रंथ एवं उनके ५०वें दिक्षा समारोह पर प्रकाशित गौरव ग्रंथ के संपादक मंडल में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पू,गणधराचार्य, पू. कुन्थुसागरजी, पू. आ. गुणधरनंदीजी, पू.आ. कनकनंदीजी के ग्रंथों का प्रकाशन, संकलन, संशोधन का कार्य संपन्न किया।

जैन विद्वान कैसे बना?

मैंने खुरई गुरुकुल के ७–८ महिने के धार्मिक अध्ययन 'रत्नकरंड श्रावकाचार' के अलावा कहीं किसी पाठशाला में विधिवत जैनधर्म का अध्ययन नहीं किया है। यह सबकुछ मेरी आंतरिक जिज्ञासा से हुआ है। एक छोटी सी घटना इसमें कारणभूत रही। जब मैं छोटा था। गोमतीपुर मंदिर में जब कभी कोई पंडितजी आते थे, मैं उनके प्रवचन सुनता और एकबार मैंने कुछ प्रश्न किया तो उन्होंने झड़कते हुए कहा था कि 'तुम नये लोंडे धर्म को क्या जानो?' बस यह बात मुझे चुभ गई और मैंने संकल्प किया कि एकदिन पंडित बनकर दिखाऊँगा। इसी श्रृंखला में मैं थोड़ा बहुत जैनधर्म के अध्ययन की ओर मुड़ा। स्थानिक मंदिर में पुस्तकें पढ़कर प्रवचन भी करने लगा। इससे मेरी रूचि भी बढ़ी। लेकिन सबसे बड़ा मोड़ सन् १९६६ में तब आया जब मैं सूरत में कॉलेज के साथ–साथ श्री कापड़ियाजी के साथ जैन मित्र में कार्य करने लगा। वहाँ पूरा ग्रंथ भंडार और वहाँ अनेक जैन सिद्धांत ग्रंथों को पढ़नेका मौका मिला। प्रथमानुयोग के शास्त्रों को सबसे अधिक पढ़ा क्योंकि उसमें कथाओं के माध्यम से सिद्धांतों को समझाया गया था। इसीके कारण मैं कुछ विद्वानों के संपर्क में भी आया। मेरी यह लगन बढ़ती गई और भावनगर में आने के पश्चात मेरी रूचि वृद्धिंगत हुई। धीरे–धीरे प्रवचनों के लिए आमंत्रित होने लगा और इससे पढ़ना एक प्रकार से आवश्यक हो गया। मैं दिन–प्रतिदिन अधिक पुस्तकें पढ़ने लगा। बंबई की और अन्य स्थानों की व्याख्यान मालाओं में प्रवचनार्थ जाने के लिए दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों के ग्रंथों का अवलोकन करने का मौका मिला। जब १९८० से दशलक्षण में प्रवचनार्थ जाने लगा तब तो अध्ययन और भी अधिक करने लगा। इसके साथ ही गोष्ठियों में शोधपत्र पढ़ने के निमित्त से भी अध्ययन में तेजी आई। इसके साथ ही साथ मैं पं. बाबूलालजी जमादार का भी आभार मानता हूँ उन्होंने मुझे शास्त्रि परिषद का सदस्य बनाया। इन दिग्गज विद्वानों के बीच मैं लघुता ग्रंथि का अनुभव न करूँ अतः निश्चित रूप से शास्त्रों का पठन पाठन करता ताकि कम से कम इनकी बात तो समझ सकूँ इस प्रकार मैं धीरे–धीरे जैनधर्म के सिद्धांतों को समझने का प्रयत्न करने लगा। इसी संदर्भ में मैंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं और परिणाम स्वरूप मैं अपनी आंतरिक रूचि और श्रद्धा के कारण जैनधर्म के प्राथमिक ज्ञान को प्राप्त कर सका और देश के विद्वानो में कुछ पहिचान बना सका। यद्यपि जब मैं अपना जैन विद्वान के रूप में मूल्यांकन करता हूँ तो मुझे लगता है कि मुझे तो अभी कुछ भी नहीं आता। यह है मेरे जैन विद्वान बनने की कहानी और विकास की यात्रा।

जैन विद्वानों की उठा-पटक

जैसे–जैसे मैं जैन विद्वानों के संपर्क में आया तैसे–तैसे उनमें चलने वाली अविद्वत्ता पूर्ण राजनीति को देखा और मैं दंग रह गया। यहाँ उस पद के लिए ऐसी होड़ लगती है, जिसका कोई विशेष मूल्य नहीं होता। हमारे विद्वान जो अहिंसा, सत्य, समता, अपरिग्रह के उपदेश देते हैं वे गुटबंदी में सर्वाधिक रचे–पचे रहते हैं। एक दूसरे की निंदा करने में परम आनंद रस का रसपान करते हैं। इस संदर्भ में विशेष न लिखकर इतना ही कहूँगा कि हमारी इस उठा–पटक ने विद्वानों की अलग–अलग संस्थायें बना दीं, और आज विद्वानों की चार–पाँच संस्थायें अपनी–अपनी ढफली से अपना–अपना राग गा रही हैं। उनके ये टुकड़े यह भी स्मरण कराते हैं कि ऐसे ही पद लोलुप लोगों के कारण ही भगवान महावीर के अखंड धर्म में अनेक साम्प्रदायिक खंड हुए होंगे। हम विद्वानों का लाभ अनेक देश की संस्थाओ के कर्णधरों ने लिया। वे विद्वानों को अपना वाजिंत्र समझते रहे और उनके कंधों पर बंदूक रखकर आपस में लड़ते रहे। भोला विद्वान इन कूटनीति से रंगे हुए संस्थाओं के पदाधिकारियों की चाल में फँस गया और परेशान हो गया। कभी–कभी तो इनके इस रवैये को देखकर लगता रहा कि मैं अपने नाम पर विद्वान होने का सिक्का न लगवाता तो अच्छा था।

विद्वान अनेक प्रसंगों पर समाज में प्रवचनार्थ जाते हैं। एक ओर हम विद्वान विद्याके प्रचार का दंभ भरते हैं परंतु विदाई के लिफाफे की रकझक करके अपनी सारी प्रतिष्ठा को निंदा में बदल देते हैं। तब लगता है हम विद्वान नहीं कोई धर्म के ठेकेदार हैं जो ठेकेदारी वसूल कर रहे हैं। ऐसे अनेक प्रसंग हैं पर यह तो एक छोटी सी झलक ही प्रस्तुत कर रहा हूँ। मैं भी इन सबका सहभागी और दोषी रहा हूँ। इसका यही प्रायश्चित होगा कि इन सभी संस्थाओं से निवृत्त होकर लेखन और आत्मचिंतन में लगूँ।

मुनियों में व्याप्त शिथिलाचार और गुटबंदी

मैंने दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों संप्रदाय के साधुओं को निकट से देखा और जाना है। इसमें भी दिगम्बर साधुओं को अधिक जाना समझा है। दुःख इस बात का है कि स्वयं को निर्ग्रन्थ अर्थात् सभी ग्रंथियों से मुक्त मानने वाले यह साधु अपने आचरण पर दृढ नहीं रह पाये। पहली बात तो वे आत्मवाद में स्थिर होने की जगह पंथवाद में बँट गये। १३ और २० का चक्कर उन्हें उलझाये रहा। हमारे साधुओं का देखा जाये तो अध्ययन बहुत ही कम रहा। कुछ ही ऐसे साधु और साध्वियाँ हैं जिन्होंने वास्तव में मुनि और आर्यिका वेश को सार्थक किया, बहुत कुछ लिखा और विद्वान और विदुषी के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनकी साधना और चरित्र अनुकरणीय रहा। परंतु ऐसे मुनि और आर्यिकायें ऊँगली पर गिनने जितने ही रह गये हैं।

चारित्र चक्रवर्ती शांतिसागर महाराज की परंपरा में साधुओं ने अपने को जोड़ा अवश्य परंतु वे उनके गुणों को आत्मसात नहीं कर पाये और अलग–अलग गुट बनने लगे। आज सभी संप्रदायों में गच्छ, गण और परंपरायें कुकरमुत्ते, मेंढकों की तरह फूट रही हैं। आ. तुलसी के तेरह पंथ को छोड़कर कहीं एक छत्र में साधु दिखाई नहीं देते। हमारे यहाँ तो इतने आचार्य हो गये हैं कि क्या लिखे? कुछ तो वास्तविक गुरू द्वारा आचार्य बनाये गये, कुछों ने गुरू पर दबाव डालकर आचार्य पद प्राप्त किया और कुछ स्वयंभू आचार्य पद पर आसीन हो गये। इन मुनियों ने अपने–अपने गुट बना लिये और कषाय से मुक्ति का दावा करने वाले परस्पर के कषाय में ही डूबते गये।

जिन लोगों ने संसार की मोह–माया को छोड़ने का संकल्प कर दीक्षा धारण की थी वे लोग करोड़ों रूपये के मठ, गिरि और स्थानक बनाने लगे। करोड़ों और अरबों की योजनायें भोले श्रावकों को पुण्य और स्वर्ग का

लालच देकर–धन इकट्ठा करके उसीमें लीन हो गये। मुझे तो लगता है कि बिचारे सामायिक कब करते होंगे? क्योंकि उनका मन तो योजनाओं में ही उलझा रहता है। इतना ही नहीं कईयों ने तो स्वयं धन इकट्ठा करके अपने परिवार को सुखी भी किया है। और कईयों ने शिथिलाचार की अंतिम श्रेणी पर बैठकर चारित्रिक स्खलन द्वारा पूरे धर्म को ही बदनाम कर दिया है। लेकिन हमारा श्रावक इस सब शिथिलाचार को देखते हुए भी अंधश्रद्धा या अतिश्रद्धा के कारण मौन है। या फिर यह साधुओं का धार्मिक आतंकवाद ही है जो सच्चे लोगों की जुबान बंद करवा देता है। साधुओं की यह गुटबाजी उनका अहम् उनकी नाम की लालसा, छपास का रोग उन्हें कहाँ ले जायेगा यह तो भगवान जाने पर जैनधर्म के पतन में उनका सहयोग अविस्मरणीय रहेगा।

सम्मान एवं उपाधियाँ

जैसाकि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ लगभग किशोरावस्था से ही प्रवचन, लेखन का कार्य करता था। १९९३ से 'तीर्थंकर वाणी' मासिक पत्र का प्रारंभ किया। पत्रिका को संप्रदाय के संकुचित दायरे से निकाल कर विशाल जैनत्व के फलक पर स्थापित किया। उसमें संपादकीय, लेख, बालजगत एवं चिंतन विशेष के कारण सन् २००० में उपाध्याय ज्ञानसागरजी की प्रेरणा से मेरठ में स्थापित प्रथम 'श्रुत संवर्धन पुरस्कार' स्व. श्री रमेशचंदजी साहू के कर कमलों द्वारा प्राप्त हुआ। एवं सन् २००३ में पत्रिका के उत्तम प्रदान हेतु 'अहिंसा इन्टरनेशनल' दिल्ली द्वारा पूर्व राज्यपाल भाई श्री महावीर द्वारा पुरस्कृत किया गया। वास्तव में यह दोनों सन्मान मेरी संपादन कला एवं निर्भीक पत्रकारिता का ही सन्मान था।

मेरे लेखन आदि कार्यों के कारण मुझे हस्तिनापुर के त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा 'जंबू द्वीप पुरस्कार' प्रदान किया गया तो पूज्य सहजानंदजी वर्णी के साहित्य के प्रचार प्रसार हेतु 'श्री सहजानंद वर्णी पुरस्कार' अहमदाबाद में गुजरात के राज्यपाल महामहिम श्री सुंदरसिंहजी के भंडारी के करकमलों से प्रदान किया गया।

मेरा गौरव यह रहा कि राष्ट्रीय स्तर का 'पू.ग.आ. ज्ञानमती पुरस्कार' जो प्रति पाँच वर्षों में प्रदान किया जाता था (अब प्रतिवर्ष) वह सन् २००५ में मुझे प्रदान किया गया। जिसमें एक लाख रू. की राशि के साथ स्मृति चिन्ह आदि द्वारा भारत सरकार के गृहराज्यमंत्री श्री प्रकाशचंदजी जायस्वाल द्वारा प्रदत्त कराया गया।

इसी प्रकार उदयपुर समाज द्वारा 'वाणीभूषण', भोपाल समाज द्वारा 'प्रवचनमणि' एवं त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर द्वारा 'ज्ञानवारिधि' की मानद् उपाधियों से सन्मानित किया गया। इसके अलावा अनेक गोष्ठियों में स्मृति चिन्ह आदि से सम्मानित किया गया हूँ।

गुजरात के महामहिम राज्यपाल द्वारा सम्मान

बात लगभग २० वर्ष पुरानी है। उस समय गुजरात के गवर्नर थे महामहिम श्री त्रिवेदीजी। अहमदाबाद में पू. आचार्य श्री विजय चंद्रोदय सूरीजी का चातुर्मास ससंघ सम्पन्न हो रहा था। वह वर्ष शायद पू. यशोविजयजी महाराज की ४००वी जयंति का था। उस कार्यक्रम में पू. महाराजश्री के प्रमुख कार्यकर्ता श्री अनिलभाई गाँधी ने मुझे आमंत्रित किया। पू. आचार्यश्री तो पहले से ही जानते थे। मैंने पू. यशोविजयजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपना आलेख भी प्रस्तुत किया। उस समय श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघने एक जैन विद्वान के रूप में माननीय महामहिम राज्यपाल श्री त्रिवेदीजी से शॉल ओढ़ाकर मेरा सम्मान कराया। इतना बड़ा सम्मान जीवन में प्रथम सम्मान था और वह भी एक विशाल संघ व प्रसिद्ध आचार्यश्री की उपस्थिति में। मेरी प्रसन्नता का अनुभव उस दिन भी मैंने किया था और आज भी उसका स्मरण करके मन प्रसन्न होता है। इससे मुझे एक लेखक और

वक्ता के रूप में प्रसिद्धि भी मिली और लेखन की प्रेरणा भी। वैसे यह मेरा सौभाग्य रहा कि प्रायः सभी सम्मान किसी न किसी गवर्नर श्री के द्वारा ही प्राप्त हुए।

विद्यार्थियों हेतु स्कॉलरशीप

मुझे प्रारंभ से ही उन विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति रही है जिन्हें आर्थिक विपन्नता के कारण अध्ययन करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वे फीस, पुस्तकें आदि के अभाव में अच्छे ढंग से पढ़ भी नहीं पाते। मेरे मनमें जैसे १९५४ में गरीबों के लिए अस्पताल खोलने का एक बीज हृदय में रोपा गया था उसी तरह यह बीज भी हृदय में कहीं छिपा रहा। जैसे अस्पताल का कार्य प्रारंभ कर सका वैसे ही यह कार्य भी किया। मैंने पिछले ५ वर्षों से यह संकल्प किया था कि मुझे पर्युषण आदि पर्व में जो भी विदाई राशि मिलेगी उसे मैं इस अस्पताल में गरीबों के लाभार्थ दे दूँगा और मैं उसपर अमल करके स्वयं में आत्मसंतुष्टि का अनुभव करता हूँ। इसी प्रकार अपनी सीमा में विद्यार्थियोंकी सहायता करने हेतु एक स्कॉलरशीप फंड का भी प्रारंभ किया।

मुझे २००५ में जब पू.ग.आ. ज्ञानमती पुरस्कार में १ लाख रू. की राशि प्राप्त हुई तो उस राशि में मैंने १ लाख रू. और मिलाकर कुल २ लाख रू. रिजर्व बैंक में फिक्स में जमा करा दिये हैं और संकल्प किया है कि इस राशि से जो भी ब्याज आयेगा उसे गरीब विद्यार्थियों में विद्याध्ययन में सहायतार्थ दे दूँगा। अगले वर्ष से यह कार्य प्रारंभ हो जायेगा। मेरी भावना है कि यह राशि ५ लाख तक किसी तरह बढ़ाई जाय। ताकि अधिक से अधिक विद्यार्थियों को लाभ पहुँचा सकूँ।

श्री आशापुरा माँ जैन (गाधकड़ा) अस्पताल का प्रारंभ

सन् १९८८ में समन्वय ध्यान साधना केन्द्र की स्थापना की गई। परंतु मात्र कागज पर स्थापना थी। सन् १९९३ तक कोई विशेष कार्य नहीं हो सका। हाँ १९९३ में ट्रस्ट के मुखपत्र के रूप में तीर्थंकर वाणी मासिक पत्र का प्रारंभ किया और उसका प्रचार–प्रसार करते रहे। उससे लगभग १३ लाख रू. की बचत हुई। अतः अहमदाबाद के उपनगर ओढ़व में एक बिल्डींग की दूसरी मंजिल के १३ कमरे का पूरा फ्लोर खरीद लिया गया। पर समस्या थी कि अब कोई राशि शेष नहीं है क्या करें?

इसी उधेड़बुन में मैं और श्री धीरुभाई देसाई लगे रहते। मकान खरीद लिया था, पर आर्थिक अभाव में कुछ भी प्रारंभ करना कठिन लग रहा था। तभी एकदिन उनकी दुकान पर उनके मामा के लड़के श्री रमेशभाई धामी और उनके साथी दिल्ली निवासी श्री त्रिलोचनसिंह भसीन पधारे। हमने अपनी समस्या उनके सामने रखी। उन्होंने उसे सहानुभूति से सुना और एक सप्ताह में उत्तर देने को कहा। उन्होंने हमसे पूछा कि आपको कितनी राशि मिले तो आप अस्पताल प्रारंभ कर सकेंगे। मैंने कहा यदि २१ लाख रू. प्राप्त हो जायें तो हम कार्य कर सकते हैं।

आठ दिन बाद उन्होंने २१ लाख रू. देने की स्वीकृति दी और कहा 'हम सब श्री आशापुरा माँ के भक्त जिसका स्थानक सावरकुंडला के गाधकड़ा गाँव में है– सब मिलकर आपको २१ लाख रू. देंगे। हम कोई अपना नाम नहीं चाहते हैं। आप माताजी के नाम पर अस्पताल को प्रारंभ करें।' ट्रस्टने उनके प्रस्ताव का स्वीकार किया और अस्पताल को 'श्री आशापुरा माँ जैन (गाधकडा) अस्पताल' नाम प्रदान किया। और १९९८ में इसका विधिवत प्रारंभ तत्कालीन भारत सरकार के गृहराज्यमंत्री श्री हरिनभाई पाठक के द्वारा संपन्न हुआ।

स्व. श्री शांताबेन रमेशभाई कोटड़िया नेत्र चिकित्सालय

सन् १९९९ में श्री रमेशचंदजी कोटड़िया हमारी अस्पताल देखने पधारे। उन्होंने एक कमरे के लिए ७१ हजार रू. का दान घोषित किया और हमने उनसे पूरे आँख का विभाग देने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने इसपर सकारात्मक विचार करने का वचन दिया। दूसरे वर्ष वे आ. सुबलसागरजी के संघ का संचालन कर रहे थे। मार्ग में उनकी पत्नी श्रीमती शांताबेन का हृदयगति रुक जाने से अवसान हो गया। इससे वे बड़े खिन्न हुए और उन्होंने मेरे बंबई जाने पर तुरंत निश्चय करके हमारे द्वारा अपेक्षित ११ लाख रू. की राशि देने की स्वीकृति दी और सन् २००० में आँख के विभाग का विधिवत् प्रारंभ किया गया। और विभाग का नाम 'स्व. श्रीमती शांताबेन कोटड़िया नेत्र चिकित्सालय' रखा गया। विभाग का उद्घाटन तत्कालीन गुजरात के महामहिम राज्यपाल श्री सुंदरसिंहजी भंडारी के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ। इसीप्रकार सन् २००२ में भ. महावीर के २६००वें जन्मोत्सव के समय हमने ट्रस्ट की ओर से उन २६ जैनरत्नों का अभिवादन किया जिन्हें 'जैनरत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया था। उसी समय हमने न्यूजर्सी निवासी श्री निर्मलजी दोशी द्वारा प्रदत्त एम्ब्यूलेन्स के साथ सर्जरी, होम्योपेथी आदि विभागों का प्रारंभ किया। और सन् २००६ में अमरीका निवासी श्री तुरखियाजी, श्री अम्बरीश सेठीजी, श्री जिनेन्द्र–नीलिमाजी, श्री प्रद्युमन झवेरीजी के द्वारा दिये गये दान से ऑर्थोपेडिक, दंत विभाग, पेथॉलोजी लेबोरेटरी, ई.एन.टी. विभागों का लोकार्पण गुजरात राज्य के महामहिम राज्यपाल श्री नवलकिशोरजी शर्मा के करकमलों द्वारा संपन्न किया।

निःशुल्क नेत्र चिकित्सा योजना

श्री आशापुरा माँ जैन अस्पताल में स्व. श्रीमती शांताबेन कोटडिया नेत्र विभाग को गुजरात सरकार की मान्यता प्राप्त हो चुकी है। अतः मोतिया के नेत्रमणि के साथ निःशुल्क ऑपरेशन किये जाते हैं। एक ऑपरेशन पर लगभग 600 रूपयों की टूट पड़ती है। अतः एक योजना प्रस्तुत की गई जिसका समर्थन एवं प्रशंसा उद्घाटक महामहिम राज्यपालश्री ने मुक्त कंठ से की। योजना के अंतर्गत निःशुल्क नेत्र ऑपरेशन योजना का प्रारंभ किया गया। इस योजना में व्यक्ति 1 लाख, 50 हजार या 25 हजार का सदस्य बन सकता है। सदस्य को मूल राशि कभी नहीं देनी है। मात्र दस वर्ष तक (जिसे वह चाहे तो आगे भी बढ़ा सकता है) 8 प्रतिशत का ब्याज ही देना है। इस राशि से निःशुल्क ऑपरेशन किये जायेंगे एवं दाता को उनके नाम भेज दिये जायेंगे जिनके ऑपरेशन किये हैं। इस राशि पर भी आयकर में छूट प्राप्त होगी। उदाहरणार्थ 1 लाख रू. के सदस्य को 8 हजार, 50 हजार के सदस्य को 4 हजार एवं 25 हजार के सदस्य को 2 हजार रूपया प्रतिवर्ष देना है जिससे क्रमशः वर्ष में 16–8–4 ऑपरेशन किये जा सकेंगे। आप सब इस योजना का लाभ लेकर गरीबों को ज्योति प्रदान करने में सहयोगी बनें।

अमरीका से प्राप्त आर्थिक सहयोग

मैं जैसाकि पहले उल्लेख कर चुका हूँ१९९४ से प्रवचनार्थ विविध केन्द्रों पर जाता रहा हूँ। १९९३ में 'तीर्थंकर वाणी' मासिक पत्र का प्रारंभ किया था। सर्वप्रथम न्यूजर्सी में १९९४ में लोगों को इसका परिचय देते हुए प्रचार किया था। प्रारंभ में लोगों ने टीका–टिप्पणी भी की। भूतकाल का उन लोगों को अच्छा अनुभव नहीं था। कुछ लोग भारत से यहाँ आकर अपनी पत्रिका के ग्राहक बनाकर पैसे तो ले गये पर पत्रिका के एक–दो अंक

ही भेजे। उनकी ऐसी पृष्ठभूमि के कारण मुझे भी परेशानी हुई। पर मेरे प्रवचन, उसकी सच्चाई के कारण यहाँ लगभग ५० लोग तीर्थंकर वाणी के पाठक बने। और यह सिलसिला चलता रहा। आज ३५० से अधिक हमारे पाठक हैं। पिछले १४ वर्षों से पत्रिका उन्हें नियमित प्राप्त हो रही है।

सन् १९९६–९७ में अपनी भविष्य में प्रारंभ होनेवाली अस्पताल का प्रोजेक्ट लेकर सर्वप्रथम टेक्सास स्टेट के डलास शहर में गया। वहाँ वेको निवासी श्री किरीट दफ्तरी जी से चर्चा हुई और सर्वप्रथम उन्होंने ८००० डॉलर तत्पश्चात ५००० डॉलर देकर हमें प्रोत्साहित किया। ट्रस्टने उनके इस दान का सन्मान करते हुए अस्पताल में गायनेक विभाग को 'दफ्तरी गायनेक विभाग' नाम दिया। १९९८ में अस्पताल का विधिवत प्रारंभ किया और अमरीका से हमें एक्स–रे विभाग, सर्जरी विभाग, ई.एन.टी. विभाग, ऑर्थोपेडिक विभाग, दंत विभाग, पेथॉलोजी विभाग हेतु एवं फैंको मशीन, अद्यतन माइक्रोस्कॉप, ऑटोरिफ्रेक्टर मशीनों के लिए दान प्राप्त हुआ। इन विविध दाताओं के नाम विभागों के साथ जोड़े गये। आँख एवं होम्योपेथी को अवश्य भारत से दान प्राप्त हुआ।

इसीप्रकार हमने फंड एकत्र करके गरीबों के सहायतार्थ "तिथियोजना" का प्रारंभ किया। जिसमें ३०० डॉलर या ११००० की राशि निश्चित की। इसके अंतर्गत बुजुर्गों की पुण्यतिथि, स्वयं की विवाहतिथि, बच्चों की जन्मतिथि या अन्य किसी भी निमित्त से तिथि लेने की योजना बनाई। तिथि के दिन उनकी ओर से रोगियों को अधिक राहत देने की योजना बनी। इस योजना में लगभग २०० तिथिदाताओं में से लगभग १५० भाई–बहन अमरीका के हैं। इसप्रकार यदि देखें तो इन ७–८ वर्षों में अमरीका से लगभग १ करोड़ रू. से अधिक की राशि प्राप्त हुई। इसी श्रृंखला में वर्ष २००६ में पर्युषण पर्व के दौरान टेम्पा (फ्लोरीडा) में आमंत्रित था। पुराने मित्र श्री कमलेश शाह एवं उनकी धर्मपत्नी अवनी बहन से मुलाकात हुई। उनके पूछने पर अस्पताल की स्थिति एवं भविष्य में इन्डोर विभाग प्रारंभ करने की चर्चा की। साथ ही ५० लाख रूपयों की आवश्यकता बताई। तुरंत ही अवनी बहनने कमलेशजी की सलाह पर २५ लाख रूपयों की राशि स्वीकृति की। अगले वर्ष इन्डोर विभाग उनके नामसे प्रारंभ होगा।

कुछ खट्टी-मीठी यादें

१) मित्र द्वारा मकान हड़प लेना

हम लोग नागौरी चॉल में रहते थे। वहीं हमने एक दूसरा मकान खरीदा था कि परिवार को सुविधा रहेगी उस समय मैं प्राथमिक शिक्षक था। वहीं एक अध्यापक जो मेरे सहअध्यापक थे उनका नाम था श्री–––––––दुबे। वे बनारस के थे। देखने में अति भोले–सरल पर अंदर से पूरे दुष्ट और काले। उन्होंने छुट्टियों में कुछ दिन को मकान चाहा। मैंने मैत्री भाव से बिना किराये के मकान दे दिया। जब छुट्टियाँ पूरी हुई और हमें मकान की आवश्यकता हुई– हमने उनसे मकान खाली करने को कहा तो वे बहाने बनाने लगे। इतना ही नहीं जिस खाली कमरे में मैं जाकर सोता था उस पर रहस्यमय रूप से पथ्थर फिंकवाने लगे और भय का वातावरण पैदा करने लगे। उन्होंने कुछ उत्तर प्रदेश के गुंडो को भी अपने साथ कर लिया। दुःख की बात तो यह थी कि मेरे प्राथमिक शाला के गुरू और अब साथी अध्यापक वयोवृद्धश्री राजारामजी मिश्र, जिनकी सिफारिश से यह मकान उन्होंने दूबेजी को दिलवाया था– वे भी जाति के प्रवाह में बह गये और उन्होंने अपने वतन के होने के कारण दुबेजी की ही तरफदारी की। इससे बड़ी बात यह थी कि उस समय स्व. श्री बनारसी पहलवान जिनकी पूरे उत्तर भारतीयों

में धाक थी– इज्जत थी, वे भी बनारस के होने के कारण उसका ही पक्ष लेने लगे। आखिर 'घुटना झुका भी तो पेट की ओर' आखिर मानसिक तनाव, माताजी और पिताजी को गुंडागीर्दी से लगने वाला भय इन कारणों से वह मकान हमारे हाथ से हड़प लिया गया; इस कारण कि हमारा किसी गुंडे या पुलिस से परिचय नहीं था।

२) मित्र द्वारा ही लाखों की रकम हड़प जाना

मेरे जीवन का यह एक प्रसंग अत्यंत ही मानसिक उद्वेलन करनेवाला रहा। विश्वासघात का इससे बड़ा कोई उदाहरण नहीं। मैं सन् १९९७ में रिटायर्ड हुआ। ग्रेज्युइटी, फंड आदि के लगभग १० लाख रू. प्राप्त हुए। हमारे पुत्र राकेश के एक मित्र जो बाद में मेरे भी निकट हुए, वे मुझे वह मेरे पुत्र के कारण पितातुल्य मानने का दिखावा करते रहे। वे थे श्री नेथानी (जो शास्त्रीजी के नाम से प्रसिद्ध थे)। गुरूनानक हिन्दी स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे। अध्यापकी से अधिक वे बाहरी धंधे अधिक करते थे। कैसे जल्दी लखपति बनें यही उनकी फितरत रहती थी। अनेको वीसियाँ बनाईं (वीसी अर्थात् कुछ लोग मिलकर प्रतिमाह एक निश्चित राशि तय करते हैं। फिर उस राशि को लेने की डाक बोली जाती है। जो सबसे अधिक बोली बोलता है उसे वह राशि बोली के पैसे काटकर दे दी जाती है। बोली की राशि शेष सभी सदस्यों में बँटती है। अंत तक बोली न बोलने वाले को पूरी रकम मिल जाती है। वास्तव में यह एक अनधिकृत कॉ.ओ. बैंकींग सेवा थी। २०–२५ व्यक्तियों में से प्रतिमाह एक व्यक्ति की आवश्यकता की राशि जुटाते रहते हैं।) शास्त्रीजी ऐसी अनेक वीसियाँ चलाते और बहुत जल्द उठा लेते। इस प्रकार उन्होंने लाखों रूपया उठा लिए। मैंने भी अपने पुत्र से कहने से दो शेयर खरीदे। मुझे पैसो की जरूरत नहीं होती थी अतः अंतिम समय तक उसे नहीं उठाता था। वीसी को अभी लगभग दो माह बाकी थे, इन दो वीसियों के लगभग दो लाख रू. मुझे मिलने थे तदुपरांत वे ३ लाख रू. नकद उधार ले गये, संबंधों के कारण ऐसा लेन–देन चलता रहता था। अतः हमने उनसे कोई लिखा–पढ़ी नहीं की। मेरी तरह कई लोगों के पैसे उनके पास जमा थे। उन्होंने एक के डबल कर देने की लालच में भी खूब पैसे बटौरे थे। लगभग ५०–६० लाख रू. की राशि डकार चुके थे। इस पैसे से उन्होंने मकान, शेड, दुकान, गहने, विकासपत्र आदि खरीद लिये थे। लड़के–लड़की की शादी भी कर ली थी। किसी के पैसे नहीं दे रहे थे, माँगने वाले रोज़ माँग रहे थे सो एकदिन उन्होंने जहर खा लिया। हमने उन्हें बचाया पर अब वे पूरे बेशरम हो गये थे। किसी का भी पैसा देने की बात ही नहीं करते थे। उल्टे पुलिस में लिखा दिया की पैसे माँगने वालों के त्रास से मैंने ऐसा किया था। साथ ही ऐसे ही क्रिमिनल दिमाग के वकील का साथ ले लिया। माँगने वाले इससे डरने लगे। किसी प्रकार उन्होंने हमारे पुत्र से भी ३ लाख रू. लिये थे यह बाद में हमें पता चला। उनके द्वारा हमको ८–९ लाख रू. की चपत पड़ी। कुछ लिखा पढ़ी न होने से हम क्या करते?

चूँकि यह राशि परोक्ष रूप से मैंने अपने पुत्र के कारण ही दी थी। अब क्या करें? समस्या थी। पर उस समय मुझे ऐसी प्रेरणा मिली की मैंने तुरंत निर्णय लिया कि पुत्र से कुछ नहीं कहना। यदि मैं उससे विवाद करूँगा और वह भी कुछ कर बैठे तो? मैंने पूर्ण स्वस्थता और शांति धारण कर उल्टे उसे समझाया कि जब गाँव में डकैती के बाद अहमदाबाद आये थे तब हमारे पास क्या था? आज तो बहुत कुछ है। हो सकता है हमें उसके पूर्व जन्म का कुछ देना हो सो वे ले गया। धर्म की इस भावनाने मुझे व परिवार को शक्ति दी और जैसे हम उस बात को भूल गये। मुझे लगा कि ८ लाख रू. में यह शिक्षा मिल गई की लेन–देन में सभी कुछ कानूनी ढंग से करना चाहिये। मैं मानता हूँ कि व्यक्ति की परीक्षा और धर्म की महत्ता ऐसे समय ही समझ में आती है।

३) आनंद में शोक

मेरे बड़े पुत्र डॉ. राकेश की बारात सागर गई थी। हमने लोगों का कहा न मानकर अपनी होंशियारी और

विशेषता बताते हुए बारात रेलगाड़ी से न ले जाकर स्पेश्यल बस में ले जाने का निश्चय किया था। इसका बड़ा ही दुःखद अनुभव रहा। बस अहमदाबाद से ही घंटों लेट चली और सागर दोपहर में पहुँचने के बदले रात्रि को ११–१२ बजे पहुँची। वहाँ सारा कार्यक्रम ही फीका–फीका रहा। क्योंकि पूरा समाज़ इतनी देरी तक बैठ नहीं सका। चौधरी शाह रतनचंदजी की प्रतिष्ठा के कारण अनेक गण्यमान्य लोग भी पधारे थे पर वे भी रुक नहीं सके। खैर! विवाह संपन्न हुआ। दूसरे दिन उसी बस में बारात लेकर वापिस निकले कि बस के कंडक्टर को एकाएक बुखार चढ़ा और वह भोपाल के निकलने के बाद ही कब मर गया पता ही नहीं चला। जब उसे हिलाया–डुलाया और मरा हुआ पाया तो बड़ी समस्या हुई। क्या करें कुछ सूझता नहीं था। वह कंडक्टर ड्राईवर का ही भतीजा था। उन दिनों डीज़ल की बड़ी किल्लत चल रही थी। रास्ते में पेट्रोल पंपों पर मीलों लंबी ट्रकों की लाईने देखी जाती थीं। हम सब और ड्राईवर घबड़ा गये। प्रश्न यह हुआ कि यदि इसकी रिपोर्ट लिखायें तो मरने का कोई कारण ही समझ में नहीं आता और नहीं लिखाते हैं तो परेशान होते हैं। परंतु वह ड्राईवर दिलका मजबूत था। हम लोगो ने भी शांति से सोचते हुए यह तय किया कि इसे पिछली सीट पर कपड़ा ओढ़ाकर रख दिया जाय ताकि कोई समझे कि कोई मुसाफिर सो रहा है। उस ड्राईवरने जिस शांति, स्वस्थता और तेजी से खेतों आदि में से बस चलाई वह एक अद्‌भुत कार्य था। आखिर हम लोग किसी तरह अहमदाबाद सी.टी.एम. तक आये। वहाँ से सब लोग अपने–अपने घर चले गये। हमने अपना सामान किसी तरह घर पहुँचाया। सारा भोजन फैंक देना पड़ा, पूरे रास्ते हमने अपनी पुत्रवधु की जो स्वस्थता देखी वह अद्‌भूत थी। इस माहौल में भी वह सबके साथ स्वस्थता धारण करके साथ में आई। बाद में वह ड्राईवर उस लाश को लेकर अपने गाँव गया। हमने उसे योग्य राशि प्रदान की। उस दिन हम सब लोग बड़े खिन्न रहे। विवाह के सारे कार्यक्रम बंद रखे। आज भी जब कभी उसकी स्मृति होती है तो वह दृश्य एकदम खड़ा हो जाता है और धर्म की वह बात याद आ जाती है जीवन और मरण, खुशी और गम, बारात और अर्थी यह सब तो चलती रहने वाली क्रियायें हैं।

एक त्रासदी पूर्ण प्रसंग

अहमदाबाद में यह एक सबसे दुःखद और त्रासदीपूर्ण घटना है। गणधराचार्य श्री कुंथुसागरजी के शिष्य आ. कुमुदनंदी हैं। वे युवा है और स्वच्छंद भी। गुरू के होते हुए भी आचार्य बन गये हैं। वैसे भी गणधराचार्यने आचार्य के पद खूब बाँटे हैं। उसीमें एक यह कुमुदनंदी भी थे। उनके एकबार चातुर्मास अहमदाबाद में शिवानंद नगर में थे। वे एक तो एकलविहारी मनस्वी थे। सुबह ८.३० बजे उन्हें आहार चाहिए और उसमें भी ढ़ेर सारा आईस्क्रीम। मैं समझता हूँ कि मुनियों को बर्फ या आईस्क्रिम का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि बर्फ या ओला २२ अभक्ष्य में है। उनके और भी बहुत शिथिल आचरण थे। मैंने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया। आखिर अंधश्रद्धालु भक्त और ऐसे ही उनके आचार्य मेरी कैसे सुनते? मैंने अपनी जिज्ञासा की शांति हेतु २००२ के तीर्थंकर वाणी में एक अंक में विद्वानों से जिज्ञासा हेतु प्रश्न किये, उसमें एक यह प्रश्न भी था कि 'क्या साधुको आइस्क्रीम खाना चाहिए।' लोगों ने उनके ये कान भरे, मेरे विपरीत ज़हर उगला। वे विहार कर गये। लगभग एक या डेढ़ वर्ष बाद वे पुनः शिवानंदनगर में पधारे। मैं भी मुनिभक्ति से प्रेरित होकर वहाँ गया। मेरे विरोधियों ने उन्हें पूरा चढ़ा रखा था। सो उन्होंने प्रवचन में मेरे व मेरे परिवार की अनेक ऐसी बातें जाहिर में की जो योग्य नहीं थीं और जो मुनियों के लिए शोभास्पद नहीं होतीं। मैंने 'तीर्थंकर वाणी' में उनके इस वैचारिक दूषित प्रवचन की मात्र चार–पाँच पंक्तियाँ छापी इससे उनका व उनके स्वार्थी अंध भक्तों का पारा और भी बढ़ गया।

उसी समय हमारी गोलालारीय समाज में कतिपय लोग अपनी तानाशाही से समाज को गलत मार्ग पर तो चला ही रहे थे– लोगों की भावनाओं को भी उकसा रहे थे। हम ७–८ लोग उनके बस में नहीं हो रहे थे। सो वे येनकेन प्रकारेण हमारे विरुद्ध षड़यंत्र रचते रहते थे। जब उन्हें इस घटना का पता चला तो वे मुनि महाराज के कंधे पर बंदूक रखकर निशाना ताकने लगे। इन्हीं सूत्रों ने शिवानंद नगर में होनेवाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा को फैल कराने की लाखों चेष्टायें कीं। पर मैं और श्री हुकुमचंद परंचरत्न दृढ़ रहे और हमारे साथी लोग भी। हमने इन विघ्न संतोषियों को बिलकुल बाहर रखकर बड़े ही गौरव से पंचकल्याणक संपन्न किया। मैं नहीं चाहता था कि यह प्रतिष्ठा कुमुदनंदी द्वारा हो अतः हम बड़ौदा से दूसरे दो मुनियों को ले आये। प्रतिष्ठा हुई। मैंने तीर्थंकर वाणी में शिथिलाचार पर लिखा और स्पष्ट लिखा 'जो मुनि परीषह सहन न कर सके, बैंक में खाता चलाये, स्वाध्याय सामायिक के समय सोये या लड़के लड़कियों से हँसी मजाक करे– सामाजिक षड़यंत्र करे उसके हाथ से प्रतिष्ठित मूर्ति क्या पूज्य हो सकती है?'

बस फिर क्या था.....। मेरे विरोधियों को हथियार मिल गया। गोलालारीय समाज के मंच से जब वे कुछ न कर सके तो यह भ्रामक प्रचार प्रारंभ किया कि शेखरचंद्र जैन मुनि विरोधी हैं। मेरा तथा तीर्थंकर वाणी के बहिष्कार का ऐलान किया। पत्रिका का रजिस्ट्रेशन केन्सल कराना आदि प्रस्ताव पारित किए। कोई ग्राहक न बने और जो ग्राहक बने हैं वे पत्रिका बंद कर दें ऐसा फतवा जारी किया गया। यद्यपि इन सबमें वे निष्फल रहे। कोई ग्राहक कम नहीं हुआ और रजिस्ट्रेशन रद्द कराने का उन्हें क्या अधिकार था?

इसमें एकबात और हुई। जब इस ग्रुप ने देखा कि गोलालारीय समाज के मंच से हम कुछ नहीं कर पायेंगे सो समस्त दिगम्बर जैन समाज का नाम जोड़ दिया गया। हर मंदिर पर उनके कथित कार्यकर्ता कागज लेकर मीटींग के लिए सहियाँ कराने लगे। जिसका दुरुपयोग यह किया गया कि हजारों लोग उनके साथ बहिष्कार में जुड़े हैं।

इसी संदर्भ में हाटकेश्वर के दिगम्बर जैन मंदिर की वाड़ी में कथित पूरे जैन समाज की मीटिंग हुई। जिसमें ५०–६० गोलालारीय समाज के वे लोग, एक खंडेलवाल, चार–पाँच मेवाडी भाई ही थे। इसमें प्रायः वे लोग थे जिन्हें किसी न किसी बहाने मुझ पर कीचड़ उछालना था। इस मीटींग का अध्यक्ष बनाया गया खंडेलवाल समाज के एकमात्र उपस्थित सदस्य श्री ज्ञानमलजी शाह को। यद्यपि वे मात्र इस मीटिंग के ही अध्यक्ष बनाये गये थे परंतु वे स्वयं को सदैव पूरी समाज का नेता मानते रहे। मेरे विरुद्ध परचे बाँटे गये। शहर के दिगम्बर जैन समाज के १०–१२ अग्रगण्य लोग श्री कटारियाजी की अध्यक्षता में मुनि से मिले। पूरी चर्चा हुई और समाधान कराया। पर २ घंटे बाद ही इस गुट को लगा ही वे तो लड़ने से पूर्व ही हार गये सो मुनि को धमकाकर उनसे पुनः वही लिखवा लिया जो वे चाहते थे। मामला पुनः उलझ गया। आखिर जब पानी शिर से उपर हो गया तो मैंने भारतवर्ष के मुनि, श्रेष्ठी विद्वानों को पूरी हकीकत लिखी। उन सबने मेरा समर्थन किया। 'भगवान ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ' ने सर्वानुमति से मेरे पक्ष में प्रस्ताव पारित किया। मैंने लगभग ऐसे ४० पत्रों के साथ श्री ज्ञानमलजी पर इज्जत का दावा कर दिया। केस चलने लगा। उन्हें अनेक लोगों ने जैसे श्री निर्मलजी सेठी, रूपचंदजी कटारिया, सौभागमलजी कटारिया आदिने समझाया भी और लानत भी दी।

इसी बीच मुनि श्री तरूणसागरजी भी आये। उनका चातुर्मास यहाँ हुआ। वे भी कुछ समाधान नहीं करा सके। उल्टे वे उन लोगों की ही बात मानते रहे क्योंकि मैं उनके कुछ शिथिल आचरण पर लिख चुका था। अतः पाँच माह में मात्र एकबार पाँच मिनिट के लिए ही उनके दर्शन को गया था। इतनी सफलता इस ग्रुप को अवश्य मिली कि तरूण सागरजी के कार्यक्रमों से मुझे दूर रखा और मैं भी इसके लिए लालायित भी नहीं था।

समाज दो भागो में ही नहीं कई भागों में बँट गया था। सत्य हमारे साथ था। हम दृढ़ थे। मुनि कुमुदनंदी तो चले गये पर समाज में जो वैमनस्य के बीज़ बो गये उसकी कडुवाहट आज भी हैं। कुमुदनंदी के साथ का यह प्रसंग अति त्रासदी पूर्ण रहा। ऐसे मुनि ही समाज को बिगाड़ते हैं और धर्म को कलंकित करते हैं।

इधर डेढ़ वर्ष पूर्व ऐलक सिद्धांत सागरजी आये। गिरनार आंदोलन के कारण उन्होंने गांधीनगर में जो ऐतिहासिक रेली निकलवाई उससे उनका वर्चस्व जम गया। जब वे अहमदाबाद आये तो उनके प्रयत्न से हमारे विवाद का आखिर समाधान हुआ और केस वापिस ले लिया। उन्होंने समस्त दिगम्बर जैन समाज की एकता हेतु दिगम्बर जैन संगठन की स्थापना कराई। यद्यपि इस स्थापना में मेरी भूमिका अहम् थी। पर जब पता चला कि वे भी कान के कच्चे ही निकले, वे भी इसी चौकड़ी में फँसकर उन्हीं की भाषा बोलने लगे। उनकी राजनीतिक चाल अगम्य थी। अतः संगठन के पदाधिकारी होने से एवं कार्यकारिणी में जुड़ने से मैंने इन्कार कर दिया। एक–डेढ़ वर्ष में ही यह संगठन लंगडाने लगा। यहाँ भी अपनापन व तानाशाही चली। उद्देश्य जहाँ समाज की उन्नति का होना चाहिए था वहाँ व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और पद का बनने लगा और अन्य को अपमानित करने का कार्य ही अधिक हुआ।

आज वातावरण सुधरा है। जो लोग मेरे प्रति पूर्वाग्रही थे वे भी सत्य को समझे और आज अपनी गलती महसूस कर रहे हैं। मैंने भी सब कुछ भुलाकर उन्हें क्षमा ही किया है। आज मेरे मन में भी उनके प्रति कोई राग–द्वेष नहीं।

भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

हस्तिनापुर में त्रिलोक शोध संस्थान की ओर से कोई न कोई शैक्षणिक कार्यक्रम होते ही रहते हैं। इसी श्रृंखला में सन् १९९८ में कुलपति सम्मेलन का आयोजन हुआ। और उस समय उपस्थित विद्वानों ने यह महसूस किया कि विद्वानों का एक ऐसा संगठन या संघ बनना चाहिए जिसमें जैन धर्म–दर्शन–कला और साहित्य में रूचि रखनेवाले विद्वान संगठित हों। मूल उद्देश्य शोधकार्य का ही रखा गया और विविध विश्व विद्यालयों में जैनधर्म पर जो शोधकार्य हो रहे हैं उनका लेखा–जोखा रखना और हस्तिनापुर में ही गणिनी आर्यिका ज्ञानमती शोधपीठ के माध्यम से शोधकार्यों को वेग देना (यद्यपि यह उद्देश्य नहिंवत ही पूर्ण हो पाया)। इसी संबंध में विद्वानों का यह संघ 'भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ' के नाम से अस्तित्व में आया। स्वयं माताजी की इसमें प्रेरणा रही और प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामतीजी का मार्गदर्शन एवं क्षु. श्री मोतीसागरजी का निर्देशन प्राप्त हुआ। परामर्शदाता के रूप में ब्र. रवीन्द्रकुमारजी जैन ने सहयोग देने का आश्वासन दिया। इसके प्रथम संयोजक डॉ. प्रेमसुमनजी उदयपुर को मनोनीत किया गया। हम सब लोगों ने मिलकर इसका संविधान भी तैयार किया। लेकिन जब श्री प्रेमसुमनजी को ऐसा लगा कि इस संघ द्वारा रिसर्च का विशेष कार्य होना संभव नहीं लगता है अतः वे त्यागपत्र देकर इससे पृथक हो गये।

पं. शिवचरणलालजी मैनपुरी वाले जो शास्त्रि परिषद में अति सक्रिय थे वहाँ वे अध्यक्षपद पर आसीन नहीं हुए थे। दूसरे कुंडलपुर को लेकर उनका रुझान माताजी के साथ था। अतः उन्हें विशेष रूप से सदस्य बनाकर अध्यक्षपद सौंपा गया और कार्यकारिणी का गठन हुआ। वे तीन वर्ष तक इस पद पर रहे। इस दौरान महासंघ के मंत्री डॉ. अनुपम जैन ने अपने श्रम से सबसे अच्छा कार्य यह किया की विद्वानों, अध्येताओं, पत्र–पत्रिकाओं की एक सुंदर डायरेक्टरी संपर्क के नाम से प्रकाशित की।

शिवचरणलालजी के पश्चात २००३ में सर्वसम्मति से माताजी के आदेश से मुझे अध्यक्ष पद पर निर्वाचित

किया गया। पूरी कार्यकारिणी बनी। मैंने अपनी शक्ति से जो कुछ भी बन सकता था वह कार्य किया। चूँकि प्रारंभ से ही हम जिस उद्देश्य से जैसे विद्वानों को सदस्य बनाना चाहते थे वह नहीं हो पाया, जैसे अन्य संगठनों में भरती होती है वैसी भरती करते गये। इस तरह संख्या बढ़ती रही। जो आज १०० से ऊपर है। मेरे कार्यकाल के दौरान महामंत्रीजी ने उत्साहसे पहले तीन वर्ष कार्य किया था उसकी तुलना में अस्वस्थ होने के कारण कम ही किया। वे स्वयं त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा जो पुरस्कार दिये जाते हैं उस समीति के सदस्य हैं।

सुना है कि सन् २००० का ग.आ. पुरस्कार जिसमें मेरा नाम भी विचाराधीन था– परंतु कुछ लोगों के यह विरोध करने पर कि मैं श्वेताम्बरों में जाता हूँ वहाँ से अस्पताल को दान लेता हूँ आदि.... आदि..... समझाकर वह पुरस्कार श्री शिवचरणलालजी को प्रदान किया गया। परंतु मुझे इस बात का संतोष था कि योग्य विद्वान को चुना गया है। यद्यपि यह बात मुझे बहुत ही विश्वस्त और जिम्मेदार व्यक्तिने बताई थी परंतु मैंने उसका कोई प्रतिभाव नहीं दिया था। पुनश्च २००५ के पुरस्कार के लिए मेरा नाम घोषित किया गया। अक्टूबर २००६ में पू. माताजी के जन्मदिन पर जो कार्यक्रम हुए उसमें जो त्रिदिवसीय गोष्टि हुई वह पू. चंदनामतीजी एवं पू. क्षुल्लकजी के सहयोग से अति सफल रही। इसीतरह इससे पूर्व हुई कार्यकारिणी में पाँच विद्वानों को कंबोडीया, सिंगापुर आदि स्थानों पर भेजकर भ. पार्श्वनाथ एवं पू. माताजी के साहित्य के प्रचार की जो योजना बनी थी जिसमें ५० प्रतिशत खर्च जानेवाले विद्वानों को देना था और शेष संस्थान को देना था, जो परदेश से दान स्वरूप प्राप्त राशि में से संस्था को लौटा देना था। परंतु यह योजना अर्थाभाव के कारण सम्पन्न नहीं हो सकी।

मैंने अपने स्वास्थ्य और कार्य की व्यस्तता को कारण अपना त्यागपत्र भेजा और समस्त हकीकत को प्रस्तुत किया। चूँकि माताजी का स्पष्ट आदेश था कि भ. बाहुबली के मस्तकाभिषेक तक डॉ. शेखरचन्द्रजी का त्यागपत्र मंजूर नहीं किया जायेगा। वहाँ वे ही विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष के रूप में जायेंगे। खैर! यह सब चलता रहा। अप्रैल में माताजी के ५०वें स्वर्णजयंति दीक्षा समारोह पर यह बात मैंने रखी लेकिन उस समय बात को टाल दिया गया।

आखिर श्री रवीन्द्रजीने ८ जून २००६ को कार्यकारिणी की मीटिंग आहूत की। कुल १०–१२ लोग पहुँचे। पू. माताजी के सानिध्य में मीटिंग हुई, मेरा त्यागपत्र प्रस्तुत किया गया। मैं तो यही चाहता था कि मेरा त्यागपत्र स्वीकृत हो। वह स्वीकार हुआ और सर्वसम्मति से यह तय किया गया कि ब्र. रवीन्द्रजी शेष १८ महिने के लिए अध्यक्ष पद का भार सम्हाले। जिसका उन्होंने स्वीकार किया।

भ. ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ जिसके निर्माण में मैं नींव के पत्थर की तरह रहा हूँ। जिसके विकास में मेरा योगदान रहा है, मैं चाहता हूँ कि वह किसी तरह कमजोर न हो। मैं सदैव इसका समर्थक रहा हूँ और रहूँगा।

भांग का प्रसंग

यह बड़ा ही रोमांचक और हास्यप्रद परंतु यादगार प्रसंग है। सन् १९६५ में जब मैं राजकोट में था और मैं, डॉ. मजीठिया और श्री पांड्या एक ही कमरे में रहते थे। हमारे साथ श्री पांड्याजी के भाई जो राजकोट में ही किसी लेथ मशीन पर काम करते थे– कम पढ़े–लिखे थे– साथ में रहते थे। मुझे उस समय कभी–कभी भाँग पीने की आदत थी। सो अहमदाबाद से लगभग तीन–चार तोला भाँग ले गया था। एकबार निर्भयरामजी के भाईने मुझसे माँग कर कुछ भाँग ले ली। उन्हें दूसरे दिन राजस्थान जाना था, और जेब में भाँग की पुडिया रखकर रात्रि को राजकोट में बदनाम रेड़लाईट ऐरिया से किसी मित्र से मिलने हेतु जा रहे थे कि पुलिस ने उनकी तलाशी ली और उस पुड़िया को देखकर पूछा– 'इसमें क्या है?' उन्होंने बड़े ही निर्दोष भाव से कहा 'इसमें भांग है।' उन्हें पता नहीं था कि गुजरात में भाँग प्रतिबंधित है। उन्हें पुलिस चौंकी ले जाया गया। वहाँ वे बार–बार कहते रहे कि मेरे

भाई शामलदास कॉलेज में प्रोफेसर हैं। परंतु उनका नाम निर्भयराम बताते रहे। जबकि उन्हें निर्भयराम के नाम से कुछ ही लोग जानते थे। वे एन.बी. पंड्या के नामसे जाने जाते थे। पुलिस हमारे घर पर आई लेकिन बाहर से ही निर्भयराम पूछकर– और यह जानकर कि यहाँ कोई निर्भयराम नहीं रहता है– वापिस लौट गई। आखिर उन्हें रातभर पुलिस कस्टडी में रहना पड़ा। इधर हमलोग भी चिंतित थे कि वे लौटकर क्यों नहीं आये? क्योंकि उन्हें दूसरे दिन तो राजस्थान जाना था। मुझे शंका हुई कि कहीं भाँग में पकड़े तो नहीं गये। अच्छी बात यह हुई कि उन्होंने हमारा नाम नहीं बताया कि भांग हमसे ली है। दूसरे दिन दोपहर तक वे नहीं लौटे। हमलोग भी दोपहर का भोजन करके आराम करने की तैयारी कर रहे थे तभी एक पुलिस वाले ने आकर बताया कि वे उनके भाई पुलिस स्टेशन में बंद हैं। हमें बाद में पता चला कि उनके भाई को सुबह इस बात का ज्ञान हुआ कि उनके भाई को लोग एन.बी. पंड्या के नाम से जानते हैं। मैंने तुरंत बची हुई भांग गटर में फैंक दी। खैर! हमलोग पुलिस स्टेशन के लिए चले पर रास्ते में देखा कि पुलिस उन्हें हथकड़ी डालकर ले आ रही थी। हमलोगों को बड़ा धक्का लगा। हमने पुलिस वालों को कुछ ले–देकर और समझाकर उनसे अलग से बात की और पूछा कि 'तुमने किसी का नाम तो नहीं बता दिया?' और यह सावधान भी किया कि हमलोगो में से किसी का नाम नहीं लेना। हमने कोर्ट में उनकी जमानत कराई।

कोर्ट में केस चला। पहली पेशी पर ही हमने अपने वकील द्वारा यह दलील प्रस्तुत कराई कि यह व्यक्ति राजस्थान का है, अनजान है, इसे तो पता भी नहीं है कि भांग क्या होती है। यह तो साईकिल से आ रहा था एक आदमी इस पुड़िया को फैंककर भागा था। गिरी हुई पुड़िया को देखकर इसने तो जिज्ञासा से इसे उठाया था। उल्टे पुलिस वालों ने इससे कहा था कि यह भांग है तुम कहाँ से लाये? इस पर मेरे क्लाईन्ट ने अपनी अनभिज्ञता प्रस्तुत की है। परंतु पुलिसवालों ने इनपर विश्वास नहीं किया था। इस दलील से मजिस्ट्रेट साहब संतुष्ट हुए और वे छूट गये। उसी समय मैंने प्रतिज्ञा की कि कभी किसी नशीले पदार्थ का सेवन नहीं करूँगा।

मुखड़ा देख लो दर्पण में

यह वह ग्रंथ हैं जो गणधराचार्य कुन्थुसागरजीने पू. आचार्यश्री विद्यासागरजी के विरूद्ध पुस्तक रूप में छपवाकर प्रकाशित किया था। इसकी भी एक पृष्ठभूमि है। गणधराचार्य कुन्थुसागर का चातुर्मास हाटकेश्वर के श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर की वाड़ी में था। आ. कुन्थुसागरजी ने चातुर्मास के समय मुझसे यह वचन लिया था कि चातुर्मास के दौरान जब भी मैं अहमदाबाद रहूँ प्रति रविवार के कार्यक्रम का आयोजन और संचालन करूँ। मैंने इसका स्वीकार भी किया और पूरे चातुर्मास उनके कार्यक्रमों का आयोजन व संचालन किया। इससे पूर्व वे ईडर में बिराजमान थे और आ. श्री विद्यासागरजी तारंगा में बिराजमान थे। आ. श्री विद्यासागरजी द्वारा कुछ दीक्षायें संपन्न हुई थीं। आ. कुन्थुसागरजी ने इन दीक्षाओं के अनुमोदना हेतु अपने कुछ मुनियों को तारंगा भेजा था। परंतु सारी गड़बड़ नमोस्तु प्रतिनमोस्तु को लेकर हुई। आ. विद्यासागरजी चूँकि आचार्य थे, वरिष्ठ थे। वे प्रतिनमस्कार न भी करते तो कोई बात नहीं थी। परंतु संघ के अन्य मुनियों, ऐलक, क्षुल्लक यहाँ तक कि ब्रह्मचारियों ने भी इन मुनियों को नमस्कार–प्रतिनमस्कार नहीं किया। इससे बात बिगड़ गई। कुन्थुसागरजी जो आ. विद्यासागरजी के परम प्रशंसक थे उन्हें भी बुरा लगा। बस यहीं से वैमनस्य के बीज पनपने लगे। उसी समय आ. विद्यासागरजी का चातुर्मास महुवा में संपन्न हुआ। मेरा दुर्भाग्य रहा कि हाटकेश्वर के कार्यक्रम और अन्य व्यस्तताओं के कारण मैं पू. आ. श्री के चातुर्मास में नहीं जा सका।

कुन्थुसागरजी ने इसी दौरान कब १३ पंथ और २० पंथ के संकुचित दायरे में आ.विद्यासागरजी के विरुद्ध इस ग्रंथ की रचना कर डाली और किसीको पता भी नहीं चला और जयपुर से उसका प्रकाशन भी करा लिया। इतना ही नहीं श्री इन्द्रमलजैन ने आ. श्री विद्यासागरजी के विरुद्ध परचा भी छपाया। यह सब इतना गुप्त रहा कि चातुर्मास पूर्ण के पश्चात कुन्थुसागरजी के विहार करने के दिन तक किसीको पता ही नहीं चला। विहार के समय ही ये पर्चे बाँटे गये। पुस्तक भी विद्वानों को भेजी गई। मुझे भी यह प्रति प्राप्त हुई। मैंने कुन्थुसागरजी से जूनागढ़ में जाकर इसकी चर्चा कि और यह गलत हुआ है यह स्पष्ट कहा। उन्होंने कुछ अंशों तक स्वीकार भी किया। कुन्थुसागरजी ने विद्यासागरजी को एक विस्तृत पत्र लिखा और परोक्ष रूप से खेद भी व्यक्त किया। उन्होंने चाहा कि आ. श्री विद्यासागरजी जो सौराष्ट्र में विचरण कर रहे हैं, जिनका गिरनार आने का कार्यक्रम है– यदि वे जूनागढ़ पधारें तो रूबरू मैं चर्चा भी करूँगा और क्षमा भी माँग लूँगा। परंतु आ. श्री विद्यासागरजी वहाँ नहीं गये। बात आई–गई हो गई।

आ. कुन्थुसागरजीने अपने ग्रंथो को छपवाने के लिए मुझे कार्य सौंपा। दो ग्रंथ लगभग ३००० पृष्ठों के थे। वे बाहर ग्रंथ छपाने के लिए प्रयत्नशील थे। मैंने उनसे एकदिन मज़ाक में कहा कि यही भाव आप मुझे दें तो मैं कम्प्यूटर लगाकर काम करा सकता हूँ। वे तो तुरंत राज़ी हो गये। उस समय कम्प्यूटर प्रारंभ करने का खर्च लगभग डेढ़ लाख रू. था। मैंने उनसे ५०,००० एडवान्स माँगे जो मुझे प्राप्त हुए। मैंने भी अपने मकान में 'श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर' के नाम से कार्य का प्रारंभ किया। जिसका उद्घाटन स्वयं आ. श्री कुंथुसागरजीने अन्य मुनियों के साथ किया। बाद में कार्य पूरा होने पर उनकी समस्त राशि हिसाब में जमा कर ली।

चूँकि मैंने कुन्थुसागरजी के ग्रंथ उनके आर्थिक सहयोग से छापे थे इसलिए मेरे विघ्नसंतोषी लोगों ने यह बात देश में प्रचलित की कि 'मुखडा देख लो दर्पण में' मैंने छापा है। इतना ही नहीं आचार्यश्री तक इस बात को मिर्च मसाला लगाकर पहुँचाई गई। शायद इससे वे भी कुछ असंतुष्ट रहे। इसका अनुमान मैंने इस आधार पर किया कि जब मैं नेमावर में उनके दर्शन करने गया तब वे जिस वात्सल्य से पहले बात करते थे वैसी बात भी नहीं की। यह शायद मेरा भ्रम भी हो सकता है। मुनि पुंगव श्री सुधासागरजी के मन में यही बात थी, परंतु वे मन के इतने उदार हैं कि अपनी सभी गोष्ठियों में मुझे आमंत्रित कराते रहे। सीकर में भी मैं आमंत्रित था वहाँ एक प्रसंग पर उन्होंने भी मुझे ही पुस्तक का प्रकाशक मानकर बात की। तब मैंने एक उदाहरण देकर कहा 'महाराज, जब यह कहा जाये कि किसी व्यक्ति का कान कौआ काटकर भाग गया है तो समझदार अपना कान देखता है और ना समझ कौए के पीछे दौड़ता है। मुझे लगता है कौए के पीछे दौड़नेवालों ने आपको भ्रमित किया है।' मैंने उन्हें समझाया कि मेरा प्रकाशन का कार्य तो इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद हुआ है फिर मैंने पुस्तक कैसे प्रकाशित की? मेरी आस्था और दृढ़ता पू. विद्यासागरजी के साथ रही है और रहेगी। इसप्रकार उनके मनका मलाल दूर हुआ। बाद में पू. आचार्यश्री के मन को भी मैं अपनी स्पष्टता से साफ कर सका।

लघु प्रलय

बात सन् १९८२ की है। जब मेरे पिताजी का दशहरे के दिन स्वर्गवास हुआ था। उनकी १३वीं १३ दिन बाद थी। मेरे सभी रिश्तेदार, मित्रगण आये हुए थे। भावनगर से श्री शशीभाई पारेख आये थे। उस दिन मूसलाधार बारिस हुई। किसी तरह हम लोग १३वीं के भोजन को निपटा सके। लेकिन दोपहर बाद बारिस बढ़ती ही गई। पूरे दिन रेड़ियो में समाचार प्रसारित होते रहे कि– अतिवृष्टि के कारण सभी रेलगाड़ियाँ, बसें बंद हो गई हैं। लेकिन

हमलोग कार्य की व्यस्तता के कारण रेडियो पर समाचार सुन ही न सके। घर के चारों ओर पानी ही पानी भरा था। पहले सोचा कि आज न जायें। परंतु शशीभाई पारेख और मैंने जाने का मन बनाया। किसी तरह एक आटोरिक्सा में बैठकर रोड़वेज के बस स्टैण्ड तक पहुँचे। परंतु वहाँ सारी बसें बंद थीं। हमलोग रेल्वे स्टेशन पर पहुँचे परंतु भावनगर की ट्रेन बंद थी। इतना सब होने पर भी हमारी बुद्धि जैसे हमें किसी भयंकर त्रासदी की ओर खींच रही थी, कहते भी हैं 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि'। वहीं हमें एक टैक्सीवाला मिल गया। जो भावनगर का था। जो सोच रहा था कि कोई सवारी मिल जाय तो भावनगर लौट जाऊँ। उसे हम मिल गये। आखिर मैं, शशीभाई और एक भावनगर का सिंधी व्यापारी जो हमारी तरह ही भटक रहा था– सबलोग टैक्सी में चले। पानी जो रुकने का नाम नहीं ले रहा था– मूसलाधार बारिश, तेज हवा बढ़ती जा रही थी। हमलोग किसी तरह बावला तक पहुँचे तो वहाँ का नज़ारा ही पूरी बाढ़ का नजारा था। कहीं धरती दिखाई नहीं देती थी, लेकिन हमें सद्‌बुद्धि भी नहीं आ रही थी। हमलोग आगे बढ़े, गाड़ी ऐसे पानी में फँस गई कि खिड़की के काँच में से पानी की लहरे गाड़ी में आने लगी। थोड़ी ही दूर पर जैसेकि बाद में पता चला कि नदी में पूरा उफान था। रात के ११–१२ बज चुके थे। भयंकर रात थी चारों ओर घनघोर अंधकार, बारिश की बौछार और हम मौत के मुँह में। पीछे से किसी मारूति वान की लाईट हमारी ओर फैंकी जा रही थी। शायद उनका इशारा था कि आगे न बढ़ें। वह गाड़ी भी भावनगर ही जा रही थी। आखिर रातभर हम उसी प्रवाह के बीच गाड़ी बंद करके भगवान का नाम स्मरण करते रहे। सुबह जब कुछ पानी कम हुआ तो धीरे–धीरे आगे बढ़े। लेकिन हजारों गाड़ियाँ फँसी हुई पड़ी थी। वृक्षों पर कई लाशें फूली हुई लटकी थी। अनेक पशु पानी में अर्धमृत या मृत अवस्था में बह रहे थे, रोंगटे खड़े हो गये इस दृश्य को देखकर। किसी तरह बरवाला तक पहुँचे। वहाँ गाँव के लोगों ने जिसके घर में जो था वह खाने को दिया। किसी तरह रोते–गाते मौत से जूझते लगभग चार बजे भावनगर पहुंचे। चार घंटे का रास्ता बीस घंटे में तय हुआ। वहाँ जाकर देखा तो मेरा घर भी कुछ तूट चुका था, बीजली के खंभे मुड़ चुके थे, टेलीफोन के तार पूरे शहर में टूट चुके थे। भावनगर इस प्रलय की चपेट में सबसे अधिक क्षत–विक्षत हुआ था। यह सब देखकर मेरे तो होश उड़ गये। मैं प्रतीक्षा में था कि कब कोई बस मिले और अहमदाबाद भाग जाऊँ। मैंने तो अपना घर भी नहीं खोला कि कहीं करंट न लग जाये। पूरा शहर दिवाली में भी अंधकार में डूबा हुआ था। सर्वत्र अंधकार, विनाश, मौत और शोक व्याप्त था। किसी तरह दूसरे दिन जो पहली बस मिली उससे अहमदाबाद भाग आया और फिर तबतक नहीं गया जबतकसब कुछ नोर्मल नहीं हो गया। जीवन में पहली बार इस प्रलय का अनुभव किया था। लेकिन आयुकर्म के उदय से और प्रभु की श्रद्धा से जान बच सकी। आज भी वह दृश्य रोमांचित कर देता है।

भूकंप

सन् २००० में ऐसे ही एक मौत का सामना करना पड़ा। २६ जनवरी की सुबह जब सब लोग ठंडी के आनंद को लेते हुए चाय की चुश्कियाँ भर रहे थे– एकाएक लगा जैसे पलंग हिल रहा है। सोचा अपने को ही कुछ ऐसी नींद आ रही होगी। लेकिन थोड़े समय में बर्तन आदि के गिरने की आवाजे आई, लगा किसी बिल्लीने बरतन पटक दिये होंगे। लेकिन थोड़े ही समय में तो भयंकर उछापोह होने लगा। लोग अपने घरों से भागने लगे। बाहर निकल आये। देखा सारे के सारे मकान पत्तों की तरह हिल रहे हैं। ओवरहेड टेन्क का पानी उछल–उछल कर बाहर आ रहा है। जमीन पर रखी कारे ऐसे कूद रहीं हैं जैसे खिलौने की कारें बच्चे कूदा रहे हों। समाचारों से ज्ञात

हुआ कि इस भूकंप की चपेट में पूरा कच्छ ही धराशायी हो गया है। रापर में २६ जनवरी के जुलूस में जाते हुए सैंकड़ो बच्चे, अध्यापक टूटी हुई बिल्डींग के नीचे सदा के लिए सो गये। बड़े ही दर्दनाक समाचार थे। हमारे घर के थोड़ी ही दूर पूरी एक स्कूल की मंजिल ही जमीन में उतर गई। लगभग ५० बच्चे और कुछ अध्यापक काल के गाल में समा गये। शहर की अनेक बहुमंजिली इमारतें धँस गईं और हजारों मकानो में दरारें पड़ गईं। चारों ओर हाहाकार का वातावरण। बिज़ली गुल, भयंकर ठंडी– कई रातें लोगों ने घरों से बाहर ठंडी में मैदान में बिताईं। हमलोगों ने मकानो को जिसतरह हिलते हुए देखा, स्वयं को जिसतरह लड़खडाते हुए पाया लगा मौत बिलकुल निकट से होकर गुजर गई है। जैसे किसी बंदूक की गोली कंधे को छूते हुए निकल जाय। कच्छ का विनाश उसके चित्र इतने दर्दनाक थे कि उसका वर्णन ही करना कठिन है। सैंकड़ो लोग २५ की रात को सोये थे २६ की सुबह नहीं देख सके और जो गणतंत्र का आनंद मना रहे थे उनमें से अनेक काल–कवलित हो गये। इस मौत के मुँह से भी मानो भगवानने ही हम सबको बचाया है।

साधु संतों से संपर्क

मेरी रूचि प्रारंभ से ही देव–शास्त्र–गुरू के प्रति रही है। मैं आर्ष परंपरा का समर्थक रहा हूँ। साधु भगवंत मेरे पूज्य रहे हैं। मुझे लिखने–पढ़ने का शौक रहा है और इसी संदर्भ में अनेक गोष्ठियों में, सभाओं में जाता रहा हूँ और इस कारण मेरा परिचय चारों संप्रदाय के महान आचार्यों से रहा है। यह मेरा सौभाग्य रहा है कि आचार्य तुलसीजी और आचार्य महाप्रज्ञजी के साथ मुझे एक ही मंच से अपने विचार व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हुआ है। दिगम्बर संत आचार्य विद्यासागरजी, आचार्य वर्धमानसागरजी, आचार्य कनकनंदीजी, आचार्य कुन्थुसागरजी, आचार्य विरागसागरजी, आचार्य रयणसागरजी, आचार्य सन्मतिसागरजी, उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी, मुनिश्री सुधासागरजी, मुनिश्री प्रमाणसागरजी, मुनिश्री समतासागरजी जैसे अनेक मुनिभगवंतो के उपरांत पू.आ.ग. ज्ञानमतीजी का सत्संग निरंतर प्राप्त होता रहा है।

पू. विद्यासागरजी के साहित्य की समीक्षा लिखने का गौरव प्राप्त हुआ है तो मेरी साहित्यिक छबि को निखारने में पू.ग.आ. ज्ञानमतीजी का विशेष योगदान रहा है। मैंने उनके जीवन को लेकर छोटी सी पुस्तक भी लिखी है।

श्वेताम्बर साधुओं में आचार्य मेरूप्रभसूरीजी, आचार्य चंद्रोदयसूरीजी, आ. पद्मसागरजी, आ. यशोविजयजी, मुनिश्री वात्सल्यदीप आदि का संपर्क एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। स्थानकवासी आचार्यश्री स्व. नानेशजी, देवेन्द्रमुनिजी, नम्रमुनिजी आदि का संपर्क रहा है। वास्तव में मैं आज जो थोड़ा बहुत लिख–पढ़ सका हूँ उसमें इन मुनिभगवंतो का आशीर्वाद ही मुख्य कारण रहा है।

रुचि

मेरी रूचि सर्वाधिक वाचन और लेखन में रही। मुझे हिन्दी साहित्य और गुजराती साहित्य दोनों को पढ़ने और लिखने में रूचि रही है। चूँकि मैं हिन्दी साहित्य का विद्यार्थी रहा हूँ अतः हिन्दी साहित्य के लेखक और कविओं से भी परिचित रहा हूँ। मुझे जैन साहित्य को पढ़ने और उसके परिप्रेक्ष्य में लेखन कार्य करने में विशेष आनंद प्राप्त होता रहा है। और इसीसे मैं जो कुछ भी साहित्य सृजन कर सका हूँ वह किया है।

मेरी अन्य रूचियों में मुझे घुमक्कड़ी का अधिक शौक है। यात्रायें करना मुझे बहुत अच्छी लगती है। यद्यपि इससे घर के लोग बहुत खुश नहीं है। क्योंकि रीढ़ की हड्डी के ऑपरेशन के बाद और अब घुटनों के दर्द के

कारण बड़ी परेशानी होती है। लेकिन गोष्ठियों, पर्युषण पर्व आदिमें जाने का लोभ नहीं रोक पाता हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि कुछ दिन इस प्रकार बाहर रहने से मैं अधिक ताज़ा हो जाता हूँ और इससे मैं लौटकर दुगुना काम कर लेता हूँ। वैसे भी मैं यह मानता हूँ कि रोगिष्ट होकर बिस्तर पर पड़े रहने से अच्छा है कि कार्य करके कर्मठता से जीवन को पूर्ण किया जाये।

मुझे झूठ से बड़ी चिढ़ है इसीलिए मैं वर्तमान में सर्वत्र चाहे विद्वानों की संस्थायें हों, चाहे धार्मिक संस्थायें, चाहे पारिवारिक या सामाजिक संस्थायें हों जहाँ कहीं भी झूठ आदि को या गंदी राजनीति को देखता हूँ तो मेरा क्रोध बढ़ जाता है। मैं यह सब नहीं चला पाता हूँ। शायद इसका कारण दिनकरजी की वे पंक्तियाँ मेरे जीवन में ओत–प्रोत हो गई हैं और उन्हीं के कारण मैं निडर बना, स्पष्ट वक्ता बना और अन्याय के प्रति संघर्ष करता रहा। पंक्तियाँ हैं–

'जिया प्रज्ज्वलित अंगारे सा, मैं आजीवन जग में
रुधिर नहीं था आग पिघलकर बहती थी रग-रग में
यह जन कभी किसी का मान न सह सकता था
देख कहीं अपमान किसी का मौन न रह सकता था।'

मुझे ऐसे अनेक प्रसंगों से गुजरना पड़ा कि जिससे मुझे सत्य के लिए संघर्ष करना पड़ा।

मेरी छाप कड़क वक्ता के रूप में है। सच–सच जैसे का तैसा कह देना मेरा स्वभाव हो गया है। ऐसी वाणी के समर्थक कम और टीकाकार ही अधिक मिले हैं। इससे दोस्त कम पर विरोधी अधिक बने हैं।

भोजन में मुझे नमकीन खाने की बहुत आदत है। फिर चाहे पेट खराब रहे या ऐसिडिटी होती रहे। कुछ न कुछ मीठा खाने को अवश्य चाहिए।

मेरे स्वभाव में एक तो मिलिट्री ट्रेनिंग के कारण, दूसरे होस्टेल और कॉलेज में आचार्य पद के व्यवस्थापन के कारण और जीवन में संघर्षो के कारण आदेश देने की आदत हो गई है और इसे लोग मेरा तानाशाही रवैया ही मानते है। परिवार के लोग इसे मेरा आतंक मानते हैं। जिसके कारण परिवार के लोग या समाज के लोग खुलकर मुझसे कुछ नहीं कहते। परंतु लगता है कि वे अंतर से खुश भी नहीं है। मेरे इस अधिनायक स्वभाव से एक अच्छाई यह भी रही कि परिवार में एक शिस्त और संयम का वातावरण बना रहा। लेकिन इससे मुझे एक हानि यह हुई कि लोग मेरे साथ घुलमिल नहीं सके। मैं परिवार का मित्र न बन सका। सदैव बुजुर्गी का लबादा ओढ़े रहा और डंडे की भाषा के कारण कभी–कभी उपेक्षित भी रहा। मैं समय की पाबंदी का पूरा ध्यान रखता हूँ अतः यदि कहीं पहुँचने में देर हो या कभी कोई समय देकर समय से न पहुँचे तो मुझे बडी चिढ़ होती है। मुझे यह सहन नहीं होता।

प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधीजी के साथ के क्षण

यद्यपि भावनगर की कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में यह मेरा प्रथम वर्ष ही था। पर कार्यकुशलता, व्यवस्था शक्ति के कारण कॉलेज से दिल्ली में आयोजित विश्व व्यापार मेला (एशियाड १९७२) में जानेवाली टूर का मुझे इनचार्ज बनाकर भेजने का आचार्य श्री नर्मदभाई त्रिवेदीने तय किया। साथ में युवा अध्यापक श्री भरतभाई ओझा एवं उनकी धर्मपत्नी प्रो. नीलाबहन साथ में थीं। लगभग ७०–८० विद्यार्थी–विद्यार्थिनी इस टूर में सम्मिलित हुए। वहाँ हमारी प्रार्थना पर तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधीजी से मुलाकात तय हुई। उन दिनों इतनी सिक्युरीटी या परेशानी नहीं थी। हमलोग विद्यार्थियों के साथ बड़ी सरलता से प्रातः ९ बजे उनके

निवास स्थान पर जाकर लॉन में बैठे। ठीक समय पर तत्कालीन कांग्रेस के अध्यक्ष श्री उछंगभाई ढेबर भी उपस्थित थे। इंदिराजी पधारीं, बच्चों के साथ तस्वीर भी खिंचवाई। बच्चों से १५ मिनट तक उनकी शिक्षा आदि के बारे में पूछते–पूछते एकदम बोली 'अच्छा! उस भावनगर से आ रहे हो जहाँ शामलदास कॉलेज में गांधीजी अध्ययन करते थे।' जब उन्होंने पुनः पूछा कि आपके आचार्य कौन हैं तो भरतभाईने मेरी ओर इशारा किया। मैं भी मौन रहकर उस पद के आनंद को लेता रहा। इंदिराजी का व्यक्तित्व विलक्षण प्रतिभासंपन्न था। वे अभी–अभी १९७१ का जंग जीतकर मानो झाँसी की रानी ही लग रहीं थीं। उनका मृदु हास्य, बच्चों के साथ घुल–मिल जाना बड़ा ही सुखद क्षण था। आज भी उस क्षण की यादें आँखों में उभर आती हैं।

प्रधानमंत्री श्री मोरारजीभाई देसाई के साथ एक क्षण

बात सन १९६७–६८ की है। मैं नवयुग कॉलेज में प्राध्यापक था। एन.सी.सी. में कमीशन पाकर लौटा था। कंपनी कमांडर के साथ कॉलेज की अनुशासन समिति का चेयरमैन भी था। कॉलेज का वार्षिक दिन था। अतिथि के रूप में आदरणीयश्री मोरारजीभाई देसाई पधारे थे। जो अनुशासन और खादी के परम आग्रही थे। चूँकि हमारे आचार्यश्री वशी साहब भी अनुशासनप्रिय थे। शाम का कार्यक्रम चल रहा था। उसके बाद अध्यापकों के साथ एक मिलन समारंभ होना था। वशी साहब का आदेश था कि– 'मुख्य अतिथि आयें उससे पूर्व पूरे टेबल नास्ता आदि के साथ सजे हुए हों।' उन्होंने समय भी निश्चित कर दिया। टेबल सजाये गये। नास्ते के साथ आईस्क्रीम भी था। किन्हीं कारणों से कार्यक्रम आधा घंटा लेट हो गया। जब सभी कक्ष में आये तो आईस्क्रीम अपनी किस्मत पर रो–रो कर दूध में बदल गया था। पर अनुशासन माने अनुशासन।

उसी समय एक विद्यार्थी उनके ऑटोग्राफ लेने आया। उन्होंने पूछा खादी पहनते हो? लड़के ने कहा– 'पहनता हूँ।' मोरारजीभाई ने पुनः पूछा– 'ऊपर ही पहनते हो या गंजी भी खादी की है?' और पूछते–पूछते उसके गले में हाथ डालकर गंजी देखने लगे। जब उन्हें संतोष हो गया तभी ऑटोग्राफ दिया। फिर बोले 'कुछ लोग कुछ समय के लिए खादी पहनने का दिखावा करते हैं, नियमित नहीं पहनते।'

ऐसे श्री मोरारजीभाई के साथ समूह में बैठकर तसवीर खिचवा लेना, हस्तधूनन करने का अवसर प्राप्त करना आज भी उनके व्यक्तित्व का स्मरण कराता है।

जैन संस्कार

यद्यपि मैं किशोरावस्था से ही प्रवचन आदि करता था परंतु खान–पान में वह संयम नहीं था जो एक प्रवचनकर्ता या विद्वान में होना चाहिए। उस समय मैं कंद–मूल भी खाता था, प्याज़ और बैगन भी खाता था। मुझे तम्बाकू खाने की भी आदत थी। सो १२० के पान भी खा लेता था। रात्रि भोजन भी करता था। यह सब करते हुए भी प्रवचन करता था। जब प्रवचन का वक्तव्य और अपने जीवन के आचरण को देखता तो स्वयं से बड़ी ग्लानि होती कि मेरी कथनी और करनी में बड़ा अंतर है। लेकिन लगता है अभी निमित्त नहीं आया था या ज्ञान–दर्शन का क्षयोपशम नहीं हुआ था।

बात लगभग सन् १९७५ की है। जब सूरत के पास श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ महुवा में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी। वहाँ मूलबिद्री के भट्टारक श्री चारूकीर्तिजी महाराज पधारे थे। उनका बड़ा वर्चस्व था। लोग उनसे बात करने और मिलने को लालायित रहते थे। वे मुझे थोड़ा सा जानते थे और मुझे उन्होंने मिलने का समय रात्रि में दिया। मैं उनसे मिला और मैंने अपनी सारी कमजोरियाँ उनके सामने रखीं। उन्होंने कहा 'अरे! तुम कैसे पंडित हो, तुम

तो जैन भी नहीं हो।' उन्होंने कहा 'तुम एक महिने के लिए रात्रि भोजन और अभक्ष्य का त्याग करों।' मैंने कहा 'स्वामीजी मैं किस्तों में नहीं छोड़ सकता हूँ। पर आज आपके समक्ष रात्रि भोजन का त्याग, अभक्ष्य का त्याग एवं तम्बाकू का त्याग करता हूँ।' मुझे स्वयं इस बात का आश्चर्य हुआ कि दूसरे दिन से इन किन्हीं वस्तुओं की मुझे याद तक नहीं आई जिनके बिना चलता नहीं था।

इसी दौरान मैं अपनी पत्नी, सासुजी और छोटे पुत्र के साथ श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा को गया। वहाँ मैंने अपने प्रिय बैगन को त्यागा, साबुदाने का त्याग किया और विषम परिस्थितियों के अलावा होटल में खाने का त्याग किया। उन होटलों में खाने का तो सर्वथा त्याग किया जहाँ अंडे या माँसाहार बनता हो। जिसका निर्वाह मैंने बड़ी चुस्तता से किया। और यही कारण है कि मैंने कभी रेलगाड़ी या प्लेन में बाहर का खाना नहीं खाया। इतना ही नहीं मैंने प्रति चतुर्दशी को एकासन करने का भी संकल्प किया। मैंने यह भी संकल्प किया है कि मैं जबतक संभव होगा बिना दर्शन के जलपान तक नहीं करूँगा।

लगभग २० वर्ष पूर्व मैंने चाय और कॉफी का भी त्याग किया। इसप्रकार मुझे बड़ी आत्मसंतुष्टि हुई कि धर्म की गद्दी पर बैठकर एक पंडित में कमसे कम जैनत्व के इतने लक्षण तो होना ही चाहिए और मुझे यह आत्मसंतोष है कि मैं इनका पालन कर रहा हूँ। मैं मानने लगा हूँ कि चारित्र बिना का पंडित अंधा होता है और ज्ञान के बिना का मुनि लंगडा होता है। मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे और अधिक चरित्र में, नियमपालन में दृढ़ता प्राप्त हो।

मैं इस नियमबद्धता में बंधने के स्वयं को कारणभूत तो मानता हूँ परंतु मेरे इस उपादान को जागृत करने में पू. भट्टारकजी का सर्वाधिक योगदान रहा।

द्वारा श्रीमती डॉ. ज्योति जैन

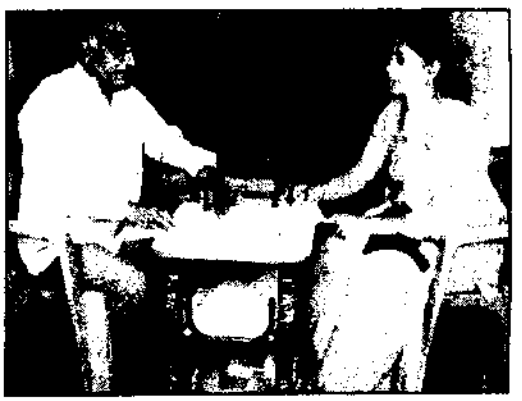

प्रश्न आपकी 'जन्म भूमि बुन्देलखण्ड है और कर्मभूमि अहमदाबाद' इस संबंध में आप क्या सोचते हैं?

उत्तर : मेरी पितृ–जन्मभूमि बुन्देलखंड है– पर मैं अहमदाबाद में जन्मा हूँ ऐसा मुझे माता–पिता द्वारा पता चला है। परंतु मैं बुन्देलखंडी परिवार में जन्मा–बड़ा हुआ। मेरे घर–परिवार का वातावरण पूर्व बुन्देलखंदी रहा। हम लोग, हमारे पुत्र व पौत्र सभी आज भी घर में बुन्देलखंडी ही बोलते हैं। प्रारंभ में लगभग प्रतिवर्ष अपने वतन अस्तारी (तह. निवाडी, जि. टीकमगढ़) जाते रहते थे। फिर धीरे धीरे वह कम हो गया। सारी रिश्तेदारियाँ बुन्देलखंड में हैं अतः मैं स्वयं की जन्मभूमि बुन्देलखंड कहूँ तो भी उचित ही है। रहा प्रश्न कर्मभूमि का सो शिक्षा की पूर्णता अहमदाबाद में हुई। सन १९६३ से १९८८ तक सौराष्ट्र में अमरेली– राजकोट, सूरत व भावनगर रहा। जिसमें भावनगर १६ वर्षों तक रहा अतः कर्मभूमि पूरा गुजरात रहा। हाँ! अहमदाबाद से निरंतर संपर्क में रहा। माता–पिता, परिवार, रिश्तेदार सभी अहमदाबाद थे। अतः प्रायः महिने में २ बार औसतन अहमदाबाद आता रहता था। यहाँ की सामाजिक–धार्मिक–राजनीतिक संपर्क जीवित रहते थे इस दृष्टि से यो कहें कि सेवा की भूमि सौराष्ट्र और पूरी कर्मभूमि अहमदाबाद एवं गुजरात रही है।

प्रश्न आपकी संपूर्ण शिक्षा विभिन्न शिक्षा केन्द्रों से हुई आज उनका स्मरण करना प्रासंगिक है इस पर कुछ प्रकाश डालिये?

उत्तर : मेरी कक्षा १ से पी–एच.डी. तक की शिक्षा अहमदाबाद में ही पूर्ण हुई है। हाँ! पिताजी की इच्छा पूर्ण पंडित बनाने की थी– अतः सन १९५२–५३ में एक वर्ष खुरई गुरुकुल में रहा। वहाँ अवश्य 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' का अध्ययन किया व परीक्षा दी। दूसरे मात्र शौकिया तौर पर और युवा विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए सन १९७७ में सौराष्ट्र विश्व विद्यालय से LL.B. की परीक्षा पास की एवं प्रयाग से साहित्यरत्न (१९६२) प्रायवेट रूप से किया। पर पूरी शिक्षा तो अहमदाबाद में ही पूर्ण हुई।

प्रश्न आज सफलता के जिस शिखर पर आप हैं उसमें आपके पारिवारिक जनों का क्या कोई विशिष्ट योगदान रहा है?

उत्तर : मेरे इस मुकाम पर पहुँचने में मेरे परिवार का परोक्ष सहयोग विशेष मानता हूँ। चूँकि मेरे पिताजी पढ़े लिखे नहींवत् थे। गाँव में डकैती पड़ने के कारण वे अहमदाबाद आये थे। यहाँ जीवन यापन के लिए मजदूरी की थी। पर वे सदैव यही चाहते रहे कि मैं पढ़ लिखकर कुछ बनूँ। उन्होंने मुझे मैट्रिक के बाद किसी काम में नहीं लगाया– पर मैं अध्यापक हो गया और इस नौकरी से मुझे पढ़ने की विशेष सुविधा प्राप्त हुई। पिताजीने सदैव पढ़ने का प्रोत्साहन दिया। यह अन्य बात है कि उन्हें यह पता नहीं था कि मैं कौनसी लाइन लूँ! सब मुझ पर छोड़ दिया था।

पर मेरी प्रगति में मेरी पत्नी का सबसे बड़ा योगदान रहा। मेरा विवाह १७॥ वर्ष की उम्र में मैट्रिक भी नहीं हुआ था तब हो गया था। मैं निरंतर पढ़ने की धुन में रहता। नौकरी करता, कॉलेज जाता, ट्युशन भी करता और पढ़ाई भी। वे इन सबसे मेरा ध्यान रखतीं– यथा समय तैयारी करना प्रातः ६.३० बजे टिफिन बना देना आदि। मेरी इस व्यस्तता में उन्होंने कभी विक्षेप नहीं किया। नववधू की जो इच्छायें होती हैं वे उन्होंने कभी व्यक्त ही नहीं कीं। या यों कहूँ कि मैंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। पर यह मेरी व्यस्तता उपेक्षा नहीं है इसे वे सदैव समझती रहीं। भौतिक आकाक्षांयें कभी जुबान पर नहीं लाईं। संतोष उनका धन था उसे ही संजोये रहीं। मैथिली शरण की भाषा में कहूँ तो ''वे दीप शिखा सी जलती रहीं – अपने प्रकाश से मुझे आलोकित करती रहीं और स्वयं अंधकार को पीती रहीं।'' उनका यह दीपशिखा सा त्याग ही मेरी उन्नति का मूल रहा है।

प्रश्न लंबे सफल गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए आज के दम्पत्ति को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर : लंबे गृहस्थ जीवन का निर्वाह परस्पर की भावनाओं को समझकर सहयोगी बनने में किया है। अनेक बार मतभेद भी हुए पर वे संज्वलन टाइप के रहे– पानी की लकीर। इस समझदारी से जीवन का निर्वाह सहज व सरल रहा और बच्चों को प्रेम से बाँधे रहा। संदेश तो यही हो सकता है कि पति–पत्नी परस्पर की भावनाओं को समझकर जीवन जियें तो जीवन स्वर्णिम बन सकता है।

प्रश्न आप एक लंबे समय तक प्राध्यापक एवं प्राचार्य रहे हैं इस शैक्षणिक जीवन का कोई यादगार संस्मरण?

उत्तर : बहन! प्राथमिक से कॉलेज के अध्यापन– आचार्यत्व के लंबे ४१ वर्षों के सफर में अनेक मुकाम आये। अरोह अवरोह आये। अनेक यादगार प्रसंग हैं। क्या भूलूँ क्या याद करूँ की स्थिति में हूँ। अतः एकाध प्रसंग प्रस्तुत करना सरल नहीं लगता। कुछ प्रसंग मैंने ग्रंथ में प्रस्तुत अपनी जीवनी के साथ प्रस्तुत किए हैं।

प्रश्न आपकी छवि एक जुझारू व्यक्तित्व और प्रबल समालोचक की है क्या यह छवि परिस्थितियों की देन है?

उत्तर : जुझारू व्यक्तित्व या प्रबल समालोचक दृष्टि मात्र परिस्थितियों का परिणमन नहीं है। हाँ उनका आंशिक

अवदान अवश्य है। यदि आप मेरी जीवनी पढ़ेंगी तो पता चलेगा कि किन संघर्षों में मेरा जीवन शून्य से आकाश तक उठा है। उन संघर्षों ने और लोगों की दोगली चालों ने पीड़ा पहुँचाई है। असत्य के सामने सत्य के लिए संघर्ष करते–करते कटुता भी आती गई। दूसरे प्रारंभ से ही धार्मिक संस्कारों के कारण अन्याय–असत्य, मायाचारी के प्रति सदैव उहापोह का भाव रहा है। तीसरे आचार्य पद, सुप्रिन्टेन्डेन्ट का पद, एन.सी.सी. का कंपनी कमान्डर आदि व्यवस्थात्मक पदों पर रहने के कारण भी डिसिप्लीन ही जैसे जीवन का अंग बन गई। अनेक सामाजिक–शैक्षणिक धार्मिक संस्थाओं में पदेन कार्य किया– वहाँ लोगों के जो मुखौटे पहिने चेहरे देखे, साहित्यकारों का जो मनमुटाव देखा, विद्वानों की कथनी–करनी में जमीन आसमान का अन्तर देखा। साधु समाज का वैमनस्य व शिथिलाचार देखा, समाज के कथित नेताओं की पद की लालच देखी। इन सबने जो कड़वाहट भरी वह तथा राष्ट्रकवि दिनकरजी पर शोध कार्य के दौरान उनका जो जुझारु व्यक्तित्व समझा उसने मुझमें दृढ़ता, के साथ अन्याय के प्रति कटुता भर दी और मैं एक कटु आलोचक बन गया– अब तो यह सब व्यक्तित्व में रजिस्टर्ड हो गया है।

प्रशान अपने विरोधियों का आपने सदैव एक स्वरूप मुकाबला किया है यह सब कैसे कर पाते हैं?

उत्तर : विरोधी वह होता है जो मेरे प्रति व्यक्तिगत कम – सिद्धांतो के प्रति विशेष विरोध करता है। सिद्धांत सत्य पर आधारित होते हैं अतः सत्य के साथ स्वयं को जोड़कर मैं विरोधियों से सभी प्रकार का लोहा लेता रहा हूँ। मुझे विश्वास रहता है कि सत्य मेरे साथ है।

प्रश्न एक साहित्यकार के रूप में साहित्य को आप स्वांतः सुखाय मानते हैं या जनहिताय?

उत्तर : साहित्य तो बहुयामी रश्मियों का पुंज है। जैसे तीर्थंकर प्रभु या महान आत्मायें स्व–पर को ध्यान में रखती हैं वैसे ही साहित्य भी साहित्यकार को तभी उच्च स्थिति में रख पाता है जब वह स्वान्तः सुखाय का अनुभव करे। जब तक अंतर में अनुभूति –दर्द–परोपकार, दया, क्षमा, करूणा के भाव नहीं होंगे– साहित्य का जन्म ही नहीं हो पायेगा। जब साहित्यकार इन भावों को पचा लेता है उसमें जो सुगबुगाहट होती है वही साहित्य के रूप में प्रवाहित होने लगता है; तब उसे वही आनंद होता है जो एक सद्यः प्रसूता को संतानोत्पत्ति के पश्चात होती है। साहित्यकार का सुख इतना विशाल होता है कि उसमें चराचर के सुख की कामना निहित रहती है। इस दृष्टि से मेरे थोड़े से लेखन–सृजन में मुझे आत्म संतुष्टि तो हुई ही पर उससे अन्य लोगों को भी तुष्टि मिले यही मेरी भावना है। आखिर रचनाकार अपने पाठकों से नहीं जुड़ पाया तो फिर साहित्य ही कहाँ रहा?

प्रश्न 'तीर्थंकर वाणी' पत्रिका तीन भाषा में निकलने वाली एक लोकप्रिय पत्रिका है इसकी प्रेरणा आपको कहां से मिली?

उत्तर : 'तीर्थंकर वाणी' मेरी आत्मा की आवाज है। मेरी एक प्रिय संतान है। इसकी प्रेरणा सागर में १९९३ के दशलक्षण के दौरान प्राप्त हुई थी। चूँकि मैं सदैव से जैन एकता का पक्षधर रहा हूँ। समन्वय दृष्टि अपनाई है अतः सभी जैन संप्रदायों की एकता इसकी नींव है। मेरे वाचकों में गुजराती मित्र थे सो गुजराती विभाग प्रारंभ किया एवं परदेश प्रवचनार्थ जाते रहने के कारण वहाँ के सदस्यों हेतु अंग्रेजी विभाग भी प्रारंभ किया। पत्रिका में बच्चों को तीन भाषाओं में पढ़ाना मूल कार्य रहा है जिसे अच्छी लोकप्रियता मिली है।

प्रश्न आज जैन पत्रकार और पत्रकारिता सामान्य जनों के बीच में अपना वह स्थान नहीं बना पा रही जो बनना चाहिये इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : जैन पत्रिकायें में समाज में अपेक्षित स्थान नहीं बना पा रही हैं कारण कि पत्रिकाओं में बोझिल सैद्धांतिक लेख, पंडिताऊ भाषा में छपते हैं अतः सामान्य पाठक उससे उदासीन रहता है। मात्र धर्म के चौखटे या समुदाय के चौखटे में संकीर्ण बातें अब नहीं चलेंगी– हमें साम्प्रत समस्याओं पर भी सोचना होगा। समाज की समस्यायें भी प्रस्तुत करनी होंगी तभी हम समाज के साथ जुड़कर स्थान बना पायेंगे।

प्रश्न अपने संपादकियों के माध्यम से आप विद्वत् वर्ग को यदा–कदा कसौटी पर कसते रहे हैं? आज विद्वत् वर्ग किस दिशा में जा रहा है? विशेषतः कथनी और करनी में अन्तर बढ़ता जा रहा है आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : यह बड़ा टची प्रश्न है पर मैं तो स्वयं को केन्द्र में रखकर विद्वानों की दुधारी नीति पर प्रहार करता रहा हूँ। उदाहरणार्थ : अपरिग्रह का प्रवचन देने वाला विद्वान लिफाफे के लिए लड़ने लगता है। ऐसी अनेक बातें हैं। विद्वान को समाज के बीच एक उदाहरण बनना चाहिए..... पक्षापक्षी से ऊपर उठना चाहिए। स्वतंत्रता का उदघोषक ही स्वयं को गिरवी रखेगा तो टीका करनी ही पड़ेगी। आज विद्वान मेरी दृष्टि से दिशाहीन है। उसकी सिद्धांत से अधिक व्यक्ति पूजा या अर्थ की अपेक्षा पर अधिक नजर रहने लगी है अतः वह उस ज्योतिर्मय व्यक्तित्व को खो चुका है।

प्रश्न आपने पत्रिका संपादन से लेकर मानव सेवा के विभिन्न मूल्यों को स्थापित किया है विशेषतः 'समन्वय ध्यान साधना केन्द्र' तथा अस्पताल की स्थापना की है इन सबका प्रेरणा सूत्र?

उत्तर : समन्वय ध्यान साधना केन्द्र द्वारा मैंने धर्म समन्वय का दृष्टिकोण अपनाया है। और अस्पताल की प्रेरणा में मेरे १९५३ की बीमारी मूलकारण रही है। मैं जैनधर्म में वर्णित औषधि दान को ही श्रेष्ठ दान मानता हूँ। मेरे लिए यही सच्चा मंदिर हैं। मुझे इस सेवा से बड़ी शांति मिलती है। जो जैन शब्द या जैनों के प्रति सद्भाव का कार्य करोड़ो रूपये खर्च करके प्रतिष्ठाओं द्वारा नहीं हो पाता वह मैं गरीब रोगियों की दवा करके पहुँचा पाता हूँ। मेरे यहाँ का अजैन रोगी (प्रायः९९ प्रतिशत) यही तो कहते हैं कि 'जैन अस्पताल' में जाँच करवा आया हूँ। फैला न मेरा 'जैन' शब्द घर घर !!

प्रश्न आज जैन साहित्य विपुल मात्रा में छप रहा है संख्या तो बढ़ी है किन्तु गुणवत्ता नहीं इस संदर्भ में आपके विचार?

उत्तर : जैन साहित्य का परिमाण बढ़ा है पर गुणवत्ता प्रश्न चिन्ह ही है। हम प्राचीन आगम ग्रंथों को सरल भाषा में प्रस्तुत करने के बजाय अपना डुप्लीकेट माल ही घुसा रहे हैं। सबको स्वयं बड़ा साहित्यकार कहलाने का मोह सता रहा है। हम कहें कि आज हमारा साहित्य 'Quntity without Quality' है।

प्रश्न वर्तमान में नैतिक मूल्यों पर आधारित साहित्य के निर्माण, प्रचार और प्रसार की परम आवश्यकता है इसके लिये आपकी अपनी कोई योजना है जिसे आप साकार करना चाहेंगे?

उत्तर : मैं तो मानता हूँ कि पत्रिकाओं / पुस्तकों द्वारा सर्वप्रथम बच्चों को नैतिक शिक्षा प्रदान कराई जानी चाहिए। उन्हें जैन संस्कारों से संस्कारित करना होगा यह कार्य विद्वानों, लेखको से अधिक माँ–बाप का होना चाहिए। हम ऐसे साहित्य को सरल कृतियों–प्रसंगो के आलेखन द्वारा करें तो निश्चित रूप से कार्य होगा। मैं तो 'तीर्थंकर वाणी' के माध्यम से बालजगत के रूप में १४ वर्षों से लगा हूँ। लगा रहूँगा।

प्रश्न साहित्यिक शोध एवं अनुसंधान के क्षेत्र में आपकी भावी योजनायें क्या हैं?

उत्तर : साहित्यिक शोध में इतना ही कहूँगा कि आगम के गूढ विचारों को सरलता से प्रस्तुत किया जाये। आज

पी–एच.डी. के नाम पर विषयों का पुनरावर्तन, चौर कर्म फूल–फल रहा है। पी–एच.डी. की फसल तेजी से बढ़ रही है– उसमें मोटे थोथे तो हैं पर विषय का सही प्रस्तुतिकरण शून्य सा ही लगता है। अतः शोध में 'शोध' दृष्टि होना– उस पर श्रम करना जरूरी है। मैं चाहता हूँ कि यदि एक विषय या व्यक्ति पर कार्य हो चुका है तो उस विषय का पुनरावर्तन नहीं किया जाये।

प्रश्न आप राष्ट्रीय स्तर की अनेक संस्थाओं के महत्वपूर्ण पदों पर रहे हैं और हैं भी। इस संबंध में आपके विचार

उत्तर : मैं पदों पर रहा– कार्य किया– मैंने पदानुसार ईमानदारी से सत्य निष्ठा से कार्य किया– लेकिन वर्तमान में प्रायः सभी संस्थाओं में 'जलकुंभी' फैल रही है। अतः जल दूषित हो और मैं देखता रहूँ यह संभव नहीं होने से 'जैसी की तैसी धर दीनी चदरिया' के अनुकूल उनमे मुक्त हो गया हूँ। गंदी राजनीति, कुर्सी का मोह, जातिवाद की विष बेल संस्थाओं में ज़हर घोल रही हैं।

प्रश्न आधुनिकता की लहर में विकृत संस्कृति ने हमारे घरों, हमारे जीवन में प्रवेश कर लिया है इससे बचने के क्या उपाय हैं?

उत्तर : आत्म संयम व परिवार का संस्कारी वातावरण बनाना चाहिए।

प्रश्न क्या आप मानते हैं कि वर्तमान में व्याप्त समस्याओं को सुलझाने में जैनधर्म–दर्शन संस्कृति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है?

उत्तर : अवश्य निभा सकती है। इसका प्रारंभ हम घर–परिवार से करें। संस्कारों में नैतिकता आये। स्कूली शिक्षा के साथ जैनधर्म का भी संस्कृति के रूप में अध्ययन किया जाये तो समस्यायें पहले तो होंगी ही नहीं– यदि होंगी तो यह संस्कार का समाधान मंत्र कारगर होगा।

प्रश्न एक लंबे समय से आप अहमदाबाद में रह रहे हैं। यहां की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, पृष्ठभूमि में जैनियों का क्या योगदान है?

उत्तर : लगभग नहिंवत है। दुर्भाग्य है कि यहाँ की जैन संस्थायें सविशेष दिगंबर जैन संस्थायें अपनी वैमनस्य, व्यक्तिगत द्वेषभाव एवं पक्षपात का शिकार बन कर धूमिल ही हैं दिगंबर जैन समाज आज भी यहाँ सुप्त है– अस्तित्व रहित है।

प्रश्न आपके जीवन पर किन विशिष्ट व्यक्तियों या व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा?

उत्तर : मेरे जीवन पर प्रभाव में मेरे परिवार के अलावा मेरे प्राथमिक स्कूल के गुरू डॉ. रमाकांत शर्मा– (जो बाद में डिग्री कॉलेज के आचार्यपद से निर्वृत्त हुए) मेरे पी–एच.डी. के मार्गदर्शक डॉ. अंबाशंकर नागर, शिस्त हेतु मेरे एक आचार्य डॉ. वशी। सर्वाधिक प्रभाव मेरे पी–एच.डी. के विषय डॉ. रामधारीसिंह दिनकर, साधुवर्ग में आ. श्री विद्यासागर, आ. श्री वर्धमानसागर, आ. श्री तुलसीजी, आ. महाप्रज्ञजी, पू.आ. ज्ञानमतीजी एवं सामाजिक स्तर पर मेरी बहन के श्वसुर श्री हरदासजी ललितपुरवालों का विशेष प्रभाव रहा है।

प्रश्न जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आते हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता, बतायें?

उत्तर : कृपया मेरी जीवनी देखें अनेक प्रसंग मिल जायेंगे।

प्रश्न आपने समाज के विभिन्न रूपों में जो योगदान दिया है इससे जो अहसास आपको हुआ उससे आप संतुष्ट हैं क्या?

उत्तर : समाज को योगदान देने की कोशिश तो की– पर मैं अपने को इससे सफल नहीं मानता। मैं जिस स्तर

पर अपनी जाति आदि, अपने धार्मिक बंधुओं की जिस चेतना को जगाना चाहता था वह नहीं जगा सका।

प्रश्न ऐसा कौनसा कार्य है जो आप करना चाहते थे पर अभी तक कर नहीं पाये?

उत्तर : मेरी एक ही इच्छा है कि मैं 'श्री आशापुरा मां जैन अस्पताल को पूर्णकालीन (२४ घंटे चलनेवाली) प्रायः सभी विभागों से सज्ज अस्पताल बनाना चाहता हूँ। जिसमें हकीकत में गरीबों की सेवा हो सके।'

प्रश्न आज की युवा पीढ़ी एक ऐसे चौराहे पर खड़ी है जहां कोई एक सही दिशा चुनना मुश्किल है ऐसे में आप उन्हें क्या संदेश देंगे?

उत्तर : मेरा तो एक ही संदेश है कि हमारा बालक, किशोर, युवा संस्कारी बने। जैनधर्म के प्रति उसकी रक्षा हेतु तन–मन–धन से सच्चे अस्तित्व के लिए समर्पित रहकर आवश्यक हो तो संघर्ष करे। राजनीति में स्थान बनाकर आवाज को बुलंद करे।

प्रश्न अपनी आलोचना करना सबसे कठिन कार्य है अपनी आलोचना या अपनी कमियों के संदर्भ में कुछ पूछ सकती हूँ?

उत्तर : मनुष्य मात्र कमजोरियों का पुतला है। मैंने जब अभिनंदन ग्रंथ के लिए अपनी जीवन की कथा लिखी तो मुझे अपने में ही अधिक गलतियाँ या कमजोरियाँ दिखीं जिनमें– क्रोध करना प्रमुख है। दूसरे एक जैन विद्वान को जितना त्यागी होना चाहिए उतना नहीं हो पा रहा हूँ। अन्याय के सामने लड़ बैठना अन्यायी को क्षमा नहीं कर पाना मेरी कमजोरी ही तो है जिससे लोग दुश्मन अधिक बने– दोस्त कम। वर्तमान युग में भी मैं परिवार को पुराने चश्मे से देखता हूँ यह भी कमजोरी है आप जाने!

प्रश्न आपका अभिनंदन ग्रंथ जैन धर्म के चारों सम्प्रदायों द्वारा संकलित–प्रकाशित किया जा रहा है यह सुनकर आपको कैसी अनुभूति हो रही है?

उत्तर : इसमें अनुभूति तो सुखद है। मैंने जीवनभर समन्वय के लिए कार्य किया है अतः चारों समुदायों का प्रेम–वात्सल्य पाना मेरी भावना थी। जब चारों सम्प्रदायो के लोगों ने मिलकर संयुक्त रूप से अभिनन्दन का प्रस्ताव किया तो मैं ना नहीं कर सका।

परिवार से रूबरू

साक्षात्कार द्वारा श्री विनोदभाई हर्ष एवं श्रीमती इन्दुबेन शाह

प्रमुख नेताओं का, बहुआयामी व्यक्तित्व का सम्मान तो होता रहता है। किन्तु जिनके त्याग के बलबूते पर नेता और बहुआयामी व्यक्तित्व का उद्‌भव होता है उस परिवार के सदस्यों का, जिन्होने बेग और नास्ता तैयार किया, औषधि चाय करते समय से ही उपस्थिति–अनुपस्थिति में जिनका कार्यभार सम्हाला और स्वास्थ्य की चिंता से जो सतत चिंतित रहते हैं, ऐसे परिवार के सदस्यों को कैसे भूला जाय? अट्टालिका के स्वर्णकलश की जगमगाहट को हम देखते हैं और नींव के पत्थर को याद तक नहीं करते जिनके त्याग पर स्वर्ण कलश दमकता है। इसी भावना से प्रेरित होकर मैं और मेरी श्रीमती इन्दु बी. शाह दिनांक 18–11–06 को डॉ. शेखरचन्द्रजी के घर गये। प्रस्तुत है उनके परिवार के सदस्यों के साथ हुई बातचीत के अंश।

श्रीमती आशादेवीजी (धर्मपत्नी डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन)

प्रश्न **श्रीमती आशादेवीजी आपके पति डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन को इतने सम्मान–पुरस्कार प्राप्त हुए हैं और अब उनका अभिनंदन होने जा रहा है यह सब जानकर आपको क्या महसूस होता है?**

उत्तर : बहुत खुशी हो रही है। गौरव का अनुभव हो रहा है। सभी रिश्तेदार–संबंधी आयेंगे उनसे मिलना हो जायेगा उन सभी बातों से मुझे बहुत खुशी हो रही है।

प्रश्न आपके पतिको देश और परदेश धर्म प्रचार के लिए बारबार जाना होता है इससे आपको कैसा लगता है?

उत्तर : साथ में मुझे भी ले जाते तो अच्छा लगता, कभी उन्होंने साथ ले जाने को कहा ही नहीं।

प्रश्न आपके पति स्वभाव के कड़क और जल्दी गुस्सा हो जाते हैं इससे आपके दिल को दुःख होता है? कैसे सम्हाल लेती हो आप?

उत्तर : दुःख तो होता है, सहन करती हूँ।

प्रश्न आपके पति को सर्विस की वज़ह से बाहर गाँव जाना पड़ा उस समय परिवार की जिम्मेवारी आपके सर पर रही होगी, और पति से अलग भी रहना हुआ होगा उस समय आपको कैसा लगता था?

उत्तर : सास–ससुर के साथ रहती थी। छोटे बच्चों की परवरिश करती थी। अमरेली को छोड़कर भावनगर, सुरत, राजकोट तो साथ में ही थी।

प्रश्न आप इतनी उम्र में भी शारीरिक अस्वस्थ होते हुए, आप काम करती रहती हो इसकी क्या वज़ह है?

उत्तर : अपने मन से, आनंदसे जो मुझसे होता है वह काम करती रहती हूँ। लकों के छोटे बच्चों को सम्हाल लेती हूं। काम करने से सेहत अच्छी रहती है।

प्रश्न माँ के लिए तो सभी बच्चे समान होते हैं चाहे लड़का हो या लड़की फिर भी कुछ कारण से हृदय के एक कौने में किसी एक संतान के लिए ममता अधिक रहती है, सो आपको किसी बच्चे पर अधिक ममता है? क्यों?

उत्तर : सभी बच्चे एक जैसे ही है। लड़की दूर रहती है इसके लिए ज्यादा भाव रहता है। साल में १५ दिन के लिए आती है इसलिए उनके प्रति ज्यादा भाव रहता है।

प्रश्न इक्यावन वर्ष के विवाह जीवन में आपको ऐसा कौनसा प्रसंग याद है कि जब आपको बहुत आनंद हुआ हो और बहुत दुःख हुआ हो?

उत्तर : लड़के–लड़की की शादी अच्छे घराने में होने से अत्यंत खुशी हुई। मेरी शादी के बाद तुरंत जब मेरे पति को इलेक्ट्रीक शौक लगा तब पड़दा डालने के रिवाज से न तो मैं बाहर जाकर देख सकती थी न किसी को कुछ पूछ सकती थी। उस समय मुझे बहुत दुःख हुआ था। लेकिन मेरे ससुरजीने कहा "देखो इनके भाग्य से मेरा लडका बच गया।" इस वाक्यने मेरे तप्त हृदय को सांत्वना दी।

श्रीमती ज्योति जैन (पुत्रवधु)

प्रश्न ज्योतिजी आपके ससुरके लिए आपको क्या कहना है?

उत्तर : उनके संघर्ष से, उनकी प्रतिष्ठा, नाम हुआ वो सब अच्छा लगता है। लेकिन जब बहुत गुस्सा करते है तो दुःख होता है। अभी इतने सालके बाद सब रास आ गया है। ससुरजी का स्वभाव कड़क होने पर भी सासका स्वभाव बहुत अच्छा होने से अच्छे से समायोजन हो जाता है।

प्रश्न आपके परिवार का ऐसा कौन सा प्रसंग आपकी स्मृति में है जिससे आपको अनहद खुशी हुई हो?

उत्तर : शरद पूनम के दिन बच्ची हुई, सब बोले लड़की हुई, लेकिन मुझे बहुत अच्छा लगा। क्योंकि ज्ञानमति माताजी का भी वह जन्म दिन था। जब पापाजी को पुरस्कार–सम्मान मिलता है वह घड़ी बहुत आनंद की होती है, कि हम कैसे अच्छे घराने की बहू हैं।

प्रश्न आपके बच्चो के साथ उनके दादाजी का बर्ताव कैसा होता है?

उत्तर : कभी कभी डाँटते है, प्यार भी करते हैं। बच्चे दादाजी की उपस्थिति में शिस्त में रहते हैं। बच्चे दादाजी से डरते हैं।

डॉ. राकेशकुमार जैन (पुत्र)

प्रश्न डॉ. राकेशजी आपके पापाके साथ बहुतसी धार्मिक, सामाजिक प्रवृत्तिओं में संलग्न रहते हैं, आपके पिताजी का प्रवृत्तिओं के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर : पापाजी उनकी प्रवृत्तिओं में आकंठ डूबे रहते हैं। परिवार का, बच्चों का ध्यान बहुत कम रखते हैं।

प्रश्न इस उम्र में भी आपके पिताजी अनेक स्थानों पर देश–परदेश में घूमते हैं, नादुरस्त स्वास्थ्य होते हुए भी, इसके बारे में एक पुत्रके नाते आपकी क्या संवेदना है?

उत्तर : धर्म के अनेकों प्रसंग आते हैं। श्रेष्ठ प्रसंगो में जाना चाहिए। सभी में जाना जरूरी नहीं है। वे अपने स्वास्थ्य का भी खयाल नहीं रखते, इस बातसे परिवार के सभी सदस्यों को चिंता रहती हैं।

प्रश्न आपके पिताजी अध्यापक और साथमें एन.सी.सी. कमान्डर रहे हैं। अध्यापक की आदत होती है शिश्तबद्ध वर्तन और कमान्डर का स्वभाव तो अशिस्त के लिए कड़क ही होता है। इसका प्रभाव गृहस्थी में भी होता होगा, क्योंकि गृहस्थी तो शिश्त–अशिस्त का मिश्रण है। इससे आप आपकी धर्मपत्नी और बच्चों की क्या प्रतिक्रिया रहती है?

उत्तर : घरमें पापाकी हाजरी में करफ्यु जैसा वातावरण रहता है। शिस्त जरुरी है, लेकिन शिस्त का ओवरडोज़ घर के वातावरण को बोझिल बना देता है।

प्रश्न ऐसा कोई प्रसंग आपकी स्मृति में है कि जिस प्रसंग पर आपको लगा हो आपके पापाजी वास्तव में विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी हैं।

उत्तर : ज्ञानमति पुरस्कार से पुरस्कृत का प्रसंग, गोमतीपुर की प्रतिष्ठा, वस्त्राल(शिवानंदनगर के मंदिर) की प्रतिष्ठा के समय उनके कार्यो से जरुर गर्वका अनुभव हुआ और मुझे लगा मेरे पापाजी सही में विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी है।

डॉ. अशेष जैन (पुत्र)

प्रश्न डॉ. अशेषजी आपके पिताजी आपके बारे में मान्यता रखते है कि मैं पुत्र अशेष की जरुरत और उनके लालन–पालन में ज्यादा ध्यान नहीं दे सका हूं– शायद उनके मन में इसी बात का दुःख भी होगा, क्या ऐसा है?

उत्तर : ऐसा तो मुझे नहीं लगता है। हाँ मुझे पढ़ाने में व्यवस्थित करने में उन्होंने पूरी तन–मन और धन से सहायता की है। आज में जो भी हूँ उनके ही आशीर्वाद और मेहनत के कारण हूँ।

प्रश्न आप डॉक्टर हैं, आपकी बड़ी होस्पीटल है, आपकी प्रेक्टीस भी अच्छी चल रही है, ऐसी स्थिति में आपके पिता की धार्मिक और सेवाकीय प्रवृत्तिओ से आपके दिल में कैसी भावना होती है?

उत्तर : अच्छी प्रवृत्तियाँ करनी चाहिए लेकिन स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। छोटे बच्चों का ध्यान रखना चाहिए– थोडा समय बच्चो को भी देना चाहिए।

प्रश्न मैंने देखा है कि आप अपने पापासे ज्यादा मम्मी को मिलते जुलते है, क्या वज़ह है?

उत्तर : कुदरती ऐसा संबंध है। मम्मी से ज्यादा लगाव है। पापासे बात करने को तैयारी करनी पड़ती है। वे किसीकी सुनते नहीं। दूसरे के सजेशन नहीं लेते।

प्रश्न आपके पापाजी और आपकी उम्र की वजह से, ख्यालातों और स्वभाव की वजह से बहुत अंतर होना स्वाभाविक है, कैसे समाधान पाते हो?

उत्तर : समाधान की कोशिष नहीं की है, ज्यादातर मौन रहना पसंद करता हूँ।

श्रीमती नीति जैन (पुत्रवधु)

प्रश्न आपके ससुर और सासमें आपकी चाहना किसकी ओर ज्यादा है?

उत्तर : हमारी चाहना सास–ससुर दोनों की ओर है।

प्रश्न आपके परिवार का ऐसा कौनसा प्रसंग आपकी स्मृति में है जिससे आपको बेहद खुशी हुई हो?

उत्तर : आनेवाले अभिनंदन के प्रसंग से बहुत खुशी हो रही है।

प्रश्न आपके बच्चों के साथ उनके दादाजी का बर्ताव कैसा होता है?

उत्तर : बच्चों के साथ दादाजी का व्यवहार सही है। प्यारभी करते हैं और बच्चो को गलती करने पर डाँटते भी हैं।

डॉ. महेन्द्र जैन (भाई)

प्रश्न आपके भाई डॉ. शेखरचन्द्रजी जैन का अभिनंदन होने जा रहा है, आपके भाई की कौनसी विशिष्टताओ से यह सब मान–सम्मान मिल रहा है?

उत्तर : आंतरराष्ट्रीय विद्वान हैं, जैनधर्म के ज्ञाता है, प्रवचनमणि है। समाज के ऐसे विद्वान है जो शैक्षणिक, सामाजिक प्रवृत्तिओ में संलग्न है। सेवाकी भावना से ओतप्रोत हैं, स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्तित्व का सम्मान होना ही चाहिए।

प्रश्न आपके लिए और पूरे परिवार के लिए उनका समर्पण कैसा रहा है?

उत्तर : हमारे लिए और हमारे परिवार के लिए सन्मानीय है, पूरे परिवार को मार्गदर्शन देते है और सबको एकजुट रखते हैं। उनकी मैं जितनी प्रशंसा करूँ वे कम है। मैं आज जिस मुकाम पर हूँ उसका पूरा श्रेय मेरे इन बड़े भाई को है। मुझे पुत्रकी तरह पाला पढ़ाया है। अति कम आय होने पर भी मुझे डॉक्टरी पढ़ाई यह उनका ही प्रतिफल है जो मैं भोग रहा हूँ।

परिवार के चारों बच्चो से संयुक्त मुलाकात ली। जिसका मिला जुला अंश

(1) पौत्री– किंजल राकेशजी जैन (2) पौत्र – निशांत राकेशजी जैन

(3) पौत्र – निसर्ग अशेषजी जैन (4) पौत्री – आयुषी अशेषजी जैन

''दादाजी जब परदेश से चोकलेट के डिब्बे लाते हैं तब चोकलेट जैसे मीठे लगते हैं। जब दादाजी गुस्सा करते है तब हम को भी गुस्सा आता है लेकिन जब मम्मी–पापा समझाते हैं कि दादाजी तुम्हारी भलाई के लिए गुस्सा करते हैं तब हमारा गुस्सा शांत हो जाता है। जब दादाजी ने भरी सभामें हमसे मंगलाचरण करवाया तब हमें बहुत अच्छा लगा।''

एक भी बच्चा डॉक्टर बनने को इच्छुक नहीं है। ज्यादातर पायलट बनने का भाव रखते हैं।

समीक्षक : श्रीमती डॉ. ममता मिश्र

घरवाला

घरवाला डॉ. जैन की सर्वप्रथम व्यंग्यात्मक काव्यरचना है। जिसका प्रकाशन सन् 1968 में जैन विजय प्रिन्टिंग प्रेस ('जैनमित्र' कार्यालय) से हुआ था। मूलतः जब वे इन्टर आर्ट्स में पढ़ते थे तभी भगवत स्वरूप भगवत की व्यंग्य रचना 'घरवाली' प्रकाशित हुई थी। उसी 'घरवाली' को उत्तर देने के लिए 'घरवाला' की रचना की गई थी। इसकी प्रेरणा उनके एक बुजुर्ग मित्र श्री रघुवर दयालजी नारद ने यह कहकर दी थी कि 'तुमई कछु लिख डारो' कृति की रचना सन् 1959–60 में हुई, पर प्रकाशक के अभाव में नौ वर्ष कापी में ही पड़ी रही। आदरणीय श्री कापडियाजीने पुस्तक को प्रकाशित कर जैन साहब को कवि के रूप में प्रस्थापित किया।

प्रस्तुत काव्य में 127 चतुष्पदियाँ हैं, जो एक घरवाली की मनोभावना को प्रस्तुत करती हैं। प्रत्येक नारी वह कितना ही स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती हों परंतु घरवाले की चाह उसके हृदय में निरंतर गुदगुदाती रहती है। प्रायः सभी चतुष्पदियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती हैं। परंतु उदाहरण के लिए एक ही काफी है।

लँगड़ा हो लूला हो चाहे, हो हब्शी सा वह काला।
तीन तीन पत्नी दे गई हों, जिसे विधुरपद अति काला॥
पैदा हुई जो नारी कुलमें, तो मेरी यह इच्छा है–
जैसा भी हो दुबला–पतला, मिल जाये बस घरवाला॥

कठपुतली का शोर

कठपुतली का शोर डॉ. शेखरचन्द्र जैन की कविताओं का संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 1975 में हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ से हुआ था। जिसकी भूमिका हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और उपन्यास श्री भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा के उपन्यासकार)ने लिखी थी। कविता संग्रह डॉ. जैनने अपनी जीवन संगिनी को अर्पित की है जो उनकी साधना की चिरसंगिनी बनी रहीं। भगवतीचरण वर्मा के शब्दो में ही कहें तो 'उनकी कविताओं

में भावनात्मक धारा के साथ–साथ एक वैचारिक धारा है जो कविता साहित्य को आजके युग की देन है.... अधिकांश कवितायें वर्तमान धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं.... यह संतोष और प्रसन्नता की बात है कि डॉ. शेखर जैन की कविताओं में विचारों की सात्त्विकता है जो उदात्त भावनाओं की प्रतीक है।' कृति में छंदस और अछंदस दोनों प्रकार की कविताओं का समावेश है।

जैसाकि डॉ. जैनने स्वयं अपने प्रेरणास्रोत में लिखा है कि 'इस संग्रह की नींव में अहमदाबाद की चेतनागोष्ठी रही है।' अनेक कवितायें गीत रूप में गेय हैं, और अछंदस कविताओं में जीवन का सत्य मुखरित हुआ है। तत्कालीन प्रधानमंत्री 'स्व. लालबहादुरजी के प्रति श्रद्धांजलि और पत्र' एवं 'पिता का पत्र पुत्र के नाम' बहुत ही उत्तम भावुक रचनायें हैं। कहीं प्रकृति के गीतों की बासंती बयार है, तो कहीं वर्षा की रिमझिम बूँदे, तो कहीं चेहरे पे चेहरा चढ़ाये लोग हैं; परंतु सारे के सारे किसी के हाथ की कठपुतली हैं, जो उसके इसारे पर नाचते हैं, गाते हैं, लड़ते हैं, मरते हैं और मारते हैं। एक उदाहरण ही काफी है।

कहते हैं, भोंकता कुत्ता काटता नहीं
मगर
यह बड़ा अजीब लगता है–
यह इन्सान,
भोंकता और काटता भी है।

इसी प्रकार एक गीत की गुनगुनाहट के स्वर मुखरित हैं–

बन कर के मधुमास तुम्हारी याद धरा पर छाई है
मन–बगिया की डाल–डाल की कली–कली मुस्काई है।
फागुन का यह भोर, गुलाबी मौसम है
अनजाने दर्पण में गोरी, शरमाने का मौसम है।
किसी सुहागन के माहुर की लाली नभ में छाई है
बन कर के मधुमास तुम्हारी याद धरा पर छाई है

नये गीत नये स्वर

'नये गीत नये स्वर' गुजरात के हिन्दी कवियों की कविताओं का संकलन है। जिसका प्रकाशन इन्दौर से हुआ है। जिसमें १०१ कवियों की कवितायें संकलित हैं। जिसमें डॉ. शेखरचन्द्र का 'तुम गादो मेरा गीत अमर हो जाये' बड़ा ही भावुक प्रेमगीत है। चार ही पंक्तियाँ देखिये–

आध्यात्मवाद के स्वर तो हैं उलझे उलझे।
विश्वास नहीं होता मुझको इन नारों से–
तुम जीवन की सीधी सी कोई ऋचा कहो
जीवन का सच्चा अर्थ समझ में आ जाये। तुम गादो.....

इसी प्रकार गुजरात के 'हिन्दी के प्रतिनिधि कवि' एवं 'चेतना संग्रह' में भी उनकी कविताओं को सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त हुआ है।

टूटते संकल्प

'टूटते संकल्प' डॉ. शेखरचन्द्र जैन का प्रथम मौलिक कहानी का संग्रह है। जिसका प्रकाशन सन् 1987 में चिंतन प्रकाशन, कानपुर से किया गया था। लेखक ने अपनी इस कृति का समर्पण संग्रह के उन सभी पात्रों को किया है जो संकल्पों के टूटन में भी संघर्षरत हैं।

इस संग्रह की भूमिका 'मेरी दृष्टि' में शीर्षक द्वारा देश के प्रसिद्ध कहानी–उपन्यासकार श्री डॉ. रामदरशजी मिश्र, जो कभी लेखक के अध्यापक रहे हैं– ने लिखी है। जिसमें वे लिखते हैं 'टूटते संकल्प, समकालीन जीवन यथार्थ की यात्रा करता है। शेखर जैनने समय की त्रासदी को पहिचाना है। कहानियों में व्यवस्था के क्रूर और कुरूप चेहरे को निर्ममता से उघाड़ा है। अधिकांशतः कहानियाँ पारिवारिक संबंधो की नई चेतना को उभारती हैं।'

''कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहानियों को पढ़ते समय ऐसा महसूस होता है कि वे लेखक की आंतरिक छटपटाहट को व्यक्त कर रही हैं, और पढ़ते–पढ़ते पाठक को कहीं न कहीं अपने अंदर की छटपटाहट उसमें महसूस होती है। यह सत्य है कि हमारी सबकी आकांक्षा, आशा प्रतिदिन खंडित हो रही है। आजका मानव भौतिकता की दौड़ में भ्रष्टाचार, विषमता के मकड़जाल में फँसता जा रहा है, और अपनी ही कुण्ठाओं में घुट रहा है।''

पूरी कृति में राजनीति, भाई–भतीजावाद, शैक्षणिक संस्थाओं के दलालों द्वारा शोषण आदि तथ्यों को उजागर किया है। कहीं पुलिस हरीश नामक मजदूर नेता को अकारण पकड़ लेती है और पिटाई करके उसे व्यवस्था का आदमी होने पर मजबूर करती है। इस कहानी में व्यक्ति की मानसिक द्वंदता को बखूबी प्रस्तुत किया है। अल्पविराम कहानी में सुधा का जीवन निरंतर परतंत्र बनी रहने की नियति झेलने के सिवाय क्या रह जाता है? 'प्रेम बलिदान', 'अवांछित', 'संग–असंग', 'भूख', 'ईर्ष्या', 'वारांगना' आदि कहानियों में नारी पुरूष के संबंधों तथा पारिवारिक यथार्थ को खोलती हैं। 'अवांछित' और 'वारांगना' प्रभावशाली कथायें हैं तो 'भूख' नारी के वात्सल्य से जुड़कर यथार्थवादी हो गई है। 'निराश्रित' कहानी वर्तमान यथार्थ संदर्भ की सशक्त हृदय को छूने वाली रचना है। लेखक अंधेरेमें रास्ता खोजने के लिये बेचेन है, जो नये लेखक की शक्ति और संभावना के प्रति आश्वस्त करती है।

राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्यकला

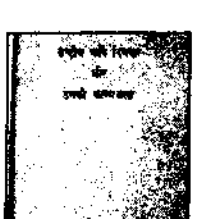

प्रस्तुत 'राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्यकला' डॉ. जैन की पीएच.डी. का महानिबंध है। जिसका प्रकाशन सन् 1973 में जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर से किया गया था। कृति उन्होंने अपने पू. पिताजी एवं माताजी को समर्पित की है जो उनकी प्रगति यात्रा के आशिर्वाद दाता रहे।

डॉ. जैन ने गुजरात विश्व विद्यालय के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. अम्बाशंकर नागरजी के निर्देशन में यह शोध कार्य संपन्न किया था। ग्रन्थ लगभग ३५० पृष्ठों का है। जिसमें सात अध्याय है। ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि इसके लिए स्वयं कवि श्री

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने दो शब्द लिखने की अनुकम्पा की थी। प्रस्तुत कृति में लेखक ने राष्ट्र, राष्ट्रीयता, उसके पोषकतत्त्व और उसके विकास की यात्रा को आलेखित करते हुए, हिन्दी साहित्य से पूर्व अपभ्रंश साहित्य में राष्ट्रीयता से प्रारंभ कर समस्त कालों के साहित्य में विकसित राष्ट्रीयता को प्रस्तुत करते हुए सन् 1968 तक की राष्ट्रीय यात्रा को प्रस्तुत किया है। पश्चात् दिनकर की कृतियों में जिन राष्ट्रीय भावनाओं का समावेश हुआ है उसका बड़ी ही तटस्थता और गम्भीरता से प्रस्तुतिकरण किया गया है। समग्रतामें देखें तो दिनकरजी की राष्ट्रीय रचनाओं में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, युगीन परिस्थितियाँ अंकित हुई हैं। जिनमें क्रांति की आराधना, अतीत का गुणगान, गांधीनीति, वर्तमान का यथार्थ अंकन, अखंड भारत का समर्थन, राष्ट्रीयता का व्यापक दृष्टिकोण, राष्ट्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश और 1962 के चीनी आक्रमण में से जाग्रत राष्ट्रीय हुंकृति को प्रस्तुत किया गया है।

कृति में कवि का व्यक्तित्त्व प्रस्तुत करते हुए उनकी सभी रचनाओं का मूल्यांकन कृतियों के कथ्य के संदर्भ में किया गया है, और खंड काव्यों के मूल स्रोत का उद्‌घाटन करते हुए उन पौराणिक कृतियों की समीक्षा की गई है। दिनकरजी की अमर कृतियों में यदि 'रेणुका' और 'हुंकार' हैं तो प्रबंध काव्यों में 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' वीररस के प्रेरणास्रोत हैं। 'उर्वशी' उनकी गीत–नाट्य कृति है जिसमें कवि का सौंदर्य बोध अंतर मन के प्रेम, काम आदि भावों को बड़े ही मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। कवि का प्रकृति प्रेम इस कृति में लबालब भरा हुआ है। लेकिन जोश का कवि सौंदर्य में भी उस वीरता को ढूँढता है।

कविने भावों के साथ भाषा, अलंकार, छंद एवं गीतों की जो समायोजना की है वह कृति को कालजयी बनाने में सक्षम है। इस कृति को राष्ट्रीय कवि दिनकर पर प्रथम शोध प्रबंध होने का गौरव प्राप्त हुआ था।

इकाइयाँ और परछाइयाँ

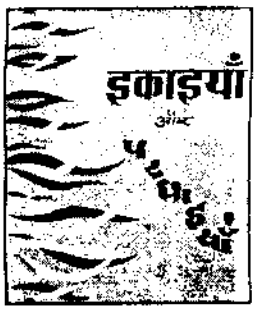

'इकाइयाँ और परछाइयाँ' डॉ. शेखरचन्द्र जैन एवं डॉ. सुदर्शन मजीठिया द्वारा संपादित दस कहानियों का संग्रह है। जिसका प्रकाशन कमल प्रकाशन इन्दौर से सन् 1970 में किया गया। 'समर्पण' भी बड़े ही व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए संपादकद्वयने इस प्रकार किया है 'उन कहानीकारों को जो कहानी के नाम पर कहानी के अतिरिक्त सबकुछ लिखते हैं'।

प्रस्तुत संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें दसों कहानियाँ गुजरात के ही कहानीकारों की हैं। यह अलग बात है कि हिन्दी साहित्य के रचना संसार की राजनीति में गुजरात के कहानीकार कभी चमक नहीं पाये। डॉ. अम्बाशंकर नागर आदि कहानीकारों के साथ डॉ. शेखरचन्द्र जैन की 'अनचाहा' कहानी प्रस्तुत हुई है। प्रत्येक कहानी एक नई दिशा प्रस्तुत करते हुए कुछ न कुछ नया संदेश देती है। जो लगता है व्यक्ति और समाज व्यवस्था और उसमें पनप रही विकृति को उज़ागर करती है।

समीक्षक : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

मुक्ति का आनंद

'मुक्ति का आनंद' डॉ. शेखरचन्द्र जैन के दस प्रवचनों एवं लेखों का संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 1981 में किया गया था। जो विविध मंचों से प्रवचन के रूप में या गोष्ठियों में लेख के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। प्रत्येक आलेख जैनधर्म के सिद्धांतों को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए यही इंगित करते हैं कि 'ममत्व का त्याग ही मुक्ति की ओर उन्मुख होने का प्रथम अभियान है, आनंद की चरम परिणति तो तब है, कि मैं सबका हो जाऊँ पर सबमें लिप्त ना होऊं। इसी ज्ञान व चरित्र से व्यक्ति समष्टि की दृष्टि पैदा कर मुक्ति का आनंद प्राप्त कर सकता है।' कृति में 'काम से मोक्ष', 'अहं से ॐकार तक ऊर्ध्वगमन', 'दमन से शमन', 'मैं और मेरा स्वरूप' जैसे आत्मलक्षी ऊर्ध्वगमन से संबंधी लेख हैं तो 'स्याद्वाद', 'भक्तामर स्तोत्र', 'आत्म परिचय के दस लक्षण' और भ. महावीर को वर्तमान संदर्भ में देखने के दृष्टिपूर्ण आलेख भी हैं। कृति में 'भ.महावीर : वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में' आलेख बड़ा ही सशक्त, कवित्वमय है, जिसमें रूढ़ियों और मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष प्रस्तुत हुआ है। उन्हें हिंसा के तांडव से प्रताड़ित दुःखी जनों के हमदर्द एवं ज्ञान विज्ञान का पुंज स्वीकार किया है। साथ ही आधुनिक युद्ध, शोषण, हिंसा, हरिजन समस्या, नक्सलवाद जैसे विषयों को भी प्रस्तुत करते हुए धर्म और समाज के संबंध को जोड़कर देखने का सम्यक्त्व प्रयत्न किया है।

तन साधो : मन बांधो

'तन साधो : मन बांधो' डॉ. शेखरचंद्र जैन की मूलतः ध्यान–योग पर केन्द्रित कृति है। जिसका प्रकाशन सन् 1983 में हुआ था। यह कृति हिन्दी के साथ गुजराती में भी अनुदित होकर प्रकाशित हुई है। इसके गुजराती के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं जिसका एक संस्करण बोस्टन (अमरीका) के संघने कराया था। ८८ पृष्ठीय पुस्तक में पातंजल का योगसूत्र, आ.शुभचंद्र का ज्ञानार्णव एवं हेमचन्द्राचार्य के योगसार के साथ ही वर्तमान युगीन आ.तुलसी एवं उनके शिष्य महाप्रज्ञजी द्वारा प्रचारित ध्यान पद्धति

के सत्त्व को ही समेट कर इस कृति में नवनीत के रूप में प्रस्तुत किया है।

कृति में प्रारंभ में जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में सामायिक को ध्यान की जननी प्रस्तुत करते हुए समस्त ध्यान पद्धतियों को उसीका विकसित रूप माना है। इसी संदर्भ में उन्होंने जैन दर्शन में ध्यान योग की परिभाषा, प्रकार आदि का बहुत ही सुंदर निरूपण किया है। मूलतः वे यही प्रस्तुत करना चाहते हैं कि बर्हिजगत से अंर्तजगत में उतरते हुए संकल्प शक्ति के साथ जितेन्द्रियता की और बढ़ते हुए, चित्त शुद्धि की साधना ही ध्यान है– जो मुक्ति का आलंबन है। ध्यान का मूल प्रयोजन तो कषायरहित होकर आर्त और रौद्र ध्यान से मुक्ति होकर धर्म ध्यान में स्थिर होते हुए शुक्ल ध्यान तक ऊर्ध्वगमन करना है। जिसका मूल है संयम की साधना, मन और इन्द्रियों का निग्रह।

कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रेक्टिकल रूप से ध्यान कैसे किया जाय उसका चित्रों के साथ उल्लेख किया गया है। सविशेष रूप से प्रारंभ में देहशुद्धि, वस्त्रशुद्धि, स्थानशुद्धि को महत्त्वपूर्ण माना गया है। तदुपरांत ध्यान में आत्मा की साधना से पूर्व देह की साधना अति आवश्यक होने से कैसे बैठें, कैसे देखें, कैसे श्वास लें, कैसे ऊर्जा प्राप्त करें और कैसे णमोकार का उच्चारण करें, तथा उस उच्चारण के साथ कैसे पंच परमेष्ठी के दर्शन हो– इसका सांगोपांग वर्णन किया है। 48 मिनिट की इस क्रिया में व्यक्ति अपने ही अंदर उगते हुए बालरवि की किरणों में अपने आराध्य के दर्शन भी करे और अपने अंदर महसूस भी करे, यह प्रस्तुत किया है। लेखक स्वयं पिछले 20–25 वर्षों से णमोकार मंत्र के ध्यान को शिविर आयोजित करके ध्यान करा रहे हैं। कृति पठनीय, मननीय एवं अनुकरणीय है।

आचार्य कवि विद्यासागर का काव्य वैभव

प्रस्तुत कृति आ. श्री विद्यासागर की कालजयी कृतियाँ– 'मूकमाटी', 'नर्मदा का नरम कंकर', 'तोता क्यों रोता?', 'चेतना के गहराव में' एवं 'डूबों मत लगाओ डूबकी' की काव्यशास्त्रीय दृष्टि से की गई समीक्षा है। कृति का प्रकाशन 1997 में किया गया था।

आ. विद्यासागरजी उच्च कोटि के साधक संत तो हैं ही, परंतु असाधारण प्रतिभा के कवि हैं। जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा समाज व्यवस्था, धर्म, जीवन का लक्ष्य मोक्ष आदि पर काव्यरचना की है। 'मूकमाटी' उनका सर्वाधिक चर्चित महाकाव्य है। जिसमें एक माटी कैसे साधना में कष्ट सहते हुए भी अड़िग रहकर मंगल कलश बनती है– उसकी कथा है, जो किसी भी व्यक्ति को संसार से ऊपर उठकर मोक्ष तक की यात्रा कराने का संदेश देती है। समीक्षकने लिखा है 'मूक माटी की सुगंधी फैलती बन आज चंदन,

शब्द का दे अर्घ्य स्वामी, करें शेखर चरण वंदन।'

'नर्मदा का नरम कंकर' कवि की मुक्तक रचनाओं का संग्रह है। जिसकी प्रत्येक कविता मधुर गीत सी लगती है। भक्त भक्ति में सराबोर होकर कटीले कंकरों को भी नरम बनाकर जीवन की नदी को पार कर जाता है। इसी प्रकार 'तोता क्यों रोता' में उनकी ५५ कविताओं का संग्रह है जिसमें उनकी आत्मानुभूति व्यक्त हुई है। ब्रह्मानंद सहोदर कवि अपनी आध्यात्मिक रचनाओं के द्वारा इनका आनंद जन–जन तक पहुँचाना चाहता है। 'चेतना के गहराव मे' में भी आध्यात्मिक गीतों का संग्रह है। जिसमें कवि प्रकृति के सौंदर्य में अध्यात्म के खिलते पुष्पों की सुगंधी को पा लेता है। कवि लहरों में भी जीवन के तथ्य और सत्य को खोजता है और बाह्य स्तरों से अंतर की गहराईयों में उतर जाता है तभी उसे स्वयं प्रकाश्य आत्मा के दर्शन होते हैं। 'डूबो मत लगाओ डूबकी' भी ऐसी ही आध्यात्मिक कविताओं का संकलन है जिसमें शब्द शिल्पी ने शब्दों को तराशकर उस पुनीत घाट का निर्माण किया है कि अब

पानी में गिरनेवाला भी डूबेगा नहीं, अपितु डूबकी का आनंद लेगा।

प्रत्येक कविता पठनीय, मननीय है। हाँ! कहीं–कहीं कविने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो प्रचलित नहीं है अतः दुरूह भी लगते हैं।

मृत्यु महोत्सव

समीक्षक : डॉ. भागचंदजी भागेन्दु

डॉ. शेखरचन्द्र जैन द्वारा लिखित निबंध संग्रह 'मृत्यु महोत्सव' का प्रकाशन सन् 1992 में हुआ, जिसमें १७ आलेख संग्रहित हैं। जैनदर्शन में मृत्यु को महोत्सव माना गया है और इसीलिए कृति का नाम एक निबंध 'मृत्यु महोत्सव' के नाम पर निर्धारित किया गया। पुस्तक का समर्पण पू. आचार्यों, मुनिराजों, आर्यिका माताओं, धर्मज्ञ विद्वानों को किया गया है। प्रायः सभी निबंध ललित निबंध शैली में अभिव्यक्त हुए हैं जो जैन संस्कृति में जन्म और जीवन को सुधारने का मार्ग प्रस्तुत करते हुए मरण को सँवारने का संदेश देते हैं। जीने की कला में निपुण होना जितना आवश्यक है, मरने की कला सीखना उतना ही अनिवार्य है। कृति में *'मरणं प्रकृतिः शरीरिणां, विकृतिः जीवनमुच्यते बुधैः'* का प्रतिपादन करते हुए जीवन के चरम सत्य मृत्यु का व्याख्यान किया है। कृति में जैन सिद्धांत पर आधारित निबंध है, जिनमें अहिंसा, अपरिग्रह आदि मुख्य है। *'जीवः जीवस्य भोजनम्'* लघु निबंध होने पर भी हिंसात्मक मान्यताओं को तोड़ता है। लेखक 'वर्तमान युग और धर्म' तथा 'धर्म मानवता के विकास का साधन' निबंधों में उद्घोषणा करता है कि धर्म रूढ़ि नहीं है जीवन जीने की कला है एवं विश्वशांति का उपाय है। कृति में आ. कुंदकुंद एवं आ. हेमचंद्र के कृतित्व का भी परिचयात्मक एवं जीवनमूल्य तथा सांस्कृतिक अवदान की समीक्षा की गई है। लेखकने एक ओर 'जैन तत्व मीमांसा' और 'जैन ब्रह्मांड' जैसे विषयों पर कलम चलाई हैं तो 'श्रमणों का सामाजिक योगदान' तथा 'विदेशों में जैनधर्म' जैसे लेख प्रस्तुत कर युगीन आवश्यकताओं को एवं प्रचार–प्रसार को प्रस्तुत किया है। यह कालजयी कृति है जिसमें जैनधर्म और दर्शन के उदात्त एवं महनीय सिद्धांत को सार्वजनीन स्तर पर व्याख्यायित करने की उत्कृष्ट अभीप्सा सर्वतो भावेन निदर्शित है। भाषा सरल–प्रांजल है।

जैनधर्म सिद्धांत और आराधना

समीक्षक : श्रीमती इन्दुबहन शाह

'जैनधर्म सिद्धांत और आराधना' सन् 1981 में प्रकाशित गुजराती 'जैन आराधनानी वैज्ञानिकता' का हिन्दी रूपांतरण है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक का उद्देश्य उन लोगों को जैनधर्म का ज्ञान प्रदान करना है जो मूलतः तत्त्वों और सच्ची क्रियाओं से अनभिज्ञ हैं। मूलतः सन् 1980–81 में जब भावनगर में श्री महावीर जैन विद्यालय में आचार्यश्री मेरूप्रभसूरीजी पधारे और विद्यार्थियों के साथ उनकी जैनधर्म पर चर्चा होती रही तब उन्होंने ही प्रेरित किया कि एक ऐसी पुस्तक लिखो जिसमें जैनधर्म के सिद्धांतों की भी चर्चा हो और क्रियाओं को भी शास्त्रीयरूप से प्रस्तुत किया जाय। उनकी प्रेरणा से प्रथम गुजराती और बाद में इस हिंदी कृति का प्रकाशन हुआ।

प्रथम खंड सिद्धांत पक्ष है जिसमें जैनधर्म का सामान्य परिचय, जैन शब्द का अर्थ, धर्म क्या है, धर्म और संप्रदाय का भेद, जैन धर्म क्यों है?, हम जैन क्यों हैं?, जैनधर्म में भगवान की क्या अवधारणा है?, जैनधर्म अन्य धर्मों से कैसे विशिष्ट है? इनको समझाते हुए जैनधर्म के प्राण अहिंसा, बारहव्रत, बारह भावना, कर्मसिद्धांत, नवतत्त्व, स्याद्वाद, त्रिरत्न एवं षट्लेश्या की चर्चा आगम के आधार पर प्रस्तुत की गई है।

द्वितीय खंड में आराधना पक्ष के अंतर्गत आराधना की आवश्यकता क्या है?, देवदर्शन कैसे किये जायें, दर्शन मंत्र कैसे बोला जाय, पूजा की महत्ता क्या है? उसके प्रकार क्या हैं?, प्रक्षाल क्यों और कैसे करना चाहिए?,

आरती–शांतिपाठ क्यों और कब करना चाहिये? की चर्चा के साथ–साथ सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, व्रतोपासना, उपवास, एकासन, आहार–विहार, रात्रिभोजन निषेध, सप्तव्यसनों का त्याग, अष्टमूलगुणों को धारण करना एवं श्रावक के षट्कर्मों की चर्चा की गई है। यह पुस्तक इतनी सरल भाषा में है कि छोटी कक्षा का विद्यार्थी भी बड़ी सरलता से समझ सकता है। वास्तव में विद्यार्थियों, युवकों में जैनधर्म के प्रति समझ और श्रद्धा उत्पन्न हो यही कृति का उद्देश्य है।

जैन दर्शन में कर्मवाद

'जैन दर्शन में कर्मवाद' डॉ. शेखरचन्द्र जैन की भ. महावीर के २६००वें जन्मोत्सव वर्ष सन् 2002 में प्रकाशित कृति है। जिसका प्रकाशन श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर से किया गया और जिसके आर्थिक सहयोगी हैं श्री रमेशचंदजी कोटड़िया, मुंबई। कृति में पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई ने अभिवादन के माध्यम से कृति की सरलता, सैद्धांतिक पक्ष की सुंदर विवेचना की है।

जैन दर्शन में अनेक सिद्धांतो में कर्मवाद सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्वचिंतन का विषय है। यह कर्मवाद जैनधर्म की विशेष देन है। जैसाकि हम जानते हैं अवतारवाद, संसारकी रचना के साथ जैनदर्शन का कर्मवाद भी उसे अन्य धर्मों से अलग और विशिष्ट पहचान देता है। मूलतः श्री रमेशचंदजी कोटड़ियाजी की बड़ी इच्छा थी कि कर्मवाद पर ऐसी पुस्तक लिखी जाये जो विषय की गहराईयों के साथ–साथ इतनी सरल हो कि साधारण पाठक भी उससे ज्ञान प्राप्त कर सके। लाखों पृष्टों में वर्णित यह विषय मात्र 67 पेजों में समाहित किया गया है।

लेखकने प्रारंभ में कर्म संबंधी विविध मान्यताओं को प्रस्तुत किया है, साथ ही कर्म शब्द के अर्थ को समझाते हुए कर्म के आस्रव का वर्णन किया है। ये आश्रित कर्म ही बंध के कारण बनते हैं और आत्मा को ८४ लाख योनियों में भटकाते हैं। लेखकने कर्म के जो आठ भेद हैं उनकी शास्त्रीय व्याख्या की है। इन आठ कर्मों की सैद्धांतिक व्याख्या पूर्णरूपेण आगम संमत है, भाषा सरल अनेक उदाहरणों से युक्त होने से लोक पठनीय है।

कृति की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि इसमें प्रत्येक कर्म से संबंधित एक–एक कथा लेखकने प्रस्तुत की है। कथा के माध्यम से जिस–तिस कर्म को समझाया गया है। कुछ कथायें पौराणिक हैं तो कुछ लेखकने स्वयं रचीं हैं।

सचमुच इस कृति को लोगों ने और सविशेष किशोरों और युवाओं ने कथाओं के कारण बड़े ही मनोभाव से पढ़ा और अध्ययन किया है। कृति की सफलता इसी में है कि चंद महिनों में ही वह अप्राप्य हो गई।

ऐसी कृतियाँ ही वास्तव में जैनधर्म और दर्शन को प्रचारित करने में सहायक होती हैं।

समीक्षक : डॉ. कपूरचन्द खतौली

जैन दर्शन : बहु आयाम

'जैन दर्शन : बहु आयाम' डॉ. शेखरचन्द्र जैन के नवीनतम निबंधों का संग्रह है। जिसका प्रकाशन भ.बाहुबली मस्तकाभिषेक वर्ष 2006 में 'समन्वय प्रकाशन' द्वारा किया गया। जिसके आर्थिक सहयोग दाता श्री एम.आर. मिण्डा चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर हैं। पुस्तक की भूमिका कुंदकुंद ज्ञानपीठ इन्दौर के मानद् सचिव श्री डॉ. अनुपम जैन ने लिखी है और पूरी कृति की उन्होंने उसमें समीक्षा की है, जिसमें उन्होंने कहा है 'डॉ. जैन के अंदर निहित प्रोफेसर की शोधात्मक प्रवृत्ति इन निबंधों में व्यक्त हुई'।

प्रस्तुत निबंध संग्रह पूर्व के निबंध संग्रहों की भाँति विविध प्रसंगों पर प्रस्तुत निबंधों

का ही संकलन है। प्रस्तुत संग्रह में सम सामायिक, ऐतिहासिक, पौराणिक पृष्टभूमियों के विषय का चयन किया गया है। 'भ. ऋषभदेव : आदि संस्कृति के पुरोधा– वर्तमान परिप्रेक्ष्य में' तथा 'तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नों की वैज्ञानिकता' ऐसे निबंध है जो प्राचीन तथ्यों को मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में नवीन संदर्भो में प्रस्तुत किये गये हैं। लेखकने स्यादवाद को जैनधर्म की रीढ़ माना है तो प्रव्रज्या को मुक्ति की ओर अग्रसर होने का साधन माना है। कृति में ध्यान का स्वरूप और उसका महत्त्व, कर्म की वैज्ञानिकता, जैन तत्त्व मीमांसा को प्रस्तुत करते हुए णमोकार मंत्र के बहुआयामी परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया गया है, साथ ही परंपरा से हटकर भक्तामर स्तोत्र में बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से उसके अंदर के रहस्यों को या भावनाओं को उजागर किया गया है। लेखक की दृष्टि हमेशा भविष्य पर होती है और इसी परिप्रेक्ष्य में 'धर्म मानवता के विकास का साधन', 'आगत युग में जैनधर्म की वैश्विक भूमिका' एवं 'अहिंसा और शाकाहार' जैसे निबंधों को प्रस्तुत किया गया है। लेखक मानता है कि जैनधर्म न तो रूढ़िवादी धर्म है न संकुचित, वह तो मानवता के विकास की सेवा करनेवाला धर्म है। यह दृष्टिकोण 'सामाजिक सेवा और जैन समाज' लेख में प्रस्तुत है।

पुस्तक का प्रत्येक निबंध स्वयं में पूर्ण है जो धर्म के वातायन से समग्र दर्शन को प्रस्तुत करता है।

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

प्रस्तुत पुस्तक सन् 1992 में पू. ग.आ.ज्ञानमती माताजी के ६०वें जन्मदिन पर आयोजित अभिवंदन समारोह के अवसर पर वीर ज्ञानोदय ग्रंथ माला के १३८वें पुष्प के रूप में, श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर द्वारा प्रकाशित की गई थी।

प्रस्तुत पुस्तक में पू. माताजी के जीवन और कवन का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया है। पू. आ. चन्दनामतीजी के शब्दों में कहें तो 'इस लघु परिवेश में महान व्यक्तित्त्व को समेटना असंभव कार्य ही है, फिर भी शेखरजी का प्रयास सराहनीय है।' इस पुस्तक का लेखन डॉ. जैन की पू. माताजी के प्रति भक्ति का प्रतिबिंब है। यद्यपि वे पू. माताजी के बचपन के ब्रह्मचारी जीवन से लेकर इस यात्रा का कुछ आचमन ही करा सकें हैं क्योंकि उनके ही शब्दो में 'पुस्तक ज्ञानमतीजी के जीवन को जानने–समझने के लिए मात्र पूर्व पीठिका ही है।' पू. माताजीने किस तरह बचपन से ही रुढ़ियों के प्रति विद्रोह किया और अपने मन की दृढ़ता और आस्था को बरकरार रखते हुए कैसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर ज्ञानमती तक के विकास की यात्रा को संपन्न किया इसका लेखा–जोखा इस पुस्तक में है। वे मात्र आत्मसाधना ही नहीं करती हैं परंतु उन्होंने साहित्य साधना से हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत में इतना साहित्य सृजन किया है कि आज वे साहित्य रचना में मील का पत्थर बन गई हैं। उन्होंने उपेक्षित तीर्थो का उद्धार किया। कहीं पर भी अपने नाम का तीर्थ नहीं बनाया। ऐसी साधना के शिखर पर आरुढ़ व्यक्तित्त्व के जीवन को प्रस्तुत करना मात्र उनके प्रति एक भावांजलि है।

ज्योतिर्धरा

'ज्योतिर्धरा' डॉ. शेखरचन्द्र जैन द्वारा लिखित जैन जगत की दस महान सतियों की वे कथायें हैं जिन्होंने सतीत्व के लिए जीवन अर्पण किया और उसीके बल पर मुक्ति की ओर प्रयाण भी किया। ग्रंथ का प्रकाशन आ.शांतिसागर 'छाणी' स्मृति ग्रंथमाला द्वारा हुआ है, और इसकी प्रेरणा स्वरूप रहे हैं पू. उपा. ज्ञानसागरजी। पू. उपा. ज्ञानसागरजी निरंतर नये लेखकों को प्रोत्साहित करते रहे हैं और इसी श्रृंखला में इस कृति की प्रेरणा भी उन्हें उन्हीं से प्राप्त हुई। लेखकने अपनी बात के अंतर्गत कहा है 'इन समस्त कथाओं का उद्देश्य हैं प्राचीन परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में नये युग

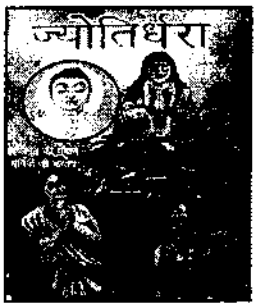

को देखना–समझना..... ये कहानियाँ वह आईना हैं जिसमें अपने युग की संस्कृति, धर्म, समाज व्यवस्था, नैतिकता आदि के दर्शन किये जा सकते हैं। विच्छृंखल हो रहे वर्तमान समाज के लिए ये पथदर्शिका हैं। आजके भौतिकवादी वासनामय संसार के तनाव में जीनेवाले मनुष्य को ये कहानियाँ शांति प्रदान कर सकती हैं, जीने की नई व्यवस्था दे सकती हैं।

नारी हर युग में अपनी अग्नि परिक्षा से गुजरती रही है, उसका चीर हरण होता रहा है, उसे चारित्रिक लांछन की वेदना सहनी पड़ी है। उसने कोढ़ी को भी पति परमेश्वर माना। वह भरे बाज़ार में नीलामी पर चढ़ी और शंका के दायरे में जंजीरों से जकड़ी रही। इतने संघर्षों में भी वह अड़िग रही। रावण और दुर्योधन उसे डिगा नहीं सके।'

लेखकने जहाँ एक ओर पौराणिक सतियों में सीता, अंजना, द्रौपदी, राजुल, चंदनबाला, चेलना, मैनासुंदरी की कथायें प्रस्तुत की हैं तो साथ ही चरित्रशीला मनोरमा, शीलवती अनंतमती के साथ वर्तमान युगकी देशप्रेमी कमला जो भामाशाह की पत्नी थी, जिसने अपने पति को देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दीं थी– ऐसी सतियों के चरित्र इस कहानीसंग्रह में प्रस्तुत हुए हैं। यद्यपि कहानी सब जानी–पहिचानी हैं लेकिन उनको आधुनिक शैली में नये विचारों के साथ कथोपकथन की शैली में रखने से वे लोकभोग्य हो गई हैं। लेखक की शैली इतनी प्रभावोत्पादक है कि पाठक अथ से इति तक पढ़कर ही संतुष्ट हो पाता है। सचमुच में यह सतियाँ हमारी संस्कृति की ज्योतिर्धरा हैं।

परीषह–जयी

डॉ. शेखरचन्द्र जैन का यह कहानी संग्रह महान तपस्वी मुनियों की कथाओं का चरित्र चित्रण प्रस्तुत करता है। पुस्तक का प्रकाशन कुंथुसागर ग्राफिक्स द्वारा श्री जितेन्द्रकुमार रमेशचंद कोटड़िया (फ्लोरिडा, अमरिका) के आर्थिक सहयोग से हुआ। इस कथा लेखन की प्रेरणा स्वरूप भी पू.उपा. ज्ञानसागरजी रहे हैं। जिनकी प्रेरणा से वे 'ज्योतिर्धरा' और 'मृत्युंजय केवली राम' जैसी कृतियाँ लिख चुके थे।

साहित्य की विधा में कहानियों का विशेष स्थान रहा है क्योंकि 'फिर क्या हुआ?' की जिज्ञासा उसे लोकप्रिय बनाती है। जैन साधु तप की ऊँचाइयों पर हरप्रकार के उपसर्ग सहन करके भी दृढ़ रहते हैं। कृति की प्रायः सभी कहानियों में मुनियों पर उपसर्ग के कारणों में भव–भव के संचित क्रोध, बैर–भाव की ही प्रधानता रही है। पूर्व भव के बैरी उन पर भयानक उपसर्ग करते रहे पर वे सुमेरु की भाँति अटल रहे। देह से देहातीत हो गये। मुनि सुकुमाल की पूर्व भव की भाभी या सुकोशल मुनि की पूर्व भव की माँ ही उनकी बैरीन हो गईं और उनकी मृत्यु का कारण बनीं। कृति में लेखक ने सुकुमाल मुनि, सुकोशल मुनि, भट्ट अकलंक देव, चिलात पुत्र मुनि, विद्युतचर मुनि, आ. समन्तभद्राचार्य, वारीषेण मुनि, जम्बूस्वामी, सुदर्शन सागर और गज़कुमार इन दस मुनियों की कथाओं को प्रस्तुत किया था। यद्यपि प्रत्येक कहानी का उल्लेख शास्त्रों में है, लेकिन यहाँ लेखकने नई शैली में पात्रों का यथावत स्वीकार करते हुए प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। साथ ही मुनियों के तप और त्याग की वैज्ञानिकता को भी प्रस्तुत किया है।

कितने महान थे मुनि सुकमाल या सुकोमल जिनका सियारनी एवं सिंहनी भक्षण करती रहीं, गजकुमार के शिर पर अग्नि जलती रही फिर भी वे देह से देहातीत होकर मुक्ति को प्राप्त कर गये। चिलातपुत्र, विद्युतच्चर जैसे दुष्ट भी धर्म के पंथ पर आरुढ़ होकर समस्त उपसर्गों को सहकर मोक्षगामी हुए। वारीषेण और जम्बूस्वामी भी परीषह सहते

सहते आत्मार्थी बनकर मुक्त हो गये। ब्रह्मचर्य के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले सुदर्शन और जैनधर्म के लिए प्राण अर्पण करनेवाले भट्ट अकलंक की कथायें आँखों को नम कर देती हैं। कृति में कहानी जीवंत इसलिए लगती हैं कि उनमें लेखक द्वारा पात्रों का चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण का सज़ीव चित्रण हुआ है। कृति में मुनियों के उपसर्गों के साथ–साथ उनके उपदेशों द्वारा जैनसिद्धांतों की उत्तम प्रस्तुति हुई है। यह अति पठनीय, मननीय कहानीसंग्रह है।

समीक्षक : डॉ. श्री गोवर्धन शर्मा

मृत्युञ्जयी केवली राम

'मृत्युञ्जयी केवली राम' डॉ. शेखरचन्द्र जैन द्वारा लिखित उपन्यास है। जिसके प्रेरक थे पू. उपा.ज्ञानसागरजी, और प्रकाशक संस्था थी अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद। पुस्तक का प्रकाशन सन् 1990–91 में किया गया था। इसकी प्रस्तावना प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजीने लिखकर उपन्यास पर प्रकाश डाला है।

भगवान राम भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य रहे हैं। यह अलग बात है कि अलग–अलग धर्मों में उनका मूल्यांकन अन्य–अन्य प्रकार से हुआ है। पूरे विश्व में लगभग सातसौ से अधिक रामचरित्र गद्य और पद्य में लिखे गये हैं। भारत में वाल्मिकी और तुलसी के राम काव्य सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए हैं। जैनधर्म में 'पउमचरिउ', 'पद्मचरित' आदि अनेक रामकथाओं का दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायों में वर्णन हुआ है। आचार्य रविषेण का पद्मपुराण सर्वाधिक मान्य रहा है, प्रस्तुत उपन्यास को उसीके आधार पर प्रस्तुत किया गया है। महामानव राम के आदर्श जीवन से मानवमात्र को आदर्श जीवन यापन का सुमार्ग प्राप्त होता है। आदर्श जीवन के प्रति निष्ठा और चारित्र के प्रति दृढ़ता हो तो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह पराजित नहीं होता। जैन रामायण–पद्मपुराण में यद्यपि हिंदु धर्म में वर्णित राम कथानकों से अनेक परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण के रूप में राम और लक्ष्मण विश्वासमित्र के साथ न जाकर राजा जनक की म्लेच्छ राजाओं से रक्षा करने जाते हैं। वे वनवास के दौरान अनेक राजाओं के साथ युद्ध भी करते हैं और सिंहोदर जैसो को झुकाते हैं। वे मार्ग में देशभूषण, कुलभूषण जैसे मुनियों के उपसर्ग दूर करते हैं। जैन रामायण में हनुमान बंदर न होकर वानर वंशीय क्षत्रिय हैं, तो रावण राक्षस न होकर राक्षस वंशीय ब्राह्मण है। जैन शास्त्रों में पुरूषोत्तम राम को आठवां बलभद्र माना गया है। राम ही पद्म हैं, जो उज्जवल चरित्र के धारी, धर्मपरायण हैं। यहाँ राम को आठ हजार रानियों का स्वामी और दशरथ के तीन नहीं चार पत्नियों का उल्लेख है। कथा में शबरी का प्रसंग नहीं है। रावण का वध राम द्वारा नहीं पर लक्ष्मण द्वारा हुआ है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर विशल्या नामक कन्या के स्नान जल से उनके ठीक होने का वर्णन है। जैन रामायण में कुंभकरण, मेघनाथ, इन्द्रजीत का वध नहीं होता अपितु वे जैनदीक्षा धारण कर मुनि बनके तपस्या करते हैं। सीता का त्याग तो लोकापवाद के कारण हुआ परंतु वे धरती में नहीं समातीं अपितु अग्निकुण्ड में प्रवेश करती हैं। उनके सतीत्व के कारण अग्निकुण्ड जलकुण्ड में परिवर्तित हो जाता है। बाद में वे तपस्या करके स्त्री लिंग का छेदन करके सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र पद प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण के आठ पुत्र शत्रुघ्न, भरत, हनुमान, सुग्रीव आदि सभी जैन दीक्षा ग्रहण करते हैं और अंत में राम भी मुनि दीक्षा धारण करते हैं। रामके वन गमन के बाद दशरथ की मृत्यु नहीं होती अपितु वे भी दीक्षा धारण करते हैं। इस प्रकार अनेक कथाभेद होने के बाद भी पुरूषोत्तम राम जैन संस्कृति में वंदनीय और पूज्यनीय रहे हैं क्योंकि वे मोक्षगामी हैं।

राम की कथा को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करने की कला बहुत ही श्रेष्ठ है। लेखकने सभी पात्रों को इतने जीवित रूप में प्रस्तुत किया है कि पाठक का लगता है उन पात्रों के साथ ही जी रहा है। यथास्थान पर वातावरण का चित्रण कथोपकथन बड़े ही चोटदार हैं। कहीं–कहीं तो कथोपकथन सुक्तिवाक्य से लगते हैं। सचमुच लेखक का वर्णन कौशल इसमें सर्वत्र झलकता है। उपन्यास शैली के समस्त तत्त्वों का इसमें निर्वहण हुआ है।

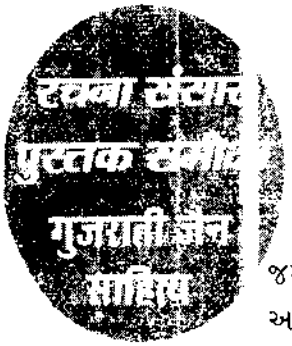

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનની ઓળખ લેખક અથવા તો વક્તા તરીકે આપવાનું મને જરાય યોગ્ય લાગતું નથી. હું તો એમ જ કહીશ કે ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન લેખક નથી અને વક્તા પણ નથી. તેઓ અભ્યાસુ છે અને ચિંતક છે. તત્ત્વને જાણવા માટે વિદ્યાર્થી જેવી જ જિજ્ઞાસા તેઓ દાખવે છે અને જાણેલા તત્ત્વનો જીવનમાં વિનિયોગ કઇ રીતે થઇ શકે તેનું ચિંતન તેઓ સતત કરતા રહે છે. પોતાના અભ્યાસ અને ચિંતનની વાત તેઓ લખે છે તેથી લોકો તેમને લેખક કહે છે અને જાહેર પ્રવચનો રૂપે દેશ-વિદેશમાં તેઓ એ જ વાતો વ્યક્ત કરે છે ત્યારે સૌ એમને વક્તા કહે છે. ડૉ. જૈન માટેનાં લેખક અને વક્તા તરીકેનાં વિશેષણો 'બાય પ્રોડક્ટ' છે.

લેખક થવા માટે વ્યક્તિએ ભાષાને માંજવી પડે. ઝાકઝમાળ પ્રગટાવવી પડે. ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન સહજ શૈલીમાં પોતાની વાત લખે છે. શૈલી કરતાં તત્ત્વનું મહત્ત્વ એમને મન વિશેષ છે. એ જ રીતે વક્તા થવા માટે પણ વ્યક્તિએ ઘણી સજગતા રાખવી પડે, પોતાનો પ્રભાવ પાડવા માટેની તરકીબો અજમાવવી પડે. ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન એ પળીજણમાં પડ્યા વગર પોતાના અભ્યાસ અને ચિંતનને વહેતાં મૂકે છે. અલબત્ત, તેઓ શિક્ષણકાર અને અધ્યાપક (આચાર્ય) હોવાથી ડિસીપ્લીન અને ટ્રાન્સફરન્સી તેમના વક્તવ્યમાં સહજ રીતે આવી જતાં હોવાથી તેઓ વક્તા તરીકે વિશેષ લોકાદર પામ્યા હોય તો ભલે પામ્યા.

'મુક્તિનો આનંદ'

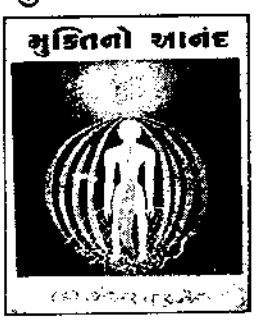

તેમનું પ્રથમ પુસ્તક છે. તેમાં આ મુજબનાં દસ પ્રકરણો છે : ૧. મુક્તિનો આનંદ, ૨. કામથી મોક્ષ, ૩.અહમ્‌થી ૐ સુધી ઊર્ધ્વગમન, ૪. દમનથી શમન, ૫. હું અને મારું સ્વરૂપ, ૬. સ્યાદ્વાદ સંશયનો નહીં નિશ્ચયનો પ્રતીક, ૭. ભક્તામર સ્તોત્રમાં ભક્તિ અને સાહિત્ય, ૮. આત્મપરિચયનાં દસ લક્ષણો, ૯. ભગવાન મહાવીર : વર્તમાન સંદર્ભ, ૧૦. સ્વાધ્યાય.

સ્પષ્ટ જોઇ શકાય છે કે આ દસેય પ્રકરણોમાં ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન ચિંતનની આંગળી પકડીને અધ્યાત્મની અગોચર દિશાઓમાં વિહરી રહ્યા છે. આ માટે એમને કોઇ ચોક્કસ ધર્મ કે સંપ્રદાયને વળગી રહેવાનું ન પોસાય તે સ્વાભાવિક છે. જૈન-

જૈનેતર તમામ પરંપરાઓનું અધ્યયન કરીને સત્યને પામવાની મથામણ તેઓ કરતા રહ્યા છે. આપણે તો તેમની મથામણમાં સામેલ જ થવાનું છે! તેમની ગતિ તળેટીથી ટોચ તરફની છે. કામથી મોક્ષ, અહમ્‌થી ૐ સુધી, દમનથી શમન વગેરે શીર્ષકો તેમના ઊર્ધ્વારોહણને પ્રગટ કરનારાં છે. 'કામથી મોક્ષ' પ્રકરણમાં પૃ. ૩૨ ઉપર તેઓ લખે છે કે-

'જો કામ વિકૃત થશે તો તે આપણને વ્યભિચારી બનાવી સંસારમાં આપણી અપકીર્તિ કરશે. આપણને 'કામી' તરીકે જાહેર તિરસ્કૃત કરશે. ને આ જ વિકૃત કામ નારીને નારાયણી નહિ પણ વારાંગના બનાવી દેશે. પરંતુ તે જ કામ જો સાધનાની આગમાં ને તપના તાપમાં ઓગળ્યો હશે અને વિશુદ્ધ થયો હશે તો તે નારીને પણ મીરાં બનાવી દેશે, વ્યક્તિને આનંદલોક કે બ્રહ્મલોકમાં પણ પ્રતિષ્ઠિત કરી દેશે* ભીષ્મની વજ્ર પ્રતિજ્ઞા સંસાર કદી ભૂલી શકશે? તેવી જ રીતે તીર્થંકરોની નિર્ગ્રંથ મુદ્રા પણ યુગો યુગો પર્યંત બ્રહ્મચર્યના તેજની પ્રેરણા દીધા કરશે..... '

એ જ રીતે માત્ર વાચન નહિ, વાચનની સાથે મનન ઉમેરાવું જોઇએ એમ તેઓ માને છે. 'સ્વાધ્યાય' પ્રકરણમાં પૃ. ૧૩૪ ઉપર તેમણે લખ્યું છે કે-

'સાધક વાંચેલા ગ્રંથોનું એકાંતમાં એકાગ્રચિત બની મનન કરે એ પણ સ્વાધ્યાયનો જ એક પ્રકાર છે, જેને યોગ અથવા ધ્યાન પણ કહી શકાય.'

લગભગ પચીસ વર્ષ પૂર્વે પ્રકાશિત આ પુસ્તકમાં વ્યક્ત થયેલું ચિંતન આજેય આપણને વાસી કે બંધિયાર નથી લાગતું, એમાં જ ડૉ. જૈનની 'ચિંતક' તરીકેની સફળતા પ્રતિબિંબિત થાય છે.

'જૈનારાધનાની વૈજ્ઞાનિકતા'

આમ તો તમામ ધર્મોના બીજ કોઇ ને કોઇ રીતે વિજ્ઞાનની ભૂમિ ઉપર જ ઉછેર પામ્યાં હોય છે. કાળક્રમે એની વૈજ્ઞાનિકતા વીસરાઇ જાય અને માત્ર શ્રદ્ધા કે અંધશ્રદ્ધા ટકી રહે એવું બનતું હોય છે. જૈન ધર્મના તમામ સિદ્ધાંતો વિજ્ઞાનઆધારિત છે. આ પુસ્તકમાં આપણને ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનનું અભ્યાસુ તરીકેનું પાસું જોવા મળે છે. પ્રારંભમાં જૈન ધર્મની પ્રાચીનતા, જૈન ધર્મની વિશિષ્ટતા વગેરેનું આલેખન છે. ત્યારબાદ જૈનધર્મમાં જે જે તપસ્યાઓ, આરાધનાઓ, પૂજા-પાઠ વગેરે ક્રિયાઓ કરવાનું કહેલું છે તેમાં રહેલી વૈજ્ઞાનિકતા તારવી બતાવી છે. સામાયિકની વાત હોય કે ઉપવાસની વાત હોય, પ્રક્ષાલની વાત હોય કે રાત્રિભોજન અને આહારવિહાર (ભક્ષ્યાભક્ષ્ય)ની વાત હોય- દરેક બાબતમાં વિજ્ઞાનનું સત્ય છે. તન અને મન બંને માટે આ બાબતો કઇ રીતે ઉપકારક છે અને આગળ જતાં સમગ્ર માનવજાત માટે - જીવમાત્ર માટે એ બધી બાબતો કેવી લાભદાયક છે તેનું રહસ્યદર્શન કરાવવામાં આવ્યું છે. કોઇપણ ક્રિયા કે આરાધનાનું મૂળ રહસ્ય જાણ્યા-સમજ્યાવગ માત્ર પરંપરા ખાતર તેનું પાલન કરવામાં આવે તો તે પૂર્ણ ફલદાયી નથી બનતી. એમાં રુચિ અને શ્રદ્ધા પણ દૃઢ નથી થતાં. આ પુસ્તક વાંચ્યા પછી દરેક આરાધના કંઇક વિશિષ્ટ ઉદ્દેશલક્ષી બનશે. આહાર-વિહાર અંગે જૈન દર્શનોએ જેટલું ચિંતન કર્યું છે તેટલું કદાચ અન્ય કોઇ ધર્મમાં જોવા મળતું નથી.

'તન સાધો - મન બાંધો'

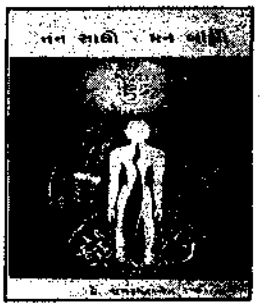

'તન સાધો - મન બાંધો' વિશે વાત કરીએ તે પહેલાં શ્રી ચિત્રભાનુના ઉદ્‌ગાર જોઈ લઈએ -

'ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન વિદ્વાન વક્તા-લેખક તો છે જ,એક સારા સાધક પણ છે. હું છેલ્લાં પંદર વર્ષથી તેમની સાધનાનો સાક્ષી છું.' અભ્યાસુ અને ચિંતક હોવા ઉપરાંત એક સાધક તરીકે ડૉ. જૈન આ પુસ્તકરૂપે આપણી સમક્ષ ઊભરી આવે છે. પુસ્તકના પ્રારંભમાં લેખક 'અંતર્યાત્રા' અંતર્ગત લખે છે :

'ધ્યાન એટલે પોતાના આત્માને ઓળખવાનો ઉપાય કે માર્ગ. ધ્યાન એટલે બાહ્યજગતથી અંતર્જગતમાં જોવાની પ્રક્રિયાનો પ્રારંભ. ધ્યાન એટલે સંકલ્પશક્તિની દૃઢતા. ધ્યાન એટલે જિતેન્દ્રિયતાના પથ પર અગ્રેસર થવાની યાત્રા. ધ્યાન એટલે ચિત્તશુદ્ધિ. ધ્યાનની જેટલી વ્યાખ્યાઓ કરો તેટલી ઓછી છે.'

અસંયમ અને અસંતોષમાંથી માનવીને સંતોષ અને સંયમ તરફ દોરી જતી યોગસાધના વિશે ભારતના મનીષીઓએ સદીઓથી વિવિધ ધ્યાન-યોગ પરંપરાઓ ચલાવી છે. એવી ભિન્ન ભિન્ન પરંપરાઓનું ગહન અવગહન કરીને ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન અત્યારે પ્રવચનોની સાથે સાથે દેશ-વિદેશમાં ણમોકાર મંત્ર ધ્યાન શિબિરો ચલાવી રહ્યા છે. સામાયિકને તેઓ યોગસાધનાનું પ્રાથમિક સ્વરૂપ સમજે છે. પ્રાચીન અનેક ગ્રંથોના આધાર આપીને તેઓ પોતાના વિચારની પ્રતિષ્ઠા કરે છે, એમાં તેમની બહુશ્રુતતા જણાય છે.

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન કશુંક વિશિષ્ટ કહેવા માટે જ કલમ કે જીભ ચલાવે છે. જ્યાં પોતાનો કોઈ સ્પષ્ટ વિચાર કે પોતાનું કોઈ મૌલિક ચિંતન વ્યક્ત ન કરવાનું હોય ત્યાં તેઓ મૌન રહેવાનું પસંદ કરે છે. તેમની પ્રજ્ઞાનો લાભ વધુ સમય સુધી, વ્યાપક સમાજને અવિરત મળતો રહે તેવી શુભેચ્છાઓ....

'ગણધરવાદ'

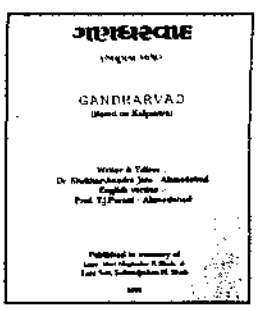

ગણધરવાદ ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન દ્વારા કલ્પસૂત્ર ગ્રંથના આધારે તૈયાર કરવામાં આવેલુ પુસ્તક છે. જેનું પ્રકાશન બોસ્ટનના શ્રી હરેન્દ્રભાઈ અને દીપ્તિબેન શાહ એ એમના માતા અને પિતાની સ્તૃતિમાં કરાવેલ છે. આ કૃતિનું ગુજરાતી ઉપરાંત અંગ્રેજીમાં પણ ભાષાંતર કરીને પ્રકાશિત કરવામાં આવેલ છે.

લેખક છેલ્લા અનેક વર્ષો થી અમેરિકામાં પર્યુષણ નિમિત્તે જતા હોય છે. શ્વેતામ્બર સંપ્રદાયમાં પર્યુષણના દિવસોમાં કલ્પસૂત્ર વાંચવાની અને સાંભળવાની વિશેષ મહત્તા છે. આવી જ રીતે ૧૯૯૭-૯૮ માં જ્યારે તેઓ અમેરિકાના બોસ્ટન સેન્ટરમાં પર્યુષણ પ્રસંગે પ્રવચનાર્થે ગયા હતા ત્યાં તેઓએ કલ્પસૂત્રની વાંચના અને પ્રવચન વખતે કલ્પસૂત્રનું ઉત્તમોત્તમ અંશ કે જેમાં ગૌતમ સ્વામિથી લઈ સર્વે ૧૧ ગણધરો ભ. મહાવીરના શિષ્ય બને છે તેને આલેખતું પુસ્તક 'ગણધરવાદ'ના નામે તેઓએ શ્રી હરેન્દ્રભાઈ શાહ / દીપ્તિબેન શાહના આગ્રહથી તૈયાર કરેલ. પુસ્તક માત્ર ૨૪ પાનાનું છે પણ તેમાં તેઓએ અગ્યારે અગ્યાર બ્રાહ્મણ, વિદ્વાનોં કે જેઓ પછી ભ. મહાવીરના ૧૧ પ્રમુખ ગણધર થયા તેમની અને ભ. મહાવીર વચ્ચે થયેલ પ્રારંભિક ચર્ચાનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યુ છે. જ્યારે ગૌતમ ભ. મહાવીરની સામે તેમને પરાસ્ત કરવા નીકળે છે પણ

મહાવીરને સમોશરણમાં જુએ છે અને એમના મનને મુંઝવતા પ્રશ્નો સ્વયં ભ. મહાવીર કહે છે અને મુંઝવતા પ્રશ્નનો સાચો જવાબ આપે છે અને તેમની શંકા દુર થાય છે અને તેઓ ભ. મહાવીરનું શિષ્યત્વ સ્વિકારે છે. આવી જ રીતે અન્ય દસ વિદ્વાનોની શંકાઓનું પણ સમાધાન થાય છે. વાસ્તવમાં આ ૧૧ પ્રશ્નો સંપૂર્ણ જૈન દર્શન નો નિચોડ છે. જેમાં સંપૂર્ણ આગમનો સમાવેશ થયો છે. ૨૪ પાનામાં આવડુ મોટુ સિદ્ધાંત સમાવવું તે ગાગરમાં સાગર ભરવા જેવું છે.

જૈનધર્મની ક્ષિતિજો

'જૈનધર્મની ક્ષિતિજો' તેમનો ચોથો ગુજરાતી નિબંધ સંગ્રહ છે પુસ્તકનું પ્રકાશન 'શ્રી રત્નવાટિકા લોગસ્સ ચંદ્રોદય તીર્થધામ' દ્વારા કરવામાં આવેલ છે. આ પુસ્તકમાં કુલ ૧૭ નિબંધો છે. આ પુસ્તકના પ્રેરણાદાતા હતા સ્વ. આચાર્ય શ્રી વિજયચંદ્રોદયસૂરીજી મહારાજ, અને પુસ્તકમાં આશીર્વાદના બે શબ્દો તેમના જ દ્વારા લખાયા છે. આ પુસ્તકમાં પૂ. આચાર્ય યશોવિજયજીના ૪૦૦માં જન્મ વર્ષના ઉત્સવ પ્રસંગે લખેલા તેમના જીવન અને રચનાને પ્રસ્તુત કરતા બે લેખો છે તો કલિકાલ સર્વજ્ઞ હેમચંદ્રાચાર્યજીના જીવન-રચનાને પ્રસ્તુત કરવામાં આવેલ બે નિબંધો છે. અન્ય નિબંધોમાં ભક્તામર અંગે બે મહત્ત્વપૂર્ણ નિબંધો છે જેમાં સ્તોત્રનું સાહિત્યની દૃષ્ટિએ અને પ્રતીકની દૃષ્ટિએ મૂલ્યાંકન કરવામાં આવેલ છે. લેખકે જૈનધર્મના કેટલાક વિશિષ્ટ સિદ્ધાંતોને ધ્યાનમાં રાખીને તેની વિવેચના કરતા લેખોમાં જૈનધર્મની વિશેષતા, તત્ત્વમીમાંસા, વિધિ-વિધાન અને બ્રહ્માંડ રચના જેવા લેખો પ્રસ્તુત કર્યા છે. ધર્મ માત્ર મંદિરોમાં કરવાની વસ્તુ નથી પરંતુ તેનો વ્યવહારિક ઉપયોગ થાય અને તે માનવતાના વિકાસનું સાધન બને તેની સાથે આપણે કેમ જીવવું જોઈએ એવા ત્રણ નિબંધો અત્યંત માર્મિક અને યુગાનુરૂપ છે. 'જીવઃ જીવસ્ય ભોજનમ્' નિબંધમાં લેખકે સિદ્ધ કર્યું છે કે જીવઃ જીવસ્ય ભોજનમ્નો મૂળ ભાવ આત્મામાં સ્થિર થવાનો છે, અને જૈન દર્શનના મહાન સિદ્ધાંત સંથારાને 'મૃત્યુ મહોત્સવ'ના નામે પ્રસ્તુત આલેખમાં કરવામાં આવેલ છે અને અંતમાં લેખકે ભગવાન મહાવીર સ્વામી જો વર્તમાનમાં હોય તો તેઓ વિશ્વને કઈ નજરે જોવે તેનું આલેખન કરવામાં આવેલ છે.

નિબંધો લલિત શૈલીમાં અને સિદ્ધાંત, ભૂગોલ, ક્રિયા, જીવનમાં ઉપયોગને વ્યક્ત કરી મુક્તિની યાત્રા તરફનો માર્ગ ચીંધે છે.

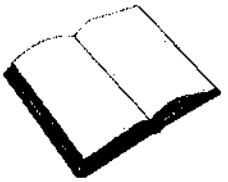

स्मृतियों के वातायन से

खंड : 3

आलेख

हिन्दी

अंग्रेजी

गुजराती

पृष्ठ 219 से 534

1

क्लोनिंग तथा कर्म-सिद्धान्त

(डॉ.) अनिलकुमार जैन

कुछ वर्षों से 'क्लोनिंग' एक बहुचर्चित विषय रहा है। खासतौर पर जब से वैज्ञानिकों ने एक भेड़ का क्लोन तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है तब से नाना प्रकार की अटकलें लगाई जा रही हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने यह कहकर कि मानव का क्लोन भी दो वर्षों के अन्दर तैयार कर लिया जायेगा, इस विषय की ओर आम लोगों का ध्यान भी आकर्षित कर दिया है। कई वैज्ञानिक तथा अनेक बुद्धिजीवी इस विवाद में उलझे हुए हैं कि क्या मानव का क्लोन भी तैयार किया जा सकता है? क्या 'मानव–क्लोन' तैयार करना एक अनैतिक कृत्य नहीं होगा? आजकल इन्टरनेट पर भी इसके समर्थन और विरोध में मत जुटाये जा रहे हैं। कई विकसित देश भी इस विवाद में कूद पड़े हैं।

क्लोनिंग ने वैज्ञानिकों तथा बुद्धिजीवियों को तो प्रभावित किया ही है, साथ ही दार्शनिकों एवं धार्मिक नेताओं को भी चक्कर में डाल दिया है। जो प्रचलित धार्मिक धारणायें हैं उनके लिए भी 'क्लोनिंग' एक चुनौती भरा विषय बन गया है। इसलिए 'क्लोनिंग' को धार्मिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करना अपेक्षित हो गया है। इस चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले हमें 'क्लोनिंग' तथा उसकी तकनीक के बारे में जानना होगा।

क्लोनिंग क्या है?

किसी जीव विशेष के जैनेटिकल प्रतिरूप पैदा होना 'क्लोनिंग' कहलाता है। 'क्लोन' उस जीव विशेष का मात्र नवजात शिशु ही नहीं होता, बल्कि यह उस जीव का एक प्रकार से कार्बन कॉपी होता है। जन्म की सामान्य प्रक्रिया में भ्रूण का निर्माण नर के शुक्राणु (Spem Cell) तथा मादा के अण्डाणु (Egg Cell) के संगठन (Fussion) से होता है तथा इस भ्रूण की कोशिका (cell) के केन्द्रक (Nucleus) में गुणसूत्र (Chrprrpspme) पाये जाते हैं। उनमें से कुछ गुणसूत्र नर के तथा कुछ गुणसूत्र मादा के होते हैं। सामान्य जन्म की यह प्रक्रिया लैंगिक (Sexual) प्रजनन कहलाती हैं। क्लोनिंग की प्रक्रिया में भ्रूण का निर्माण कुछ अलग ढंग से कराया जाता है। (इसका हम आगे वर्णन करेंगे) तथा इस भ्रूण की कोशिका के केन्द्रक में सारे के सारे गुणसूत्र किसी एक (नर या मादा) के होते हैं। जिस जीव का 'क्लोन' तैयार करना हो, उसी जीव के सारे के सारे गुणसूत्र क्लोन की कोशिका के केन्द्रक में भी होते हैं। इस प्रकार क्लोन में

आनुवंशिकी के वे सारे गुण मौजूद होते हैं जो उसके डोनर पैरेन्ट (Donor Parent) नर या मादा के होते हैं। क्लोनिंग की प्रक्रिया वस्तुतः प्रजनन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नर या मादा किसी एक की कोशिका के केन्द्र से ही जीव पैदा होता है। इस प्रकार पैदा हुए जीव या जीवों का समूह ही 'क्लोन' कहलाता है तथा वह प्रक्रिया जिससे 'क्लोन' तैयार होते हैं, 'क्लोनिंग' कहलाती है।

पशुओं में क्लोनिंग

पशुओं में क्लोनिंग वनस्पतियों (पौधों) में क्लोनिंग के मुकाबले एक क्लिष्ट प्रक्रिया है क्योंकि पौधों की कोशिकाओं का ढांचा अपेक्षाकृत सरल होता है। कई नवजात पौधों की कोशिकाओं में यह गुण होता है कि वे द्विगुणन द्वारा अपनी वंशवृद्धि कर सकती हैं। इस विशेष गुण के कारण ही कई वनस्पतियों में क्लोनिंग की प्रक्रिया बहुत प्राचीन है। कलम द्वारा पौधे लगाना इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है। कई एक कोशीय सूक्ष्म जीव यही प्रक्रिया अपनाते हैं।

पशुओं के क्लोन तैयार करने की कोशिशें भी काफी समय से होती रही हैं। वैज्ञानिकों ने पचास के दशक में मेढ़कों के क्लोन बनाने के कई प्रयोग किये। सन् 1952 में इस क्षेत्र में आंशिक सफलता भी प्राप्त कर ली। लेकिन पूरी तरह से साठ के दशक में ही सफल हो पाये तथा मेढ़क के तीस क्लोन तैयार कर लिये।

स्तनधारी पशुओं में क्लोनगिं और अधिक कठिन प्रक्रिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन पशुओं के अण्डाणु (Egg Cell) बहुत छोटे तथा अधिक भंगुर होते हैं। इस प्रक्रिया में केन्द्रक के प्रत्यारोपण के लिए एक खास सूक्ष्म शल्य चिकित्सा (Micro-Surgery) करनी पड़ती है।[2] सत्तर के दशक में खरगोशों तथा चूहों के क्लोन तैयार करने के कई प्रयोग किये गये तथा अन्ततः वैज्ञनिक सफल भी रहे। नब्बे के दशक में भेड़ के क्लोन तैयार करने के प्रयोग किये गये। लेकिन सबसे अधिक तहलका तब मचा जब एडिनबर्ग (स्कॉटलैण्ड) में स्थित 'रोसलिन इन्स्टीट्यूट' में वैज्ञानिक डॉ. इआन विलमट ने फरवरी सन् 1996 में 'डॉली' के रूप में एक पूर्ण स्वस्थ 'भेड़ का क्लोन' पैदा कर दिया। इसे एक महान उपलब्धि के रूप में लिया गया क्योंकि इससे मानव क्लोन तैयार करने का रास्ता और अधिक स्पष्ट हो गया।

क्लोन बनाने की तकनीक

क्लोनिंग की चर्चा आगे बढ़ाने से पहले हमें कोशिकाओं तथा स्तनधारियों में सामान्य प्रजनन की प्रक्रिया को थोड़ा समझना होगा। प्रत्येक पशु एवं वनस्पति में अनेक कोशिकायें पायी जाती हैं। मनुष्य के शरीर में इन कोशिकाओं की कुल संख्या सौ खरब (10^{13}) तक हो सकती है। प्रत्येक कोशिका अपने आप में एक अलग अस्तित्व वाला पूर्ण जीव होता है।[3] यह वैसे ही एक अलग जीव है जैसे कि आप और हम। कोशिका के केन्द्र में एक नाभिक होता है जिसे केन्द्रक भी कहते हैं। केन्द्रक के अन्दर उस जीव के गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) होते हैं। मनुष्य की कोशिका के गुणसूत्रों की संख्या 46 होती है। इन गुणसूत्रों में ही अनुवांशिकी के सभी गुण मौजूद होते हैं। क्रोमोसोम्स (गुणसूत्रों) की रचना डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. नामक रसायनों से निर्मित होती हैं। इन गुणसूत्रों पर ही जीन्स स्थित होते हैं। कोशिका के केन्द्रक के चारों ओर एक जीव द्रव होता है जिसे प्रोटोप्लाज्म कहते हैं।

नर के शुक्राणु तथा मादा के अण्डाणु भी परिपक्व (Matured) कोशिकायें होती हैं यानी कि इनमें द्विगुणन द्वारा वृद्धि नहीं होती है। स्तनधारी पशुओं में लैंगिक प्रजनन होता है। इस प्रक्रिया में शुक्राणु, अण्डाणु को फलित या निषेचित कर देता है तथा एक नयी कोशिका का निर्माण होता है। इस नयी कोशिका में पुनः द्विगुणन करने

की क्षमता होती हैं जिससे वह भ्रूण में परिवर्तित हो जाता है। इस नयी निषेचित या फलित कोशिका के केन्द्र में गुणसूत्रों या क्रोमोसोम्स की संख्या तो 46 ही होती है, लेकिन इसमें आधे गुणसूत्र नर के तथा आधे मादा के होते हैं। इसके विपरीत क्लोनिंग द्वारा उत्पन्न नयी कोशिका में सारे के सारे गुणसूत्र किसी एक के ही होते हैं।

स्तनधारी पशुओं के क्लोन पैदा करने की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से है। इसके लिए सर्वप्रथम मादा के एक स्वस्थ अण्डाणु को काम में लिया जाता है। इस अण्डाणु में से विशेष तकनीक द्वारा केन्द्रक को अलग कर दिया जाता है तथा इस केन्द्रक का या नाभिक विहीन कोशिका को एक सुरक्षित स्थान पर रख लिया जाता है। अब हमें जिस जीव का क्लोन तैयार करना है। (जिसे डोनर पेरेन्ट कहते हैं) उसकी त्वचा (Skin) में से कोशिका अलग कर ली जाती है। फिर इस कोशिका के केन्द्रक (नाभिक) को बड़ी सावधानी पूर्वक अलग कर लिया जाता है। इस केन्द्र को पूर्व में सुरक्षित रखी केन्द्रक विहीन कोशिका में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इस प्रकार एक नयी कोशिका पैदा हो जाती है जिसका केन्द्रक डोनर–पेरेन्ट की कोशिका का केन्द्रक होता है। इस प्रकार इस नयी कोशिका में गुणसूत्र वे ही होते हैं जो डोनर–पेरेन्ट में होते हैं। यह नयी कोशिका द्विगुणन द्वारा भ्रूण में परिवर्तित हो जाती है। इस भ्रूण को किसी भी मादा के गर्भाशय में स्थित कर दिया जाता है जहां वह सामान्य रूप से विकसित होने लगता है। इस प्रकार जो नवजात पैदा होता है उसमें गुणसूत्र वे ही होते हैं जो डोनर–पेरेन्ट के होते हैं, अतः इसकी शक्ल सूरत–हू–ब–हू डोनर पेरेन्ट जैसी ही होती हैं, यानि कि वह डोनर पेरेन्ट की कॉपी होता है।

इस प्रकार हम जिसकी प्रतिलिपि कॉपी (क्लोन) तैयार करना चाहते हैं उसका केन्द्रक मादा के अण्डाणु में प्रतिस्थापित करना होगा। यदि हम नर क्लोन तैयार करना चाहते हैं तो नर की कोशिका का केन्द्रक और मादा का क्लोन चाहते हैं तो मादा की कोशिका का केन्द्रक, किसी मादा के केन्द्रक–विहीन अण्डाणु (कोशिका) में प्रतिस्थापित करना होगा।

क्लोनिंग से उठे प्रश्न

'डॉली' के रूप में 'भेड़ का क्लोन' उपरोक्त विधि (तकनीक) द्वारा ही पैदा किया गया। लेकिन इस क्लोनिंग के सफल परीक्षण से कई दार्शनिक एवं धार्मिक कठिनाइयां सामने आई हैं जिनका स्पष्टीकरण अपेक्षित है–

(1) चूँकि क्लोन में आनुवंशिकी के हू–ब–हू वे सारे गुण होते हैं जो कि डोनर–पेरेन्ट के हैं, तो क्या क्लोन डोनर का ही एक अंश है?

(2) चूँकि क्लोनिंग द्वारा जीव पैदा होने की प्रक्रिया में नर तथा मादा दोनों का होना आवश्यक नहीं रह गया है, अतः बिना नर के भी स्तनधारी पैदा किया जा सकता है। तो क्या जैनधर्म में वर्णित गर्भजन्म की अवधारणा गलत है?

(3) क्या क्लोन भेड़ (डॉली) सम्मूर्च्छन जीव है?

(4) क्या प्रयोगशाला में भी मनुष्य पैदा किया जा सकेगा?

(5) जैन–धर्मानुसार जीव के शरीर की रचना आंगोपांग नाम कर्म के उदय से होती है, लेकिन क्लोनिंग की प्रक्रिया में शरीर की रचना हम मनचाहे ढंग से बना सकते हैं। हम जिस किसी जीव की शक्ल तैयार करना चाहें, वह कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में जैनधर्म में वर्णित नामकर्म की स्थिति क्या होगी?

क्लोनिंग तथा कर्म–सिद्धान्त

उपरोक्त प्रश्नों का हल प्राप्त करने के लिए हमें विषय का और अधिक विश्लेषण करना होगा तथा कर्म–

सिद्धान्त को भी समझना होगा।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि क्लोन किसी भी जीव का या डोनर–पेरेन्ट का अंश नहीं है। क्लोन का अलग अस्तित्व है और डोनर–पेरेन्ट का अलग। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि हमारे शरीर में स्थित प्रत्येक कोशिका भी अपने आप में एक परिपूर्ण शरीरयुक्त स्वतन्त्र जीव है तथा हमसे प्रत्येक दृष्टि में भिन्न है। उसका वैसा ही अलग अस्तित्व है जैसाकि आपका और हमारा। अतः जब प्रत्येक कोशिका का अलग अस्तित्व है तो उससे विकसित भ्रूण तथा फिर भ्रूण से विकसित क्लोन डोनर–पेरेन्ट का अंश कैसे हो सकता है? अतः क्लोन अपने आप में डोनर–पेरेन्ट से बिल्कुल अलग अस्तित्व वाला जीव है। उसका आयुष्य, उसकी भावनायें तथा उसका सुख–दुख भी अपने डोनर–पेरेन्ट से बिल्कुल भिन्न होगा। यह बात डॉली (जो कि भेड़ का क्लोन है) के गर्भधारण करने तथा फिर उसके माता बनने से और अधिक स्पष्ट हो गई है।

अभी मनुष्य का क्लोन तैयार नहीं किया जा सका है। लेकिन यहां हम यह मानकर चलें कि मनुष्य का क्लोन भी तैयार किया जा सकता है। मानों कि मनुष्य के दो क्लोन तैयार किये गये। दोनों की शक्ल–सूरत एक जैसी ही है। यदि एक क्लोन को दूसरे की अपेक्षा ज्यादा अच्छा खाने पीने को मिले तथा अच्छा अनुकूल वातावरण मिले तो निश्चित रूप से बड़े होने पर दोनों के व्यक्तित्व में अन्तर आ जायेगा। दोनों का विकास अलग–अलग होगा ही। और यदि यह मानें कि दोनों को समान वातावरण मिले, दोनों को विकास के भी समान अवसर मिलें तो भी दोनों का व्यक्तित्व अलग–अलग ही होगा, मात्र शक्ल–सूरत ही एक जैसी होगी।

आज भी हम देखते हैं कि दो जुड़वा भाई शक्ल–सूरत में एक से होते हैं, दोनों में अन्तर कर पाना मुश्किल होता है, फिर भी उनमें से एक अधिक पढ़–लिख जाता है तथा दूसरा कम पढ़ा–लिखा रह जाता है। एक सर्विस करने लगता है तथा दूसरा निजी व्यवसाय। आगे चलकर उनकी जिम्मेदारियां भी अलग–अलग हो जाती हैं जिससे उनके व्यवहार में भी काफी अन्तर हो जाता है। इस प्रकार दो एक सी शक्ल वाले भाईयों का व्यक्तित्व भी अलग–अलग बन जाता है। इसी तरह दो एक जैसे क्लोन या क्लोन तथा डोनर–पेरेन्ट के बीच भी अन्तर रहेगा।

दूसरा प्रश्न क्लोन के जन्म के प्रकार को लेकर है। यह सही है कि बिना नर के सहयोग के भी जीव पैदा किया जा सकता है। मात्र मादा द्वारा भी जीव पैदा हो सकता है, लेकिन इस स्थिति में पैदा होने वाला क्लोन (जीव) मादा ही होगा, नर नहीं। इस प्रकार जो भी डोनर–पेरेन्ट होगा वही क्लोन भी होगा। यदि डोनर–पेरेन्ट नर है तो क्लोन भी नर होगा और यदि डोनर पेरेन्ट मादा है तो क्लोन भी मादा ही होगा। स्तनधारियों के क्लोन बनाने की प्रक्रिया में यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्लोन के भ्रूण को मादा के गर्भाशय में रखा जाता है। तत्पश्चात् गर्भाशय के अन्दर ही बच्चे का विकास होता है तथा गर्भकाल पूरा होने के बाद ही क्लोन बच्चा पैदा होता है। यहां गर्भ की प्रक्रिया को छोड़ा नहीं गया है। अतः जैनधर्म में जन्म के आधार पर गर्भ आदि जो भेद किये गये हैं, वहां कोई विसंगति नहीं आती है।

जहां तक स्तनधारी जीवों में बिना नर के क्लोन तैयार होने का प्रश्न है, यहां एक बात यह अवश्य ध्यान रखनी चाहिए कि मादा के अण्डाणु मात्र से ही जीव–क्लोन पैदा नहीं होता है, बल्कि इस अण्डाणु के केन्द्रक को दूसरी (किसी अन्य) कोशिका के केन्द्रक द्वारा विस्थापित कराया जाता है तभी भ्रूण पैदा होता है। अतः भ्रूण बनाने के लिए दो कोशिकाओं का होना आवश्यक है जिनमें से एक मादा का अण्डाणु तथा दूसरी कोई अन्य कोशिका होनी चाहिए। इसप्रकार दो अलग–अलग कोशिकाओं के सहयोग से ही क्लोन बनना संभव हो सका है।

अतः हमें गर्भ जन्म की प्रक्रिया की जैन मान्यता में इतना जोड़ लेना होगा कि गर्भ जन्म वाले जीव मादा के गर्भ से ही पैदा होंगे लेकिन वे बिना नर के सहयोग के भी पैदा हो सकते हैं। इस स्थिति में वे मादा ही होंगे लेकिन उनके पैदा होने में भी दो अलग–अलग कोशिकाओं– एक अण्डाणु तथा दूसरी अन्य, का होना आवश्यक है।

यहां यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भेड के क्लोन 'डॉली' का जन्म भी इसी प्रक्रिया से हुआ था। अतः उसका जन्म भी गर्भ–जन्म ही था। कुछ लोग डॉली को सम्मूर्च्छन जीवों की श्रेणी में रखते हैं, लेकिन वह बिल्कुल गलत है। डॉली भी अब एक मां बन चुकी है, वह भी सामान्य भेड़ों की तरह। यदि डॉली को सम्मूर्च्छन माना गया तो एक प्रश्न और पैदा हो जायेगा कि क्या सम्मूर्च्छन जीवों से भी गर्भजन्म होना संभव है?

यह मानना सही नहीं है कि मनुष्य को प्रयोगशाला में भी पैदा किया जा सकता है। अभी तक प्रयोगशाला में स्तनधारी जीव पैदा नहीं किया जा सका है। हां, टेस्ट–ट्यूब में भ्रूण तो तैयार किया जा सका है, लेकिन उसका विकास मादा के उदर (गर्भाशय)में ही संभव हो सका है, क्योंकि उसके विकास के लिए आवश्यक ताप, दाब तथा खुराक मादा द्वारा ही उपलब्ध कराई जा सकती है।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि भेड़ के क्लोन (डॉली) को भी टेस्ट–ट्यूब बेबी जैसा ही मानना चाहिए। चूंकि क्लोन के भ्रूण को प्रयोगशाला में (टेस्ट–ट्यूब) में तैयार किया गया, अतः इसे टेस्ट–ट्यूब बेबी माना जा सकता है।

अब एक अन्तिम प्रश्न यह रहता है कि जैनधर्म के हिसाब से जीव के शरीर की रचना उसके नामकर्म के कारण होती है। कोई जीव कैसी शक्ल–सूरत प्राप्त करेगा, इसका निर्धारण इसी नामकर्म से होता है। लेकिन यहां तो क्लोन के शरीर की रचना अब अपने ही हाथों में आ गई है। हम जैसी शक्ल–सूरत बनाना चाहें, बना सकते हैं। ऐसी स्थिति में नामकर्म की अवधारणा तो अर्थहीन ही हो गई। लेकिन यह मान्यता उचित नहीं है। वस्तु–स्थिति क्या है, यह समझने के लिए हमें कर्म–सिद्धान्त पर थोड़ा ध्यान देना होगा।

सबसे पहले तो हमें यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि प्रत्येक घटना मात्र कर्म से ही घटित नहीं होती है।[4] कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं। यदि हम कर्मों के अधीन ही सब कुछ घटित होना मान लेंगे तो यह वैसी ही व्यवस्था हो जायेगी जैसी कि ईश्वरवादियों की है कि, जो कुछ होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है या फिर उन नियतिवादियों की जैसी स्थिति हो जाएगी कि सब कुछ नियति के अधीन है, हम उसमें कुछ भी फेरफार नहीं कर सकते हैं। यदि कर्म ही सब कुछ हो जाये तो उनको नष्ट करने के लिए न तो पुरुषार्थ का ही महत्त्व रह जायेगा और न ही मोक्ष सम्भव होगा। क्योंकि जैसे कर्म होंगे वैसा उनका उदय होगा और उस उदय के अनुरूप ही हम कार्य करेंगे तथा नये कर्म का बन्ध करेंगे। इससे तो पुरुषार्थ तथा मोक्ष की बात गलत सिद्ध हो जायेगी। अतः यह तय हुआ कि कर्म ही सब कुछ नहीं हैं।

कर्म एक निरंकुश सत्ता नहीं है। कर्म पर भी अंकुश है।[5] कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। भगवान महावीर ने कहा कि किया हुआ कर्म भुगतना पड़ेगा। यह सामान्य नियम है, लेकिन इसमें भी कुछ अपवाद हैं। कर्मों में उदारीणा उत्कर्षण, अपकर्षण तथा संक्रमण सम्भव है जिसके कारण कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि पुरुषार्थ द्वारा कर्मों की निर्जरा समय से पहले भी की जा सकती है। कर्मों की काल मर्यादा और तीव्रता को बढ़ाया और घटाया भी जा सकता है तथा कर्म फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिए दबाया जा सकता है तथा काल विशेष के लिए उन्हें फल देने में अक्षम भी किया जा सकता है, इसे उपशम कहते हैं।

जैन आचार्यों के अनुसार 'संक्रमण का सिद्धान्त' जीन (Gene) को बदलने का सिद्धांत है।[6] एक विशेष

बात और ध्यान देने योग्य है कि कर्मों का विपाक (फल) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के अनुसार होता है। यह विपाक निमित्त के आश्रित है तथा उसीके अनुरूप यह फल देता है। यदि दो व्यक्तियों को एक जैसा असाता वेदनीय कर्म का उदय हो और उनमें से एक धार्मिक प्रवचन या भजन सुनने में मस्त हो रहा है तथा दूसरा अकेला बिना किसी काम के एक कमरे में बैठा है तो दूसरे व्यक्ति को पहले के मुकाबले असाता वेदनीय कर्म अधिक सतायेगा।

इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तित्व के निर्माण में कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं बल्कि आनुवंशिकता, परिस्थिति, वातावरण, भौगोलिकता, पर्यावरण ये सब मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार पर असर डालते हैं। अतः शक्ल–सूरत के निर्माण में मात्र नामकर्म ही सबकुछ नहीं होते हैं। मनुष्य के रूप–रंग पर देश–काल का प्रभाव भी आसानी से देखा जा सकता है। एक ही माता से दो बच्चे जन्म लेते हैं– एक ठण्डे देश में तथा दूसरा गर्म देश में। ठण्डे देश में जन्म लेने वाला बच्चा अपेक्षाकृत गोरा हो सकता है। इतना ही नहीं, यदि कोई व्यक्ति ठण्डे देश में रहना प्रारम्भ कर दे तो उसके रंग में भी परिवर्तन आ सकता है। विज्ञान के अनुसार जीन्स (Genes) तथा रासायनिक परिवर्तन भी व्यक्तित्व के निर्माण में अपना प्रभाव डालते हैं।[5]

आयु कर्म भी एक कर्म है, लेकिन बाह्य निमित्त, जैसे– जहर आदि के सेवन से आयु को कम कया जा सकता है।[6] इसी प्रकार यदि गुण–सूत्रों (क्रोमोसोम्स) या जीन्स में परिवर्तन कर दिया जाये तो उससे शक्ल–सूरत में परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार अकेले नाम–कर्म ही यह तय नहीं करता कि किसी जीव (या मनुष्य) की शक्ल–सूरत कैसी होगी, बल्कि बाह्य परिस्थितियां भी असर डालती हैं। इसमें परिवर्तन करके यदि हम एक सी शक्ल–सूरत वाले जीव पैदा करते हैं तो इसमें कर्म सिद्धांत में कोई विसंगति नहीं आती है, क्योंकि कर्मों में संक्रमण आदि संभव है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कर्म सिद्धांत के अनुसार एक ही प्रकार की शक्ल–सूरत वाले जीव पैदा कर देना या क्लोनिंग के दौरान कोशिका के केन्द्रक (Nucleus) को परिवर्तित कर देना संभव है। अतः क्लोनिंग की प्रक्रिया कर्म–सिद्धान्त के लिए कोई चुनौती नहीं है। कर्म–सिद्धान्त को व्यवस्थित तरीके से समझ लेने पर इस प्रक्रिया की व्याख्या कर्म–सिद्धांत के आधार पर आसानी से की जा सकती है।

संदर्भ

1. 'From cell to cloning' by P.C. Joshi, Science Reporter, Feb, 1998
2. 'Cloning' by Damen R. Obrzowy, The New Book of Popular Science (Vol.-3), Grolier Inc. (1989)
3. 'The Cell' by John Pfeiffer (2nd Edition, 1998), Lifetime Books Inc., Hongkong.
4. 'जैनधर्म और दर्शन' लेखक– मुनि प्रमाण सागर
5. 'कर्मवाद', लेखक– आचार्य महाप्रज्ञ
6. 'क्या अकाल मृत्यु संभव है?', लेखक– डॉ. अनिल कुमार जैन, 'तीर्थंकर', इन्दौर, जुलाई 1994.

भारतसरकार के पूर्व गृहराज्यमंत्रीश्री हरिन पाठक

म.प्र. के मुख्यमंत्रीश्री विद्याचरणजी शुक्ल के साथ

तीर्थंकरवाणी का विमोचन करते हुए म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री विद्याचरणजी शुक्ल संग श्रीसुनील जैन-श्री सारंगजी

म.प्र. के विपक्ष नेता श्री सारंगजी के साथ

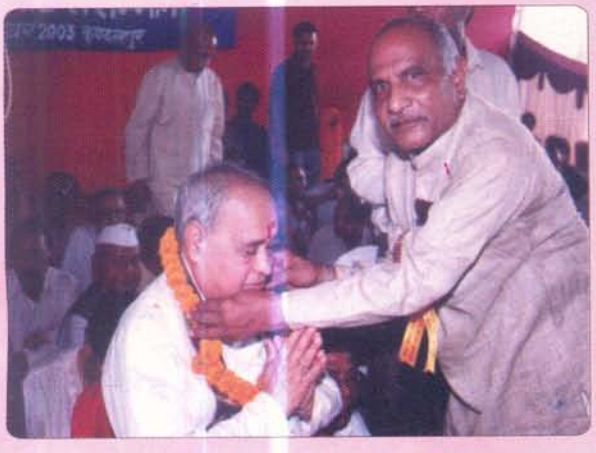

म.म. राज्यपाल श्री रामाजोईस (बिहार)

गुज. के भू.पू. शिक्षामंत्री स्व.श्री प्रबोधभाई रावल

महामहिम राज्यपाल श्री कैलाशपतिजी मिश्र

महामहिम राज्यपाल श्री नवलकिशोरजी शर्मा

गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का
समस्त जैन समाज के मंच से स्वागत करते हुए

विधायक श्रीमती मायाबेन कोडनानी
एवं नर्मदा विकास मंत्री श्री जयनारायण व्यास के साथ

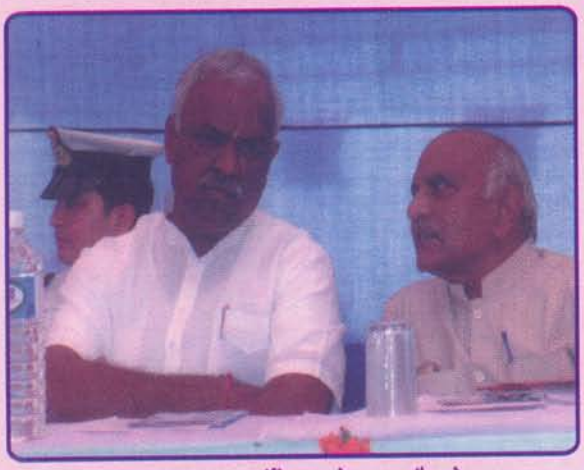

अहमदाबाद म्यु. कार्पोरेशन के महापौर के साथ

म.प्र. के मंत्रीश्री जयंत मलैय्या के साथ

कुछ स्मरणीय प्रसंग

लेस्टर (लंदन) की प्रतिष्ठा के समय
अध्यक्ष श्री नटुभाई एवं श्री मनुभाई सेठ के साथ

महासभा अध्यक्ष निर्मल सेठी, श्री वीरेन्द्र हेगड़े
एवं महानुभावों के साथ लेस्टर (लंदन) में

राजर्षि डॉ. वीरेन्द्र हेगड़े, पं. श्री नीरजजी,
प्रतिष्ठाचार्य श्री जयनिशांत के साथ

जैनरत्न समारोह में श्री दीपचंदगार्डी
का अभिनंदन करते हुए

ग.ज्ञानमती पुरस्कार की बेला में स्वागत करती हुई
बहिन पुष्पा। पार्श्व में रतिप्रभा एवं रवीन्द्रकुमारजी

गुरूदेव चित्रभानुजी के साथ प्रवचनमंच पर

जैना के प्रेसि. श्री किरीटभाई दफ्तरी के साथ
(जैना कन्वेन्शन सानफ्रान्सिस्को)

श्री अनूप वोरा (पूर्व प्रेसि. जैना) को
पुस्तक अर्पण करते हुए

श्री सुमतिभाई शाह (प्रेसि. जैन सेन्टर केलिफोर्निया)
के साथ बुद्ध मंदिर में

द्वितीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी में
ग्रंथ विमोचन करते हुए

श्री प्रद्युम्न एवं लक्ष्मी झवेरी के साथ पूरा परिवार

साक्षात्कार करती हुई डॉ. ज्योति जैन

प्रसिद्ध लेखक डॉ. रामदरश मिश्र द्वारा कहानीसंग्रह
टूटते संकल्प' का विमोचन

हिन्दी समाज भावनगर में
कवि सम्मेलन का संचालन

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एज्यूकेशन (दिल्ली) में
डायरेक्टर के साथ

जैनमित्र के भीष्म पितामह मूलचंदजी कापड़िया
एवं डॉ. पी.सी. जैन के साथ

पद्मश्री कुमारपाल देसाई, डॉ. चंद्रकांत महेता
एवं डॉ. रघुनाथ भट्ट के साथ भोजन के क्षण

पू. ज्ञानमती माताजी को प्रतीक चिन्ह
भेंट करते हुए विद्वत् महासंघ के पदाधिकारी

प्राप्त पुरस्कारों की झलकियाँ

'श्रुत संवर्धन पुरस्कार' प्रदान करते हुए
साहू रमेशचंदजी, सान्निध्य पू. उपा. ज्ञानसागरजी

'अहिंसा इन्टरनेशनल' का म.म. पूर्व राज्यपाल (हरि.)
श्री भाईमहावीर से पुरस्कार ग्रहण करते हुए,
पार्श्व में महामंत्रीश्री सतीष जैन एवं अन्य महानुभाव

ग.आ.ज्ञानमती सर्वोच्च पुरस्कार प्रदान करते हुए भारत सरकार के गृहराज्यमंत्री श्री जायस्वालजी,
दाहिनी तरफ श्री अनिलकुमारजी उनकी धर्मपत्नी एवं संघपति लाला महावीरजी।
बायीं ओर श्री कैलाशचंदजी दिल्ली एवं डॉ. अनुपम जैन

'सहजानंद वर्णी साहित्य पुरस्कार' श्री धीरूभाई शाह
(अध्यक्ष-गुज. विधानसभा) द्वारा प्राप्त करते हुए

पू.आ.ज्ञानमतीजी के सान्निध्य में
जम्बूद्वीप पुरस्कार-२००२ प्राप्त करते हुए

पुरस्कारों की चित्रावली

ग.आ.ज्ञानमती पुरस्कार

आ.मानतुंग गोष्ठी पुरस्कार

श्रुत संवर्धन पुरस्कार

शॉकेस में सजे हुए विविध पुरस्कार

डॉ. शेखरचन्द्र जैन की हिन्दी एवं जैन साहित्य की कतिपय कृतियाँ

2

जैन वैयाकरण परम्परा

प्रा. अरुणकुमार जैन *(ब्यावर)*

व्याकरणशास्त्र, साहित्य की विविध विधाओं में प्रमुख स्थान रखता है। व्याकरण से भाषा सुसंस्कारित होती है। सकल विद्याओं के हार्द के अवबोधार्थ व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य माना गया है। भारतवर्ष में व्याकरणाध्ययन की एक सुदीर्घ परम्परा रही है, उसमें जैन वैयाकरणों का महनीय योगदान रहा है, पाणिनीय परम्परा के साथ–साथ जैनाचार्यों ने स्वतन्त्र व्याकरण परम्परा को पोषित करने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी।

वैदिक परम्परा में व्याकरण शास्त्र के आद्य प्रवक्ता ब्रह्मा माने गये हैं।[1] ब्रह्मा ने बृहस्पति को एवम् बृहस्पति ने इन्द्र को व्याकरण का उपदेश दिया था तैत्तरीय संहिता 6/4/7 के **"ते देवा इन्द्रमब्रुवन, इमां नो वाचं व्याकुर्विति..... तामिन्द्रो मध्यस्ताऽक्रम्य व्याकरोत्"** वचनानुसार सर्वप्रथम इन्द्र ने पदों के प्रकृति प्रत्यय आदि विभाग द्वारा शब्द विद्या का प्रतिपादन किया है। जैसाकि सायणाचार्य ने भी स्वीकार किया है।[2] वाल्मीकि रामायण, जो विश्व का आद्य महाकाव्य माना जाता है, के उल्लेख सिद्ध करते हैं कि रामायण काल में व्याकरणाध्ययन की सुव्यवस्थित परम्परा सुविकिसत थी।[3] प्रश्न उठता है, 'वैदिक परम्परावत् जैन परम्परा भी इतनी ही पुरानी है? हां, जैन वाङ्मय भी तथैव व्याकरणशास्त्र–शब्दानुशासन–पदशास्त्र के आदि प्रवक्ता/प्रतिपादक के रूप में भगवान ऋषभदेव को मानता है। प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ द्वारा प्रोक्त इस पदशास्त्र–व्याकरणशास्त्र का नाम 'स्वयंभुव'था,[4] जो शताधिक अध्यायों से समुद्र के समान अतिगंभीर था। इससे जैन व्याकरण परम्परा के भगवान ऋषभदेव से प्रारम्भ होने का प्रमाण मिलता है, किन्तु भगवान महावीर से पूर्व के किसी लिपिबद्ध वाङ्मय के नहीं मिलने से मध्यवर्ती परम्परा के सूत्रों की खोज सम्भव नहीं है। अतः भगवान महावीर के निर्वाण के ६८३ वर्षों तक श्रुत की अलिखित परम्परा ही प्रवाहमाण थी, कालदोष से बल और बुद्धि आदि में निरन्तर ह्रास होने के कारण लेखन की आवश्यकता अनुभव की गयी। भगवान महावीर और उनके अनुयायियों ने अपने विचार और उपदेशों को पहुंचाने हेतु तत्कालीन जनभाषा प्राकृत का अवलम्बन लिया था। कालान्तर में जैन मनीषियों ने संस्कृत भाषा की व्यापकता को अनुभूत कर विद्वज्जनों में जैनत्व की पताका के वितान हेतु संस्कृत भाषा को अपनाना प्रारम्भ किया और शनैः शनैः जैनाचार्यों ने ज्ञान–

विज्ञान की विविध शाखाओं में, भाषा में प्रभूत साहित्य का निर्माण किया।

ज्ञान की शाखाओं में व्याकरण शास्त्र प्रमुख एवम् स्वतन्त्र विद्या है। भगवान महावीर के पश्चात् सर्वप्रथम लिखित जैन परम्परा के ग्रन्थराज षट्खण्डागम की धवला टीका में व्याकरण की महत्ता के विषय में कहा गया है कि 'शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद की सिद्धि से अर्थ का निर्णय होता है और अर्थनिर्णय से तत्वज्ञान अर्थात् हेयोपादेय विवेक होता है तथा तत्वज्ञान से परमकल्याण होता है।' इससे जैन परम्परा में व्याकरणाध्ययन को तत्त्वज्ञान में कार्यकारी माना गया है। अतः जैनाचार्यों ने इस क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उत्तम कृतियां प्रदान की हैं जिनमें से अनेक तो काल कवलित हो गयीं, अनेकों के नाम भी नष्ट हो गये एवं अनेक के नाम शेष रह गये।

आचार्य देवनन्दि– उपलब्ध जैन व्याकरणों में जैनेन्द्र व्याकरण[5] सर्वाधिक प्राचीन व्याकरण है, इसके कर्ता पूज्यपाद देवनन्दि हैं। पं. नाथूराम प्रेमी ने इनका काल विक्रम की षष्ट शताब्दी माना है,[6] जिसे डॉ. युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने सं व्याकरण शास्त्र के इतिहास में स्वीकार करने के उपरान्त अपने एक अन्य लेख[7] में ''अरूणन्महेन्द्रो मथुराम्'' जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्र (2/2/92) रूप अन्तः साक्ष्य के गहन समीक्षणोपरान्त विक्रम की पंचम शताब्दी सिद्ध किया है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों–यथा कल्पसूत्र के समय सुन्दर टीकाकार एवम् सुबोधिनी टीकाकार जिनविजय आदि ने जैनेन्द्र व्याकरण को भगवान महावीर द्वारा प्रणीत बतलाया, जिसे पं. नाथूराम प्रेमी अप्रामाणिक मानते हैं।[7]

अब यह असन्दिग्धतया स्वीकृत है कि जैनेन्द्र व्याकरण के कर्ता देवनन्दि पूज्यपाद ही हैं।

देवनन्दि आचार्य थे, जो वैदिक विद्याओं के भी महान ज्ञाता थे। श्रवणबेलगोला एवम् मंगराज कवि शिलालेखों में आपकी प्रशस्ति वर्णित है, जिनसे देवनन्दि का अपर नाम पूज्यपाद एवम् जिनेन्द्र बुद्धि सिद्ध होता है। शिलालेख के अनुसार उनका प्रथम नाम देवनन्दि था, बुद्धि की महत्ता से वे जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवों ने उनके चरणों की पूजा की इस कारण उनका नाम पूज्यपाद हुआ।[8] महाकवि धनंजय का श्लोक उनकी अगाध व्याकरण विद्वत्ता का निदर्शन है, यथा–

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
धनंजय कवेः काव्यं रत्नत्रयंपश्चिमम्॥ *धनंजय नामलाला–20॥*

जैनेन्द्र व्याकरण के मूल सूत्रपाठ के दो रूप दिखाई देते हैं, लघुपाठ तीन हजार सूत्रों का तथा बृहद्पाठ ३७०० सूत्रों का। लघु पाठ में पांच अध्याय २० पाद एवम् ३०३६ सूत्र हैं। इस पंचाध्यायी ग्रन्थ में पाणिनीय की अष्टाध्यायी समाहित है। पाणिनी व्याकरण में ४००० सूत्र हैं, जबकि देवनन्दि प्रणीत पंचाध्यायी में ३००० अर्थात् १००० सूत्र कम। इसका कारण है कि पंचाध्यायी में अनुपयोगी होने के कारण वैदिकी एवम् स्वर प्रक्रिया का अभाव है।

उद्देश्य है लोक व्यवहार में प्रयुक्त व्याकरण का ज्ञान। देवनन्दि की रचना तीक्ष्ण बुद्धि कौशल का विषय यह है कि इस शास्त्र में प्रारंभिक चार अध्यायों के प्रति अन्तिम दो पाद के सूत्रों द्वारा विहित कार्य असिद्धवद् माना गया है।[9] पाणिनीय व्याकरण में ऐसा कौशल लक्षित होता है। पाणिनीय व्याकरण की पूर्णता कात्यायन कृत 'वार्तिक–पाठ' एवम् पतंजलि के 'महाभाष्य' के व्याख्यान से पूर्ण होती है परन्तु देवनन्दि ने अपने व्याकरण में परवर्ती पाणिनीय वैयाकरणों के मतों को अपनाकर इसे परिपूर्णता पर पहुंचाया। इसप्रकार यह शब्दानुशासन पाणिनीय व्याकरण से बढ़कर है।

जैनेन्द्र व्याकरण की एक और विशेषता है कि इसमें एक शेष समास प्रकरण की सत्ता नहीं है, परन्तु पाणिनीय व्याकरण में है। आ. देवनन्दि की मान्यता है कि लोकव्यवहार में प्रचलित तथ्य तथा रूप के लिए सूत्रों का निर्माण मुधा–कलेवर वृद्धि है। उन्होंने **''स्वाभाविकत्वादभिधानस्य एकशेषानारम्भः''** सूत्र लिखकर प्रकरण की समाप्ति कर दी, इसीलिये ''जैनेन्द्र व्याकरण अनेक शेष नाम से जैन ग्रन्थों में निर्दिष्ट है।''

व्याकरण शास्त्र में 'लाघव' का महत्त्व अतिशयित है। लाघवार्थ पाणिनि ने प्रत्याहार, संज्ञा और गणपाठों का निर्माण किया, ताकि अनेक वर्णों, अनेक अर्थों अनेक शब्दों को एक शब्द द्वारा अल्पाक्षर सूत्र का विन्यास संभव हो सके, देवनन्दि ने पाणिनि संज्ञाओं के स्थान पर नवीन संज्ञाएं उद्भावित की हैं। इस जैनेन्द्र व्याकरण में संज्ञाओं को और भी लघु तथा सूक्ष्म बनाकर लाघव के क्षेत्र में एक और कदम बढ़ाया है। पाणिनि और जैनेन्द्र की कुछ संज्ञाओं का एक तुलनात्मक नमूना प्रस्तुत है–

पाणिनी		**जैनेन्द्र**
गुण	–	एप् (1.1.16)
वृद्धि	–	ऐप् (1.1.15)
आत्मनेपद	–	दः (1.2.151)
प्रगृह्य	–	दि (1.1.20)
दीर्घ	–	दी (1.1.11)
बहुव्रीहि	–	बम् (1.3.86)
तत्पुरुष	–	षम् (1.3.19)
अव्ययीभाव	–	हः (1.3.4)

जैनेन्द्र व्याकरण में एक और वैलक्षण्य दृष्टिगोचर होता है, विभक्ति शब्द के ही प्रत्येक वर्ण को अलग करके स्वर के आगे 'प्' तथा व्यंजन के आगे 'आ' जोड़कर सातों विभक्तियों की संज्ञाएं निर्दिष्ट की हैं– यथा– वा (प्रथमा), इप् (द्वितीया) भा (तृतीया) अप् (चतुर्थी) का (पंचमी) ता (षष्ठी) ईप् (सप्तमी)। ऐसा निर्देश अन्यत्र उपलब्ध नहीं। इससे देवनन्दि की अनूठी प्रतिभा झलकती है।

पूज्यपाद–देवनन्दि ने अपने शब्दानुशासन में व्याकरण मतों के प्रदर्शन में छह आचार्यों का उल्लेख किया है।[10] ये छह आचार्य हैं– श्रीदत्त, यशोभद्र, भूतबलि, प्रभाचन्द्र, सिद्धसेन, समन्तभद्र।[11] पं. श्री प्रेमी एवम् पं. फूलचन्द्र सि. शास्त्री ने उक्त आचार्यों के ग्रन्थों की अनुपलब्धि वश अनुमान किया है कि इन आचार्यों ने कुछ भिन्न शब्दों के प्रयोग किये होंगे और उन्हें सिद्ध करने तथा उनके प्रति आदर व्यक्त करने हेतु ये सूत्र रचे होंगे परन्तु पं. युधिष्ठिर मीमांसक का मत है यदि सावधानीपूर्वक अवगाहन किया जाए तो उक्त आचार्यों के सूत्र उपलब्ध हो सकते हैं, जैसे कि उन्होंने आपिशक्ति, काशकृत्स्न, एवम् भृगुरि के सूत्रों को खोज निकाला है।

इन छह उल्लिखित आचार्यों में सिद्धसेन के व्याकरण–प्रवक्ता होने के विषय में तो जैनेन्द्र महावृत्तिकार अभयनन्दि ने जैनेन्द्र शब्दानुशासन के 1–4–16 की वृत्ति में **'उपसिद्धसेनं वैयाकरणाः'** (अर्थात् सभी वैयाकरण सिद्धसेन से हीन हैं। लिखकर एक प्रबल प्रमाण प्रस्तुत किया है।)

जैनेन्द्र व्याकरण का अपना धातुपाठ है, तथा उसके लेखक ने उणादिसूत्र, परिभाषा सूत्र, लिंगानुशासन, गणपाठ, (जो वृत्ति के साथ यथास्थान सन्निविष्ट है) का प्रणयन भी किया है, जिससे यह शब्दानुशासन सर्वांगपूर्ण है, एवम् देवनन्दि की विशिष्ट मेधा और प्रतिभा का निदर्शक है।

जैनेन्द्र के टीकाकार

श्रुतकीर्तिरचित 'पंचवस्तु' नामकी टीका में जैनेन्द्र शब्दागम की प्रशस्ति में लिखा है।[13] जैनेन्द्र प्रणीत शब्दानुशासन विशाल प्रासाद के समान है जो मूल सूत्र रूप स्तम्भों पर खड़ा है, न्यास रूप उसकी भारी रत्नमय भूमि है, वृत्तिरूप उसके कपाट हैं, भाष्यरूप शैय्यातल है, टीकाएं उसकी मालाएं–मंजिलें हैं और पंचवस्तु टीका उसकी सोपान–श्रेणी हैं। इसके द्वारा उस पर आरोहण किया जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि व्याकरण पर न्यास, वृत्ति, भाष्य और टीकाएं लिखी गयी थीं।

न्यास

शिमोगा जिले की नगरतहसील में स्थित 46वें शिलालेख के अनुसार पूज्यपाद ने पाणिनीय व्याकरण पर शब्दावतार न्यास एवम् अपने व्याकरण पर जैनेन्द्र न्यास लिखा था, जो सम्प्रति अनुपलब्ध हैं।[14] जैनेन्द्र पर भाष्य लिखा गया अवश्य था, पर उपलब्ध नहीं।

अभयनन्दि मुनि (महावृत्ति)–

लेखक ने कहीं अपना परिचय नहीं दिया अतः अन्तः साक्ष्याधार से विक्रम की नवीं एवम् बारहवीं शताब्दी के मध्यकालीन मुनि अभयनन्दि ने जैनेन्द्र व्याकरण पर लगभग 12000 श्लोक परिमाण बृहद् महावृत्ति का निर्माण किया था, जो उक्त ग्रंथ पर प्रथम टीका कही जा सकती है। यह भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है।

आ. प्रभाचन्द्र

'प्रमेयकमलमार्तण्ड' व 'न्यायकुमुदचंद्र' के रचयिता महान दार्शनिक आचार्य प्रभाचन्द्र ने जैनेन्द्र व्याकरण पर ''शब्दाम्भोजभास्कर न्यास'' नाम्नी विशाल व्याख्या लिखी है जो कि आज अविकल रूप से उपलब्ध नहीं, परन्तु जितनी उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि यह महावृत्ति से भी विशाल कलेवर वाली है।

लघु जैनेन्द्रवृत्ति

पण्डित महाचन्द्र (विक्रम की 20वीं शताब्दी) द्वारा लिखित 'लघु जैनेन्द्र वृत्ति'[15] का उल्लेख पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने किया है। यह वृत्ति अभयनन्दि की वृत्ति के आधार पर लिखी गयी।

आर्यश्रुतकीर्ति

आर्यश्रुतकीर्ति (12वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र व्याकरण पर 'पंचवस्तु' नामक प्रक्रिया ग्रन्थ लिखा है। भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट में इसकी दो प्रतियां विद्यमान हैं।

पं. श्री बंशीधरजी न्यायतीर्थ (20वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र की अभयनन्दीया वृत्ति के आश्रय से प्रक्रिया ग्रन्थ लिखा है, जो आकलूज निवासी नाथारंग जी गांधी ने मुंबई से प्रकाशित किया है। पं. बंशीधर जी ने प्रकृत प्रक्रिया का संग्रथन अपने गुरू वादिराज केसरी, स्याद्वाद वारिधि पं. गोपालदास बरैया की आज्ञा से अपने छोटे भाई नेमिचन्द्र के निमित्त किया था। अध्ययन करते हुए उनके लघुभ्राता ने ग्रन्थ रचना में पर्याप्त साहाय्य प्रदान किया। यह ग्रन्थ श्रीमद्भट्टोज दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी प्रक्रिया के अनुसन्धानपूर्वक किया गया है।

गुणनन्दी

जैनेन्द्र व्याकरण का द्वितीय सूत्रपाठ जिसमें 3700 सूत्र हैं, उसे कुछ विद्वान पृथक् ग्रन्थ ही मानते हैं, जिसे गुणनन्दि ने किंचित् परिवर्तित एवं परिवर्धित कर नवीन रूप में परिष्कृत किया है और उसे शब्दार्णव नाम से प्रसिद्ध किया है। पं. प्रेमीजी ने आपका स्थिति काल वि.सं. 822 से 957 के मध्य माना है।

सोमदेवसूरि

सोमदेवसूरि ने उक्त शब्दार्णव व्याकरण पर 'चन्द्रिका' नामक की अल्पाक्षर वृत्ति की रचना की है। यह वृत्ति सनातन जैन ग्रन्थमाला काशी से प्रकाशित है। ग्रन्थान्त में मुद्रित प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कोल्हापुर के अजुरिका ग्राम में त्रिभुवन तिलक नामक मन्दिर में वि.सं. 1265 में प्रकृत टीका लिखी जाकर पूर्ण हुयी।

विश्रान्त विद्याधर व्याकरण – वामन

आचार्य हेमचन्द्र एवम् वर्धमान सूरि ने गणरत्न महोदधि में लिखा है कि वामन ने विश्रान्त विद्याधर नामक ग्रन्थ लिखा था। वामन वर्धमान को सहृदय चक्रवर्ती की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार इनका स्थितिकाल वि.सं. 400 से 600 के मध्य ठहरता है।

विश्रान्त विद्याधर व्याकरण पर मल्लवादी ने न्यास की रचना भी की थी, जैसा कि प्रभावक चरित में उल्लेख किया गया है।

शाकटायन व्याकरण

व्याकरण शास्त्र में शाकटायन नाम से वैयाकरण प्रसिद्ध हुए हैं। प्रथम शाकटायन पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं द्वितीय शाकटायन ही जैन वैयाकरण हैं, जिनका अपर नाम पाल्यकीर्ति है। इनका काल युधिष्ठिर मीमांसक ने वि.सं. 871 से 924 के मध्य स्थित किया है, यही प. प्रेमी का मन्तव्य है।

पाल्यकीर्ति कृत शब्दानुशासन का नाम शाकटायन संभवतः व्याकरणशास्त्र की उत्कर्षता ज्ञापित कराने हेतु पड़ गया।

पाल्यकीर्ति शाकटायन की प्रशस्ति में वादिराज सूरि ने पार्श्वनाथचरित में लिखा है–

कुतस्त्याः सा शक्तिः पाल्यकीर्तेर्महौजसः।
श्रीपदश्रवणं यस्य शाब्दिकान्कुरुते जनान्॥

अर्थात् उन महान पाल्यकीर्ति की शक्ति का क्या कहना जिनका श्रीपद श्रवण ही लोगों को शाब्दिक–व्याकरणज्ञ बना देता है।

शाकटायन यापनीय संप्रदाय के आचार्य थे, उनकी व्याकरणशास्त्रेतर एक और रचना मिलती है, स्त्रीमुक्ति केवलिभुक्ति प्रकरण, शाकटायन महान शाब्दिक, सिद्धान्तज्ञ, तार्किक एवम् काव्यशास्त्री थे।

पाल्यकीर्ति विरचित शाकटायन व्याकरण परिपूर्ण एवम् सर्वांगीण है। ग्रन्थ में चार अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में 4–4 पाद हैं एवम् प्रथम में 721 सूत्र, द्वितीय में 753 सूत्र, तृतीय में 755 एवम् चतुर्थ में 1007 सूत्र, इस प्रकार 3236 सूत्रकायिक यह ग्रन्थ है। मूलसूत्रों में अपने पूर्ववर्ती समस्त वैयाकरणों के मतों का समाहार करने के कारण इस शास्त्र में इष्टियां नेष्ट हैं, सूत्र से पृथक् वक्तव्यों का अभाव है। अतः यहां **उपसंख्यानम्** का अभाव है जबकि पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों की पूर्ति हेतु **'वक्तव्यम्' 'उपसंख्यानम्'** पदयुक्त वार्तिकों का अवलंबन लेना पड़ता है। इन्द्र चन्द्र आदि शाब्दिकों द्वारा शब्द का जो लक्षण प्रतिपादित किया है, वह सब यहां है और जो यहां नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। जैसाकि शाकटायन–व्याख्याकार यक्षवर्मा ने चिन्तामणि टीका में भी लिखा है।[17]

शाकटायन व्याकरण की अमोघवृत्ति टीका 18 हजार श्लोक परिमाण वाली है। ग्रन्थकार ने अपने आश्रयदाता अमोघवर्ष के नाम पर इसका नामकरण अमोघवृत्ति किया है। वह वृत्ति पाणिनीय व्याकरण पर काशिका वृत्ति से प्रभावित तथा अत्यन्त विशद है।

शाकटायन व्याकरण पर प्रभाचन्द्राचार्य, जो पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य के विचार में न्यायकुमुदचन्द्र के कर्त्ता से भिन्न हैं, ने अमोघवृत्ति पर 'शाकटायन न्यास' की रचना की है, जिसके मात्र दो अध्याय ही उपलब्ध हैं।

यक्षवर्मा नामक वैयाकरण ने अमोघवृत्ति के आधार पर ''शाकटायन चिन्तामणि'' नामक लघुवृत्ति रची है। इसका परिमाण 6 हजार श्लोक है। यक्षवर्मा ने वृत्ति के प्रारम्भिक भाग में इसकी सरलता के विषय में स्वयं लिखा है– ''इस वृत्ति के अभ्यास से बालक एवं बालिकाएं निश्चय से एक वर्ष में ही समस्त वाङ्मय को जानने में सक्षम हो जाते हैं।''

चिन्तामणि वृत्ति पर अजितसेनाचार्य ने मणिप्रकाशिका नामक टीका की रचना की है।

भट्टोज दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी के ढंग पर अभयचन्द्राचार्य ने शाकटायन पर प्रक्रिया ग्रन्थ लिखा है, जो जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, मुम्बई से प्रकाशित हो चुका है, इस प्रक्रिया ग्रन्थ का संशोधन / संपादन बालशर्मा अनन्तवीर्य द्वारा किया गया है।

भावसेन त्रैविद्य ने शाकटायन व्याकरण पर 'शाकटायन व्याकरण टीका' लिखी थी। ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है पर श्रीवेलणकर ने[18] इसका उल्लेख किया है।

द्रविड़संघ के मुनि श्रीदयापाल ने वि.सं. 1052 में शाकटायन पर लघु कौमुदी के समान रूपसिद्धि नाम्नी एक लघ्वी टीका भी लिखी है इन टीका ग्रन्थों के आधार पर ग्रन्थ की लोकप्रियता एवम् प्रसिद्धि सहज अनुमेय है।

इस प्रकार जैन व्याकरण परम्परा के उन्नयन में शाकटायन वैयाकरण एवम् उनके आम्नाय के वैयाकरणों का महनीय योगदान ज्ञापित होता है।

कातन्त्र–व्याकरण संप्रदाय–

जैन व्याकरणों में कातन्त्र संप्रदाय अति प्रचारित रहा है। कातन्त्र व्याकरण कौमार व्याकरण एवम् कालापक व्याकरण नाम से अभिहित किया जाता है। कु=ईषत्, तन्त्रम् इति कातन्त्रम्, 'कु' के स्थान पर 'का' आदेश होने से शब्द निष्पन्न होता है।[19] कार्तिकेय के वाहन मयूर पिच्छों से संगृहीत होने से यह कालापक भी कहा जाता है। कुमार अर्थात् कार्तिकेय के द्वारा प्रेरित होने के कारण उसका कौमार नाम भी पड़ा।

पाणिनीय व्याकरण प्रत्याहार आदि के आश्रय से लिखित होने से एवम् अत्यधिक सूक्ष्मता से बद्ध होने के कारण जनसामान्य में क्लिष्ट था, अतः भाषा में प्रयुक्त नवशब्दों की सिद्धि के लिये कातन्त्र व्याकरण सामने आया[20] इसकी रचना सातवाहन के प्रतिबोधनार्थ की जाने के प्रमाण मिलते हैं।

जैन हितैषी अंक 4, वी.नि. 2441 में प्रकाशित 'कातन्त्र व्याकरण का विदेशों में प्रचार' नामक लेख में बताया गया है कि मध्य एशिया में भूखनन से कूब्राराज्य का पता लगा है और वहां जो प्राचीन साहित्य मिला है उससे ज्ञात होता है, वहां संस्कृत व्याकरण के पठन पाठन का आधार कातन्त्र ही था।[21] इससे इस व्याकरण की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

कातन्त्र व्याकरण के प्रवक्ता शर्ववर्म हैं। इनके काल का ठीक निर्धारण नहीं हो सका है। युधिष्ठिर मीमांसक इनको वि.पू. मानते हैं।[22] उनके अनुसार यह पाणिनीयेतर व्याकरणों में सर्वाधिक प्राचीन है।

इसके मूल लेखक के विषय में तथा कर्त्ता के विषय में मतभेद हैं तथा कथासरित्सागर की कथा के कारण शर्ववर्म के जैन होने के विषय में पं. श्री मिलापचन्द्र कटारिया केकड़ी ने 'कातन्त्र व्याकरण के निर्माता कौन' शीर्षक से एक लेख जैन सिद्धान्त भास्कर भाग 3, किरण 2 (सन 1936) में प्रकाशित कर अनेक प्रश्न उठाये थे। जो भी हो, जैनाचार्यों में शब्दागम (व्याकरण) तर्कागम (न्यायशास्त्र) और परमागम (सिद्धान्त) इन तीन विद्याओं में विशिष्ट प्रावीण्य के कारण त्रैविद्य उपाधि के धारक भावसेन त्रैविद्य की इस लिखित वृत्ति तथा

अन्यान्य जैनाचार्यों की टीका ग्रन्थों के लिखने के कारण एवम् जैन श्रमणसंघों में इसके पठन–पाठन के कारण उसे जैनों में पूर्ण मान्यता प्राप्त है। यह व्याकरण सूत्रानुसारी न होकर प्रक्रियानुसारीक्रम में गुम्फित है।

ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में 574 एवम् उत्तरार्द्ध में 809 सूत्र इस प्रकार 1383 सूत्र हैं। इसमें मूलतः सन्धि, नाम और आख्यात नाम से तीन अध्याय हैं। इन अध्यायों में सन्धि के अन्तर्गत पांच, नाम के अन्तर्गत छह पाद और आख्यात में आठ पाद हैं।

'मोदकं देहि' ऐसे रानी के द्वारा उक्त राजा सातवाहन के प्रति वचन के अनुसार मोदकम् पद में गुणसन्धि, तथा ''मोदकम्'' स्याद्यन्य (नाम) पद एवं 'देहि' आख्यात पद के क्रम में व्याकरण निरुक्त है।[24] बलदेव उपाध्याय के मतानुसार कृदन्त नामक चतुर्थ अध्याय कात्यायन वररुचि प्रणीत है।

कातन्त्र का वैशिष्ट्य

कातन्त्र के वर्ण समाम्नाय में 52 वर्णसमाम्नात हैं। तथा इन स्वरों की पृथक्–पृथक् संज्ञा निर्देश किये हैं। कालबोधक लकारों के स्थान पर श्वस्तनी, ह्यस्तनी, अद्यतनी आदि संज्ञाओं को स्थान दिया गया है। य र ल व की अन्तःस्थ तथा श ष स ह की ऊष्म संज्ञा का निर्देश कर पूर्वाचार्यों के प्रति सम्मान दिखाया गया लगता है, यतः इनका विधि सूत्रों में कोई उपयोग नहीं मिलता है।

यह व्याकरण अत्यन्त संक्षेपता की स्वीकृति के कारण समस्त नियमों का कथन नहीं करता है और **''लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धि''** सूत्र द्वारा लोकप्रयोग द्वारा अनुपदिष्ट प्रयोगों की सिद्धि करने की घोषणा करता है।

कातन्त्र में सारल्य की मुख्यता होने के कारण संज्ञा पदों के स्थान संज्ञि वर्णों के कथन को प्रमुखता दी गयी है।

कातन्त्र में अनेक अपाणिनीय किन्तु साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग करके उनको व्याकरण सम्मत बनाने का प्रयोग किया गया है।[25]

कातन्त्र में दशगणों के स्थान पर नवगण स्वीकृत हैं, यहां जुहोत्यादिगण अदादिगण में अन्तर्भूत है।

इस प्रकार कातन्त्र व्याकरण अतिसरल विशद एवम् लौकिक संस्कृत के ज्ञानार्थ अल्पायासेन ग्राह्य एवं बहुपयोगी है।

कातन्त्र के टीकाकार

दुर्गसिंह

कान्तत्र पर उपलब्ध वृत्तियों में सर्वाधिक प्राचीन वृत्ति दुर्गसिंह विरचित है। दुर्गसिंह ने कातन्त्र के **यजादेरुभयं** (3–5–45) सूत्र की वृत्ति में भारवि और मयूर कवि के उद्धरणों को दिया है अतः इनका काल विक्रम की 7वीं शताब्दी माना जाता है।

दुर्गसिंह गुप्त

दुर्गसिंह वृत्ति पर 9वीं शताब्दी के दुर्गसिंहगुप्त ने एक टीका लिखी है ऐसा गुरूपद हालदार का मत है परन्तु डॉ. ए.बी. कीथ के अनुसार स्वयं वृत्तिकार ने टीका लिखी। यह टीका बंगला लिपि में प्रकाशित हो चुकी है।

उग्रभूति

इन्होंने लगभग वि. की 11वी शताब्दी में ''शिष्यहितान्यास'' नामक टीका लिखी है। इस टीका के प्रचार की कथा मुस्लिम यात्री अल्बेरूनी ने की।

त्रिलोचनदास

संभवत 11वीं शताब्दी में त्रिलोचनदास ने कातन्त्र पंजिका नाम्नी बृहती व्याख्या लिखी, जो बंगला लिपि में

मुद्रित हो चुकी है।

वर्धमान

12वीं शताब्दी के वर्धमान ने 'कातन्त्र विस्तर' नामक टीका लिखी।

भावसेन त्रैविद्य

13वीं शताब्दी में हुए परवादि–पर्वत–वज्रदण्ड शब्द ब्रह्म स्वरूप त्रिविद्याधिप सेनगणाग्रणी भावसेन त्रैविद्य ने कातन्त्र रूप माला नामक उपयोगी प्रयोगादि उदाहरणों से परिपूर्ण टीका लिखकर कातन्त्र के प्रचार में महनीय योगदान दिया है। उनकी यह कातन्त्र रूपमाला आर्यिका ज्ञानमती के हिन्दी अनुवाद के साथ दि. जैन त्रिलोक शो. सं., हस्तिनापुर से प्रकाशित हो चुकी है, सम्प्रति दिगम्बर साधु संतों में बहुप्रचारित है। संस्कृत भाषा के आरम्भिक अभ्यासियों के लिये यह टीका बहुपयोगी है।

त्रिविक्रम–

त्रिलोचन की पंजिका पर 13वीं शताब्दी के पूर्व त्रिविक्रम ने 'उद्योत' नामक टीका लिखी है। 1340 से पूर्व महोदय द्वारा 'शब्दसिद्धि' 1340 में मेरूतुंग सूरि द्वारा बालबोधवृत्ति भी कातन्त्र पर लिखी गयी।

जिनप्रभसूरि

आचार्य जिनप्रभ सूरि ने सं. 1352 में 'कातन्त्र विभ्रम' नाम्नी टीका लिखी।

जगद्धर भट्ट

अनेक काव्य ग्रन्थों की टीकाकार जगद्धर भट्ट ने अपने पुत्र यशोधर को पढ़ाने हेतु सं. 1350 के आसपास ''बालबोधिनी नामक'' टीका लिखी है।

राजानक शितिकण्ठ

जगद्धर विरचित बालबोधिनी टीका पर राजानक शितिकण्ठ ने 15वीं शताब्दी में एक व्याख्या लिखी है।

सिद्ध हैम शब्दानुशासन

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र निःसन्देह अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। अपने आश्रयदाता जयसिंह सिद्धराज के निमित्त इन्होंने सर्वांग पूर्ण व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण किया। अतः दोनों नामों से संवलित यह ग्रन्थ 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन' नाम से प्रसिद्ध है। इसका रचनाकाल विक्रम की 12वीं शताब्दी है।

यह अति विशद एवम् सांगोपांग व्याकरण ग्रन्थ है। व्याकरण शास्त्र के पाँच अंग–सूत्रपाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ, गणपाठ और लिंग हैं। इन पाँचों पर आचार्य हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी है। यह विराट् साहित्य सपादैकलक्ष श्लोक परिमाण में माना जाता है।

इसमें आठ अध्याय हैं, इस प्रकार पाणिनि को अष्टायायी के समान यह भी अष्टाध्यायी है। सूत्रों की संख्या 4685 और उणादि के 1006 सूत्रों को संयोजित करने से सकल सूत्रों की संख्या 5691 हो जाती है। आरम्भिक सात अध्यायों में संस्कृत व्याकरण तथा अन्तिम अध्याय के 1119 सूत्रों में प्राकृत एवम् अपभ्रंश का व्याकरण विवृत है।

इसकी रचना भी कातन्त्र के समान प्रकरणानुसारी है इसमें यथाक्रम संज्ञा, सन्धि, नाम, कारक, षत्व, णत्व, स्त्री प्रत्यय, समास, आख्यात, कृदन्त और तद्धित प्रकरण वर्णित हैं।

हेमचन्द्र ने अपने सूत्रों को विशद और व्यापक बनाया है और अपने से प्राचीन जैन अजैन सभी व्याकरणों को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। इसकी पूर्ति के लिये पृथक से वार्तिकों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के नियमों व प्रयोगों के उदाहरण स्वरूप स्वयं ही ''द्वयाश्रय महाकाव्य''

की रचना कर अपनी उन्नत प्रतिभा निदर्शित की है।

वृत्तियां / व्याख्याएं

हेमचन्द्र ने आरम्भिक अध्येतृवर्ग के निमित्त 6 हजार श्लोक परिमाण लघ्वी वृत्ति की है और प्रौढ़ अध्येतृवर्ग निमित्त 18 हजार श्लोक परिमाण बृहती वृत्ति लिखी। इसमें पूज्यपाद, शाकल्य, पतञ्जलि, जयादित्य, वामन, भज आदि अनेक पूर्ववर्ती वैयाकरणों के मतों का विवेचन किया है।

आचार्य हेमचन्द्र की विशाल परिमाण वाली वृत्तियों और व्याख्याओं के पश्चात् अन्य लेखकों द्वारा टीका–टिप्पणी आदि लेखन का अवकाश नहीं रह जाता, परन्तु इस व्याकरण की लोकप्रियता और प्रसिद्धि के कारण अन्य वैयाकरणों ने इसे मण्डित करने में अपना गौरव समझा। डॉ. हीरालाल जैन द्वारा इस पर टीकादि ग्रन्थों की निम्न सूची दी गई है–

(1) मुनि शेखरसूरि रचित–लघुवृत्ति ढुंढिका
(2) कनकप्रभ कृत–दुर्गपद व्याख्या।
(3) विद्याधर कृत–वृहद्वृत्ति टीका
(4) धनचन्द्र कृत–लघुवृत्ति अवचूरि
(5) अभयचन्द्र कृत–बृहद् वृत्ति अवचूरि
(6) जिनसागर कृत–दीपिकाएँ

पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने हैम व्याकरण पर लिखित टीका टिप्पणी आदि ग्रन्थों की निम्न सूची की है।

जिन सागर कृत ढूंढिका, उदसौभाग्य की प्राकृत व्याकरणीय टीका, देवेन्द्रसूरि कृत–हेम लघु न्यास, विनयचन्द्र गणि कृत हैम कौमुदी (11 इनमें अधिकांश दुष्प्राप्य हैं।)

आचार्य हेमचन्द्र के उपरान्त शब्दानुशासन निर्माण काल ही प्रायः समाप्त हो गया। विदेशी आक्रमणों से धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के उथल–पुथल हो जाने के कारण और राज्याश्रय के अभाव में प्रौढ़ ग्रन्थों के प्रणयन की सम्भावनाएं नितान्त क्षीण हो गयीं। तथापि विद्याव्यसनी विविध श्रमणी और श्रावक विद्वानों ने व्याकरण विद्या पर प्रकीर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। विक्रम की 19वीं शताब्दी में सागरचन्द्र के शिष्य जिनचन्द्र सूरि ने अल्पायास से व्याकरण ज्ञान कराने हेतु सिद्धान्त रत्निका नामक ग्रन्थ लिखा। विक्रम की बीसवीं शताब्दी में विजयनेमि सूरीश्वर के शिष्य लावण्य विजय ने बृहद् धातु के दशों लकारों के कोश के रूप में 'धातुरत्नाकर' का निर्माण किया यह विशालकायिक सात भागों में मुद्रित है।

सन्दर्भ – संकेत

1. ब्राह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्र भारद्वाज ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः।

(क) ऋक्तन्त्र। (ख) महाभाष्य 1/1/1

2. तामखण्डां वाचं मध्ये विविच्छद्य प्रकृति प्रत्यय विभाग सर्वत्राकरोत्। ऋग्वेद–भाष्य, उपोद्घात। पूना सं. भाग 1 पृ. 26

3. नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपभाषितम्॥

4. तदा स्वयंभुवं नाम, पदशास्त्रमभून महत्।
यत्तत्पर शताध्यायै रति गंभीरमब्धिवत्॥

5. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी द्वारा अभयनन्दि की वृत्ति सहित प्रकाशित, सन् 1956

6. जैन साहित्य का इतिहास
7. वही
8. यो देवनन्दि प्रथमाभिधानो, बुद्धया महत्या स जिनेन्द्र बुद्धिः।
   श्री पूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम्॥ श्रवणबेलगोल शि.नं. 40 (64)
9. "पूर्वत्रासिद्धम्" जैनेन्द्रव्याकरण 5/7/27
10. (1) गुणे श्री दत्तस्त्रियाम् (1/4/34)
    (2) कृवृमृषां यशोभद्रस्य (2–1–99)
    (3) राद्भूतबले।3–4–83
    (4) रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य ।4.3.1081
    (5) वेत्तेः सिद्धसेन सेनस्य ।5.1.7/
    (6) चतुष्टयं समन्तभद्रस्य 5.4.140 /
11. जैन साहित्य का इतिहास । पृ. 120
12. सर्वार्थसिद्धि। ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रस्तावना पृ. 51
13. **सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसन न्यासोरु रत्नाक्षिति,**
    श्रीमद् वृत्तिकपाट संपुटयुतं भाष्योऽथ शय्यातलं
    टीकामालमिहारू क्षुरचितं जैनेन्द्र शब्दागमं,
    प्रासादं पृथुं पंच वस्तुकमिदं सोपानमारोहणात्॥
14. **न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञ सकल बुधनुतं पाणिनीयस्य भूयो,**
    न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं कृत्वा॥
15. **संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास–पृ. 427**
16. **शब्द शास्त्रे च विश्रान्त विद्याधर वराभिधे।**
    न्यासं चक्रेऽल्पधीवृन्द बोधनाय स्फुटार्थकम्॥
17. **इष्ठिनेष्टा च वक्तव्यं, वक्तव्यं न सूत्रतः पृथक्।**
    संख्यातं नोपसंख्यातं शब्द लक्षणम्।
    इन्द्रश्चन्द्रादिभिः शाब्दैर्युदुक्तं शब्द लक्षणम्।
    तदिहास्ति समस्तं च यन्नेहास्ति न यत् क्वचित्॥
18. जिनरत्नकोश, पृ. 377
19. कातन्त्र व्याकरण पर दुर्गसिंह वृत्ति।
20. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, डॉ. बलदेव उपाध्याय, पृ. 564
21. कातन्त्र व्याकरण, हस्तिनापुर से प्रकाशित पुरोवाक्– डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
22. संस्कृत व्याकरण का इतिहास, पृ. 394
23. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पृ. 564
24. कलापचन्द्रः सुषेण, मंगलाचरण।
25. पितरस्तर्पयामास (कात्. वृ. टीका 2/1/66)
    वीतोऽपि तापपरिचो सिंचति व द्य–569

3

जैन दर्शन के कुछ वैज्ञानिक तथ्य

प्रो. (डॉ.) अशोक कुमार जैन *(ग्वालियर, म.प्र.)*

व्यवस्थित एवं विशिष्ट ज्ञान को 'विज्ञान' कहा गया है। अंग्रेजी में विज्ञान को 'Science' कहा जाता है, जो कि 'Scientia' लेटिन भाषा के शब्द से बना है, इसका अर्थ होता है ज्ञान। प्रयोग एवं परीक्षण द्वारा जो सत्यापित किया जा सके, वही विशिष्ट ज्ञान वास्तव में विज्ञान है। विज्ञान की सहायता से यथार्थ एवं अनुभवाश्रित ज्ञान प्राप्त होता है। विज्ञान निरंतर सत्य की खोज में रत रहता है। विज्ञान का निरंतर विकास होता रहता है अतः उसमें विभिन्न परिवर्तन भी होते रहते हैं एवं वह प्रगति की ओर बढ़ता रहता है। वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्रभावित नये सिद्धांतो का प्रतिपादन किया जाता है। विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष होता है। वस्तुनिष्ठ होने के कारण वह सार्वजनिक भी होता है। विज्ञान के किसी वस्तु अथवा प्रवृत्ति की खोज के लिए एक निर्धारित प्रक्रिया अपनाई जाती है जिसके निम्न चार सोपान होते हैं।

1. न्याय संग्रहण, 2. विश्लेषण, 3. तथ्यों का वर्गीकरण, परीक्षण एवं समीक्षण, 4. निष्कर्षण

जैनधर्म में किसी भी तथ्य को अनुमान अथवा भावुकता के तल पर सिद्ध या स्वीकार नहीं किया गया है, वरन तर्क और अनुभव की कसौटियों पर जी कर संपुष्ट किया गया है। तीर्थंकर भगवंतों के ज्ञान में समस्त ब्रह्माण्ड के अवयवों एवं क्रिया कलाप इस प्रकार झलकते हैं मानो सब कुछ उनकी हथेली पर हो। भगवंतों की वाणी का अनुसरण करते हुये ही जैनाचार्यों ने ब्रह्माण्ड की विभिन्न वस्तुओं को उनके सिद्धान्तों एवं क्रिया कलापों को लेखनी बद्ध कर ग्रंथों के रूप में समाज को प्रदान कर महती कृपा की है। वर्तमान में जब हम २१वीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं तब विज्ञान भी अपनी द्रुत गति से आगे बढ़ता जा रहा है। जहाँ भौतिक विज्ञान में नेनो कणों के चमत्कारों ने धूम मचा दी है। वहीं जीव विज्ञान में वैज्ञानिक 'जीन्स' में परिवर्तन कर नित नये प्रयोग कर रहे हैं। जहाँ एक छोटी सी 'चिप' हजारों पृष्ठों की सूचनाओं को एकत्रित एवं सम्प्रेषण करने की क्षमता रखती है वहीं वैज्ञानिकों ने परमाणु को भी उधेड़ कर इसके अवयवों की खोज कर ली है।

प्रश्न उठता है कि विज्ञान नित नये जो आविष्कार कर रहा है वह धर्म की कसौटी पर

किस प्रकार खरे उतरते हैं अथवा उन्हें कैसे सत्यापित किया जा सकता है।

जैन धर्म तो मूलतः अध्यात्मपरक धर्म है जहाँ आत्मा के उत्थान और मोक्ष प्राप्ति को परम लक्ष्य माना गया है। मोक्ष प्राप्ति की यह प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है। इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए मनुष्य को स्वयं सब संसार की दशा का ज्ञान होना आवश्यक है, तभी वह 'मुक्तिमार्ग' पर चलने के लिए अग्रसर होगा।

जैनधर्म में अत्यंत ही व्यवस्थित रूप से चार अनुयोगों के माध्यम से संसार एवं मोक्ष के स्वरूप को दर्शाया गया है। प्रत्येक अनुयोग के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जैनदर्शन तो वैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतो की खान है। जिन तथ्यों एवं सिद्धांतों को वर्तमान में वैज्ञानिक अमूल्य एवं संवेदनशील उपकरणों एवं यन्त्रों के माध्यम से प्रकाश में ला पा रहे हैं। वह तो हजारों वर्ष पूर्व ही हमारे आचार्यों ने स्पष्ट कर दिये थे।

अनेकांत एवं स्याद्वाद :

जैन दर्शन की अध्ययन एवं अनुसंधान की दो प्रमुख पटरियाँ अनेकांत एवं स्याद्वाद हैं। जहाँ अनेकांत किसी वस्तु की बहुआयामिता या धर्मिता को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिपादित करता है, वहीं स्याद्वाद उस बहुआयामिता बहुमुखीनता तक पहुँच बनाता है। अनेकांत वस्तु स्वरूप का संबोधन है जबकि 'स्याद्वाद' इसे जानने की एक सम्यक एवं संपूर्ण प्रक्रिया है। वैज्ञानिकता के सिद्धांत के अनुसार भी किसी भी वस्तु अथवा घटना को संपूर्ण एवं सत्य रूप में जानने के लिए इसे बहुआयामी दृष्टिकोण से देखना एवं जानना आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न प्रयोगों एवं यंत्रों के माध्यम से वैज्ञानिक विभिन्न वैज्ञानिक तथ्यों को जानने का प्रयास करते हैं। अथवा स्याद्वाद का सहारा लेते हैं।

प्रस्तुत आलेख में जैन धर्म एवं विज्ञान से संबंधित कुछ प्रमुख विषयों का वर्णन ही किया जा रहा है। समस्त विषयों को एक लघु आलेख में समाहित करना संभव नहीं है।

परमाणु, प्रदेश एवं समय :

उक्त शब्दों की जैन दर्शन में अद्भुत व्याख्या की गई है। परमाणु पुद्गल की,प्रदेश आकाश की और समय काल की अन्तिम इकाइयां जैन दर्शन में कही गई हैं। वर्तमान में वैज्ञानिक परमाणु के विभिन्न आयामों की खोज में व्यस्त हैं। जैनदर्शन में तो परमाणु की चार प्रकृतियों तक का वर्णन है।

यह प्रकृतियाँ क्रमशः शीत–स्निग्ध, शीत–रुक्ष, उष्ण–स्निग्ध एवं उष्ण–रुक्ष हैं। इसी प्रकार वर्तमान में वैज्ञानिकों द्वारा वर्णित अणु को जैन दर्शन में स्कन्ध के नाम से परिभाषित किया गया है दो या दो से अधिक परमाणुओं के संयोग से बने पदार्थ को 'अणु' अथवा 'स्कन्ध' कहा गया है। दो परमाणुओं से मिलकर बने अणु को 'द्विप्रदेशी' एवं अनंत परमाणुओं से बने अणु को अनंतप्रदेशी स्कन्ध कहा गया है। जैन दर्शन में परमाणुओं के आकर्षण एवं विकर्षण सिद्धांत को भी प्रतिपादित किया गया है। जिसे हम वर्तमान की 'एटोमिक थ्योरी' के परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं।

जैन दर्शन में अविभागी परमाणु, अविभागी प्रदेश एवं अविभागी समय खोजे गये और इनकी राशि समूह द्वारा दृष्ट स्कन्ध, दृष्ट अंगुल तथा दृष्ट आवलि, मुहूर्त आदि संबोधित किये गये। इनसे पल्य, सागर, जग श्रेणी, जग प्रतर, घन लोक आदि समय राशियां तथा प्रदेश राशियाँ क्रमशः काल प्रमाण और क्षेत्र प्रमाण रूप में निर्मित की गईं। द्रव्य प्रमाण हेतु वर्तमान में वैज्ञानिक जहाँ नेनाग्राम इकाई (मिलीग्राम का भी कई लाखवां भाग)

तक जा पहुँचे हैं वहीं जैनाचार्यों ने द्रव्य प्रमाण हेतु संख्यामान गणनानन्त तक प्रस्थापित किया था।

वर्तमान विज्ञान ने फोटोन, ग्रेविटोन एवं ग्लूकोन जैसे अति सूक्ष्म कणों की खोजकर इन्हें भार रहित पदार्थ माना है। जैनाचार्यों ने पूर्व में ही दो तरह के पदार्थों का वर्णन किया – (अ) भारसहित एवं (ब) भाररहित। आत्मा का सिद्धांत इसका अति उत्तम उदाहरण है। जैन दर्शन के अनुसार संसारी अवस्था में आत्मा के चारों ओर कर्मों का एक आवरण होता है। बंध प्रक्रिया द्वारा यह कर्म आत्मा के चहुँ ओर अवस्थित रहते हैं। जैन दर्शन में 'कर्म सिद्धान्त' की विस्तृत व्याख्या की गई है जिसमें इन भार रहित कर्मों के गुण, स्थिति, गति इत्यादि को परिभाषित किया गया है। ब्रह्मांड के इन दो अवयवों, दीर्घ एवं सूक्ष्म पदार्थों को द्रव्य एवं बल के अंतर्गत वर्तमान में जाना जाता है।

कर्म सिद्धान्त एवं क्वान्टम–यांत्रिकी :

जैन दर्शन के अनुसार कार्य के प्रति नियामक हेतु को कारण कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है– अंतरंग एवं बहिरंग। अंतरंग कारण को उपादान और बहिरंग कारण को निमित्त कहते हैं। जो कार्य रूप परिणमता है वह उपादान कारण होता है और उसमें जो सहायक होता है वह निमित्त कारण कहलाता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य उपादान और निमित्त दोनों कारण मिलने पर ही संभव है। क्वान्टम यांत्रिकी के अनुसार सभी आवश्यक कारणों के मिलते हुए भी अभीष्ट कार्य होने की शत–प्रतिशत गारंटी नहीं है। समान कारणों के होते हुए भी फल असमान हो सकते हैं। कर्म सिद्धांत क्वान्टम यांत्रिकी को समझने में सहायक सिद्ध हो सकता है। जैन दर्शन में कर्म को अत्यंत सूक्ष्म पुद्गल कण माना गया है। यह कर्म रूपी पुद्गल आत्मा के साथ अनंत काल से संयोग बनाये हुए है एवं देश–काल के अनुरूप अपना प्रमाण दिलाते हैं। जीव इनसे प्रभावित होकर पुनः नये कर्म अर्जित करता है और यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। कर्मों की भी उदीरणा होने पर उसके फल में परिवर्तन आ सकता है। इसे क्वान्टम यांत्रिकी के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

जैन आहार संहिता :

जैन दर्शन में आत्म शुचिता के साथ–साथ अपने वातावरण एवं खान–पान की शुचिता को भी विशेष महत्त्व दिया गया है। पदार्थों का जितना सूक्ष्म वर्णन जैन धर्म में मिलता है उतना शायद कहीं भी प्राप्त नहीं होता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में यह भक्ष्य एवं अभक्ष्य पूरी तरह सही साबित होते हैं। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:–

1. आटे की मर्यादा वर्षाकाल में 3 दिन, गर्मी में 5 दिन और जाड़े में 7 दिन की कही गई है। वैज्ञानिक खोजों से सिद्ध हुआ है कि वर्षाकाल में नम–उष्ण वातावरण होने से एस्परजिलस, म्यूकर, राइजोपस, सेकेरोमाइसिस जैसे कवक एवं अनेक प्रकार के बैक्टीरिया आटे एवं अन्य खाद्य पदार्थों को संक्रमित कर देते हैं। जबकि जाड़े में इनका प्रभाव विलम्ब से हो पाता है।

2. शक्कर, किशमिश या छुहारा आदि मिले हुए दही की मर्यादा मात्र 48 मिनिट है क्योंकि मीठे पदार्थों के मिलने से दही में जीवाणुओं की सक्रियता बढ़ जाती है।

3. विधिवत निर्दोष विधि से बनाये गये दही की मर्यादा 24 घंटे की है क्योंकि उसके उपरांत इसमें एल्कोहिलिक फरमेन्टेशन प्रारम्भ हो जाता है।

4. जल को उबालने पर उसकी मर्यादा 24 घंटे की है। सामान्य रूप से गर्म करने पर 12 घंटे और मात्र

छानने पर 48 मिनिट की अवधि तक ही उसे प्रासुक माना जाता है। जल में इश्चिरिचिया कोलाई एवं क्लोस्ट्रिडियम नामक जीवाणु अत्यंत ज्यादा मात्र में होते हैं। जो उक्त अवधि के पश्चात् पुनः सक्रिय हो जाते हैं।

5. वनस्पति विज्ञान के अनुसार पंच उदम्बर फल वास्तव में फल न होकर असंख्य फूलों का समूह है। इसके भीतर सैकड़ों पुष्प समूह रूप में विद्यमान रहते हैं। आयुर्वेद में इसे 'जन्तु फल' भी कहा गया है। इस पुष्पासन में सैकड़ों कीट परागण हेतु प्रवेश करते हैं। एवं अन्दर ही मादा अपने अण्डे देती है। बहुत से कीट अंदर ही मर जाते हैं। अतः उदम्बर फल कीड़ों का जन्म–स्थान एवं शव–ग्रह दोनों ही हैं।

निगोदिया जीव एवं आधुनिक सूक्ष्म जीव विज्ञान

आधुनिक सूक्ष्म जीव विज्ञान की दृष्टि से अभी तक ज्ञात सूक्ष्म, जीव, जीवाणु (बैक्टीरिया), एवं विषाणु (वायरस) हैं। माइक्रोप्लाज्मा भी अति सूक्ष्म जीव है। इन सूक्ष्म जीवों की तुलना निगोदिया जीवों से कुछ मायने में की जा सकती है–

बैक्टीरिया और वायरस आदि सूक्ष्म जीवों की तरह निगोदिया जीव भी वातावरण में ठसाठस भरे हुए हैं।

आधुनिक सूक्ष्म जीवों की तरह निगोदिया जीव भी अनन्त होते हैं। एवं एक ही पोशक कोशिका या सम्पूर्ण शरीर में रहते हैं।

जिस प्रकार सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के आश्रित अनन्त साधारण या निगोदिया जीव पाये जाते हैं। इसी प्रकार हजारों ऐसी वनस्पतियाँ हैं जिनकी जड़, फल, फूल, पत्ती इत्यादि में बैक्टीरिया या वायरस का निवास होता है।

निगोदिया जीवों की तरह बैक्टीरिया की अनेक प्रजातियाँ गोलाकार होती हैं। वायरस भी निगोदिया जीवों के समान आयातकार या गोलाकार दोनों प्रकार के होते हैं।

जैन धर्म के अनुसार बोने के अन्तर्मुहुत पर्यन्त सभी वनस्पतियाँ अप्रतिष्ठित होती है, बाद में निगोदिया जीवों द्वारा निवास बना लेने से सप्रतिष्ठित हो जाती हैं। वनस्पति विज्ञान के अनुसार अनेक पौधों के बोने के उपरांत जैसे ही अंकुरण प्रारम्भ होकर जड़ें बनना प्रारम्भ होती हैं वैसे ही इन जड़ों में छोटी–छोटी गाँठें बन जाती हैं। जिसमें बैक्टीरिया अपना निवास बना लेते हैं।

निगोदिया की तरह बैक्टीरिया एवं वायरस जीव भी इतनी तीव्र गति से जन्म लेते हैं एवं वृद्धि करते हैं कि यह देख पाना असंभव हो जाता है कि कौन सा जीव नया उत्पन्न हुआ है एवं कौन सा पुराना।

जिस प्रकार निगोदिया का सम्मूर्छन जन्म होता है इसी प्रकार अधिकांश बैक्टीरिया भी अलैंगिक एवं बर्धी जनन से उत्पन्न होते हैं।

उक्त कारणों के अलावा अनेक असमानताएं भी दोनों के बीच हो सकती हैं परन्तु फिर भी दोनों ही प्रकार के जीव अपनी अपनी जगह अति सूक्ष्म जीव स्थापित किये गये हैं।

वनस्पतियों में लेश्या, कषाय, संज्ञा एवं संवेदना :–

जैन दर्शन में वर्णन किया गया है कि वनस्पतियों में भी अन्य जीवों की तरह लेश्यायें, कषायें, संज्ञाएं एवं संवेदनाएं होती हैं। आधुनिक वनस्पति विज्ञानियों ने भी अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:–

जैन दर्शन में कषायों से युक्त मन, वचन एवं काय की क्रिया को लेश्या कहा गया है। षट् लेश्याओं में कृष्ण, नील एवं कापोत अशुभ रूप हैं तथा पीत, पद्म व शुक्ल शुभ रूप हैं। तास्मानिया के जंगलों में पाया जाने वाला वृक्ष 'होरिजोन्टिल स्क्रब' की डालियां एवं जटायें मनुष्य के नजदीक आते ही इसके शरीर से लिपट जाती हैं, एवं तीव्र कषाय के कारण मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। इस पौधों में कृष्ण लेश्या का उपयुक्त उदाहरण है। इसी प्रकार अनेक पौधों के कुछ अंग अत्यन्त भड़कीले एवं चटकदार होते हैं जिनसे आकृष्ट होकर छोटे–छोटे कीट उन तक पहुंचते हैं एवं अन्दर फँसकर जान गंवा देते हैं। इन्हें नील लेश्या के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अनेक पौधे अत्यंत कांटेदार, दुर्गन्ध युक्त अथवा खुजली आदि उत्पन्न करते हैं इन्हें कापोत लेश्या युक्त कहा जा सकता है।

वनस्पतियों में कषायों की प्रधानता भी जैनधर्मानुसार देखी जा सकती है जैसे की गाजर, मूली, आलू, चुकन्दर आदि अपने शरीर में अत्याधिक भोज पदार्थों का संग्रहण कर लेते हैं जो कि लोभ का सूचक है। कीट भक्षी पौधों के कुछ अंग अति सुन्दर एवं चटकदार रंगों के होते हैं, जिनके वशीभूत होकर छोटे–छोटे कीट उनकी तरफ आकर्षित होते हैं एवं मर जाते हैं। यह माया का द्योतक है। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण कषायों के देखे जा सकते हैं।

आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह जैसी संज्ञाएं भी पौधों में पाई जाती हैं। आहार प्राप्त करने की अनेक विधियाँ पौधों में पाई जाती हैं। कुछ तो स्वयं भोजन का निर्माण करते है परन्तु अनेक ऐसे हैं जो परजीवी होते हैं। स्वच्छ से लेकर गंदे स्थानों में रहकर भी यह अपनी आहार संज्ञा की पूर्ति करते हैं। अनेक पौधे कांटेदार होते हैं अथवा दुर्गन्ध युक्त रसायन छू लेने पर छोड़ते हैं यह भय संज्ञा का प्रतीक है। अनेक विधियों से पौधों में मैथुन क्रिया भी होती है, एवं खाद्य सामग्री के रूप में परिग्रह भी इकट्ठा किया हुआ माना जा सकता है।

डॉ. जगदीशचन्द्र वसु के प्रयोगों ने काफी पूर्व ही वनस्पतियों में संवेदनशीलता को सिद्ध कर दिया है। भारतीय वैज्ञानिक डॉ. टी.एन. सिंह ने वनस्पतियों पर संगीत का स्पष्ट प्रभाव देखा। वेक्सटर नामक वैज्ञानिक ने तो पौधों की संवेदनशीलता के बारे में यहाँ तक कहा है कि वह कमरे में जाला बुनने वाली मकड़ियों तक की गतिविधियों पर नजर रखते हैं।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही अध्यात्म और विज्ञान को एक दूसरे का पूरक माना गया है। यहां धर्म और विज्ञान का टकराव प्राचीन यूरोप की तरह नहीं हुआ। यूरोप में धर्म के नाम पर वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति पर एक तरह से प्रतिबंध लगा हुआ था परन्तु अब वैज्ञानिक प्रगति के कारण वैचारिक स्वतंत्रता पर वहां कोई रोक नहीं है। विज्ञान के बारे में प्रचलित एक अन्य भ्रान्ति यह है कि जो पाश्चात्य एवं आधुनिक है वही वैज्ञानिक दृष्टि से सही है।

सम्मूर्च्छन जीव :

जैन दर्शन में सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति एवं जीवन से संबंधित विवरणों का अध्ययन करने पर लगता है कि हमारे आचार्यों का ज्ञान कितना सूक्ष्म एवं विस्तृत रहा होगा। जैन दर्शनानुसार चार इन्द्रिय तक के सभी जीवों तथा कुछ पंचेन्द्रिय जीवों का जन्म सम्मूर्च्छन विधि से होता है। यह भी अवधारणा है कि सभी सम्मूर्च्छन जीव नपुंसक ही होते हैं और इनमें नर–मादा का भेद स्पष्ट नहीं होता है। सम्मूर्च्छन जीवों के जन्म संबंधी तथ्यों को कुछ सीमा तक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि वातावरण में पुद्गल परमाणुओं

के संयोग से जो जीव जन्म लेता है वह सम्मूर्च्छन जन्म कहलाता है। इन जीवों में मैथुन संज्ञा सर्वाधिक होती है। वे गर्भ धारण नहीं कर सकते हैं अतः नपुंसक होते हैं।

वनस्पतिकायिक जीवों में मूल, अग्र, पर्व, कन्द, स्कन्ध, बीज एवं सम्मूर्च्छिम प्रकार की वनस्पतियां होती हैं। विज्ञान के अनुसार इन सभी वनस्पतियों में बर्धी अलैंगिक प्रकार के जनन की क्षमता होती है बर्धी जनन में वनस्पतियों के कुछ प्रमुख भागों को जब अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है तब वह अपने जैसा ही पौधा बना लेती हैं। इन भागों की एक छोटी सी कोशिका भी नया शरीर बनाने में सक्षम होती है। अतः उक्त प्रकार की बर्धी जनन की तुलना सम्मूर्च्छन जन्म से की जा सकती है। वनस्पति विज्ञान में पौधों अथवा पुष्पों में नर–मादा का अंतर बताया गया है परन्तु बाह्य रूप से देखने में इनमें अंतर ज्ञात नहीं होता है, केवल पुष्पीय अवस्था (जो कि अल्प समय की होती है) में ही यह अन्तर देखा जा सकता है। मनुष्यों एवं अन्य पंचेन्द्रियों की तरह पौधों में स्थायी जनन अंगों का अभाव होता है। अधिकांश वनस्पतियाँ कई प्रकार से प्रजनन करती हैं एवं उनके जीवन में हमेशा संतति वृद्धि हेतु यह प्रक्रिया चलती ही रहती है। यह भी सम्मूर्च्छन जीवों में अधिक मैथुन संज्ञा का द्योतक है। जैन धर्म में कहा गया है कि जीव अपनी–अपनी योनियों में जाकर जन्म लेते हैं अर्थात् योनि जीवों का उत्पत्ति स्थान है। चौरासी लाख योनियों के भेद भी बतलाये गये हैं। अतः ऐसा माना जा सकता है कि वनस्पतियों के जिस भाग से नये शरीर की संरचना बनती है वह जीव की उत्पत्ति अथवा योनिभूत स्थान है। क्योंकि वहाँ हवा, मिट्टी, पानी आदि के संयोग से अनुकूल योनि स्थान बनता है और जीव उसमें आकर जन्म लेता है।

इसी प्रकार गणित, खगोलशास्त्र आदि अनेक विषय हैं जहाँ जैनाचार्यों ने अद्भुत लेखन कर जगत को नये आयामों से परिचित कराया। एक बात अति महत्त्वपूर्ण है कि जहाँ विज्ञान नित नई घोषणायें करता है, अपने ही पूर्व सिद्धान्तों को नकार देता है वहीं जैन दर्शन में ऐसा कहीं देखने को नहीं मिलता है क्योंकि भगवंतों के दिव्य वचन कभी मिथ्या नहीं होते। वहाँ तो सर्वथा सत्य ही है। यहाँ इस बात को कहने का आशय यह भी नहीं है कि विज्ञान में मिथ्या ही होता रहता है। आवश्यकता इस बात की है धर्म क्षेत्र एवं विज्ञान क्षेत्र के विद्वान एक दूसरे के क्षेत्र की विशेषताओं एवं सिद्धान्तों को समझें एवं अध्ययन करें। तब निश्चित ही अनेक भ्रांतियों का पटाक्षेप हो सकेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैनिज्म इन साइन्स। लेखक डॉ. एम.आर. गेलरा, जैनविश्व भारती इन्स्टीट्यूट, लाडनूं प्रकाशन, २००२
2. आस्था और अन्वेषण, चतुर्थ जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी, बीना, ज्ञानोदय विद्यापीठ प्रकाशन, भोपाल १९९९
3. जीवन क्या है? लेखक डॉ. अनिल कुमार जैन मैत्री समूह प्रकाशन। २००२
4. जैनिज्म थ्रो साइन्स, लेखक मुनि श्री नन्दीघोष विजय जी, श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई प्रकाशन. १९९५
5. गोम्मटसार–जीव काण्ड, आचार्य नेमीचन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
6. मूलाचार, आचार्य बट्टेकर, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली।

4

श्रावकाचार में प्रतिपादित जैन जीवनशैली

प्रो. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' *(वाराणसी)*

विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रात्मक पद्धति वाले महान् भारत देश का नागरिक होना अपने आप में महान् गौरव का विषय है। एक आदर्श नागरिक अपनी संयमशीलता, नैतिकता और कर्तव्यशीलता के द्वारा स्वयं आत्मोन्नति करता हुआ अपने देश, समाज, धर्म एवं संस्कृति के ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के उत्थान एवं कल्याण में अपने जीवन की सार्थकता मानता है। ऐसा आदर्श नागरिक बनने की संपूर्ण शिक्षा हमें जैन श्रावकाचार के परिपालन से प्राप्त होती है। हमें ऐसी जीवनशैली प्रदान करता है, जिसमें मानव जीवन पूरी तरह सार्थक हो जाता है। तीर्थंकरों एवं उनकी परंपरा के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मूल्यबोध के स्तर पर आज जो कुछ हमारे पास है, वह हजारों वर्षों से चली आ रही हमारी जीवन शैली की देन है, जिसे हम श्रावकाचार के निचोड़ के आधार पर बनी जैन जीवनशैली कह सकते हैं।

जैन परम्परा में आचार के स्तर पर श्रावक और साधु– ये दो श्रेणियां हैं। श्रावक गृहस्थ होता है, उसे जीवन के संघर्ष में हर प्रकार का कार्य करना पड़ता है। जीविकोपार्जन के साथ ही आत्मोत्थान एवं समाजोत्थान के कार्य करना पड़ते हैं। अतः उसे ऐसे ही आचारगत नियमों आदि के पालन का विधान किया गया, जो व्यवहार्य हों। क्योंकि सिद्धान्तों की वास्तविकता क्रियात्मक जीवन में ही चरितार्थ ही सकती है। इसीलिए श्रावकोचित्त आचार–विचार के प्रतिपादन और परिपालन का विधान जैन जीवनशैली की विशेषता है।

श्रावकाचार ने सम्भवतः रूप से जीवन में समरसता और संतुलन उत्पन्न किया है। श्रावकाचार के परिपालन से जमीन के भीतर निरंतर असंख्यात सूक्ष्म जीवों की निश्चित उपस्थिति और उनकी हिंसा से बचने के लिए आलू, प्याज, लहसुन, मूली, अरबी, शकरकन्द आदि अनेक कन्दमूलों के सेवन का त्याग बहुबीजक का त्याग एक आदर्श श्रावक का प्रमुख कर्तव्य बतलाया गया है। आजकल मधुमेह, गैस आदि रोगों की उत्पत्ति में जमींकन्द की काफी भूमिका होती है। जो श्रावक व्रतों का पालन करता हो और जमींकन्द का त्यागी न हो तो उसके व्रतपालन निष्फल तो माने ही जाते हैं, साथ ही ऐसा श्रावक हंसी का भी पात्र बनता है।

जलगालन अर्थात् छने (प्रासुक) जल का प्रयोग

कपड़े से पानी छानने के बारे में कहते हैं– वस्त्र से गालित जलपान करने की महत्ता भी सर्वविदित है। अनछने जल में अनेक सूक्ष्म जीव होते हैं, वे जल के पीने के साथ साथ उदर में जाने पर अनेक स्वयं मर जाते हैं और अनेक जीवित रहकर बड़े हो जाते हैं और नेहरूआ जैसे भयंकर रोगों को उत्पन्न करते हैं। इसीलिए अनेक रोगों से बचने एवं जीव संरक्षण और स्वास्थ्य की दृष्टि से वस्त्र गालित जल का पीना आवश्यक है।

वस्त्र गालित जल पीना केवल जैनों का ही कर्तव्य नहीं, बल्कि आम जनता का भी है क्योंकि पानी सभी पीते हैं और सभी को शुद्धता चाहिए। जैनेतर ग्रन्थ भी पानी छानने का समर्थन करते हैं। मनुस्मृति में लिखा है– दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्र पूत जलं पिबेत्। अर्थात् जीव रक्षा हेतु देखकर कदम रखो और कपड़े से छना जल पिओ। लिंगपुराण में लिखा है–

सवंत्सरेण यत्पापं कुरुते मत्स्य वेधकः।
एकाहेन तदाप्नोति, अपूत जल संकुली॥

भावार्थ यह है कि मछली रोज मारने पर एक वर्ष में जितना पाप होता है उतना बिना छना पानी पीने वाला व्यक्ति एक दिन में पाप कमाता है।

आज परिवार, समाज या राष्ट्रीय स्तर पर जितनी भी समस्यायें उभरकर हम सभी को ही क्या, संपूर्ण विश्व को झकझोर रहीं हैं, परेशान कर रही हैं। उन सबके पीछे सदाचार शून्य जीवनशैली का प्राबल्य है। इसी कारण पारिवारिक जीवन भी प्रभावित हो रहा है। इसी से पारस्परिक प्रेम और सहयोग के स्थान पर कलह, तलाक, दहेज संबंधी हिंसा, भ्रूण–हत्यायें, आतंकवाद और पर्यावरण प्रदूषण जैसी विविध समस्यायें दिनों दिन बढ़ती ही जा रही हैं। इन सबका एक ही निदान है, हमारी जीवन शैली में सुधार। कहने को तो यह जैन जीवनशैली है, किन्तु वास्तविक रूप में यह प्रत्येक नागरिक के लिए आदर्श होने के कारण इसे *सामान्य जन जीवन शैली* कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

वस्तुतः व्रताचरण की दृष्टि से साधु और श्रावक का धर्म समान है, अलग नहीं। क्योंकि जिस सदाचरण से साधु को दूषण का पाप लगता है, उसी से श्रावक को भी लगता है। इसीलिए साधुत्व और श्रावकत्व दोनों आगम की आज्ञा में हैं। दोनों में अन्तर केवल मात्रा की दृष्टि से है। आंशिक व्रताचरण श्रावकत्व है और संपूर्ण व्रताचरण साधुत्व है। जैन जीवन शैली में श्रावक के निम्नलिखित दैनिक षट्कर्म प्रमुख माने गये हैं–

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने–दिने॥

अर्थात् गृहस्थ को देवपूजा, गुरूभक्ति, स्वाध्याय के साथ संयम धारण करते हुए दान आदि षट्कर्मो को नित्य प्रति करते रहना चाहिए।

यद्यपि श्रावकाचार का प्रतिपादन मात्र इतना ही नहीं है, अपितु काफी सूक्ष्मता और गहनता से मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर इसका विवेचन किया गया है। इसमें देश, काल आदि के अनुसार इसका विकास भी श्रावकाचार साहित्य में परिलक्षित होता है। विशेषकर पांच अणुव्रतों के अतिचारों के त्याग से तो इन व्रतों का व्यावहारिक रूप इतना अच्छा बनता है कि इससे विविध समस्याओं का समाधान अपने आप प्राप्त हो जाता है। श्रावकाचार के परिपालन से जिस जीवन शैली का विकास होता है, उससे उत्तरोत्तर जीवन के विकास की दिशा प्राप्त होती है, इसी विकास को जैन परम्परा में श्रावक की एकादश (ग्यारह) प्रतिमाओं में परिभाषित किया गया है। ये एकादश प्रतिमायें श्रावक के उत्तरोत्तर नैतिक एवं चारित्रिक विकास की परिचायक हैं। साथ ही ये श्रमण

जीवन की उपलब्धि हेतु मंगल प्रवेश द्वार हैं। जिन पर क्रमशः आरोहण करता हुआ यह श्रावक श्रमण की अन्तर्यात्रा का आत्म पुरुषार्थ प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः श्रावकाचारों में श्रावक की निम्नलिखित तिरेपन क्रियायें वर्णित हैं– आठ मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, समता परिणाम (कषायों की मंदता), ग्यारह प्रतिमायें, चार प्रकार के दान, जल छानना, रात्रिभोजन त्याग दर्शन, ज्ञान, चारित्र का यथाशक्ति पालन, इनसे श्रावक परम्परा या मोक्ष का अधिकारी बनकर मनुष्य जीवन को सफल बनाता है।

यद्यपि जैनों में इन अष्टगुणों के पालन की परम्परा प्रारम्भ से ही चली आ रही है, फिर भी प्रायः सभी श्रावकाचारों में बारम्बार इनके धारण हेतु इसलिए जोर दिया गया है, ताकि इनमें पालन की सुरीति अखण्डित बनी रहे। यद्यपि यह भी सही है कि जैनाचार्य अपने ग्रन्थों में इनके परिपालन पर जोर न देते तो निश्चित ही जैनों में इन दुर्व्यसनों का प्रवेश हो जाता। फिर भी आधुनिक सभ्यता से प्रभावित कुछ परिवारों में मद्य, मांस आदि का प्रवेश चिंता का विषय है। यह जैन जीवनशैली के लिए कलंक है। मद्यपान और मांसाहार से होने वाली हिंसा और हानियों आदि के विवरण देने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इनसे असंख्य जीवों की हिंसा तो होती ही है, साथ ही शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक संतुलन भी बिगड़ता है।

वस्तुतः धर्म के आचार और आध्यात्मिक पक्ष से तो सभी परिचित हैं, किन्तु धर्म का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है 'व्यावहारिक पक्ष'। इसी से हमारी जीवनशैली निर्मित होती है। इसका लोकनीति, राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदि सभी नीतियों से घनिष्ट संबंध है। किसी भी धर्म के सिद्धान्त कितने ही श्रेष्ठ या आकर्षक क्यों न हों, यदि चारों ओर मानवीय सृष्टि के लिए वे सिद्धान्त व्यावहारिक न हों तो वे सारे मूल्य और सिद्धान्त निरर्थक, निरुपयोगी और निर्मूल्य सिद्ध हो जाते हैं। इसीलिए धार्मिक और नैतिक मूल्य वैज्ञानिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में हमारी जीवन शैली की कसौटी पर खड़े हैं। इसीलिए जैनाचार्यों ने स्पष्ट कर दिया कि जैनधर्म में बहते हुए पानी की तरह चिर–नवीनता है, वह किसी के पैरों के बेड़ियां नहीं बनता। आचार्य सोमदेव सूरि ने कह दिया कि–

सर्व एव हि जैनानां लौकिको विधिः यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, यत्र नो व्रतदूषणम्॥

अर्थात् जैनों को सभी प्रकार के लौकिक रीति–रिवाज समयधर्म के अनुसार मान्य हो सकते हैं, किन्तु मात्र शर्त यही है कि किसी प्रकार भी सम्यक्त्व की हानि न हो और अहिंसा आदि व्रतों में दूषण भी न लगे। क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर विविध गृहकार्य, जीविकोपार्जन आदि अनिवार्य हैं, किन्तु इन सबके करते सम्पूर्ण रूप से हिंसा से बचना कठिन होता है। अतः गृहस्थ को स्थूल–हिंसा अर्थात् संकल्पी हिंसा का त्यागी अर्थात् अहिंसा अणुव्रती कहा गया है।

जैन जीवनशैली अहिंसाधिष्ठित मानी जाती है और अहिंसा की चर्चा यद्यपि हर युग में होती आयी है, लेकिन आज विश्व स्तर पर जैसी विषम परिस्थितियाँ बनीं हुई हैं, वैसी पहले नहीं रहीं। वस्तुतः व्यवहार रूप में अहिंसा का प्रारम्भ से लेकर अब तक हम स्वरूप–विश्लेषण करते हैं तो हम पाते हैं कि अहिंसा ने अपना मूल स्वरूप रखते हुए हर युग में एक नवीन अर्थ पाया है और अपने को व्यापक बनाया है। इसीलिए अहिंसा सदा सुरक्षित प्रासंगिक रही है। मानव इतिहास से ज्ञात होता है कि साम्राज्य वृद्धि के लिए युद्धों का सूत्रपात हुआ। स्वदेश रक्षा चाहने वालों ने तो विवशतया इसे अपनाया। फिर भी यदि मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाय और हिंसा के विकास में लगने वाली उसकी शक्ति अहिंसा के विकास में लग जाय तो राष्ट्र सुरक्षा तक के प्रश्न में अहिंसा किसी प्रकार अव्यावहारिक नहीं रह जाती।

अहिंसा का सही रूप में पालन तभी सम्भव है, जब इसके साथ सत्य, अस्तेय (अचौर्य), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह– इन चार व्रतों का संतुलन बैठा हुआ हो। इसीलिए इस युग में जीवन मूल्यों को शाश्वत रखने के लिए

अहिंसानिष्ट जीवन प्रणाली उपादेय है।

सामान्यतः प्रत्येक जीव के कषायमूलक भाव दो प्रकार के होते हैं– रागरूप और द्वेषरूप। इनमें से द्वेषमूलक जितने भी भाव होते हैं, वे सब हिंसा के अन्तर्गत माने जाते हैं। गृहस्थ को इनकी रक्षार्थ अपना कर्तव्य पालन करने के लिए सामने वाले का डटकर मुकाबला भी करना आवश्यक हो जाता है, किन्तु ऐसे समय मात्र धर्म, राष्ट्र आदि की रक्षा भाव होना चाहिए, उसे मारने का नहीं। यद्यपि यह भी सम्भव है कि रक्षा के भावों के रहते सामने वाले की मृत्यु भी हो जाये। तब यदि हमारे भाव मात्र रक्षा के थे, तो यह आपेक्षिक अहिंसा कहलायेगी और यदि कषायवश हमारे भाव मात्र सामने वाले को मारने के थे, तब वही हिंसा कहलायेगी, जिसे हम संकल्पी–हिंसा कहते हैं। इसीलिए आचार्य उमास्वामी ने हिंसा की परिभाषा करते हुए कहा है– 'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा' अर्थात् प्रमाद के योग से किसी भी प्राणी के प्राणों का घात करना हिंसा है। यहां 'प्रमाद का योग' यह पद विशेष महत्व रखता है, क्योंकि जहां प्रमाद का योग नहीं है, वहां हिंसा सम्भव नहीं है।

न मालूम यह भूल कब से होती चली आयी कि मानव समाज ने अपनी अनेक विषम स्थितियों का समाधान हिंसा में ही समझा। इस कारण उसके जीवन में हिंसा ही अधिक विकसित हुई। आज जब भी यह बताया जाता है कि बड़े से बड़ी गुत्थी अहिंसा के आधार पर सुलझाई जा सकती है, तो असम्भवता और अव्यावहारिकता के समस्त दोष लोगों के विचारों में नाचने लगते हैं। समझ में यह नहीं आता कि जब सारा संसार एकमत है कि युद्ध मानव–संस्कृति एवं सभ्यता का केवल विध्वंस और विनाश ही करते हैं, तथापि सम्पूर्ण विश्व में सर्वत्र युद्ध–सामग्री के अधिकाधिक संग्रह की मानो होड़ लगी है। आज हिंसा के विकास के लिए जितना धन, श्रम, शक्ति का व्यय, तोड़–फोड़ एवं क्रूरतापूर्वक परस्पर विध्वंस एवं विनाश करने में अनेक राष्ट्र लगे हैं, यदि वे सभी राष्ट्र मिलकर एक चौथाई प्रयत्न भी अहिंसा के लिए करें तो संपूर्ण विश्व को वह अहिंसा इच्छित वरदान दे सकती है।

रात्रि–भोजन

विशेषकर रात्रिभोजन निषेध तो जैनों की कुल परम्परा है। बिना रात्रिभोजन त्याग के किसी भी व्रत को धारण करने का पक्ष तक स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि यही तो व्रतों के अनुशीलन–ग्रहण का मंगलाचरण है। इन्हीं सब गुणों से प्रभावित जीवनशैली के कारण अब देश और विदेश की यात्रा करने वालों के लिए हवाई जहाजों में 'जैन आहार' की विशेष व्यवस्था होना कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह जैन जीवनशैली का प्रभाव है। आज पाश्चात्य संस्कृति और उपभोक्तावादी आधुनिक जीवनशैली के प्रभाव से इन मूल्यो का ह्रास होते देखा जा रहा है। रात्रि तमः अर्थात् अन्धकार की सूचक है। इसीलिए रात्रि को तमिस्त्रा भी कहा जाता है और तमः में बना भोजन तामसिक भोजन कहा गया है। ऐसा भोजन सर्वथा वर्जित है। जबकि सूर्य के प्रकाश में बना और दिन में ग्रहण किया गया शुद्ध आहार ही सात्विक आहार कहलाता है। और यही आहार सुख, सत्व और बल प्रदाता होता है। इसीलिए श्राद्धकर्म, स्नान, दान, आहुति, यज्ञ आदि शुभ कार्य एवं धार्मिक क्रियाएं वैदिक परम्परा में भी रात्रि में निषिद्ध मानी हैं। अतः बुद्धिमान पुरुष रात्रि में भोजन नहीं करते। वसुनन्दि श्रावकाचार (३२४) में कहा है–

अहिंसाव्रत रक्षार्थं, मूलव्रत विशुद्धये।
निशायां वर्जयेत् भुक्तिं इहामुत्र च दुःखदाम्॥

अर्थात् अहिंसाव्रत की रक्षा और आठ मूलगुणों की निर्मलता के लिए, साथ ही इस शरीर को निरोगी रखने एवं परलोक के दुःखो से बचने के लिए रात्रिभोजन का त्याग कर देना चाहिए। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय उपासकाध्ययन में भी ऐसे ही कथन है।

आरोग्यशास्त्र में आहार ग्रहण के बाद तीन घंटे तक शयन करना स्वास्थ्य के विरुद्ध बताया है। वस्तुतः सूर्य

के प्रकाश में नीले आकाश के रंग में सूक्ष्म कीटाणु स्वतः नष्ट हो जाते हैं या उत्पन्न ही नहीं हो पाते, जबकि रात्रि के कृत्रिम प्रकाश में उन सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति सहज और अधिक होती है। जो भोजन में भी मिल जाने और गिरने आदि से हिंसा तो होती ही है, अनेक शारीरिक असाध्य रोगों की उत्पत्ति का खतरा भी बना रहता है। अमितगति श्रावकाचार में कहा है कि दिन के आदि और अन्त की दो–दो घड़ी के समय को छोड़कर जो भोजन निर्मल सूर्य के प्रकाश में निराकुल होकर करते हैं वे मोहांधकार को नाशकर अर्हन्त् पद पाते हैं।

क्योंकि आधुनिक विज्ञान ने भी यह सिद्ध किया है कि प्रकाश की सम्पूर्ण आंतरिक परावर्तन की घटना के कारण पूर्व दिशा में सूर्य अपने वास्तविक उदयकाल से दो घड़ी पूर्व ही दिखने लगता है, किन्तु वह वास्तविक सूर्य न होकर उसका आभासी प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है। इसी प्रकार वास्तविक सूर्य डूब जाने के बाद भी दो घड़ी तक उसका आभासी प्रतिबिम्ब ही दिखलाई देता रहता है। सूर्य के इस आभासी प्रतिबिम्ब में दृश्य किरणों के साथ अवरक्त लाल किरणें एवं अल्ट्रावायलेट किरणें नहीं होतीं, क्योंकि वे सूर्योदय के मात्र ४८ मिनट बाद आती हैं और सूर्यास्त के ४८ मिनट पूर्व ही समाप्त हो जाती हैं। इसी कारण सूर्योदय के दो घड़ी बाद और सूर्यास्त के दो घड़ी पूर्व भोजन ग्रहण की व्यवस्था आरम्भ से ही जैन परम्परा में सुनिश्चित रही है। (जिनभाषित जनवरी २००५ में प्राचार्य निहालचंद जैन) इसीलिए कार्तिकेयानुप्रेक्षा (८२) में तो यहां तक कहा है–

जो णिसिं भुक्ति वज्जदि, सो उववासं करेंदि छम्मासं।
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं चयदि रयणीए॥

अर्थात् जो पुरुष रात्रिभोजन त्याग करता है, वह एक वर्ष में छह मास के उपवास करता है, क्योंकि वह रात्रि में आरम्भ का त्याग करता है।

आहार शुद्धि एवं आहार ग्रहण शैली

आहार शुद्धि भी जैन जीवनशैली का महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत मर्यादा पूर्वक शुद्ध भोज्य सामग्री का उपयोग, चौका शुद्धि तथा भोजन पकाने की शुद्धता पर विशेष जोर देना – ये सब आहारशुद्धि के अंग हैं। इसी शुद्धता के कारण भोजन शुद्धि को जैन जीवनशैली की प्रतिष्ठा और आदर संपूर्ण देश में आज भी है। इस मर्यादा की रक्षा हम लोगों का प्रमुख कर्तव्य है। इसिलिए आहार के शुद्ध–अशुद्ध का विशेष महत्व है।

सूर्य के आताप वाले स्थान पर, संकाश (तत्सदृश उष्ण स्थान) स्थान पर, अन्धकार युक्त मकान में और वृक्ष के नीचे बैठकर तथा तर्जनी को ऊंची करके कदापि नहीं रखना चाहिए। मुख, हाथ और पैरों को बिना धोये, नंगे शरीर और मलिन वस्त्र पहने हुए तथा वाम हाथ से कभी नहीं खावे। साथ ही कहीं पर किसी के पात्र में अथवा जिस पात्र में भोजन बना हो उसी पात्र में भोजन नहीं करना चाहिए। एक वस्त्र पहनकर और गीले वस्त्र से मस्तक ढंककर, अपवित्रता और अतिगृद्धता से बुद्धिमान पुरुष को कभी नहीं खाना चाहिए। और भी आगे कहा है– जूतों को पहने हुए, व्यग्रचित्त होकर, भूमि में बैठकर, पलंग खाट पर बैठकर, दक्षिण दिशा और विदिशाओं की ओर मुख करके भी कभी नहीं खावे। गादी आदि आसन पर बैठकर अयोग्य स्थान पर बैठकर, कुत्तों और चाण्डालों के द्वारा देखे जाते हुए तथा जाति व धर्म से पतित पुरुषों के साथ, फूटे और मैले भाजन में रखे हुए भोजन को कभी न खावे। अपवित्र–वस्तु जनित भोजन नहीं खावे। भ्रूण आदि हत्या करनेवालों के द्वारा देखा गया, रजस्वला स्त्री के द्वारा बनाया गया, परोसा गया या छूआ गया भोजन भी नहीं खावे..... मुख से बच–बच या चप–चप शब्द करते व मुख को विकृत करते हुए भी नहीं खाना चाहिए। (कुन्दकुन्द श्रावकाचार ३/३०–३६)

इस तरह श्रावकाचारों में विविध प्रकार से आहार शुद्धि का अच्छा प्रतिपादन किया गया है, ये सभी अंग हमारी आदर्श जीवनशैली के परिचायक हैं।

5

आर्यखण्ड

गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। उन सबके मध्य सर्वप्रथम द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन (४० करोड़ मील) विस्तार वाला, थाली के समान गोल है। इस द्वीप के बीचों–बीच एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है जिसका भूमि पर विस्तार दस हजार योजन है।

इस जम्बूद्वीप में पूर्व–पश्चिम लम्बे, दक्षिण दिशा से लेकर हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ऐसे छह कुलपर्वत हैं। इनसे विभाजित भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के १९०वाँ भाग अर्थात् (१००००० ÷ १९० = ५२६, ६/१९) पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजन प्रमाण है। इससे आगे हिमवान् पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से दूना है। आगे–आगे के क्षेत्र और पर्वत विदेह क्षेत्र तक दूने–दूने होते हुए पुनः आगे आधे–आधे होते गये हैं। अंतिम ऐरावत क्षेत्र, भरत क्षेत्र के समान प्रमाण वाला है।

भरत क्षेत्र के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। यह ५० योजन (२००००० मील) चौड़ा और २५ योजन (१००००० मील) ऊँचा है। यह दोनों कोणों से लवण समुद्र को स्पर्श कर रहा है, रजतमयी है, इसमें तीन कटनी हैं, अंतिम कटनी पर कूट और जिनमंदिर हैं।

हिमवान् आदि छहों पर्वतों पर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंच्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह सरोवर हैं। इन सरोवरों से गंगा–सिंधु, रोहित–रोहितास्या, हरित–हरिकान्ता, सीता–सीतोदा, नारी–नरकान्ता, सुवर्णकूला–रूप्यकूला और रक्ता–रक्तोदा ये चौदह नदियाँ निकलती हैं। प्रथम और अंतिम सरोवर से तीन–तीन एवं अन्य सरोवरों से दो–दो नदियाँ निकलती हैं। प्रत्येक क्षेत्र में दो–दो नदियाँ बहती हैं।

प्रत्येक सरोवर में एक–एक पृथ्वीकायिक कमल हैं। जिन पर क्रम से श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी देवियाँ निवास करती हैं। इनमें देवियों के परिवार कमल भी हैं जो कि मुख्य कमल से आधे प्रमाण वाले हैं।

भरत क्षेत्र में गंगा–सिंधु नदी और विजयार्ध पर्वत के निमित्त से छह खण्ड हो जाते हैं। ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत तथा रक्ता–रक्तोदा नदियों के निमित्त से छह खण्ड हो जाते हैं।

इस जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में षट्काल परिवर्तन होता रहता है। हैमवत, हरि, विदेह के अन्तर्गत देवकुरु, उत्तरकुरु, रम्यक और हैरण्यवत इन छह स्थानों पर भोगभूमि की व्यवस्था है जो कि सदाकाल एक सदृश होने से शाश्वत है। विदेह क्षेत्र में पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह, ऐसे दो भेद हो गये हैं। उनमें भी वक्षार पर्वत तथा विभंगा नदियों के निमित्त से बत्तीस विदेह हो गये हैं। इन सभी में विजयार्ध पर्वत हैं तथा गंगा–सिंधु और रक्ता–रक्तोदा नदियाँ बहती हैं। इस कारण प्रत्येक विदेह में भी छह–छह खण्ड हो जाते हैं। सभी में मध्य का एक आर्यखण्ड है, शेष पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं। सभी विदेह क्षेत्र में चतुर्थकाल के प्रारंभ के समान कर्मभूमि की व्यवस्था सदा काल रहती है अतः इन विदेहों में शाश्वत कर्मभूमि रचना है। मात्र भरत ऐरावत क्षेत्र में ही वृद्धि ह्रास होता है। जैसाकि उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र में कहा है–

"भरतैरावतयोर्वृद्धि–ह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्"

भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह काल परिवर्तन वृद्धि–ह्रास होता रहता है। इस सूत्र के भाष्य में श्री विद्यानंद आचार्य कहते हैं कि–

"तास्थ्यात्ताच्छब्द्यसिद्धेर्भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासयोगः अधिकरणनिर्देशो वा, तत्रस्थानां हि मनुष्यादीनामनुभवायुः प्रमाणादिकृतौ वृद्धिह्रासौ षट्कालाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।[1]"

उसमें स्थित हो जाने के कारण उसके वाचक शब्द द्वारा कहे जाने की सिद्धि है, इस कारण भरत और ऐरावत क्षेत्रों के वृद्धि और ह्रास का योग बतला दिया है। अथवा अधिकरण निर्देश मान करके उनमें स्थित हो रहे, मनुष्य, तिर्यंच आदि जीवों के अनुभव, आयु, शरीर की ऊँचाई, बल, सुख आदि का वृद्धि ह्रास समझना चाहिए।

आगे के सूत्र में स्वयं ही श्री उमास्वामी आचार्य ने कह दिया है।

"ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः"[3] ॥२९॥

इन दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त जो भूमियाँ हैं वे ज्यों की त्यों अवस्थित हैं। अर्थात् अन्य हैमवत आदि क्षेत्रों में जो व्यवस्था है सो अनादिनिधन है वहाँ षट्काल परिवर्तन नहीं है।

इस बात को इसी ग्रंथ में चतुर्थ अध्याय के "मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयोनृलोके?[4] ॥१३॥" इस सूत्र के भाष्य में श्री विद्यानंद आचार्य ने अपने शब्दों में ही स्पष्ट किया है। जिसकी हिन्दी पं. माणिकचंद जी न्यायाचार्य ने की है। वह इस प्रकार है–

"वह भूमि का नीचा ऊँचापन भरत ऐरावत क्षेत्रों में कालवश हो रहा देखा जा चुका है। स्वयं पूज्यचरण सूत्रकार का इस प्रकार वचन है कि भरत ऐरावत क्षेत्रों के वृद्धि और ह्रास छह समय वाली उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालों करके हो जाते हैं। अर्थात् भरत और ऐरावत में आकाश की चौड़ाई न्यारी–न्यारी एक लाख के एक सौ नब्बेवें भाग यानी पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजन की ही रहती है। किन्तु अवगाहन शक्ति के अनुसार इतने ही आकाश में भूमि बहुत घट–बढ़ जाती है। न्यून से न्यून पाँच सौ छब्बीस, छह बटे उन्नीस योजन भूमि अवश्य रहेगी। बढ़ने पर इससे कई गुनी अधिक हो सकती है। इसी प्रकार अनेक स्थल कहीं बीसों कोस ऊँचे, नीचे, टेढ़े, तिरछे, कोनियाये हो रहे हो जाते हैं। अतः भ्रमण करता हुआ सूर्य जब दोपहर के समय ऊपर आ जाता है, तब सूर्य से सीधी रेखा पर समतल भूमि में खड़े हुए मनुष्यों की छाया किंचित् भी इधर–उधर नहीं पड़ेगी। किन्तु नीचे ऊँचे तिरछे प्रदेशों पर खड़े हुए मनुष्यों की छाया इधर–उधर पड़ जायेगी। क्योंकि सीधी रेखा का मध्यम ठीक नहीं पड़ा हुआ है। भले ही लकड़ी को टेढ़ी या सीधी खड़ी कर उसकी छाया को देख लो।"

"तन्मनुष्याणामुत्सेधानुभवायुरादिभिर्वृद्धिह्रासौ प्रतिपादितौ न भूमेरपरपुद्गलैरिति न मन्तव्यं, गौणशब्दाप्रयोगान्मुख्यस्य घटनादन्यथा मुख्यशब्दार्थातिक्रमे प्रयोजनाभावात्। तेन भरतैरावतयोः

क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ मुख्यतः प्रतिपत्तव्यौ, गुणभावतस्तु तत्स्थमनुष्याणामिति तथावचनं सफलतामस्तु ते प्रतीतिश्चानुल्लंघिता स्यात्''[५]

थोड़े आकाश में बड़ी अवगाहना वाली वस्तु के समा जाने में आश्चर्य प्रकट करते हुए कोई विद्वान यों मान बैठे हैं कि भरत, ऐरावत क्षेत्रों की वृद्धि हानि नहीं होती है, किन्तु उनमें रहने वाले मनुष्यों के शरीर की उच्चता, अनुभव, आयु, सुख आदि करके वृद्धि और ह्रास हो रहे सूत्रकार द्वारा समझाये गये हैं। अन्य पुद्गलों करके भूमि के वृद्धि और ह्रास सूत्र में नहीं कहे गये हैं। ग्रंथकार कहते हैं कि यह तो नहीं मानना चाहिए। क्योंकि गौण हो रहे शब्दों का सूत्रकार ने प्रयोग नहीं किया है। अतः मुख्य अर्थ घटित हो जाता है।..... इसलिए भरत ऐरावत शब्द का मुख्य अर्थ पकड़ना चाहिए। उस कारण भरत और ऐरावत दोनों क्षेत्रों की वृद्धि और हानि हो रही मुख्यरूप से समझ लेनी चाहिए। हाँ, गौणरूप से तो उन दोनों क्षेत्रों में ठहर रहे मनुष्यों के अनुभव आदि करके वृद्धि और ह्रास हो रहे समझ लो, यों तुम्हारे यहाँ सूत्रकार का तिस प्रकार का वचन सफलता को प्राप्त हो जावो और क्षेत्र की वृद्धि या हानि मान लेने पर प्रत्यक्ष सिद्ध या अनुमान सिद्ध प्रतीतियों का उल्लंघन नहीं किया जा चुका है।

भावार्थ– समय के अनुसार अन्य क्षेत्रों में नहीं केवल भरत, ऐरावत में ही भूमि ऊँची, नीची घटती बढ़ती हो जाती है। तदनुसार दोपहर के समय छाया का घटना, बढ़ना या क्वचित् सूर्य का देर या शीघ्रता से उदय, अस्त होना घटित हो जाता है। तभी तो अगले ''ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः'' इस सूत्र में पड़ा हुआ 'भूमयः' शब्द व्यर्थ संभव न होकर ज्ञापन करता है कि भरत, ऐरावत क्षेत्र की भूमियाँ अवस्थित नहीं हैं। ऊँची–नीची घटती–बढ़ती हो जाती हैं।[६]

इसी ग्रंथ में अन्यत्र लिखा है कि कोई गहरे कुएँ में खड़ा है उसे मध्यान्ह में दो घंटे ही दिन प्रतीत होगा बाकी समय रात्रि ही दिखेगी।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि आज जो भारत और अमेरिका आदि में दिन रात का बहुत बड़ा अन्तर दिख रहा है वह भी इस क्षेत्र की वृद्धि हानि के कारण ही दिख रहा है।

तथा जो पृथ्वी को गोल नारंगी के आकार की मानते हैं उनकी बात भी कुछ अंश में घटित की जा सकती है।

श्री यतिवृषभ आचार्य कहते हैं–

छटे काल के अंत में उनंचास दिन शेष रहने पर घोर प्रलय काल प्रवृत्त होता है। उस समय सात दिन तक महागंभीर और भीषण संवर्तक वायु चलती है जो वृक्ष, पर्वत और शिला आदि को चूर्ण कर देती है पुनः तुहिन–बर्फ, अग्नि आदि की वर्षा होती है। अर्थात् तुहिनजल, विषजल, धूम, धूलि, वज्र और महाअग्नि इनकी क्रम से सात–सात दिन तक वर्षा होती है। अर्थात् भीषण आयु से लेकर उनंचास दिन तक विष अग्नि आदि की वर्षा होती है। ''तब भरत क्षेत्र के भीतर आर्यखण्ड में चित्रा पृथ्वी के ऊपर वृद्धिंगत एक योजन की भूमि जल कर नष्ट हो जाती है। वज्र और महाअग्नि के बल से आर्यखण्ड की बढ़ी हुई भूमि अपने पूर्ववर्ती स्कंध स्वरूप को छोड़कर लोकान्त तक पहुँच जाती है।''[७]

यह एक योजन २००० कोश अर्थात् ४००० मील का है। इस आर्यखण्ड की भूमि जब इतनी बढ़ी हुई है तब इस बात से जो पृथ्वी को नारंगी के समान गोल मानते हैं उनकी बात कुछ अंशों में सही मानी जा सकती है। हाँ, यह नारंगी के समान गोल न होकर कहीं–कहीं आधी नारंगी के समान ऊपर में उठी हुई हो सकती है।

षट्काल परिवर्तन

त्रिलोकसार में कहते हैं– पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम के दो काल वर्तते हैं। अवसर्पिणी काल के सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा–दुःषमा, दुःषमासुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा

नाम से छह काल होते हैं। उत्सर्पिणी के इससे उल्टे अतिदुःषमा, दुःषमा, दुःषमासुषमा, सुषमादुषमा, सुषमा और सुषमासुषमा नाम से छह काल होते हैं।

उन सुषमासुषमा आदि की स्थिति क्रम से चार कोड़ाकोड़ी सागर, तीन कोड़ाकोड़ी सागर, दो कोड़ाकोड़ी सागर, ४२ हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, इक्कीस हजार वर्ष और इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है। उत्सर्पिणी में इससे विपरीत है। इनमें से सुषमासुषमा आदि तीन कालों में उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है।

प्रथम काल की आदि में मनुष्यों की आयु का प्रमाण तीन पल्य है, आगे ह्रास होते–होते अन्त में दो पल्य प्रमाण है। वितीय काल के प्रारंभ में दो पल्य और अंत में एक पल्य प्रमाण है। तृतीय काल के प्रारंभ में एक पल्य और अंत में पूर्वकोटि प्रमाण है। चतुर्थकाल के प्रारंभ में पूर्व कोटिवर्ष, अंत में १२० वर्ष है। पंचमकाल की आदि में १२० वर्ष अंत में २० वर्ष है। छठे काल के प्रारंभ में २० वर्ष, अन्त में १५ वर्ष प्रमाण है। उत्सर्पिणी में इससे उल्टा समझना।

प्रथम काल के मनुष्य तीन दिन बाद भोजन करते हैं, द्वितीय काल के दो दिन बाद, तृतीय काल के एक दिन बाद, चतुर्थ काल के एक दिन में दो बार, पंचम काल के बहुत बार और छटे काल के बार–बार भोजन करते हैं।

तीन काल तक के भोगभूमिज मनुष्य दश प्रकार के कल्पवृक्षों से अपना भोजन आदि ग्रहण करते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी की व्यवस्था

इस अवसर्पिणी काल के तृतीय काल में पल्य का आठवाँ भाग अवशिष्ट रहने पर प्रतिश्रुति से लेकर ऋषभदेव पर्यंत १५ कुलकर हुए हैं।[८]

तृतीय काल में ही तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशिष्ट रहने पर ऋषभदेव मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। ऐसे ही अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर भी चतुर्थ काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहने पर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। वर्तमान में पंचमकाल चल रहा है इसके तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहने पर अंतिम वीरांगद मुनि के हाथ से कल्कि राजा द्वारा ग्रास को कररूप में मांगे जाने पर मुनि का चतुर्विध संघ सहित सल्लेखना ग्रहण कर लेने से धर्म का अन्त, राजा का अन्त और अग्नि का अंत एक ही दिन में हो जावेगा।

प्रलयकाल

छठे काल के अंत में संवर्तक नाम की वायु पर्वत, वृक्ष और भूमि आदि को चूर्ण कर देती है। तब वहाँ पर स्थित सभी जीव मूर्च्छित हो जाते हैं। विजयार्ध पर्व, गंगा–सिंधु नदी और क्षुद्र बिल आदि के निकट रहने वाले जीव इनमें स्वयं प्रवेश कर जाते हैं तथा दयावान देव और विद्याधर कुछ मनुष्य आदि युगलों को वहाँ से ले जाते हैं।[९] इसे छटे काल के अन्त में पवन, अतिशील पवन, क्षाररस, विष, कठोर अग्नि, धूलि और धुँआ इन सात वस्तुओं की क्रम से सात–सात दिन तक वर्षा होती है। अर्थात् ४९ दिनों तक इस अग्नि आदि की वर्षा होती है। उस समय अवशेष रहे मनुष्य भी नष्ट हो जाते हैं, काल के वश से विष और अग्नि से दग्ध हुई पृथ्वी एक योजन नीचे तक चूर–चूर हो जाती है।

इस अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी काल आता है। उस समय मेघ क्रम से जल, दूध, घी, अमृत और रस की वर्षा सात–सात दिन तक करते हैं। तब विजयार्ध की गुफा आदि में स्थित जीव पृथ्वी के शीतल हो जाने पर वहाँ से निकल कर पृथ्वी पर फैल जाते हैं। आगे पुनः अतिदुःषमा के बाद दुःषमा आदि काल वर्तते हैं। इस प्रकार भरत और ऐरावत के आर्यखण्डों में यह षट्काल परिवर्तन होता है अन्यत्र नहीं है।

अन्यत्र क्या व्यवस्था है

देवकुरु और उत्तरकुरु में सुषमा–सुषमा काल अर्थात् उत्तम भोगभूमि है। हरि क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र में सुषमा

काल अर्थात् मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। हैमवत और हैरण्यवत में सुषमा–दुःषमा काल अर्थात् जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है तथा विदेह क्षेत्र में सदा ही चतुर्थ काल वर्तता है।[९]

भरत और ऐरावत के पाँच–पाँच म्लेच्छ खण्डों में तथा विजयार्ध की विद्याधर की श्रेणियों में चतुर्थकाल के आदि से लेकर उसी काल के अन्त पर्यंत हानि वृद्धि होती रहती है।[१०]

इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्र में व क्षेत्रस्थ मनुष्य, तिर्यंचों में जो आयु, अवगाहन आदि का ह्रास देखा जा रहा है। वह अवसर्पिणी काल के निमित्त से है तथा जो भी जल के स्थान पर स्थल, पर्वत के स्थान पर क्षेत्र आदि परिवर्तन दिख रहे हैं वे भी इसी आर्यखण्ड में ही हैं। आर्यखण्ड के बाहर न कहीं कोई ऐसा परिवर्तन हो सकता है और न कहीं ऐसा नाश ही संभव है क्योंकि प्रलय काल इस आर्यखण्ड में ही आता है।

यही कारण है कि यहाँ आर्यखण्ड में कोई भी नदी, पर्वत, सरोवर, जिन मंदिर आदि अकृत्रिम रचनाएं नहीं हैं। ये गंगा आदि नदियाँ जो दृष्टिगोचर हो रही हैं वे अकृत्रिम न होकर कृत्रिम हैं तथा अकृत्रिम नदियाँ व उनकी परिवार नदियाँ भी यहाँ आर्यखण्ड में नहीं हैं जैसा कि कहा है–

'गंगा महानदी की ये कुण्डों से उत्पन्न हुई १४००० परिवार नदियाँ ढाई म्लेच्छ खण्डों में ही हैं आर्यखण्डों में नहीं हैं।'[११]

आर्यखण्ड कितना बड़ा है

यह भरत क्षेत्र जम्बूद्वीप के १९० वें भाग (५२६, ६/१९) योजन प्रमाण है। इसके बीच में ५० योजन विस्तृत विजयार्ध है। उसे घटाकर आधा करने से दक्षिण भारत का प्रमाण आता है। यथा (५२६, ६/१९–५०) ÷ २=२३८, ३/१९ योजन है। हिमवान पर्वत पर पद्म सरोवर की ऊँचाई १००० योजन है, गंगा–सिंधु नदियाँ पर्वत पर पूर्व–पश्चिम में ५–५ सौ योजन बहकर दक्षिण में मुड़ती हैं। अतः यह आर्यखण्ड पूर्व–पश्चिम में १०००+५००+५००=२००० योजन लम्बा और दक्षिण–उत्तर में २३८ योजन चौड़ा है। इनको आपस में गुणा करने पर २३८ योजन X २०००=४७६००० योजन प्रमाण आर्यखण्ड का क्षेत्रफल हुआ। इसके मील बनाने में ४७६००० X ४००० = १९०४००००० (एक सौ नब्बे करोड़ चालीस लाख) मील प्रमाण क्षेत्रफल होता है।

इस आर्यखण्ड के मध्य में अयोध्या नगरी है। अयोध्या के दक्षिण में ११९ योजन की दूरी पर लवण समुद्र की वेदी है और उत्तर की तरफ इतनी ही दूरी पर विजयार्ध पर्वत की वेदिका है। अयोध्या से पूर्व में १००० योजन की दूरी पर गंगा नदी की तट वेदी है और पश्चिम में इतनी दूरी पर ही सिंधु नदी की तट वेदी है। अर्थात् आर्यखण्ड की दक्षिण दिशा में लवण समुद्र, उत्तर में विजयार्ध, पूर्व में गंगा नदी एवं पश्चिम में सिंधु नदी है ये चारों आर्यखण्ड की सीमारूप हैं।

अयोध्या से दक्षिण में (११९ X ४००० = ४७६०००) चार लाख छियत्तर हजार मील जाने पर लवण समुद्र है। इतना ही उत्तर जाने पर विजयार्ध पर्वत है। ऐसे ही अयोध्या से पूर्व में (१००० X ४००० = ४०००००) चालीस लाख मील जाने पर गंगा नदी एवं पश्चिम में इतना ही जाने पर सिंधु नदी है।

आज का उपलब्ध सारा विश्व इस आर्यखण्ड में है। जम्बूद्वीप, उसके अन्तर्गत पर्वत, नदी, सरोवर, क्षेत्र आदि के माप का योजन २००० कोश का माना गया है।

जम्बूद्वीपपण्णत्ति की प्रस्तावना में भी इसके बारे में अच्छा विस्तार है। जिसके कुछ अंश देखिए–

'इस योजन की दूरी आजकल के रैखिक माप में क्या होगी? यदि हम २ हाथ = १ गज मानते हैं तो स्थूल रूप से एक योजन ८०००००० गज के बराबर अथवा ४५४५.४५ मील के बराबर प्राप्त होता है॥'

निष्कर्ष यह निकलता है कि जम्बूद्वीप में जो भी सुमेरु हिमवान् आदि पर्वत हैमवत, हरि, विदेह आदि क्षेत्र,

गंगा आदि नदियाँ, पद्म आदि सरोवर हैं ये सब आर्यखण्ड के बाहर हैं।

आर्यखण्ड में क्या–क्या है

इस युग के आदि में प्रभु श्री ऋषभदेव की आज्ञा से इन्द्र ने देश, नगर, ग्राम आदि की रचना की थी तथा स्वयं प्रभु जी ऋषभदेवने क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीन वर्णों की व्यवस्था बनाई थी, जिसका विस्तार आदिपुराण में है। उस समय के बनाये गये बहुत कुछ ग्राम, नगर, देश आज भी उपलब्ध है। यथा–

'अथानन्तर प्रभु के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये। इन्द्र ने शुभ मुहूर्त में अयोध्यापुरी के बीच में जिनमंदिर की रचना की। पुनः पूर्व आदि चारों दिशाओं में भी जिनमंदिर बनाये। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेड़ों आदि की रचना की।

सुकौशल, अवन्ती, पुण्ड्र, डण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरु, जांगल, कराहट, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, आभिर, कोंकण, वनवास, आंध्र, कर्नाटक, कौशल, चौण, केरल, दारु, अभीसार, सौवीर, शूरसेन, अप्रांतक, विदेह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदी, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, बालहिक, तुरुष्क, शक और केकय इन देशों की रचना की तथा इनके सिवाय उस समय और भी अनेक देशों का विभाग किया।[१२]

तथ्य क्या है

१. एक राजू चौड़े निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊँचे इस मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। इनमें सर्वप्रथम द्वीप जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन (४० करोड़ मील) विस्तृत है।

२. इस जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु पर्वत है। इसी में भरत, हैमवत आदि सात क्षेत्र हैं। हिमवान् आदि छः कुल पर्वत हैं। नदी सरोवर आदि अनेक रचनाएं हैं।

३. इसके एक सौ नब्बे वें भाग प्रमाण भरत क्षेत्र व इतने ही प्रमाण ऐरावत क्षेत्र में जो आर्यखण्ड हैं उन आर्यखण्ड में ही षट्काल परिवर्तन से वृद्धि ह्रास होता है। अन्यत्र कहीं भी परिवर्तन नहीं है।

४. अवसर्पिणी के कर्मभूमि की आदि में तीर्थंकर ऋषभदेव की आज्ञानुसार इन्द्र ने बावन देश और अनेक नगरियाँ बसायी थीं। जिनमें से अयोध्या, हस्तिनापुर आदि नगरियाँ आज भी विद्यमान हैं।

५. इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में ही आज का उपलब्ध सारा विश्व है। इस आर्यखण्ड के भीतर में गंगा–सिंधु नंदी, सुमेरु पर्वत और विदेह क्षेत्र आदि को मानना त्रिलोकसार आदि ग्रंथों के अनुकूल नहीं है क्योंकि अकृत्रिम गंगा–सिंधु नदी तो आर्यखण्ड के पूर्व–पश्चिम सीमा में है.

संदर्भ :

१. तत्त्वार्थसूत्र अ.३, **२.** तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, पंचम खण्ड, पृष्ठ ३४६, **३.** तत्त्वार्थसूत्र, अ.३, **४.** तत्त्वार्थसूत्र, अ. ४, **५.** तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, पंचम खण्ड, **६.** तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पंचम खण्ड, पृष्ठ ५७२–५७३, **७.** एवं कमेण भरहे अज्जाखण्डम्मि योजणं एक्कं। चित्ताए उवरि ठिदा दज्झइ वड्ढिंगदा भूमी ॥१५५१॥ वज्जमहागी बलेणं अज्जाखंडस्स वड्ढिया भूमि। पुव्विल्ल खंडरूवं मुत्तूणं जादि लोयंतं॥१५५२॥(तिलोयपण्णत्ति अधिकार–४), **८.** त्रिलोकसार गाथा ७९२, ९३, ९४ में ऋषभदेव को भी कुलकर मानकर १५ कहे हैं। अन्यत्र ग्रंथ में १४ माने हैं।, **९.** त्रिलोकसार गाथा ८६४–६५, **१०.** त्रिलोकसार गाथा ८८२, **११.** त्रिलोकसार गाथा ८८३, **१२.** तिलोयपण्णत्ति, प्रथम भाग, पृष्ठ १७१, **१३.** आदिपुराण, पृष्ठ ३६०।

6

गुजरात की जैन पुरातत्त्व सम्पदा

श्री ज्ञानमल शाह

गुर्जर, जिसे सुराष्ट्र भी कहा जाता था और जिसमें काठियावाड़ सम्मिलित है, मालवा की भाँति ही समृद्ध, सुरम्य और उर्वर प्रदेश रहा है। समुद्र तट के निकट होने के कारण विदेशों के साथ समुद्री व्यापार का भी यह प्रमुख द्वार रहा है। गुजरात से आशय सुराष्ट्र–काठियावाड़ से युक्त पश्चिमी समुद्रतटवर्ती सम्पूर्ण देश से है। गिरनार इसी गुजरात प्रदेश में अवस्थित है। यह गुजरात जैनधर्म का केन्द्र रहा है। गुजरात के इतिहास में गिरनार का इतिहास समाविष्ट है।

गुजरात का इतिहास – हैबट ने गुजरात के इतिहास को ईस्वी सन् से छह हजार वर्ष पूर्व तक आंका है। मिस्र देश में जो कब्र खोदी गई हैं ईस्वी सन् से सत्रह सौ वर्ष पहले की है। उनमें भारतीय तंजेब और नील पाई गई है। ईस्वी सन् से चार हजार वर्ष पहले तक भारत और यूफ्रेटीज नदी के मुख तक के देश से व्यापार होता था। द्रविड़, भाषा बोलने वाले सुमेरी लोगों का संबंध सिनाई और मिस्र से था जिनका संबंध पश्चिमी भारत से छह हजार वर्ष ई. के पूर्व से था।

गुजरात में सन ई.पूर्व ३०० से १०० वर्ष ई. तक समुद्र द्वारा यूनानी वैक्टोरिया वाले, पार्थियन, और स्कैथियन आते रहे। सन् ६०० से ८०० तक पारसी और अरब आये। सन् ९०० से १२०० तक संगानम लुटेरे, सन् १५०० से १६०० तक पुर्तगाल और तुर्क, सन् १६०० से १८०० तक अरब, अफ्रीकन, आरमीनियम, फ्रांसीसी, सन् १७५० से १८२१ तक ब्रिटिश आए।

इसी गुजरात में थल मार्ग द्वारा ई.से. २०० वर्ष पूर्व से ५०० तक स्कैथियन और हूण, सन् ५०० से ६०० तक गुर्जर, सन् ६५० से ९०० तक पूर्वीय जादव और काथी, सन् ११०० से १२०० तक अफगान और मुगल आये।

यहाँ ई. से १०० वर्ष पूर्व से ३०० तक क्षत्रप और अर्धस्कैवियन, ३०० में गुप्त लोग, सन् ४०० से ६०० तक गुर्जर, सन् १५३० तक मुगल, सन् १७५० में मराठा रहे।

दक्षिण से सन् १०० में शातकर्णी, ६५० से ९५० में चालुक्य और राष्ट्रकृत आए। यह है गुजरात का इतिहास।

पौराणिक गाथाओं में गुजरात

गुजरात के शत्रुंजय पर्वत से ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर के प्रधान गणधर पुण्डरीक ने निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रदेश में अनेक तीर्थंकरों ने विहार किया। भरत चक्रवर्ती गिरनार पर्वत पर आए। महाभारत काल में तीर्थंकर अरिष्टनेमि का तो यह प्रदेश विहार क्षेत्र रहा। कृष्ण, बलराम आदि हरिवंशी यादवों ने मथुरा, शौरसेन आदि छोड़कर समुद्रतट पर आकर द्वारिका बसाई। जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की कन्या राजुलदेवी के साथ नेमिकुमार के साथ विवाह की चर्चा चली। समस्त यादव बंसियों की बारात नेमिकुमार को विवाहने चली। किन्तु दीन पशुओं की पुकार सुनकर नेमिकुमार विरक्त हुए और निकटवर्ती गिरनार (ऊर्जयन्त) पर्वत पर जाकर तपस्या में लीन हो गये। महासती राजुल ने उनका अनुसरण किया और ऊर्जयन्त पर जाकर तपस्या में लीन हो गई। धन्य हो गया ऊर्जयन्त। इसी पर्वत पर नेमिनाथ का दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक हुआ और अन्त में इसी पर्वत से निर्वाण लाभ किया।

मगध के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के अनन्य भक्त थे। एक बार श्रेणिक बिम्बसार विपुलाचल पर महावीर की वन्दना करने गये और उनने भगवान महावीर से प्रश्न किया– 'प्रभो! गिरनार ऊर्जयन्त का क्या महत्त्व है?' तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में उन्होंने जो उत्तर सुना, उसे सुनकर श्रेणिक और अन्य कृतकृत्य हुए। 'वह ऊर्जयन्त द्वारिका के पास सोरट सौराष्ट्र में है।' भगवान के गणधर इन्द्रभूतिगौतम ने उस प्रश्नोत्तर को लिपिबद्ध किया जिसे हम पुराण में पढ़ रहे हैं।

ऋषभदेव तीर्थंकर से लेकर वर्तमान काल तक गुजरात व सौराष्ट्र में जैनधर्म की अविरल धारा बह रही है और उसके साक्षी हैं ये तीर्थ क्षेत्र–

१. तारंगा जी – तारंगा क्षेत्र उत्तर गुजरात के महेसाणा जिले में अरावली पर्वत मालाओं की मनोरम टेकरी पर अवस्थित है। यह एक प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र है। यहां से वरदत्त, वरांग, सागरदत्त आदि साढ़े तीन कोटि मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया था। इस नगर के नाम तारानगर, तारापुर, तारागढ़, तारंगा आदि मिलते हैं। तारंगा नाम १५वीं शताब्दी के विद्वान् भट्टारक गुणकीर्ति की मराठी रचना 'तीर्थ वन्दना' में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ मिलता है। प्राकृत निर्वाण काण्ड, जो ईसा की प्रथम–द्वितीय शताब्दी की रचना मानी जाती है, उसमें निम्नलिखित गाथा उपलब्ध होती है–

'वरदत्तो य वरयो सायरदत्तो य तारवरणयरे।
आहुट्ठय कोडीओ विणब्बाणगया णमो तेसिं॥४॥'

तारंगा में कोटिशिला और सिद्धशिला नामक दो पर्वत हैं। दोनों पर्वत पर लगभग ९०० वर्ष प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ गुफाएँ बनी हैं। जो प्राकृतिक हैं उनके निर्माण काल के संबंध में निश्चित रूप से कोई अभिमत प्रगट नहीं किया जा सकता है।

२. शत्रुंजय– पालीताना नगर का नाम है तथा शत्रुंजय पर्वत का नाम है। पालीताना शहर से शत्रुंजय गिरि का तलहटी एक मील दूर है। शत्रुंजय की चतुर्सीमा–पूर्व में भावनगर, उत्तर में सिहोर और चमारड़ी की चोटियाँ, उत्तर पश्चिम व पश्चिम मैदान जहाँ से गिरनार दिखता है, यहाँ शत्रुंजय नामक नदी है।

शत्रुंजय गिरि क्षेत्र है। इस स्थान से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीन पाण्डव तथा आठ कोटि द्रविड़ राजा अष्टकर्मों का नाश करके मुक्त हुए थे। प्राकृत निर्वाण–काण्ड में बताया है–

'पांडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
सेत्तुंजय गिरि सिहरे णिव्वाणगण णमो तेसिं॥६॥'

भाषा

पांडव तीन द्रविड़ राजान। आठकोड़ मुनि मुक्ति प्रमाण।
श्री सेत्तुंजय गिरि के शीस। भाव सहित बन्दौ जगदीश॥७॥ (भगवती दास)

आचार्य जिनसेन ने हरिवंश–पुराण में बताया है–

'ज्ञात्वा भगवतः सिद्धिं पञ्च पांडव साधवः।
शत्रुंजय गिरौ धीराः प्रतिमायोगिनः स्थितः ॥६५–१८॥
शुक्लध्यान समाविष्टा भीमार्जुन युधिष्ठिराः।
कृत्वाष्टविधकर्मान्तं मोक्षं जग्मुस्त्रयोऽक्षयम् ॥६५–२२॥

अर्थात् भगवान नेमिनाथ के निर्वाण–प्राप्ति का समाचार जानकर पाँचों पाण्डव मुनि शत्रुंजय के ऊपर प्रतिमा योग धारण करके स्थित हो गये थे। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन शुक्ल ध्यान में स्थिर होकर और आठों कर्मों का विनाश करके मुक्ति में चले गये अर्थात् मुक्त हो गये।

श्वेताम्बर परम्परा में शत्रुंजय तीर्थ की मान्यता अन्य सभी तीर्थों से अधिक है, यहाँ तक कि सम्मेद शिखर की अपेक्षा भी शत्रुंजय को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

यह पर्वत पर एक प्रकार से जैन मंदिरों का गढ़ है। पर्वत के ऊपर श्वेताम्बर समाज के लगभग ३५०० मंदिर हैं। एक स्थान पर इतनी भारी संख्या में मंदिर अन्यत्र हिन्दुओं और बौद्धों में भी नहीं है। इन मंदिरों में कई मंदिरों का शिल्प सौन्दर्य और उनकी स्थापत्य कला अनूठी है।

यहाँ पर्वत पर एक वीतराग दिगम्बर तीर्थंकर मंदिर शोभायमान है। उसमें ९ वेदियाँ बनी हुई हैं। मुख्य वेदी में मूलनायक श्री शान्तिनाथ भगवान की पद्मासन मूर्ति अति मनोरम वि.सं. १६८६ की है। प्रतिष्ठाकारक बादशाह जहाँगीर के समय में अहमदाबाद निवासी रतनसी है।

३. घोघा – वर्तमान घोघा साधारण नगर है और खम्भात की खाड़ी के तट पर अवस्थित है। भावनगर से सड़क मार्ग से २३ कि.मी. है, लगता है, यह अतीत में पत्तन था और व्यापारिक केन्द्र भी। यहाँ से सुदूर अरब देशों को व्यापारिक माल का निर्यात और आयात होता था।

यह एक अतिशय क्षेत्र माना जाता है यहाँ श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा है। भक्त लोग इसे चतुर्थ काल की मानते है। तथा लांछन न होते हुए भी इसे शांतिनाथ की प्रतिमा मानते हैं। कहते हैं, कभी–कभी मंदिर में रात्रि की नीरवता में घण्टों की आवाज सुनाई देती है। भक्त लोग यहाँ मनौती को आते है।

४. गिरनार– तीर्थंकर नेमिनाथजी की निर्वाणभूमि गिरनारजी (गुजरात) का इतिहास :–

'मा मा गर्वममर्त्यपर्वत परां प्रीतिं भजन्तस्त्वया। भ्राम्यते रविचन्द्रमः प्रभृतयः केके न मुग्धाशयाः॥
एको रैवत भूधरो विजयतां यद्दर्शनात् प्राणिनो। यांति भ्रांति विवर्जिताः किल महानंद सुखश्रीजुषा॥७॥

राजा मण्डलीक का शिलालेख

एक समय मध्यकाल में गिरिनार पर्वत पर चूड़ासमा वंश के राजाओं का अधिकार था। वहाँ पर उनका सुदृढ़ किला बना हुआ था। उन राजाओं में श्री रा. मण्डलीक नामक राजा प्रमुख थे, जिन्होंने उस पवित्र पर्वत पर भगवान नेमिनाथ का नयनाभिराम मंदिर बनवाया था और शिलापट पर अपनी प्रशस्ति अंकित कराई थी। प्रशस्ति में गिरिनार का उल्लेख ऊर्ज्जयन्त और रैवत नाम से हुआ है। गिरिनार की महिमा का बखान करते हुए

प्रशस्ति लेखक ने मान–मतंग पर न चढ़ने की नीति का निरूपण श्लेषात्मक ढंग से कितना सुन्दर किया है, यह ऊपर के श्लोक में पढ़िये। कवि कहता है : ''हे अमर पर्वत! गर्व मत करो, सूर्य–चंद्र–नक्षत्र तुम्हारे प्रेम में ऐसे मुग्ध हुए हैं कि रास्ता चलना भूल गये हैं, (वह तुम्हारी ही प्रदक्षिणा देते हैं); किन्तु वही क्या? भला लोक में ऐसा कौन है जो तुम पर मुग्ध न हो! जय हो, एक मात्र पर्वत की; जिसके दर्शन करने से लोग भ्रांति को खोकर आनन्द का भोग करते है और परम सुख को पाते हैं।''

ईस्वी सातवी शताब्दि में चीनी यात्री हुएनसांग जब भारत आया तो वह सौराष्ट्र भी गया। वहाँ गिरनार की महानता देखकर वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ। उसने लिखा, ''नगर से थोड़ी दूर पर पहाड़ यूह–चेन–हो (उज्जन्त) नामक है, जिस पर पीछे की ओर एक संघाराम (बौद्धविहार) बना हुआ। इसकी कोटरियां आदि अधिकतर पहाड़ खोदकर बनाई गई हैं। एक पहाड़ घने और जंगली वृक्षों से आच्छादित तथा इसमें सब ओर झरने प्रवाहित हैं। वहाँ पर महात्मा और विद्वान पुरुष विचरण किया करते हैं तथा आध्यात्मिक–शक्ति सम्पन्न बड़े–बड़े ऋषि आकर एकत्रित हुआ करते और विश्राम किया करते हैं।'' इस वर्णन से स्पष्ट है कि गिरिनार उस समय भी भारत का धार्मिक और सांस्कृतिक केन्द्र बना हुआ था और आज भी तो उसकी यह विशेषता विद्यमान है।

वर्तमान रूप– प्राचीन काल में जो पर्वत ऊर्जयन्त अथवा रैवत या रैवताचल कहलाता था, वह आज गिरिनार के नाम से विख्यात है। यह नाम का परिवर्तन रैवताचल की तलहटी में बसे हुये नगर 'गिरिनगर' के कारण हुआ है, जो एक समय विश्व विख्यात हो गया था। हो सकता है कि वह नगर इतना समृद्ध और विस्तृत हुआ हो कि रैवत के शिखर तक जा पहुँचा हो क्योंकि राखेंगार का गढ़ पहली शिखर पर ही था। इसीलिये पर्वत भी 'गिरिनयर' में गिना जाने लगा और वह गिरिनयर से गिरिनार हो गया। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में पटना, मथुरा, उज्जैन और गिरिनार जैन धर्म के मुख्य केन्द्र रहे थे। आज पुराना गिरिनयर जूनागढ़ में बदल गया है उसका चोला ही नहीं रहा तो नाम भला क्या रहता? इसीलिये लोग उसे 'जूना'– पुरानागढ़ ठीक ही कहते हैं। रवैत की तलहटी में सम्राट अशोक के प्रसिद्ध धर्मलेख और जैनों की धर्मशालाएँ हैं।

गिरिनार की इस पहली टोंक पर जैनों के नयनाभिराम मंदिर बने हुए हैं, जो भारतीय कला के अद्‌भुत नमूने हैं। यहां पर श्वेताम्बर एवं दिगम्बर जैनों की एक–एक धर्मशाला भी है। आगे जरा ऊपर चढ़कर श्री सती राजुल की गुफा के दर्शन किये। यहां ही राजुल जी ने तपस्या की थी उनकी मूर्ति है। पर्वत के पार्श्व में दो नग्न जैन मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं। इस पर्वत पार्श्व के ऊपर एक परकोटे के भीतर तीन दिगम्बर जैन मंदिर हैं। इनमें से एक को प्रतापगढ़ निवासी श्री बंडीलाल जी ने सं. १९१५ में निर्माण कराया था और दूसरे को लगभग इसी समय शोलापुर के सेठों ने बनवाया था। दिगम्बर जैनों के कुछ और प्राचीन मंदिर भी थे, जो श्वेताम्बर मंदिर के परकोटे में हैं। इनमें एक प्राचीन मंदिर ग्रेनाइट पाषाण का है, जिसकी मरम्मत सं. ११३२ में सेठ मानसिंह भोजराजा ने कराई थी। कर्नल टॉड ने इस मंदिर को दिगम्बर जैनों का लिखा है। किन्तु अब यह श्वेताम्बर बंधुओं के संरक्षण में है और इसमें भगवान नेमिनाथ के स्थान पर भगवान संभवनाथ के मूर्ति विराजमान है। एक प्राचीन मंदिर राजा मंडलीक का बनवाया हुआ है। मेरवंशी श्वेताम्बर मंदिर समूह में दर्शनीय शिल्पकला है। आगे सम्राट् कुमारपाल का मंदिर है, जिसमें अभिनन्दन जिन विराजमान है। इस मंदिर के बाहर भीमकुंड के पूर्व में बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएँ खंडित हुई पड़ी हैं। उपरान्त 'वस्तुपाल तेजपाल' के तीन मंदिर हैं– इनका पत्थर विदेशों से मंगाया गया था। इनके मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान हैं। अन्त में सम्प्रति राजा का मंदिर है, परन्तु अब उसमें ऐसा कोई चिह्न शेष नहीं जो उसकी प्राचीनता को प्रगट करता हो। मंदिरों के आगे उपरोक्त दिगम्बर मंदिर और राजुल की गुफा है।

अम्बादेवी के मंदिर को जैन वैष्णव दोनों पूजते हैं। बर्जेस का अनुमान है कि यह मंदिर मूल में जैनों का है।

अम्बाजी के मंदिर के पास ही मुनि अनिरुद्धकुमार के चरण चिह्न हैं, जिनकी वंदना जैनी करते हैं। नेमिप्रभु के चरण–चिह्नों से वह मार्ग पवित्रपूत जो हुआ था। आगे तीसरी टोंक पर भगवान नेमि के चरणों की देवकुलिका है। वहीं मुनि शंभुकुमारजी के चरण हैं, जिसके सामने पंडा लोगों का आवास है।

चार हजार फीट नीचे उतर कर चौथी टोंक पर चढ़ना होता है इसकी चढ़ाई कठिन है। टोंक के ऊपर एक काले पाषाण पर भगवान नेमिनाथ जी की प्रतिमा तथा दूसरी शिला पर मुनि प्रद्युम्नकुमारजी के चरण हैं। यहां से नीचे उतर कर पांचवीं टोंक पर सीढ़ियों द्वारा चढ़ना होता है, जो सुगम है। यह शिखर सबसे ऊँचा है और इसके चारों ओर का दृश्य अत्यन्त मनोहारी है।

यहां पर एक बड़ा भारी घंटा बंधा हुआ है, जिसकी देखभाल हिन्दु साधु करते हैं। वैष्णव लोग इन चरणों को गुरुदत्तात्रेय के मानकर पूजते हैं। संभव है, भगवान नेमि के मुख्य गणधर श्री वरदत्त को ही दत्त आत्रेय मानकर लोग पूजने लगे हों। मुनि वरदत्त भर यहां से मुक्त हुये थे।

लौटते हुये पहली टोंक पर पहुंचने पर दाहिने हाथ के रास्ते पर मुड़ते हैं जो सहसावन को गया है। यह 'सहस्रावन' का अपभ्रंश है। उस वन में ही भगवान नेमिनाथ का दीक्षाकल्याणक समारोह हुआ था। मुड़ते ही 'गोमुखी कुण्ड' है, जिसमें पर्वत पार्श्व से निरन्तर जलधारा बहती हुई चौबीस तीर्थंकरों के चरण चिह्न–पट का अभिषेक करती है। उस पर लेख अंकित है।

सम्राट अशोक भी गिरिनार को भुला न सके थे। उनके कई धर्मलेख आज भी मिल रहे हैं। अशोक ने उनमें भगवान नेमि के अहिंसा धर्म का ही उपदेश जनता को दिया था।

अशोक के पश्चात् मौर्य सम्राट सम्प्रति और सालिसूक ने भी सौराष्ट्र में जैनधर्म का प्रचार किया था और जैन मंदिर आदि बनवाये थे। छत्रप रुद्रसिंह ने यहां जैन मुनियों के लिए गुफाएँ बनवाई थी जिस से स्पष्ट है कि जैन मुनिगण यहां तपस्या करते थे।

५. पावागढ़

श्री पावागढ़ प्राचीन पवित्र पुरातत्त्व सिद्धक्षेत्र है। यहां से श्री रामचन्द्रजी के दो पुत्र लव और कुश तपस्या करके मोक्ष पधारे थे। तबसे इस पहाड़ के शिखर में उनकी चरणपादुकायें बनाई गई थीं और पर्वत की चट्टानों पर प्रतिमायें उत्कीर्ण की गई थीं। ये अभी तक हैं। बहुत वर्ष पहले चांपानेर रमणीय प्राचीन बड़ा शहर था और पहाड़ पर भी प्राचीन किले की दीवार और किला था। आज भी जगह–जगह उनके खण्डहर देखने को मिलते हैं। प्राचीन समय में इस नगरी में बावन बाजार और चौरासी चौक थे। इस नगरी का राजा प्राचीन समय में जैनी था।

संघ सहित भ्रमण करके दक्षिण की ओर निकले। लव और कुश को अपना काल निकट आया है ऐसा ज्ञान होते ही पावागढ़ पर ठहर गये। यहां पर देवडूंगरी के शिखर पर तपश्चर्या शुरू की और सल्लेखना धारण करके दोनों भाई यहां से मोक्षगामी हुए। यहां से पांच करोड़ मुनिराज भी मोक्ष गये हैं, इसलिए यह तीर्थ सिद्धक्षेत्र कहलाता है।

इतिहास कहता है कि ईस्वी सन् ४०० वर्ष पहले आज से करीब २५०० वर्ष पहले गुर्जर देश में वीरसेन नाम का जैनी राजा था। पिता का नाम सुरेन्द्रसिंह और माता का नाम चन्द्रवती था। इस वीरसेन राजा ने दिगम्बर जैन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया और मंदिरों के रक्षार्थ किला बनवाया। महाराजा चंद्रगुप्त मौर्य कभी दक्षिणयात्रा के समय रास्ते में परम पूज्य पावागढ़ सिद्धक्षेत्र की वन्दना की।

ई.स. १४२ में आज से करीब १८०० वर्ष पहले ग्रीस देश का महान भूगोलवेत्ता श्री टोलेमी भारत में भ्रमण करने आया था। उसने अपनी प्रवास डायरी में पावागढ़ के संबंध में लिखा है कि "पावागढ़ बहुत पवित्र यात्रा का

धाम है। उसका अस्तित्व बहुत प्राचीन है। इस बात को पावागढ़ पर्वत पर दिगम्बर जैन मंदिर और उसकी नैसर्गिक किलेबन्दी स्पष्ट करती है।''

पावागढ़ का आधिपत्य गुजरात देश के राजा के हाथ में आया। गुजरात नरेश ने चांपानेर पावागढ़ की तलहटी में बसाया और उसको राजधानी बनाया। उस समय में पावागढ़ व चांपानेर शहर संसार भर में मशहूर थे।

संवत् १५२५ में आज से करीब ५०० वर्ष पहले राजा जयसिंह गुजरात में राज्य करता था जो पताई रावल के नाम से जगत में मशहूर था। उसने पावागढ़ की दूसरी टोंक पर महल बनवाया और उसी टोंक पर भद्रकाली माता की स्थापना की।

संवत् १५४० में मुस्लिम सुल्तान महमूद बेगड़ा ने पावागढ़ पर आक्रमण किया। बारह वर्ष तक तलहटी में घेरा डालकर पड़ा रहा उस समय उसने चांपानेर शहर का नाश किया। हिन्दू और जैन मंदिर को तोड़कर मस्जिदें बनवा दीं। मूर्तियां खंडित कीं जो आज भी खुदाई करते समय मिलती हैं।

बारह वर्ष बाद हिन्दुओं की कुसंप से महमूद ने किले पर कब्जा किया, परकोटा तोड़ा, हिन्दू और जैन मंदिरों का नाश किया।

मुस्लिम युग के बाद अंग्रेजों का शासन आया, उसमें हिन्दु और जैन संस्कृति को रक्षण मिला, उसमें जो अवशेष थे उनका जीर्णोद्धार करने का और सुरक्षित रखने का प्रयत्न ब्रह्मचारी व पंडितगण करते रहे।

संवत १६४२ में वादीभूषण के आदेश से जीर्णोद्धार शुरू हुआ और संवत् १६४९ में जीवराज पापड़ीवाल ने चिंतामणि पार्श्वनाथ की श्याम प्रतिमा की प्रतिष्ठा नगारखाने के पास के मंदिर में महासुदी सप्तमी को करायी, जो प्रतिमा खंडित अवस्था में आज भी मौजूद है।

आज भी इन स्थानों पर खोदते समय कई जगह से पुराने मंदिर और प्रतिमाओं के अवशेष मिलते हैं। चट्टानों पर उकेरी हुई प्रतिमायें आज भी मौजूद हैं।

फिर धर्मप्रेमी भाइयों की सहायता से संवत् १९३३ वीर संवत् २४०३ में पावागढ़ में दूधिया तालाब पर के बड़े मंदिर का जीर्णोद्धार शुरू हुआ। उन दिनों सोलापुर जिले के परंडा गांव के धर्मप्रेमी दानवीर सेठ श्री गणेशजी गिरधरभाई वन्दना के लिए पधारे, तो वे जीर्णोद्धार का काम देखकर खुश हुए और जीर्णोद्धार का व प्रतिष्ठा का पूर्ण खर्च देने की घोषणा की।

६. महुवा (विघ्नहर पार्श्वनाथ)– 'श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महुवा' सूरत जिले में है। तथा पूर्णा नदी के तट पर अवस्थित है।

यहाँ भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा चमत्कारी है। प्रतिमा के भाव सहित दर्शन करने से विघ्न दूर हो जाते हैं। इसीलिए इसके दर्शन करने के लिए एवं मनौती मनाने के लिए यहाँ जैनों के अतिरिक्त जैनेतर भी बड़ी संख्या में आते हैं। इस क्षेत्र पर पहिले मुनि जनों का विहार होता था और मुनिजन यहाँ ठहर कर ग्रन्थों का अभ्यास करते थे।

७. सूरत– सूरत में मूलसंघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगण के भट्टारकों का पीठ भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति ने स्थापित किया था। इस पीठ के भट्टारकों ने धर्म रक्षा के अनेक कार्य किये। अनेक स्थानों पर मंदिर निर्माण कराये, मूर्ति प्रतिष्ठाएँ करायीं। उन्होंने अनेक लोगों को जैन धर्म में दीक्षित किया। सूरत में काष्ठा संघ के भट्टारकों का भी पीठ रहा है।

८. अंकलेश्वर – गुजरात के भड़ोंच जिले में यह एक अतिशय क्षेत्र है। ग्राम में चार जैन मंदिर हैं। भोंयरे में पार्श्वनाथ की अतिशय सम्पन्न मूर्ति है। जैन और जैनेतर मनौती मनाने को भारी संख्या में आते हैं।

पुष्पदन्त और भूतबलि ने अपने गुरु धरसेनाचार्य से शिक्षा ग्रहण कर अंकलेश्वर में वर्षाकाल किया और श्रुत

प्रचार की योजना बनाई। अंकलेश्वर उन महिमान्वित पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों की चरण–रज से पवित्र हुआ था। यह स्थान काष्ठासंघ और मूलसंघ के भट्टारकों का प्रभाव क्षेत्र था। यहाँ के मंदिरों में उनकी गद्दियाँ बनी हुई हैं।

९. सजोद – अंकलेश्वर से पश्चिम की ओर गुजरात प्रान्त के भड़ौच जिले में स्थित है। यह अतिशय क्षेत्र है। यहाँ एक प्राचीन जैन मंदिर है। मंदिर के भोंयरे में शीतलनाथ की मूर्ति है। यह प्रतिमा सातिशय है और काफी प्राचीन है।

१०. अमीझरो पार्श्वनाथ– ''श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अमीझरो पार्श्वनाथ'' गुजरात प्रान्त के बड़ाली ग्राम में है। ग्राम में एक प्राचीन मंदिर है जिसमें मूलनायक ''अमीझरो पार्श्वनाथ'' की प्रतिमा है। भट्टारक ज्ञानसागर ने अपनी 'सर्वतीर्थ वन्दना' नामक रचना में बताया है कि पूजा के अनन्तर पार्श्वनाथ की मूर्ति में अमृत झरता है, इसलिए उसका नाम अमीझरो जिनालय है।

ईडर के आसपास कई अतिशय क्षेत्र अथवा प्राचीन मंदिर हैं जो उपेक्षित दशा में पड़े है। ईडर जिले में मुंडेठी के पास और ईडर से तीन मील दूर पर्वत में एक प्राचीन शिखरबन्द जिनालय है।

ईडर जिले में टाकाद्र और बोइडा के बची जंगल के अन्दर नदी किनारे आदीश्वर भगवान का शिखरबन्द बड़ा प्राचीन मंदिर है।

११. भीलोड़ा– गुजरात राज्य के साबरकांठा जिले में ईडर से ३० किमी. दूर अरावली पहाड़ों की प्राकृतिक नाभिराम शोभा से युक्त हाथमती नदी के तट पर बसा है।

यहां उत्तुंग शिखरावलियों से युक्त ऐसा एक बावन जिनालय है देवाधिदेव श्री १००८ चंद्रप्रभ स्वामीजी का। यहां के मूलनायक भगवान श्री चंद्रप्रभ स्वामी अतिशययुक्त चमत्कारी एवं तेजोमय है। मूलनायक के अतिरिक्त ११० नयनाभिराम और चतुर्थकालीन जैसी भव्य प्रतिमाएं यहां का मुख्य आकर्षण हैं। जिनालय के प्रांगण में प्रचुर कला वैभव से युक्त एक तीन मंजिल भव्यातिभव्य कीर्ति स्तंभ भी है।

१२. अहमदाबाद– अहमदाबाद जैनियों का मुख्य स्थान है। इसका प्राचीन नाम 'करणावती' थी। ग्यारहवीं शताब्दी में इसे राजा करण ने स्थापित किया था। अहमदशाह ने सन् १४१२ में इसका नाम अहमदाबाद रखा। यहाँ सैकड़ों जैन मंदिर हैं। जिसमें ६५ दि. जैन मंदिर है।

अहमदाबाद इतना बड़ा नगर है कि सन् १६३८ में एक विदेशी यात्री मैन्डेस्लाक ने देखा और लिखा– ''एशिया की ऐसी कोई जाति व ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इस नगर में दिखाई न दे। मुसलमानों ने मस्जिदों में जैन मंदिरों का बहुत सा मसाला लगाया है। अहमदशाह की मस्जिद में भीतर जैन गुम्बज है और बहुत सा मसाला इसी जैन मंदिर का है। हैबत खां की मस्जिद के भीतर भी जैन गुम्बज है। सय्यद आलम की मस्जिद में जैनियों के मंदिर के खम्भे हैं। जिस समय उदयपुर के खुम्बो राना ने सादरा में जैन मंदिर बनवाया था उसी समय अहमदशाह ने मस्जिद बनवाई। जैसे उस जैन मंदिर में २४० खम्भे हैं वैसे ही इस मस्जिद में हैं। तात्पर्य यह है कि इस समय जैन शिल्प कला खूब लोकप्रिय हुई थी।''

जब से मुसलमानों ने गुजरात पर अधिकार किया उन्होंने इसको उखाड़ने की शक्ति भर चेष्टा की, किन्तु यह बराबर जीता रहा तथा इसके मानने वाले अब भी बहुत हैं। जैनियों की चित्रकला व शिल्प ने अपनी सुन्दरता के कारण मुसलमानों पर असर डाला जिसे उन्होंने स्वीकार किया। अहमदाबाद में बहुत सी मुसलमानी इमारतों में जैन चित्रकला झलकती है।

7

जैन धर्म : स्वतंत्रता और स्वावलम्बन का धर्म

(क्रमबद्धपर्याय रूपी एकान्तनियतिवादः एक समीक्षा)

डॉ. जगदीश प्रसाद जैन 'साधक'

जैन दर्शन सृष्टि–कर्त्ता और कर्मफल दाता के रूप में ईश्वर की कोई कल्पना ही नहीं करता। जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक द्रव्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र है और उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। प्रत्येक जीव अपने भाग्य का विधाता स्वयं है और अपने भले बुरे का स्वयं जिम्मेवार है। उसका भला बुरा किसी व्यक्ति विशेष, देवता, ईश्वर आदि की कृपा या दासता का मोहताज नहीं। जीव की स्वतंत्रता उसके स्वावलम्बन अथवा अपने स्वयं के पुरुषार्थ या परिश्रम पर आधारित है। स्वतंत्रता और स्वावलम्बन एक दूसरे के पूरक हैं। जीव जैसे कर्म करने में स्वतंत्र है, वैसे ही उसका फल भोगने में भी स्वतंत्र है। मकड़ी खुद ही जाला पूरती है और खुद ही उसमें फंस भी जाती है।

संसार में दो मुख्य द्रव्य हैं – जीव और अजीव। द्रव्य का अर्थ है जिसमें द्रव्यत्व हो, जो द्रवित हो, परिणमनशील हो। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है। वह परिणमन के बिना एक समय भी नहीं रह सकता। इस परिणमन का ही नाम पर्याय है। द्रव्य और पर्याय अलग–अलग नहीं हैं। द्रव्य की ही पर्याय होती हैं और पर्याय या परिणमन द्रव्य में ही होता है। दूसरे शब्दों में, जीवकी पर्याय जीव की ही होती है, अर्थात उसके मानसिक भावों का परिवर्तन या परिणमन जीव में ही होता है और अजीव या पुद्गल का परिणमन या पर्याय पुद्गल की ही पर्याय होती है। यदि जीव की पर्याय पुद्गल की पर्याय में परिवर्तित हो, तो जीव का अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पर्याय एक समय की होती है यानी प्रत्येक समय द्रव्य में से ही उत्पन्न होती है और उसी में विलीन हो जाती है, जबकि द्रव्य यथावत बना रहता है। द्रव्य के अस्तित्व का व्यय या विनाश नहीं होता। यही कारण है कि तत्त्वार्थसूत्र (5.29-30) में सत् अर्थात् अस्तित्व को द्रव्य का लक्षण कहा है और वह अस्तित्व यथावत बना रहता है यद्यपि उस द्रव्य में पर्यायों का उत्पाद और व्यय होता रहता है। जैसे बालक राम युवा बना, फिर प्रौढ बना और फिर बूढ़ा व्यक्ति। इस प्रकार बचपन की पर्याय का व्यय होने पर युवा अवस्था उत्पन्न हुई, युवा के बाद प्रौढ अवस्था या पर्याय और उसके बाद बुढापे की पर्याय हुई पर इन सब अवस्थाओं या पर्यायों में राम का

अस्तित्व बना रहा।

इस उदाहरण में यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये पर्यायें क्रमवर्ती हैं यानी ये पर्यायें एक के बाद एक होती हैं। बचपन के बाद युवा, युवा के बाद प्रौढ और प्रौढ के बाद बुढापा पर्याय। इसके अलावा यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पहले की और बाद की पर्यायों में एक प्रवाह क्रम है और ऐसा लगता है कि पूर्ववर्ती और बाद की उत्तरवर्ती पर्यायों की एक श्रृंखला (series) होती है जैसे मोतियों की माला में मोती होते हैं या सांकल की कड़ियां जो एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। हां, यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि जीव की पर्यायों (जीव के मानसिक भावों के परिणमन) की श्रृंखला पुद्गल या द्रव्य कर्म के परिवर्तन या परिणमन की श्रृंखला से अलग है, हालांकि भावकर्म और पुद्गल कर्म का आपस में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

जीव जब शुभ अशुभ का परिणाम (भाव) करता है तो उसका निमित्त पाकर पुद्गल कर्म जीव के साथ बंध जाता है और जब पुदगल कर्म का उदयकाल आता है तो इस जीव का क्रोधादि रूप परिणाम हो जाता है। यहां यह कहना कि कर्म ने जीव को क्रोधी बना दिया अथवा कर्म ने उसे परतन्त्र कर दिया, यह एक उपचार कथन है। वास्तव में कर्मों के उदय का निमित्त पाकर यह जीव अपने में विकार भाव उत्पन्न करके अपनी स्वतंत्रता से स्वयं परतन्त्र यानी कर्माधीन होता है।

द्रव्य और पर्याय के उपर्युक्त वर्णन और जीव और पुद्गल अथवा भाव कर्म और द्रव्य कर्म के आपस में निमित्त नैमित्तिक कारण कार्य रूप सम्बन्ध के द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द ने न केवल मन और शरीर सम्बन्ध की दुरूह समस्या (mind-body problem) का समाधान किया है, बल्कि जीव के मानसिक भावों के परिणमन रूप भाव कर्म और मस्तिष्क के स्नायुतंत्र के परिवर्तन रूप पुद्गल (द्रव्य) कर्म के बीच प्रत्यक्ष कारण कार्य सम्बन्ध के स्थान पर उसे निमित्त नैमित्तिक रूप परोक्ष (indirect) कारण कार्य की तरह का सम्बन्ध बता कर [जिससे दोनों प्रकार के परिणमनों की पूर्ववर्त्ती और उत्तरवर्त्ती (बाद में होने वाली) पर्यायों की अलग अलग श्रृंखला (एक प्रकार का क्रमिक सम्बन्ध) बनी रहे] जीवात्मा की उपयोगात्मक वीर्यमय चेतन शक्ति की स्वतंत्रता को भी कायम रखा है अर्थात् आत्मा के पुरुषार्थ करने की स्वतंत्रता विद्यमान रहती है। अभी तक पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों और मस्तिष्क विद्या के विशेषज्ञों के सामने यह गहन समस्या बनी हुई है कि जबकि मानसिक भाव और व्यक्ति के स्नायुतंत्र (जो कि पौद्गलिक, भौतिक हैं) विभिन्न गुण धर्म वाले तत्त्व या पदार्थ हैं, इनका एक दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है और ये एक दूसरे पर कैसे प्रभाव डालते हैं। इस प्रभाव के कारण जैसा मस्तिष्क के स्नायुतंत्रों का परिणमन होता है उसी के समानान्तर या समकक्ष मनुष्य के मानसिक भाव होते हैं और जैसे मनुष्य के भावों का परिणमन होता है उसी के अनुसार मस्तिष्क के स्नायुतंत्रों में परिवर्तन और शरीर की ग्रन्थियों का स्राव होता है। (इस बात को लेखक ने अपनी पुस्तक fundamentals of Jainism में और अधिक स्पष्ट किया है।

पुद्गल (द्रव्य) कर्म के उदय (जो हमारे हाथ में नहीं है) या प्रभाववश जीव में क्रोधादि का आवेश उत्पन्न होने पर भी वह जीव क्रोध करके नये कर्म का बंध करे या नहीं करे इसकी जीव को स्वतंत्रता (साथ ही पहले के बांधे हुए कर्मों में फेर बदल, घटत बढत करने की भी स्वतंत्रता है) है– इसका खुलासा और विस्तृत वर्णन लेखक द्वारा संपादित "करम गति टाली नाहिं टलै?" पुस्तक में दिया गया है।

ऊपर लिखित महत्वपूर्ण बातों को भली प्रकार न समझने के कारण श्री कानजी स्वामी के प्रवचनों (जो उनकी पुस्तक "ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव" में छपे हैं) और उनके शिष्य हुकुमचन्द भारिल्ल के लेखों (जो

''क्रमबद्धपर्याय'' पुस्तक में छपे हैं) में जो तथाकथित ''जिनागम के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं मौलिक सिद्धान्त'' (देखें क्रमबद्धपर्याय पुस्तक का प्रकाशकीय) के रूप में क्रमबद्धपर्याय को जैन समाज में प्रचारित किया जा रहा है वह नियतिवाद का ही नया रूप है, पुरुषार्थहीनता और अकर्मण्यता का सूचक है और जैन धर्म के व्यक्ति स्वातंत्र्य और स्वावलम्बन के सिद्धान्तों के विपरीत है। इन दोनों महानुभावों के कहने के अनुसार क्रमबद्धपर्याय का मतलब है ''किस वस्तु में, किस समय कौन सी पर्याय उत्पन्न होगी – यह निश्चित ही है?'' (वही पुस्तक, प्रकाशकीय) यह भी कहा गया है कि ''जगत में जो भी परिणमन निरंतर हो रहा है, वह सब एक निश्चत क्रम में व्यवस्थित रूप से हो रहा है?'' (वही पुस्तक, पृष्ठ 17) जैन दर्शन किसी सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को नहीं मानता तो फिर इस व्यवस्था को कौन चला रहा है? इसका नियन्ता कौन है? या यह व्यवस्था कैसे चल रही है? इनका इन महानुभावों के पास कोई ठोस उत्तर नहीं है।

यद्यपि कानजी स्वामी दावा करते हैं कि ''शास्त्रों में अनेक स्थानों पर क्रमबद्ध की बात आती है'' (कानजी स्वामी लिखित पुस्तक, पृष्ट 122), पर वास्तविकता यह है कि किसी भी जैन आगम ग्रन्थ में ''क्रमबद्ध'' या ''क्रमबद्धपर्याय'' शब्द नहीं आये हैं। क्रमबद्धपर्याय के पक्ष में कानजी स्वामी और श्री भारिल्ल मुख्यतया कुन्दकुन्दाचार्य की गाथाओं पर चार स्थानों पर आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा की गई टीकाओं का सहारा लेते हैं। वे इस प्रकार हैं:

(1) समयसार गाथा 308 से 311 पर अमृतचन्द्र की टीका : इन गाथाओं में आ. कुन्दकुन्द ने लिखा है कि जो द्रव्य अपने जिन गुणों से उपजता है वह उन गुणों से अन्य नहीं है, जैसे सोना अपने कडे आदि पर्यायों से अन्य नहीं है, वह सोना ही है। उसी प्रकार जीव द्रव्य के परिणाम जीव की ही पर्याय हैं और अजीव की पर्याय अजीव ही है, अन्य नहीं। क्योंकि द्रव्य और उसकी पर्याय अलग अलग नहीं हैं, दोनों अनन्य हैं। आत्मा न किसी से उत्पन्न हुआ है और न किसी का किया हुआ कार्य है और वह (आत्मा) किसी अन्य को भी न उत्पन्न करता है और किसी (दूसरे) का कारण भी नहीं है, क्योंकि कर्म को आश्रय करके कर्त्ता होता है, ऐसा नियम है।

आ. अमृतचन्द्र ने उपर्युक्त गाथाओं की टीका करते हुए लिखा है : *''जीवो हि तावत्क्रमनियमितात्मपरिणामैः उत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः, एवम अजीव अपि क्रमनियमितात्मपरिणामैः उत्पद्यमानो अजीव एव न जीवः।''* इस वाक्य में आये 'क्रमनियमित' शब्द की नींव पर ही कानजीपंथ ने क्रमबद्धपर्याय का सारा भवन खडा किया है, उसका सही अर्थ जानना बहुत जरूरी है। *'क्रमनियमित' शब्द का अर्थ क्रमवर्त्ती है, क्रमबद्ध नहीं है।* पर्याय क्रमवर्त्ती (एक पर्याय के बाद दूसरी पर्याय) होती है, युगपत अर्थात एक साथ दो पर्याय नहीं होती, एक समय में एक पर्याय ही होती है। अतः टीकाकार ने 'क्रमनियमित' शब्द का प्रयोग किया है।

क्रमवर्तीपने का लक्षण स्पष्ट करते हुए, पंचाध्यायी के लेखक (पं. राजमल्ल; कुछ लोग आ. अमृतचन्द्र को इस पुस्तक का कर्त्ता मानते हैं) ने लिखा है: ''क्रम से जो वर्तन करें, अथवा क्रम रूप से होने का जिनका स्वभाव है, या क्रम ही जिनमें होता रहे; अतः पर्याय सार्थक रूप में क्रमवर्ती कहलाती है। इसका आशय यह है कि पहले एक पर्याय का नाश होने पर दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है; फिर उस दूसरी पर्याय के नाश हो जाने पर एक अन्य (अर्थात तीसरी) पर्याय उत्पन्न होती है। इस प्रकार पूर्व–पूर्व पर्यायों के नाश होने पर जो उत्तर–उत्तर पर्यायें क्रम से होती जाती हैं, उसे क्रमवर्त्ती कहते हैं। दूसरे शब्दों में पर्यायों का ऐसा क्रम चालू रहता है, यद्यपि सब पर्याय अपने द्रव्यों के आश्रय से होती हैं। (पंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, श्लोक 168–169).''

इसके अलावा यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहां (समयसार गाथा 308 की व्याख्या करनेवाले) आ.

अमृतचन्द्र एक टीकाकार हैं, मूल लेखक नहीं। टीकाकार का काम होता है मूल लेखक के विचारों को अपनी व्याख्या द्वारा और अधिक स्पष्ट करना, न कि अपनी किसी नई बात का या किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन करना। यदि ऐसा करना होता तो आ. अमृतचन्द्र अपने किसी स्वतंत्र ग्रन्थ में वह सिद्धान्त रखते। अपनी टीका में वे ऐसी बात नहीं कह सकते हैं जो आ. कुन्दकुन्द के विचारों से मेल नहीं खाये।

यही कारण है कि उनका प्रयुक्त 'नियमित' शब्द 'क्रम' का विशेषण नहीं है, किन्तु 'आत्मपरिणाम' का विशेषण है (जीवो हि तावत क्रमनियमितात्मपरिणामैः उत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः) जैसा कि पं. जयचन्दजी के इस पंक्ति के अर्थ से विदित होता है– ''जीव है सो तो प्रथम ही और नियत निश्चित अपने परिणाम तिनिकरि उपजता संता जीव ही है, अजीव नहीं है।'' 'नियमित' शब्द देने का प्रयोजन यह है कि जीव के परिणाम जीवरूप ही है। अजीव रूप नहीं है। इसी प्रकार अजीव भी क्रमानुसार होनेवाले निश्चित अपने परिणामों से (अर्थात निश्चत रूप से अपने आत्म परिणामों से ही) उत्पन्न हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है क्योंकि सभी द्रव्यों का अपने परिणामों (पर्यायों) के साथ तादात्म्य होता है। पं. जयचन्द जी ने भावार्थ में भी कहा है– ''सब द्रव्यों के परिणाम न्यारे न्यारे हैं।''

अतः समयसार गाथा 308–311 पर की गई आ. अमृतचन्द्रकी टीका से ''क्रमबद्धपर्याय अर्थात् एकान्तनियति'' का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता। इस बारे में थोड़ा सा भी सन्देह नहीं है कि पर्याय क्रमवर्ती भी होती है और अक्रमवर्ती भी होती हैं आ. अमृतचन्द्र ने समयसार कलश, 264 में क्रमबद्धपर्याय रूपी एकान्तनियतिवाद का निराकरण करते हुए स्पष्ट लिखा है कि ''यह चैतन्य आत्मा अपने ज्ञानमात्रमयीपने भाव को नहीं छोडते हुये भी वह द्रव्यपर्यायमयी वस्तु है और इस तरह ''एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तदद्रव्यपर्यायमयं चिहिदास्ति वस्तु'', अर्थात् क्रम और अक्रम रूप विशेष वर्तने वाले जो विवर्त (परिणमन की विकाररूप अवस्था) उनसे अनेक प्रकार होकर वह द्रव्य पर्यायमय प्रवर्तन करता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि 'क्रमनियमित' शब्द को क्रमबद्ध का एकार्थवाची (भारिल्ल लिखित पुस्तक, पृष्ट 18–19) समझ लेने की कानजी स्वामी और भारिल्ल ने बहुत बड़ी भूल की है। क्रमबद्धपर्याय का उन्होंने अर्थ लगाया है कि प्रत्येक द्रव्य की तीनों कालों की पर्यायों का क्रम निश्चित है। जिस समय जिस पर्याय का क्रम है वह एक समय भी आगे–पीछे नहीं होगी। 100 नम्बर की पर्याय 99 नम्बर की नहीं हो सकती और 101 नम्बर की भी नहीं हो सकती है। (कानजी स्वामी द्वारा लिखित पुस्तक, पृष्ट 4–5) दूसरे शब्दों में हर द्रव्य की प्रतिक्षण की अनन्त भविष्यकालीन पर्यायें क्रम क्रम से सुनिश्चित हैं। जीव उनकी धारा को नहीं बदल सकता।

यदि ऐसा है तो पुद्गल (अजीव द्रव्य) कर्म के निमित्त से होने वाले जीव के परिणामों (परिणमन, पर्याय) पर जीव का अपना कोई अधिकार नहीं है। वह नितान्त परतन्त्र है और अगले क्षण को नई दिशा देने या बदलने में अपने बल, वीर्य और पौरुष का कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता। जब वह अपने भावों को ही नहीं बदल सकता, तब स्वकर्तृत्व कहां रहा? जीव की उपादान शक्ति का कोई योगदान नहीं रहा, उस जीवात्मा की अपनी उपयोगात्मक वीर्यमय चेतन शक्ति की भी कोई स्वतंत्रता नहीं रही। एक तरफ तो कानजी स्वामी निमित्त को कोई महत्व नहीं देते और यहां क्रमबद्धपर्याय की अवधारणा को प्रचारित करने के लिए जीव की उपादान चेतन शक्ति की स्वतंत्रता को ही नकारते प्रतीत होते हैं।

(2) क्रमबद्धपर्याय के सिलसिले में कानजी स्वामी दूसरा सहारा समयसार की गाथा 76–77–78 का

लेते हैं। इन गाथाओं में आ. कुन्दकुन्द ने कहा है कि ज्ञानी पुद्गल द्रव्य के पर्याय रूप कर्मों को, अपने परिणामों को और पुदगल कर्म के फलों को जानता हुआ भी खलु (निश्चय से) पर द्रव्य के पर्यायों में न तो परिणमन करता है, न उसमें किसी को ग्रहण करता है और उसमें उत्पन्न भी नहीं होता है – इस प्रकार उस (परद्रव्य पुद्गल के परिणमन या पर्याय) के साथ ज्ञानी जीव का कर्तृ–कर्म भाव नहीं है अर्थात् जीव और पुद्गल कर्म के परिणमन (पर्याय) अलग अलग हैं।

इसकी टीका में आ. अमृतचन्द्र कहते हैं: जिस परिणाम रूप आप परिणमें, वह प्राप्य, किसी परद्रव्य की पर्याय को ग्रहण करे वह विकाररूप होने से विकार्य और किसी को उत्पन्न करे, वह निवृत्य। ऐसे तीनों तरह से चेतन जीव अपने से भिन्न पुद्गल द्रव्यरूप न तो परिणमन करता है, न पुद्गल को ग्रहण करता है और न ही पुद्गल को उत्पन्न करता है। इन प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य को क्रमबद्धपर्याय का जामा पहनाने (देखें कानजी स्वामी लिखित पुस्तक, पृष्ठ 6) की कानजी स्वामी ने निरर्थक चेष्टा की है।

(3) क्रमबद्धपर्याय की पुष्टि में तीसरा संदर्भ जो कानजी स्वामी और भारिल्ल देते हैं वह आ. कुन्दकुन्द लिखित प्रवचनसार की गाथा 2.7 है। इसमें कहा है कि द्रव्य के अपने गुण पर्याय रूप परिणमने को स्वभाव कहते हैं और वह स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित है। इसकी टीका में आ. अमृतचन्द्र कहते हैं कि अपने पूर्व–पूर्व के परिणामों की अपेक्षा द्रव्य के आगे आगे के परिणाम उत्पन्न होते हैं। उत्तर उत्तर (आगे–आगे के) परिणामों (पर्यायों) की अपेक्षा द्रव्य के पूर्व पूर्व के परिणाम व्यय रूप हैं, और द्रव्य प्रवाह (प्रवाह क्रम से प्रवृत्ति करने) की अपेक्षा ध्रुव हैं। इस सम्बन्ध में मोतियों के हार का उदाहरण दिया है। इस प्रवाह क्रम शब्द को कानजी स्वामी और भारिल्ल ने भ्रम से क्रमबद्ध पर्याय सिद्धान्त का पोषक (पुष्टि करनेवाला) समझ लिया है। (कानजी स्वामी लिखित पुस्तक, पृष्ठ 36–37 और 123)।

कानजी स्वामी का कहना कि परिणामों के उत्पाद–व्यय–ध्रुव की बात कहकर मानो क्रमबद्धपर्याय की सांकल बना दी है (वही पुस्तक, पृष्ठ 16), उसका मनमाना अर्थ करना है। प्रवाह क्रम का स्पष्टीकरण करते हुए पंचाध्यायीकार ने लिखा है कि क्रम विष्कम्भ को कहते हैं अर्थात् एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, तीसरी के बाद चौथी, इसको प्रवाह, विस्तार या विष्कम्भ कहते हैं। क्रम से परिणमन होना प्रवाह का कारण है या यों कहिए कि जो पर्यायजात के प्रवाह का कारण है वह भी क्रम कहलाता है। यह क्रमवर्ती परिणमन कभी सर्वथा सदृश नहीं होता है यानी बाद की पर्याय (उत्तरवर्ती पर्याय) अपनी पूर्ववर्ती पर्याय से कुछ भिन्नता को लिए अवश्य होती है अर्थात क्रमवर्त्तीपना व्यतिरेकपने की विशिष्टता को लिए हुए होता है। (पंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, श्लोक 175–175)

एक द्रव्य की अपनी क्रमिक अवस्थाओं में अमुक उत्तर पर्याय का उत्पन्न होना केवल द्रव्य योग्यता पर ही निर्भर नहीं करता, किन्तु कारणभूत पर्याय की तत्पर्याय–योग्यता पर भी निर्भर करता है। एक अविच्छिन्न प्रवाह में चलने वाली धारावाहिक पर्यायों का परस्पर ऐसा विशिष्ट सम्बन्ध होता है, जिसके कारण अपनी पूर्व पर्याय ही अपनी उत्तर पर्याय में उपादान कारण हो सके, दूसरे की उत्तर पर्याय में नहीं। यह अनुभव सिद्ध व्यवस्था न तो सांख्य के सत्कार्यवाद में संभव है, और न बौद्ध तथा नैयायिक आदि के असत्कार्यवाद में ही। सांख्य के पक्ष में कारण के एक होने से इतनी अभिन्नता है कि कार्यभेद को सिद्ध करना असम्भव है, और बौद्धों के यहां इतनी भिन्नता है कि अमुक क्षण के साथ अमुक क्षण का उपादान–उपादेय भाव कठिन है। इसी तरह नैयायिकों के अवयवी द्रव्य का अमुक अवयवों के ही साथ समवाय सम्बन्ध सिद्ध करना इसलिए कठिन है कि उनमें परस्पर

अत्यन्त भेद माना गया है। कानजी स्वामी और भारिल्ल का ध्यान शायद ही इन बातों की ओर गया हो।

(4) उपर्युक्त तीन बातों के अलावा कानजी स्वामी क्रमबद्धपर्याय की पुष्टि में षटकारक का भी वर्णन करते हैं (कानजी स्वामी लिखित पुस्तक, पृष्ट 52–53)। इस षटकारक का आधार है प्रवचनसार की स्वयंभू से सम्बन्धित 16वीं गाथा। इसमें कहा है कि यह आत्मा किसी दूसरे की सहायता (मदद) के बिना अपने उपयोग की स्वतंत्रता के बल पर अपने आप ही स्वयंभू पद को प्राप्त होता है। इसकी टीका में आ. अमृतचन्द्र ने षटकारक का प्रयोग किया है। लिखा है यह जीवात्मा स्वयं ही, अपने शुद्ध स्वरूप को, अपने से ही, अपने लिए, अपनी अशुद्ध अवस्था को छोड़कर, अपनी ही शक्ति के आधार से प्राप्त करने के कारण स्वयंभू कहा जाता है। यह आत्मा निश्चय करके आप ही षटकारक है और दूसरे द्रव्य अर्थात् पुद्गल के साथ उसका कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण रूप कारकपने का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ कोई सम्बन्ध है तो व्यवहार से निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

उपर्युक्त चारों संदर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीव और अजीव (पुदगल) की पर्यायें अलग अलग होती हैं और क्रम से घटित होती हैं और पूर्ववर्त्ती पर्याय उत्तरवर्ती पर्यायों की अपेक्षा उत्पाद व्ययरूप होती हैं परन्तु पर्यायों के घटित होने का क्रम पूर्व नियत नहीं होता। क्रमबद्धपर्याय की अवधारणा के द्वारा जो एक नये प्रकार के नियतिवाद को प्रचारित किया जा रहा है, उसकी पुष्टि के लिए कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा 321–323 और सर्वज्ञता की भी दुहाई दी जाती है। (कानजी स्वामी लिखित पुस्तक, पृष्ट 234–235), उनका सही उत्तर पाने के लिए लेखक द्वारा संपादित 'सर्वज्ञता और नियतिवाद' पुस्तक पढ़िये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीव और पुद्गल की पर्यायों का अलग अलग होना और जीव का परद्रव्य अर्थात् पुद्गल के परिणमन को ग्रहण नहीं करना जीव की स्वतंत्रता का उदघोषक है। तथा जीवात्मा का अपने ही में षटकारक की निष्पत्ति हो जाना (सध जाना या सिद्ध हो जाना) और उसका दूसरे द्रव्य के साथ कारकपने के प्रत्यक्ष सम्बन्ध का नहीं होना न केवल जीव की स्वतंत्रता का सूचक है अपितु स्वावलम्बन की आवश्यकता और महत्व को सिद्ध करता है। उसका अर्थ है आत्मा ही आत्मा की शरण है और आत्मा ही अपनी आत्मा का उद्धार कर सकता है।

यदि सब कुछ पूर्व निर्धारित है तो परिवर्तन किसलिए, पुरुषार्थ का क्या योगदान या कार्य और अनेकान्त का कैसे समर्थन (justify) किया जा सकता है। क्रमबद्धपर्याय की अवधारणा की जांच (verify) करने का हमारे पास कोई साधन ही नहीं है। इसलिए पर्याय का क्रमबद्ध होना न होना अपने लिए समान है – कोई कार्यकारी नहीं। ऐसी स्थिति में क्रमबद्धपर्याय के भरोसे हाथ पर हाथ रखे हुए अकर्मण्य होकर बैठे रहने से कोई लाभ नहीं, पुरुषार्थ तो हमें करना ही होगा। यदि पर्यायों के घटित होने का क्रम नियत अर्थात् सर्वथा पूर्वनिश्चयानुसार मान लिया जाय तो नैतिक उत्तरदायित्व समाप्त हो जायेगा। तत्त्वोपदेश, व्रत, संयम, तप, पुरुषार्थ, औषधि सेवन आदि सब व्यर्थ हो जायेंगे, अकाल मृत्यु भी सिद्ध नहीं हो सकेगी और आगम से विरोध आ जायगा।

उपर्युक्त बातों से हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि क्रमबद्धपर्याय की अवधारणा बहुत हानिकारक है, उससे द्रव्य की स्वतंत्रता का हनन किया जा रहा है, अकर्मण्यता को बढावा दिया जा रहा है, पुरुषार्थ के महत्व को नकारा जा रहा है, नियतिवाद और एकान्तवाद को पनपाया जा रहा है और जैन धर्म के सिद्धान्तों के स्वरूप को विकृत किया जा रहा है।

8

मंत्र साधना की मनोवैज्ञानिकता

ब्र. जयकुमार 'निशांत' *(टीकमगढ़)*

भाषा भावना को व्यक्त करने का सशक्त आधार होता है। परस्पर संवाद संप्रेषणा से आत्मीयता सौजन्यता एवं समरसता के साथ सौहार्द एवं प्रेम का वातावरण निर्मित होता है। भाषा के बिना पूजा अर्चना, भक्ति एवं स्वाध्याय संभव नहीं है। भाषा मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ वरदान है। मानव चाहे तो भाषा से भावना शुद्ध करके भगवान की आराधना कर ले, संसार को समेट ले या चित्त की विकृति से निंदा प्रशंसा करके संसार को बढ़ा ले।

भाषा से साहित्य का सृजन होता है जो संस्कृति धर्म एवं समाज के संस्मरण एवं संवर्द्धन से इतिहास बनता है, जो भूत एवं भविष्य का सेतु होता है। पौराणिक महापुरुषों के चरित्र से जहाँ मानसिक संबल मिलता है वहीं उनके द्वारा रचित शास्त्रों एवं ग्रन्थों से जीवनशैली को परिमार्जित करने वाले सूत्र भी मिलते हैं। साधक को यही सूत्र मंत्र बन जाते हैं जिनसे साधक ऊर्जा के अक्षय कोश को उद्घाटित करके जीवन को कर्मों से मुक्त कर संसार के दुःखों से छूट सकता है।

शब्द का निर्माण असर से होता है जबकि मंत्र का निर्माण बीजाक्षर से होता है जो अक्षर से कई गुने शक्तिशाली होते हैं, मंत्र का लयबद्ध शुद्धोचारण करने से पर्यावरण के साथ साधक के अन्तर्मन को भी पावन पवित्र करते हैं।

मकारं च मनः प्रोक्तं प्रकारं त्राण मुच्यते।
मनस्त्राणंस्त्वयोगेन मन्त्र इत्यभिधीयते॥

मंत्र दो असरों से मिलकर बना है, 'म' अर्थात् मन की मनोकामना की 'त्र' अर्थात रक्षा करता है।

स्वमंत्र्यंते गुप्तं भाष्यंते मंत्र विद्विरिति मंत्राः।

जिनको मंत्रज्ञ गुप्त रूप से कहे वे मंत्र कहलाते हैं। यह मंत्र शब्द का व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ है।

अकारादि हकारान्ता वर्णाः मंत्राः प्रकीर्तिताः।

अकार से हकार तक के स्वतंत्र असहाय अथवा परस्पर मिले हुए (असर) मंत्र कहलाते हैं।

जिस प्रकार अलग अलग रोगों की औषधि अलग–अलग होती है, उसी प्रकार मंत्र

भी कई प्रकार के होते हैं यथा आकर्षण, सम्मोहन, स्तंभन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण आदि।

मंत्र विन्यास के आधार पर मंत्र के असंख्य भेद होते हैं, जो श्रावक को उसकी असाता कर्मोदय, शक्ति, एकाग्रता एवं रुचि के अनुसार फल देते हैं, जिनका प्रयोग साधक अपनी भावनानुसार करता है। मंत्र विद्या को सिद्ध करने के अलग साधन आचार्यों ने वर्णित किए हैं, परन्तु वर्तमान में चित्त की अस्थिरता एवं अशुद्धि से मंत्र साधना का निषेध किया गया है। हीन संहनन, भक्ष्याभक्ष्य का अविवेक, मंदबुद्धि, हीन शक्ति होने से साधक मंत्र ऊर्जा को सहन नहीं कर पाता है जिससे मानसिक विकृति भी होते देखी गयी है।

मंत्र में ऊर्जा का अक्षय कोष होता है जो साधक की क्रियाविधि, संयमसाधना, एकाग्रता, मन, वचन, काय एवं द्रव्य से काल भाव की शुद्धि पर निर्भर करता है। मंत्र ऊर्जा से आत्मविश्वास, आत्मशक्ति बढ़ने से अशुभ से निवृत्ति की शक्ति, संयम साधना करने का संबल, विकारी परिणामों को दूर करने का भाव जागृत होता है। जिससे जीवन शैली परिमार्जित होने लगती है। पुण्यास्रव बढ़ने से धार्मिक कार्यों में रुचि बढ़ने लगती है जिसके फलस्वरुप संसार के दुःखों से छुटकारा मिलने लगता है।

जिस प्रकार अलग–अलग व्यक्ति का फोन नम्बर अलग–अलग होता है, उसी प्रकार प्रत्येक मंत्र की ऊर्जा भी भिन्न होती है जो उसके आराध्य तक संप्रेषित होती है।

यदि फोन नम्बर में एक भी अंक गलत हो जाये तो संबंधित व्यक्ति से बात नहीं हो पाती है उसी प्रकार मंत्र का शुद्ध उच्चारण होने पर साधक उसकी ऊर्जा से अर्जित नहीं हो पाता है। इसीलिए अनुष्ठान में मंत्र जाप करने के लिए पात्रता एवं योग्यता अनिवार्य है।

(1) अभक्ष्य एवं रात्रि भोजन का त्याग।

(2) हिंसक पदार्थों का पूर्णता त्याग।

(3) शुद्ध भोजन पूर्वक एकाशन।

(4) ब्रह्मचर्य का पालन।

(5) कषाय का बुद्धिपूर्वक त्याग करने का अभ्यास।

जिस प्रकार रोग की तीव्रता में औषधि उसके आवेग को कम करती है और पत्थ्यानुसार प्रयोग करने पर रोग से छुटकारा दिला देती है उसी प्रकार मंत्र भी साधक के असाता एवं अशुभ की तीव्रता को कम करके विधि अनुसार आराधन करने पर उससे छुटकारा भी दिला देता है।

जैसे आँखों की बीमारी विटामिन ए से, त्वचा की बीमारी विटामि डी से बुखारादि औषधि लेने से शांत हो जाते हैं अर्थात् शरीर में विकृति उत्पन्न करने वाले केन्द्रों को नियंत्रित करते ही विकार दूर हो जाता है। साधक यह नियंत्रण मंत्र साधना द्वारा कर लेता है। विवेक एवं संयमपूर्वक मंत्र साधना से विष निर्विष होना, कुष्ठ रोग दूर होना, धूल से पाषाण स्वर्ण का होना आदि कई उदाहरण हमारे सामने हैं। इसी प्रकार क्रोध का बिन्दु नियंत्रित करते ही क्रोध शांत हो जाता है, मादक द्रव्यों के पीने की आदत छूट जाती है, औषधीय रसायनों के प्रभाव से कर्म के विपाक को बदलने में सहायता मिलती है; जैसे मंदबुद्धि के प्रभाव को कम करने के लिए ब्राह्मी आदि बूटियों का सेवन, गर्मी की तीव्र वेदना में शीतल पेय पदार्थों का सेवन सहयोगी बनता है। इससे सभी के रोग दूर हों यह आवश्यक नहीं है, सभी रोगी डॉ. के द्वारा दी गयी औषधि से नीरोगिता को प्राप्त नहीं होते, पूर्व कर्मानुसार ही उन्हें लाभ मिलता है। उसी प्रकार मंत्र साधना से भी साधक पूर्व कर्मानुसार एवं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार ही लाभ प्राप्त करता है। साधक का रात्रि भोजन अभक्ष्य एवं नशीले पदार्थों का त्याग होने से

शरीर रोग ग्रस्त नहीं होता है। सात्विक भोजन करने से तामसिक रसायन न बनने से शरीर में विकृति नहीं आती है। मन्त्र अनुष्ठान विधि में व्रतोपवास एवं रस परित्याग से शारीरिक समता बढ़ती है, तथा सुगर, ब्लड प्रेशर, हृदय एवं किडनी आदि के रोगों से बचाव होता है। मंत्र ऊर्जा से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता से बनने वाले रसायन द्वारा अशुभ पदार्थों का निष्काशन होने लगता है, जिससे शारीरिक विकृति नहीं होती। आत्मशक्ति बढ़ने से उत्तेजना, सोभ, बैर परिणाम, निंदा एवं क्रोध पर नियंत्रण होने लगता है। ऊर्जा से आभामण्डल का शोधन होने से दूषित पर्यावरण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

मंत्र साधना का द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की शुद्धि से सीधा संबंध होता है। शास्त्रों में तामसिक, राजसिक एवं सात्विक मंत्र साधना का उल्लेख है। परघात, विद्वेष, उच्चाटन, मारण, वशीकरण, स्तंभन, सम्मोहन आदि क्रियायें लौकिक एवं स्वार्थ सिद्धि के लिए अशुभ द्रव्य, क्षेत्र काल एवं भाव से की जाती हैं। इन क्रियाओं से साधक के परिणाम खोटे एवं क्रूर होते हैं अतः इनका प्रयोग न करते हुए सात्विक मंत्र साधना करना चाहिए। परोपकार कल्याण, पर्यावरण शुद्धि, परिणाम शुद्धि एवं आत्मकल्याण की भावना सात्विक मंत्र साधना से ही संभव है।

द्रव्य शुद्धि : साधक की खान पान शुद्धि, सात्विक आहार, रात्रि भोजन एवं अभक्ष्य का त्याग अनिवार्य है क्योंकि गृहशुद्धि भोजन शुद्धि, शरीर शुद्धि, आसन शुद्धि, जाप्य सामग्री, हवन सामग्री सभी का साधक के चित्त पर प्रभाव पड़ता है।

क्षेत्र शुद्धि : मंत्र साधना में क्षेत्र का प्रभाव मंत्र ऊर्जा, साधक के परिणाम एवं फल की प्राप्ति में विशेष रूप से पड़ता है।

गृहे जप फलं प्रोक्तं वने शतगुणं भवेत्
पुण्यारामे तथारण्ये सहस्रगुणितं मतम्॥
पर्वते दशसाहस्रं च नद्यां लक्षमुदाहृतं।
कोटि देवालये प्राहुरनन्तं जिन सन्निधौ॥

घरमें मंत्राराधन करने पर एक गुणा, वन में सौ गुना, नशिया एवं वन में हजार गुना, पर्वत पर दस हजार गुना, नदी पर लाख गुना देवालय में करोड़ गुना,जिनेन्द्र देव के समक्ष अनंत गुना फल दायक होता है। अतः कार्य सिद्धि के लिए मंत्राराधन देवालय था जिनेन्द्र देव के समक्ष करना चाहिए।

कालशुद्धि : मंत्र शास्त्रों में साधना काल का विशेष महत्व बताया है। दिन एवं रात्रि के काल के प्रभावानुसार अलग अलग संज्ञा दी गयी है, जिसके अनुसार साधना में प्रभाव पड़ता है। दिन को आनंद,सिद्ध, काल, रूप एवं अमृत प्रत्येक 6–6 घडी तथा रात्रि को 6 से 9 बजे रौद्र, 9 से 12 राक्षस, 12 से 3 गंधर्व, 3–6 मनोहर एक एक प्रहर संज्ञा दी गयी है। जिसका साधक पर नामानुसार प्रभाव पड़ता है।

आचार्यों ने मंत्र अनुष्ठान कालशुद्धि पूर्वक करने का निर्देश दिया है। अर्थात् शुभ तिथि, वार, नक्षत्र, काल, जो गुरु अस्त, शुक्रअस्त, समतिथि, मल मास, चन्द्र, सूर्य ग्रहण, शोकादि से रहित हो उसमें मंत्रानुष्ठान आरंभ करना चाहिए।

भावशुद्धि– मंत्रानुष्ठान में मुख्य है भावशुद्धि, जो उपरोक्त शुद्धियों के माध्यम से की जाती है। जिस शरीर से विषय भोग भोगे जाते हैं उसी को योग एवम संयम साधना में संलग्न करना है। इसका मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विवरण इस प्रकार है।

गृहशुद्धि से भोजन शुद्धि, भोजन से चित्त शुद्धि और चैत्य शुद्धि होती है। चैत्य शुद्धि के भावशुद्धि, आत्मशुद्धि होती है। इस प्रक्रिया में हमारी लेश्या तथा आभामण्डल की मुख्य भूमिका होती है।

जिस प्रकार टी.व्ही. में चैनल परिवर्तन करते ही ध्वनि एवं दृश्य बदल जाता है, अर्थात् टी.वी. में ऐसी विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा होती है जो विभिन्न चैनल की ऊर्जा को संग्रहित करती है और भिन्न भिन्न कार्यक्रमों का देखना संभव होता है। उसी प्रकार हमारे आभामण्डल की विद्युत चुम्बकीय शक्ति जिस प्रकार भाव होते हैं वैसी ऊर्जा ब्रह्मांड से खींचने लगता है अर्थात् शुभभाव होते ही सकारात्मक शक्तिवर्धक ऊर्जा तथा अशुभ भाव होते ही नकारात्मक शक्ति क्षीण करनेवाली ऊर्जा प्राप्त करते हैं। भावों की प्रतिक्रिया से हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ तदरूप रसायन का स्राव करती हैं जो हमारे तंत्रिका तंत्र एवं विभिन्न संस्थानों को प्रभावित एवं उत्तेजित करते हैं। यथा क्रोध का भाव आते ही नार एड्रीनेलिन रसायन का स्राव शरीर में उत्तेजना पैदा करता है जिससे आँखे लाल होना, आवाज भारी होना, स्नायुओं में खिंचाव होना आदि परिवर्तन होने लगते हैं। जब शोकपूर्ण भाव आते हैं तब सीरोटिन रसायन का स्राव निराशा अश्रुपात आदि शक्तिक्षीण करने में कारण बनता है। हर्ष एवं खुशी के भाव आते ही एण्डोर्फिन रसायन का स्राव उल्लास उत्साहरूप में शक्तिवर्धन का कारण बनता है। भक्ति एवं अनुष्ठान का भाव आते ही एड्रेनेलिन रसायन का स्राव श्रद्धा एवं समर्पण में कारण बनता है।

इस प्रकार हम देखते हैं भाव परिवर्तन के अनुसार ही हमारी ग्रन्थियों से विभिन्न रसायनों का स्राव होता है। जैनदर्शन की भाषा में जैसे भाव होते हैं उसी प्रकार का आस्रव एवं बंध होता है। मंत्र अनुष्ठाव एवं संयम साधना से आत्मशक्ति एवं शारीरकि क्षमता बढ़ने के साथ साधक का आभामण्डल भी परिष्कृत होता है, जिससे काषायिक परिणाम, हिंसादि परिणाम नहीं होते हैं। इस प्रकार साधक मंत्र साधना से अशुभ आस्रव से भरकर शुभास्रव करता है। इच्छाओं का निरोध होने से भौतिक संशाधनों का त्याग स्वमेव होने लगता है, आसक्ति कम होते ही संसार शरीर एवं भोगों में उदासीनता आ जाती है और साधक परिग्रह, परिवार, व्यापार के व्यामोह से बचकर मोक्षमार्ग की ओर प्रवृत्त होकर मानव जीवन सफल करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) प्रतिष्ठापाठ – आचार्य जयसेन
(2) व्रत तिथि निर्णय– डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य
(3) मंत्रानुशासन – ब्र. कौशल
(4) प्रतिष्ठा रत्नाकर– पं. गुलाबचन्द्र पुष्प
(5) गोम्मट प्रश्नोत्तर चिंतामणी
(6) ब्र. वैभव – पं. गुलाबचन्द्र पुष्प
(7) जैनागम संस्कार – मुनि आर्जव सागर
(8) उमास्वामी श्रावकाचार – आचार्य उमास्वामी

9

आगम के परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्र

डॉ. जयन्तीलाल जैन *(चैन्नई)*

परिभाषा

'इकोनोमिक्स' शब्द ग्रीक शब्द 'ओईकोस' से लिया गया है जिसका अर्थ 'घर' होता है और 'नेमेन' का अर्थ 'प्रबन्धन' है। इस प्रकार 'घर का प्रबन्धन' उसका भाव है। अध्यात्म के अर्थ में तो 'घर के प्रबन्धन' में अपने अन्तर के घर, आत्मा या उसके भावों का प्रबन्धन हो, अर्थशास्त्र का विषय हो जाता है। स्थूल दृष्टि से देखें तो अर्थशास्त्र व आगम का मेल नहीं होता है, लेकिन जब गंभीरता से विचार किया जाय तो इनमें गहरा संबंध है।

लौकिक अर्थशास्त्र की परिभाषाएँ पांच बातों पर आधारित हैं : (1) धन (2) हित/सुख (3) अनेक इच्छाएँ व सीमित साधन (4) विकास (5) जटिल समस्याओं में अर्थशास्त्र के तर्क व मुक्ति का प्रयोग। इन परिभाषाओं एवं उनके भाव को ध्यान में रखकर इच्छाओं की पूर्ति, भोग, उपभोग, उत्पादन, वितरण, न्यायोचित वितरण, निर्धनता, विकास आदि–प्रमुख विषय अर्थशास्त्र में होते हैं। आजकल तो स्वास्थ्य, विवाह, पर्यावरण, उद्योग, सरकारी कार्यक्रम आदि मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में जहां निर्णय होता है और साधन/चयन सीमित हैं, अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री हो जाती है। अन्य शब्दों में, जहाँ सुख की बात आती है और सुख अनेक बातों पर निर्भर करता है, उन सब विषयों का अर्थशास्त्र में समावेश हो जाता है। रोबिन्स नाम के अर्थशास्त्री ने तो 'निर्णय की स्थिति' को ही अर्थशास्त्र कहा है– चाहे वह अकेले राबिन्सन क्रसो की ही या हिमालय के साधु की हो। नोबेल पुरस्कार विजेता पाल सेमुयलसन ने भी चयन या निर्णय की स्थिति को अर्थशास्त्र का विषय कहा, चाहे फिर वह 'पैसे सम्बन्धी हो या न हो।' पुनः वह भोग का विषय चाहे वर्तमान संबंधी हो या भविष्य के लिए।

विषय–सामग्री

सभी अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के बारे में एकमत नहीं हैं। डी.एच. रोबर्टसन ने अपनी पुस्तक 'मनी' में लिखा कि पैसा जो मनुष्य जाति के लिए अनेक सुखों का स्रोत है, यदि उस पर नियंत्रण नहीं किया जाय तो विनाश व भ्रम का स्रोत बन जाता

है। कार्लमार्क्स ने 'दास केपटल' में कहा कि पूंजी के संचय के साथ दुःख, परिश्रम की व्याकुलता, दासता, अज्ञान, क्रूरता व मानसिक पतन का संचय होता है। 19वीं सदी में भी अर्थशास्त्र को 'स्वार्थी होने का विज्ञान', 'घटिया विज्ञान', 'ब्रेड व बटर विज्ञान' आदि अनेक शब्दों द्वारा इसकी आलोचना की गई और वर्तमान में भी की जाती है।

प्रत्येक जीव सुख चाहता है एवं दुःख को टालना चाहता है, लेकिन दुःख को जाने बिना उसका टालना कैसे संभव हो सकता है? अतः सुख का होना विरोधाभास रूप ही लगता है। इच्छाओं की पूर्ति को सामान्यतया सुख और अपूर्ति को दुःख कहा जाता है, परन्तु सभी इच्छाओं की पूर्ति तो हो नहीं सकती है अतः जीव निरंतर दुःखी ही रहता है। अतः जैन आगम कहता है कि सुख आत्मा का गुण है और उसको जाने व अनुभव किये बिना जीव कैसे सुखी हो सकता है? आत्मा तो सुख का खजाना है, सुख सागर है, आनंद से भरा पड़ा है। बाह्य पदार्थों की इच्छा ही जीव को दुःखी करती है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष जीवन के चार उद्देश्य कहे जाते हैं। इसकी सच्ची समझ तो आगम में बताई गई है जबकि अन्य तो इनका गलत अर्थ ही समझते हैं। सामान्यतया यह माना जाता है कि पारिवारिक धर्म की परम्पराएँ या क्रियायें निभाना ही धर्म है; सोना, चांदी, धन आदि को अर्थ कहते हैं; इंद्रियों के भोगों को काम कहते हैं; और स्वर्ग की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं। जैनागम में तो वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं, आत्मा के अनंत वैभव का अनुभव एवं उसकी प्राप्ति को अर्थ कहते हैं, इंद्रियों के भोगों पर विजय की इच्छा (कामना) होती है, और सिद्ध भगवान जैसी अनंत सुख की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं। इस प्रकार सामान्य जन उक्त चारों में बाह्य में सुख को खोजता है जबकि जैनागम उक्त चारों को अपने भीतर देखकर सुख खोजने को बतलाता है।

उत्पत्ति

वर्तमान में अर्थशास्त्र का इतिहास तो बिल्कुल नया है। लगभग 250 वर्ष पहले इसके बारे में लिखना व चर्चा प्रारंभ हुई। 18वीं शताब्दी के एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का पिता कहा जाता है। भारतीय परम्परा में कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी प्रसिद्ध है।

जैनागम के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो अर्थशास्त्र अनादि से है क्योंकि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की धारणा अनादि से है। इस युग में तो लगभग एक कोड़ाकोड़ी सागर पहले प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प– ये छः प्रकार के कार्यों का उपदेश प्रजा की आजीविका हेतु अपने राज्यकाल दिया। शस्त्र धारण कर सुरक्षा कार्य असिकर्म है। लिखकर आजीविका चलाना मसिकर्म है। जमीन को जोत या बो कर फसल उगाना कृषि कर्म है। शास्त्र पढ़ाकर या नृत्य गान आदि द्वारा आजीविका करना विद्या कर्म है। व्यापार करना व्याणिज्य कर्म है और हस्तकला में प्रवीणता के कारण चित्र खींचना आदि शिल्प कर्म है। उसी प्रकार भगवान ऋषभदेव के काल में तीन वर्णों की स्थापना (क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र) एवं बाद में भरत चक्रवर्ती द्वारा ब्राह्मण वर्ग की स्थापना भी गुणों के साथ–साथ आजीविका से जुड़ी हुई है। प्रजा की आजीविका के उपायों का विचार व मनन करने के कारण वे 'मनु' कहलाये। विदेह क्षेत्र की कर्म भूमि की स्थिति के अनुसार आदिनाथ के जीवन राजा के रूप में ऐसी अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन किया। उसी तरह ग्राम, घर आदि की रचना का उपदेश भी दिया। इस प्रकार आदिनाथ इस युग के प्रथम अर्थशास्त्री भी कहे जा सकते हैं और उनके द्वारा समाज व अर्थव्यवस्था के बारे में उपदेश को आदिपुराण में विस्तार से जाना जा सकता है। इससे अर्थसास्त्र का भी अनादि

होना या अति प्राचीन होना सिद्ध हो जाता है।

प्रथमानुयोग

जिसमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष – इन चार पुरुषार्थ एवं महापुरूषों के चरित्र का वर्णन होता है वह प्रथमानुयोग है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कुलकर आदि पुरूषों के समय वैभव व सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था का विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन प्रथमानुयोग के शास्त्रों में मिलता है। आदिपुराण, उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, श्रीपाल चरित्र, श्रेणिक चरित्र आदि के वर्णन अर्थव्यवस्था को भी बताते हैं। ऐसे महान पुरूष आमतौर से राजा होते हैं और राजा को तो एक अच्छा अर्थशास्त्री होना आवश्यक होता है। अच्छा राजा तो अवश्य अर्थशास्त्र का ज्ञान रखता है। नीचे कुछ उदाहरणों से इस बात को अधिक स्पष्ट करते हैं।

यह प्रसिद्ध है कि आदिनाथ ने अपने भरत आदि पुत्रों को आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये। बड़े–बड़े अध्यायों सहित अर्थशास्त्र, नृत्यशास्त्र, चित्रकलाशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, तंत्र परीक्षा, रत्नपरीक्षा आदि उनमें प्रमुख हैं।

वर्तमान अर्थव्यवस्था में गरीबों के लिए अनेक आर्थिक कार्यक्रम सरकार व अन्य लोगों द्वारा चलाये जाते हैं। आदिपुराण में भरत चक्रवर्ती के चक्ररत्न की पूजा व पुत्र के आनंद महोत्सव का वर्णन आता है। उसमें आचार्य जिनसेन लिखते हैं– ''राजा भरत के उस महोत्सव के समय संसार भर में कोई दरिद्र नहीं था, किन्तु दरिद्रता सबको संतुष्ट करनेवाले याचकों के प्राप्त करने में रह गयी थी।'' पुनः 31वें पर्व में कहा है, 'योग्य निधियां, रत्न तथा उत्कृष्ट भोग–उपभोग की वस्तुओं के द्वारा जिसमें सुखों का सार प्रगट रहता है और जिसमें अनेक सम्पदाओं का प्रसार रहता है, ऐसा यह चक्रवर्ती पद जिसके प्रसाद से लीलामात्र में प्राप्त हो जाता है, ऐसा यह जिनेन्द्र भगवान का शासन सदाकाल जयवन्त रहे।' अयोध्या की रचना इंद्र द्वारा की गई, हरिवंशपुराण में राजा नाभिराय के प्रासाद 'सर्वतोभद्र' का वर्णन है। उसके खम्भे स्वर्णमय थे, दीवालें नाना प्रकार की मणियों से निर्मित थीं। वह महल पुखराज, मूंगा, मोती आदि की मालाओं से सुशोभित था। इक्यासी खंड से युक्त था। कोट, वापिका तथा बाग–बगीचों से अलंकृत था।

करणानुयोग

अर्थशास्त्र को सांसारिक सुख से संबंधित मानकर देखा जाय तो करणानुयोग के शास्त्रों में तो लोक के विभाग, युग–परिवर्तन, चार गतिरूप परिभ्रमण आदि का स्वरूप बतलाकर सांसारिक सुख–दुःख की स्थिति का वर्णन किया गया है। तिलोयपण्णति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप पण्णति आदि ग्रंथों में करणानुयोग के विषयों का व्यापक वर्णन मिलता है।

अधोलोक में नरकों के उष्ण–शीत बिल का स्वरूप दुःखों की तारतम्यता को बताता है। नरकों में जन्म लेते समय बिलों में औंधे मुंह गिरकर जीव गेंद के समान उछलता है। इन नरकों की मिट्टी की स्थिति व नरकों के दुःख से वहां की व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। नारकी आपस में एक दूसरे को भयंकर दुःख देते हैं और क्षण मात्र के लिए भी वहां सुख व शांति नहीं मिलती है। लेकिन वहां भी जीव वेदना से, देवों के सम्बोधन से या जाति स्मरण ज्ञान से सम्यक्त्व की प्राप्ति कर अंतरंग में सुख का अनुभव करते हैं।

मध्यलोक में जम्बू, धातकी एवं पुष्करार्ध आदि ढ़ाई द्वीप एवं असंख्यात द्वीप व असंख्यात समुद्र हैं। उनमें पर्वतों के नाम, क्षेत्रों के नाम, नदियों के नाम, भरत व हिरावत क्षेत्र के छः खण्ड, सुमेरू आदि पर्वत, 170 कर्मभूमि की व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों की आर्थिक व्यवस्था का पता लगता है। कर्मभूमि में मनुष्य साधना कर कर्मों का नाश कर अनंत सुख की दशावाले मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। अन्य जीव संसार चक्र में ही बने रहते हैं। भोग–भूमि, कुभोग–भूमि, कुमानुष आदि के निरूपण में वहां की जीवन–व्यवस्था एवं सुख–दुःख की स्थिति का ज्ञान होता है। मध्यलोक के जिनालयों का वर्णन वहां के अतुल वैभव को बताता है।

स्वर्ग लोक की व्यवस्था भी एक अद्‌भुत जीवन या अर्थ व्यवस्था को बताता है। भवनवासी देवों के स्थान, भवनों का प्रमाण, जिनमंदिर, उन देवों के परिवार आदि का वर्णन मानो मनुष्य की अर्थव्यवस्था को चुनौती देता है। उदाहरणार्थ उनके भवन समचतुष्कोण, तीन सौ योजन ऊँचे व विस्तार में संख्यात व असंख्यात योजन प्रमाण होते हैं। अनेक रचनाओं सहित, उत्तम सुवर्ण व रत्नों से निर्मित भवनवासी देवों के महल हैं। इसी प्रकार विभिन्न जाति के व्यन्तर देव अपने परिवार देवों सहित अनेक प्रकार के सांसारिक सुखों का अनुभव कर अपने पुरों में बहुत प्रकार की क्रीड़ाओं को करते हुए मग्न रहते हैं एवं दिव्य अमृतमय मानसिक आहार ग्रहण करते हैं। इंद्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक ऐसे भेद वाले विमान कल्प व कल्पातीत देवों के होते हैं, उनकी संख्या, प्रमाण व उनके वैभव की चर्चा भी आगम में विस्तृत रूप से है। विमानों का प्रामण संख्यात व असंख्यात योजन वाले हैं। इन विमानों के ऊपर समचतुष्कोण व दीर्घ आदि विविध प्रकार के प्रासाद स्थित हैं जो सुवर्णमय, स्फटिकमय आदि रत्नों से निर्मित उपपाद शय्या, आसन शाला आदि से परिपूर्ण हैं। ऐरावत हाथी जो वाहन जाति का देव है, जो दिव्य रत्नमालाओं से युक्त है, रत्नों से निर्मित दांत है और दांतों पर सरोवर, कमल, नाट्यशाला आदि का स्वरूप अतुल वैभव को बताता है। स्वर्गों में अनुपम व रत्नमय जिन भवन हैं। देवों का कामसेवन प्रवीचार सुख है जो काम प्रवीचार, रूप प्रतीचार, शब्द प्रवीचार व मनः प्रवीचार भेदरूप विभिन्न स्वर्गों में अलग–2 हैं।

तीर्थंकरों के पंचल्याणक में देवों द्वारा भाग लेने का अद्‌भूत व विस्तृत वर्णन आगम में मिलता है जो उनकी जीवन पद्धति, यातायात, वैभव, कला आदि आर्थिक विषयों पर प्रकाश डालती है। समवशरण की विचित्र रचना भी उनके वैभव व निर्माण कला की आश्चर्यकारी अर्थव्यवस्था बतलाता है।

सिद्धों का सुख तो वचन के आगोचर है। चक्रवर्ती, भोगभूमि, धरणेन्द्र, देवेन्द्र व अहमिन्द्रों के सुख से भी अनंत–अनंतगुणा है। इन सबके अतीत, अनागत व वर्तमान संबंधी सभी सुखों को एकत्र करने पर भी सिद्धों का क्षणमात्र में उत्पन्न हुआ सुख अनंत गुणा है।

चरणानुयोग

श्रावक अपने 'अर्थ' की प्राप्ति, वृद्धि व रक्षा कैसे करते हैं उसका वर्णन चरणानुयोग के शास्त्रों में होता है। श्रावक व मुनि धर्म का वर्णन इसकी विशेषता है और रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पुरूषार्थ सिद्धि उपाय, आत्मानुशासन, सागरधर्मामृत, रयणसार, मूलाचार आदि अनेक ग्रंथ इन विषयों पर प्रकाश डालते हैं। लोक में जो अर्थशास्त्र है वह न केवल धन या अर्थ का उपार्जन कैसे करना बताता है अपितु उसकी रक्षा, खर्च या उपयोग कैसे करना उस पर भी विचार करता है। इनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र को धर्म बतलाकर लोकमूढ़ता, कुदेव या

देव मूढ़ता, पाखंडमूढ़ता, आठ मद, छः अनायतन (कुदेव, कुदेव का मंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्र के धारक,खोटी तपस्या व खोटी तपस्या करनेवाले) आदि जो सम्यग्दर्शन को मलिन करनेवाले पच्चीस दोष हैं उनका त्याग करने की व्यवस्था बताई है ताकि उनमें धन आदि खर्च न करें व तन व मन को भी उधर न लगाएँ। चारों अनुयोगों से पदार्थ के सच्चे स्वरूप को जानने से सम्यग्ज्ञान होता है जो जीवन व्यवस्था के लिए मार्गदर्शक होता है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह के कार्यों में उपभोग व धन न लगायें एवं उनमें एकदेश त्याग की बात कही गई है जो अणुव्रत कहलाता है। इसीप्रकार, तीन गुणव्रत–दिग्व्रत, अनर्थदंडव्रत और भोगोपभोग परिमाण व्रत और चार शिक्षाव्रत–देशावकाशिक, सामायिक, पोषधोपवास व अतिथि संविभाग व्रत गृहस्थ के जीवन व अर्थ संबंधी चर्या पर प्रकाश डालकर उसे अपनी अर्थव्यवस्था का संचालन किस प्रकार करना चाहिए, उसका वर्णन चरणानुयोग शास्त्रों में मिलता है। सप्त व्यसन का त्याग व श्रावक के अष्टमूलगुणों का पालन भी अपने उपार्जित धन के प्रयोग की कला बतलाता है। श्रावक की षट् आवश्यक क्रियायें, चार धर्म या दान के प्रकार आदि का तो विस्तार से वर्णन आगम में मिलता है जैसा अन्यत्र नहीं है। परमार्थ की सिद्धि के लिए कैसी गृहस्थ की अर्थव्यवस्था होनी चाहिए– इसका अद्भुत वर्णन चरणानुयोग है।

सीमित उपलब्ध साधनों से अधिक सुख/लाभ की प्राप्ति अर्थशास्त्र का प्रमुख व महान सिद्धांत है। इस लेख में पूर्व में रॉबिन्स के मत को बताया था कि हिमालय के साधु पर भी अर्थशास्त्र के सिद्धांत पूर्णतः लागू होते हैं। अतः श्रावक के साथ–साथ मुनिराज के जीवन में भी अर्थशास्त्र के महान सिद्धांत घटित होते हैं। मुनिराज अपने आत्मध्यान, महाव्रतों का पालन एवं उग्र तपस्या के द्वारा मोक्ष के परम व अविनाशी सुख को प्राप्त करते हैं। मुनिराज कोई भी बाह्य भौतिक या अन्य साधनों के प्रयोग के बिना ही एक अद्भूत परमार्थिक सुख की प्राप्ति करतेहैं, ऐसा जैनागम एक पारमार्थिक अर्थशास्त्र है। कभी–कभी तो मुनिराजों को अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट होती हैं जो किसी भी धन या अन्य प्रकार की मेहनत से नहीं प्राप्त की जा सकती हैं। बुद्धि, विक्रिया, क्रिया, तप, बल, औषधि, रस व क्षेत्र नामक आठ प्रकार की ऋद्धियों के स्वामी मुनिराज होते हैं और उनके अनेक भेद भी होते हैं। जो इन ऋद्धियों से प्राप्त होता है वह वर्तमान में किसी भी वैज्ञानिक आविष्कार या साधनों से प्राप्त करना असंभव है। तीर्थंकर के जीव को समवसरण की विभूति प्रकट होती है जो अनेक दृष्टि से सारे विश्व की अद्भुत रचना होती है और अनेक आश्चर्यकारी घटनाओं से सुशोभित होती है। उस जैसी सभा जगत की महा महिमामय सभा है। अरहंत व सिद्ध भगवान का सुख–अर्थशास्त्र के सुख व लाभ के सिद्धांत का परम शिखर है, जीवन शास्त्र व जिनागम का लक्ष्य एवं सार है।

द्रव्यानुयोग

अर्थशास्त्र को धन या वैभव का विज्ञान कहते हैं और द्रव्यानुयोग तो आत्म वैभव का विज्ञान है एवं जैन धर्म का प्राण है। वीतराग विज्ञान पद से दौलतरामजी ने इसे सम्बोधित किया। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह, गोम्मटसार जीवकांड, परमात्म प्रकाश आदि अनेक ग्रंथों में छः द्रव्यों का, पुण्य–पाप व बंध– मोक्ष का वर्णन मिलता है। उनमें अर्थव्यवस्था के मूलभूत सिद्धांतों की झलक भी मिलती है।

समयसार ग्रंथ की प्रथम गाथा की टीका करते हुए अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं कि धर्म, अर्थ व काम त्रि वर्ग कहलाते हैं और मोक्ष इस वर्ग में नहीं है, इसलिए उसे अपवर्ग कहते हैं। अर्थात् मोक्ष की बात बताने के लिए

त्रिवर्ग–धर्म (पुण्य), अर्थ (लक्ष्मी) और काम (विषय वासना) की बात के बिना नहीं हो सकती क्योंकि इसी प्रकार प्रयोजनभूत, हेय–उपादेय आदि का निर्णय किया जा सकता है।

आचार्य कुंदकुंद ने समयसार की गाथा 4 में अर्थशास्त्र आदि समस्त विषयों को 'काम–भोग बंध कथा' कहा है। काम अर्थात् इच्छा और भोग अर्थात् इच्छा का भोगना। इस प्रकार काम–भोग संबंधी कथा का तात्पर्य इच्छा व इच्छाओं की पूर्ति संबंधी प्रयत्नों की कथा है। आचार्य जयसेन 'काम' में स्पर्शन व रसना इंद्रियों के विषयों को और 'भोग' में घ्राण, चक्षु व कर्ण इंद्रियों के विषयों को लेते हैं। इस तरह काम, भोग व बंध – इन तीनों की कथा अर्थशास्त्र आदि लौकिक विज्ञान में होती है। आचार्य कुंद कुंद पुनः कहते हैं कि मैंने 'मेरे आत्मा का निज वैभव' जो है उसे दर्शाने का व्यवसाय किया है और वह आत्मा का वैभव इस लोक में समस्त वस्तुओं का प्रकाशक है और स्यात्पद की मुद्रावाला (ट्रेडमार्क) है। आगम में भोग व उपभोग में भेद किया गया है। जो एकबार भोग करने के बाद फिर भोग में नहीं आते हैं वे भोग हैं जैसे भोजन एक बार ही भोगने में आता है। जो पदार्थ बार–बार भोगने में आते हैं वे उपभोग हैं जैसे वस्त्र, मकान, आभरण आदि।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आगम में अर्थशास्त्र के प्रतिपादन में काफी गंभीरता है और एकदम वैज्ञानिक है। मूल में ही जाकर विश्लेषण किया गया है जहां से एक धारा संसार (त्रिवर्ग) की ओर जाती है और दूसरी मोक्ष (अपवर्ग) की ओर। जैन शास्त्र अर्थशास्त्र तो नहीं हो सकते लेकिन फिर भी आगम में अर्थव्यवस्था संबंधी चाहे वह बात व्यक्ति (माइक्रो) या समष्टि (मेक्रो) की हो, गंभीर व सूक्ष्म चर्चा मिलती है। उक्त 'काम भोग बंध कथा' रूप परिभाषा करने से चारों ही गतियों में होनेवाली इच्छाओं की पूर्ति के प्रयत्न आ जाते हैं। अर्थात् स्वर्ग, नरक, मनुष्य एवं तिर्यंच सभी जीव अपनी इच्छाओं की पूर्ति कैसे करते हैं, ऐसे विषय का समावेश हो जाता है, केवल मनुष्यों को ही नहीं। इस परिप्रेक्ष्य से देखा जाय तो तीन लोक व तीन काल में प्राणि अपनी इच्छाओं की पूर्ति कैसे करते हैं– इतना व्यापक विषय–वस्तु आगम के अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री में समा जाता है। जैन आगम का अर्थशास्त्र दोनों त्रैकालिक व तत्कालीन व्यवस्था की चर्चा करता है अर्थात् गति विशेष या पर्याय विशेष में तत्कालीन इच्छाओं की पूर्ति एवं इन गतियों में त्रैकालिक आधार कैसा है।

आगम तो वास्तव में देखा जाय तो धन की निःसारता को बताता है। जहां अर्थशास्त्र में सुख की प्राप्ति हेतु धनादि कमाने की बात कही जाती है, वहां आगम में उसे 'महामोह रूपी भूत के वश बैल की भांति भार वहन करना' कहा है। जिसे अर्थशास्त्र में इच्छाओं की पूर्ति व संतोष कहते हैं उसे आगम में 'विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीडित' होना कहा है और उससे 'आकुलित होकर मृगजल की भांति विषय–ग्राम की ओर दौडता है।' तिरूकुरल आचार्य कुंदकुंद का प्राचीन ग्रंथ है जिसमें धन संबंधी अनेक सूक्तियां हैं। उदाहरणार्थ, 'इंद्रिय संयम विशेष धन है और धन का यह उत्कृष्ट रूप है।' 'संसार दो प्रकार है– एक जिसमें धन की सम्पन्नता है और दूसरा जिसमें धर्म की सम्पन्नता है।' 'धन के कई प्रकारों में अहिंसामय धन ही विशेष है, अन्य धन तो नीच/दुष्ट मनुष्यों में भी पाया जाता है।' दौलतरामजी ने छहढ़ाला में धन पक्ष को सार रूप में ऐसा कहा है :

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥

प्रथम पंक्ति में धन का निःसारपना व दूसरी पंक्ति में आत्मज्ञान के अविनाशी लाभ की बात कही है।

धन के बारे में अज्ञानी की मान्यता यह होती है कि मैं उद्यमी हूँ, पराक्रमी हूँ, बुद्धिमान हूँ, दानवान हूँ, प्रवीण हूँ आदि, जिससे लक्ष्मी मेरे पास से नहीं जा सकती। आलसी, कायर व उद्यमहीन के लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। लेकिन ऐसी मान्यता भ्रम है। जो लक्ष्मी चक्रवर्ती से लगाकर महापुण्यवानों के नहीं रही, वह लक्ष्मी पुण्य रहित लोगों में कैसे प्रीति कर रहेगी। धर्मात्माओं के पास रहे– ऐसा भी कोई नियम नहीं है। ज्ञानी की मान्यता तो यह होती है कि धन पूर्व भवों में किये गये पुण्य के उदय में मिली है उस पुण्य के समाप्त होते धन भी चला जाता है और उसके साथ समस्त वैभव, कांति, बुद्धि, प्रीति, प्रतीति, प्रतिष्ठा सब नष्ट हो जाता है। धन पुण्य के उदय में मिलता है लेकिन जो उस धन को भोगता है तो अनेक प्रकार के पाप का बंध करता है। अतः जैनागम में धन का न्याय के भोगों में लगाना, दयाभाव रखना, दान देना आदि का उपदेश है। धन को धर्म के कार्य में देने को कहा है और वह भी बिना ख्याति, लाभ आदि की चाह से। दान का फल स्वर्ग की लक्ष्मी की प्राप्ति, भोगभूमि की लक्ष्मी का असंख्यात काल तक भोग आदि हैं। कुपात्र दान से असंख्यात द्वीपों में उत्पन्न होता है जहां कुभोग भूमियां हैं, जहां तिर्यंच या मनुष्य अनेक विकृतियों को लेकर होते हैं।

इस प्रकार आगम के परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्र एक जीवनशास्त्र है। सुख की प्राप्ति के लिए चारों ही गतियों में जीव काम–भोग या इंद्रियों के विषयों में लिप्त होते हैं– यही संसारी जीवों का जीवन शास्त्र है और उन बातों का जिनागम में विस्तृत वर्णन है। लेकिन सुख तो अखंड़ होता है उसे आर्थिक सुख या आध्यात्मिक सुख ऐसा विभाजन करना उचित नहीं है। जीव एक है और उसके सुख को कई भागों में बांटना, जीव को खंडित करने जैसा है। आर्थिक सुख या इंद्रिय सुख सुख ही नहीं है। आत्मा का सुख तो अनंत है, आत्मा से ही उत्पन्न होता है, इंद्रियों व विषयों के परे है– विषयातीत है, विलक्षण व अनुपम है, परम अद्भुत और अपूर्व है, और अविच्छिन्न है, अतः वांछनीय है। यही पारमार्थिक अर्थशास्त्र है, अर्थात् ऐसे सुख की प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य व आदर्श है।

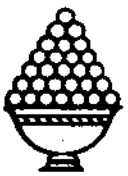

10

डाक टिकटों पर जैन संस्कृति

डॉ. ज्योति जैन

वर्तमान युग में संचार के प्रमुख माध्यमों के डाक व्यवस्थाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत ही नहीं विश्व में संदेशावाहक के रूप में डाक व्यवस्था अपना उदाहरण आप है। भारत में डाकसेवा की सार्वजनिक शुरूआत 1837 में हुई। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'भारत 2006' पृष्ट 172 के अनुसार 'एक अक्टूबर 1854 को भारत की डाक प्रणाली की वह बुनियाद पड़ी जिस पर वह आज खड़ी है।' आज हमारे देश में डाकघरों की संख्या 155669 है। वर्तमान में पोस्टकार्ड, पत्र, लिफाफे आदि डाक विभाग स्वयं छापता है, किन्तु जब उपभोक्ता अपने छपे या बिना छपे पत्र डालना चाहता है तो उतने ही मूल्य के डाक टिकिट लगाना पड़ते हैं।

आज तरह तरह के, विभिन्न मूल्य वर्गों के डाक टिकिट उपलब्ध हैं। विश्व में हजारों तथा भारत में लगभग 40–50 स्मारक विशेष डाक टिकिट प्रतिवर्ष जारी होते हैं। यह जानने की इच्छा स्वतः उत्पन्न होती है कि भारत में डाक टिकिट का प्रचलन कब से हुआ। इस सन्दर्भ में भारत सरकार की वार्षिकी 1993 दृष्टव्य है जिसमें लिखा है कि भारत में पहला डाक टिकिट 1852 में करांची (पाकिस्तान) में जारी किया गया था। यद्यपि वह केवल सिंध प्रांत के लिये वैध था। कलकत्ता की टकसाल में मुद्रित पहला भारतीय टिकिट जुलाई 1854 में जारी किया गया। किन्तु कलकत्ता की टकसाल में डाक टिकटों की छपाई का काम नवम्बर 1855 में बंद कर दिया गया और उसके बाद डाक–टिकटों को लंदन में छापा गया। 1925 में महाराष्ट्र प्रांत के नासिक शहर में डाक टिकिट छापने के लिये इंडिया सिक्युरिटी प्रेस की स्थापना हुई जहां से (तथा कलकत्ता सिक्युरिटी प्रिंटर्स लि. से भी) आजकल डाक टिकिट छापे जा रहे हैं। डाक टिकटों पर समय समय पर महापुरुषों, मन्दिरों भवनों, लता–वृक्षों, विशेष संदेशो या समसामयिक घटनाओं, उत्सवों को दर्शाने वाले चित्र प्रकाशित होते हैं। जब कोई टिकिट जारी होता है तो उसके साथ प्रथम दिवस आवरण (First day cover) विवरणिका (Brochure or Information Sheet) तथा प्रथम दिवस मोहर (विरूपण) (first fay cancellation) भी जारी होते हैं। विशेष अवसरों पर केवल विशेष आवरण

तथा / या मोहर भी जारी किये जाते हैं। डाक टिकिट संग्रह की अभिरुचि को फिलेटेली (Philately) कहते हैं। इसे अभिरुचियों का राजा (King of hobbies) कहा गया है।

जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। राष्ट्र के विकास में जैनधर्म, साहित्य, संस्कृति ने अविस्मरणीय योगदान दिया है। जैन संस्कृति के मूलमंत्र अहिंसा के बल पर ही पूज्य बापू ने देश को आजादी दिलाई थी। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी 20 जैन शहीद हुए तथा लगभग 5 हजार पुरुष महिलाओं ने जेल यात्रा की। भारत के संविधान निर्माण में भी जैनों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। संविधान की मूल प्रति के पृष्ठ 63 पर भ. महावीर का चित्र अंकित है। कृतज्ञ राष्ट्र ने समय समय पर जैन संस्कृति विषयक डाक टिकिट तथा विशेष आवरण–विरूपण आदि जारी किये हैं। लगभग 25 डाक टिकिट व 100 विशेष आवरण अब तक जारी किये जा चुके हैं। यहां जैन व्यक्तियों–अवसरों पर जारी डाक टिकटों का परिचय दिया जा रहा है।

मई 1935 में जब किंग जार्ज पंचम के राज्यारोहण की रजतजयन्ती मनायी गयी उस अवसर पर डाक विभाग ने एक पाई से लेकर आठ आने मूल्य तक के सात टिकटों का सेट जारी किया। इस सेट में सवा आने के टिकिट पर कलकत्ता के प्रसिद्ध शीतलनाथ जैन मंदिर का चित्र अंकित था। डाक टिकिट में दांयी ओर जार्ज पंचम का चित्र तथा बांयी ओर मंदिर का चित्र बना है।

15 अगस्त 1949 को पंद्रह रूपये का टिकिट जारी किया गया। जिसमें विश्वप्रसिद्ध शत्रुंजय (पालीताना) के जैन मंदिर का चित्र अंकित है। इस टिकिट में लाल रंग के घेरे के मध्य में भूरे गुलाबी रंग में जैन मंदिर का चित्र अंकित है। ज्ञातव्य है कि गुजरात में शत्रुंजय मंदिर जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। पालीताना का पुराना नाम पदलिप्तपुर था। इस मंदिर में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की मूर्ति स्थापित है।

30 दिसम्बर 1972 को प्रसिद्ध वैज्ञानिक विक्रम अम्बालाल साराभाई की प्रथम पुण्यतिथि पर डाक विभाग ने 20 पैसे मूल्य का टिकिट जारी किया। भारतीय वैज्ञानिकों में विक्रम अम्बालाल साराभाई (1919–1971) का नाम अग्रगण्य है। विक्रम साराभाई के पिताश्री अम्बालाल साराभाई महात्मा गांधी के परम भक्त थे। इनकी मां श्रीमती सरलादेवी साराभाईने 1930 में गांधीजी की दांडी–यात्रा के समय महिलाओं का नेतृत्व किया था। हल्के भूरे और हरे रंग के इस टिकिट में विक्रम साराभाई के चित्र के साथ बायीं ओर वृक्षों का झुरमुट व उसके बीच से आकाश में ऊपर की ओर उठता हुआ एक रोकेट चित्रित है।

13 नवम्बर 1974 को भारत सरकार ने तीर्थंकर महावीर भगवान के पच्चीससौवें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में 25 पैसे मूल्य का टिकिट जारी किया। इस डाक टिकिट पर पावापुरी में निर्मित प्रसिद्ध जलमंदिर का चित्र अंकित है।

9 फरवरी 1981 को डाकविभाग ने एक रूपये मूल्य का डाकटिकिट श्रवणबेलगोला स्थित भ. बाहुबली की मूर्ति पर जारी किया। संपूर्ण विश्व में एक शिलाखंड से निर्मित सबसे विशाल प्रतिमा गोमटेश्वर बाहुबली की ही है। 57 फीट की इस विशाल मूर्ति का महामस्तकाभिषेक 20 जनवरी 1981 में हुआ। इस महोत्सव के अवसर पर यह टिकिट जारी किया गया था। हल्के नीले रंग में जारी किये गये इस टिकिट में भ. बाहुबली की मूर्ति का चित्र अंकित है।

9 मई 1988 को महाराष्ट्र के प्रसिद्ध जैन शिक्षाविद् और उत्कृष्ट अध्यापक श्री भाउराव पाटिल के शिक्षा

के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिये डाक विभाग ने टिकिट जारी किया। इस टिकिट पर श्री पाटिल के चित्र सहित बायीं तरफ अध्ययन कराते हुए शिक्षक एवं अध्ययनरत पांच विद्यार्थियों के चित्र अंकित हैं।

29 अगस्त 1991 को प्रसिद्ध जैन मुनि मिश्रीमलजी महाराज की स्मृति में भारत सरकार ने एक रूपये मूल्य का टिकिट जारी किया। 20 दिसम्बर 1994 को बडौदा संग्रहालय की 100वीं वर्षगांठ पर जारी दो टिकटों का जोडा जिसमें संग्रहालय में रखी प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की तांबे की मूर्ति को दर्शाया गया है।

28 जनवरी 1998 को आचार्य तुलसी के 85वें जन्मदिवस पर उनकी स्मृति में एक डाक टिकिट जारी किया। आचार्य तुलसी प्रसिद्ध जैन तेरापंथी आचार्य तथा जैन विश्वभारती लाडनूं के संस्थापक एवं अणुव्रत आंदोलन के प्रणेता थे। तीन रूपये मूल्य के इस डाक टिकिट पर बांयी ओर हल्के भूरे रंग में आचार्य तुलसी का चित्र और दांयी ओर केशरिया रंग में अणुव्रत आंदोलन का प्रतीक चिन्ह बना है।

31 दिसम्बर 2000 को दानवीर राजा भामाशाह पर तीन रूपये मूल्य का डाक टिकिट जारी किया गया।

'अप्रैल 2001 को भ. महावीर के 2600वें जन्म कल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में तीन रूपये मूल्य का टिकिट जारी किया गया जिसमें तीन लोक के स्वरूप वाला जैन प्रतीक अंकित है।

21 जुलाई 2001 को जैन सम्राट चन्द्रगुप्त पर चार रूपये मूल्य का डाक टिकिट जारी हुआ।

17 नवम्बर 2001 को भारतीय सिनेमा जगत की प्रसिद्ध हस्ती 'जैन समाज रत्न' उपाधि से विभूषित वही शान्ताराम पर चार रूपये मूल्य का डाक टिकिट जारी हुआ।

– 9 अगस्त 2002 को पूज्य आनंद ऋषि जी महाराज के जन्मदिवस पर डाक टिकिट जारी किया गया।

– 30 जून 2004 को तेरापंथ के संस्थापक आचार्य भिक्षु पर डाक टिकिट जारी किया गया।

– 27 मई 2004 को सुप्रसिद्ध जैन अन्वेषक इन्द्रचन्द्र शास्त्री पर पांच रूपये मूल्य का टिकिट जारी हुआ।

– 23 नवम्बर 2004 को सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री बालचंद हीराचंद जैन पर पांच रूपये मूल्य का टिकिट जारी किया गया।

– 2 दिसंबर 2005 को वरिष्ट स्वतंत्रता सेनानी और पत्रकार श्री जवाहरलाल दर्डा (जैन) पर पांच रूपये मूल्य का डाक टिकिट जारी किया गया।

अन्य डाक टिकिटों के संदर्भ में 1 जुलाई 1966 को भारतीय पुरातत्त्व श्रृंखला पर जारी (खजुराहो के पार्श्वनाथ जैन मंदिर पर अंकित पत्र लिखती नायिका) किया गया 10 जनवरी 1975 को विश्व हिन्दी सम्मेलन तथा 12 अप्रैल 1975 को विश्व तेलगु सम्मेलन पर जारी डाक टिकट पर पल्लू, वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, की जैन सरस्वती को दर्शाया गया है।

– 27 जुलाई 1978 को कच्छ म्यूज़ियम पर जारी टिकट में गुजरात के प्राचीन जैन मंदिर के ऐरावत हाथी को दर्शाया गया है।

– 6 मार्च 1999 को खजुराहो के सहस्राब्दी महोत्सव पर जारी टिकट पर खजुराहो के पार्श्वनाथ जैन मंदिर पर अंकित अप्सरा को दर्शाया गया है।

इस तरह भारतीय डाक विभाग द्वारा समय समय पर जैन संस्कृति को सम्मान दिया गया है। जैन समाज को प्रयत्न करना चाहिए कि और भी जैन विषयों पर डाक टिकिट जारी हो सकें।

विशेष। आवरण फोल्डर, विशेष मोहर दर्शाती हुई टिकटें

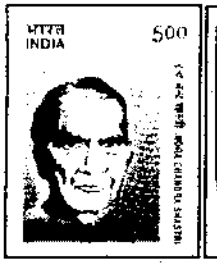

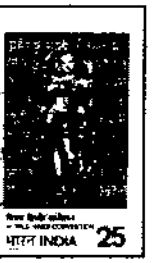

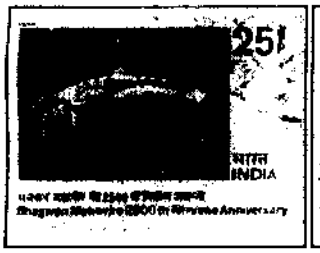

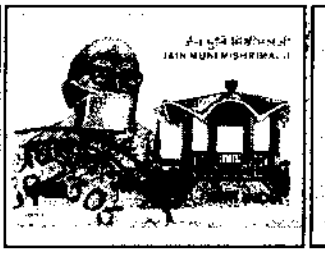

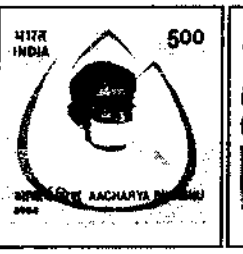

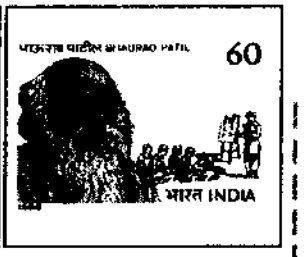

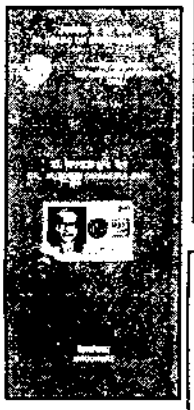

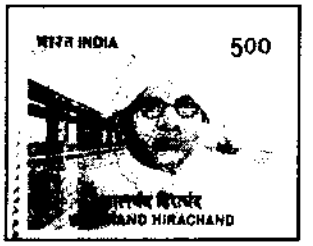

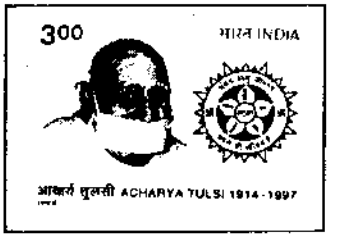

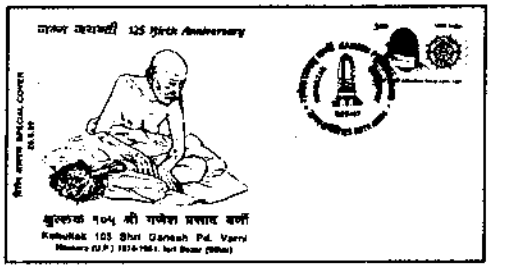

11

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान से भी श्रेष्ठ था प्राचीन प्राच्य विज्ञान

आचार्य कनकनंदीजी

भारतीय अधिकांश शिक्षित या अशिक्षित, ग्रामीण या नगर के लोग जानते हैं, मानते हैं, बोलते हैं व लिखते हैं कि विज्ञान का आविष्कार, शोध–बोध एवं प्रचार–प्रसार पाश्चात्य देशों से हुआ है। जब मैं प्रवचन आदि में कहता हूँ कि पाश्चात्य आधुनिक विज्ञान से भी भारत में हर विद्या का विज्ञान श्रेष्ठ था तो अधिकांश व्यक्ति विश्वास नहीं करते हैं, कुछ वर्षों से कुछ व्यक्ति मानने लगे हैं कि भारत में प्राचीन काल में भी विज्ञान था। भारतीय धर्म विशेषतः जैनधर्म–वैज्ञानिक धर्म है। यथा– शाकाहार, पानी छानकर पीना, रात को नहीं खाना, माँस नहीं खाना, नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करना आदि। परन्तु इतना ही भारतीय धर्म, साहित्य में विज्ञान नहीं है। यह तो व्यावहारिक सामान्य विज्ञान है। इससे भी श्रेष्ठ विज्ञान भारत में था, यथा आध्यात्मिक–विज्ञान, ध्यान–विज्ञान, द्रव्य–विज्ञान, ब्रह्माण्डीय–विज्ञान, गणितीय विज्ञान, अणुविज्ञान, जीव विज्ञान, भौतिक एवं रासायनिक विज्ञान, अनेकान्त सिद्धान्त / सापेक्ष सिद्धान्त, पारिस्थितिकी, पर्यावरण सुरक्षा, वनस्पति विज्ञान, आयुर्विज्ञान (आयुर्वेद) शकुनविज्ञान, मन्त्र विज्ञान, शरीर विज्ञान, शल्य चिकित्सा, नक्षत्र–विज्ञान, मनोविज्ञान, गतिसिद्धान्त, प्रकाशसिद्धान्त, धातु–विज्ञान, शिल्प–विज्ञान, भाषा विज्ञान, कर्म सिद्धान्त (अनुवांशिकी जिनोम, DNA. RNA. सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ सिद्धान्त) वास्तुशास्त्र, विमान विज्ञान, नौका विज्ञान, समुद्र विज्ञान, सूक्ष्मजीव विज्ञान (आधुनिक बैक्टेरिया, वायरस आदि सूक्ष्म जीव विज्ञान से भी श्रेष्ठ–निगोदिया सूक्ष्म विज्ञान) आदि–आदि। इतना ही नहीं आधुनिक विज्ञान तो केवल भौतिक है, परिवर्तनशील है, कुछ अंश में भ्रान्तिपूर्ण है, परिकल्पित है। परन्तु प्राचीन भारतीय विज्ञान भौतिक से लेकर अध्यात्म, मूर्तिक से लेकर अमूर्तिक, सूक्ष्म से लेकर स्थूल, अणु से लेकर ब्रह्माण्ड, आत्मा से लेकर परमात्मा, संसार से लेकर मोक्ष, शून्य से लेकर पूर्ण, क्षय से अक्षय, एक से लेकर अनन्त तक है जो कि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान से भी व्यापक हैं। निम्न में सोदाहरण कुछ वर्णन कर रहा हूँ। विस्तृत परिज्ञान के लिए मेरे द्वारा रचित (1) विश्व विज्ञान रहस्य (2) विश्व प्रतिविश्व एवं श्यामविवर (3) स्वतंत्रता के सूत्र (4) प्रथम शोध–बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता (5) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (6) मन्त्र विज्ञान (7) स्वप्न विज्ञान (8) शकुन

विज्ञान (9) आध्यात्मिक मनोविज्ञान (10) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (11) ब्रह्माण्डीय जैविक रासायनिक विज्ञान (12) अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा (13) ब्रह्माण्ड के रहस्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन करें।

1. सत्य के बारे में चिन्तन – (द्रव्य विज्ञान)

भारतीय प्राचीन आध्यात्मिक विज्ञान में सबसे अधिक सत्य के ऊपर गहन चिन्तन किया गया है क्योंकि सत्य में ही समस्त गुण, धर्म, पर्याय / अवस्थाएँ, क्रिया–प्रतिक्रिया, कार्यकारण आदि सम्बन्ध सम्भव हैं। यथा– 'सद्द्रव्यलक्षणम्'। द्रव्य का लक्षण सत् है।

यह विश्व शाश्वतिक है। क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक हैं। आधुनिक विज्ञान से भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है परन्तु परिवर्तन होकर अन्य रूप हो जाती है।

सत् का लक्षण है– 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। (तत्वार्थसूत्र 5/3) अर्थात् जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त है। अर्थात् इन तीनों रूप से है वह सत् है।

द्रव्य सत् स्वरूप है। सत् स्वरूप होने के कारण द्रव्य आदि से है तथा अनन्त तक रहेगा। तथापि वह सत् अपरिवर्तनीय नहीं है, बल्कि नित्य परिवर्तनशील है। नित्य परिवर्तनशील होते हुए भी इसका नाश नहीं होता है। इसलिए उत्पाद, व्यय ध्रौव्य का सदा सद्भाव होता है। इसलिए ये सदा सत् स्वरूप ही रहते हैं।

2. जीव विज्ञान

सत्यात्मक द्रव्य में जीव द्रव्य (आध्यात्मिक शक्ति / चेतना शक्ति) के बारे में भारतीय विज्ञान में सबसे अधिक चिन्तन किया गया है। क्योंकि भारतीय विज्ञान / संस्कृति दर्शन मुख्यतः आध्यात्मिक है जो कि आत्मा के द्वारा, आत्मा के लिए है, आत्मा के निमित्त से है। इसलिए भारतीय सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति, जीव (आत्मा) से ओत–प्रोत है। इसलिए भारतीय विज्ञान मुख्यतः चेतन विज्ञान है, तो पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान अचेतन / जड़ संस्कृति है। जीव विज्ञान का वर्णन केवल शारीरिक, मानसिक या भौतिक दृष्टि से ही नहीं किया गया है, इसके साथ–साथ चेतना की दृष्टि से अधिक किया गया है। पाश्चात्य जगत् में प्राचीन काल से लेकर अभी तक जीव विज्ञान का भी वर्णन मुख्यतः भौतिक शारीरिक या मन की दृष्टि से किया गया है।

"जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥" (द्रव्यसंग्रह, 1)

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्ता है, निज शरीर के बराबर है, वह जीव है।

"मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥" (द्रव्यसंग्रह, 13)

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणा स्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह–चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्ध नय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही हैं। समस्त विरोधात्मक कर्म के अभाव से जीव के अनन्त गुण प्रकट हो जाते हैं तथापि सिद्ध के आठ कर्म के अभाव से आठ विशेष गुण प्रगट होते हैं। यथा–

"सम्मत्तणाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं।
अगुरूलघुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥"

(1) सम्यक्त्व (2) अनन्त ज्ञान (3) अनन्त दर्शन (4) अनन्त वीर्य (5) सूक्ष्मत्व (6) अवगाहनत्व (7) अगुरूलघुत्व (8) अव्याबाधत्व। ये सिद्ध के विशेष गुण है।

3. गति विज्ञान

भारतीय चिन्तन में विशेषतः जैन चिन्तन में अजीव तत्व के अन्तर्गत जीव एवं भौतिक तत्व के गति माध्यम स्वरूप धर्म द्रव्य, स्थिति माध्यम स्वरूप अधर्म द्रव्य का भी चिन्तन किया गया है। यह चिन्तन आधुनिक विज्ञान के ईथर एवं ग्रेविटेशन फोर्स (गुरूत्वाकर्षण बल) से कुछ समानता रखते हुए भी इससे भिन्न, व्यापक एवं सटीक है। यथा–

"गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई॥" (द्रव्यसंग्रह, 17)

गति/गमन में परिणत जो पुद्गल और जीव है उनके गमन में धर्म द्रव्य सहकारी है। जैसे मत्स्यों के गमन में जल सहकारी है और नहीं गमन करते हुए पुद्गल और जीवों को वह धर्म द्रव्य कदापि गमन नहीं कराता है।

4. स्थिति विज्ञान

"ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई॥" (द्रव्यसंग्रह, 18)

स्थिति सहित जो पुद्गल और जीव हैं उनकी स्थिति में सहकारी कारण अधर्म द्रव्य है, जैसे पथिकों (बटोहियों) की स्थिति में छाया सहकारी है और गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलों को वह अधर्म द्रव्य नहीं ठहराता है।

5. आकाश एवं काल विज्ञान

प्राचीन भारतीय विज्ञान में उपर्युक्त द्रव्यों के साथ–साथ आकाश एवं काल का भी वर्णन आधुनिक विज्ञान के वर्णन से भी श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ पाया जाता है। काल एवं आकाश का विशेष वर्णन वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त में ही पाया जाता है। इससे पहले काल एवं आकाश के बारे में विशेष चिन्तन नहीं था। इतना ही नहीं आईन्स्टीन के विश्व एवं प्रतिविश्व चिन्तन से भी अधिक श्रेष्ठ चिन्तन जैन प्राचीन विज्ञान में पाया जाता है यथा–

"अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेणं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं॥" (द्रव्यसंग्रह, 19)

जो द्रव्यों के परिवर्तन रूप, परिणाम रूप देखा जाता है वह तो व्यवहार काल है और वर्तना लक्षण का धारक जो काल है वह निश्चय काल है।

"धम्माऽधम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो॥" (द्रव्यसंग्रह)

धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव– ये पाँचों द्रव्य जितने आकाश में हैं वह तो लोकाकाश है और उस लोकाकाश के आगे अलोकाकाश है।

6. भौतिक एवं रसायन विज्ञान

प्राचीन भारतीय विज्ञान में जीव के चिन्तन के साथ–साथ अजीव, अचेतन तथा जड़ तत्त्व के बारे में भी चिन्तन किया गया है। इसका कारण यह है कि सम्पूर्ण सत्य में या ब्रह्माण्ड में चेतन के साथ–साथ अचेतन का भी अस्तित्व अनादिकाल से है। इसके साथ–साथ संसार अवस्था में जीव को जड तत्त्व आदि से भी सहयोग लेना पड़ता है। अचेतन तत्त्व में भी पुद्गल (भौतिक, रासायनिक) तत्त्व का चिन्तन जीव तत्त्व के बाद में अधिक गहनता से किया गया है।

"रूपिणः पुद्गलाः॥" 5 (स्वतंत्रता के सूत्र पृ.सं. 272)

पुद्गल अरूपी द्रव्य नहीं किन्तु रूपी है। यहाँ रूपी शब्द से केवल रूप ग्रहण नहीं किया गया है किन्तु रूप के अविनाभावी स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण तथा गोल, त्रिकोण, चौकोर, लम्बा, चौड़ा आदि आकार को भी ग्रहण करना चाहिए।

"नाणोः। (11) नाणोः प्रदेशा भवन्ति।" (स्वतंत्रता के सूत्र पृ.सं. 279)

परमाणु के प्रदेश नहीं होते। अणु, पुद्गल होते हुए भी अणु के प्रदेश नहीं होते हैं। प्रदेश नहीं होते इसका मतलब ये नहीं कि अणु पूर्ण रूप से प्रदेश से रहित है। परन्तु परमाणु एक प्रदेश मात्र है। तथा द्वि आदि प्रदेश से रहित है। जैसे रेखागणित में बिन्दु सत्तावान होते हुए भी उसकी लम्बाई, चौडाई, मोटाई नहीं है, उसी प्रकार परमाणु स्वयं एक प्रदेशी सत्तावान् (अस्तित्ववान्) होते हुए भी इसकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई नहीं है।

पुद्गल द्रव्य का उपकार

"शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्।(19)" (स्वतंत्रता के सूत्र पृ.सं. 298)

शरीरवाङ्मनसप्राण–अपानाः जीवानां पुदगलानां उपकारः।

संसारी जीवों के पांचों शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छवास पुद्गल से बनते हैं। अर्थात् शरीर आदि पुद्गल स्वरूप हैं।

"सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च। (20)" (स्वतंत्रता के सूत्र पृ.सं. 298)

जीवानां सुख–दुःख–जीवित–मरण–उपग्रहाश्च पुद्गलानानुपकारो भवति।

सुख–दुःख, जीवन और मरण– ये भी पुद्गलों के उपकार हैं। शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास चतुष्टय क्रम से गमन, व्यवहार, चिन्तवन और श्वासोच्छवास रूप से जीव का उपकार करते हैं। वैसे सुख आदि भी पुद्गल कृत उपकार हैं उसको बताने के लिए इस सूत्र में कहते हैं कि सुख, दुःख, जीवन, मरण भी पुद्गल कृत उपकार हैं।

7. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण सुरक्षा

आधुनिक विज्ञान में जो पर्यावरण सुरक्षा पारिस्थितिकी आदि का जो शोध–बोध हुआ है और हो रहा है इससे भी अधिक शोध–बोध प्राचीन भारतीय विज्ञान में हुआ था। इससे प्राचीन भारतीय विज्ञान को अहिंसा 'उदारपुरूषाणां तु वसुधैव कुटुम्बकं' अपरिग्रह, साम्यवाद आदि नाम से कहा जाता है। इसका विशेष वर्णन निम्नलिखित है।–

"सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥"

सम्पूर्ण जीव–जगत सुखी, नीरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहे। कोई भी कभी भी थोड़े भी दुःख को प्राप्त न करे।

"शिवमस्तु सर्व जगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥"

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, जीव–समूह परहित में निरत रहें सम्पूर्ण दोष विनाश को प्राप्त हो जावें, लोक में सदा सर्वदा सम्पूर्ण प्रकार से सुखी रहे।

जीवों का उपकार

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्।
परस्परोपग्रहो जीवानां उपकारः भवति।" (स्वतंत्रता के सूत्र पृ.सं. 303)

परस्पर सहायता से निमित्त होना यह जीवों का उपकार है।

वैश्विक पारिस्थितिकी

"परस्परोपग्रहो द्रव्याणाम्" (आ. कनकनन्दी)

विश्व के सम्पूर्ण द्रव्य (जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य (भौतिक तत्त्व एवं ऊर्जा), गति माध्यम द्रव्य, स्थिति माध्यम द्रव्य, काल द्रव्य एवं आकाश द्रव्य) परस्पर सहयोगी हैं, अन्तः– सम्बन्धी हैं, इनमें से एक द्रव्य के अभाव से सम्पूर्ण विश्व–व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी। ऐसा पूर्ण शोध–बोध अभी तक आधुनिक विज्ञान में नहीं है। प्राचीन भारतीय विज्ञान में केवल शब्द प्रदूषण वायु प्रदूषण का ही वर्णन नहीं हैं, इसके सूक्ष्म एवं व्यापक वर्णन के साथ–साथ भाव प्रदूषण, समाज प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण आदि का भी सूक्ष्म व्यापक वर्णन है।

8. भारतीय गणित विज्ञान

पाश्चात्य विज्ञान से भारतीय विज्ञान श्रेष्ठ होने का एक महानतम कारण भारतीय गणित विज्ञान है। वैसे तो देश–विदेश के सभी विद्वान् एकमत से स्वीकारते हैं कि गणित, दशमलव पद्धति, शून्य आदि का प्रचार–प्रसार शोध–बोध भारत में तथा भारत से हुआ है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने कहा कि जो विषय गणित से सिद्ध नहीं होता है वह यथार्थ नहीं है। इसीलिए तो भारत में उनमें से भी विशेषतः जैन धर्म में प्रत्येक पदार्थ विषय को गणित से वर्णित किया गया है। जैनधर्म में केवल मूर्तिक स्थूल, पदार्थों का ही वर्णन गणित से नहीं किया है। अपरंच समस्त मूर्तिक–अमूर्तिक, सूक्ष्म–स्थूल, चेतन–अचेतन, सांसारिक–आध्यात्मिक वर्णन गणित से किया है। जैनधर्म में शून्य (0) से लेकर संख्यात–असंख्यात, अनन्त तक का वर्णन है। सामान्यतः (1) लौकिक (2) अलौकिक रूप से गणित के दो भेद हैं। जैनधर्म में जिस प्रकार व्यवस्थित क्रमबद्ध संख्यात से लेकर अक्षय अनन्तानन्त का वर्णन, जिस पद्धति से किया गया है वैसा वर्णन मुझे अन्यत्र अभी तक कहीं भी देखने को नहीं मिला है। आधुनिक विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिक, अन्तरिक्ष–यात्रा में भी गणित (प्रमेय = प्र+मेय अर्थात् प्रकृष्ट मेय–मापना) का बहुत महत्त्व है। इतना ही नहीं व्यापार से लेकर अध्यात्म तक में गणित का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गणित के महत्त्व को प्रतिपादित करनेवाला एक श्लोक प्राचीन काल से प्रचलित है।–

"यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनिस्थितम्॥"

अर्थात् जैसे मोरों में शिखा और नागों में मणि सबसे ऊपर रहती है उसी प्रकार वेदांग और शास्त्रों में गणित सर्वोच्च स्थान पर स्थित है।

जैन धर्म में 6 द्रव्य, 7 तत्व, 9 पदार्थ, रत्नत्रय आदि को व्यवस्थित सटीक, अधिगम/परिज्ञान करने के विविध उपायों में से कुछ उपाय निम्नलिखित हैं–

"सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च॥" (स्वतंत्रता के सूत्र)

अर्थात् सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च जीवादीनां द्रव्याणां अधिगमः भवति।

1. सत्, 2. संख्या, 3. क्षेत्र, 4. स्पर्शन, 5. काल, 6. अन्तर, 7. भाव, 8. अल्पबहुत्व के द्वारा भी जीवादि पदार्थों का अधिगम होता है। गणित में केवल अंकगणित या बीजगणित का प्रचलन भारतवर्ष में व्यापार, गृहकार्य में ही नहीं होता था परन्तु इसके साथ–साथ बीजगणित, रेखागणित का भी पूर्ण व्यापक विकास हुआ था और उपर्युक्त सम्पूर्ण गणित का प्रयोग लौकिक से आध्यात्मिक अणु से ब्रह्माण्ड तक में प्रयोग में आता था।

भारतीय गणित की और भी अनेक विशेषताएँ हैं। यथा– इसकी सूक्ष्मता, मौलिकता एवं इकाई। यथा– लम्बाई आदि की इकाई परमाणु है, काल की इकाई समय है जो कि सेकण्ड का असंख्यातवाँ भाग है। भाव, ज्ञान, सुख–दुःख आदि की इकाई है। भाव के अविभाग प्रच्छेद जिसका वर्णन तो आधुनिक विज्ञान में प्रायः है ही नहीं। वस्तु की सूक्ष्मतम इकाई है परमाणु जो आधुनिक विज्ञान के परमाणु से अत्यन्त सूक्ष्म है। केवल सूक्ष्मता की दृष्टि से ही भारतीय गणित विज्ञान श्रेष्ट नहीं है। परन्तु इसकी अनन्त तक की व्यापकता की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है। अभी तक किसी भी पाश्चात्य गणित, विज्ञान, धर्म, दर्शन में अनन्त का वर्णन भारतीय वर्णन के बराबर नहीं है।

9. विभिन्न विज्ञान

'सिद्धान्त शिरोमणि' में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का भी उल्लेख है

"आकृष्ट शार्कश्च महितया यत्स्वस्थं गुरू स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्ट यतेतत् पततिव, भाति समे समन्तात् पतत्वियं खे॥"

पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति के बल से सब जीवों को अपनी ओर खींचती है। यह अपनी शक्ति से जिसे खींचती है वह वस्तु भूमि पर गिरती हुई– सी प्रतीत होती है।

इस प्रकार न्यूटन (1642–1727) से लगभग 500 वर्ष पूर्व भास्कराचार्य ने पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बारे में खोज करली थी। अन्य भारतीय गणितज्ञों में जैनाचार्य यतिवृषभ (5 ईस्वी) वीरसेनाचार्य (792 ईस्वी), आचार्य नेमिचन्द्र (1100 ईस्वी), आर्यभट्ट (476 ईस्वी), बोधायन (ईसा पूर्व 800) व वराहमिहीर (550 ईस्वी) ब्रह्मगुप्त (628 ईस्वी), श्रीधर (750 ईस्वी) महावीर (850 ईस्वी), नारायण दत्त (1356 ईस्वी), रामानुजन (1924 ईस्वी), वैज्ञानिक नार्लिकर और श्रीपाद आदि ने गणित विज्ञान के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया। आर्यभट्ट पहले खगोल विज्ञान वेत्ता थे। जिन्होंने पतिप्रादित किया कि पृथ्वी अपनी अक्ष पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर घूमती है। आर्यभट्ट रचित 'सूर्य सिद्धान्त' ग्रन्थ में पृथ्वी के वृत्ताकार होने का वर्णन है इसमें पृथ्वी का व्यास 7905 मील बताया गया है जबकी आज के वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी का व्यास 7918 मील है। जैनाचार्य जिनभद्र ने अपने एक ग्रंथ में पृथ्वीवासियों की संख्या 29 अंकों से प्रदर्शित की है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम द्वारा समुद्र पर पुल बाँधा जाना हमारी प्राचीन शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। लंका नरेश रावण के पास, पुष्पक विमान था जिसका उल्लेख वाल्मिकी रामायण एवं जैन रामायण में आया है।

"जाल वातायनैर्युकि काश्चनैः स्फाटिकैरपि।" (वाल्मीकी रामायणस 9–16)

वह पुष्पक विमान सोने की जालियों और स्फटिक मणियों को खिडकियों से युक्त था। विमान संचालन के 22 रहस्य थे। 'भारद्वाज सूत्र' में उल्लेख है–

"दिक्प्रदर्शन रहस्यो नाम विमान मुख केन्द्र कीली चालनेन।
दिशाम्पति यंत्र–नालपत्र परयानागमन दिक्प्रदर्शन रहस्यम्॥"

अर्थात् दिक्प्रदर्शन नामक 28 रहस्य के अनुसार विमान के मुख्य केन्द्र की कीली (बटन) चलाने से 'दिशाम्पति' नामक यन्त्र की नली में, रहनेवाली सुई द्वारा दूसरे विमान के आगे की दिशा जानी जाती है। नौका निर्माण कला में भी काफी प्रगति हुई थी। चुम्बकीय शक्ति का भी भारतीय वैज्ञानिकों को ज्ञान था।

राजा भोज ने 'यन्त्रसार' नामक ग्रन्थ में लिखा है–

"न सिन्धु गाधर्वीत लोहबन्ध, तल्लोहकान्तैर्थियतेचलोहम्।
विपद्येत तेन जलेषु नौका, गुणेन बन्धं निजगाद भोजः॥"

जहाजों के पैंदों के तख्तों को जोड़ने के लिए लोहे को काम में नहीं लेना चाहिए, क्योंकि सम्भव है समुद्र की चट्टानों में कही चुम्बक हो तो वह स्वभावतः लोहे को अपनी ओर खींचेगा, जिससे जहाजों के लिए खतरा है। परमाणु का ज्ञान भी भारतीयों को हजारों वर्ष पूर्ण हो गया था। उन्होंने परमाणु का आकार 35×2^{-62} इंच से भी कम माना था। चुम्बकीय सुई बनाना भी भारतीय जानते थे। जब भारतीय व्यापारी जावा–सुमात्रा आदि द्वीपों में गये तो साथ में कुतुबनुमा सुई भी ले गये। उसे 'मत्स्य यन्त्र' कहा जाता है। वह सदा तेल के पात्र में रखा जाता था। उत्तर दिशा की ओर ही सुई ठहरती थी। पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान भी आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य आदि गणितज्ञों को था। (ब्रह्माण्ड जीवन और विज्ञान) आर्कमिडीस के बहुत वर्ष पहले अभय कुमार ने 'प्लावन सूत्र' की खोज की थी।

उपर्युक्त प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान तथा उसके साहित्य एवं उपकरण विदेशी आक्रान्ता, लुटेरे, शासकों के कारण तथा भारत की दीर्घ परतंत्रता के कारण कुछ नष्ट हुए तो कुछ विदेश में ले गये तो कुछ धीरे–धीरे उसके अध्ययन–अध्यापन, प्रयोगीकरण का लोप होता गया। उसके कारण अभी भी जो प्राचीन ग्रन्थों में ज्ञान–विज्ञानादि लिपिबद्ध हैं उनका रहस्य न समझ पाते हैं न प्रयोग में ला पाते हैं। इसलिए उसे काल्पनिक, अतिरंजित या असत्य मान लेते हैं। भारतीयों की मानसिक परतन्त्रता, हीनभाव, अकर्मण्यता, पाश्चात्य की नकल भी उत्तरदायी है। भारत का प्राचीन ज्ञान–विज्ञान इतना सूक्ष्म, व्यापक, विशाल है कि केवल आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त तथा यन्त्र से उसे जानना कठिन या असम्भव हो जाता है। अन्य पक्ष में आधुनिक विज्ञान के विकास के साथ–साथ भारतीय प्राचीन विज्ञान आधुनिक विज्ञान से श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम सिद्ध होता जा रहा है। प्रकारान्तर में प्राचीन भारतीय विज्ञान केवल कपोल कल्पित है यह धारणा भी नष्ट होती जा रही है। यथा– योग (ध्यान), अनेकान्त सिद्धान्त / सापेक्ष सिद्धान्त, शाकाहार, कर्मसिद्धान्त आदि। इस दिशा में भारतीयों को तथा विशेषतः जैनियों को अधिक पुरूषार्थ करके भारतीय विज्ञान को प्रायोगिक सिद्ध करके स्व–पर–विश्व कल्याण में योगदान करना चाहिए। इस दिशा में मैं अनेक वर्षों से प्रयासरत हूँ।

12

देश की आज़ादी के लिए जो फाँसी पर चढ़ गये

डॉ. कपूरचंद जैन *(रीडर एवं अध्यक्ष)*

जैन धर्मावलम्बी राष्ट्र कल्याण में सदैव अग्रसर रहे हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जैन धर्मानुयायी आत्मस्वातंत्र्य के साथ राष्ट्र स्वातंत्र्य के लिये तन–मन–धन से तत्पर रहे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रारंभ 1857 ई. की जनक्रांति से माना जाता है। 1857 से 1947 ई. के मध्य न जाने कितने शहीदों ने अपनी शहादत देकर आजादी के वृक्ष को सींचा, न जाने कितने क्रांतिकारियों ने अपने रक्त से क्रांतिज्वाला को प्रज्वलित रखा और न जाने कितने स्वातंत्र्य प्रेमियों ने जेलों की सलाखों में बंद रहकर स्वतंत्रता के वृक्ष की जड़ों को मजबूती प्रदान की। विडम्बना यह भी रही कि कुछ का नाम तो इतिहास में लिखा गया परन्तु बहुसंख्यक देश प्रेमी ऐसे रहे जिनके अवदान की कहीं चर्चा भी नहीं की गयी।

जैनधर्म एवं संस्कृति का एक समृद्धिशाली इतिहास है। पूरे देश में स्थित प्राचीन मंदिर एवं शिलालेख, खुदाई से प्राप्त सामग्री, हस्तलिखित ग्रंथ, प्राचीन मूर्तियाँ, विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित वर्णन हमारी गौरवशाली परम्परा प्रस्तुत करते हैं। इतिहास साक्षी है कि वर्तमान की गणतंत्र परम्परा के बीज भ. महावीर के समय से ही है। इसी तरह सम्राट खारवेल आदि के समय जैनधर्म फला–फूला, अनेक शिलालेख इस बात की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं। देशोद्धारक भामाशाह ने राष्ट्र के लिये अपनी अपार संपत्ति न्योछावर कर दी। दुर्गपाल आशाशाह ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर बालक उदयसिंह की रक्षा की थी। ये तो मात्र उदाहरण हैं जैनियों का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

आजादी की लड़ाई में जैनधर्मालम्बियों ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। आजादी के आंदोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक देशप्रेमी की अपनी अलग कहानी है। अलग अलग गाथायें है, कुछ स्मृतियां हैं तो कुछ अनुभव, कहीं परिवार की बर्बादी है, तो कहीं शरीर पर अगिनत इबारतें, किसी का परिवार बिखरा तो किसी की जिंदगी। ये देशप्रेमी न जाने कितने दिनों तक भूखे प्यासे बीमार रहे और कितने कितने अत्याचार सहे। यह सब जानकर, पढ़कर आत्मा कांप उठती है, दिल करूणा से भर उठता है। आजादी के इस आंदोलन में भेदभाव नहीं था न जातपांत का, न अमीर गरीब का, न छोटे बडे का। सभी

का एक लक्ष्य था हमें देश को आज़ाद कराना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्वतंत्रता आंदोलन, शहीदों तथा सेनानियों पर बहुत कुछ लिखा गया पर जैन समाज इस संबंध में उदासीन रहा, कोई सकारात्मक भूमिका सामने नहीं आयी। तब इस संबंध में एक बृहत योजना बना जैनों का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान विषय पर 'स्वतंत्रता संग्राम में जैन' ग्रन्थ प्रकाश में आया। जिसमें 20 शहीदों व म.प्र., उ.प्र., राज. के ७५० जेल जैनयात्रियों का सचित्र परिचय लगभग ५३० पृष्ठों में दिया गया है। यहाँ प्रमुख जैन शहीदों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

अमर जैन शहीद लाला हुकुमचन्द कानूनगो जैन

भारतीय इतिहास में १८५७ की क्रांति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस क्रान्ति यज्ञ में अपने जीवन की आहुति देने वाले शहीद लाला हुकुमचन्द का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। लाला हुकुमचन्द ने अपनी शिक्षा और प्रतिभा के बल पर मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फर के दरबार में उच्च पद प्राप्त कर लिया। १८४१ ई. में मुगल बादशाह ने आपको हांसी और करनाल जिले के इलाकों का कानूनगो एवं प्रबन्धकर्ता नियुक्त किया था। इस बीच अंग्रेजों ने हरियाणा प्रान्त को अपने आधीन कर लिया। १८५७ में जब स्वतन्त्रता संग्राम का बिगुल बजा तो लालाजी में भी कुछ कर गुजरने की तमन्ना जागी। दिल्ली जाकर बादशाह ज़फर से भेंट की ओर देश भक्त नेताओं के उस सम्मेलन में शामिल हुए जिसमें रानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे आदि थे। लालाजी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जीवन की अन्तिम घड़ी तक संघर्ष करने का संकल्प ग्रहण कर हांसी वापिस लौटे। हांसी में देशभक्त वीरों को इकट्ठा किया।

जब अंग्रेजों की सेना हांसी होकर दिल्ली पर धाबा बोलने जा रही थी तब उस पर आपने हमला किया और उसे भारी हानि पहुँचायी। लालाजी एवं उनके साथी मिर्जा मुनीर बेग ने एक पत्र बादशाह को लिखा जिसमें सहायता की मांग की किन्तु, पत्र का कोई उत्तर नहीं आया इसी बीच बादशाह ज़फर अंग्रेजों द्वारा बन्दी बना लिये गये। अंग्रेजों ने जब बादशाह की निजी फाइलों को टटोला तो, लालाजी द्वारा भेजा पत्र अंग्रेजों के हाथ लग गया और उन्होंने लिखने वाले के विरुद्ध कठोर कार्यवाही का आदेश दिया। लालाजी और मिर्जा मुनीर बेग के घर छापे मारे गये और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 18 जनवरी 1858 को दोनों की फांसी की सजा सुनायी गयी। लाला हुकुमचन्द के मकान के आगे दोनों को फांसी दे दी गयी। अंग्रेजी राज का आतंक फैलाते हुए इन शहीदों के शव को उनके रिश्तेदारों को न देकर धर्म विरूद्ध लाला जी को दफनाया गया और मिर्जा मुनीर को जला दिया गया। इतना ही नहीं लालाजी के तेरह वर्षीय भतीजे फकीरचन्द जैन को भी पकड़कर वहीं फांसी पर चढ़ा दिया गया। स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का यह क्रूरतम अध्याय था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लाला हुकुमचन्द की याद में हांसी में उनके नाम पर पार्क एवं उनकी प्रतिमा लगाई गयी है।

अमर जैन शहीद अमर चंद बांठिया

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की अमर गाथा जाने अनजाने शहीदों ने अपने रक्त से लिखी है। इसी संग्राम के एक शहीद थे अमरचन्द बांठिया। अमरचन्द बांठिया ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुये 1857 के महासमर में जूझ रहे क्रांतिवीरों की संकट के समय आर्थिक सहायता तथा खाद्य सामग्री आदि देकर मदद की थी। बांठिया जी को उनके गुणों से प्रभावित होकर ग्वालियर नरेश सयाजीराव सिंधिया ने इन्हें गंगाजली राजकोष का कोषाध्यक्ष बना दिया था। इस कोषालय में असीम धन सम्पदा थी, जिसका अनुमान सिंधिया नरेश को भी नहीं था।

रानी झांसी और उनकी सेना जब ग्वालियर में युद्ध कर रही थी, तो कई महीनों से वेतन और समुचित राशन

का प्रबन्ध नहीं हो पा रहा था। ऐसे संकट के समय ग्वालियर राजकोष के कोषाध्यक्ष भामाशाह अमरचन्द बांठिया ने उच्चकोटि की देशभक्ति का परिचय दिया और राजकोष से क्रांतिकारियों की सहायता की। बांठिया जी द्वारा दी गयी सहायता से क्रांतिकारियों का संकट दूर हुआ और उनके होंसले बुलन्द हुए। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई लड़ते लड़ते शहीद हो गयीं। ग्वालियर में नरेश जयाजी राव पुनः सत्ता में आ गये। बांठिया को देशद्रोह के अपराध में गिरफ्तार किया गया। रानी झांसी के बलिदान के चार दिन बाद 22 जून 1858 को ग्वालियर की जमीन पर न्याय का ढोंग रचकर सर्राफा बाजार में स्थित नीम के पेड़ पर बांठिया जी को फांसी पर लटका दिया गया। सभ्यता का दम भरने वाली ब्रिटिश हुकूमत की क्रूरता की पराकाष्ठा ही तो थी कि देशभक्त बांठिया जी को फांसी पर लटका कर उनकी लाश को यूं ही तीन दिन टागें रखा गया। ग्वालियर के सर्राफा बाजार में खडा नीम का पेड़ अतीत की उस गौरवमय कुर्बानी की याद दिलाता है। पेड़ के नीचे बांठियाजी का स्टेच्यू लगाया गया है।

अमर जैन शहीद मोतीचन्द जैन

प्रसिद्ध क्रांतिकारी अर्जुन लाल सेठी एक बार दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा के अधिवेशन में मुख्य वक्ता के रूप में सांगली गये वहीं उनकी भेंट दो तरूणों से हुई उनमें से एक थे अमर शहीद मोतीचन्द शाह। मोतीचन्द शाह का एक ही लक्ष्य था किस तरह देश को आज़ाद करवाया जाये। सेठीजी उन्हें जयपुर ले आये। मोतीचन्द का परिचय राजस्थान के प्रसिद्ध क्रांतिकारी जोरावरसिंह बारहट से हुआ, जिनके गाँव देवपुरा में उन्होंने शस्त्र–अस्त्र चलाने की शिक्षा ली तथा क्रांतिकारी दल में शामिल हो गये। क्रांतिकारी दल का काम अर्थाभाव के कारण ठप होता जा रहा था। अतः मोतीचन्द, जोरावरसिंह, माणिकचन्द, शिवनारायण दिवेदी आदि युवकों ने किसी देशद्रोही धनिक को मारकर धन लाने का निश्चय किया। परिणामतः निमेज, जिला शाहाबाद (बिहार) के महंत को मारकर भी तिजोरी की चाबी न मिल पाने के कारण इच्छित धन प्राप्त नहीं कर सके यह घटना मार्च 1913 की है।

इस घटना के बाद अर्जुन लाल सेठी अपने शिष्यों के साथ इन्दौर चले गये। एक दिन अचानक पुलिस द्वारा शिवनारायण द्विवेदी की तलाशी ली गयी तो उनके पास कुछ क्रांतिकारी परचे निकले। तभी पुलिस को महंत की हत्या के सुराग मिले। पुलिस ने सबको गिरफ्तार किया। कई मास मुकदमा चला। पं. विष्णुदत्त शर्मा को दस वर्ष का काला पानी तथा मोतीचन्द्र को फाँसी की सजा हुई. अर्जुन लाल सेठी को जयपुर के जेल में बन्द कर दिया गया। मोतीचन्द की प्राण रक्षा के लिए जो अपील की गयीं वे सब व्यर्थ गयीं और अनत में उन्हें 1915 ई. में फाँसी पर लटका दिया गया। जेल में खून से लिखा गया मराठी भाषा में उनका पत्र आज भी युवकों को उतना ही स्फूर्ति दायक है।

अमर जैन शहीद सिंघई प्रेमचन्द

स्वतन्त्रता आन्दोलन में गांधीजी के आह्वान पर पढ़ाई–लिखाई छोड़कर आजादी की लड़ाई में सम्मलित होकर गांधीजी के सन्देशों को गांव–गांव प्रचार करने वाले नवयुवक थे अमर शहीद सिंघई प्रेमचन्द जैन। दिसम्बर 1933 में गांधीजी दमोह नगर में आये। गांधीजी से प्रभावित प्रेमचन्द गांधीमय हो गये। वे गांव–गांव में डुग्गी बजाकर गांधीजी के संदेशों का प्रचार करने लगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। सागर के तत्कालीन डिप्टी. कमिश्नर दमोह पधारे, उन्होंने सेना में भर्ती हेतु जन समुदाय को संबोधित किया उनका भाषण चल ही रहा था कि सिंघई प्रेमचन्द ने सिंह गर्जना करते

हुए कहा कि– 'यह युद्ध हमारे देश के हित में नहीं है, हमें कोई मदद नहीं करनी है, हम सब इसका बहिष्कार करते हैं।' इस ललकार से डिप्टी. कमिश्नर क्रोध से आग बबूला हो उठे, पुलिस ने प्रेमचन्द को पकड़ लिया, सभा में उत्तेजना फैल गयी, तब डिप्टी.कमिश्नर ने कहा कि– 'हम तो इन्हें भाषण देने के लिए बुला रहे हैं।' अब ये भाषण देंगे 'प्रेमचन्द ने बडा ओजस्वी भाषण दिया / जनसमूह ने 'प्रेमचन्द जिन्दाबाद' के नारे लगाये। डिप्टी. कमिश्नर पुलिस संरक्षण में किसी तरह जान बचाकर भागे।'

गांधीजी द्वारा चलाये गये व्यक्तिगत आन्दोलन में प्रेमचन्द ने १४ जनवरी १९४१ को हटा तहसील में मकर संक्राति के उपलक्ष्य में लगे मेला में उपस्थित जनसमुदाय के बीच ओजस्वी भाषण दिया। आपको गिरफ्तार कर दमोह लाया गया और कारावास की सजा सुनायी गयी। प्रेमचन्द को पहिले सागर फिर नागपुर जेल में भेज दिया गया। इसे विधि की विडम्बना कहें या प्रेमचन्द को मातृभूमि पर शहीद होने का सौभाग्य। जिस डिप्टी. कमिश्नर को दमोह में प्रेमचन्द के कारण सभा से भागना पड़ा था वह स्थानान्तरित होकर नागपुर जेल पहुँचे। वहाँ प्रेमचन्द को देखकर पूर्व स्मृतियाँ उद्बुद्ध हो गयीं, उसने प्रेमचन्द को समय से पहिले रिहा किया और विशेष आग्रहपूर्वक भोजन कराया। प्रेमचन्द को क्या मालूम कि जिस भोजन को वे कर रहे थे उसमें उनकी मृत्यु उन्हें दी गयी है। नागपुर से दमोह टिकिट आदि की व्यवस्था कर उन्हें ट्रेन में बैठा दिया गया उधर दमोह में उनके आगमन की खबर सुनकर जनता उनके स्वागत के लिए तैयारी में जुट गयी पर यह क्या? ट्रेन में ही प्रेमचन्द की हालत बिगडने लगी किसी तरह उन्हें घर लाया गया जहाँ सभी चिकित्सकों ने एक मत से कहा कि उन्हें दिया विष शरीर में इतना फैल चुका है कि हटा पाना मुश्किल है और प्रेमचन्द शहीद हो गये उनकी शहादत चिरस्मरणीय रहेगी। दमोह में उनकी प्रतिमा लगाई जाना प्रस्तावित है।

अमर जैन शहीद श्री मगनलाल ओसवाल

इन्दौर (म.प्र.) के अमर जैन शहीद भगमलाल ओसवाल की मोरसली गली में छोटी सी किराने की दुकान थी। 1941 के आन्दोलन के समय ओसवालजी की उम्र 24–25 वर्ष की रही होगी। 6 दिसम्बर 1942 को एक जुलूस निकाला गया, जिसका नेतृत्व पुरूषोत्तमलाल विजय कर रहे थे। मगनलाल भी आगे–आगे नारे लगाते हुए चल रहे थे, जब जुलूस सर्राफा बाजार पहुँचा तो भारी संख्या में पुलिस आ गयी और जुलूस को घेर लिया। पुलिस ने अचानक ही इन अहिंसक सत्याग्रहियों पर लाठियों और गोलियों की बौछार शुरू कर दी। मगनलाल को भी गोली लगी और वे वहीं गिर पडे। मगनलाल को पुलिस अस्पताल ले गयी बहुत लम्बे समय तक ये अस्पताल में रहे। घाव ठीक न होने से अंततः आजादी की लडाई का यह सिपाही देश की आजादी का सपना संजोये 23 दिसम्बर 1945 को वीरगति को प्राप्त हो गया।

अमर जैन शहीद वीर उदयचंद जैन

मण्डला (म.प्र.) के अमर जैन शहीद वीर उदयचंद जैन 1942 के आन्दोलन के समय मैट्रिक के छात्र थे। 15 अगस्त 1942 को मण्डला में एक जुलूस निकला। गोली चली। वीर उदयचंद ने कमीज के बटन खोलकर कहा चलाओ गोली। गोली चली और उदयचंद गिर पड़े। अस्पताल में 16 अगस्त को प्रातः उदयचन्द वीरगति को प्राप्त हो गये, वे देश के लिए शहीद हो गये। उदयचन्द की कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के लिए महाराजपुर में जहाँ उनकी समाधि है प्रतिवर्ष मेला लगता है। मंडला में उदय चौक और उदय स्तंभ बना हुआ है नगर पालिका द्वारा उदय प्राथमिक विद्यालय बनाया गया है। हम सब इस वीर सपूत की शहादत को हमेशा स्मरण कर

गौरवान्वित होते रहेंगे।

अमर जैन शहीद साबूलाल वैशाखिया

वीर साबूलाल जैन का जन्म 1923 ई. में गढ़ाकोटा (सागर) म.प्र. में हुआ। 22 अगस्त 1942 के दिन गढ़ा कोटा में एक वृहत सभा का आयोजन किया गया और सर्वसम्मति से तय हुआ कि अंग्रेजी शासन के प्रतीक पुलिस थाने पर तिरंगा झण्डा फहराया जाये। तत्काल ही इस सभा ने एक जुलूस का रूप धारण कर लिया। जुलूस भारत माँ की जय, इंकलाब जिन्दाबाद, अंग्रेजो भारत छोड़ो... आदि नारे लगाता हुआ पुलिस थाने पहुँचा। नवयुवकों में पुलिस थाने पर तिरंगा झंडा फहराने की होड़ सी लग गयी। पुलिस ने चेतावनी दी पर आज़ादी के मतवाले कहाँ मानने वाले थे। पुलिस ने लाठी चार्ज और फायरिंग शुरू कर दी। साबूलाल भी झंडा लिये आगे बढ रहे थे उन्हें पता था कि– 'आगे बढना मौतको आमंत्रण देना है पर जो घर से कफन बांधकर चला हो उसे जीवन का मोह कैसा?' धाँय धाँय धाँय तीन गोलियां चलीं और साबूलाल गिर पडे। साबूलाल और उनके साथियों को सागर अस्पताल भेजा गया। साबूलाल शहीद हो गये। जनता ने भारत के इस अनमोल रत्न को अंतिम विदाई दी। साबूलाल की स्मृति में सागर (म.प्र.) में एक कीर्ति स्तम्भ का निर्माण किया गया है। गढ़ाकोटा के प्राइमरी स्कूल का नाम साबूलाल के नाम पर रखा गया है। साबूलाल ने देश की आजादी के लिए जो कुर्बानी दी उस पर हम सबको गर्व है।

1942 के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन में महाराष्ट्र के अनेक सपूत देश के लिए न्यौछावर हो गये। सांगली (महाराष्ट्र) के 'अन्ना साहब पत्रावले' 24 जुलाई 1943 को सांगली जेल में शहीद हो गये। मुरगुड (कोल्हापुर) के भारमल तुकाराम 13 दिसम्बर 1942 को कोषागार लूटते हुए पकडे गये और पुलिस की गोली से उसी दिन शहीद हो गये। इसी आन्दोलन में श्री भूपाल अरणाप्पा अणस्कुरे शहादत को प्राप्त हुये थे। साताप्पा टोपणावर भी 1942 के आन्दोलन में शहीद हो गये। गुजरात प्रांत की कुमारी जयावती संघवी 1942 के आन्दोलन में अहमदाबाद में विद्यार्थीयों के जुलूस का नेतृत्व करते हुए पुलिस द्वारा छोडी गयी अश्रु गैस के कारण 5 अप्रैल 1943 को शहीद हो गयीं। अमर शहीद 'नाथालाल शाह' 9 नवम्बर 1943 को अहमदाबाद में अपने विद्यार्थी जीवन में ही शहीद हो गये थे।

मध्यप्रदेश के सिलौंडी (जबलपुर) गाँव के अमर शहीद कंधीलाल 1930 के जंगल सत्याग्रह में राष्ट्रीय ध्वज अपनी छाती से चिपकाये हुए गोली के शिकार हो गये। उनकी स्मृति में सिलौंडी में एक स्मारक है। जबलपुर के शहीद 'मुलायमचन्द जैन' एक क्रांतिकारी से मिलते जुलते चेहरे के कारण पकड़े गये और पुलिस की बर्बरतापूर्ण पिटाई के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये। दमोह के शहीद 'भैयालाल चौधरी' कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन से वापिस जाते हुए ट्रेन में अंग्रेज अफसरों से झगडा हो जाने के कारण मार दिये गये थे।

इस प्रकार जैन वीरों ने अपनी कुर्बानियाँ देकर आजादी का मार्ग प्रशस्त किया था। उन्हीं नीव के पत्थरों पर हमारी आजादी का भव्य भवन खड़ा है।

13

जैन आगम ग्रंथों में विज्ञान

प्रो. एल.सी. जैन *(एम.एस.सी., डी.एच.बी.)*

आधुनिक युग वैज्ञानिक संचार एवं जैव प्रोद्यौगिकी का प्रतीक युग मान लिया गया है। आणविक शक्ति और नाभिकीय शक्ति के द्वारा मानव जीवन एक बहुत बड़ा मोड़ ले चुका है। जिस चन्द्रमा को पुराणों में देवतुल्य माना जाता था, उस पर अणुशक्ति एवं अनेक वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा मानव अपने कदम रख चुका है। पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच अनेक प्रकार के संबंध स्थापित कर वैज्ञानिक अन्तरिक्ष विज्ञान को शीर्ष तक ले गये हैं। इसी प्रकार डी.एन.ए ने जीवन के अनेक रहस्यों को खोलकर अनेक असम्भव माने जाने वाले चमत्कारी कार्यों को कर दिखाया है।

सुविदित है कि प्रायः ढाई हजार वर्ष पूर्व विश्व के अनेक सभ्यता केन्द्रों में अकस्मात् एक क्रान्ति आई, जिसे वैज्ञानिक क्रान्ति अथवा वैज्ञानिक जागृति कहा जा सकता है। आचार्य पुष्पदंत एवं भूतबलि द्वारा सर्वप्रथम लिपिबद्ध ग्रंथ षट्खण्डागम में गुणस्थान एवं मार्गणाओं के माध्यम से जीव तत्त्व की विशद चर्चा है, जिसमें सम्पूर्ण जगत के जीवों के गुण एवं मार्गणा स्थानों की जानकारी देकर उनकी रक्षा का उपदेश देकर अहिंसा के माध्यम से पर्यावरण को पूर्ण सुरक्षित रखने का उपाय बताया गया है। इसी प्रकार जलगालन आदि करके, जलकायिक आदि जीवों की रक्षा द्वारा जलप्रदूषण से बचने की चर्चा लगभग २००० वर्ष पूर्व की जा चुकी है।

आचार्य गुणधरने पहली सदी में 'कषाय पाहुड़' की रचना की। जिसकी जय धवला टीका १६ भागों में मथुरा से प्रकाशित है। इसमें मोहकर्म के निमित्त से होने वाली अवस्थाओं का विशेष वर्णन है। जो विवेकी अपने विभाव परिणाम, राग, द्वेष, मोह, क्रोधादि कषायों पर नियंत्रण कर लेता है, हो सकता है कि उसकी ग्रंथियों से इस तरह के हारमोन्स स्रवित होने लगें कि वह सहज ही शौर्य, बल, पराक्रम एवं परम स्वास्थ्य को प्राप्त कर ले। कारण, कर्म के क्षयोपशम आदि से जीव पुण्यवान् हो जाता है और पुण्य की प्राप्ति होते ही इस तरह के गुणों की प्राप्ति स्वाभाविक है। विशुद्धि रूप परिणामों का कार्य इससे बहुत आगे बढ़कर है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति ने भी 'लब्धिसार' एवं 'क्षपणासार' जैसे महान ग्रंथों का सृजन किया। लब्धिसार में सम्यक्दर्शन एवं उसकी प्राप्ति में सहायक पाँच

लब्धियों का महत्त्वपूर्ण वर्णन है। जैसे नाभिकीय विखण्डनका क्रम विज्ञानमें उपलब्ध होता है, नाभि से इलेक्ट्रान युक्त अणुके विखण्डनमें प्रोटॉन और न्यूट्रानकी भूमिका की तरह विशुद्धि द्वारा मिथ्यात्व, सम्यक्–मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन तीन टुकड़ो में मिथ्यात्व द्रव्य को खंडितकर जीव अंततः सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। क्षपणासारमें कर्मों के क्षपण का अंकगणितीय, बीजगणितीय एवं रेखागणितीय संदृष्टि पूर्ण चित्रण है।

इन सभी बातों को दृष्टि में रखते हुये कहा जा सकता है कि जैन लिखित कर्म साहित्य के विकासका इतिहास प्रथम शताब्दी से प्रारंभ होकर वर्तमानकाल तक आता है। दिगम्बर जैन कर्म साहित्य में जहाँ भी हम वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य पर विचार करते हैं वहाँ गणितीय पक्षकी ही प्रधानता है। गणित के बिना विज्ञान आगे नहीं बढ़ सकता है। गणित के परिणाम अकल्प होते हैं। २ + २ = ४, तो ४ ही होंगे। ५ अथवा ३ कभी नहीं। प्रायः ऐसा होता है कि गणितज्ञ दिन प्रतिदिन के कतिपय निरीक्षणों से निष्कर्ष निकालता है और उन निष्कर्षों के आधार पर भव्य एवं सुन्दर आकारों को गढ़ता है, उनको संजोता है। इन भव्य आकारों की सच्चाईका, अपने परीक्षण और प्रयोग से पता लगाता है। उनका सत्यापन करता है। इस प्रकार गणितज्ञ और प्रयोगकर्ता दोनों के सम्मिलित परिश्रम से विश्व नये–नये आविष्कारों और गवेषणाओं से लाभान्वित होता रहा है। इन दोनों ने मिलकर इस जगत को रेल्वे, टेलिफोन, वायुयान, अन्तरिक्ष यान, कम्प्यूटर आदि अनेक रहस्यमय उपकरण दिये हैं। भविष्य में न जाने कितने नये नये आविष्कार और होते रहेंगे। वस्तुतः वह व्यक्ति सुखी है जो एक साथ गणितज्ञ और प्रयोगकर्ता दोनों है।

आइन्स्टाइनने भी कहा है– 'सभी अन्य विज्ञानों से ऊपर गणितको विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होने का एक कारण यह भी है कि जहाँ उसकी प्रतिज्ञप्तियाँ यथार्थ रूपसे निश्चित एवं विवाद रहित होती हैं, वहीं अन्य विज्ञानों की कुछ सीमा तक विवादास्पद होती हैं तथा नये आविष्कृत तथ्यों द्वारा निरस्त किये जानेके सतत संकटमें होती हैं। गणितके उच्च सम्मानका दूसरा कारण यह है कि गणित के द्वारा शुद्ध प्राकृतिक विज्ञानों में जिस किसी सीमा तक जो निश्चिति प्रविष्टि हुई पाई जाती है वह गणितके बिना उपलब्ध नहीं हो सकती थी।

दिगम्बर जैनागममें सम्पूर्ण कर्मसिद्धान्त गणितसे ओतप्रोत है यही कारण है कि कर्म रहस्य वैज्ञानिक बन पड़ा है। साथ ही यह प्रयोगकी अपेक्षा रखता है। बीज, संख्या एवं आकृति द्वारा गणितीय विकास हजारों वर्ष तक चला किन्तु एक अद्‌भुत क्रान्ति भगवान महावीर और उसके बाद महात्मा गाँधी के युगमें दृष्टिगत हुई जिसे २०वीं अहिंसा सदी कह सकते हैं। अहिंसा का आन्दोलन सर्वव्यापी होता है एवं महान तीर्थ का प्रवर्तन करता है। तीर्थंकर महावीरकी क्रान्ति यदि आध्यात्मिक थी तो महात्मा गाँधीकी राजनैतिक इन दोनों क्रांतियों में अहिंसा, अनेकता और अपरिग्रहको प्रमुखता दी गई।

प्रायः सत्रहवीं सदीके प्रारम्भ में यूरोप में गणित एवं विज्ञान अगम्य एवं अपार रूपसे विकसित होते चले गये। उद्योग और शोध कार्यो में प्रायः अठारहवीं सदीके अन्त में एवं उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में क्रान्ति प्रारम्भ हुई। इस क्रान्ति से बीसवीं सदी में जैनधर्म के वैज्ञानिक पक्षको स्पष्ट करने में गति आई। प्राचीन काल में हुये प्रमुख वैज्ञानिकों को अंगुलीपर गिना जा सकता है लेकिन आधुनिक सदी में उनकी संख्या में विशेष वृद्धि दृष्टव्य है।

साधारणतः वैज्ञानिक क्रान्ति के पूर्व विश्व की समस्त सभ्यताओं में जो धर्म प्रचलित थे वे भय और प्रलोभन के द्वारा समाज को धर्म के नाम पर अनुशासित किया करते थे। समाजमें जब भी किसी प्रकारका कष्ट, महामारी, प्राकृतिक प्रकोप अथवा अन्य संकट उपस्थित होता था, लोग धर्म के रहस्यों को जानने वाले पुरोहित वर्ग के पास पहुँचा करते थे, वे इन कष्टों को दैवीय शक्तियों अथवा भूत–प्रेत आदिका प्रकोप बताया करते थे।

उस समय तक सभी प्राकृतिक शक्तियों को केवल दैवीय रूप ही प्राप्त था किन्तु अब युनान में थेलीज और पिथेगोरस (ई.पू. छठी सदी), भारतमें महावीर एवं बुद्ध तथा चीनमें कन्फ्यूशस जैसे दार्शनिक विचारकों ने जन्म लिया तो प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने हेतु एक बहुत बड़ी क्रान्ति हुई जिसमें जैनधर्मने भी अहम् भूमिका निभाई। डॉ. दयानन्द भार्गव 'आधुनिक संदर्भ में जैन दर्शनके पुनर्मूल्याकंनकी दिशायें' नामक अपने लेखमें कहते हैं–

'आधुनिक काल में जैनागमों में उपलब्ध भौतिकी, रसायनशास्त्र तथा गणित संबंधी मान्यताओं का विवरण देकर जैनागमों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया है। जैनागममें भौतिक विज्ञानके संबंध में कुछ तथ्य मिलते हैं। इसमें किसीको मतभेद नहीं है किन्तु यदि हम उन तथ्यों को इस रूपमें रखें कि मानो आधुनिक काल के विज्ञानकी समस्त उपलब्धि जैनागममें पहले से ही प्राप्त थी, तो यह विचारणीय बात है। विज्ञानका अपना इतिहास है, उस इतिहास में विज्ञानका निरन्तर विकास हुआ है। जैनागमों में उस समयकी अपेक्षा से कुछ वैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन हुआ। यह ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्व का है किन्तु इस तथ्य को अपनी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता कि आज हम विज्ञानके क्षेत्र में जैनागमों के कालकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़ चुके हैं और इस बातमें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए कि जैनागमकी कोई बात आजके विज्ञानसे मिथ्या सिद्ध हो जाये।'

प्रसंग जैन धर्म के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यका है न कि सम्पूर्ण जैन धर्म के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यका, ये दोनों एक दूसरे के साथ एक ओर साम्यता रखते हैं तो कुछ बिन्दुओं पर वैषम्य। कहीं कहीं पौराणिक कपोल कल्पनाओं के दर्शन भी संभव हैं। हमें उन्हीं स्थलों से प्रयोजन है जो हमारे आचार विचार अथवा लोक अलोक से संबंधित हैं न कि कथा कहानियों से।

जैसे आजका विज्ञान विगत दो तीन सौ वर्षों में ही वैज्ञानिक प्रयोगों के माध्यम से नाभिकीय शक्तिके स्फोट तक पहुँच गया, जहाँ नाभिको ही विखंडित कर दिया गया तथा एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में बदल दिया गया। ठीक उसी प्रकार सभ्यता के इन स्थलों में यह रास्ता निकाला गया, जिसके द्वारा मानव एक सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रकट हो सके। अथवा ऐसे तत्त्व में प्रकट हो सके जो सदैव अजर–अमर रहता हो एवं शाश्वत् हो। लगभग पाँच छह सौ वर्ष से अरब एवं योरोपमें ऐसे रसायनकी खोज चलती रही जो लोहे को स्वर्ण में बदल सके। यह तभी संभव था जब कि उन्हें इस बातका ज्ञान होता कि किसी तत्त्वकी नाभि कैसे तोड़ी जाये। आजके वैज्ञानिकों ने यह कर दिखाया। इसका सादृश्य जैन दर्शनमें मिथ्यात्व द्रव्य का विखण्डन और उसके मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति रूप तीन टुकड़ों की घटना में उपलब्ध है। यह प्रक्रिया सम्यक् दर्शनकी प्राप्ति कराने में कारण थी।

करणानुयोग में अपेक्षित सामग्री :

1. जैन मान्यतानुसार ब्रह्माण्डका विस्तार ३४३ घन राजू निश्चित है किन्तु आधुनिक विज्ञानकी अनेक मान्यताओं में एक यह भी मान्यता है कि यह एक अत्यन्त सघन पिण्डके रूपमें था, जिसने लगभग ५ करोड़ वर्ष पूर्व फैलना शुरू कर दिया था एवं आज भी फैल रहा है। ब्रह्माण्ड के विस्तार का निष्कर्ष वर्ण क्रम में स्थित लाल रेखाओं के स्थानान्तरण के द्वारा निकाला गया था। इस तरह साम्य के साथ साथ जैन धर्म और विज्ञानमें वैषम्य भी दृष्टिगोचर होता है।

2. करणका दूसरा अर्थ परिणाम है। अर्थात् परिणामों का वर्णन करनेवाला तथा कर्म प्रक्रियाका कथन करनेवाला भी करणानुयोग ही है। इसमें कर्म के सत्त्व का स्थिति रचना यंत्र के द्वारा वैज्ञानिक स्वरूप वर्णित है। इस यंत्रके माध्यम से यह बताया गया है कि इस जीवने अनादिसे विगतमें जो कर्म किये हैं उनके कारण हुये कर्म

बंधका संचय किस रूपमें होता है। इस संचय में कर्मके परमाणु विशेष रूपसे निर्मित निषेकों के समूहके रूप में रहते हैं।

3. मन वचन काय योग के आधार पर निर्मित कर्म परमाणुओं का समूह निषेक कहलाता है। ऐसे निषेक असंख्यात प्रकार के हुआ करते हैं, जिनकी श्रृंखला वर्गणा, स्पर्धक और गुण–हानिके रूप में व्यवस्थित रहती है। इनका विभाजन चार प्रकार के कर्म बंधके आधार पर होता है। योग, प्रकृति एवं प्रदेश बंध में कारण है तथा कषाय, स्थिति और अनुभाग बंधमें।

4. जितने प्रदेश अथवा कर्म परमाणु उस विशिष्ट योग से आस्रवित होते हैं वे एक समय पर्यन्त रुकते हैं लेकिन यदि योगके साथ–साथ कषाय भी हो तो सागरों पर्यन्त आत्म प्रदेशों से संलग्न रहे आते हैं। कषाय न केवल स्थिति में कारण है अपितु फलदानकी शक्ति रूप अनुभाग भी रागद्वेष के कारण ही होता है, जो अनेक प्रकार के शक्त्यंश के रूप में पाये जाते हैं। इस प्रकार स्थिति रचना यंत्र में अनेक निषेक व्यवस्थित रहते हैं जिनका कुल संचय या सत्य किंचित् ऊन द्वयर्थ गुणहानि गुणित समय-प्रबद्ध भी एक समय में आस्रवित हो जाते हैं जो कषायके अनुसार स्थिति एवं अनुभागको प्राप्त करते हैं और पूर्व सत्व द्रव्य में अपनी व्यवस्था के अनुसार पूर्व निषेकों में संयुक्त हो जाते हैं। उस समय यंत्रका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। यह यंत्र प्रतिसमय न केवल आस्रवित द्रव्यों से परिवर्तित होता है वरन् प्रतिपल समय प्रबद्ध अथवा समय प्रबद्ध से गुणित किसी चर संख्या द्वारा परिमाण में निर्जरित होता रहता है। इस तरह कभी कम अथवा अधिक आस्रव तथा कभी कम तथा अधिक निर्जरा के समीकरण से यह तंत्र परिवर्तनशील है और सम्पूर्ण लोकके संसारी जीवों के कर्मों का गणितीय चित्रण करनेमें समर्थ है।

5. गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, मार्गणास्थान एवं उपयोग इन प्ररूपणाओं का विशद वैज्ञानिक विवेचन गोम्मटसारादि ग्रंथो में द्रष्टव्य है। जगतके जीवों का अंको में प्रमाण दिया गया है। न केवल सम्पूर्ण जीव राशिका सामान्य प्रमाण, अपितु किस गतिमें, किस गुणस्थानमें कितने जीव हैं इसका भी स्पष्ट प्रमाण है। जीव किस स्थानपर निवास करते हैं, इस बातकी जब तक जानकारी न होगी, जीवरक्षा संभव नहीं है, जैसे जमीकन्द आदि में असंख्य जीवराशि होती है क्योंकि भूमिके अन्दर सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच पाता, जिससे जीवोंकी वृद्धि शीघ्र होती है, साथ ही भूमि के अन्दर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में पृथ्वी तत्त्व अधिक पाया जाता है जो स्वास्थ्य–हानि में कारण है एवं तामसिकता को बढ़ाता है।

भव्य जीव ही विशुद्धि के उच्चतम स्तर पर मिथ्यात्व के मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति रूप तीन टुकड़े करता है, कर्म परमाणुओं का द्रव्य एवं शक्ति अपना अपना प्रमाण लिये हुए सत्त्व में होती है, जिसका प्रमाण एम१ एम२ एम३ तथा ई१ ई२ ई३ के रूप में बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से लब्धिसार में वर्णित है। वस्तुतः भव्य जीव ही अधःकरण, अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण रूप तीन करण करता हुआ उसकी समाप्ति पर, जो कि प्रगाढ़ प्रबलतम भागों की गणितीय रूपमें चलनेवाली एक अनुपम धारा के रूपमें है, जो मिथ्यात्व के द्रव्य को तीन भागों में इस प्रकार विभाजित करता है कि उसका द्रव्य तीन भागों में वितरित हो जाता है।

इस प्रक्रिया द्वारा वह मिथ्यात्व नाभिका विभंजन करता है, यह परमाणु के नाभि विभाजन से सादृश्य रखता है क्योंकि यह द्रव्य भी तीन प्रकारका है जो आधुनिक विज्ञान की यूरेनियम तत्व की नाभिको न्यूट्रॉन तोड़कर विभिन्न प्रकार के द्रव्य और उनकी शक्तियों के रूप में विखंडित किया जाता है।

विशुद्धि के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिये उसी प्रकार मंदयोग और मंदकषाय की ओर अग्रसर होना

पड़ता है, जिस प्रकार अणु नाभि को तोड़ने हेतु स्निग्धत्व और रुक्षत्व (धनात्मक एवं ऋणात्मक आवेशों से) रहित न्यूट्रानकी गति को नियंत्रित करना होता है।

मोह और योगके निमित्त से होने वाले आत्माके परिणाम को गुण–स्थान कहते हैं। यह बात आगममें सर्वत्र वर्णित है कि किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियाँ बन्ध, उदय और सत्त्व में रहती हैं तथा उत्कर्षण अपकर्षणादि विशेष प्रकार की बन्ध आस्थाओं को प्राप्त होती हैं परन्तु यह ज्ञान रहस्यमय है कि इन गुणस्थानों की प्राप्ति कैसे होती है? प्रकृतियाँ कटती कैसे हैं? प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बन्ध किस प्रकार विलय को प्राप्त होते हैं। मन तो प्रकृति को काट नहीं सकता क्योंकि यह एक योग है वचन और काय भी योग होने से कर्म काटने में नहीं बन्ध कराने में कारण हैं। कहा ही है– 'काय वाङ्मनःकर्म योगः सः आस्रवः।' विशुद्धि की धारा से कर्म प्रकृति काटी जा सकती है। विशुद्धि का परिणाम भव्यत्व और ज्ञान चेतना है। क्षमादि धर्म–भाव भव्यत्व है और ज्ञान चेतना शुद्धि है न कि मन। मन इंद्रियों का संस्कार है, जो भ्रम में डालता है। संवेदनाओं को पकड़ने वाला और विकृतिमें जाने वाला है। बुद्धि ज्ञान चेतना है। केवलज्ञानमय है, जीव जैसा है वैसा जीवको जानना ज्ञान चेतना है। जीव अनन्त दर्शन, ज्ञान शक्ति से समन्वित है।

गुणस्थान एक नही अनेक हैं इसलिये मोह और योगके परिणाम भी अलग–अलग होंगे। यदि प्रथम गुणस्थान से आगेकी श्रेणी बढ़ना है। अर्थात् चतुर्थ गुणस्थानमें पहुँचना है तो वहाँ तक पहुँचाने वाला आत्माका परिणाम कौन सा है? वह विशुद्धि करणके रूपमें वर्णित है।

इन प्रकृतियों की निर्जरा तपसे ही होती है। 'इच्छा निरोधः तपः।' अतः अनशन आदि बाह्य तप और प्रायश्चित, स्वाध्याय, ध्यान, विनय आदि अंतरंग तपसे ज्ञानावरण प्रकृतिका क्षय, क्षयोपशम देखा जाता है लेकिन जैन धर्मने सर्वप्रथम समस्त प्रकृतियों के बीजभूत मिथ्यात्व प्रकृतिको नष्ट करने का आह्वान किया है। मिथ्यादर्शन मात्रका क्षय करते ही शेष सारी प्रकृतियाँ अपने आप गुणस्थानों की बुद्धि के साथ कटती चली जाती हैं। इसके लिये प्रथम प्रयास विशुद्धि की मात्रा और शक्ति को बढ़ाने के लिये होता है। जैसे नदीमें बाढ़ आनेपर पानीकी मात्रा तो बढ़ती ही है शक्ति भी बढ़ती चली जाती है। जिससे वह सब कुछ अपने प्रवाह में बहा ले जाती है। इसी तरह भव्य जीव असंख्यात गुणी विशुद्धि की मात्रा और अनन्त गुणी शक्ति तीन अन्तर्मुहूर्त तक बढ़ाते हुये सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है। यही आत्मा की **समृद्धि** है। अक्षय निधि है जो अनेक भवों तक चलती चली जाती है। इस तरह सर्व प्रथम मिथ्यात्व प्रकृति को काटना प्रकृतियों के काटनेका वैज्ञानिक क्रम है।

जैन धर्म के कर्म सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ एक सैद्धान्तिक वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपनाये हुये प्रतीत होते हैं जिसका मूल प्रयोजन अशुद्ध तत्त्व को शुद्ध तत्त्व में परिणत करने के लिये तथा शाश्वत और अजर अमर बनाने के लिये, जीवके पारिणामिक आदि भावों को विशेष रूपसे कर्म सिद्धान्त का, आगेका अध्ययन का विषय बनाया गया है।

जैनाचार में विज्ञान

कर्म सिद्धान्तमें पौद्गलिक आधार लेकर जीवकी प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग के माध्यम से जीवकी परिणति का कथन किया जाता है किन्तु जैसे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र को पारकर चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में पहुँचना या किसी यानका पहुँचाया जाना वैज्ञानिक अध्ययन की वस्तु है उसी प्रकार जैन धर्ममें सम्यक्–चारित्र का विलक्षण वैज्ञानिक स्वरूप है। जब जीवको सम्यक् अथवा वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त हो जाती है कि मोक्षका वास्तविक स्वरूप क्या है? तो वह इस बातका समीचीन ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयास करने लगता है कि उसे कैसे

प्राप्त किया जाये? प्रत्येक धर्म ऐसी जागृति का समर्थन करता है एवं इस तरह का प्रयास करता है कि मुक्ति कैसे प्राप्त हो? यह विषय जैन धर्म में सम्यक्–चारित्र के रूपमें वर्णित है जो अनेक भेदों वाला कहा गया है। इन सभी प्रकार के भेदों में रहस्यमय ढंगसे वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य दृष्टव्य है। सम्यक्–चारित्र का भी लक्ष्य जीवको कर्मकी प्रकृतियों तथा अन्य बन्धकी अवस्थाओं से धीरे धीरे मुक्त कराके ऐसी अवस्था में ले जाना है जहाँ अन्ततः एक भी कर्म प्रकृति शेष नहीं रह जाती है, जिसका वर्णन गुणस्थानों की उपलब्धि के रूपमें अथवा अन्य लब्धियों के रूपमें गणितीय प्रमाणों के द्वारा लब्धिसार, कषायपाहुड़ जैसे ग्रंथ एवं उनकी टीकाओं में विशद रूप से विवेचित है। यद्यपि चारित्र का विशद वर्णन चरणानुयोग के ग्रंथो में ही मिलता है, जो विशेष रूपसे 'मूलाचार' 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' 'भगवती आराधना', 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय', 'सागारधर्मामृत', 'अनगार–धर्मामृत' एवं 'वसुनंदि श्रावकाचार' आदि ग्रंथो में उपलब्ध है किन्तु इनका वैज्ञानिक अध्ययन विद्वानों के अध्ययन का विषय बनाया गया है। कारण, जिसे एक बार दृष्टि मिल जाती है, उसकी अन्तःप्रज्ञा इतनी प्रखर हो उठती है कि बिना वैज्ञानिक विश्लेषण किये ऊँचाईयों तक पहुँचने में सक्षम हो जाता है। अतः चारित्र के इस स्वरूप का विश्लेषण जैनाचार्यों ने भावों की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा अत्यन्त सूक्ष्मता से और गहराई से गणितीय अध्ययन का विषय बनाया है। चूँकि भाव एक क्षण है, जबकि द्रव्य दृष्टि स्थायी है। अतः द्रव्यदृष्टि को धुरी बनाकर विशुद्ध परिणामों का लेखा जोखा किया जाता है, जिससे यह ज्ञात किया जा सके कि जीव किस गुणस्थान पर टिका हुआ है? आगे बढ़ रहा है? अथवा पीछे हट रहा है? भावों की यह मापतौल बाजार में चढ़ने उतरने वाले भावों से कहीं अधिक जटिल, गहन और दुस्तर है। जैसे भावों की तौलको समझकर व्यापारी उत्कृष्ट लाभको प्राप्त होता है, उसी प्रकार जीव अपने भावों को तौलते हुए परमपदको प्राप्त हो जाता है।

'वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में जैनधर्म' के ज्योतिष, कर्मादि के मॉडल्स (प्रतिकृतियाँ) अनेक संभावित समीक्षाओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक, सामान्यतः प्राचीन सिद्धान्तों को इतिहासकी दृष्टिको देखते हैं, फलस्वरूप न केवल जैन धर्म वरन् अनेक धर्मों के समक्ष तरह तरह की शंकाएँ उपस्थित हो गई हैं। आजका विचारक तो प्राचीन धर्म और दर्शन को अज्ञान एवं भयकी मानवीय प्रतिक्रिया के रूपमें स्वीकार करता है। धर्म और दर्शनको इतिहास में पहले कभी इतनी तीखी आलोचना का सामना नहीं करना पड़ा जितना कि आज। ठीक इससे विपरीत दशा विज्ञान की प्रारंभिक स्थिति में थी। वैज्ञानिकों को बड़े–बड़े त्याग और बलिदान देने पड़े ताकि अज्ञानके अंधकारको छिन्न भिन्न किया जा सके।

आज धर्मको वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया है यदि धर्म आजके दृष्टिकोण से प्रस्तुत नहीं किया गया तो धर्म मंदिरों में विराजमान प्राचीन एवं गौरवपूर्ण मूर्तियों तक ही सीमित रह जायेगा, जिनके प्रति जन मानस श्रद्धा एवं गौरवसे नम्रीभूत रहता है। समाजकल्याण एवं लोकोद्धारकी दृष्टिसे वैज्ञानिकों की भूमिका नगण्य रहती है। 'धर्मकी दृष्टि पहले स्वकी एवं फिर समाजकी ओर होती है। वही धर्म जब तक सक्रिय भूमिका का निर्वाह नहीं करेगा तब तक उसकी वैचारिक मीमांसा मात्रसे कोई प्रयोजन सिद्ध होनेवाला नहीं है। धर्मकी कूटस्थता एवं शाश्वतता के एकान्तवादी आग्रहका समर्थक वर्ग अब तो यही मानता आ रहा है कि धर्म और दर्शन सदैव जीवनकी शाश्वत समस्याओं को हल करता है परन्तु इतने मात्रसे ही संतोष कर लेने पर धर्म की प्रासंगिकता आजके परिप्रेक्ष्य में अनालोचित ही रह जाती है।'

धर्मकी वैज्ञानिक व्याख्या करने की ओर डॉ. राधाकृष्णन, प्रभृति आधुनिक विचारकों ने विशेष रुचि ली है। ऐसी मान्यता सुदृढ़ है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण जिस शक्तिका हमने अर्जन किया है उसका उपयोग किस

प्रकार हो, गतिका नियोजन किस प्रकार हो, आजके युगकी जटिल समस्या है। इसके समाधान के लिये हमें धर्म और दर्शन के जिस पूरक सहयोग एवं समन्वयकी आवश्यकता है उसके लिये जरूरी है कि परम्परागत अंधविश्वासों एवं कुरीतियों पर आधारित मूल्यों का निराकरण कर दिया जाये। भौतिक विज्ञानों के चमत्कारों से भयाकुल चेतना को हमें आस्था प्रदान करना है। निराश एवं संत्रस्त मनुष्यको आशा एवं विश्वासकी मशाल थमानी है, जिन परम्परागत मूल्यों को तोड़ दिया गया है, उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे अविश्वसनीय एवं अप्रासंगिक हो गये हैं। परम्परागत मूल्यों की विकृतियों को नष्ट कर देना ही अच्छा है। हमें नये युगको नये जीवन मूल्य प्रदान कर समाधान का रास्ता खोजना है।

इसप्रकार विज्ञानके नवीन आलोक में धार्मिक कुरीतियों, रूढ़ियों, अंध–विश्वासों का अवलोकन करते हुये चेतना के वास्तविक स्वरूपकी ओर ले जाने वाले धर्म पथका विवेचन स्वाभाविक है।

सिद्धान्ततः धर्म और विज्ञानका स्वतंत्र महत्त्व है, दोनों ही सत्य तक पहुँचने के माध्यम हैं। विज्ञान भौतिक प्रयोगशाला में किसी वस्तुकी सार्वभौमिक सत्यता को उद्घाटित करता है, तो धर्म जिज्ञासा और अनुभव के आधार पर आत्म प्रयोगशाला में सत्य को खोजता है। दोनों का मार्ग्य तो एक ही है, सत्यको परखना, पहचानना, पर मार्ग अलग–अलग हैं। इस प्रकार आज लगभग सभी विचारक इससे सहमत हैं कि धर्म और विज्ञान दोनों ही जीवनोपयोगी हैं और दोनों का लक्ष्य भी सत्यानुसंधान है। दोनों के बढ़ते हुये स्वरूपका पीछे हटना संभव नहीं है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान ने परमाणु को बिन्दुगत एवं तरंगगत रूपसे जो द्वैत रूप सिद्ध किया है वह जैन तत्त्व मीमांसात्मक सापेक्ष दृष्टि से सत्य प्रतीत हो रहा है। इसी तरह जैन धर्मकी पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यता एवं कर्म सिद्धांत संबंधी मान्यताओं को भी वैज्ञानिक मीमांसात्मक कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है।

इस तरहके और भी अनेक तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि धर्म और दर्शनके सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञानके संदर्भ में युक्तिसंगत ठहराया जा सकता है परन्तु इस संबंध में यह भी विशेष रूपसे विचारणीय है कि क्या धर्म और विज्ञानकी सत्यानुसंधान प्रक्रिया एक है? कारण कि जो निरीक्षण और प्रयोगके दायरे में न आता हो और विवेक सम्मत न हो उसे विज्ञान मानने को सहमत नहीं है। आधुनिक युगमें विश्वास और आप्तोपदेशका कोई स्थान और महत्त्व इतना नहीं रह गया है। क्या विज्ञानने मनुष्यों को इनके विरुद्ध विद्रोह करना सिखाया है?

वस्तुतः विज्ञान और धर्मकी प्रतिकूलताका प्रश्न यहीं से उठता है। विज्ञान धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं का विरोधी है। अनेक धर्म संस्थायें यह कदापि स्वीकार नहीं करेंगी कि विज्ञान उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करे। इसी प्रकार धर्म ग्रंथो में आप्त मानने का आग्रह इतना प्रबल रहता है कि विज्ञान द्वारा प्रकटित सत्य यदि आप्तके विरुद्ध जाय तो भी धार्मिक जगत में विज्ञान के हस्तक्षेपको सहन नहीं किया जायेगा। इन परिस्थितियों में विद्वानों के लिये यह सिद्ध करना विशेष महत्त्व नहीं रखता कि अमुक धर्म, अमुक सिद्धान्त विज्ञान सम्मत हैं, जब तक इस संभावनाकी पूरी तरह छानबीन नहीं कर ली जाती है कि धर्मान्तर्गत विज्ञानसम्मत प्रगतिशील मूल्यों के जुड़ने का अवकाश भी है या नहीं। इस वस्तुस्थिति को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि आधुनिक विज्ञान ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त, बन्ध, मोक्ष आदि धर्म दर्शन के कूटस्थ मूल्यों को संदिग्ध दृष्टि से देखता है तथा भौतिक जगत् तक ही अपने सत्य अनुसंधान को सीमित किये हुए है। जबकि धर्म, ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त के मूलाधार पर ही अवलम्बित है तथा भौतिक जगत् के तत्त्वों का वह उदासीन दृष्टि से विश्लेषण करता आया है। इस प्रकार धर्म जिन आध्यात्मिक मूल्यों को सत्य मानते हुए भौतिक जगत के प्रति उदासीन है, विज्ञान ठीक इसके विपरीत चलते हुये भौतिक तत्त्वों के प्रति आस्थावान है और आध्यात्मिकता का

विरोधी है। धर्म और विज्ञान का समन्वय करने में सबसे बड़ी बाधा तब उपस्थित होती है जब ज्ञान की प्रामाणिकता के प्रश्न पर दोनों एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। विज्ञान जिसे प्रामाणिक मानता है धर्म उसकी प्रामाणिकता को संदिग्ध दृष्टि से देखता है।

डॉ. भार्गवने इसी समस्या का विश्लेषण करते हुये कहा है कि वैज्ञानिकों की पद्धति ऐसी है कि उसमें नवीन उद्भावना को भी किसी पुराने व्यक्ति या ग्रंथ के नाम पर ही चलाया जा सकता है। नवीन उद्भावनाकी भी धर्म और दर्शनमें नवीनता स्वीकार नहीं की जा सकती। नवीनता का धर्म दर्शनके क्षेत्र में अर्थ है 'अप्रामाणिकता' किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में 'नवीनता' का अर्थ है मौलिकता।

उपरोक्त विवेचन के संबंध में यह बतलाना आवश्यक है कि जैन धर्म में गणित ज्योतिष, परमाणु एवं कर्म विषयक जो तंत्र प्रणालियाँ निर्मित की गईं, वे अपने आपमें गणितमय तथा परिणाम देने में सक्षम रहीं। वेदांग ज्योतिष को विकसित करने का श्रेय भी उसे ही जाता है। साथ ही कर्म सिद्धान्त का सूक्ष्मतम अदृष्ट वस्तु की घटनाओं का गणितमय विवेचन प्रयोगमें न भी लाया गया हो किन्तु वह न्यायकी गहन सामग्री बना है। अतः प्रणाली से जो संभावनायें अविभाजित होती।

जैनधर्म विश्वास और अविश्वास सभी एकान्तिक दृष्टियों का विरोध करता है और साथ ही यह मानता है कि सत्य चाहे किसी स्रोत से आये, हमें उसे ग्रहण करना चाहिये। इसमें आप्तोदेशको आँख मूँदकर मानने पर बल नहीं दिया जाता।

आधुनिक युग निर्विवाद रूपसे विज्ञान का युग है। अब धर्म और दर्शनका स्थान विज्ञानने ले लिया है और वही ज्ञान और व्यवहार के क्षेत्र में अग्रगण्य और दिग्दर्शक बन गया है। वैज्ञानिक तौर तकनीकी प्रगतिने मानवीय सभ्यता और संस्कृति को नई दिशा दी है। उसे एक नया विश्व दर्शन दिया है। आधुनिक युग में वही दर्शन और धर्म उपयोगी हो सकता है जो विज्ञान सम्मत हो, विज्ञानकी मान्यताओं के अनुकूल और विज्ञानकी कसौटी पर खरा उतरने में सक्षम हो। कोई भी धर्म तब प्रभावशाली हो सकता है जब उसकी अभिवृत्ति वैज्ञानिक हो और उसे आधुनिक विज्ञान का समर्थन प्राप्त हो। अतएव आधुनिक संदर्भ में जैन दर्शनकी उपयोगिताका विचार करते समय दो प्रश्न स्वभावतः हमारे समक्ष उठते हैं—

१. क्या जैन दर्शन आधुनिक विज्ञानकी मान्यताओं के अनुकूल है या उसे विज्ञान का समर्थन प्राप्त है?

२. आधुनिक विज्ञान की जो भी बुराईयाँ हैं, उनसे क्या यह धर्म मनुष्यको त्राण दिला सकता है, उसे चिन्ता और दुःखसे मुक्त कर सकता है?

जैन दर्शन अत्यन्त विशाल, सर्वग्राही एवं उदारवादी माना गया है। वह विभिन्न मान्यताओं के बीच समन्वय करने एवं सभीको उचित स्थान देने को तत्पर है। इसका दृष्टिकोण भी बहुत अंशोंमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति से पर्याप्त मेल खाता प्रतीत हुआ है। साथ ही साथ यह बुराईयों को दूर कर विनाशके कगार पर खड़ी मानवता को सुख शान्ति एवं मुक्ति का संदेश भी देता है। इस दृष्टि से जैन धर्म इतना समृद्ध और मान्य हुआ है कि एक ओर विज्ञान के अनुकूल है तो दूसरी ओर विज्ञान के अशुभ प्रतिफलों से मुक्त भी है। यह कुछ अंशों में उसकी पूरक प्रक्रिया भी हो सकता है और विज्ञान को मानवतावादी और कल्याणकारी दृष्टिकोण भी दे सकता है।

सर्वमान्य रूपसे विज्ञान और धर्म विघटक नहीं संपूरक हैं। विज्ञान गति देता है। धर्म दिशा देता है। धर्म जीवन का प्रयोग और विज्ञान जीवनकी प्रयोगशाला है। धर्म जीवनकी बुनियाद है और विज्ञान इसका शिखर है। जीवन में गति न हो तो जड़ता छा जायेगी और दिशा न हो तो जीवन भटक जायेगा। अतः धर्म और विज्ञान दोनों का

संतुलित समन्वय आवश्यक है। जैन धर्म में वीतराग–विज्ञान नामक वैज्ञानिक शब्द चुना गया है, जिसका अर्थ है हिंसा रहित विज्ञान, क्योंकि रागादि की उत्पत्ति को ही हिंसा कहा गया है। अतः अहिंसक धर्म ही वीतराग–विज्ञान कहा जा सकता है।

जैन धर्म में जो दिगम्बर जैन साहित्य उपलब्ध है उसमें जीवों का उत्तरोत्तर विकास अथवा अधः पतन मार्गणा स्थानों में दिग्दर्शित किया गया है। इन स्थानों को गुणस्थानों की नियंत्रण सीमाओं में स्थान देकर नियंत्रण प्रणाली (गुणस्थान–पद्धति) स्थापित की गई है, जो कर्म सिद्धान्त का एक अध्याय मात्र है। एकेन्द्रिय सूक्ष्म जीवसे लेकर पंचेन्द्रिय सूक्ष्म व बादर (स्थूल) जीवों को ऐसी कर्म बंध प्रणाली में विवेचित किया गया है जिसमें कर्म संबंधी प्रत्येक प्रकृति में गणितीय एकक प्रमाण वाले कर्म परमाणु प्रदेश, उनकी शक्ति (अनुभाग), उनके रहनेकी अवधि (स्थिति) आदि व्यवस्थित धाराओं और श्रेणियों द्वारा वर्णित किये गये हैं। पुनः इस प्रणाली के बंधसे मुक्त होने हेतु जिन पारिणामिक भावों को धाराओं में प्रतिक्रियात्मक रूपसे सक्रिय किया जाता है, वे भी गणितीय व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं। इसप्रकार कर्म बंधकी प्रक्रिया–प्रणाली से, मुक्त होनेवाली प्रक्रिया–प्रणाली संभवतः योग (मन वचन काय) तथा कषाय से परे होने वाले, आत्मिक विशुद्धि को बढ़ाने वाले विलक्षण भावों से संबंधित होती है जिनके एक स्वरूपका नामकरण लब्धिगत भाव कहा जा सकता है। यह कर्मसिद्धान्त का साररूप एक वैज्ञानिक स्वरूप कहा जा सकता है। ऐसी दिगम्बर जैन धर्म साहित्य की स्रोत सामग्री में पायी जानेवाली विलक्षणता प्रायः यूनान में मुख्यतः पिथेगोरस वर्ग में निम्नरूप पायी जाती है–

यूनान में रहस्यमय उपायों द्वारा पिथेगोरस वर्ग ने भी हरी, सचित फल्लियों एवं पौधों का भक्षण करने का निषेध किया था।

पिथेगोरियन वर्ग के विषय में प्लेटोक गणितीय प्रणाली का अध्यात्म में प्रयोग संबंधी कथन भी कुछ इसी तरहका है। इसी तरह चीनमें भी इस प्रकारकी सामग्री प्राप्त होती है।

बीज के रूप में श्रुत संवर्द्धन की सम्भावनाएँ

श्रुत संवर्द्धन एक नई विचारधारा के उदय का सूचक है। संरक्षण करना सरल है, पर संवर्द्धन का कार्य अत्यन्त जटिल होता है। दोनों में वह अंतर है जो रक्षण और वर्द्धन में होता है। संवर्द्धन प्रगतिशील अध्याय का प्रारम्भ, जिसमें सत्य को प्राप्त करके रहस्यमयी आवरणों को हटाना होता है। इसी प्रकार के वर्द्धमान कदमों की ओर ध्यान देना और अन्वेषण को प्रश्रय दिया जाना आवश्यक है। मात्र शोध ही नहीं, अन्वेषण भी जो आज के आधुनिकतम ज्ञान विज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँचने में भूमिका निभाता रहा है। आचार्य अकलंक के सांव्यहारिक प्रत्यक्ष पर जोर दिया जाना और विद्वानों को मूल आगम जैन ग्रंथों, धवलादि टीका सहित एवं जीव तत्त्व प्रदीपिकादि टीका सहित उनके स्वरूप को, निखारने हेतु श्रुत संवर्द्धन परम्परा को पुनः जीवन दान दिया जाना आज की अपरिहार्यता हो चुकी है।

अब हम श्रुत संवर्द्धन सम्बन्धी अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं जो श्रमण संस्कृति में प्रागैतिहासिक काल से अहिंसा को अविरल विश्व में पनपाने में सक्रिय रहे और जिन्हें आज के विज्ञान का इतिहास रचने में आवश्यकता अनुभव हुई है। ऐसे मूलभूत बिन्दुओं की साक्षी प्रमाण रूप 'षट्खण्डागम' व 'कषाय प्राभृत' एवं उनकी परम्परागत ग्रंथ राशियों में है ही, किन्तु उन सभी को आज के पारिभाषिक शब्दों व संदृष्टियों में गूंथकर जीर्णोद्धार रूप में प्रस्तुति भी आज की परिस्थितियों में अपरिहार्य हो गया है। अतः सर्व प्रथम हम ऐसे विवरण को प्रस्तुत करेंगे जो श्रुत संवर्द्धन की रीतिनीति में लाभदायक हो सके। इस विवरण में हमें प्रायः

२३०० वर्ष पूर्व हुए आचार्य भद्रबाहु, जो चौदह पूर्वी थे तथा आचार्य प्रभाचन्द्र जो पूर्व में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त थे, जिन्होंने आचार्य भद्रबाहु से जैन धर्म में दीक्षित होकर अपने प्राण प्रिय गुरुदेव की समाधि सेवा में बारह वर्ष चन्द्रगिरि पर घोर तपस्या की थी, जिनसे उन्होंने भी उनसे दस पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया था। इन सभीके इतिहास के पृष्ठों में लौटना होगा। अष्टांग महानिमित्त के धारी आचार्य भद्रबाहु तथा दीक्षा के पूर्व अप्रतिम रणक्षेत्रादि के ज्ञानादि में परम कुशल रहे प्रभाचन्द्राचार्य ने ये बारह वर्ष मात्र संरक्षण में नहीं वरन् श्रुत संवर्द्धन में बिताये होंगे। निश्चित ही उन्होंने अग्रायणी पूर्व, ज्ञान प्रवाद पूर्व आदि पूर्वो में निबद्ध कर्म सिद्धान्त को श्रुत रूप से श्रुत संवर्द्धन हेतु लिपि रूप में लाने का प्रयास किया होगा जिससे अर्थ एवं उनकी संदृष्टियाँ सामने लाने हेतु श्रुत का स्थान लिपिबद्ध ग्रंथों ने लिया होगा और बाद में ये लिपियां घनाक्षरी एवं हीनाक्षरी अथवा ब्राह्मी एवं सुन्दरी के कथानकों में किंवदन्तियों का रूप लेती चली गई होंगी। सर्व प्रथम अशोक के शिलालेख ब्राह्मी लिपि में लिखे दृष्टिगत हैं जिनसे पूर्व भारत में कोई भी शिलालेख उपलब्ध नहीं है। अशोक सम्राट, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के पौत्र थे जिन्हें यह लिपि उनसे विरासत में आविष्कृत होने पर ही प्राप्त हुई होगी। चन्द्रगुप्त काल में मेगास्थनीज, यूनानी दूत यही सूचना लेकर वापिस लौटा कि भारतीयों के पास अक्षर नहीं हैं और यहाँ के राजकीय एवं प्रजा के कार्य स्मृति से ही चलते हैं। सिकन्दर के उत्तराधिकारी राज्य वंश जो भारत की सुदूर उत्तरी सीमाओं पर अधिकार किये बैठे थे, उनके सिक्कों में भी एक ओर यूनानी लिपि तथा वही विषय वस्तु दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि में थी, जिसके आधार पर ब्रिटिश राज्य काल में यहाँ के शिलालेख पढ़े जाने लगे। अतः कर्म सिद्धान्त को समझने हेतु घनाक्षरी एवं हीनाक्षरी में लिपिबद्ध श्रुत हृदयंगम करने के लिए भाषा के साथ साथ उनकी गणित संदृष्टियों का आलम्बन आवश्यक है, श्रुतसंवर्धन हेतु अर्थ और अर्थ संदृष्टियों का पठन पाठन के साथ उनका रहस्यमयी निर्वचन आदि विद्वानों के लिए नितान्त अपरिहार्य हैं। इसी ज्ञान का प्रायोगिक रूप ध्यान है जो कर्म की होली जलाने के लिए अग्नि स्वरूप हो जाता है।

दूसरा बिन्दु वह है जहाँ हम आचार्य कुन्दकुन्द का महत्त्व निम्न लिखित मंगलाचरण रूप में पाते हैं–

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

गौतम गणधर के प्रायः ६०० वर्ष पश्चात् हुए आचार्य कुन्दकुन्द का उनके पश्चात् सीधे आना उनकी गणितीय ज्ञान के सहित परिकर्म नामक षट्खण्डागमके प्रथम तीन खण्डों पर लिखी हुई हो सकती है। यह अब उपलब्ध नहीं है, उसके उद्धरण वीरसेनाचार्य की टीकामें मिलते हैं। नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने भी धाराओं का विवरण त्रिलोकसार में देते हुए उनके विशेष विस्तार से अध्ययन हेतु बृहद् धारा परिकर्म का उल्लेख किया है। उनके पूर्व के आगम ग्रंथों में, भगवन्त भूतबलि के महाबन्ध में भी शून्य का दसार्हा पद्धति में उपयोग दृष्ट नहीं है। उनके बाद के ग्रंथों में ही कर्म सिद्धान्त ग्रंथों में आने वाली बड़ी संख्याएं दसार्हा पद्धति में प्राप्य हैं। अतः यह निश्चित होता है कि कुन्दकुन्दाचार्य ने बड़ी संख्याओं को लिखने हेतु इस पद्धति का आविष्कार किया होगा।

श्रुत संवर्द्धन का तीसरा बिन्दु कर्म सिद्धान्त में प्रयुक्त गणितीय सूत्र हैं जो 'तिलोयपण्णत्ती' व 'त्रिलोकसार' नामक करणानुयोग के ग्रंथों में उपलब्ध हैं तथा जिन पर भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने प्रोजेक्ट द्वारा उनका अध्ययनादि १९६२–१९६५ में फेलोशिप द्वारा करवाया है। इनका प्रथम दो भागों में 'Exact Sciences in the Karma Antiquity' ग्रंथमाला रूप से श्री ब्राह्मी सुन्दरी प्रस्थाश्रम द्वारा प्रकाशन हाल ही में कराया गया ह। तीसरा भाग प्रेस में है। इनमें सभी मूल गाथाओं के साथ गणितीय गाथाओं का पूर्ण विवरण

अंग्रेजी में शोध एवं अन्वेषण हेतु किया गया है। ये ग्रंथ कर्म आगम ग्रंथों के आधार रूप है जिनमें जैन भूगोल, जैन गणितीय ज्योतिष एवं जैन खगोल शास्त्र का गणितीय विवरण प्राप्त है। इन सूत्रों से गणित एवं गणितीय ज्योतिष, भूगोल तथा खगोल का इतिहास बनाने में विश्व के अनेक विद्वानों का सहयोग रहा है। अनेक शोध एवं अन्वेषण पूर्ण लेख विश्व की प्रामाणिक शोध पत्रिकाओं में निकले हैं तथा इस विषय को लेकर ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं। जापान के प्रोफेसर तकाओ हयाशी तथा यूहियो उकाशी एवं भारत के प्रोफेसर आर.सी. गुप्ता के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके कार्यों को आगे बढ़ाकर ले जाने का दायित्व अब श्रुत संवर्द्धकों का है।

संवर्द्धन का चौथा बिन्दु मात्र कर्म सिद्धान्त का तात्त्विक निर्वचन ही नहीं है, अपितु उसे आधुनिक विज्ञान से जोड़ना भी है। मात्र आगम का आधार लेकर जो निर्वचन का प्रयास होता रहा है, उसमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, अर्थात् विज्ञान द्वारा विकसित ज्ञान का भी आधार लेना आवश्यक है। वह आधार भी मात्र तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो वरन् अपनाई गई अन्वेषण एवं गणितीय पद्धति का समावेशकर प्रतिकृति को विकसित करने का ध्येय भी आवश्यक है। यथा, हम स्याद्वाद में आइंस्टाइन के सापेक्षता की तुलना की बात कर जाते हैं किन्तु उन्होंने उसमें किस शैली में गणित का प्रयोग कर अणु में छिपी शक्ति को उद्घाटित किया इस ओर ध्यान नहीं देते हैं। सार्थकता के लिए गणितीय प्रमाण अपरिहार्य हो जाते हैं, गणितीय अभिव्यक्ति, वाक्यांश तथा समीकरण वा असमीकरण और उसके हल के बिना कदापि प्रयासों में श्रुत संवर्द्धन मानना भारी भूल है। जैसे स्कन्ध की नाभि तोड़ने से नाभिकीयशक्ति (nuclear energy) गणितीय समीकरणों द्वारा सैद्धान्तिक रूपसे दृष्ट हो जाती है। उसी प्रकार करण लब्धि में अधः प्रवृत्त करण, अपूर्व करण व अनिवृत्ति करण के गणित द्वारा चित्रित विशुद्धिरूप धाराओं में निहित परिणाम मिथ्यात्व के द्रव्य को तीन खंडों में विभाजित कर उनके द्रव्य वा शक्ति को गणित की सामग्री बना देते हैं। ऐसा स्पष्टीकरण छन छन कर विद्वानों की वा लेखकों की विभिन्न प्रकार से तैयार टोलियां लोकप्रिय वचनों, प्रवचनों द्वारा श्रुत संवर्द्धन के कार्य को नया रूप दे सकती हैं तथा राजनीति एवं लोक नीति में अहिंसा के महत्व को अत्यधिक निखार व उजागर कर सकती हैं।

इसी प्रकार कर्म सिद्धान्त के आगम प्रमाण द्वारा हम बंध उदय, सत्व को लेकर गुण स्थानों व मार्गणा स्थानों तथा भावादि विषयों की चर्चाएं कर लेते हैं पर ऐसे ज्ञान का उद्गम (origination) ज्ञान के किस प्रकार के स्रोत से विकसित होता चला गया कि हजारों पृष्ठों में कर्म सिद्धान्त के अनेक पक्षों का भलीभांति विवरण चलता गया। इस ओर आधुनिक वैज्ञानिक शैलियों के इतिहास को नहीं देखना चाहते हैं न ही उन्हें उपयोग में लाने का प्रयास कर रहे हैं। जैसे एलोपैथी में अनेक प्रकार के प्राचीन ज्ञान–यूनानी, आयुर्वेदिक आदिके ज्ञान को लेकर प्रायोगिक रूप से उन्नत करते हुए आज विश्वास लोक में प्रचलित किया गया, उसी प्रकार का प्रयास कर्म सिद्धान्त के लिए भी अपेक्षित है, क्योंकि इसमें कर्म फल व स्थिति के रूप को परिणामों पर, जीव के अध्यवसाय व अनध्यवसाय तथा योग प्रयोग आदि पर स्पष्ट किया गया है।

कर्म सिद्धान्त लोक व्यवहार को उत्कृष्ट बनाने हेतु जीव के विशुद्धिरूप परिणामों का मार्ग कर्म के गणितीय रूपों से विवेचित करता है और संक्लेश रूप परिणामों से बच निकलने के रहस्य को गणितीय विधि द्वारा स्पष्ट करता है। साता वेदनीय और असाता वेदनीय कर्म प्रकृतियों के उद्गम को सुझाता है और शुभ वा अशुभ के भंग की संधि में विशुद्धि का ग्राफ बनाता चलता है। कर्म सिद्धान्त के दो रूप हैं– एक तो आधारभूत तत्त्वों का परिचय, दूसरा विकसित रूप सिद्धान्तों का परिचय (principles and theory) पर ये रूप विवेचित होते हैं। जैसे रिलेटिविटी थ्योरी, क्वाटम थ्योरी व सेट थ्योरी आधारभूत सिद्धान्तों (principles) पर विकसित की गयी

इसी प्रकार कर्म थ्योरी भी कुछ प्रमुख आधारभूत तत्त्वों की स्थापना के आधार पर विकसित की गयी। क्या ये आधार भूत तत्त्व अन्य थ्योरियों (विकसित सिद्धान्तों) के समान गणितीय स्वतः सिद्ध अभिधारणाओं (postulates) रूप में है? यदि हाँ तो वे क्या हैं, इसका अनुसंधान तथा ऐसे ही अनेक तथ्यों पर अनुसन्धान करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही अन्य तथ्य सामने लाना श्रुत संवर्द्धन में सहायक हो सकेगा।

इसी प्रकार संवाद का आधारभूत सिद्धान्त (principle of correspondence) भी अनेक प्रकार के प्रकृति के छिपे रहस्यों को उद्घाटित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। जो वस्तुऐं हमें दृष्ट रूप में सामने अवलोकित होती हैं उनके चाल चलन के गणितीय समीकरण सरलता से बनाये जा सकते हैं किन्तु जो वस्तुएं अदृष्ट रूप से अपनी चालें चलती हैं उनके गणितीय समीकरण बना लेना असाधारण कार्य है। सूक्ष्मतम वस्तुएं तो आंखों से ओझल रहती ही हैं किन्तु उनके चाल चलन का संवाद दृष्ट वस्तुओं के चाल चलन से स्थापित करने पर संभावनाओं रूप गणितीय समीकरण निकाले गये। उन्हें प्रयोग में लाने पर सिद्ध हुआकि दोनों के चाल चलन में अधिक अन्तर नहीं है। इसी आधार को लेकर आकाश में चलने वाले ग्रहों आदि के पिण्डों के चाल चलन का संवाद अदृष्ट स्कन्धों के भीतर चलने वाले मूलभूत कणों की चाल ढाल से स्थापित किया गया। इसमें सफलता मिलने पर इस प्रकार के संवाद को आगे बढाया गया। उदाहरणार्थ, डी.एन.ए. और आर.एन.ए. के बनने वाले आकारों का स्वरूप हीलियाकल उदयीभूत सूर्य आदि अथवा कुछ प्रकार के यही आकार लेने वाले कुछ पौधों में देखा गया। यही रूप जैनागम के तिलोयपण्णत्ती आदि में वर्णित सूर्यादि ज्योतिष पिंडों में देखा गया। क्या फिर कर्म प्रकृतियों में ऐसी ही चाल चलन की विशेषता होती होंगी? क्या वे इन घातिया व अघातिया रूप में अपनी पहिचान डी.एन.ए. वा आर.एन.ए. के रूप में कर दे सकती हैं? ये सभी गणितीय समीकरण प्रकृति की वस्तुओं के चाल चलन में असाधारण रूप से समान दृष्टिगत हुए हैं और जिनके आधार पर जीवन के अनेक रहस्यों को खोला जाने लगा है। कर्म सिद्धान्त में जो विकास प्राचीन काल में हो चुका था वह गणितमय था जो आज के जीव विज्ञान वा प्राद्यौगिकी से किसी भी तुलना में पीछे नहीं है। उनकी प्रयोगशाला उनका स्वयं का जीवन ही था।

श्रुत संवर्द्धन के लिए एक और अहम् बिन्दु पाँचवा है जो कर्म के अल्पतम मूलभूत सिद्धान्त को लेकर है इसके विज्ञान को (principle of least action) कहते हैं। सबसे पहिले तो चारसौ वर्षों से यह सिद्धान्त अनेक रूप धारण करता रहा है तथा कर्म (action) को गणितीय रूप से परिभाषित किया जाता रहा है। कर्म जो किसी भी प्रकार का हो, व्यापक से भी व्यापक रूप में गणित द्वारा परिभाषित किया गया हो– या तो कम से कम हो सकता है, या अधिक से अधिक हो सकता है, जो बीच का मान भी धारण कर सकता है तथा काल की अवधि में बंधा हुआ हो। इस प्रकार कर्म (action) को आइंस्टाइन ने भी गणित रूप से, अद्वितीय रूप से आकाश–काल की वक्रता रूप में, संयुक्त रूप में, पुद्गल की उपस्थिति व अनुपस्थिति रूप में परिभाषित किया था। उन्होंने भी इसमें विचलनीय (variational) सिद्धान्त या कम से कम और अधिक से अधिक रूप के मूलभूत सिद्धान्त का उपयोग किया था। इसके प्रयोग से न केवल अणु शक्ति विस्फोट सम्बन्धी समीकरण सामने आये थे वरन् गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी तीन प्रयोगों से उनके द्वारा प्राप्त समीकरण विश्व के अनेक वैज्ञानिकों ने सत्यापित कर दिये थे– प्रयोगों के माध्यम द्वारा। आइंस्टाइन ने मेट्रिक को व्यापक बनाकर इस कर्म (action) में एक और बल, विद्युतचुम्बकीय निमित्त को जोड़ना चाहा था, किन्तु वह इसमें सफल नहीं हो सके थे। दूसरी ओर से वैज्ञानिकों की दूसरी टोली ने विद्युतचुम्बकीय बल में नाभिकीय तीव्र एवं मंद बलों या निमित्त क्षेत्रों की संयुक्ति में इसी मूलभूत सिद्धान्त (principle) का प्रयोग कर सफलता प्राप्त की, सूक्ष्म जगत के रहस्य को उद्घाटित

किया, किन्तु इसमें वे गुरुत्वाकर्षण निमित्त बल को संयुक्त न कर सके। यदि विचलनीय (variational) के आधारभूत सिद्धांत (principle) का उपयोग जीव के कर्म के गणितीय स्वरूप पर प्रयुक्त किया जाये तो अनेक प्रकृति के रहस्यों को खोला जा सकता है। अजीव पुद्गल के कर्म के गणितीय स्वरूप को कई प्रकार से परिभाषित कर उसमें इस मूलभूत सिद्धान्त (principle) का उपयोग कर अनेक रहस्यों को उद्घाटित कर प्रयोग द्वारा सत्यापित करने में वैज्ञानिकों को सफलता मिली है। तब इसे जीव के कर्म के गणितीय रूप के सम्बन्ध में क्यों न प्रयुक्त कर वस्तु स्वरूप के चाल वा चलन को गहराई से ज्ञात न किया जाये? उसे विवृत्त (open) और अविवृत्त (closed) सिस्टम्स (systems) के रूपों में लाया जाकर जीव रूप दिया जाये? अथवा कर्म कषाय गति प्रकाश से भी अधिक तीव्र गति लेकर आगे बढ़ा जावे?

प्रिंसिपल को हम मूलभूत सिद्धान्त कह सकते हैं तथा थ्योरी (theory) को विकसित सिद्धान्त कह सकते हैं। कर्म सिद्धान्त में हमें पहिले मूलभूत सिद्धान्तों की राशि को देखना होगा, क्योंकि इसमें जीव के चाल चलन में जीव के परिणामों तथा पुद्गल के परिणामों के बीच जो संवाद उपस्थित होता है, उसके गणितीय रूप को व्यापक शैली में खोजना होगा। आगम ग्रंथो में यह संवाद अनेक गणितीय रूप लेकर वर्णित हुआ है। एक तो अल्प–बहुत्व सम्बन्धी सूचनाएं धवलादि ग्रंथों में भरी पड़ी हैं, जहाँ जघन्य और उत्कृष्ट तथा मध्यम रूप उनकी सीमाओं को निर्धारित करते चले जाते हैं। वस्तु की किसी प्रकार की चाल कहाँ से कहाँ तक, कौन सी विशेषता लिए हुए, कितने समय तक जारी रहेगी। मात्रा क्या होगी वा शक्ति क्या होगी, आदि सूचनाएं उपलब्ध हैं। मूलभूत सिद्धान्त में अल्पतम संयम में होनेवाली मंदतम या तीव्रतम गति क्या होगी यह सापेक्षता–सिद्धान्त की शोध में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आइन्स्टाइन के एक सूत्री सिद्धान्त के सफल न होने का कारण यह था कि उन्होंने महत्तम गति को मूलभूत सिद्धान्त तो आधार बनाया था किन्तु उसमें अल्पतम गति और अल्पतम समय को मूलभूत सिद्धान्तों में नहीं अपनाया था।

जहाँ आइन्स्टाइन यह भूल कर गये तथा रूपान्तरण के क्षेत्र में ग्रूप सिद्धान्त को व्यापक रूप में प्रयुक्त न कर सके, वहाँ क्वाण्टम सिद्धान्त को आधार भूत लेकर, कि कर्म (action) की अल्पतम इकाई क्या होती है, आगे बढ़े, किन्तु महत्तम तक पहुँचने के लिए उन्हें पुनः सापेक्षता के आइन्स्टाइन के मार्ग का अनुसरण करना पड़ा, किन्तु विफलता लिये हुए। अभी भी वैज्ञानिक एक अनेक संवाद के महत्त्वपूर्ण रूप का उपयोग जीव सम्बन्धी समीकरणों में नहीं ला सके हैं।

कर्म की परिभाषा में गोम्मटसारादि ग्रंथों में गणित का प्रवेश था। जैसे गति का जघन्य व उत्कृष्ट था, उसी प्रकार कर्म का जघन्य माप समय प्रबद्ध रूप लिया गया और उसका उत्कृष्ट माप असंख्यात समय प्रबद्ध लिया गया। कर्म आस्रव, कर्म सत्व वा कर्म निर्जरा का गणितीय रूप सरलतम रूप में स्थिति रचना यंत्र द्वारा दिया गया। केवल एक ही समय प्रबद्ध को लेकर, फिर संख्यात और असंख्यात समय प्रबद्ध का विचार अत्यंत जटिलता लिये हुए होगा। समय प्रबद्ध ही निषेकों का समूह रूप होता है जिसमें वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक एवं गुणहानियों की संरचनाएं (structures) विशेष नियमों के आधार पर, विभिन्न कर्म प्रकृतियों के लिये अलग अलग प्रदेश, अनुभाग व स्थिति लिये हुए रहती है। सत्व में परिवर्तन आस्रव को लिए हुए जीव के परिणाम तथा उदय निर्जरा को लिये, हुए जीव के परिणाम निमित्त भूत होते हैं। यदि निश्चय सत्य और आभास रूप होता है तो व्यवहार भी सत्य और आभास के झूले में झूलता है। निश्चय और व्यावहारिक रूपों के विश्लेषण की कसौटी गणितीय स्वरूप लिये रहती है। अतः आचार्य अकलंक ने सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के स्वरूप को प्रमाण का एक नये अंग का संवर्द्धन हेतु प्रयास

किया था। वहीं वीरसेनाचार्य ने भी परिकर्म के आधार पर गणितीय युक्तियों द्वारा निश्चित प्रमाण तक पहुँचाने के प्रयास किये थे। इस प्रकार श्रुत संवर्धन के अनेक रूप हमें आगम के अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं।

आत्मा का किनारा तभी पकड़ में आता है जब कर्म प्रकृतियों के विनाश से होने वाले परिणामों में यह अमूर्त अनामी स्वसंवेद्य होने लगता है और जन्म, जरा, मृत्यु का चक्रव्यूह समाप्ति की ओर मुड़ जाता है। आत्मा के स्वरूप का यथार्थ बोध होने के हेतु श्रुतावलम्बन अपरिहार्य रूप से आवश्यक है।

आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी (Modern Biotechonology)

जैव विज्ञान की आधुनिक शाखा जैव प्रौद्योगिकी में मानव जीनोम परियोजना (human genomeproject). जैनेटिक अभियांत्रिकी (genetic engineering) तथा मानव क्लोनिंग (cloning) की प्रसिद्धि हो चुकी है। इसके अनुसंधानों के द्वारा जीवों के गुणसूत्रों (chromosomes) पर स्थित जीनों (genes) के कई गुणधर्मों (properties) का पता लगाया जा रहा है। जीवों के रोग–बुढ़ापा, अपराध, तथा भावनाओं एवं दुष्कृत्यों इत्यादि का परीक्षण कर नियंत्रण भी इन वंशाणुओं से होता है तथा इनके परिवर्तन के द्वारा मनोवांछित जीवन बनाने पर अन्वेषण हो रहा है। जहां डी.एन.ए से कोडान बनते हैं, कोडान से जीन समूह बनते हैं, जीनों के कोश से जीनोम बनते हैं, जो प्रत्येक जीव के भिन्न भिन्न होने के कारण उसकी पहिचान करने में सहायक होते हैं। ये सभी जीव कोशिकाओं या निषेकों में पाये जाते हैं।

मनोविज्ञान में वैयक्तिक भिन्नता का अध्ययन आनुवांशिकता (heredity) और परिवेश (environment) के आधार पर किया जाता है। जैवविज्ञान के अनुसार जीवन का प्रारम्भ माता के डिम्ब और पिता के शुक्राणु के संयोग से होता है। व्यक्ति के आनुवांशिक गुणों का निर्धारण उसकी इकाई कोशिकाओं के गुणसूत्रों के द्वारा होता है। उनमें स्थित जीन ही माता पिता के आनुवांशिक गुणों के वाहक होते हैं। जीन की वैज्ञानिक व्याख्या के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सम्बन्ध नामकर्म से है। मनोविज्ञान ने शारीरिक और मानसिक विलक्षणताओं की व्याख्या आनुवांशिकता और परिवेश के आधार पर की है, पर उससे अनेक प्रश्न उत्तरित नहीं होते। मनोविज्ञान के क्षेत्र में जीवन का प्रारंभ और जीव का भेद अभी स्पष्ट नहीं है। आनुवांशिकता का संबंध जीवन से है, कर्म का संबंध जीव से है तथा जीवन से भी है। कर्म की दस अवस्थाओं का विवरण अत्यंत विशाल है जिस तक आज के जीवविज्ञान को पहुंचने में समय लगेगा।

जिनेटिक इंजीनियरिंग में वैज्ञानिकों ने जीन को परिवर्तित करने की खोज कर ली है। जानवरों की नस्ल को सुधारने में सफलता प्राप्त कर ली है। इसके अतिरिक्त नाड़ी संस्थान और हार्मोन ग्रंथियों के स्रावों में परिवर्तन कर मनुष्य के व्यक्तित्व में परिवर्तन करना सीख लिया है। कर्म संक्रमण का सिद्धांत इसमें प्रयुक्त होता है। कर्म की अवस्थाओं में परिवर्तन का कारण जीव के परिणामों की विशेषता लेकर होता है जो प्रयोगों की हर कसौटी पर खरा उतरता देखा गया है। जीव के भाव शुभ अशुभ तथा विशुद्ध की श्रेणियों में रखे जा सकते हैं। जीव के पांच प्रकार के भाव होते हैं जिनमें से चार प्रकार के भाव कर्म की विभिन्न अवस्थाओं के कारण होते देखे गये हैं। ये कर्म के क्षय, क्षयोपशम, उपशम आदि से होते हैं। पांचवां भाव पारिणामिक भाव है जो कर्म की अपेक्षा नहीं रखता है और जीव की स्वतंत्र परिणति का प्रतीक है।

अतः हमें देखना है कि जीव के जीवन में कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं बल्कि आनुवांशिकता, परिस्थिति, वातावरण, भौगोलिकता, पर्यावरण आदि निमित्त भी जीव के स्वभाव एवं व्यवहार पर उसकी योग्यतानुसार असर डाल सकते हैं। जीव अपने परिणाम पुरुषार्थ के द्वारा कर्म की अवस्थाओं में परिवर्तन ला सकता है ऐसा

देखने में भी आया है। इस प्रकार कर्म विज्ञान के साथ ही साथ आत्म विज्ञान भी विकसित किया गया था। जैसे जैसे कर्म क्षयादि को प्राप्त किये जाते हैं यह देखने में आता है कि जीव अभूतपूर्व उपलब्धियों को प्राप्त होता चला जाता है। ऐसा अन्वेषण अब आधुनिक वैज्ञानिक विकसित विधियों द्वारा अपेक्षित हो गया है। जीव के परिणामों में परिवर्तन के साथ साथ उससे संबंधित अनेक अवस्थाओं में जो परिवर्तन होते हैं उन्हें प्रामाणिक रूप से मापने के अनेक मूल्यवान यंत्र बनाये जा चुके हैं। उनके द्वारा आगम प्रणीत प्रमाणों पर शोध किये जाने के प्रयास हो सकते हैं।

इस प्रकार के पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों में जो परिवर्तन लाया जा सकता है, वह जीन्स में परिवर्तन लाने के समान प्रतीत होता है। अतः हम अपने संहनन आदि को अपने विशुद्धि रूप परिणामों के द्वारा बदल कर अपनी--अपनी आध्यात्मिक क्षमता बढ़ाने के रास्ते चुनने में सफल हो सकेंगे। वस्तुतः, शरीर विज्ञान के अनुसार जीव का स्वास्थ्य रसायनों से बनता बिगड़ता है जो न केवल भोजन पर निर्भर करते है वरन् अपने दुष्ट या अनुकम्पा स्वभाव, कठोरता या उदारता, क्रोध या क्षमा, मान या मार्दव, माया या सरलता, लोभ या संतोष पर निर्भर करते हैं। शरीर विज्ञान के अनुसार यह कहा जा सकता है कि जितनी कषायें आदि होंगी उतने ही रसायन इस जीव के मन वचन तथा काया पर प्रभाव कर्म रूप में छोड़ेंगे। फिर समय समय पर उनका विभिन्न प्रकार का फल निश्चित रूप से भोगने में आवेगा। ये सभी गणित के द्वारा स्थापित किये जाते हैं तथा प्रयोगों द्वारा पुष्ट किये जा सकते हैं।

मनोविज्ञान के अनुसार हमारे दो प्रकार के मस्तिष्क होते हैं। एक तो संस्कृत (conditioned) और दूसरा महान् (super)। इसी प्रकार एक चेतन (conscious) और अन्य अचेतन (unconscious) मन होता है। एक को मानव वा अन्य को पाश्विक भी कहा जाता है। इन्हें क्रमशः क्षायोपशमिक मस्तिष्क और औदयिक मस्तिष्क कहा जा सकता है। कर्म की एक प्रकृति का नाम है, ज्ञानावरणीय कर्म। यह कर्म ज्ञान पर आवरण रूप रहता है। ज्ञानावरण के कारण ही मस्किष्क विकसित नहीं हो पाता है। अमनस्क जीवों (non-vertebra) में पृष्टरज्जु और मस्तिष्क नहीं होते है। मनस्क जीवों (vertebra) के पृष्टरज्जु और मस्तिष्क होते हैं।

जैव प्रौद्योगिकी के अनुसार शरीर में ६०--७० खरब कोशिकाएँ हैं। इन कोशिकाओं में होते हैं गुण सूत्र। प्रत्येक गुण सूत्र १० हजार जीन्स से बनता है। वे मानों सारे संस्कार सूत्र हैं अथवा कर्म सत्य रूप हैं। पुनः शरीर में ४६ क्रोमोसोम होते हैं। नामकर्म के भी ६३ प्रकार होते हैं। उन पर जीन्स होते हैं। प्रत्येक जीन में साठ लाख आदेश लिखे हुए होते हैं। तब प्रश्न होता है कि क्या हमारी चेतना जो कर्म फल चेतना, कर्म चेतना तथा ज्ञान चेतना रूप आगम में कही गई है वह एक क्रोमोसोम और जीन से ही तो संबंधित नहीं है? एक जीव से दूसरे जीव के बीच जो अंतर दिखाई देता है उसका कारण कर्म है। इस प्रकार हम कर्म सिद्धान्त में विज्ञान का स्वरूप विशेष सीमा तक देख सकते हैं। यह हमें यह पथ दर्शाता है कि हम अभी से प्रयत्नशील हों कि एक ऐसा कर्म विज्ञान विषयक केन्द्र बनाया जावे जहां विद्वानों को न केवल उच्च संस्थागत ग्रन्थ संबंधी सुविधाएं उपलब्ध हों वरन् आधुनिकतम प्रायोगिक सूचनादि साधक यंत्रादि एवं पारस्परिक विनमयादि भी सुलभ हो सके।

संदर्भ ग्रंथ : १. धवला टीका समन्वित षटखंडागम, सोलापुर
२. जयधवला टीका समन्वित कषाय प्राभृत, मथुरा
३. जीव तत्व प्रदीपिका टीका सहित गोम्मटसार, दिल्ली
४. संस्कृत टीका सहित लब्धिसार, अगास
५. तिलोय पण्णत्ती, सोलापुर

14

संस्कृत में जैन स्तोत्र-साहित्य

डॉ. कु. भालती जैन

यद्यपि जैन दर्शन ईश्वर को सृष्टि के सृजनकर्ता, पालनहार एवं संहारक के रूप में स्वीकार नहीं करता तथापि जैन आचार्यो ने जिन भक्ति से संबंधित साहित्य की संरचना प्रचुर मात्रा में की है। वे स्वीकार करते हैं – 'सा जिव्हा या जिनं स्तौति' ईश्वर के स्तवन से पाप क्षण में उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह सूर्य की किरणों से अंधकार नष्ट हो जाता है।

त्वत्संस्ततेन भवसंतति–सन्निबद्धं, पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्
आक्रान्त लोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिवशार्वरमंधकार॥

जैन– साहित्य में जहाँ हमें ज्ञान और वैराग्य के गगनचुम्बी हिमालय की पर्वतश्रृंखलायें दृष्टिगत होती है वहाँ भक्ति भागीरथी की अजस्र धारा की कलकल ध्वनि भी श्रवणगत होती है। जैनाचार्यो ने अपने आराध्य देवों के चरम कमलों में देववाणी संस्कृत के माध्यम से जिन भाव प्रसूनों को समर्पित किया है उसमें स्तोत्र–साहित्य का विशिष्ट महत्त्व है। स्तोत्र शब्द अदादिगण की उभयवदी स्तु धातु से ष्ट्रन प्रत्यय का निष्पन्न रूप है जिसका अर्थ, गुण संकीर्तन है। गुण संकीर्तन आराधक द्वारा आराध्य की भक्ति का एक प्रकार है और यह भक्ति विशुद्ध भावना होने पर भवनाशिनी होती है। वादीभसूरि ने क्षत्रचूडामणिनीतिमहाकाव्य के मंगलाचरण में भक्ति को मुक्ति कन्या के पाणिग्रहण के शुल्क रूप में कहा है –

श्रीपतिर्भगवान पुष्पाद भक्तानां वः समीहितं।
यद्भक्ति शुल्कतामेति मुक्ति कन्या करग्रहे॥

स्तुति काव्य की दृष्टि से जैन वांङमय बहुत विशाल, समृद्ध तथा वैविध्यपूर्ण है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तीर्थंकरों के बहुविध स्तोत्र काव्य सैंकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। तीर्थंकर महावीर के प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम ने अर्द्धमागधी भाषा में भावपूर्ण स्तोत्र की रचना की थी। आचार्य भद्रबाहु के उवसग्गहर स्तोत्र का उल्लेख भी प्राप्त होता है। आचार्य कुन्दकुन्द की भक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। विशेषकर संस्कृत भाषा के जैन स्तोत्र भक्ति साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। ज्ञात एवं उपलब्ध स्तोत्रकारों एवं स्तोत्रों में

प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. स्वामी समन्तभद्र –	2वीं शती ई.–	स्वयंभू स्तोत्र, देवागम, जिन स्तुति शतक
2. पूज्यपाद–	5वीं शती ई.	सरस्वती स्तोत्र, शान्त्यष्टक, दशभक्तिः
3. पात्रकेशरी स्वामी	6वीं शती ई.	पात्र केसरी स्तोत्र
4. मानतुंग	7वीं शती ई.	भक्तामर स्तोत्र
5. धनंजय	7वीं शती ई.	विषापहार स्तोत्र
6. बप्पभहि	8वीं शतीं ई.	सरस्वती स्तोत्र
7. विद्यानंद	8वीं शती ई.	श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र
8. जिनसेन स्वामि	9वीं शती ई.	श्रीजिनसहस्रनाम स्तोत्र
9. अमितगति	975–1020 ई.	भावना द्वित्रिंशिका
10. वादिराज	1025 ई.	एकीभाव स्तोत्र ज्ञानलोचन स्तोत्र, अध्यात्माष्टक स्तोत्र
11. मल्लिषेण	1047 ई.	ऋषिमंडल स्तोत्र. पद्मावती स्तोत्र
12. इन्द्रनंदि	1050 ई.	पार्श्वनाथ स्तोत्र
13. हेमचन्द्राचार्य	1109–72 ई.	वीतराग स्तोत्र, महादेव स्तोत्र
14. जिनदत्त सूरि	1125 ई.	विघ्नविनाशि स्तोत्र, स्वार्थाधिष्ठापि स्तोत्र
15. कुमुद चन्द्राचार्य	1125 ई.	कल्याण मंदिर स्तोत्र
16. विष्णुसेन	1150 ई.	समवशरण स्तोत्र
17. विद्यानंदि	1181 ई.	पार्श्वनाथ स्तोत्र
18. आशाधर	1200–1250 ई.	सिद्धगुण स्तोत्र, सरस्वती स्तोत्र, जिनसहस्रनाम
19. सोमदेव	1205 ई.	चिन्तामणि स्तवन
20. वाग्मह	1250 ई.	सुप्रबोधन स्तोत्र
21. रत्नकीर्ति	1275 ई.	शम्भू स्तोत्र
22. शुभचन्द्रअध्यात्मिक	1313 ई.	मदालसा स्तोत्र
23. महारक सकल कीर्ति	15वीं शती ई.	जिनसहस्रनाम, अर्हन्नाम
24. देवविजयगणि	16वीं शती ई.	जिनसहस्रनाम
25. विनय विजय	17वीं शताब्दी ई.	जिनसहस्रनाम
26. श्री भागचन्द जैन 'भागेन्दु'		19वीं शताब्दी ई. महावीराष्टक
27. ग.आ.ज्ञानमती	20वीं शताब्दी	बाहुबलि स्तोत्र, सुप्रभात स्तोत्र, कल्याणकल्पतरू स्तोत्र

उपरोक्त सूची से स्पष्ट है कि स्तोत्र साहित्य में 'जिनसहस्रनाम स्तोत्र' की संख्या सर्वाधिक है। एकाकी तीर्थंकरों में ऋषभनाथ, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के स्तोत्र ही मुख्यतया रचे गये। तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं में सरस्वती स्तोत्रों की प्रथा 4 थी 5वीं शती से प्राप्त होने लगती है और 10वीं शती से चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती आदि विशिष्ट प्रभावशाली शासनदेवियों के स्तोत्र रचे जाने लगे। कई स्तोत्र मंत्रपूत माने जाते रहे हैं अतएव उनके साथ सबद्ध चमत्कारों की आख्यायिकायें भी लोक

प्रसिद्ध हुई। ऐसे चमत्कारी स्तोत्रों में समन्तभद्र का 'स्वयंभू स्तोत्र', पूज्यपाद का 'शान्त्यष्टक' पात्रकेशरी का 'पात्रकेशरी स्तोत्र' आचार्य मानतुंग का भक्तामर स्तोत्र. धनंजय का विषापहार, वादिराज का 'एकीभाव' मल्लिषेण का 'ऋषिमंडल' तथा कुमुदचंद्र का 'कल्याण मंदिर' उल्लेखनीय हैं।

जैन स्तोत्र साहित्य के अध्ययन से एक तथ्य स्पष्ट है कि यद्यपि कतिपय स्तोत्रों में दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा हितोपदेशिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु अधिकांश स्तोत्र भक्तिपरक हैं। इन स्तोत्रों में भक्त का विनम्र आत्म निवेदन, पूर्ण समर्पण एवं आराध्यदेव के गुण संकीर्तन की भावोर्मियाँ प्रबल वेग से उद्वेलित हैं। शिल्प विधान की दृष्टि से भी ये स्तोत्र उच्च कोटि के हैं। भाषा का भावानुकूल प्रयोग, सार्थक अलंकार योजना, रसानुकूल छंद–विधान रचनाकारों के काव्य कौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण है। धर्मनिष्ठ होने से जहाँ एक ओर ये स्तोत्र प्रत्यक्ष रूप से सदाचार, अहिंसा, भक्ति आदि के माध्यम से श्रेय के साधक हैं वहाँ दूसरी ओर काव्य सरणि का अवलम्बन लेने से प्रेय अर्थात् सद्यः आनंद प्राप्ति में भी सहायक हैं।

विस्तारभय से समस्त प्रमुख स्तोत्रों का विवेचन करना तो संभव नहीं है तथापि कतिपय बहुप्रचलित स्तोत्रों की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हूँ।

भक्तामर स्तोत्र : श्री मानतुंगाचार्य द्वारा विरचित भक्तामर स्तोत्र जैन समाज में सर्वाधिक प्रचलित स्तोत्र है। अशिक्षित भक्तों को भी यह स्तोत्र कंठस्थ है और वे प्रतिदिन इस स्तोत्र का पाठ करके ही अपने दिन का शुभारंभ करते हैं। कहा जाता है कि राजा भोज ने आचार्य मानतुंग के स्वाभिमानी व्यक्तित्व से असंतुष्ट होकर उन्हें कारागार में बंदी बनाकर अडतालीस ताले लगवा दिए थे। आचार्यश्री ने शान्त भाव से इस उपसर्ग को सहन करते हुए कारागार में ही प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की स्तुति में 48 श्लोकों की रचना की। निश्छल भक्ति के प्रभाव से स्तोत्र का पाठ करते ही 48 ताले टूट गये। आचार्य श्री बंधनमुक्त होकर कारागार से बाहर आ गये। इस स्तोत्र की भाव भूमि तीन भागों में विभक्त की जा सकती है – भक्त का विनम्र समर्पण, आराध्य देव का समवशरण वैभव और समस्त आधि, व्याधि से मुक्ति की प्रार्थना। यथास्थान अलंकारों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति सशक्त एवं मर्मस्पर्शी हो गई है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास धाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारुचाम्रकलिका–निकरैक हेतुः॥6॥

विषापहार स्तोत्र : महाकवि धनंजय रचित विषापहार स्तोत्र भी चमत्कारी स्तोत्र है। मंदिर में पूजा में लीन कविराज धनंजय के पुत्र को सर्प ने डस लिया। घर से कई बार समाचार आने पर भी कविराज पूजन से विरत नहीं हुए। पत्नी ने कुपित होकर बच्चे को मंदिर में उनके सामने रख दिया। पूजन से निवृत्त होकर कवि ने भगवान के सम्मुख ही विषापहार स्तोत्र की रचना की। स्तोत्र पूरा होते–होते बालक निर्विष होकर उठकर बैठ गया। मंदाक्रान्ता छंद में निबद्ध चालीस श्लोकों में कवि तीर्थंकर ऋषभनाथ की स्तुति करता है लेकिन कोई याचना नहीं करता। भक्ति निष्काम होनी चाहिए। फल तो स्वयंमेव प्राप्त होगा। निष्काम भक्ति के महत्त्ववर्णन में कवि का उक्ति वैचित्र्य दृष्टव्य है।–

इति स्तुतिं देव, विधाय दैन्याद्।
वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि

छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः॥38॥

कल्याण मंदिर स्तोत्र : श्री कुमुदचंद्राचार्य द्वारा विरचित कल्याण मंदिर स्तोत्र, भक्तों का कंठहार है। पार्श्वनाथ की स्तुति होने के कारण इसका नाम पार्श्वनाथ स्तोत्र भी है, परन्तु स्तोत्र कल्याण मंदिर शब्दों से प्रारंभ होने के कारण यह स्तोत्र इसी नाम से अभिहित किया जाता है। कहा जाता है कि उज्जैयिनी में वाद–विवाद में इस स्तोत्र के प्रभाव से एक अन्य देव की मूर्ति से पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हो गई थी। 44 श्लोकों में निबद्ध यह स्तोत्र 'बसन्ततिलका छंद में लिखा गया है। स्तोत्र का प्रमुख आकर्षण भगवान पार्श्वनाथ के जन्म जन्मान्तर के बैरी कमठ द्वारा उन पर किए गये भयंकर उपसर्ग के जीवन्त शब्दचित्र हैं–

यद्गर्जदूर्जित–घनौघ मदभ्र भीम
भ्रश्यत्तडित्पुसल मांसुल घोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर वारिदन्ते।
तेनैव तस्य जिन दुस्तर वारि कृत्यम्॥32॥

उपयुक्त शब्दों के चयन से भयानक रस की निष्पत्ति करने में कवि सफल हुआ है।

एकीभाव स्तोत्र : संस्कृत के जैन स्तोत्रकारों में आचार्य वादिराज का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वादिराज नाम नहीं पदवी है। चालुक्यराज जयसिंह की राजसभा में आपका विशिष्ट सम्मान था। कहा जाता है कि निस्पृही आचार्य ध्यान में लीन थे। कुछ व्यक्तियों ने उन्हें कुष्ठग्रस्त देखकर राजसभा में जैन मुनियों का उपहास किया जिसे जैन धर्म प्रेमी श्रेष्ठिजन सहन नहीं कर सके। भावावेश में वे कह उठे– हमारे मुनिराज की काया तो स्वर्ण के समान होती है। राजा ने समस्त वृतान्त सुनकर आचार्य के दर्शन का विचार किया। श्रेष्ठियों ने आचार्य को समस्त वस्तुस्थिति से परिचय कराकर उनसे धर्मरक्षा की प्रार्थना की। आचार्यश्री ने धर्म प्रभावना हेतु एकीभाव स्तोत्र की रचना की जिससे उनका शरीर वास्तव में स्वर्ण सदृश हो गया। राजा ने मुनिराज के दर्शन कर दुष्टों को दंड देने का संकल्प किया। किन्तु क्षमाशील आचार्य ने अपने शत्रुओं को भी राजा से क्षमा करवा दिया।

26 श्लोकों में रचित एकीभाव स्तोत्र में कवि का भक्त हृदय अडिग विश्वास के साथ आराध्यदेव के चरणों में समर्पित है। निम्न श्लोक भक्त हृदय की दृढ़ आस्था एवं अपार श्रद्धा भक्ति का सुंदर निदर्शन है–

जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा।
प्राप्तैवेयं तव नय कथा–स्फार पीयूष–वापी।
तस्या मध्ये हिमकर–हिम–व्यूह शीते नितान्तं।
निर्मग्नं मा न जहति कथं दुख–दावोपतापाः॥6॥

स्वयंभू स्तोत्र : आचार्य समन्तभद्र की अमरकृति स्वयंभू स्तोत्र जैन वाङ्मय का देदीप्यमान रत्न है। 144 श्लोकों में कवि ने चौबीस तीर्थंकरों का क्रम से पृथक्–पृथक् यशोगान किया है। कवि ने तीर्थंकरों की भक्त वत्सलता, उनके अपार गुण समूह, गहन ज्ञान का गुणगान तो किया ही है। उसकी दृष्टि तीर्थंकरों के दिव्य शारीरिक सौन्दर्य पर भी रीझी है। श्री चंद्रप्रभु भगवान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचि गौरं।
चन्द्रद्वितीयं जगतीव कान्तं।

वन्देऽभिवंद्यं महतामृषीन्द्रं।
जिनं जित स्वान्त – कषायबंधः॥36॥

इस स्तोत्र के साथ भी एक चमत्कारिक आख्यायिका संलग्न है। मुनिवर से शिवपिंडी को नमस्कार करने का दुराग्रह किया गया। अपने आराध्य के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण उनके लिए यह संभव नहीं था। उन्होंने संकट की इस घड़ी में चौबीस तीर्थंकरों का स्मरण करते हुए स्वयंभू स्तोत्र की रचना की। स्तोत्र पढ़ते–पढ़ते जैसे वे शिवलिंग को नमस्कार करने को आगे बढ़े शिवपिंडी फट गई और उसके भीतर चन्द्रप्रभु की भव्य प्रतिमा प्रकट हुई।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दूसरी शताब्दी में आचार्य समन्तभद्र से प्रारंभ हुई जैन स्तोत्र लेखन की परम्परा 19वीं 20वीं शताब्दी में श्री अक्षुण्ण चली आ रही है। वर्तमान काल में आचार्य विद्यानंद, आचार्य विद्यासागर, मुनि क्षमासागर, मुनि प्रमाण सागर, उपाध्याय ज्ञानसागर आदि मुनिवरों ने संस्कृत एवं हिन्दी में स्तोत्रों की रचना की है। अधुना परम पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी का स्तोत्र साहित्य में अवदान उल्लेखनीय है। उनके द्वारा रचित देव, शास्त्र, गुरुओं की ये स्तुतियाँ न केवल रचनाकर्मी को अपितु श्रद्धालु पाठकों को भी भवसागर को पार करने में तरणि रूप हैं। माताजी द्वारा विरचित स्तोत्रों में 'सुप्रभात स्तोत्र', 'बाहुबलि स्तोत्र' एवं 'कल्याणकल्पतरु स्तोत्र' का विशेष महत्व है।

सुप्रभात स्तोत्र : चौबोल छंद में रचित सुप्रभात स्तोत्र अपनी विशिष्ट शैली में अनायास ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। प्रत्येक श्लोक के अंतिम पाद में माताजी ने 'उत्तिष्ठ भव्य भुवि विस्फुरितं प्रभातं' कहकर भव्य जनों को प्रभात की प्रकाशमय बेला में जागृत होने का उद्बोधन किया है। आलंकारिक शैली में लिखा गया यह स्तोत्र आकार में लघु होने पर भी अपनी प्रभविष्णुता में अद्वितीय है। एक उदाहरण देखें :–

तारागणा अपि विलोक्य विधोः सपक्षं
खे निष्प्रभं विमतयोऽपि च यांतिनाशं
स्याद्वादभास्य उदये त्यज मोह निद्रां
उत्तिष्ठ भव्य भुवि विस्फुरितं प्रभातं॥5॥

बाहुबलि स्तोत्र : 51 वसन्ततिलका छदों में रचित बाहुबलि स्तोत्र भगवान ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली के चरण कमलों में समर्पित भावप्रवण रचना है। दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रान्त के 'श्रवणबेलगोल' स्थान में एक ऊँची पहाड़ी विंध्यगिरि पर स्थित भगवान बाहुबलि की 57 फीट ऊँची भव्य मूर्ति के दर्शन कर माताजी के मनमानस में उत्पन्न हुई भावोर्मियों का यह संकलन जैन साहित्य की अमूल्य धरोहर है। सांसारिक कष्टों से त्रस्त हृदय की भगवान से अपने उद्धार के लिए की गई यह प्रार्थना इतनी कारुणिक है कि पढ़ते पढ़ते आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है।

उद्विग्न घोर भयद्व्यसनाम्बुधेर्मा।
दुखाश्रुपूरनिवहैः कृतवक्त्रसान्द्रं॥
वीक्ष्यागतं परम कारुणिकस्य तेऽन्तः।
स्वामिन् कथं व्रवति नो कथय त्वमेव॥26॥

माताजी ने इस स्तोत्र का हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत कर इसे जनसाधारण के लिए बोधगम्य बना दिया है।

कल्याणकल्पतरू : 'कल्याणकल्पतरू' को यदि माताजी के स्तोत्र साहित्य का मेरूदण्ड कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें 212 श्लोकों में जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों का पृथक्–पृथक् भावपूर्ण स्तवन

है। छंदशास्त्र की दृष्टि से इस स्तोत्र का उल्लेखनीय अवदान है। इसमें एक अक्षर वाले छंद से लेकर सत्ताइस अक्षर वाले छंद तक के 143 पद्य तथा तीस अक्षर वाले एक अर्णोदण्डक छंद का प्रयोग हुआ है। इस स्तोत्र की यह मौलिक विशेषता है। जैन संस्कृत साहित्य में इतने अधिक छंदों वाले स्तोत्र अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होते। माताजी ने इस स्तोत्र का प्रारंभ एकाक्षरी श्री छंद से किया है।

ऊँ भाम् सोऽभ्यात्

छंदों के इस उपवन में माताजी ने जैन दर्शन, अध्यात्म एवं इतिहास के पुष्पों का गुम्फन इतनी कुशलता से किया है कि उनकी तपः पूत लेखनी जादुई छड़ी का आभास देती है।

महावीराष्टक स्तोत्र : कविवर भागचंद्रजी 'भागेन्दु' की कृति 'महावीराष्टक' स्तोत्र जैन समाज में बहुप्रचलित स्तोत्र है। 8 शिखरणी छंदों में निबद्ध यह स्तोत्र भगवान महावीर की भावभीनी स्तुति है। भगवान महावीर के अलौकिक सौन्दर्य का आलंकारिक वर्णन इस स्तोत्र का विशिष्ट आकर्षण है। बाह्य सौन्दर्य वर्णन के साथ ही कवि ने भगवान की वाग्गंगा में भी गहन अवगाहन किया है। वाग्गंगा का आलंकारिक शब्दचित्र देखें।

यदीया वाग्गगा विविध नयकल्लोल विमला।
बृहज्ज्ञानाम्भोभि र्जगति जनतां या स्नपयति॥
इदानी मप्येषा बुधजनरामलैः परिचिता।
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥7॥

जैन स्तोत्र साहित्य की वाग्गंगा में गहरे पैठकर इस विष्कर्ष पर पहुँचना अवश्यंभावी है कि जैन साधु एवं साध्वियों ने अपनी तपःपूत लेखनी से अनेक उत्तमोत्तम स्तोत्र भारतीय साहित्य को प्रदान किए हैं। जैनों के स्तोत्र साहित्य की विपुलता, भव्यता, भावप्रवणता और माधुर्य की अनेक पौर्वात्य एवं पाश्चात्य जैनेतर मनीषियों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। यद्यपि अधिकांश स्तोत्रों का हिन्दी अनुवाद सुलभ है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सभी संस्कृत स्तोत्रों का सरल हिन्दी में अनुवाद किया जाय, जिससे जनसाधारण भी इस भागीरथी में गहरे पैठ सकें, क्योंकि 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ'।

15

जैन साहित्य में भिन्न
(Fractions)

डॉ. श्री मुकुटबिहारी अग्रवाल

विषय प्रवेश– भारत वर्ष में भिन्नों का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से मिलता है, प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में 1/2 (अर्थ) और 3/4 (त्रिपाद)[1] भिन्नों का प्रयोग किया गया है। मैत्रायणी–संहिता[2] में एक स्थान पर 1/16 (कला), 1/12 (कुष्ट) 1/8 (शफ) और 1/4 (पाद) भिन्नों की चर्चा आयी है।

जैन आगमों में भी भिन्नों का बड़ी प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है। प्राचीन साहित्य में भिन्नों को 'कलासवर्ण' के नाम से पुकारा जाता था। इसका उपयोग लोक व्यवहार चलाने के लिये तो होता ही है, परन्तु अध्यात्मिक क्षेत्र में भी इसका व्यवहार प्राचीन काल से होता चला आ रहा है, जैनाचार्यों का कहना है कि निकम्मा मन प्रमाद करता है, परन्तु भिन्नों की गुत्थियों में उलझकर मन स्थिर हो जाता है और उसको अनावश्यक बातों को सोचने का अवसर ही नहीं मिलता।

जैनवाङ्मय में बड़ी–बड़ी भिन्नों का व्यापक प्रयोग

प्राचीन काल में साधारण भिन्न पूर्णतः विकसित नहीं हो पायी थी, 'वेदांग ज्योतिष' में इस सम्बन्ध में केवल 2/61 का आभास मिलता है।[3] शुल्व सूत्र में भी साधारण भिन्नों की झलक दिखलाई पड़ती है।[4] परन्तु बड़ी बड़ी भिन्नों का व्यापक प्रयोग जैन आगमों में सरलता से उपलब्ध है। 'सूर्य प्रज्ञप्ति' में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। यथा–

$$* 5251\frac{29}{61} \qquad \$ 99645\frac{35}{61} \qquad * 100654\frac{26}{61}$$

अनुचित (Improper) एवं जटिल (Complex) भिन्नें भी जैन साहित्य में सबसे पहले दृष्टिगोचर होती हैं। सूर्यप्रज्ञप्ति में अनुचित भिन्नों के उदाहरण इस प्रकार हैं।[5]

$$\frac{61}{2} \qquad \frac{548}{61} \qquad \text{तथा} \qquad \frac{547}{61}$$

जटिल भिन्नों के भी अनेक उदाहरण सूर्यप्रज्ञप्ति में मिलते हैं[6] यथा–

$2\frac{41\frac{1}{2}}{183}$ $3\frac{45\frac{1}{2}}{183}$ और $4\frac{51\frac{1}{2}}{183}$

भिन्नों का लेखन

अत्यन्त प्राचीन काल से ही हिन्दू लोग भिन्नों को उसी प्रकार से लिखते आ रहे हैं जैसे आजकल लिखते हैं, परन्तु पहले समय में अंश और हर को विभाजित करने वाली रेखा का व्यवहार नहीं करते थे, तिलोय पण्णत्ती में 19/24 को $\frac{19}{24}$ और त्रिलोक सार में $\frac{8192}{64}$ को $\frac{8192}{64}$ लिखा है।

आंशिक भिन्न

बड़ी बड़ी भिन्नों की अभिव्यक्त करने में अनेक कठिनाईयाँ आती थीं, क्योंकि पहले संकेतों की कमी थी, परन्तु सूर्य–प्रज्ञप्ति में इस कठिनाई का समाधान भलीभाँति दिया हुआ है, उसमें बड़ी भिन्न को दो या दो से अधिक छोटी भिन्नों के योग के रूप में प्रकट किया है।

यथा[6]–

$$5251\frac{47}{60}\left(9-\frac{1}{61}\right)=47179\frac{57}{60}+\frac{19}{60\times 61}$$

$$47263\frac{21}{60}\div 549=86\frac{5}{60}+\frac{24}{60\times 61}$$

$$\frac{18}{60}\times\frac{548}{61}=2+\frac{41}{60}+\frac{43}{60\times 61}$$

$$\$\frac{1830}{62}=29\frac{1}{2}+\frac{1}{62}$$

रूपांशक भिन्न

महावीराचार्य ने 'गणितसार संग्रह' में 'इकाई भिन्न' का उल्लेख किया है। यह रूपांशक ऐसी भिन्न को कहते हैं जिसका अंश 1 हो। इस भिन्न को 'रूपांशक राशि' के नाम से भी पुकारते हैं। महावीराचार्य ने कई नियम दिये हैं जिनके द्वारा किसी रूपांशक भिन्न को कई रूपांशक भिन्नों में विभक्त किया जा सकता है। इसका उल्लेख करने वाले महावीराचार्य ही सबसे पहले जैन गणितज्ञ थे। डॉ. ब्रजमोहन अपने 'गणित के इतिहास' में लिखते हैं कि अन्य किसी भारतीय गणितज्ञ ने इस विषय को स्पर्श भी नहीं किया है।[7]

(1) 1 को n संख्या के रूपांशक भिन्नों के योग में विभक्त करना–[8]

इसके लिये नियम इस प्रकार हैं। 1 से शुरू करके 1/3, से गुणा करते जाओ और इस प्रकार n संख्यायें लिख डालो।

$$1,\frac{1}{3^1}\ \frac{1}{3^2}\ \frac{1}{3^3}\ \frac{1}{3^4}\cdots\cdots\ \frac{1}{3^{n-2}}\ \frac{1}{3^{n-1}}$$

फिर पहले हर को 2 से और अंन्तिम हर को 2/3 से गुणा करके समस्त भिन्नों को जोड़ दो।

(2) 1 को विषम संख्या के रूपांशक भिन्नों के योग में विभक्त करना।[9]

इसके लिये नियम इस प्रकार बताया गया है। 2 से शुरू करके एक–एक बढ़ाते जाओ और इन राशियों को रूपांशक भिन्नों के हरों के रूप में रखते जाओ। चूँकि भिन्नों की संख्या विषम रखनी है। अतः अन्तिम हर 2 n होगा।

इसके बाद प्रत्येक हर को अगले हर से गुणा करके आधा कर दो। अन्तिम हर के आगे कोई और हर नहीं है। अतः उसे गुणा नहीं करना केवल आधा करना होगा। फिर सबसे जोड़ लो।

(3) किसी दिये हुए एकांशक भिन्न को अनेक भिन्नों के योग के रूप में व्यंजित करना जबकि प्रत्येक के अंश दिये हुये हैं।[10]

इसके लिये नियम इस प्रकार बताया गया है– दी हुई भिन्न का हर पहली भिन्न का आंशिक हर होता है। उस आंशिक हर में अपने अंश को जोड़ देने पर जो मिलता है वह दूसरी भिन्न का आंशिक हर होता है इत्यादि, प्रत्येक आंशिक हर को अगली आंशिक हर से तथा अन्तिम आंशिक हर को अपने अंश से गुणा करने पर उन भिन्नों की वास्तविक हरों की प्राप्ति होती है। यथा–यदि $\frac{1}{n}$ को ऐसे चार भिन्नों के योग में व्यक्त करना है जिनके अंश a, b, c और d दिये हुये हैं तो,

$$\frac{1}{n} = \frac{a}{n(n+a)} + \frac{b}{(n+a)\,(n+a+b)} + \frac{c}{(n+a+b)\,(n+a+b+c)} + \frac{d}{d(n+a+b+c)}$$

(4) किसी दी हुई भिन्न को एकांशक भिन्नों के योग के रूप में व्यंजित करना[11]

इसके लिये नियम इस प्रकार बताया गया है। दी हुई संख्या के हर में किसी ऐसी संख्या को जोड़ दो कि योगफल में यदि दी हुई भिन्न के अंश से भाग दें तो वह पूर्णतः विभाजित हो, शेष बिलकुल न बचे। इस प्रकार भाग देने से प्राप्त लब्धि पहले भिन्न की हर होती है। इस हर और दी हुई भिन्न के हर के गुणनफल का उस संख्या में जो पहले दी हुई संख्या के हर में जोड़ी गयी थी, भाग देते हैं तो यह शेष भिन्नों के योग उत्पन्न करती है। इस शेष पर वही क्रिया करने पर अन्य भिन्नों की हरें प्राप्त होती हैं। यथा दी हुई भिन्न $\frac{M}{N}$ है। यदि G ऐसी संख्या हो कि $\frac{N+G}{M}$ पूर्ण संख्या S के बराबर हो तो उपर्युक्त नियमानुसार,

$$\frac{M}{N} = \frac{1}{S} + \frac{G}{SN}$$

इसमें $\frac{1}{S}$ पहली एकांशक भिन्न है तथा अन्य एकांशक भिन्नों को ज्ञात करने के लिये $\frac{G}{SN}$ पर वही क्रिया करनी चाहिए।

(5) किसी दी हुई एकांशक भिन्न को दो अन्य एकांशक भिन्नों के योग के रूप में व्यंजित करना[12]

इसके लिये दो नियम दिये गये हैं। पहला नियम इस प्रकार है। दी हुई भिन्न के हर को उपर्युक्त कल्पित[13] संख्या से गुणा करने पर पहली एकांशक भिन्न का हर मिलता है। यह हर, एक कम पिछली चुनी हुई संख्या द्वारा

विभाजित करने पर दूसरी एकांशक भिन्न का हर मिलता है। यथा–

$$\frac{1}{n} = \frac{1}{pn} + \frac{1}{pn/p\text{-}1}$$

दूसरा नियम इस प्रकार है। दी हुई भिन्न के हर को निःशेष भाजक और प्राप्त लब्धि को अलग–अलग इनके योग से गुणा करने पर दोनों एकांशक भिन्नों की हरें प्राप्त होती हैं। यथा–

$$\frac{1}{ab} = \frac{1}{a(a+b)} * \frac{1}{b(a+b)}$$

(6) किसी दी हुई भिन्न को अन्य दी भिन्नों के योग के रूप में व्यंजित करना जबकि उन दोनों भिन्नों के अंश दिये हुये हों।[14]

इसके लिये नियम इस प्रकार है। एक भिन्न के अंश को किसी उपयुक्त कल्पित संख्या से गुणा करके गुणनफल में दूसरी भिन्न का अंश जोड़ दो। इस प्रकार प्राप्त योग को दी हुई भिन्न के अंश से निःशेष भाग कर दो। लब्धि को कल्पित संख्या से भाग करो और इस प्रकार जो लब्धस्वरूप आवे उसे दी हुई भिन्न के हर से गुणा करो। यही गुणनफल पहली अभीष्ट भिन्न का हर है। इस प्रकार इस हर को कल्पित संख्या से गुणा करने पर जो मिलेगा वह दूसरी भिन्न का हर होता है।[15] यथा–

$$\frac{m}{n} = \frac{k}{\frac{(kr+h)n}{mr}} = \frac{h}{\frac{(kr+h)n}{mr}} \times r$$

इसका एक विशिष्ट रूप यह है। यदि (k + h) को m से भाग देने पर शेष न बचे तो

$$\frac{m}{n} = \frac{k}{\frac{kn+h}{m}} + \frac{h}{\frac{kn+h}{m}} \times n$$

(7) किसी दी हुई भिन्न को भिन्नों के सम संख्या के रूप में व्यंजित करना, जबकि उन भिन्नों के अंश दिये हों।[16]

इसके लिये नियम इस प्रकार है। दी हुई भिन्न को पहले उतनी एकांशक भिन्नों के योग के रूप में रखो जितने कि इष्ट भिन्नों के जोड़े हैं। फिर उन एकांशक भिन्नों से दी हुई भिन्न को दो भिन्नों के योग में रूपान्तरित करने की विधि से इष्ट भिन्नके हरों का साधन करो।

भिन्न सम्बन्धी प्रश्न

महावीराचार्य ने भिन्नों पर अनेक प्रश्न बनाये हैं जिन्हें बहुत ही रोचक भाषा में प्रस्तुत किया है उनमें से कुछ उदाहरण के लिये दिये जाते हैं।

(1) एक धान के खेत में जिसका दाना पका हुआ था और बालें बोझ से झुकी जा रही थीं, तोतों का एक झुण्ड उतरा। रखवारों ने उन्हें डराकर उड़ा दिया, उनमें से आधे पूर्व दिशा में चले गये और 1/6 दक्षिण पूर्व की ओर। इन दोनों के अन्तर में से अपना आधा घटाकर जो बच रहे उसमें से फिर उसी का आधा घटाने पर जितने बच रहे, वे दक्षिण दिशा में चले गये। जो दक्षिण में गये और जो दक्षिण पूर्व में उड़े उनके अन्तर में से उसी का 2/5 घटाने से जितने शेष रहे वे दक्षिण पश्चिम में गये। जितने दक्षिण गये और दक्षिण–पश्चिम में गये उनका अन्तर पश्चिम दिशा में गये। पश्चिम और दक्षिण–पश्चिम दिशा में जाने वाले तोतों की संख्या के अन्तर में उसी

का 3/7 जोड़ने से योग आवे उतने उत्तर पश्चिम में गये। उत्तर–पश्चिम और पश्चिम दिशा में जाने वाली संख्या के अन्तर में उसी का 7/8 मिलाने से जो फल आवे उतने उत्तर दिशा में गये उत्तर–पश्चिम और उत्तर दिशा में जाने वाली संख्याओं के योग में उसी का 2/3 घटाने से जो प्राप्त हो, वे उत्तर पूर्व दिशा में गये, यदि 280 तोते आकाश में विचरते रह गये तो झुण्ड में कुल मिलाकर कितने तोते थे।[17]

(2) एक व्यक्ति घर पर कुछ आम लाया। उनमें से आते ही उनके बड़े लड़के ने एक आम खा लिया। फिर जितने आम शेष रहे उनके आधे खा लिये। बड़े लड़के के जाने पर छोटे लड़के ने भी शेष में से उसी प्रकार फल लिये। शेष के आधे आमों को तीसरे लड़के ने ले लिया। बताओ उस व्यक्ति द्वारा लाये हुये आमों की संख्या क्या थी।[18]

भिन्नों का अपवर्तन

भिन्नों को सरल करने के लिये हिन्दू प्रणाली में 'अपवर्तन' या 'वर्तन' नामक शब्द प्रयुक्त होते थे। इसका अर्थ होता है कि भिन्न के अंश और हर दोनों में सामान्य संख्या (Common factor) का भाग देकर भिन्न को सरल रूप में लाना। इन शब्दों–अपवर्तन और वर्तन को अनेक हिन्दू गणितज्ञों के साथ 6वीं शताब्दी के जैनाचार्य जिनभद्रगणि[19] ने प्रयोग किया है।

गाणितिक परिकर्म करने से पहले भिन्नों को अपवर्तित करना आवश्यक समझा जाता था, परन्तु अपवर्तन की क्रिया को परिकर्म नहीं माना जाता था। यह क्रिया गणित की पुस्तकों में नहीं मिलती है। सम्भवतः इसको मौखिक रूप से कराया जाता था, परन्तु यह निश्चय है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से ही यह नियम प्रचलित था क्योंकि उमास्वातिकृति 'तत्वार्थाधिगम सूत्र–भाष्य में एक स्थान पर दार्शनिक विवेचन की व्याख्या करते समय दृष्टान्त रूप से इसकी चर्चा की गई है। जो इस प्रकार है–

'अथवा, जिस प्रकार भिन्नों को सरल करते समय, कुशल गणितज्ञों द्वारा अंश और हर का अपवर्तन कर देने पर भी कोई अंतर नहीं पड़ता, इसी प्रकार.....'[20]

'सूर्य प्रज्ञप्ति' में अपवर्तन के कई उदाहरण मिलते हैं– यथा[21]

$$\frac{366}{3660} = \frac{1}{10} \text{ तथा } \frac{2}{10} = \frac{1}{5}$$

'तत्वार्थाधिगमसूत्र' में ऐसे उदाहरण मिलते हैं– यथा[22]

$$\frac{100000}{190} = 526\ \frac{6}{19}$$

भिन्नों का कलासवर्णन (सरल करना)– कलासवर्णन का अर्थ, भिन्नों को समहर करना होता है। इसकी आवश्यकता भिन्नों को जोड़ने या घटाने के समय होती है। यह क्रिया बहुत पहिले वेदांगकाल (ई.पू. 1200), शुल्बसूत्र काल (ई.पू. 800) तथा सूर्य प्रज्ञप्ति (ई.पू. 300) में मालूम थी, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उन दिनों कलासवर्णन के क्या नियम थे, परन्तु ऐसा मालूम पड़ता है कि जब जैन ग्रन्थ लिखे गये उस समय जैन लोग भिन्नों के जोड़ने व घटाने में समहर विधि काम में लाते थे क्योंकि 'कलासवर्णन' शब्द की उत्पत्ति से ऐसा ही प्रतीत होता है। कला का अर्थ भिन्न जैसे 1/16 आदि से है और सवर्ण का अर्थ एक वर्ण या एक जाति में लाना है, परन्तु विधि की कठिनाई के कारण पहले गणितज्ञ केवल दो भिन्नों को एक बार लेकर जोड़ते अथवा घटाते थे। उनकी विधि इस प्रकार थी– प्रत्येक भिन्न के अंश और हर को दूसरी भिन्न के हर से गुणा करो। ऐसा करने से वे दोनों भिन्नें समहर हो जाएँगी। यदि जोड़ना हो तो उनके अंशों को जोड़ दो और यदि घटाना हो तो

एक के अंश को दूसरे के अंश में से घटा दो।

इस प्रकार का वर्णन ब्रह्मगुप्त और श्रीधर आदि ने किया है। एक भिन्न को दूसरी समान हर वाली भिन्न में से घटाने के उदाहरण 'सूर्य प्रज्ञप्ति' में कई जगह मिलते हैं। यथा–[23]

$$5305\frac{15}{60} - 5251\frac{29}{60} = 53\frac{46}{60}$$

परन्तु जैनाचार्य महावीर ही पहले जैन गणितज्ञ थे।[24] जिन्होंने दो या दो से अधिक भिन्नों के जोड़ अथवा घटाने के लिए लघुत्तम समापवर्त्य की कल्पना की। इसको उन्होंने 'निरुद्ध' के नाम से पुकारा। उन्होंने अपने 'गणितसारसंग्रह' में निरुद्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है–[25]

'छेदों के महत्तम समापवर्तक और उससे भाग देने पर प्राप्त लब्धियों का गुणनफल निरुद्ध कहलाता है।'

भिन्नों को समहर करने के लिए उनका नियम इस प्रकार है–[26]

'निरुद्ध को हर से भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो उससे हर और अंश दोनों को गुणा करो। ऐसा करने से सब भिन्नों का हर एक जैसा जो जाएगा।'

भिन्नों के संकलन और व्यवकलन के सम्बन्ध में 'त्रिलोकसार' की टीका में पं. टोडरमल जी ने लिखा है कि हर और अंशों का परस्पर गुणा कर जोड़ लेने से भिन्नों का संकलन आता है।[27]

भिन्नों का गुणन– भिन्नों को किसी पूर्णांक से गुणा करने के सूर्य प्रज्ञप्ति में अनेक उदाहरण मिलते हैं। यथा–[28]

$$29\frac{32}{62} \times 12 = 354\frac{12}{62}$$

परन्तु भिन्न को भिन्न से गुणा करने का भी उदाहरण 'सूर्यप्रज्ञप्ति' में उपलब्ध है। यथा–[29]

$$94526\frac{42}{60} \times 1/2 = 47263\frac{21}{60}$$

ब्रह्मगुप्त और अन्य गणितज्ञों ने भी भिन्नों के गुणन के सम्बन्ध में लिखा है कि अंशों के गुणनफल में हरों के गुणनफल का भाग देना ही भिन्नों का गुणनफल है, परन्तु महावीर ने क्रियालाघव की दृष्टि से वज्रापवर्तन विधि का भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार है।[30]

''भिन्नों के गुणने में, पहले यदि सम्भव हो तो वज्रापवर्तन[31] कर लेने के बाद अंशों को अंशों से और हरों को हरों से गुणा करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में पं. टोडरमल जी लिखते हैं कि भिन्नों का गुणा करने के लिए उनके अंश से अंश और हर से हर का गुणा किया जाता है।

भिन्नों का भाग– भिन्न को किसी पूर्णांक से भाग देने से 'सूर्यप्रज्ञप्ति' में अनेक उदाहरण मिलते हैं।[32] जैसे–

$$354\frac{12}{62} \div 6 = 59\frac{2}{62}$$

इस प्रकार के उदाहरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी उपलब्ध हैं।[33] परन्तु किसी संख्या को भिन्न से भाग देने का उदाहरण केवल एक ही मिलता है जो इस प्रकार है।[34]

1 मुहूर्त = 61/2 भाग। अतः एक भाग = 2/61 मुहूर्त।

यद्यपि इन ग्रन्थों में भाग की क्रिया के लिए कोई स्पष्ट विधि नहीं बतलाई है, परन्तु फिर भी ऐसा आभास होता है कि भाजक भिन्न के उल्टे से गुणा किया जाता था। आगे चलकर ब्रह्मगुप्त, महावीर और श्रीधर ने भी इसी नियम का पालन किया है। महावीर ने इस नियम को इस प्रकार बतलाया है।[35] "भागद्वार के अंश को उसका हर और हर को अंश मानकर वही क्रिया करनी चाहिए जो गुणन के लिए कही गई है।"

'त्रिलोकसार' के टीकाकार पंडित टोडरमल ने इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है– "भाजक केअंश को हर और हर को अंश बनाने के बाद गुणा की रीति द्वारा भाग की क्रिया सम्पन्न की जाती है।"

भिन्नों के वर्ग, घन, वर्गमूल और घनमूल– इस सम्बन्ध में पंडित टोडरमल ने लिखा है कि भिन्न के वर्ग, घन, वर्गमूल और घनमूल ज्ञात करने के लिए भिन्न के अंश और हर का क्रमशः वर्ग, घन, वर्गमूल और घनमूल निकालने चाहिए। यथा – $\frac{a}{k}$ का वर्ग = $\frac{a^2}{k^2}$, इसी प्रकार घन आदि भी निकाले जा सकते हैं।

बड़ी भिन्नों का निकटतम मान– डॉ. बी.बी. दत्त ने अपने निबन्ध 'जैन स्कूल ऑफ मैथामैटिक्स'[36] में बतलाया है कि गणित सम्बन्धी जैन साहित्य में एक अन्य प्रकार का निकटतम मान मिलता है और वह है भिन्नों का निकटतम माना। इनका कहना है कि किसी बड़ी संख्या में भिन्न वाले भाग को उसके निकटतम वाले पूर्णांक द्वारा हटा देने से गणना में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, इसी आधार पर जैन साहित्य में यदि कोई भिन्न $\frac{1}{2}$ से अधिक होती है, तो उसको 1 से बदल देते हैं और यदि $\frac{1}{2}$ से कम है, तो उस भिन्नात्मक मान को बिलकुल हटा देते हैं। यथा–[37] सूर्यप्रज्ञप्ति में– $315089\frac{218079}{630178}$ को 315089 से कुछ अधिक कहकर व्यक्त किया है, तथा को $318314\frac{553405}{630178}$ को 318315 से कुछ कम कहकर व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त किसी वृत्त के व्यास में $5\frac{35}{61}$ की वृद्धि अथवा हानि करने से परिधि में $17\frac{35}{61}$ का अन्तर आना चाहिए, परन्तु जैनागमों में[38] यह अन्तर 18 द्वारा व्यक्त किया जाता है।

वितत भिन्न– यद्यपि $\sqrt{2}$ के तीन मान $\frac{17}{12}$ और $\frac{17}{12}$ शुल्ब सूत्र में उपलब्ध होते हैं,[39] जोकि भिन्न द्वारा सरल करने पर क्रमशः आठवीं, तीसरी और चौथी संस्तुतियाँ हैं। ये मान इस ओर संकेत करते हैं कि शुल्ब सूत्र के लेखक वितत भिन्न से परिचित थे, परन्तु वास्तव में ये मान अन्य किसी विधि द्वारा निकाले गये हैं और अकस्मात् वितत भिन्न की संस्तुतियाँ के मान के समान हो गए हैं। शुल्बकारों को वितत भिन्न का बिलकुल ज्ञान नहीं था।

आर्यभट्ट (499 ई.) ने एक घातीय अनिर्णीत समीकरण को हल करने में वितत भिन्न का प्रयोग किया है। यथा–[40]

$$\frac{a}{b} = q_1 + \frac{1}{q_2} + \frac{1}{q_3} + \ldots\ldots$$

इसके बाद श्रीधर ने भी वितत भिन्न के बारे में लिखा है।[41]

इसका प्रयोग जैनाचार्यों ने भी किया है। जैन सिद्धान्त के ग्रन्थों में समस्त जीवराशि, गुण–स्थानों की जीवराशि, मार्गणाओं की जीवराशि का प्रमाण निकालने के लिए वितत भिन्न का प्रयोग धवलाकार ने नवीं सदी में सिद्धान्त निरूपण पूर्ववत किया है। धवलाकार ने उपयुक्त जीव राशियों का प्रमाण निकालने के लिए अपने पूर्ववर्ती जैनाचार्यों के गणित सूत्रों को उद्धृत किया है। निश्चय ही गणित सूत्र 5वीं सदी से लेकर 8वीं सदी के बीच के समय के हैं। असंख्यातः, असंख्यातासंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त के आन्तरिक प्रभेदों और तारतम्यों का सूक्ष्म विवेचन वितत भिन्न के सिद्धान्तों के आलम्बन के बिना सम्भव नहीं था। द्विरूप वर्गधारा, धनाधनवर्गधारा तथा करणीगत वर्गित राशियों के वर्गमूल आनयन में भी वितत भिन्न का प्रयोग जैनाचार्यों ने किया है।

धवलाटीका जिल्द तीन पृष्ठ 45–46 में धवलाकार ने लिखा है– ''असंख्यातवाँ भाग अधिक सम्पूर्ण जीव राशि का सम्पूर्ण जीव राशि के उपरिम वर्ग में भाग देने पर असंख्यातवाँ भाग हीन सम्पूर्ण जीवराशि आती है। उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातवाँ भाग अधिक सम्पूर्ण राशि का सम्पूर्ण जीवराशि के उपरिम वर्ग में भाग देने पर जघन्य परीतानांतवाँ भाग हीन सम्पूर्ण जीवराशि आती है। अनन्तवाँ भाग अधिक सम्पूर्ण जीवराशि का सम्पूर्ण जीवराशि के उपरिमवर्ग में भाग देने पर अनन्तवाँ भाग हीन सम्पूर्ण जीवराशि आती है।''

भिन्न सम्बन्धी सूत्र– 'धवला' में भिन्न सम्बन्धी ऐसे अनेक रोचक सूत्र पाये जाते हैं, जो अन्य किसी गणितग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हैं। वे सूत्र इस प्रकार हैं–[42]

1. $\dfrac{न^2}{न \pm \frac{न}{म}} = न \mp \dfrac{न}{म \pm 1}$

2. यदि $\dfrac{म}{द} = क$ और $\dfrac{म}{द'} , = क'$ हो, तो $\dfrac{म}{द \pm द'} = \dfrac{क}{\frac{क'}{क} \pm 1} = \dfrac{क}{1 \mp \frac{क}{क'}}$

3. यदि $\dfrac{म}{द} = क$ और $\dfrac{म}{द'} , = क'$ हो, तो $(क - क') + म' = कद = म$

4. यदि $\dfrac{अ}{ब} = क$ हो, तो $\dfrac{अ}{ब + \frac{ब}{न}} = क - \dfrac{क}{न + 1}$ और $\dfrac{अ}{ब - \frac{ब}{न}} = क + \dfrac{क}{न - 1}$

5. यदि $\dfrac{अ}{ब} = क$ हो, तो $\dfrac{अ}{ब + स} = क - \dfrac{क}{\frac{ब}{स} + 1}$ और $\dfrac{अ}{ब - स} = क + \dfrac{क}{\frac{ब}{स} - 1}$

6. यदि $\frac{अ}{ब} = क$ और $\frac{अ}{ब'}, = क + स$ हो, तो $ब' = ब - \frac{ब}{\frac{क}{स}+1}$ और यदि $\frac{अ}{ब'} = क - स$ हो, तो $ब' = ब\frac{ब}{\frac{क}{स}-1}$

7. यदि $\frac{अ}{ब} = क$ और $\frac{अ}{ब}$, कोई दूसरा भिन्न हो, तो $\frac{अ}{ब} - \frac{अ}{ब'} = क - \left(\frac{ब' - ब}{ब'}\right)$

8. यदि $\frac{अ}{ब} = क$ और $\frac{अ}{ब + स} = क - स$ हो, तो $स = \frac{ब \cdot स}{क - स}$

9. यदि $\frac{अ}{ब} = क$ और $\frac{अ}{ब + स} = क + स$ हो, तो $स = \frac{ब \cdot स}{क + स}$

10. यदि $\frac{अ}{ब} = क$ और $\frac{अ}{ब + स} = क'$ हो, तो $क' = क - \frac{क \cdot स}{ब + स}$

11. यदि $\frac{अ}{ब} = क$ और $\frac{अ}{ब - स} = क'$ हो, तो $क' = क + \frac{क \cdot स}{ब - स}$

ये सब परिणाम 'धवला' के अन्तर्गत अवतरणों में पाये जाते हैं। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रन्थों के हैं। अनुमान यही होता है कि वे सब किन्हीं गणित सम्बन्धी जैन ग्रन्थों के अथवा पूर्ववर्ती टीकाओं से लिये गए हैं। इस प्रकार वितत भिन्न का प्रयोग जैन आचार्यों ने ईस्वी सन् की 5वीं या 6वीं शताब्दी में किया है।

भारतीय अन्य गणित शास्त्रों में वितत भिन्न का प्रयोग सिद्धान्त प्रतिपादन के रूप में भास्कराचार्य के समय से मिला है। यों तो आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त के गणित ग्रन्थों में भी इस भिन्न के बीज सूत्र वर्तमान हैं, परन्तु सिद्धान्त स्थिर कर विषय को व्यवस्थित ढंग से उपस्थित करने तथा उससे परिणाम निकालने की प्रक्रिया का उन ग्रन्थों में अभाव है। 'धवला टीका' में उद्धृत गाथाओं में वितत भिन्न के सिद्धान्त इतने सुव्यवस्थित हैं, जितने आज पाश्चात्य गणित के सम्पर्क से वितत भिन्न के सिद्धान्त स्थिर हुए हैं।

पाश्चात्य गणित जगत में 16वीं शताब्दी के पहले वितत भिन्न का प्रयोग नहीं किया गया था।

भिन्नों के प्रकार– प्रायः हिन्दू गणितज्ञों ने भिन्नों के चार प्रकार बतलाये हैं, परन्तु महावीराचार्य ने दो जातियाँ और बतायी हैं, इस प्रकार उनके अनुसार भिन्नों की कुल छः जातियाँ हो जाती हैं–

1. **भाग जाति**–[43] ये भिन्नें निम्न स्वरूप की होती हैं–

$$\left(\frac{a}{b} \pm \frac{c}{d} \pm \frac{e}{f} \pm \ldots\right)$$

जिसको हिन्दू गणितज्ञ इस प्रकार लिखते थे–

a	c	e
b	d	f

अथवा

a	.c	.e
b	d	f

यहाँ बिन्दु (.) ऋणसूचक चिह्न है।

2. **प्रभागजाति**–[44] ये भिन्नें निम्न स्वरूप की होती हैं–

$$\frac{a}{b} \text{ का } \frac{c}{d} \text{ का } \frac{e}{f} \text{ का} \ldots\ldots$$

जिसको हिन्दू गणितज्ञ इस प्रकार लिखते हैं–

a	c	e
b	d	f

अथवा

a	.c	.e
b	d	f

3. **भागानुबन्ध जाति**–[45] ये भिन्नें इस प्रकार की होती हैं–

(a) $a + \frac{b}{c}$

(b) $\frac{p}{q} + \frac{p}{q} \text{ का } \frac{d}{c} \left(\frac{p}{q} + \frac{p}{q} \text{ का } \frac{d}{c} \right) \text{ का } \frac{t}{s} + \ldots\ldots$

जिन्हें हिन्दू गणितज्ञ इस प्रकार लिखते थे–

(a)

a
b
c

(b)

p
q
d
c
t
s

4. **भागाप्रवाह–जाति**–[46] ये भिन्नें निम्न स्वरूप की होती हैं–

(a) $\left(a - \frac{b}{c} \right)$

(b) $\frac{p}{q} - \frac{p}{q} \text{ का } \frac{d}{c} \left(\frac{p}{q} - \frac{p}{q} \text{ का } \frac{d}{c} \right) \text{ का } \frac{t}{s} - \ldots\ldots$

जिन्हें हिन्दू गणितज्ञ इस प्रकार लिखते थे–

(a) 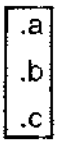

(b) 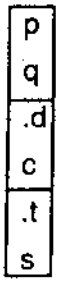

5. **भाग–भागजाति**–[47] ये भिन्नें इस स्वरूप की होती हैं–

$$\left(a \div \frac{b}{c}\right) \text{ अथवा } \left(\frac{p}{q} \div \frac{r}{c}\right)$$

भाग के परिकर्म का कोई चिह्न न होने के कारण इन भिन्नों को हिन्दू गणितज्ञ भागानुबन्ध जाति की भिन्नों के प्रकार लिखते थे–

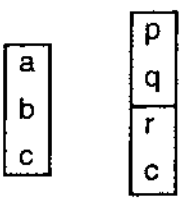

6. **भागमातृ जाति**–[48] इसका आशय इस प्रकार के भिन्न से है, जो उपरोक्त स्वरूपों के दो या अधिक प्रकार के भिन्नों के मिश्रण से उत्पन्न होती है। महावीराचार्य जी का कहना है कि ऐसी भिन्नें 26 प्रकार की हो सकती हैं।[49] अतएव उनके अनुसार मिश्र भिन्नों की संख्या इस प्रकार ${}^5C_2 + {}^5C_3 + {}^5C_4 + {}^5C_5 = 26$ है।

निष्कर्ष :

गणितशास्त्र में भिन्न का अपना विशिष्ट महत्व है। हिन्दू गणित में जैन गणितज्ञों का भिन्न प्रतिपादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऐसे अनेक जैनाचार्य हुए हैं, जिन्होंने भिन्न के स्वरूप पर नवीन विचारात्मक दृष्टिकोण सैद्धान्तिक धरातल पर ही नहीं, अपितु व्यावहारिक स्तर पर स्पष्टतः प्रतिपादित किए हैं। वितत भिन्न का प्रयोग जैनाचार्यों ने सिद्धान्त निरूपण के साथ पाँचवीं या छटवीं शताब्दी में किया है। वितत भिन्न के उद्गम और विकास पर गहन अध्ययन करने के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि भारतीय गणित शास्त्र में वितत भिन्न का प्रयोग सैद्धान्तिक रूप में भास्कराचार्य के समय से मिलता है। यों तो आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त के गणित–ग्रन्थों में भी इस भिन्न के बीज–सूत्र वर्तमान हैं, परन्तु सिद्धान्त स्थिर रूपमयी विषयात्मकता को सुव्यवस्थित ढंग से उपस्थिति करने तथा उससे परिणाम निकालने की प्रक्रिया उन ग्रन्थों में नहीं है। वस्तुतः 'धवला टीका' में उद्धृत गाथाओं में वितत भिन्न के सिद्धान्त इतने सुव्यवस्थित हैं जितने आज पाश्चात्य गणित का सम्पर्क पाने पर भी स्थिरता प्राप्त न कर सके हैं।

आचार्य महावीर का भारतीय–गणित में अपना विशिष्ट स्थान है। आपने गणित की सब ही विद्याओं पर

महत्वपूर्ण कार्य किया है। भिन्न जैसा विषय भी आपसे नहीं बच पाया। भिन्न के सरलीकरण में जोड़–बाकी की क्रिया को सरल बनाने के लिए आपने जो कल्पना की उसे 'निरुद्ध' शब्द की संज्ञा से अभिहित किया गया। धीरे–धीरे यही निरुद्ध 'लघुत्तम समापवर्त्य' के नामसे पुकारा जाने लगा। लघुत्तम समापवर्त्य की विधि को स्पष्ट करके आचार्य महोदय ने गणितज्ञों और गणित के अध्ययनकर्ताओं को कृतार्थ किया है। 'इकाई भिन्न' भी आचार्य जी की मौलिकता की परिचायका है। वस्तुतः आचार्य जी ने इसको 'रुपांशक भिन्न' की शाब्दिकता प्रदान की थी और आज यही 'इकाई भिन्न' के नाम से प्रचलित है। महावीराचार्य के अतिरिक्त अन्य किसी गणितज्ञ ने इस विषय को नहीं जाना था।

अन्ततः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्टतः कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों का भिन्न गणित में वह योगदान है जो कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता।

---

1. ऋग्वेद 10, 90, 4
2. मैत्रायणी संहिता, 3, 7, 7
3. वेदांग ज्योतिष, 39
4. The baut 'On the Sulba Sutra' J. A. S. B. (1875) Reprint page 28.

* पंचजोयण सहस्सातिं, दीक्षिणय एकावण्णे जोयणसऐ एगूणतो–संच एगसद्धीभागे–'सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र', पृष्ठ 81 $ णावणवउर्ति जोयण सहदलाई छच्चपण्णमाले जोयसणसए पणणतीसंच एगसद्धी भागे. वही, पृष्ठ 29, * एगजोयणा सवसहस्यं छच्चचउप्पण जोयणसए छब्बिसंच एगसद्धीभागे वही भाग पृ. 3.

5. सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, 11 व 23
6. दो जोयाणांई अद्ध बयालीसंच तैसीय सत भागे, तिण्णि जोयाणाइं अद्धसीया ली संच तैसीय सत भाग, चत्तारि जोयणाइं अद्ध वावण्णंच तैसीय सय भागे सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र पृष्ठ 38, 39.

* गुरुगोविन्द चक्रवर्ती 'Hindu Treatment of fraction pp 85. $ सूर्य प्रज्ञप्तिसूत्र, पृ. 2

7. डॉ. ब्रजमोहन 'गणित का इतिहास' पृ. 81
8. गणित सार संग्रह, अध्याय 3, गाथा 75
9. वही, अध्याय 6, गाथा 77
10. गणित सार संग्रह अध्याय 6, गाथा 78.
11. वही, अध्याय 6, गाथा 80
12. गणितसार संग्रह, अध्याय 3, गाथा 85
13. कल्पित संख्या ऐसी होनी चाहिए कि एक कम कल्पित संख्या से दी हुई भिन्न का हर पूर्णतः विभाजित हो जाये।
14. गणित सार संग्रह, अध्याय 3, गाथा 87
15. कल्पित संख्या ऐसी होनी चाहिए कि दोनों भाग निःशेष हों।
16. गणित सार संग्रह, अध्याय 3, गाथा 89
17. गणित सार संग्रह, अध्याय 4, गाथा 12–16
18. वही, अध्याय 6, गाथा 131 1/2

19. जिनभद्रगणि, वृहक्षेत्र समास की मलयगिरि द्वारा टीका
20. तत्वार्थधिगमसूत्र भाष्य, सूत्र 2–52
21. Mythic society Journal Vol. XV, Page 147
22. तत्वार्थधिगमसूत्र भाष्य, सूत्र 24 व 32
23. सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, पृ. 73
24. हिन्दू गणित का इतिहास, पृष्ठ 185
25. गणितसार संग्रह, पृ.3, गाथा 56
26. वही, अ.3, गाथा 56
27. त्रिलोकसार परिशिष्ट, पृष्ठ 11
28. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, पृ. 228
29. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, पृ. 72
30. गणितसार संग्रह अ.3 गाथा–2
31. वज्रापवर्तन विधि के अनुसार 2/3 x 6/4 = $\overset{2}{3}\times\overset{6}{4}$ $\frac{2 \times 6}{3 \times 4} = 1$
32. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र, पृ. 307
33. शामशास्त्री का अनुवाद, पृ. 206
34. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र पृ. 22
35. गणितसार संग्रह, अध्याय–3, गाथा–8
36. Bulletin of Mathematical Society, Calcutta, Vol.-21, Page-132-133
37. सूर्यप्रज्ञप्ति, नियम–20
38. B. B. Dutt : The Jain School of Mathematic-B. C. M. S.-21 (1929)
39. थीबो–'शुल्बसूत्र'
40. गणितपद, श्लोक–32–33
41. त्रिशतिका, श्लोक–26
42. धवला पुस्तक 3, गाथा–24–32
43. गणितसार संग्रह, अध्याय–3, गाथा–55–56
44. वही, गाथा – 113
45. गणितकार संग्रह, अध्याय–3, गाथा–113
46. वही, अध्याय–3, गाथा–126
47. वही, अध्याय–3, गाथा–99
48. गणितसार संग्रह, अध्याय–3, गाथा–138
49. वही, अध्याय–3, गाथा–138

16

अनेकांत से ही लोक कल्याण

'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्तं सत'

मोतीलाल जैन *(सागर)*

किसी भी वस्तु पदार्थ अथवा द्रव्य के रूप, रस, गंध व वर्ण के सन्दर्भ में विभिन्न तरह से विचारना ही अनेकांत वाद है। अनेकांत–वाद कहे या अनेकांत–दर्शन, इससे कोई अंतर नहीं आता है। वस्तु के समग्र आकार और समस्त गुण–धर्मों आदि को विस्तार से जानने और समझने के लिये, उस वस्तु के गुण–धर्मों आदि का भिन्न–भिन्न प्रकार से विचार करना ही जैन–दर्शन की पद्धति है। पूरी तरह सभी प्रकार से विचार किए बिना किसी भी पदार्थ के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन रहता है।

हम जल को ही लें। कुएँ का जल गरमी में ठंडा मालूम होता है, वही जल ठंड में ऊबा हुआ लगता है। आग पर रख देने से वही जल खौलने लगता है। शीतल जलसे प्यास शांत हो जाती है और खौलते जल से फफोले पड़ जाते हैं। आग पर ठंडा जल डाला जाये अथवा खौलता हुआ भी डाल दिया जावे तो दोनों दशाओं में आग बुझ जावेगी। अब विचार किए बिना जिसने जल की जो अवस्था देखी हो, उसे मात्र उसी रूप सिद्धांत में निश्चय कर लेना ही तो एकांत–वाद कहा जाएगा। इस तरह एकान्तवाद में हठ होता है और अपने ही अधूरे अनुभव को पूर्ण मानने का असत्य आग्रह होता है। असत्यता और हठ–धर्मिता ये दोनों एकान्त–दर्शन की देन हैं।

प्रत्येक द्रव्य वस्तु अथवा पदार्थ में जो बदलाव होते रहते हैं, टूटन होती रहती है, बिखराव होता रहता है और उसके आकार बदलते रहते हैं, तथा रंग रूप गंध एवं स्वाद में बदलाव होता रहता है, सो उन सब होने वाले परिवर्तनों के कारणों और शक्तियों पर विचार करना और फिर निर्णय करना इसे ही अनेकांत–दर्शन कहा गया है। इस तरह पूरी वस्तु के निर्णय करने में भ्रम शेष नहीं रह पाते हैं और निर्णय सत्य रूप से हो जाता है। अन्य दूसरों द्वारा बताए गए अनुभवों पर भी हमें शांति से सोचने विचारने में मदद मिलती है। हमारी अनेकों कठिनाईयाँ इस तरह सहज ही हल हो जाती हैं और हम नई–नई बातों को सोचते रहने के योग्य बने रहते हैं। हमारा चित्त, मन और बुद्धि सहज बने रहते हैं।

स्वयं की अनुभूत बात को पूरी की पूरी लिखना अथवा कहना साधारण काम नहीं है।

दार्शनिकों और आचार्यों ने स्वयं अनुभूत बातों को लिख देने के उपरांत भी यह बता दिया कि तत्त्वों एवं द्रव्यों–पदार्थों आदि में अनेक गुणधर्मों का होना पाया जाता है और उन सब गुण–धर्मों को शब्दों द्वारा पूरा का पूरा बताना असंभव ही है। उनमें से कुछ एक को ही कहा जा सका है। गुणों एवं धर्मों को समझने के लिए उदाहरण देना आवश्यक होता है। परन्तु उद्धरित वस्तु के किसी एक गुण या विशेष धर्म को ग्रहण करके भी वस्तु का कुछ अंश ही समझाया जा सकता है। पूरी बात जानने और समझने के लिये अधिक सोचने, विचारने, मनन करने और शोधन करने का प्रयत्न करना होगा।

छोटे शिशु को लोग बहुधा ''तत्ता'' है ऐसा कहकर समझा देते हैं, और शिशु ''तत्ता'' शब्द का भावार्थ भी समझ लेता है। वस्तु को छूने से जल जायेंगे–चिक जाएंगे–कष्ट होगा आदि–आदि बात शिशु समझ जाता है। गरम दूध से जिसका मुँह जल जाता है, वह छांछ यानी लस्सी भी फूंक–फूंक कर पीता है। धोखा खाया हुआ और ठगा गया आदमी आगे विचार पूर्वक काम करने लग जाता है। यह सब सोच विचार और चिन्तन का ही नतीजा है।

लौकिक ज्ञान और भाषा आदि की शिक्षा ग्रहण करना और उसमें योग्यता प्राप्त कर लेना अलग बात है। भौतिक पदार्थों में घालमेल करना और उससे नए नए प्रभाव खोजना यह भौतिक विज्ञान का कार्य है। पदार्थों और द्रव्यों में अनन्त शक्ति रहती है और अनन्त धर्म द्रव्य में परिवर्तित हो सकते हैं इस बात को जैन आचार्यों ने जाना। आज का भौतिक विज्ञान तो उस जानकारी का अंश ही जान पाया है। अणु, परमाणु पुदगल द्रव्यों और जीव द्रव्य की अनन्त शक्तियों को पूर्वाचार्यों ने जान लिया था और समझाने का प्रयास भी किया। प्रकृति के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ के दुष्परिणामों से भी अवगत करा दिया गया था। आगम ग्रंथों में प्रकृति के अनुकूल जीवन निर्वाह करने का उपदेश दिया गया है। वेद, पुराण और शास्त्र भी प्राकृतिक जीवन जीने का ही मार्ग प्रशस्त करते हैं और अप्राकृतिक तरीकों का निषेध करते हैं।

मनुष्य ने अपना आहार–बिहार और व्यवहार आज दूषित कर लिया है और प्रकृति में प्रदूषण हो रहा है। इस सबसे आने वाले समय में हमारी सन्तानें और उनकी संताने एवं वायुमंडल के सभी प्राणी एवं जीव–जंतु घोर कष्ट पाऐंगे। परन्तु आज का अहंकारी मनुष्य अपने थोड़े से स्वार्थ एवं सुविधा के लिये यह सब करने को तत्पर हो गया है। स्वार्थवश इस तरह तो विनाश को निमंत्रण दिया जा रहा है। यह पोषण नहीं शोषण हो रहा है। यह दर्शन नहीं कुदर्शन है। इसी को राक्षसी वृत्ति कहा गया है। जल, वायु, मिट्टी, वनस्पति आदि में मिलावट और संकरण कर के सभी पदार्थों को दूषित करने का एक ऐसा घिनौना कृत्य आजका अहंकारी और लोभी मनुष्य करने पर आमादा हो गया है, जिसके परिणाम स्वरूप इस पृथ्वी पर प्रलय होना अवश्यंभावी हो गया है।

विपदाऐं और आपदाऐं कोई ईश्वरीय शक्ति का कार्य नहीं है। यह तो प्रकृति के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ का दुष्परिणाम है। भौतिक विज्ञान ने जहाँ हमें आराम देह वस्तुऐं प्रदान की हैं वहीं भयंकर खतरे भी खड़े कर दिये हैं। भूकम्प, ज्वालामुखी, भूस्खलन, बवंडर, तूफान, दावानल, बड़वानल, भयंकर गर्मी, भयंकर सर्दी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आकाशीय विद्युत शक्ति का अनियंत्रित हो जाना आदि ऐसे विनाशकारी कार्य हैं जिनसे कुछ ही समय में महाविनाश हो सकता है, इस सब गड़बड़ घोटाले के लिये मनुष्य के द्वारा प्रकति के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ ही मुख्य कारण है। इस प्रकार मनुष्य इन सब प्राकृतिक आपदाओं और विनाश के लिये उत्तरदायी है। यह सामूहिक उत्तरदायित्व है और पूरी मनुष्य जाति इसके दोषारोपण से बच नहीं पायेगी।

जिस प्रकार एक दार्शनिक और विचारक अपने चिन्तन से लाखों करोड़ों लोगों को सुखी जीवन जीने के योग्य वातावरण निर्मित कर देता है, उसी प्रकार एक अहंकारी लोभी और महत्वाकांक्षी कठोर हृदय का मनुष्य लाखों

करोडों लोगों के दुखी होने, कष्ट भोगने और महा विनाश का कारण बन जाता है। प्रकृति के एक छोटे से अणु की शक्ति का परिचय आज का मानव भली प्रकार जान गया है। फिर भी नहीं चेत रहा है।

वेद, पुराण, गीता, कुरान, बाइबिल, गुरूग्रंथ साहिब आदि सभी जातियों और सम्प्रदायों के शिक्षाशास्त्र एक ही बात पुकार–पुकार कर कह रहे हैं कि प्रकृति के अनुकूल सादा जीवन निर्वाह करो। किसी को दुखी मत करो। व्यर्थ संग्रह मत करो। अधिकार की भावना छोड़ो। जो सहज उपलब्ध है, उसी में स्वयं निर्वाह करते हुए, अन्य दूसरों का उपकार करते रहो। शांति से जियो और अन्य दूसरों को जीने की सुविधा देने में सहायता करो। श्रमण बनो और श्रम को ही मूल्यवान मानो। श्रमिक का शोषण मत करो। मुफ्त का अथवा बेईमानी का खाने से प्रमाद, अहंकार और लोभ ही बढ़ेगा। सात्विक विचार के लिये सात्त्विक भोजन आवश्यक है। अन्न और जल का प्रभाव सभी जीवों की वृत्ति पर होता है। अपने विचारों को चिन्तन मनन के द्वारा परिष्कृत करते रहने से ही जीवन में सुख और आनंद मिलेगा।

अन्य दूसरे प्राणियों को सुखी करने की कामना करने वाला मनुष्य सदैव अपने कार्यों द्वारा भी तदनुसार काम करता है और उसी में प्रसन्न रहता है। उत्साहपूर्वक और उल्लास से परिपूर्ण होकर जो काम मन से – वचन से और शरीर से किये जाते हैं उन कृत्यों द्वारा करने वाला भी सुखी होता है और समाज भी सुखी होता है। पशु–पक्षी और कीड़े–मकोड़े तक आनंदमय होकर विचरते रहते हैं। क्रोधित और उत्तेजित हुए बिना तो सांप, बिच्छू और ततैया भी नहीं सताते हैं। शेर जैसा खूंखार पशु भी आनन्द में मौज में पड़ा रहता है। भूख प्यास आदि की पीड़ा शांत हो जाने पर कोई किसी को नहीं सताता है। सिर्फ मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो भूख प्यास के अतिरिक्त अधिकार और संग्रह की लालसा में सदैव दुखी होता है और अन्य दूसरों का शोषण कर उन्हें दुखी करता रहता है। धर्म के नाम पर अपनी लोभ वृत्ति का पोषण मनुष्य ही कर सकता है। यही बात स्तात्वाद द्वारा अनेकों प्रकार से विचारकों, आचार्यों और दार्शनिकों ने समय–समय पर समझाई है और स्वयं उस मार्ग पर चलकर समाज को मार्ग दिखाया है। मनुष्य अपने मन में नाना प्रकार से विकल्प कर करके व्यर्थ ही क्लेश भोगता रहता है और मनुष्य जन्म व्यर्थ कर लेता है। मनुष्य जन्म ही एक ऐसी सुंदर और अनुपम पर्याय है जिसमें रहते हुए जीवात्मा अधिक उद्यमी होकर विशेष कार्य कर सकता है। परन्तु कठोर हृदय अहंकारी और लोभी मनुष्य अपना पूरा जीवन पशुवत व्यतीत कर लेता है। मात्र संग्रह करते रहना, आराम के नाम पर प्रमादी रहकर नशे आदि में मूर्छित रहना, संक्लेशित परिणाम करके कठोर रहना अथवा क्रोधादि करके फुफारें छोड़ते रहना और दूसरों को दुखी करने की योजनाएँ बनाते रहना या फिर विनाश करने के उपाय सोचना, यह सब क्या है? क्या इस सबके लिये मनुष्य जन्म मिला है? इन सब बातों पर विचार करने वाला ही संत पुरूष कहा जायेगा। भक्त कहा जायेगा और दार्शनिक कहलायेगा।

भारतवर्ष के साथ–साथ अन्य देशों में भी दार्शनिकों ने विश्व में पाये जाने वाले पदार्थों वस्तुओं प्राणियों और वनस्पतियों आदि पर विस्तृत विचार किया है और आज भी ऐसा चिन्तन हो रहा है। यह चिन्तन, मनन और सोच विचार की क्रिया मनुष्य की बुद्धि में होना स्वाभाविक है। सोच विचार का दायरा एक छोटी सीमा के भीतर भी होता है और उससे बाहर निकलकर अनन्त आकाश में भी व्यापक हो जाता है। चिन्तन (जानना–समझना) स्थूल भी होता है और उत्सुकता होने से सूक्ष्म से सूक्ष्मतम तक भी होता है। पदार्थों में होने वाले परिणमन–संकरण–पर्यावरण–प्रदूषण आदि का भी स्थूल रूप से अथवा सूक्ष्म रूप से अध्ययन मनुष्य ही करता है। एक पदार्थ का विस्फोट अन्य पदार्थों की पर्यायों में क्या–क्या विकृतियाँ कर सकता है इसका विचार और प्रयोग भी मनुष्य ही करता है।

दार्शनिक सदैव सर्व के उपकार और कल्याण के लिए ही सोचना विचारता रहता है। अनेकों दार्शनिक एक ही साथ एक ही क्षेत्र में रहकर अपना–अपना चिन्तन स्वतंत्र रूप से करते रहते हैं। उनमें कभी वैमनस्यता अथवा विरोध नहीं होता है। दार्शनिक अपने विचार किसी पर थोपता नहीं है और न ही आसक्त होकर उनका प्रचार करता है। दार्शनिक पक्षपात रहित होता है इसलिये अपना पक्ष प्रबल करने की उसकी इच्छा ही नहीं होती है। अन्य दूसरों का विरोध करने का भाव ही समाप्त हो जाता है।

बैरभाव, युद्ध और झगड़े करना–कराना यह दार्शनिक का कृत्य नहीं होता है। ये कार्य तो राज्य–धन–मान–सत्ता आदि के लोभी, अपनी महत्वाकांक्षाओं के विस्तार के लिये करते व कराते रहते हैं। इसीलिए आज धर्म और दर्शन जैसे परम पावन नाम का दुरूपयोग हो रहा है। आसक्त–मानी–लोभी और महत्वाकांक्षी लोगों ने शब्दों के अनेक अर्थों का ऐसा प्रयोग किया जिससे उनकी इच्छानुसार अर्थ प्रकाशित होने लगे। इससे जनमानस एक पक्ष से ही चिपटकर रह गया और अन्य दूसरे पक्षों से द्वेष करने लगा। फिर शास्त्रार्थ किए गए और विसंवाद बढ़ने लगा। अपने–अपने पक्ष को सबल करने के लिये तर्क कुतर्क होने लगे, फिर लाठियों, तलवारों, बंदूकों व बमों का सहारा लिया जाने लगा। भय, आतंक, लूट, बलात्कार, अपहरण आदि भी होने लगे।

भला सोचें–विचारें, चिन्तन–मनन करें और ध्यान दें कि प्रभु, ईश्वर, भगवान राम, कृष्ण, दुर्गा अथवा गुरूनानक और यीशु व अल्लाह तथा खुदा के नाम पर क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और तिरस्कार करना तथा अन्य दूसरों पर जुल्म कनरा तथा भयभीत करना और शोषण करना कहाँ तक न्याय संगत है? फिर क्रूरतापूर्वक हत्या करना–कराना तो घोर अपराध ही कहा जायेगा। धर्म के नाम पर और दर्शन के नाम पर ऐसा सोचना भी अपराध ही माना जायेगा। दर्शन तो आत्मा का शुद्ध, सहज, सरल, निर्मल स्वभाव है– अनन्त करूणा का सतत प्रवाह है– सदानन्द रूप है– अनन्त उल्लास से परिपूर्ण है और विशुद्ध ज्ञान मय है। स्व–पर को प्रकाशमान करने वाला है।

आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व ईसा मसीह को, उनके कठोर हृदय प्रतिद्वंदियों ने क्रूस पर लटका कर उनके प्राण ले लिए। फिर भी यीशु ने यही प्रार्थना की कि 'हे परम पिता परमेश्वर इन हीन बुद्धि वालों को क्षमा करना।' यीशु ने प्राण हरण करने वालों को अपना दुश्मन नहीं माना और न ही उन पर क्रोध अथवा द्वेष किया। स्वयं उत्तम क्षमा धारण की और परमपिता परमेश्वर से भी उनको क्षमा कर देने का अनुरोध किया यह यीशु का दर्शन है– चिन्तन है– सोच है– विचारधारा है।

पैगम्बर मुहम्मद साहब ने भी भूख प्यास सहकर अपरिग्रह व्रत साधा। किसी भी प्रकार के विनाश में उनका विश्वास नहीं था। सादा जीवन, उच्च विचार का संदेश जन–मानस को दिया। स्वेच्छापूर्वक जीवन–त्याग भी अपरिग्रह का उत्कृष्ट उदाहरण है।

कष्ट देने वालों और जान लेने वालों पर भी इतनी करूणा और उनके कल्याण की कामना। धन्य है यह सोच– यह विचार–यह श्रद्धा और निश्चय–यह आस्था–यह उसूल–यह नियम–यह रूल–यह निष्ठा और चरित्र। यही तप है– संयम है– निर्जरा है। यही तो विकारी भावों का शमन करना है और यही तो मुक्ति का सहज उपाय है। यही मोक्ष मार्ग है। यही आत्म हित है– अनंत करूणा का स्त्रोत है। यही सत्य का दर्शन है। आत्म–दर्शन है।

''ब्रह्मसूत्र'' की टीका करने वाले सुप्रसिद्ध पंडित वाचस्पति थे। वाचस्पति के द्वारा रचित टीका ''भामती'' के माध्यम से ही ब्रह्मसूत्र का आशय मनःस्थ होता है। टीकाकार अपनी टीका लिखने में इतने डूबे रहे कि

युवावस्था पार कर प्रौढ़ावस्था भी पार करने तक पहुँच गए। तब तक उन्हें अपनी परिणीता धर्मपत्नी के सान्निध्य का बोध ही न रहा। टीका पूर्ण होने पर उस सेविका से जब वार्तालाप किया तब यह भाव हुआ कि यह मेरी विवाहिता पत्नी है। उन्हें अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह न कर सकने का थोड़ा खेद भी हुआ होगा, परन्तु अपने इष्ट कार्य की सिद्धि का जो आनन्द उन्हें संतोष दे रहा था, वह इस सहज विस्मृति से धन्य हो गया। संस्कृत भाषा के इस महान विद्वान 'वाचस्पति' ने अपनी इस टीका का नाम ही अपनी पत्नि के नाम पर 'भामती' रख दिया। इस प्रकार के दार्शनिक और विचारक सदैव पूजनीय रहेंगे।

'सुकरात'भी महान विचारक हुए। सुकरात का अन्तस कितना करूणामय था इसका इतना ही उदाहरण पर्याप्त है कि सीने पर उठे फोड़े में जो कीड़े पड़ गये थे वे बाहर निकल पड़ें। तो सुकरातने यह कहते हुए उन कीड़ों को पुनः पके फोड़े के मुँह में रखने लगे कि इनकी खुराक यही है।

दार्शनिक तो स्वयं आचरण कर अपने चिन्तन की सत्यता को अनुभूत करता है। इससे समाज का कल्याण स्वयमेव हो जाता है। जहां घृणा–द्वेष–तिरस्कार रूप भाव ही समाप्त हो जाते हैं वहाँ सुख–साता–आनन्द–उत्साह–उल्लास अपने आप प्रगट हो जाता है।

परन्तु कालान्तर में ऐसे दार्शनिकों और साधु सन्तों के अनुयायी कहे जाने वाले पूजक, अपना अहंकार पोषण करने और भद्रता की आड़ में दूसरों का शोषण करने के नाना उपाय सोचने लग जाते हैं और तदनुसार नए–नए लेखों और प्रवचनों में शब्दों और शब्दार्थों को तोड़ते मरोड़ते रहते हैं। अपनी इच्छा के अनुकूल अर्थ करने लग जाते हैं। इसमें दोष उन महान दार्शनिकों का नहीं, वरन् हम जैसे एकांतवादी और अहंकारी, महत्वाकांक्षी लोगों का है। जाति, कुल, सम्प्रदाय मत और रूढ़ियों के बंधन को साहस कर तोड़ने वाला ही दार्शनिक बन पाता है। परंतु समाज ऐसे लोगों का आजीवन अनादर ही करती है।

समाज ने सदैव समाज में चलने वाली मान्यताओं और परम्परागत रूढ़ियों के पोषण कर्ता और प्रसार करने वालों को ही गले लगाया है और मान्य किया है। भले ही उससे अन्य समाज के साथ घृणा, द्वेष और वैमनस्यता बढ़ती रही हो। एक वर्ग विशेष अन्य दूसरे वर्ग के साथ क्यों टकराता है–घृणा करता है–द्वेष करता है और अपने रीति रिवाजों की तुलना में अन्य दूसरे के रीति रिवाजों को हीन समझता है। इसका कारण अपने स्वयं की समाज के पक्ष से अति राग, आसक्ति और आक्रोश ही है।

जब तक हम निष्पक्ष भाव से अन्य दृष्टिकोणों से वस्तु संबंध और पदार्थों के परस्पर व्यवहार का चिन्तन मनन नहीं करेंगें तब तक हम सहिष्णु नहीं हो सकते हैं। परस्पर व्यवहार और वस्तु के स्वरूप का सभी प्रकार से चिन्तन करने और जानने समझने की भावना दृढ़ होना ही एक दार्शनिक का प्रगट होना है। अंतरंग में– चित्त में– हृदय की गहराई में– बुद्धि और विवेक में सहजता हो जाना और हर संभव बात को जानने समझने लगना यही विद्वत्ता है। अपने ही समान सबको सुखी रहने की चाहना करने वाला और तदनुसार उद्यम करने वाला ही दार्शनिक होता है। स्याद्वाद और अनेकांत इसी स्वतंत्र चिन्तन का नाम है।

जब आज हम एक बात पर ध्यान देते हैं कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में आकर अपना राज्य कायम किया तो सन् 1400 से लेकर 1800 तक लगभग चार सौ साल तक हिन्दुओं, जैनों आदि पर बहुत अत्याचार किए और बलात जाति परिवर्तन कराया। इसका अर्थ यह तो नहीं हो जायेगा कि मुहम्मद साब का सोच और उनका दर्शन बलात अपनी बात मनवाने का अभिप्राय लिये हुए था। दार्शनिक कभी भी अपनी बात मनवाने की कामना नहीं करता है, न ही जबरन उपदेश करता है, न ही अपने अनुयायी बनाता है। दार्शनिक तो घर गृहस्थी से

बेखबर और शरीर के शौक से भी बेखबर रहकर प्राणि मात्र की भलाई के लिये ही सोचता है और तदनुसार उपाय भी करता रहता है। फिर भी मौन रहता है और अन्य दूसरों के ताने भी सुनता है, और गालियाँ खाता है। कभी–कभी तो घोर कष्ट झेलने पड़ जाते हैं और शहादत यानी बलिदान भी देना पड़ता है।

लड़ना–झगड़ना–मारना–कष्ट देना और बलात अपनी बात मनवाना, जाति परिवर्तन कराना आदि हिंसक और क्लेशयुक्त काम जाति सम्प्रदाय और राज्य के नेताओं का है। प्रचार प्रसार की महत्वाकांक्षा और जय पराजय की उत्तेजना तथा प्रदेश विजय की ललक ही राजाओं और नेताओं को हिंसा भड़काने को आसक्त करती रहती है। इसी प्रकार अहंकारी विद्वानों और पंडितों तथा मुल्ला मौलवियों और पादरियों ने भी धर्म प्रसार की आड़ में खुलकर हिंसा भड़काई है। आज भी सारा विश्व जातीय झगड़ों में उलझ कर फड़फड़ा रहा है। विश्व की सभी जातियाँ और कौमें आज अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये चिन्तित हो रही हैं। सारे धर्म बिलख रहे हैं और आतंकवादी और अत्याचारी उन्माद में पागल होकर अट्टास कर रहे हैं या फिर कुटिल मुस्कराहट के साथ दूसरों को मसलने और चूसने को लालायित हो रहे हैं। लूटना, बलात्कार करना, धोखा देना, बेवकूफ बनाना, भयभीत कर शोषण करना, अत्याचार अनाचार करना, रोटी या काम के बदले मसलना चूसना आदि सब हिंसक कार्य हैं। अंतरंग कठोर होता है तभी ये सब काम हो पाते हैं। ये सब कार्य धर्म नहीं कराता है और न ही दार्शनिक इन कामों में सहयोगी होता है। दार्शनिक तो सदैव से बलि चढ़ता आया है। व्यर्थ किसी को दोष देना या बदनाम करना यह स्याद्वादी अनेकांतवादी दार्शनिक का चिन्तन नहीं हो सकता।

आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व से ही महावीर, बुद्ध, ईसामसीह तथा पैगम्बर मुहम्मद जैसे महान दार्शनिकों और भगवान कहलाने योगविभूतियों का इस धरा पर अवतरण हुआ। भिन्न भिन्न क्षेत्रों में उनके अनुयायी बने और इस प्रकार उनका प्रसार प्रचार हुआ। कभी किसी दार्शनिक ने अपने विरोधी पर क्रोध नहीं किया, और न ही उससे युद्ध किया। और तो और इन दार्शनिकों ने कष्ट देने और प्राण लेने वालों तक के कल्याण की प्रभु से कामना की और क्षमा भाव धारण कर कष्टों को सहा। इसीलिए ये पूज्य बने। सभी दार्शनिक स्याद्वादी रहे और अनेकांत में ही उन्होंने सभी पदार्थों का दर्शन किया, तभी वे सर्वोदयी बने। करोड़ों लोगों की भावनाओं को धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सके।

सभी प्रकार से सभी के विचारों और सभी के व्यवहारों पर सहानुभूति पूर्वक चिन्तन करने वाला ही अंत में सत्य बात का निश्चय कर पाता है। यदि शुरू के सोच में ही सत्य का आग्रह हो तो फिर इतने कष्ट झेलने और एकांत में रहकर चिन्तन मनन करने की उन्होंने क्यों आवश्यकता महसूस की? इस बात पर अनुयायियों को अवश्य सोचना चाहिए। अनुयायियों का अपरिपक्व सोच और अपनी बात को ही मान्यता देने का आग्रह ही एकांतवाद है। एकांतवाद का सत्य अपूर्ण रहता है और उस अपूर्ण को पूर्ण मानने का दुराग्रह ही कठोरता क्रोध और हिंसा को बढ़ाता है। अनेकांतवाद सभी की बात को सहनशील और सहिष्णु होकर विचारने की योग्यता प्रदान करता है। समन्वय करना सिखाता है। सभी के साथ मैत्रीभाव से रहने की प्रेरणा देता है। सभी को अपने अपने ढंग से सोचने विचारने को अवकाश देता है।

इस स्यात्वाद की कठिन तपस्या करने वालों को ही जैन दर्शन में–जैन सिद्धांत में–जैन धर्म में संत–साधु–आचार्य आदि नाम दिया गया है। कहा भी है :

स्यात्वाद की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
वे ही साधु–ज्ञानी जगत के दुःख समूह को हरते हैं॥

17

जैन विद्याओं में रसायन : तब और अब

डॉ. श्री नंदलाल जैन *(जैन सेन्टर, रीवा, म.प्र.)*

गोम्मटसार, जीव कांड, गाथा 334[1] के अनुसार केवली द्वारा ज्ञात पदार्थ या विषय अनंतानंत होते हैं। इनका अनंतवां भाग ही वचन गोचर होता है और उसका अनंतवां भाग श्रुत निबद्ध होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसका अर्थ यह है कि हमारे शास्त्रों में सर्वज्ञों की वाणी का अनंतानंतवां भाग अर्थात 1/अनंत[2] ही उपलब्ध है। इस गणितीय व्यंजक का मान लगभग शून्य है। वैज्ञानिक दृष्टि से हमारे वर्तमान शास्त्र तीर्थंकर वाणी नहीं, गणधर वाणी या आचार्यवाणी हैं और उनमें सर्वज्ञ के वचनों का शून्य–सम भाग ही निरूपित है। साथ ही हमारे शास्त्रों में कुछ श्रुत केवली आचार्यों को छोड़ अन्य उत्तरवर्ती आचार्यों को उत्कृष्ट ज्ञान का धारक एवं तपोबली ही माना गया है, सर्वज्ञ नहीं। वे अल्पज्ञ आप्त थे। उनके वर्णनों को स्थिरतथ्यी के बदले ऐतिहासिकतः तथ्यी मानना चाहिए। अन्य विद्वानों ने इस मान्यता का समर्थन किया है। फलतः सिद्धसेन के अनुसार, आध्यात्मिक विषयों में आगम को तथा भौतिक विषयों में तर्क बुद्धि और वैज्ञानिकता व परिमाणात्मकता के आधार पर परीक्षित करना चाहिए। हम यहाँ आध्यात्मिक वर्णनों पर विचार नहीं करेंगे, क्योंकि वे अभी वैज्ञानिक अन्वेषणों के विषय नहीं बने हैं, यद्यपि दो अतीन्द्रिय ज्ञानों की उत्पत्ति पर वैज्ञानिकों के प्रयोग सफल होते दिख रहे हैं तथा सामान्य जन भी उनके अधिकारी बनते दिखते हैं। फलतः हम यहां केवल भौतिक जगत–विशेषतः रसायन संबंधी वर्णनों पर गुणात्मकता के साथ परिणात्मकतः विवेचित करेंगे। अनेक जैन साधु और वैज्ञानिक विद्वान् इस प्रक्रिया में संलग्न हैं। उनका उद्देश्य प्रवाहशील ज्ञान का अतीत, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी, गुणात्मक होते हुए भी श्रेष्ट सिद्ध करना प्रतीत होता है, परिश्रम, यंत्र तथा प्रतिभा साध्य वर्तमान ज्ञान को परोक्षतः अपूर्ण कहना ही प्रतीत होता है। यह सही है कि वर्तमान विज्ञान के अनेक परिणामों का मूल हमारे शास्त्रों में है, पर इन्हें क्रियाविधि पूर्वक विस्तारित करने का श्रेय तो विज्ञान को देना ही चाहिए।

दो प्रवृत्तियाँ

इस दृष्टि से वर्तमान में दो प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं : (1) अतीतवादी और (2) वर्तमानवादी। अतीतवादी वर्तमान को भी अतीत में कल्पित करते हैं और कामना करते वे अतीत में ही आ जावें। वे अतीत ज्ञान की व्याख्या भी वर्तमान तक ले जाते हैं। वे

श्रद्धापूर्वक ज्ञान के आराधक हैं। वे ''तमेव सच्चं निःसंकं यं जिर्णेहि पवेइयं'' के आराधक हैं। उन्हें शास्त्रों में पाए जाने वाले अनेक विसंवादी, विरोधी तथा युगानुसार परिवर्धित तत्त्वों के दर्शन के प्रति निरपेक्ष भाव हैं। यहाँ हम कुछ उदाहरण दे रहे हैं :

(1) एक विद्वान कुंदकुंद के ग्रंथों में 20वीं सदी में अन्वेषित रेडियोएक्टिवता के दर्शन करते हैं।

(2) एक अन्य विद्वान ''स्निग्ध–रुक्षत्वात् बंधः'' के एक वचनी सूत्र का बहुवचनी अर्थ लगाकर रासायनिक बंध की तीन प्रकार की संयोजकता सिद्ध कर पुरस्कार पाते हैं।

(3) एक नवीन विद्वान् सर्वज्ञ के लोक का असंख्य, अनंत आदि के रूप में वर्णन गुणात्मक मानते हैं। उसका शास्त्रीय वर्णन आचार्य वाणी है, उसकी प्रामाणिकता पर ही प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं। यही नही, उनकी मान्यता है कि योजन का मान 8 या 2000 मील के बदले 'प्रकाशवर्ष' के बराबर होना चाहिए और आकाशगंगा को जैनो का जंबूद्वीप मानना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ हम रहते हैं, उसके विषय में सर्वज्ञ या आचार्यों ने मौन साधा।

(4) जैनो में 10वीं सदी तक के आचार्यों में अपने चिंतनों और विचारों में युगानुरूपता दिखाई है। उसके अनेक उदाहरण जैन ने अपनी पुस्तक में दिए हैं। नेमिचंद्र शास्त्री के अनुसार, यह युग परंपरापोषकों का है, अतः हम युगानुकूल के बदले स्थितिस्थापकताः को ही वरीयता दे रहे हैं। हमारे शास्त्रो ने वर्तमान परमाणु को अविभागी अणु माना है। विज्ञान जगत में इसके अनेक घटक पाये गये हैं। पर हम वैज्ञानिकतः विभाजित परमाणु को अणु कहकर अपनी वैज्ञानिकता को ही नकार रहे हैं। यह मनोवृत्ति न केवल वैज्ञानिक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है, अपितु धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी दिखती है। हमारे पंचकल्याणक, जल यात्रा, पूजा–विधान आदि के कर्म काण्ड अतीत के ही गुण गाते हैं एवं, सम्भवतः वर्तमान संसार को दुःखमय मानकर उससे जूझने के लिए मनोवैज्ञानिक सांत्वना पाते हैं।

आतीतवादियों के विपर्यास में वर्तमानवादी अनुयायी नगण्य हैं और अपने विचार स्वतंत्रता के पुरुषार्थ ही जीवित है। इस कोटि के विद्वान ज्ञान को नदी के समान प्रवाहशील मानते हैं और उसके क्षितिजों में समय–समय पर नये चिंतन जोडते रहते हैं। अतः शास्त्र वर्णित अतीत ज्ञान के स्तर की परीक्षा कर उसे वर्तमानयुगीन ज्ञान विकास की धारा को ऐतिहासिकतः संबंधित कर अपने पुराज्ञान की प्रतिष्ठा को तुलनात्मकतः स्थापित करते है और उसे संवर्धित करते हैं। वे भौतिक जगत के ज्ञान को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की जैन धारणा के अनुसार विकासशील मानते हैं। ये विद्वान भी शास्त्रों को आचार्यवाणी ही मानते हैं। पर उसे आधुनिक दृष्टि से, पूर्वाग्रह या परंपराग्रह से निरपेक्ष रहकर परीक्षणीय होने पर ही प्रामाणिकता के पक्ष में हैं। वे पत्र वाक्य की परंपरा के व्यवहारिक पक्ष में है। इनका मत है कि श्रद्धापूर्वक सम्यज्ञान की तुलना में सम्यज्ञान पूर्वक श्रद्धा अधिक बलवती होती है। इसीलिए प्राचीन आगमों में ज्ञान, दर्शन, चारित्र का क्रम दिया गया है।

भौतिक विश्व और रसायन

वाल्डेमार केंफर्ट ने बताया है कि विश्व के समस्त वैज्ञानिकों में लगभग दो तिहाई प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रसायनज्ञ हैं। इससे रसायन की महत्ता और व्यापकता का अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुतः यह भौतिक एवं मूर्त्त और सशरीर विश्व रसायन विज्ञान के मूल मौलिक कणों और उनके समूहों के विविध संयोग, वियोग, विगलन, संगलन तथा सामान्य–विशेष क्रिया–प्रतिक्रियाओं का भण्डार है। प्रारम्भ में यह आहार एवं औषध के रूप में वर्णित था, पर अब यह 12 प्रकार के भौतिक एवं भावात्मक रूपों में रस या आनंद देता है। शास्त्रों में

रस परिणाम शब्द भी आता है जिससे पदार्थो में भौतिक या रासायनिक परिवर्तन की स्वाभाविकता या प्रयोगात्मकतः प्रकट होती है। प्रारम्भिक युगों में शास्त्रों में भौतिक परिवर्तन की ही प्रमुखता थी, उत्तरवर्ती काल में रासायनिक परिवर्तनों के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। आज के असंख्य कोटि और संख्या के परिवर्तन की तुलना में यह संख्या अपूर्ण ही है।

यह तो पता नहीं, सर्वजीववादी जैनों ने अजीव द्रव्य – विशेषकर, पुद्गल द्रव्य की मान्यता कब से स्वीकार की है, पर शास्त्रों में शस्त्रोपहति से निर्जीवकरण की चर्चा अवश्य है। पुद्गल शब्द से वर्तमान में अनंत अजीव एवं मूर्त द्रव्य तथा सशरीरी जीव का अर्थ लिया जाता है जिसका एक लक्षण रस भी है। फलतः रस शब्द के अर्थ में विस्तार हुआ हैं और अब पुद्गल परिणामों की अनेक शाखाएं हो गयी हैंः (1) औषध, विष एवं वाजीकरण (2) जीव रसायन (3) कार्बनिक और खाद्य (4) अकार्बनिक रसायन एवं (5) कृषि आदि। इनके कारण इसके विषयों की संख्या अगणित हो गई है जिनमें न्यूक्लीय रसायन भी एक है। जैन शास्त्रों में केवल कुछ ही शाखाओं का वर्णन बिखरे रूप में पाया जाता है जिनके माध्यम से जैन आचार्यों ने अनेक धार्मिक सिद्धांतों पर प्रकाश डाला है। फलतः हम रसायन विज्ञान को पुद्गलायन भी कह सकते हैं।

आगमोत्तर काल में रसायन विद्या

आगमोत्तर काल के अनेक आचार्यों के ग्रंथो में रसायन के अन्तर्गत निम्न विषय पाए जाते हैं :

(1) द्रव्यवाद (2) परमाणुवाद (3) स्कन्धबाद या अणुवाद (4) भौतिक व रासायनिक क्रियाएं और (5) कर्मवाद।

हम इन पर ही यहाँ किंचित् चर्चा करेंगे।

(1) द्रव्यवाद

हमारा जीवन दो क्षेत्रो में कार्यरत हैं : (1) भौतिक एवं (2) आध्यात्मिक। दोनो ही क्षेत्रों की अपनी विविध और, संभवतः मूलभूत धारणाएं हैं। जैनों के अनुसार विश्व के दो भेद हैं, (1) लोक और (2) अलोक। शास्त्रों में इसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक परिभाषा की गई है। भौतिक दृष्टि से (1) जहां तक जीवादि द्रव्य पाए जावें, (2) जहां 6 द्रव्य पाए जावें और (3) जहाँ जन्म, जरा और मरण होता हो, वह लोक है। आध्यात्मिक दृष्टि से। (1) जहाँ पाप पुण्य का फल देखा जाता है, (2) जहाँ द्रव्यों और पदार्थो को देखने वाला हो, (3) जहाँ स्व–रूप का दृष्टा हो और (4) जो सर्वज्ञ दृष्ट हो वह लोक है। आध्यात्मिक अर्थ तो मुख्यतः आत्मा ही है, पर यहाँ भौतिक अर्थ ही अपेक्षित है। इस दृष्टि से द्रव्य शब्द महत्त्वपूर्ण है।

द्रव्य शब्द की व्युत्पत्तिपरक एवं गुणपरक परिभाषाएँ पाई जाती हैं।

1. व्युत्पत्तिपरक द्रव्य वह है जो कच्ची लकड़ी के समान विभिन्न आकार प्रकार धारण करे–

2. गुणपरक परिभाषा में द्रव्य वह हैः

(अ) जो अस्तित्ववान् हो या जिसकी सत्ता हो

(ब) जो उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य गुणों का आधार हो।

(स) जो गुण और पर्याय युक्त हो

(द) जो 8 सामान्य ओर 16 विशेष गुण वाला हो।

(र) जिसमें 11 सहज स्वभाव तथा 10 विशिष्ट स्वभाव पाए जाते हों। (आलाप पद्धति)

(ल) जो सामान्य–विशेषात्मक हो।

(व) जिसमें स्थिरता और गतिशीलता पाई जाती हो।

जैनों के लोक में छः भौतिक और सात या नौ आध्यात्मिक तत्त्व माने जाते हैं। भौतिक जगत के तत्त्वों में जीव

(आत्मा?), धर्म (गति माध्यम), अधर्म (स्थिति माध्यम), आकाश (अवगाहन माध्यम) तथा काल (परिवर्तन माध्यम) को अमूर्त माना है। इसके विपर्यास में, छठे पुद्गल द्रव्य को मूर्त माना है। इसके अन्तर्गत सशरीरी जीव भी समाहित होता है। यही द्रव्य रसायन से सर्व रूप से संबंधित है।

पुद्गल द्रव्य और परमाणुवाद

पुद्गल का अर्थ ऐसा मूर्त द्रव्य है जिसमें पूरण, गलन, संगलन एवं विदलन के गुण पाए जाते हैं। इसके मुख्यतः दो भेद माने गये हैं:

(1) अणु (परमाणु?) जो सूक्ष्मतम एवं अविभागी आदि गुणों से युक्त होता है। यह पुद्गल के चार भेदों – स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश व परमाणु–में से एक है।

(2) स्कन्ध (भौतिक या रासायनिक) जो परमाणुओं के समुच्चय या विच्छेदन से उत्पन्न होता है।

अकलंक आदि आचार्यों से परमाणु को अणु कहा है, पर उत्तरवर्ती व्याख्याकारो त्रिलोक प्रज्ञप्ति आदि ने इसे परमाणु ही बताया है क्योंकि अन्य दर्शनों में परमाणु शब्द का ही उपयोग है। इसलिए व्यावहारिकता के लिए प्रत्यक्ष के दो भेद एवं परमाणु के दो भेदो के समान अणु के बदले परमाणु शब्द का भी उपयोग होने लगा। यही नहीं, वैज्ञानिक परमाणु के अनेक घटको में विभाजन के बाद तथा वैज्ञानिकों द्वारा परमाणु की अविभागिता के कारण परमाणु बंधो से उत्पन्न समस्या के कारण पहली–दूसरी सदी में ही अनुयोगद्वार में ही इसके दो भेद किये: (1) निश्चय परमाणु और (2) व्यवहार परमाणु। ये भेद वैज्ञानिक एवोगाड्रो की संकल्पना के अनुरूप अनेक समस्याओं का समाधान करते हैं। ये परमाणु के अन्य भेदों से भिन्न हैं। अनेक विद्वानों ने वैज्ञानिक परमाणु के निरन्तर वर्धमान सूक्ष्मतर अवयवों में से किसी एक नवीनतम अवयव के समकक्ष (क्वार्क तक) माना, पर अब इसे चरम परमाणु कहा जाने लगा है जो अविभाज्य ही रहेगा। इससे व्यवहार परमाणु (अणु?) वर्तमान परमाणु के समकक्ष विभाज्य परमाणु बन गया। इस प्रकार, हम देखते हैं कि 5–8 वीं सदी का शास्त्रीय कणमय परमाणु अब चरम परमाणु, तरंकणी और पूर्णतः अविभागी बन गया है। हमारा रासायनिक व्यवहार अब मात्र अणुओं या व्यवहार परमाणुओं से रहता है। परमाणु के अनेक गुण पुद्गल के गुणों में ही समाहित होते हैं। विभिन्न शास्त्रों में परमाणुओं से संबंधित चार प्रकार के गुणों का उल्लेख है।

गतिशीलता

परमाणु की स्वाभाविक या प्रयोगज गतिशीलता नियत और अनियत भी होती है। इसकी न्यूनतम गति आकाश के एक प्रदेश मात्र प्रति समय है जबकि इसकी उच्चतम गति 10^{27}–10^{47} सेमी. प्रति समय है। शास्त्रों में सामान्य या लौकिक गति का विवरण नहीं है। यह गति सामान्य या विशेष परिस्थितियों में बंधनकारी भी होती है। इस आधार पर सात प्रकार की गति के उल्लेख हैं। ऐसा माना जाता है कि परमाणु की गति में उसका स्निग्धत्व कारण है। वैज्ञानिक जगत अपने परमाणुओं की सामान्य गति 10^{4}–10^{5} सेमी./प्रति से. मानता है। इस विषय में शास्त्रीय विवरण खोजना चाहिए। लोकान्त पर इनमें गति नहीं होती क्योंकि वहाँ गति माध्यम नहीं होता और रुक्षता बढ़ जाती है।

अविनाशिता

चरम परमाणु की अविनाशिता प्रायः सभी दर्शनों ने मानी है। यह 15वीं सदी के लोमनसोफ के द्रव्यमान की अविनाशिकता के सिद्धांत से समर्थित होती है। पर जब से आइंस्टीन ने सूक्ष्म कणों एवं ऊर्जाओं को परस्पर परिवर्तनीय माना, तब से उपरोक्त वैज्ञानिक सिद्धांत को द्रव्यमान और ऊर्जा की अविनाशिता के रूप में

परिवर्तित कर दिया गया। इसका अर्थ नये परमाणु का उत्पाद और विद्यमान परमाणु का अनुत्पाद ही है अर्थात् परमाणु की प्राकृतिक संख्या स्थिर रहती है। तथापि जैन दर्शन का मत है कि परमाणु द्रव्यत्व की दृष्टि से अविनाशी है तथा पर्याय की दृष्टि से परिणमनशील है।

बंधन–गुण : बंधन सिद्धांत

परमाणुओं के विभिन्न प्रकारों में परस्पर बंधन गुण पाया जाता है। इसी आधार पर स्कन्ध आदि बनते हैं। इसका कारण इनमें स्निग्धता – रुक्षता के विरोधी गुणों की उपस्थिति है। यद्यपि कुंदकुंद और उमास्वामी ने इनको स्थूल रूप में ही लिया है, श्वेतांबर आगमों में इस एक विशिष्ट चिपकावक के रूप में बताया है, पर पांचवी सदी के पूज्यपाद ने इन गुणो को धनावेशी और ऋणावेशी रूप दिया जो आज की वैज्ञानिक मान्यता है। शास्त्रों में इस बंधन के सामान्य और परिवर्धित रूप गये हैं:

1. परमाणुओं में बंधन विरोधी स्निग्ध और रुक्ष गुणों के कारण होता है। ये गुण गुणात्मक और परिमाणात्मक– दोनों ही हो सकते हैं। यहाँ केवल विरोधी गुणो का बंध ही अपेक्षित है। वर्तमान में यह विद्युत–संयोजी माना जाता है।

2. निम्नतर (0 या 1) कोटि की वैद्युत प्रकृति (चाहे कोई भी हो) के परमाणुओ में बंध नहीं होता। (लेकिन यदि वैद्युत प्रकृति भिन्न हो तो बंध संभव है, जैसे अक्रिय गैस बंध)

3. यदि परमाणुओं में वैद्युत गुण समान हों, तो उनमें विशेष परिस्थितियों में ही बंध होता है। यदि विरोधी गुण समान हों, तो भी बंध संभव है (हाइड्रोजन अणु)। पूर्वाचार्यों की तुलना में अमृतचंद्र के तत्वार्थसार की व्याख्या के अनुसार यह नियम यहाँ सकारात्मक रूप में दिया है। इसके पूर्व के आचार्य संबंधित सूत्र का अर्थ नकारात्मक ही मानते थे। इससे अनेक प्रकार की समस्याएं अव्याख्यात रही होंगी। आज भी जैन इलेक्ट्रोज– इलेक्ट्रन या पोजिट्रान–पोजिट्रान आदि के बंध की व्याख्या नहीं कर सकते क्योंकि इसमें समान वैद्युत प्रकृति के साथ पर्याप्त ऊर्जा की भी आवश्यकता होती है। वर्तमान में यह बंध सहसंयोजी माना जा सकता है।

4. जिन परमाणु में समान या असमान वैद्युत गुण परस्पर में दो या दो से अधिक होते हैं, उनमें बंध होता है। यहाँ भी संबंधित सूत्र की व्याख्या में मतभेद है। ऐसा प्रतीत होता है कि वाचक उमास्वाति की व्याख्या आज की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। इस बंध को उप–सह–संयोजी बंध माना जा सकता है। पं. फूलचन्द्र शास्त्री ने बताया है कि षट्खण्डागम की बंध व्याख्या पूर्ववर्ती दिगंबर आचार्यों से अधिक व्यावहारिक है और श्वेताम्बरी व्याख्या तो हमें 20वीं सदी तक ले आती है।

5. बंध के फलस्वरूप उत्पन्न उत्पादों की प्रकृति अधिक वाले परमाणु के अनुरूप होती है। (अब यह भिन्न कोटि की भी पाई गई है)

उपरोक्त बंध नियमों के अनुसार बंधन की सात स्थितियां हो सकती हैं जिनमें दिगंबर केवल दो स्थितियों में ही बंध मानते हैं, जबकि श्वेताम्बर चार स्थितियों में और विज्ञान तो सात ही स्थितियों में बंध मानता है। इस संबंध में शास्त्री, जवेरी और जैन ने सारणी दी है।

परमाणु बंध के कारक

सामान्यतः शास्त्रों में बंध कैसे होता है, के विषय में बताया है कि यह प्रतिघात से ही सम्भव है। यह शिथिल– भौतिक और गाढ–रासायनिक हो सकता है। इसके लिये वैद्युत प्रकृति के अतिरिक्त (1) बंधनीय परमाणुओं का आंशिक या पूर्ण पारस्परिक सम्पर्क (2) सहज या प्रेरित प्रचण्ड गति (3) शक्तिशाली संघट्टन, (4) धात्वीय पात्र (उत्प्रेरक?) (5) ऊर्जा या ताप की उपस्थिति (6) सूर्य किरणें (7) सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति

आदि प्रमुख कारक हैं। इनके कारण अनेक भौतिक (बादल आदि), रासायनिक (दही एवं घी का निर्माण आदि) तथा भौतिक–रासायनिक क्रियाएं होती हैं। ये कारक प्रायः वही हैं जो आज के वैज्ञानिक बताते हैं, पर अब इनमें दाब, विद्युतधारा, तीव्र गतिशील सूक्ष्म कणों की बौछार, विभिन्न कृत्रिम ऊर्जाएँ आदि भी कारक के रूप में जुड गये हैं। यद्यपि परमाणु एक स्वतंत्र इकाई है, पर ये व्यवहार परमाणु के रूप में ही अधिकांश प्रकृति में पाए जाते हैं। अतः परमाणुओं के बंधन की प्रक्रिया व्यवहार परमाणुओं के सक्रियकरण से प्राप्त घटक परमाणु में विभेदन के बाद ही माननी चाहिए।

परमाणुओं के भेद–प्रभेद

ग्रीक विद्वान विभिन्न परमाणुओं के आकार–विस्तार भिन्न–भिन्न मानते थे। वे उनमें केवल स्पर्शगुण ही मानते थे। इसके विपर्यास में, जैन सभी परमाणुओं को एकसमान, भारहीन एवं एकप्रदेशी ही मानते हैं। वे उनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श और संस्थान के गुण भी मानते हैं। इस आधार पर उन्होंने इनके 20/25 गुणों में से चरम परमाणु में पांच गुण माने हैं और परमाणु के अनेक कोटि के प्रकार बताए हैं।

(1) सूक्ष्म और स्थूल

(2) कार्य परमाणु (स्कंध विभाजन), कारण परमाणु (स्कंध उत्पत्ति)

(3) द्रव्य परमाणु, भाव परमाणु

(4) द्विस्पर्शी, चतुस्पर्शी, अष्टस्पर्शी

(5) कार्य परमाणु, कारण परमाणु, जघन्य परमाणु उत्कृष्ट परमाणु

(6) द्रव्य परमाणु, क्षेत्र परमाणु, काल परमाणु, भाव परमाणु

(7) रूप, रस, गंध, स्पर्श के दृश्य भौतिक गुणों की संख्या के आधार पर, 5x2x5x8=200 प्रकार के परमाणु

(8) उपरोक्त गुणों की तीव्रता की तरतमता के आधार पर संख्यात और अनंत परमाणु।

वर्तमान में मापनीय भौतिक गुणों (द्रव्यमान, भार) के आधार पर वैज्ञानिकों ने प्रायः 109 प्रकार के परमाणुओं की खोज की है। जैनों के अनुसार, ये सभी व्यवहार परमाणु या अणु हैं। हमें यह सोचना होगा कि दृश्य गुणों पर आधारित वर्गीकरण, मापनीय गुणों पर आधारित वर्गीकरण से कितना प्रामाणिक है।

सामान्यतः आदर्श परमाणु द्विस्पर्शी एवं भारहीन होते हैं, पर व्यावहार परमाणु तो दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ये अनंत परमाणुओं के पिण्ड होते हैं। द्विस्पर्शी या चतुस्पर्शी परमाणु ऊर्जारूप, अग्राह्य एवं अदृश्य होते हैं। इन्हें केवल विशिष्ट अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवली ही देख सकते हैं। इनके कार्यों से ही इन्हें पहचाना जा सकता है। इनके अनेक गुणों का वर्णन अनेक लेखकों ने दिया है, अतः पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है। इन गुणों और भेदो के विपर्यास में, आधुनिक विज्ञान प्रत्येक तत्त्व के परमाणु में भार एवं घनत्व मानता है और उसकी स्वतंत्र अणुक अवस्था (अपवादों को छोड़कर) को पारस्परिक बंध का कारण मानता है।

स्कंधवाद (परमाणु–समुच्चय वाद)

पुद्गल द्रव्य का हमारे लिए उपयोगी रूप स्कंध ही है जो परमाणुओं, व्यवहार परमाणुओं के दृश्य या अदृश्य समुच्चय से उत्पन्न होता है। यह दो प्रकार का होता है। (1) भौतिक – जिसके अवयव शीघ्र अपघटित या विलगित किये जा सकते हैं और (2) रासायनिक, जो स्थाई होता है और जिसका अपघटन कठोर परिस्थितियों में ही होता है। ये सूक्ष्म और स्थूल, इन्द्रियग्राह्य और अनेक प्रदेशी भी होते हैं। इनमें परमाणु के समान ही

रूपरसादि के 20 गुण होते हैं। इनकी संख्या अनंत है और ये अगणित रूप में पाए जाते हैं। महास्कंध जैसे स्कंध में परमाणु संख्या अनंतानंत तक हो सकती है। भगवती सूत्र में रूपादिगुणवाले विभिन्न संख्या के परमाणुओं के समुच्चय से उत्पन्न स्कंधों की संख्या दी है, पर यह वास्तविक के बदले बौद्धिक अधिक लगती है। इसीलिए स्थानांग में सभी प्रकार के परमाणु समुच्चयों के अनंत रूप बताए हैं। इन स्कंधो में परमाणु प्रायः गतिशील रहते हैं। ये परमाणुओं के कार्य हैं। अनेक विद्वान पहले इनको अणु कहते थे, पर अणु तो रासायनिक होता है, पर स्कंध भौतिक भी हो सकता है। अतः अब स्कंध को परमाणु समुच्चय कहना उचित होगा।

ये स्कंध (1) बडे स्कंधों के विभेदन से (2) परमाणुओं के संयोजन या सहभाजन से तथा (3) विभेदन–संयोजन की प्रक्रिया से प्राप्त होते हैं। ये विधियां वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं, पर वे इनमें एकल व द्विकल विस्थापन की विधि और जोड़ते हैं। विभेदन की प्रक्रिया रेडियोएक्टिवता तथा आयनीकरण (इन प्रक्रमों का उल्लेख शास्त्रों में नहीं है) के समान आंतरिक भी हो सकती है, साथ ही परमाणु बंध के पूर्व वर्णित अन्य कारको से भी हो सकती है।

स्कंधो के भेद

स्कंध पुद्गल का एक बहुप्रदेशी रूप है, अतः इसके भेदों के आधार पर स्कंध के भी अनेक प्रकार से भेद किये जा सकते हैं। सामान्यतः पुद्गल अनेक प्रकार का माना गया है।

दो प्रकारः स्थूल और सूक्ष्म, इन्द्रिय–ग्राह्य और इन्द्रिय अग्राह्य, द्विक परमाणु, कर्म या 4–8 स्पर्शी। यह वर्गीकरण सामान्य ज्ञान की दृष्टि से है।

तीन प्रकारः आंतरिक, बाह्य एवं मिश्र कारकों से परिणामी।

चार प्रकार : (अ) स्थूल, सूक्ष्म, स्थूल–सूक्ष्म, सूक्ष्म–स्थूलः (ब) पूर्वोक्त स्कंध आदि चार।

छः प्रकार (कुंदकुंद) (1) अतिस्थूल (ठोस पदार्थ) (2) स्थूल (तरल या द्रव) (3) स्थूल–सूक्ष्म (चक्षुइन्द्रिय ग्राह्य, ऊर्जाएँ) (4) सूक्ष्म–स्थूल (चक्षुभिन्न अन्य इंद्रिय ग्राह्य, शब्द, रूप आदि : (5) सूक्ष्म (कर्म वर्गणा, कर्म स्कंध, इन्द्रिय अग्राह्य : (6) सूक्ष्म–सूक्ष्म (व्यवहार परमाणु, द्वि–अमुक, कार्मोन, आदि)

यह वर्गीकरण चक्षु इन्द्रिय आधारित स्थूल–सूक्ष्मता पर आधारित है। यहाँ एक विसंगति तो स्पष्ट ही है कि गैसों की तुलना में ऊर्जाएँ सूक्ष्मतर हैं, अतः उन्हें चौथे क्रम पर होना चाहिए। जी.आर. जैन के अनुसार, स्कंधों का यह वर्गीकरण पर्याप्त वैज्ञानिक है। चूंकि व्यवहार परमाणु का विस्तार, त्रिलोक प्रज्ञप्ति के अनुसार लगभग 10^{-11} सेमी. और भीखण जी के अनुसार अंगुल का असंख्यातवां भाग या 10^{-20} सेमी. बैठता है जो वैज्ञानिक परमाणु के विस्तार के समकक्ष या सूक्ष्मतर है। यहाँ अनंतानंत की उपेक्षा की है और असंख्यात को महासंख से अधिक माना गया है। पर नेमीचन्द्र आचार्य ने यहाँ शंका में डाल दिया कि ये भेद पुद्गल के हैं, मात्र स्कंध के नहीं,अतः उन्होंने परमाणु भी जोड़ दिया। क्या यहाँ 'परे प्रमाणे' लगेगा? यदि ये पुद्गल के भेद हैं तो नेमिचन्द्राचार्य सही हैं।

तेइस प्रकारः अनेक ग्रंथों में स्कंधो या पुद्गल के 23 प्रकारी वर्गणा–भेद किये गये हैं। समानजातीय पुद्गल समूह, वस्तु समुदाय या परमाणु समूह को वर्गणा कहते हैं। ये स्थूल भौतिक पदार्थो के उपादान कारण होते हैं। इनमें आचार्य कनकनंदी के अनुसार, परमाणु समूह मात्र समुच्चय के रूप में रहता है, बंध के रूप में नहीं। पर यह भी तो भौतिक या शिथिल बंध कहलायेगा। समुच्चय को एक–स्थानी बनाए रखने में समुच्चित परमाणुओं की कुछ ऊर्जा काम आती ही होगी। अतः वर्गणाओं को शिथिल समुच्चय या भौतिक स्कंध मानना चाहिए।

वर्गणा होने से इनमें स्कंध और पुद्गल के सभी गुण पाए जाते हैं। हाँ, महास्कंध को छोड़कर सभी वर्गणाएँ चतुष्पर्शी रूप में उत्पन्न होती हैं।

वर्गणाओं के नाम अणु से प्रारम्भ होकर महा स्कंध तक जाते हैं अर्थात् यह वर्गीकरण सूक्ष्मतम से स्थूलतम की ओर जाता है। इसमें चार प्रकार की वर्गणाए हैं: (1) सामान्य वर्गणा, 10, (2) अग्राह्य वर्गणा 5, (3–4) ध्रुव और ध्रुव शून्य वर्गणा, 4। इनमें जीवों के उपयोग में आनेवाली वर्गणाएं कुल आठ हैं: आहार, तैजस, भाषा, मन, कार्मण, प्रत्येक शरीर, बादल निगोद तथा सूक्ष्म निगोद। इसमें अणुवर्गणा भी जोड़नी चाहिए। आहार वर्गणा में श्वेताम्बर मान्य, औदारिक, वैक्रियक और आहारक और आन–प्राण वर्गणाएं समाहित की गई हैं।

जैनों को डेल रीप ने वर्गीकरण विशारद माना है। यह वर्गीकरण उनके मत का समर्थन करता है, अन्यथा पाँच अग्राह्य वर्गणाएँ, 4 अणु वर्गणाए तथा 4 ध्रुव/ध्रुव शून्य वर्गणाएँ न भी होती, तो काम चल जाता। इसीलिए विशेषावश्यकभाष (सातवी सदी) में औदारिक आदि आठ वर्गणाओं का ही मुख्यतः उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे पुद्गल के अजीव होने के कारण यहाँ प्रत्येक शरीर, बादल निवोद एवं सूक्ष्म निवोद को सम्मिलित नहीं किया गया। आचार्य नेमिचन्द्र ने भी इस सूची को देखकर आहार वर्गणा में उपरोक्त चार वर्गणाओं का समाहार कर दिया। भाष्य की सूची का आधार क्या है, यह स्पष्ट नही है। क्या इसका यह अर्थ है कि परमाणु की संख्या की वृद्धि से निविडता के कारण सूक्ष्मता आती है। इसी प्रकार, कर्म वर्गणा और सूक्ष्म निगोद वर्गणा की भी स्थिति है। क्या परमाणु समूहों की अल्पता से सदैव अवगहना बढ़ती है? क्या इसे "स्वभावोऽतर्क गोचराः" से समीचीन रूप से व्याख्यायति किया जा सकता है? इसी प्रकार क्या एकप्रदेशी परमाणुओं के मात्र एकाकी होने से उन्हें वर्गणा की कोटि में रखा जा सकता है? हाँ, यदि वर्गणा गणितीय वर्ग को निरूपित करती है, तो $1^2 = 1$ के अनुसार ये वर्गणा में समाहित हो सकते हैं। इस वर्गीकरण की अन्य अपूर्णताओं पर अन्यत्र विचार किया गया है।

पुद्गल के पाँच सौ तीस भेद[22] : प्रज्ञापना में पुद्गल के स्पर्श आदि गुणों के प्राधान्यऔर गौण्य की अपेक्षा 530 भेद बताए हैं। इनमें (1) रंग की प्रधानता से 5 x 20 = 100, (2) स्पर्श की प्रधानता से 8 x 23 = 184, (3) रस की प्रधानता से 5 x 20 =100 (4) गंध की प्रधानता से 2 x 223 = 446 और (5) संस्थान की प्रधानता से 5 x 20 = 100 भेद समाहित होते हैं। इस वर्गीकरण को हम बौद्धिक व्यायाम ही कह सकते हैं।

पुद्गल स्कंध के गुण

पुद्गल को रूपी या मूर्तिमान् के रूप में कहा है और राजवार्तिक 5.5 के अनुसार रूप शब्द से पुद्गल के पाँच गुण प्रकट होते हैं। इनके भेद प्रभेदों का संक्षेपण सारणी एक में वर्तमान वैज्ञानिक मान्यताओं के साथ दिया गया है।

सारणी 1 : पुदगल के गुण[23]

गुण	भेद	वैज्ञानिकतः भेद
स्पर्श	8/10	20
रस	5	4
गंध	2	9
वण	5	7+2
संस्थान	5,7,11	7,33

स्पर्श गुणों में उष्मीय (शीत, उष्म), पृष्ठतलीय (मृदु, कर्कश), भारात्मक (गुरु, लघु) और स्वाभाविक (स्निग्ध, रूक्ष) के चार युग्म समाहित होते हैं। इन और अन्य गुणों का वर्णन अनेक लेखकों ने किया हैं, लेकिन सारणी 1 से स्पष्ट है कि हम वर्तमान वैज्ञानिक मान्यताओं की तुलना में किस स्तर पर हैं? विज्ञान ने तो रूप–रसादि की अनुभूति की क्रियाविधि एवं माप तक प्रस्तुत किये हैं जो हमारे शास्त्रों में अनुपलब्ध हैं।

प्रमुख स्कंधों के विवरण

परमाणु को धातु–चतुष्क (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) का कारण माना गया है। अतः ये स्कंध हैं और इनका वर्णन पुद्गल–स्कंधों के रूप में किया जा सकता है। वस्तुतः ये निर्जीव परमाणुओं से उत्पन्न होते है, अतः इन्हें निर्जीव मानना चाहिए। अजीव से अजीव कैसे उत्पन्न हो सकता है? जीवों की कोशिकीय रचना के जटिल रासायनिक संगठन की तुलना में इन पदार्थो का संगठन अल्प–अणुकी भी होता है। तथापि जैनों ने इन्हें सजीव माना है और शस्त्रोपहति से इनकी अजीवता बताई है। इनकी सजीवता संभवतः आधाराधेय भाव से संबंधित है, क्योंकि इनके आश्रय में अनेक जीवों का जीवन चलता है। उक्त स्कंधों का शास्त्रोक्त संक्षेपण सारणी 2 में दिया है।

सारणी 2 : धातु चतुष्को का विवरण

धातु नाम	संख्या	प्रकृति	उदाहरण
1. पृथ्वी	30–48	ठोस	धातु, रासायनिक यौगिक, मणि, मिट्टी पत्थर आदि
2. जल	7–19	द्रव	अनेक स्रोत के जल, मद्य, दूध आदि
3. तैजस	6–12	ऊर्जा	ताप, प्रकाश, विद्युत और अग्नि के प्राकृतिक रूप
4. वायु	7–19	गैस	विभिन्न प्राकृतिक हवाएँ, श्वासोच्छ्वास

इस संक्षेपण से अनेक तथ्य प्रकट होते हैं:

(1) विभिन्न शास्त्रो में इन स्कंधों के भेदों की संख्या मे अंतर पाया जाता है। इन अंतरों के कारण उन्हें भौतिक विवरण के संबंध में 'जिणेहि पवेइयं' मानने में किंचित् आशंका होती है।

(2) पृथ्वी आदि स्कंधों में वर्णित पदार्थों की संख्या मात्र प्राकृतिकतः उपलब्धता व्यक्त करती है। इस संश्लेषित युग एवं रसायन–विज्ञान विकास के युग में सभी प्रकार के स्कंधों की संख्या में अकल्पनीय वृद्धि हुई है। फलतः इन विवरणों की ऐतिहासिकता: ही प्रामाणिकता मानी जा सकती है।

(3) दिगम्बर ग्रंथों की तुलना में श्वेतांबर ग्रंथों के विवरण अधिक विस्तृत हैं।

पुद्गल और स्कंधों के विविध परिणाम

शास्त्रों में पुद्गल स्कंधों के सामान्यतः उपलब्ध विविध परिणाम या पर्याय बताए हैं। उत्तराध्ययन (उ.) 28 एवं तत्त्वार्थ सूत्र (त.) 5.23–24 ठाणम् (ठा) लोक प्रकाश के विवरणों का संक्षेपण करने पर इन परिणामों की सारणी 3 प्राप्त होती है।

सारणी 3 : पुद्गल स्कंधो के परिणाम

1. शब्द	उ.,ठ.,त.	13. अंधकार	त., उ.
2. बंध	ठा., त.	14. उद्योत	त.,उ.
3. भेद/विभाग	ठा.,त.,उ.	15. छाया	त.,उ.
4.संस्थान	ठा.,त.उ.	16. आतप	त.,उ.
5.–8. रूपादि 4	उ.,ठा.,त.	17. प्रभा	उ.

9. गति	ठा.	18. सूक्ष्मत्व	त.
10. अगुरूलघुत्व	ठा.	19. स्थूलत्व	त.
11–12 एकत्व–प्रथकृत्व	उ.	20. संयोग	उ.
		21. संख्या	उ.

इससे प्रकट होता है कि यदि रूपादि चार परिणामों को लक्षण के रूप में माना जाय, तो पुद्गल स्कंधों के 17 परिणाम प्राप्त होते हैं। यहाँ भी हम देखते हैं कि विभिन्न स्रोतों में भिन्न–भिन्न नाम तथा संख्या है। ऐसे व्यावहारिक प्रकरणों का समेकीकरण होना चाहिए। इनका शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विशद वर्णन अनेक लेखकों ने किया है। इससे इन विषयों पर वैज्ञानिक प्रगति की जानकारी मिलती है। उदाहरणार्थ, पुद्गलों के गति–परिणाम को ही लें। अकलंक ने 10 प्रकार की गति क्रिया बताई है जिसमें प्रक्षेपण, संघट्टन, गुरुत्व, अविरत गति, लघु गति एवं संयोग गति आदि समाहित हैं। ये सभी स्थानांतरण गतियाँ हैं। भगवती में कंपन, अंतःप्रवेशन एवं परिणमन गति भी बताई है। परिस्पंद और परिणाम शब्द स्थानांतर और कंपन गति के निरूपक हैं। इन गतियों के अतिरिक्त, विज्ञान ने चक्रण एवं घूर्णन गतियों का भी उल्लेख किया है जो विभिन्न परमाणविक एवं रासायनिक क्रियाओं के सम्पन्न होने में महत्त्वपूर्णभाग लेती हैं। इन दोनों ही गतियों के नाम शास्त्रों में प्रायः नहीं हैं।

हमारे जीवन में ये दोनों ही घटक बड़े उपकारी हैं। वे हमारे शरीर, वचन, मन, इन्द्रियों एवं श्वासोच्छ्वासों के जनक हैं। ये सुख, दुःख, जीवन एवं मरण में भी सहायक हैं। कर्म भी पौद्गलिक होते है, अतः जीव–कर्म के बंधन एवं वियोजन में भी ये हमारे उपकारी हैं। वस्तुतः हमारा सांसारिक जीवन इनके बिना नहीं चल सकता जैसा सारणी 1,2,3 से प्रकट होता है।

वैज्ञानिक अन्वेषणों का उपयोग

प्रायः जैन वैज्ञानिक यह मानते हैं कि जैनों का वैज्ञानिक विवरण मुख्यतः गुणात्मक है। परमाणु घटकों के अन्वेषण, क्वांटम सिद्धांत, सापेक्षता तथा विद्युत एवं विद्युत–चुंबकीय क्षेत्र का ज्ञान एवं सूक्ष्म कणों की तरंगणी व्याख्या ने हमें अपने सिद्धांतों को सूक्ष्मता से विवेचित करने की प्रेरणा दी है। इस प्रगति के पूर्व हम अपने स्थूल एवं सूक्ष्म वर्णनों से संतुष्ट थे। अब व्यावहार परमाणु में अनेक घटक अन्वेषित हुए हैं जिनके नाम हमारे शास्त्रों में नहीं हैं, पर अब यह माना जाता है कि हमारा आदर्श परमाणु अन्वेषित नवीन कणों से सूक्ष्मतर है। विज्ञान अभी तक अष्टस्पर्शी पुद्गलों तक ही पहुँचा है, चतुष्पर्शी तक नहीं। सामान्य या व्यवहार परमाणु द्वि–स्पर्शी हैं, अतः उसे भारहीन माना जाता है। भारहीन कण में भार कैसे सम्भव है, इसके लिये एक विद्वान ने मृदु और कठोर स्पर्श की परिभाषा को आकर्षण और विकर्षण के रूप में परिवर्तित करने का सुझाव दिया है। महेन्द्र मुनि का मत है कि जब चतुष्पर्शी पुद्गल अष्टस्पर्शी पुद्गल में परिणत होते है, तब द्रव्यमान सहज ही उत्पन्न होता है। वैज्ञानिक परिमाण के सभी घटक अष्टस्पर्शी पुद्गल में परिणत होता है, तब द्रव्यमान सहज ही उत्पन्न होता है। वैज्ञानिक परिमाण के सभी घटक अष्टस्पर्शी है, फलतः इनके साथ–साथ रहने में विभिन्न बल काम करते हैं। इन बलों का प्रत्यक्ष उल्लेख हमारे शास्त्रों में नहीं हैं, पर हम अपनी कुछ मान्यताओं को इसके अनुरूप मान सकते हैं। इसी प्रकार कर्म कणों की सूक्ष्मता को देखते हुए हमें वैज्ञानिक सूक्ष्म कणों में कार्मोन कण जोड़ना चाहिए और कार्यकारी मूलभूत चार बलों में कर्म बल भी जोड़ना चाहिए जहाँ आत्मा और कार्मोन कणों के बीच कषाय रूपी बोसोन (सरेस के समान) काम करते माने जा सकते हैं। मरडिया ने इन कषाय कणों को पेशियानों और ए–पेशियानो की

संज्ञा दी है। इसी प्रकार धर्म और अधर्म द्रव्यो के गतिशील एवं स्थिर बल के रूप में मान्यता दी जाए सकती है।

न्यूटन युग के बाद और आइंस्टीन युग के पूर्व पदार्थ और ऊर्जा भिन्न प्रकृति के माने जाते थे। इसके बाद परमाणु के घटक अवयवों के अन्वेषण तथा आइंस्टीन के द्रव्यमान–ऊर्जा विनिमय के सिद्धांत ने जैनों की वैज्ञानिकता को आधुनिकता प्रदान की। वे अपने परमाणु की अविभागिता पर अड़े रहे और उन्होंने विज्ञान की खोजों को व्यवहार परमाणु के रूप में माना एवं उसे विद्युत–चुंबकीय तरंकणी, भारहीन चतुष्पर्शी माना तथा द्रव्यमान की उत्पत्ति को चतुष्पर्शी से अष्टस्पर्शी में परिणमन का परिणाम माना। परमाणु के अतिरिक्त, परमाणु–समूह की वर्गणायें भी इसी कोटि में व्याख्यायित की जा रही हैं और हम व्यावहारिक स्थूलता से सूक्ष्मतर कोटि में जा रहे हैं। हमने आहार, भाषा, तैजस शरीर आदि को विद्युत–चुंबकीय तरंग मूलक माना है पर इनके स्थूल रूप एवं वर्णन पर मौन रखा है। क्या हमें सूक्ष्म जगत में ही रहना है? वस्तुतः जैनों का विज्ञान सूक्ष्म कोटि में कितना ही गुणात्मकतः वैज्ञानिक क्यों न माना जाये, उनके स्थूल जगत के विवरण और अधिक व्याख्या और विचार चाहते हैं। सामान्य जन तो स्थूल जगत के आधार पर ही सूक्ष्म जगत की विश्वसनीयता मानेगा। हमे रसायन के स्थूल जगत पर ही वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

भौतिक और रासायनिक क्रियायें

हमारे स्थूल जगत के अनेक उपयोगी या विनाशक परिवर्तन स्थूल पदार्थों के स्वयं या अन्य पदार्थों के साथ होने वाली भौतिक या रासायनिक क्रियाओं से होते हैं। इनमें परमाणु, भौतिक स्कंध या रासायनिक यौगिक मुख्यतः भाग लेते हैं और अनेक पूर्ववर्णित कारक इन प्रक्रियाओं में सहयोगी होते हैं। वर्तमान में इनके निम्न उदाहरण दिये जा सकते हैं:

1. परमाणु क्रियाः यूरेनियम^{230} $\xrightarrow{\text{शक्तिशाली कणों की बौछार}}$ नेक्यूनियम^{239}
2. रासायनिक क्रियाः शक्कर $\xrightarrow[\text{मध्य}]{\text{किण्व}}$
   आहार पाचनः शक्कर + वायु ⟶ कार्बनडाईआक्साइड + जल + ऊर्जा
3. भौतिक क्रिया : बालू + लौह चूर्ण ⟶ बालू–लौह चूर्ण मिश्रण

इस प्रकार की क्रियाओं के उदाहरण शास्त्रों में संकेत एवं सूत्र रूप में नहीं मिलते और कुछ उदाहरण मिलते भी हैं, तो उनमें पदार्थ के उत्पाद में परिणत होने की क्रियाविधि का विवरण नहीं रहता। वर्तमान विज्ञान में इस मध्यम चरण को जानने का भी अभ्यास किया गया है। जैन[25] ने शास्त्रों में प्राप्त 29 अवलोकनों का संकलन किया है, जिनमें 18 भौतिक क्रियाएं (अवस्था परिवर्तन, प्रशीतन, द्रवण आदि), 8 रासायनिक क्रियाएं (घड़े बनाना, बत्ती का जलना, कृषि उत्पाद, धातुकर्म और किण्वन आदि) और तीन अपरिभाषित क्रियाएं (जीव–कर्म बंध आदि) हैं। पारमाणविक या न्यूक्लियर क्रियाओं का उल्लेख तो नहीं ही है। स्पष्ट है कि शास्त्रों में भौतिक परिवर्तनों के उदाहरण अधिक हैं, ये अस्थायी और सरलता से अपघटित किये जा सकते हैं। रासायनिक क्रियाओं में प्रायः अविघटनीय स्थायी उत्पाद बनते हैं, कुछ उष्मा निकलती है या कुछ देनी पड़ती है। परमाणविक या न्यूक्लीय क्रियाएं यंत्र साध्य एवं कष्ट साध्य हैं। उनमें परमाणु के रूपांतरण (विभंजन या संगलन) के साथ पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त होती है जिसका उपयोग बिजली आदि के उत्पादन में होता हैं। परमाणु की सूक्ष्मता और अनंत शक्ति की मान्यता वाले जैनों ने इस ओर ध्यान क्यों नहीं दिया, यह आश्चर्य है।

कर्मवाद

कर्मवाद जैनों का पर्याप्त विकसित उत्परिवर्तनी कार्यकारणवाद का सिद्धांत है। कर्म सूक्ष्म परमाणुओं (जीनों से भी सूक्ष्मतर, कार्मोन कणों) के समूह हैं जो कर्म वर्गणा का रूप ग्रहणकर सशरीरी मूर्त जीव से संबंधित होकर इसे भव–भ्रमण कराते हैं। ये कर्मवर्गणायें भौतिक और भावात्मक प्रकृति की होती हैं जो हमारी मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्तियों के अन्योन्य प्रभाव को व्यक्त करती हैं। शास्त्रों में इनकी वैद्युत (और अब विद्युत–चुंबकीय क्षेत्रीय तरंकणी) प्रकृति का उल्लेख है। फलतः कर्म और जीव परस्पर में अपनी विरोधी वैद्युत प्रकृति के कारण एकक्षेत्रावग्राही एवं अन्योन्यानुप्रवेशी बंध बनाते हैं। भौतिक एवं भावात्मक कर्मों के कारण हमारे शरीर तंत्र के रसायनों में परिवर्तन होता है और हम शुभ या अशुभ–लेश्यी हो सकते हैं। प्रायः धर्म या जीवन का उद्देश्य कर्म–बंधन से मुक्ति पाना है, जो तप, ध्यान, जप आदि क्रियाओं से संभव है। ये प्रक्रियायें कर्म–बंधन को तोड़ने के लिये आवश्यक आंतरिक ऊर्जा प्रदान करती हैं और शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेती हैं:

सशरीरी जीव––––> जीव+कर्म

जीव+क्रियायें––––>जीव–कार्य बंध––––>ध्यान,तप आदि––––>शुद्ध जीव + कर्म

वर्तमान में कर्मवाद की भी तरंकणी एवं तरंगी व्याख्या की जाने लगी हैं। वर्णना–निरूपण के आधार पर कर्म वर्गणा में कम से कम नौ अनंत (अर्थात् अनंत^9) आदर्श परमाणु होने चाहिये। चूँकि अनंत का संख्यात्मक मान नहीं होता, इससे कर्म वर्गणा के विस्तार का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

आहार विज्ञान

प्रारंभ में जैन तंत्र श्रमण–तंत्र का ही प्रतिरूप था। जीवन की सात्विकता के लिये आहारचर्या उसका विशिष्ट प्रतिपाद्य रहा। आचारांग से लेकर आशाधर के युग तक इसका वर्णन मिलता है। इसमें काफी समरूपता है। आहार के शारीरिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्यों के विवरण के साथ उसके चयापचय की क्रिया से निर्मित होने वाले सप्तधातु तत्वों का विवरण अनेक ग्रंथों में मिलता है। प्रारंभ में साधु के लिये भक्ष्य, अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य की चतुरंगी चली। बाद में चटनी और लोंग भी इसमें जोड़े गये। इनके शास्त्रीय विवरणों से ज्ञात होता है कि इन खाद्यों में शाक–सब्जियों को विशेष स्थान नहीं था। बाद में जब गृहस्थों की आहारचर्या का वर्णन किया गया, तब उसमें भी इनकी सीमा थी। अभक्ष्यता के मूल चार आधारों पर अनेक पदार्थ अभक्ष्य की कोटि में आ गये। साथ ही, स्वास्थ्य, लोकरूढ़ि आदि भी इनके आधार बने। हिंसा का अल्पीकरण तो भक्ष्यता का प्रमुख आधार रहा ही। वर्तमान विचारधारा के अनुसार,अशन कोटि में कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन आते हैं, पान कोटि में दूध, घी व वसायें आती हैं। स्वाद्य विटामिन–खनिज घटकों के युग के अनुरूप शास्त्रीय जैन आहार–शास्त्र में विशेष कोटि नहीं थी। फिर भी, आयुर्वेद शास्त्र में आहार के जिन रूपों का वर्णन है, वह कैलोरीमान की दृष्टि से उपयुक्त ही है।

अभक्ष्य पदार्थों में मद्य, मांस और मधु का प्रमुख स्थान है। इनकी अभक्ष्यता मुख्यतः हिंसक आधार एवं दृष्टिगोचर अनिच्छित प्रभावों के आधार पर की गई है। जमीकंदों की अभक्ष्यता भी, संभवतः अधिक हिंसा की दृष्टि से (जमीन खोदकर फल निकालना आदि) की गई है। पर आयुर्वेदज्ञ और आज का विज्ञान इन्हें रोगप्रतीकार–सहता–वर्धक मानने लगा है।

तेरहवीं सदी तक के साहित्य में खाद्य–कोटियों के स्थूल विवरण ही हमें मिलते हैं, उनके रासायनिक संघटन और कैलोरी–क्षमता की चर्चा नहीं है। फिर भी, बीसवीं सदी में आहार, विज्ञान जीव–रसायन का विशिष्ट अंग

बन गया है। इसके सूक्ष्म परिज्ञान एवं उपयोग से हमारी दीर्घजीविता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। तंडुल वैचारिक में तो इसका भी परिकलन दिया गया है कि एक सामान्य व्यक्ति सौ वर्ष में कितना अन्न खा सकता है।

औषधि विज्ञान

यह बताया गया है कि रसायन विज्ञान का विकास औषधि विज्ञान से ही हुआ है। वस्तुतः तो आहार को भी औषधि ही माना जाता है। जैनों के प्राणावाय पूर्व में इस विज्ञान की भिन्न शाखाओं का वर्णन है। औषधि शास्त्र के आठ प्रमुख अंगों में बाल चिकित्सा, काय चिकित्सा, विष–शास्त्र एवं दीर्घजीविता मुख्यतः रसायन से संबंधित हैं। इनके अंतर्गत शास्त्र वर्णित 64 रोगों का 29 भौतिक विधियों तथा अनेक प्राकृतिक पदार्थों के माध्यम से उपचार किया जाता है। ये सभी पदार्थ रासायनिक यौगिक और उनके मिश्रण हैं। अनेक प्राकृतिक पदार्थों के क्वथन, आसवन, ऊर्ध्वपातन आदि से निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं। अनेक प्रकार के मिश्रण (त्रिफल आदि) तैयार किये जाते हैं। औषधि विज्ञान में प्रयुक्त अनेक विधियां आज के रसायन विज्ञान का प्रमुख अंग बनी हुई हैं। इसी प्रकार विष विज्ञान के अंतर्गत जंगम एवं पादप विषों का वर्णन हैं। दीर्घजीविता के अंतर्गत ऐसे औषधि रसायन बनाये जाते हैं जो वृद्धावस्था को विलंबित करें और बल–वीर्य को बढ़ाते रहें। औषधि रसायन अनेक संदर्भ भिन्न–भिन्न शास्त्रों में आते हैं। 9वीं सदी के उग्रादित्याचार्य ने इन्हें कल्याणकारक के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः इस ग्रंथ को अहिंसक औषधों का रसायन कहना चाहिये।[27] औषधि विज्ञान में औषधों का प्रभाव शरीर तंत्र में विद्यमान अनेक रसायनों में होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं का ही फल है। इसी प्रकार कृषि विज्ञान पादप विज्ञान और अन्य क्षेत्रों में भी रसायन का भारी उपयोग है। शास्त्रों में इनका स्थूल वर्णन ही मिलता है।

उपसंहार

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आगम युग से लेकर तेरहवीं सदी तक के जैनों ने रसायन की सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक शाखाओं के न्यूक्लियन तथा विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इस योगदान की विवेचना सम–सामयिक दृष्टि से ही मूल्यांकित की जानी चाहिये। इस विवेचन में यह पाया गया है कि नवमी–दसवीं सदी तक का जैन शास्त्रों में वर्णित रसायन विज्ञान अन्य दर्शन–तंत्रों की तुलना में उच्चतर कोटि का रहा है। यह ज्ञान समग्र रसायन के विकास की परम्परा में मील के पत्थर के समान है। यह भी स्पष्ट है कि उपरोक्त कालसीमा में अर्जित ज्ञान प्राकृतिक पदार्थों एवं मानसिक चिंतनों पर आधारित रहा है। पिछली कुछ सदियों में परिवर्तित एवं संश्लेषित पदार्थ भी इसकी सीमा में आये हैं। साथ ही, क्रिया और क्रियाफल के बीच क्रियाविधि संबंधी अंतराल का परिज्ञान भी बढ़ा है और रसायन भी अधिक सूक्ष्मता की ओर बढ़ा है।

संदर्भ

1. आचार्य नेमिचंद्र	गोम्मटसार जीवकाण्ड, राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1972
2. जैन, एन.एल.,	साइंटिफिक कन्टेन्टस इन प्राकृत केनन्स, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, 1996 पेज VII
3. न्यायाचार्य, महेन्द्रकुमार	जैन दर्शन, वर्णी ग्रन्थ माला, वाराणसी 1954 पेज 64
4. जैन, एन.एल.	नंदनवन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी, 2004 पेज 86
5. केफर्ट, वाल्डेमार	साइंस टुडे एण्ड टुमारो, डेनिस डोबसन, लंदन, 1947
6. जैन, एन.एल.	अर्हत् वचन, इन्दौर, 11–3,1999 पेज 33
7. मुनि, नथमल	दशवैकालिक, एक समीक्षात्मक अध्ययन, श्वे. तेरापंथी महासभा,

कलकत्ता, 1947
8. आ. यतिवृषभ — त्रिलोक प्रज्ञप्ति, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1956 पेज 12–13
9. आर्यरक्षित — अनुयोगद्वार सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, 1987 पेज 250
10. मूर, वाल्टर — फिजिकल केमिस्ट्री, ओरियंट लोंगमेन, लंदन, 1969 पेज 211
11. माहन, वूस एच — यूनिवर्सिटी केमिस्ट्री एडीसन, वैलेजरी, न्यूयार्क, 1965 पेज 52
12. पूज्यपाद आचार्य — सर्वार्थसिद्धि, भारतीय ज्ञानपीठ, 1971 पेज 219
13. सूरि, अमृतचंद्र — तत्वार्थसार, वर्णी ग्रंथमाला, काशी, 1970 पेज 108
14. देखिये, संदर्भ 2 पेज 238
15. देखिये, संदर्भ 2 पेज 201
15ए. महेन्द्र मुनि — जैन दर्शन और विज्ञान, जैन विश्वभारती, लाडनूं 1992
16. सुधर्मा स्वामी — ठाणं, जैन विश्वभारती, लाडनूं, 1984
17. जैन, एन.एल. — रसायन, मदनमहल जनलर स्टोर्स, जबलपुर, 1972 पेज 81
18. आचार्य, भीखणजी — नव पदार्थ, श्वे. तेरापंथी महासभा, कलकत्ता 1961 पेज 100
19. देखिये, संदर्भ 1 पेज 267
20. जिनभद्र गणि — विशेषावश्यकभास्य, गाथा 631
21. बांठिया, एम.एल — पुद्गल कोश, जैन दर्शन समिति, कलकत्ता, 1999 पेज 500
22. – — उत्तराध्ययन–2. जैन विश्वभारती, लाडनूं 1993, पेज 349,350
23.देखिये, संदर्भ 2, पेज 164–175
24. जैन, एन.एल. (अनु.) — जैन धर्म की वैज्ञानिक आधार शिला, (मरडिया), पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, 2004 पेज 114–23
25. वही, संदर्भ 2, पेज 04 VII
26 – — तंदुल वेयालिस, साधुमार्गी संस्थान, बीकानेर, 1949
27. उग्रादित्याचार्य — कल्याणकारक, रावजी सखाराम ग्रंथमाला, शोलापुर, 1940

18

कर्म सिद्धान्त का वैज्ञानिक प्रतिपादन

डॉ. नारायणलाल कछारा *(उदयपुर)*

1. कर्मवाद

भारतीय जन मानस में यह धारणा है कि प्राणी मात्र को सुख और दुःख की जो अनुभूति होती है वह स्वयं के किये गये कर्म का ही प्रतिफल है। जो जैसा करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है। कर्म से बंधा हुआ जीव अनादिकाल से नाना गतियों और योनियों में परिभ्रमण कर रहा है। वैज्ञानिक जगत में तथ्यों और घटनाओं की व्याख्या के लिए जो स्थान कार्य–कारण सिद्धान्त का है, जीवन दर्शन में वही स्थान कर्म सिद्धान्त का है। कर्म सिद्धान्त की प्रथम मान्यता है कि प्रत्येक क्रिया उसके परिणाम से जुड़ी है। उसका परवर्ती प्रभाव और परिणाम होता है। कर्म सिद्धान्त की दूसरी मान्यता यह है कि उस परिणाम की अनुभूति वही व्यक्ति करता है जिसने पूर्ववर्ती क्रिया की है। पूर्ववर्ती क्रियाओं का कर्ता ही उसके परिणाम को भोगता है। कोई प्राणी अन्य प्राणी के कर्मफल का अधिकारी नहीं होता है। कर्म सिद्धान्त की तीसरी मान्यता है कि कर्म और उसके विपाक की यह परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है।

विश्व में विभिन्नता है। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के विभिन्न आचरण और व्यवहार हैं। इस विभिन्नता का कोई–न–कोई कारण होना चाहिए। विश्व–वैचित्र्य के कारणों की खोज करते हुए भिन्न–भिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। कर्मवाद में काल आदि मान्यताओं का सुन्दर समन्वय करते हुए कहा गया है कि जैसे किसी कार्य की उत्पत्ति केवल एक ही कारण पर नहीं अपितु अनेक कारणों पर अवलम्बित होती है वैसे ही कर्म के साथ–साथ अन्य कारण भी विश्व–वैचित्र्य के कारण हैं। विश्व–वैचित्र्य का मुख्य कारण कर्म है और उसके सहकारी कारण हैं काल, स्वभाव, नियति और पुरुषार्थ।

जैन दर्शन कर्म को पौद्गलिक मानता है। जो पुद्गल–परमाणु कर्म रूप में परिणत होते हैं, उन्हें कर्म वर्गणा कहते हैं और जो शरीर रूप में परिणत होते हैं उन्हें नो कर्म वर्गणा कहते हैं। शरीर पौदगलिक है, उसका कारण कर्म है, अतः कर्म भी पौद्गलिक है। कर्म पुद्गल कार्मण वर्गणा के रूप में समस्त लोकों में व्याप्त है और विशिष्ट अवस्था में जीवात्मा से संयोग करते हैं। राग–द्वेषादि से युक्त संसारी जीव में प्रति समय मन–वचन–

काय से मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँच निमित्तों से तथा प्रत्येक कर्म के विशिष्ट कारणों से होने वाली परिस्पन्दन रूप क्रिया से आत्मा के प्रति आकृष्ट होकर कार्मण वर्गणा के पुद्गल आते हैं। राग–द्वेष का निमित्त पाकर ये पुद्गल आत्म प्रदेशों से श्लिष्ट (बद्ध) हो जाते हैं और कर्म का निर्माण करते हैं। मन–वचन–काय की प्रवृत्ति तभी होती है जब जीव के साथ कर्म का संबंध हो। जीव के साथ कर्म तभी सम्बद्ध होता है जब मन–वचन–काय की प्रवृत्ति हो। इस तरह प्रवृत्ति से कर्म और कर्म से प्रवृत्ति की परंपरा अनादि काल से चली आ रही है।

जैन दर्शन में कर्म परंपरा कर्म विशेष की अपेक्षा से आदि और सांत है और प्रवाह की दृष्टि से अनादि अनंत है। कर्म प्रवाह भी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से अनादि तो है परन्तु अनंत नहीं है क्योंकि व्यक्ति नवीन कर्मों का बंध रोक सकता है। जब व्यक्ति में राग–द्वेष रूपी कषाय का अभाव हो जाता है तो नये कर्मों का बंध नहीं होता और कर्म प्रवाह की परंपरा समाप्त हो जाती है। साधना के द्वारा संचित कर्मों का क्षय करने पर आत्मा कर्म युक्त हो जाती है, मूर्त से अमूर्त हो जाती है।

पुद्गल कर्म कार्मण शरीर में स्थित होते हैं। सामान्यतया एक समय में मनुष्य के तीन शरीर होते हैं– औदारिक, तैजस और कार्मण। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला स्थूल शरीर औदारिक शरीर है। तैजस शरीर विद्युत शरीर है। मृत्यु होने पर स्थूल शरीर छूट जाता है और तैजस तथा कार्मण शरीर आत्मा के साथ संलग्न रहते हैं तथा नई पर्याय में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तैजस और कार्मण शरीर अनादि काल से आत्मा के साथ हैं और जब तक सभी कर्मों का क्षय नहीं हो जाता वे जन्म–जन्मांतरों तक आत्मा के साथ बने रहेंगे।

2. कर्मबंध के भेद

योग और कषाय के अनुसार कर्मबंध होता है। कर्मबंध के चार अंगभूत भेद हैं।

(क) प्रदेशबंध :– जैन दर्शन आत्मा के असंख्यात प्रदेश मानता है। एक आत्म प्रदेश पर संख्यात, असंख्यात और अनंत कर्म परमाणुओं का बंध हो सकता है। योगों की चंचलता के अनुसार न्यूनाधिक रूप में जीव कर्म पुद्गलों को ग्रहण करेगा। योगों की प्रवृत्ति अन्य होगी तो कर्म परमाणुओं की संख्या भी कम होगी। आगमिक भाषा में एक आत्म प्रदेश पर बंधने वाले कर्म परमाणुओं की संख्या को प्रदेश बंध कहते हैं। दूसरे वाक्यों में कहा जाय तो आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं, उन असंख्यात प्रदेशों में एक–एक प्रदेश पर अनंतानंत कर्म परमाणुओं का बंध होना प्रदेश बंध है। सभी आत्म प्रदेशों में प्रदेश बंध एक समान और एक साथ होता है। बंध अवस्था में जीव और कर्म दोनों का विजातीय रूप रहता है। किन्तु दोनों के पृथक–पृथक हो जाने पर दोनों पुनः अपने–अपने स्वभाव में आ जाते हैं. कर्म बंध के प्रभाव से आत्मा अपने निजी अष्टगुणों के प्रकटीकरण से वंचित रहता है। वे आवृत्त और कुण्ठित हो जाते हैं।

(ख) प्रकृति बंध :– योगों की प्रवृत्ति द्वारा ग्रहण किए गये कर्म परमाणु ज्ञान को आवृत्त करना, दर्शन को आच्छन्न करना, सुख–दुःख का अनुभव कराना आदि विभिन्न प्रकृतियों के रूप में परिणत होते हैं। आत्मा के साथ बद्ध होने से पूर्व कार्मण वर्गणा के जो पुद्गल एक रूप थे, बद्ध होने के साथ ही उनमें नाना प्रकार के स्वभाव और शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसे आगम की भाषा में प्रकृति बंध कहते हैं। प्रकृति बंध के दो प्रकार हैं– मूल प्रकृति बंध और उत्तर प्रकृति बंध। मूल प्रकृति बंध आठ प्रकार के हैं– ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, वेदनीय, आयु नाम गोत्र और अन्तराय। इन आठ मूल प्रकृतियों की विभाजित कर १४८ प्रकार की उत्तर प्रकृतियाँ होती हैं। यह भेद माध्यमिक विवक्षा से है, वस्तुतः कर्म के असंख्यात प्रकार हैं और तदनुसार कर्म शक्तियाँ भी असंख्यात प्रकार की होती है।

प्रदेश बंध और प्रकृति बंध ये दोनों योगों की प्रवृत्ति से होते हैं। केवल योगों की प्रवृत्ति से जो बंध होता है वह सूखी दीवार पर हवा के झोंके के साथ आने वाले रेत कण के समान होता है। कषाय रहित प्रवृत्ति से होने वाला कर्मबंध निर्बल, अस्थायी और नाममात्र का होता है, इससे संसार नहीं बढ़ता। योगों के साथ कषाय की प्रवृत्ति होने पर बंध में बल और स्थायित्व आ जाता हैं।

(ग) स्थिति बंध :– योगों के साथ कषाय की जो प्रवृत्ति होती है उससे अमुक समय तक आत्मा से पृथक न होने की कालमर्यादा कर्म में निर्मित होती है। यह कालमर्यादा आगम की भाषा में स्थिति बंध है। वह स्थिति दो प्रकार की बताई गई है– जघन्य स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति। जैन कर्म विज्ञान ने कर्म की आठों मूल प्रकृतियों तथा उत्तर प्रकृतियों का जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरुपण किया है। जब तक कर्म उदय में नहीं आता तब तक वह जीव को बाधा नहीं पहुँचाता है। इस काल को 'अबाधाकाल' कहते हैं। इस काल में कर्म सत्ता में पड़ा रहता है और अंत में वह कर्म शरीर से अलग हो जाता है।

(घ) अनुभाग (रस) बंध :– जीव के द्वारा ग्रहण की हुई शुभाशुभ कर्मों की प्रकृतियों का तीव्र मन्द आदि विपाक अनुभाग बंध है। कर्म के शुभ या अशुभ फल की तीव्रता या मन्दता रस है। उदय में आने पर कर्म का अनुभव तीव्र या मंद होगा, यह कर्म बंध के समय ही नियत हो जाता है। वह जैसा भी तीव्र, मध्यम या मंद होता है, कर्म बंध के उत्तर काल में तदनुरूप फलयोग प्राप्त होता है। तीव्र और मंद रस के भी कषाययुक्त लेश्या के कारण असंख्य प्रकार हो सकते हैं। स्थिति बंध और अनुभाग बंध का मूल कारण कषाय है।

3. अध्यवसाय और लेश्या तंत्र

हमारी चेतना के अनेक स्तर हैं। उनमें सबसे स्थूल स्तर है इन्द्रिय। उससे सूक्ष्म है मन। उससे सूक्ष्म है बुद्धि और उससे सूक्ष्म है अध्यवसाय। आत्मा अमूर्त है। शरीर में आत्मा की क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है। यह अभिव्यक्ति सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर दोनों में होती है। तैजस शरीर और कार्मण शरीर को सूक्ष्म शरीर कहा गया है। हम सूक्ष्म शरीर के अभिव्यक्ति तंत्र पर विचार करेंगे। यह तंत्र मुख्यतया स्पंदनों, तरंगों से निर्मित है।

संसारी जीव में आत्मा की चैतन्य शक्ति आवृत्त होती है। आत्म शक्ति के स्पंदन आवरणों से होते हुए सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीरों में प्रकट होते हैं। जैन दर्शन के अनुसार केन्द्र में एक चेतन आत्मा है। इस केन्द्र की परिधि में अति सूक्ष्म कर्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। यद्यपि चेतन तत्त्व शासक के स्थान पर है, फिर भी कषायतंत्र इतना शक्तिशाली है कि इसकी इच्छा के बिना शासक कुछ नहीं कर सकता। चैतन्य की प्रवृत्ति स्पंदन के रूप में होती है। इन्हें बाहर निकलने के लिए कषाय वलय को पार करना पड़ता है। पार करने पर आत्मा के स्पंदन कषाय रंजित हो जाते हैं जिन्हें अध्यवसाय कहा जाता है। अर्थात् कर्म शरीर रूपी कषायतंत्र से बाहर आने वाले स्पंदनों में कषाय के गुण आ जाते हैं। कषायतंत्र कितना भी शक्तिशाली हो, फिर भी आत्मा में वह शक्ति है जिसका प्रयोग कर वह कषाय का विलय कर सकता है। इस स्थिति में यद्यपि कषाय का तंत्र समाप्त नहीं होता है फिर भी इसकी सक्रियता कम हो जायेगी और प्रभाव क्षीण हो जायेगा। परिणामस्वरूप जो अध्यवसाय बाहर आयेंगे वे मंगलरूप और कल्याणकारी होंगे। ऐसा तभी होता है जब आत्म चेतना जागृत हो गई हो।

मन मनुष्य या अन्य विकसित प्राणियों में ही होता है। किन्तु अध्यवसाय सब प्राणियों में होता है। अध्यवसाय हमारे ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत है। अध्यवसाय के स्पंदन अनेक दिशाओं में आगे बढ़ते हैं। इनकी एक धारा तैजस शरीर के साथ–साथ सक्रिय होकर आगे बढ़ती है तो लेश्या तंत्र बन जाता है। लेश्या के रूप में अध्यवसाय की यह धारा रंग से प्रभावित होती है और रंग के साथ जुड़कर भावों का निर्माण करती है। जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, वे सारे इसके द्वारा ही निर्मित हैं। अध्यवसाय के स्पंदन आगे बढ़ कर सीधे स्थूल शरीर में भी उतरते हैं।

वहाँ सबसे पहले मस्तिष्क के माध्यम से चित्त का निर्माण करते हैं।

विज्ञान के अनुसार भी जिन जीवों के मस्तिष्क नहीं होता, मन नहीं होता, उनकी कोशिकाएँ ही सारा ज्ञान करती हैं। वनस्पति जीव जितने संवेदनशील होते हैं, मनुष्य उतने संवेदनशील नहीं होते। वनस्पति में अध्यवसाय का सीधा परिणाम होता है। इसलिए उन जीवों में जितनी पहचान, जितनी स्मृति और दूसरों के मनोभावों को जानने की जितनी क्षमता होती है, वैसी क्षमता सारे मनुष्यों में भी नहीं होती।

लेश्या से भावित अध्यवसाय जब आगे बढ़ते हैं तो वे हमारे अंतःस्रावी ग्रंथितंत्र को प्रभावित करते हैं। इन ग्रंथियों का स्त्राव भी हमारे कर्मों के अनुभाग याने विपाक का परिणमन है। इस प्रकार पूर्व संचित कर्म का अनुभाग रसायन बनकर ग्रंथितंत्र के माध्यम से हार्मोन के रूप में प्रकट होता है। ये हार्मोन रक्त संचार तंत्र के द्वारा नाड़ी तंत्र और मस्तिष्क के सहयोग से हमारे अंतर्भाव, चिन्तन, आचार और व्यवहार को संचालित और नियंत्रित करते हैं। इस तरह ग्रंथितंत्र सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच 'ट्रांसफार्मर' परिवर्तन का काम करता है। अध्यवसाय की अपेक्षा से यह स्थूल है और शरीर के बीच की कड़ी है, जो हमारी चेतना के अति सूक्ष्म और सूक्ष्म और अमूर्त आदेशों को भौतिक स्तर पर परिवर्तित कर देती है और मन एवं स्थूल शरीर तक पहुँचाती है।

भाव का सम्पर्क चित्त से होता है। चित्त इनसे कभी प्रभावित होता है कभी नहीं होता है। भाव मंद होता है और चित्त जागरूक होता है तो चित्त प्रभावित नहीं होता। चित्त अजागरूक होता है और भाव तीव्र होता है तो चित्र प्रभावित होता है। भावों से प्रभावित चित्त अपना स्वतंत्र निर्णय नहीं कर पाता। जिस दिशा में भाव प्रेरित करते हैं, उसी दिशा में प्रवृत्ति तंत्र का संचालन होता है और व्यक्ति वैसा ही आचरण व व्यवहार करने लगता है। भावों की मंदता में चित्त अप्रभावित रहता है और अपना स्वतंत्र निर्णय करता है। चित्त आचरण और व्यवहार को परिष्कृत करने में सक्षम हो जाता है। भावों की तीव्रता को कम करते, आचरण और व्यवहार को परिष्कृत करने के लिए लेश्या परिवर्तन का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

4. जैव विद्युत और जैव प्रकाश

मनुष्य शरीर में स्नायुतंत्र, हृदय, मांशपेशियों आदि का कार्य विद्युत की सहायता से सम्पन्न होता है। शरीर के अन्दर व्याप्त जैव विद्युत की मात्रा पर ही व्यक्ति का उत्कर्ष एवं विकास निर्भर करता है। किसी व्यक्ति विशेष में पायी जैव विद्युत सामान्य व्यक्ति से अधिक होती है तब वह प्रतिभाशाली, विद्वान, मनीषी, प्रखर बुद्धि का धनी होता है, पर यदि किसी व्यक्ति में यह कम मात्रा में होती है, तब वह व्यक्ति मंद बुद्धि होता है और उसको कई प्रकार के मनोरोग घेर लेते हैं

भौतिक बिजली का जैव विद्युत में परिवर्तन असंभव है, परजैव विद्युत के साथ भौतिक बिजली का सम्मिश्रण बन सकता है। जड़ की तुलना में चेतन की जितनी श्रेष्टता है उतना ही भौतिक और जैन विद्युत में अन्तर है। जैव विद्युत भौतिक विद्युत की अपेक्षा असंख्यक गुना अधिक बलशाली एवं प्रभावी है। जैव विद्युत पर नियंत्रण, परिशोधन एवं उसका संचय तथा केन्द्रीयकरण करने से मानव असामान्य शक्तियों का स्वामी बन सकता है। अभी तो वैज्ञानिकों ने केवल स्थूल एवं भौतिक विद्युत के चमत्कार जाने हैं और जिनको जानकर वे आश्चर्य चकित हैं। जिस दिन मानवी शरीर में विद्यमान इस जैव विद्युत शक्ति के अथाह भण्डार का पता लगेगा उस दिन अविज्ञान क्षेत्र के असंख्य आश्चर्यचकित रहस्योद्‌घाटन का क्रम प्रारम्भ हो जायगा।

विभिन्न प्रयोग परीक्षणों के आधार पर प्रमाणित किया जा चुका है कि काया के सूक्ष्म केन्द्रों के इर्द–गिर्द प्रवाहमान विद्युतधारा ही सुखानुभूति का निमित्त कारण है। वैज्ञानिकों का कहना है कि वैद्युतीय प्रकम्पनोंके बिना किसी प्रकार की सुख संवेदना का अनुभव नहीं किया जा सकता।

पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाएँ एवं अनुभूतियाँ उनके अभाव में विद्युत कम्पनों से भी पैदा की जा सकती हैं। परामनोवैज्ञानिकों की भी यही मान्यता है कि सुख–दुःख की अनुभूतियाँ जैव विद्युत तरंगों पर निर्भर करती हैं।

पिछले लगभग अस्सी वर्षों से वैज्ञानिकों को स्पष्ट रूप से यह ज्ञात था कि जीवित कोशिकाओं से एक प्रकार का अति क्षीण प्रकाश उत्सर्जित होता है। रसियन वैज्ञानिक एलेक्जेण्डर गुरवत्स ने तीस के दशक में पहली बार यह पाया कि पौधे अल्प मात्रा में प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं। 1950 में इस अति मंद प्रकाश को मापने के यंत्र बनाए गये। यह प्रकाश इतना मंद होता है कि उसकी मात्रा 10 किलोमीटर दूर राखी हुई मोमबत्ती के प्रकाश के बराबर है। प्रयोगों से पाया गया कि इस प्रकाश की तीव्रता एक वर्ग में सेंटीमीटर में कुछ फोटोन से लेकर कुछ हजार फोटोन प्रति सैकण्ड तक हो सकती है। वैज्ञानिकों ने पाया कि कोशिकाओं से उत्सर्जित होने वाला यह प्रकाश सूर्यप्रकाश से भिन्न प्रकृति का है, उन्होंने कोशिका से आने वाले फोटोन को जैव फोटोन नाम दिया।

1979 में जर्मनी के डॉ. फ्रिट्ज अलबर्ट पोप ने सिद्ध किया कि कोशिकाएं जो जैव प्रकाश उत्सर्जित करती हैं वह कोहरेन्ट है, उनके गुण लेकर किरणों से मिलते जुलते हैं। इसके कारण एक जीवित कोशिका विद्युत की सुपर संचालक होती है और अन्यतम अपव्यय के साथ सौर ऊर्जा और अन्य ऊर्जा का उपयोग करती है। वैज्ञानिकों ने पाया कि जीवित शरीर में एक विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र व्याप्त रहता है जो जैव फोटोन से बना होता है। ये जैव फोटोन विभिन्न आवृत्ति वाले होते हैं और इनकी उपस्थिति इन्फ्रारेड से अल्ट्रा–वायलेट रेन्ज तक देखी गई है। परन्तु वैज्ञानिकों का मानना है कि जैव फोटोन का स्पैक्ट्रम इससे भी अधिक विस्तृत है।

जैव फोटोन की सहायता से हर कोशिका में प्रति सैकण्ड लाखों क्रियाएं संभव होती हैं। अणु शरीर की विभिन्न क्रिया में भाग तो लेते हैं परन्तु उनका अपना कोई ज्ञान नहीं होता, उनकी क्रिया जैव फोटोन द्वारा निर्देशित होती है। जैव फोटोन ही हर क्रिया के लिए सही मात्रा में, सही जगह और सही समय पर ऊर्जा उपलब्ध कराते हैं। जैव फोटोन की कार्य पद्धति रेजोनेन्स सिद्धान्त पर आधारित है। एक फोटोन में यह शक्ति होती है कि वह परमाणु के नाभिक की परिक्रमा कर रहे इलेक्ट्रान को अपनी कक्षा से अलग कर दे। कोशिका में स्थित नाभिक और मिटोकोन्ड्रिया से अलग हुए इलेक्ट्रान्स को निर्देशित किया जाता है कि वे अन्यत्र चल रही रासायनिक क्रिया में भाग लें। एक जैव फोटोन एक कोशिका में 100 करोड़ क्रियाएं सम्पन्न कर सकता है। कोई भी फोटोन शरीर में कहीं भी अन्यत्र आवश्यकतानुसार रसायन क्रिया को सम्पादित कर सकता है। इस प्रकार जैव फोटोन शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएं नियंत्रित करते हैं।

जैव फोटोन द्वारा जीवात्मा और वातावरण के बीच भी संप्रेषण संभव है। इस प्रकार जीव इस विश्व में अकेला और अलग नहीं है बल्कि वह इस अखिल ब्रह्माण्ड का एक हिस्सा है। कोई एक जीव केवल अपने लिए ही नहीं वरन् लोक के अन्य जीवों के लिए भी अपनी भूमिका का निर्वहन करता है। यह सब सूक्ष्म स्तर पर होता है, जीव को इसका ज्ञान नहीं होता। जैव फोटोन का उत्सर्जन जीवाणु से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणियों में पाया गया है।

5. कार्मण शरीर का वैज्ञानिक स्वरूप और कर्म बंध

तैजस शरीर को विद्युत रूप माना गया है। वस्तुतः यह विद्युत चुम्बकीय है। कार्मण शरीर और तैजस शरीर हमेशा साथ रहते हैं, अलग नहीं किए जा सकते। इसलिए कार्मण शरीर भी विद्युत चुम्बकीय है। कार्मण शरीर कार्मण वर्गणाओं से बनता है। इस प्रकार कार्मण वर्गणाएं विद्युत चुम्बकीय तरंगे सिद्ध होती हैं, जो समस्त लोक में व्याप्त हैं। वैज्ञानिकों द्वारा खोजा गया जैव प्रकाश विद्युत चुम्बकीय कार्मण शरीर की ही परिणति है। कार्मण

शरीर ही जैव फोटोन के माध्यम से शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएं नियंत्रित करता है। तुलनात्मक अध्ययन से सिद्ध होता है कि जैन दर्शन का अध्यवसाय ही जैव प्रकाश है।

योग और कषाय के प्रभाव से विद्युत चुम्बकीय कार्मण शरीर में कम्पन्न होता है। कम्पन्न की आवृत्ति कषाय और योग की प्रकृति पर निर्भर करती है। जिस आवृत्ति का कम्पन्न कार्मण शरीर में होता है उसी आवृत्ति की कार्मण वर्गणाएं आकर्षित होती हैं और सजातीय कर्म से श्लिष्ट हो जाती हैं। यही कर्म बंध है। आवृत्ति भेद से विभिन्न प्रकार के कर्मों का बंध होता है। भावों की तीव्रता और मंदता से कम्पन्न की शक्ति में भिन्नता होती है और तदनुसार बंध को प्राप्त होने वाली कर्म वर्गणाओं की संख्या में भिन्नता हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति बंध और प्रदेश बंध की वैज्ञानिक व्याख्या हो जाती है। स्थिति बंध और अनुभाग बंध का नियंत्रण सम्भवतया आत्मा ही करती है, वह एक निष्पक्ष शास्ता की तरह कार्य करती है।

विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वेदनीय कर्म., आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म के विपाक से कोशिकाओं में जैव फोटोन का उत्सर्जन होता है जो शरीर में विभिन्न प्रकार की रासायनिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। आयुष्य कर्म के कारण कोशिका का विभाजन होता है और उससे शरीर जीवित रहता है। कोशिका जब रुग्ण हो जाती है तो वे जैव फोटोन के उत्सर्जन को प्रभावित करती है। अर्थात् व्यक्ति के रोग और वेदना का संबंध जैव फोटोन से है। नाम कर्म से शरीर की संरचना संभव होती है और इसमें जैव फोटोन की ही भूमिका रहती है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन पूर्णतया वैज्ञानिवक है। कोशिका विभाजन, डी.एन.ए. की प्रकृति में परिवर्तन, जैव प्रकाश का उत्सर्जन आदि ऐसे विषय हैं जिनका सही कारण विज्ञान को ज्ञात नहीं, परंतु जैन दर्शन में इनकी सटीक व्याख्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार मनुष्य के भाव और व्यवहार के पीछे निहित कारणों का जहाँ मनोविज्ञान और विज्ञान स्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत करने में असमर्थ है, जैन दर्शन का लेश्या सिद्धान्त इनकी सुस्पष्ट व्याख्या करता हैं।

6. उपसंहार

कर्म सिद्धान्त जैन दर्शन की विशिष्टता है। कर्मवाद की जिस प्रकार की वैज्ञानिक व्याख्या जैन दर्शन में उपलब्ध होती है किसी अन्य दर्शन में नहीं होती। पिछली दो शताब्दी में आधुनिक विज्ञान का जो अभ्युदय हुआ उससे बहुत सी धार्मिक मान्यताएं और परंपराएं धराशायी हो गई। परन्तु जैन दर्शन की मान्यताएँ, विशेष तौर से कर्मवाद जैसे गूढ़ सिद्धान्त की, आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर न केवल खरी सिद्ध हुई है बल्कि हमारे शरीर संबंधी क्रियाएं जो विज्ञान के लिए अभी भी पहेली बनी हुई हैं, उनका सटीक समाधान जैन दर्शन में प्राप्त होता है। कर्मबंध और कार्मण शरीर की संरचना ऐसे सूक्ष्म तथ्य हैं जिनको साधारण बुद्धि से सही–सही समझना कठिन है, परंतु वैज्ञानिक प्रयोगों से प्राप्त सूचना के आधार पर हम इस रहस्य को समझने में सक्षम हो जाते हैं। जैव प्रकाश की खोज से कर्म सिद्धान्त को जो एक ठोस वैज्ञानिक आधार मिला है वह जैन दर्शन को वैज्ञानिक जगत में भी श्रेष्ठ, सत्य तथा तथ्यात्मक सिद्ध करता है। वस्तुतः जैन दर्शन में ऐसे अनेक रहस्य उपलब्ध हैं जो आधुनिक विज्ञान का मार्गदर्शन कर सकते हैं और उसके विकास में सहायता कर सकते हैं।

संदर्भः

1. 'कर्म सिद्धान्त, अध्यात्म और विज्ञान', डॉ. नारायणलाल कछारा, 2004
2. 'कर्म सिद्धान्त और उसके वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आयाम'
संपादन डॉ. नारायण लाल कछारा, 2005

19

बुन्देलखण्ड का जैन कला-वैभव

श्री नीरज जैन

जैन मूर्ति–कला में निहित लोक–मंगल की उस स्वस्ति भावना को समझने के लिये आराध्य को लेकर पूजा–विधि और पूजा–स्थानों के प्रति जैनों की मान्यता को समझना बहुत आवश्यक है। जैन धर्म ईश्वरत्व की इस प्रचलित मान्यता को स्वीकार नहीं करता कि हमारे सुख–दुख के लिये एक सर्वोच्च शक्ति के रूप में किसी ऐसे ईश्वर का अस्तित्व है, जिसमें विश्व के सृजन की , या उसके पालन की अभिलाषा और उत्सुकता हो और जो प्राणियों के कर्मों का लेखा–जोखा रखकर उनके भाग्य का निर्णय और निर्माण करता हो।

जैनधर्म की आत्मा उसकी कला में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। 'कला कला के लिये' इतना ही जिसका कार्यक्षेत्र हो, जैन कला ऐसी मानसिक विलास की वस्तु नहीं है। कला मानव मन की अभिव्यक्ति के उस माध्यम का नाम है जो जलती ज्वाला में फूल खिलाने की शक्ति से सम्पन्न हो। विविधतापूर्ण और वैभवशालिनी होते हुये भी जैन कला सस्ती श्रृंगारिकता और सतहीपने की अश्लीलता से पूर्णतः मुक्त है, यही जैन कला की अपनी विशेषता है। कला सौन्दर्यबोध के आनन्द की सृष्टि तो करती है, पर वह अपने आप में संतुलित तथा सशक्त भी है। लोक–कल्याण की स्वस्तिमती भावना से वह भीतर बाहर ओतःप्रोत है। उसके साथ गूढ़ता और रहस्य की जो एक प्रकार की अलौकिकता जुड़ी है, वह दर्शक के लिये आध्यात्मिक चिन्तन और उत्कृष्ट आत्मानुभूति की प्राप्ति में सहायक निमित्त बन जाती है।

जैन धर्म में ईस्वर की उपासना इसलिये की जाती है कि उपासक की सत्ता में पड़े हुये कर्मों की उत्कटता कम हो, उसके भवों में शुभता का संचरण हो और वह अपने में उन महान गुणों का विकास कर सके जो उसके आराध्य में पूर्णतः व्यक्त या विकसित हो गये हैं। उन गुणों का विकास ही आत्मा की चरम आध्यात्मिक परिणति है। दो हजार वर्ष पूर्व उमास्वामी ने इस अभिप्राय को अपने ग्रन्थ में इस प्रकार निबद्ध किया था–

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म–भूभृताम्,
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वंदे तद्गुण लब्धये।

जो स्वयं मोक्षमार्ग के नेता हैं, कर्म रूपी पर्वतों को जिन्होंने चूर–चूर कर दिया है और

सकल विश्व का साक्षात् ज्ञान जिन्हें प्राप्त है, उन गुणों की उपलब्धिके लिये में उनकी बन्दना करता हूं।

परम स्वाधीन और आत्माश्रित होते हुये भी यह साधना प्रारम्भिक अवस्था में उतनी स्वावलंबी नहीं होती। साधक को आदर्श रूप में अपनी आराध्य की प्रतिकृति का अवलंबन लेना अनिवार्य होता है। उसे मार्ग–दर्शन के लिये गुरु का भी सहारा लेना पड़ता है। धर्म के सर्वोच्च प्रवक्ता के रूप में देव की पूजा–उपासना और देव की वाणी का अध्ययन–मनन उसकी आचार–संहिता के अनिवार्य अंग होते हैं।

निर्विकार ईश्वर अथवा अरिहन्त देव के रूप में पूजा–उपासना के लिये जैनों में चौबीस तीर्थंकरों की सुन्दर और मनोज्ञ मूर्तियाँ बनाकर उन्हें प्रशान्त गुफाओं–कन्दराओं में उकेरने या सुन्दर मन्दिरों में प्रतिष्ठित करने की परम्परा इसी साधना–पद्धति का अंग है। महावीर के मार्ग में यह स्वीकार किया गया है कि कला और सौन्दर्यबोध उस दिव्यत्व की प्राप्ति का, तथा अपने में एकाकार हो जाने का पवित्रतम साधन है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि धर्म के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि में कलाबोध की आवश्यकता, सिद्धान्त–बोध से किसी प्रकार कम नहीं है। संभवतः यही कारण है कि जैनों ने सदैव धर्म के संदर्भ में ललित–कलाओं के विभिन्न अभिप्रायों और शैलियों को प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया। धर्म की अनुगामिनी रहते हुये उन कलाओं ने साधना की कठोरता को मृदुल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जलँती ज्वाला के बीच खिले हुये फूल की तरह वे कलाएं मनुष्य के लिये सांसारिक संतापों के बीच शीतलता प्रदान करती रहीं। काल के बंधनों को अस्वीकार करके कला ने ही धर्म के कल्याणकारी संवादों का संवहन किया है। धर्म केभावनात्मक, भक्ति–परक एवं लोकप्रिय रूपों के पल्लवन में भी कला और स्थापत्य की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसीलिये जैन निर्माताओं ने मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण में सदा सर्वाधिक पुरुषार्थ किया तथा उसके लिये सम्पत्ति श्रम तथा अन्य साधनों की कोई कमी नहीं होने दी।

जैन प्रतिमाओं की बिम्ब–संयोजना

जैन साधना–पद्धति के इस मूल अभिप्राय को ध्यान में रखकर जब जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का दर्शन करते हैं तब हम पाते हैं कि ये मूर्तियाँ उन महानसाधकों की अनुकृतियाँ हैं जो अपने लौकिक विकारों से मुक्त होकर लोकाग्र में सर्वोच्च स्थान पर स्थित हो चुके हैं। संसार में परिभ्रमण कराने वाले उनके राग–द्वेषादि समस्त विकार निश्शेष हो चुके हैं अतः अब इस बात की कोई आशंका, या सम्भावना नहीं है कि उस सर्वोच्च स्थान से स्खलित होकर उन्हें कभी मानवीय दुर्बलताओं से भरे इस तिमिराच्छन्न वातावरण में पुनः अवतरित होना पड़ेगा। तीर्थ–सेतु के वे कर्ता अब विश्व की घटनाओं से सर्वथा निर्लिप्त हैं। वे सर्वज्ञ, अतीन्द्रिय, निश्चल निष्कर्म और शाश्वत शान्त हैं। वे कोई ऐसे देवता नहीं हैं जिन्हें तुष्ट या रुष्ट किया जा सके। वे तो हमारे लिये ऐसे आदर्श मात्र हैं जैसा उनके पदचिन्हों पर चलकर हमें स्वयं भी बनना है। स्वाभावतः जैन–कला की विषय वस्तु अपनी इसी मौलिक दार्शनिक भावना से ओतःप्रोत है।

अलौकिक साधना के समर्थ उदाहरण

जैन कला के भण्डारों में प्रायः तीर्थंकरों की मूर्तियां ही अधिक मिलती हैं, अतः यह कहा जाता है कि प्रायः एक सा और अलंकरणःविहीन कार्य होने के कारण उन कलाकारों को अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाने का बहुत कम अवसर मिल पाया। पर ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि इनमें से ही अनेक मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर बहुत प्रभावक और समकालीन कृतियों की तुलना में अद्वितीय हैं।

कुण्डलपुर में बड़े बाबा की विशाल और विख्यात प्रतिमा इसका सशक्त उदाहरण है। अहार, खजुराहो और

बहोरीबंद के शान्तिनाथ की गणना भी उल्लेखनीय कला–कृतियों में की जाती है। ये मूर्तियां आकार–प्रकार में मानवीय है, किन्तु हिमालय की तरह मानवोत्तर भी हैं। इसीलिये जन्म–मरण के चक्र के, शारीरिक चिन्ताओं के, व्यक्तिगत व्यसनों–वासनाओं के, लौकिक तथा मानसिक कष्टों और समस्त आगत–अनागत भयों–आशंकाओं के अत्यंत अभाव की भावना को भलीभाँति रूपायित करती रहती हैं। लगता है कि आचार्य वराह मिहिर ने ऐसी ही किसी कलाकृति को देखकर अर्हन्त प्रतिमा का लक्षण लिखा होगा–

आजानु–लम्ब–बाहुः श्रीवत्सांकः प्रशान्तमूर्तिश्च,
दिग्वासास्तुतरुणो रूपवाश्च कार्योऽर्हन्तादेवाः।

दर्शन मात्र से चित्त को शान्ति देने वाली और मन की वृत्ति को सहज ही वैराग्य की ओर मोड़ने वाली सौम्य जैन प्रतिमाओं में निहित स्वस्ति भावना की संस्तुति करते हुये, अन्य तटस्थ कला समीक्षकों ने भी उनकी सार्थकता स्वीकार की है और लिखा है कि–

– विराट शान्ति, सहज भव्यता, परिपूर्ण काव्य–निरोध और कठोर आत्मानुशासन की सूचक उन प्रतिमाओं को देखकर किसी ऐसे महापुरुष का संकेत मिलता है जो अलौकिक, अद्वितीय और अनन्त सुख के अनुभव में निमग्न है तथा लौकिक विघ्न–बाधाओं से सर्वथा अविचलित हैं।

– मुक्त पुरुषों की वे प्रतिमाएं अनन्त शान्ति से ओतःप्रोत अपूर्व ही लगती हैं।

– अपराजितबल और अक्षय शक्तियां मानो उनमें जीवन्त हो उठती हैं।

मानवीय मूर्तियों के अतिरिक्त अलंकारिक सज्जा के सृजन में भी जैनों ने निराली ही शैली का आश्रय लिया। बहुत बार उत्कीर्ण और तक्षित कला–कृतियों में मानवः तत्त्व बहुत उभर कर रेखांकित हुआ है। चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस शासन यक्षों की प्रतिमाएं भौतिक शक्तियों का बोध कराती हैं। उन सबकी शासन देवियाँ मानव–सौन्दर्य का अतिरेक और मातृत्व का गौरव एक साथ प्रगट करती हैं। विद्या देवियाँ साधना की सीढ़ियों का प्रतीक बन जाती हैं और विद्याधर, किन्नर, दिक्पाल तथा इन्द्र, भगवान अर्हंत की त्रिलोकव्यापी महिमा की दुंदुभी बजाते दिखाई देते हैं। तीर्थंकर की माता के सोलह शुभ–स्वप्न हमारे ही उज्ज्वल भविष्य की हमें झांकी दिखाते हैं और अष्ट प्रातिहार्य तथा अष्ट मंगल–द्रव्य साधक को यह आश्वासन देते हैं कि उसका मार्ग शुभ है, जो शुभतर होता हुआ किसी अनजाने मोड़ पर शुद्ध की मंजिल तक पहुँचा देने में सक्षम है।

अर्हंत प्रतिमा के परिकर में जब हम तीर्थंकर की ऐसी शुभंकर कल्पना अपने मन में सँजोकर देव–दर्शन और पूजन के लिये उनके समक्ष उपस्थित होते हैं तब हमें यह अनुभव होता है कि निश्चित ही हम किसी पाषाण–खण्ड या धातु के टुकड़े की पूजा नहीं कर रहे, वरन सभी सर्वोच्च गुणों से युक्त, साक्षात अपने आराध्य की ही पूजा कर रहे हैं। इस उपासना से आराधक को शक्ति और स्थिरता प्राप्त होती है। उसकी आत्मा का उत्कर्ष होता है और वह स्वयं उत्साहित होकर कर्मों से मुक्ति पाने के लिये प्रयत्नशील हो उठता है। इस प्रकार वह एक दिन अपनी शक्तियों का चरम विकास करके स्वयं भगवान बन जाता है।

प्रायः प्राचीन जैन मूर्तियाँ कला की कसौटी पर भी उत्कृष्ट ही ठहरती हैं। अपने इस रूप में वे साधक के लिये प्रेरणा का अतिरिक्त स्रोत बनती हैं। तीर्थंकर मूर्तियाँ, चाहे पद्मासन हों या कायोत्सर्ग मुद्रा में हों, वे सदा ध्यानस्थ पाई जाती हैं। उनकी सौम्य भाव–भंगिमा से शान्ति का अनन्त प्रवाह दर्शक को शीतलता प्रदान करता है। हम जब श्रद्धा पूर्वक किसी प्रतिमा पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं तब, कम से कम उन क्षणों में, हम मूर्ति की वीतरागता और परम शान्त भावना में लीन हो जाते हैं। उस क्षण एक ऐसी शान्ति हमें अनुभव होती है जो

दैनिक जीवन में अन्यत्र दुर्लभ है। तीर्थंकर मूर्तियों पर प्रदर्शित ये अभिप्राय प्रतिमा की स्वस्ति भावना का प्रभामण्डल बन जाते हैं। उनकी झलक उस ईश्वर के सृष्टिगत ऐश्वर्य को भलीभाँति सूचित करती है। मूर्ति के आनन पर झलकता आनन्द स्वयं उसके अपने आंतरिक ऐश्वर्य का परिचायक बन जाता है।

बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिल प्रान्तों की तरह बुन्देलखण्ड की पावन धरती सैकड़ों हजारों वर्ष प्राचीन अनगिनत मन्दिरों से अलंकृत हैं, जिनमें हजारों एक से एक बढ़कर सुन्दर मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस धरती का कण-कण तीरथ है। आइये उनका कुछ संकीर्तन करें।

बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थ

बुन्देलखण्ड अपनी विविध विशेषताओं के कारण सदा विख्यात रहा है। चम्बल और बेतवा की निर्मल धाराओं से घिरा हुआ यह भूमि-भाग इतिहास में बारम्बार चर्चित है। हीरों की खान ने जिस प्रकार इस भूमि को जग जाहिर किया है, उसी प्रकार अनेक पवित्र तीर्थों और मन्दिरों ने भी बुन्देलखण्ड का नाम भारत के मान चित्र पर रेखांकित किया है। बुन्देलखण्ड के स्थापत्य और मूर्ति कला की कीर्ति विदेशों तक चहुं दिश फैल गई है। वास्तव में इन तीर्थों ने ही हमारी धार्मिक परम्पराओं को शताब्दियों से हमारे लिये सुरक्षित रखा, हमारी निष्ठा और भक्ति को साकार सम्बल दिया, हमारी उस बहुमूल्य धरोहर को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण काम किया है। राष्ट्रीय गौरव की उस धरोहर में से आज हम यहां बुन्देलखण्ड के कुछ जैन तीर्थों की चर्चा करेंगे।

हम अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने का प्रयास जब प्रारंभ करते हैं तब कोई एक पूर्ण परमात्मा ही हमारे चिन्तन का आधार बन सकता है। वही पूर्णता अपने भीतर जगाने का लक्ष्य बनाकर, हमें अपनी साधना प्रारंभ करना पड़ती है। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने उस सगुण आधार को 'प्रभु-मूरत' के रूप में ग्रहण किया है। देवालय में जाकर जब हम उसमें विराजमान देव की पूजा-वन्दना करते हैं तब हम यही संकल्प तो करते हैं कि हमारा यह तन ऐसा ही पावन मंदिर बने, और उसके भीतर निवास करते हुए हम स्वयं परमात्मा की तरह निर्लेप और निर्विकार बनकर अपने ईशत्व को पा सकें। जिस धरती पर कभी किसी तपस्वी ने अपनी साधना को सफल किया हो वही धरती तीर्थ कहलाती है। हम उसी धरती पर मंदिर और देवालय बनाते हैं। प्रकारान्तर से यही सारे तीर्थों का इतिहास है।

जब से हमारे देश में तीर्थों, मंदिरों और मूर्तियों का इतिहास मिलता है, तभी से जैन तीर्थ, और जैन मंदिर भी सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। बुन्देलखण्ड का भूमि भाग जैन तीर्थों की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। भारतीय मूर्तिकला की कीर्ति को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने वाला खजुराहो हमारे लिये गौरव का केन्द्र है। देवगढ़ डेढ़ हजार साल पहिले से देवताओं का गढ़ रहा है। इसी प्रकार सोनागिर, चंदेरी, थूबोन, सैरोन, नवागढ़, अहार, पपौरा, द्रोणगिरि, नैनागिर, कुण्डलपुर, बहोरी बंद, मढियाजी, सीरापहाड़, अजयगढ़ आदि जाने कितने जैन तीर्थ बुन्देलखण्ड की भूमि को पावनता प्रदान कर रहे हैं।

कला-तीर्थ खजुराहो

यह खजुराहो है। छतरपुर रीवा रोड पर बमीठा से 12 किलोमीटर चलकर हम यहां पहुंचते हैं। खजुराहो आज आधुनिकतम सुविधा सम्पन्न नगर हो गया है। हर समय यहां यात्री आते रहते हैं। देशी और विदेशी पर्यटकों की खासी भीड़ खजुराहो में हमेशा बनी रहती है। पूर्वी मंदिर समूह में एक बड़े परकोटे से घिरा हुआ है जैन तीर्थ। दसवीं शताब्दि में बना हुआ विशाल और कलात्मक 'पार्श्वनाथ मंदिर' और बारहवीं शताब्दी की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण 'आदिनाथ मंदिर' दर्शकों की दृष्टि को बांध लेते हैं। इन मन्दिरों की बाहरी भित्तियों पर

अनेकों देव–देवियाँ, अप्सरायें, गन्धर्व–कन्यायें, किन्नर और विद्याधर, बने हुये हैं। मानव जीवन की सारी व्यवस्थायें, विशेषताएं और व्यथाएं, जन्म–मरण के सारे रहस्य, राग और विराग के सैकड़ों दृश्य, इन मूर्तियों के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत हो जाते हैं। शान्तिनाथ संग्रहालय दर्शनीय शिल्प भंडार है। चमत्कार यह है कि जो जैसा मन लेकर आता है वैसा ही प्रभु दर्शन यहाँ उसे प्राप्त होता है।

जेहि कर हृदय भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

खजुराहो के बड़े मंदिर में तीर्थंकर शान्तिनाथ की वह मूर्ति खड़ी है जिसे समूचे खजुराहो की विशालतम प्रतिमा होने का गौरव प्राप्त है। इस की ऊँचाई मनुष्य की ऊँचाई से तीन गुनी है।

निरभिमानता और नम्रता का अद्भुत शिलालेख

धन्य है यह बुन्देल भूमि जहाँ निर्माण के बीजक भी नम्रता और निरभिमानता के शब्दचित्र बन जाते हैं। जब कोई श्रावक जिनालय का निर्माण कराता है, तब उसकी जिनेन्द्र–भक्ति अपनी चरम सीमा पर होती है। अपने निर्माण की कुशलता के प्रति वह बहुत चिन्तित होता है। आनेवाले हजारों सालों तक के लिये अपने कृतित्व की सुरक्षा की कामना करते हुए भी वह अपने मन में निर्माण के प्रति कभी अहंकार की भावना नहीं आने देता। अपने जिनायतमन के प्रति निर्माता का यह प्रशस्त राग उसके लिये परम्परा से मोक्ष का कारण बन सकता है। खजुराहो में पार्श्वनाथ जिनालय के निर्माता पाहिल सेठ ने अपने मन्दिर के द्वार पर अपनी ऐसी ही भावना अंकित करके जैसे अपनी सदाशय विनम्रता का रेखा–चित्र ही पत्थर पर उत्कीर्ण कर दिया है–

पाहिल वंशे तु क्षयेक्षीणे अपर वंशोऽयं कोपि तिष्ठति,
तस्य दासस्य दासोऽहं, मम दत्तिस्तु पालयेत।

इस पाहिल वंश के क्षय या क्षीण हो जाने पर भी, अन्य वंशों में कोई तो रहेगा। उनमें से जो मेरे इस दान की पालना या सेवा–सम्हार करेगा, मैं अपने आपको उस कृपालु के दासों का भी दास स्वीकार करताहूँ।

जैन इतिहास की शोध–खोज में पाँच हजार से अधिक शिलालेखों और मूर्तिलेखों का अध्ययन करने का सौभाग्य मुझे मिला है। इस अभ्यास के बल पर मैं कहना चाहता हूँ कि इतनी नम्रता से ओतःप्रोत अभिलेख कहीं अन्यत्र मेरे देखने में नहीं आये। बुन्देलखण्ड की इस साँस्कृतिक विरासत को मैं बार बार प्रणाम करता हूँ।

देवताओं का गढ़ देवगढ़

यह देवगढ़ है। ललितपुर से चलकर घने जंगलों के बीच से 30 किलोमीटर पक्की सड़क हमें यहां तक लाती है। गांव के बाहर ही डेढ़ हजार वर्ष प्राचीन दशावतार मंदिर वैष्णव आराधना का एक सुन्दर स्मृति चिन्ह है। ऊपर पहाड़ पर एक परकोटे से जैन तीर्थ प्रारम्भ होता है। ये मंदिरों के समूह यहां सैकड़ों वर्षों की साधना से आकार ग्रहण कर पाये थे। कलाकारों ने कई पीढ़ियों तक गढ़ा है, तब ये हजारों मूर्तियाँ बन पाई हैं। छैनी और हथौड़ी की सरगम से शताब्दियों तक यह अटवी गूंजती रही है तब पत्थर में इस संगीत का संचरण हुआ है। फिर इस पर कुदृष्टि पड़ी विधर्मियों की। जिस प्रकार एक दिन मनुष्य ने इन्हें गढ़ा था, उसी प्रकार मनुष्य के हाथ से ही इनका विध्वंस भी हुआ। बहुत समय तक होता रहा, परन्तु जिंदगी क्या कभी हारती है? हारती तो मौत ही है। विनाश के मरघट में सृजन के अंकुर सदा फूटते ही रहे हैं। सदियों के भंजन के बाद भी देवगढ़ में जो बचा है वह अपने आप में बहुत है। देवगढ़ सचमुच देवताओं का गढ़ था, देवताओं का गढ़ है, और देवताओं का गढ़ रहेगा। आज भी इतनी देव प्रतिमायें इस पहाड़ पर हैं कि उन पर एक–एक मुट्ठी चावल चढ़ाते चलिये तो बोरा भर चावल भी कम होगा, पूजेगा नहीं।

शासन देवताओं और सज्जा प्रतीकों के साथ देवगढ़ में खड़े हुये या ध्यानस्थ बैठे हजारों दिगम्बर तीर्थंकर बिम्ब हैं। न शरीर पर आवरण, न अलंकार, न हाथों में आयुध, न चरणों तले कोई वाहन। इन्हें देखकर ही तो समझ में आता है कि सौन्दर्य का सृजन कभी श्रृंगार का मुखापेक्षी नहीं रहा। रूप की गरिमा हृदय से प्रस्फुटित होती है। उसका अस्तित्व एक सहज–स्वाभाविक घटना है, वह किसी बनाव या मेक–अप का मोहताज नहीं है। उसी सहज सौन्दर्य की अनन्त–अनन्त राशियाँ पाषाण की कठोर कारा में कैद होकर बिखर गई हैं। लुअच्छगिरि की इस अटवी में, जिसे आज हम 'देवगढ़' कहते हैं। अकेला देवगढ़, नहीं, उसके आस–पास चारों ही दिशाओं में साधकों ने हर पत्थर को भगवान बनाने का अभियान कभी चलाया था। चन्देरी और बूढ़ी चन्देरी, थूबोन और सीरोन, चांदपुर, जहाजपुर और दुधई, ऐसे न जाने कितने स्थान थे। एक–एक स्थान पर न जाने कितने मन्दिर थे। एक–एक मन्दिर में न जाने कितनी मूर्तियां थीं, जो अब नहीं हैं। काल ने उन सबका अस्तित्व मिटा दिया है। खण्डित प्रतिमाओं के ढेर ही अब वहां शेष बचे हैं। इनके अलावा बुंदेलखंड में पपौरा, श्री क्षेत्र आहार, सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, सिद्धक्षेत्र नैनागिरि, सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर, पिसनहारी की मढ़िया, सेरोंजी, पवाजी, सोनागिरि, थोभोंजी, चांदपुर, जहाज़पुर, दुधई आदि अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं जहाँ के मंदिर और मूर्तियाँ अत्यंत कला से पूर्ण एवं पूज्य हैं।

श्री क्षेत्र बहोरीबंद दर्शनीय स्थान है। इसमें बहोरीबंद शान्तिनाथ का महत्वपूर्ण मूर्तिलेख है। यह लेख ऐतिहासिक है जिसका सर कनिंघम और डॉ. मिरासी आदि विद्वानों ने पाठ प्रकाशित किया था।

स्वस्तिश्री सं. १०१० फाल्गुन वदी ९ भौमे श्रीमद् गयाकर्णदेव विजयराज्ये
राष्ट्रकूट कुलोद्भव महासामन्ताधिपति श्रीमद् गोल्हण देवस्य प्रवर्धमानस्य।
श्रीमद् गोल्लापूर्वाम्नाये वेल्लप्रभाटिकायामुरुकृताम्नाये
तर्क–तार्किक–चूड़ामणि श्रीमन्माधवनन्दिनानुगृहीतः साधु श्री सर्वधरः।
तस्य पुत्रः महाभोजः धर्मदानाध्ययनरतः,
तेनेदं कारितं रम्यं शान्तिनाथस्य मंदिरम्।

इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार होगा–

स्वस्तिश्री संवत १०१० (विक्रमाब्द) फाल्गुन वदी नवमी भौमवार को
जयवंत श्रीमान गयाकर्ण देव के शासन में महासामन्ताधिपति,
राष्ट्रकूट कुल (राठौर वंश) में उत्पन्न, समृद्धिशाली श्रीमान गोल्हणदेव (के संरक्षण में),
गोलापूर्व आम्नाय में वेलप्रभा नगरी में जिन्होंने अपनी आम्नाय की कीर्ति बढ़ाई है,
जो तर्कतार्किकचूड़ामणि श्रीमान माधवनन्दि के कृपापात्र हैं,
उन श्रीमान साहु श्री सर्वधर के, सदैव धर्म–दान एवं अध्ययन में रत रहनेवाले सुपुत्र,
श्रीमान साहु महाभोज ने, शान्तिनाथ प्रभु के इस रमणीक मन्दिर का निर्माण कराया।

वास्तव में ये तीर्थ हमारी प्राचीन संस्कृति और कला की अनूठी धरोहर हैं और साथ ही साथ हमारे सामाजिक जीवन की शाश्वत आधार–भूमि भी हैं। यही तो कारण है कि मेरे बुन्देलखण्ड की धरती के चारों खूंट, पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक पवित्र और प्रणम्य हैं।

20

चिकित्सा विज्ञान और अध्यात्म

प्राचार्य निहालचन्द जैन

अध्यात्म, प्रार्थना, ध्यान और सामायिक आदि का रोगी के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है– पश्चिमी जगत् विशेषकर इंग्लैंड में इस पर अनुसंधान और विवेचनाएं चल रही हैं। भारत जिस आध्यात्मिक आस्था से हजारों वर्षों से जुड़ा है, विश्व का ध्यान आज उन रहस्यों की ओर जाना शुरू हो गया है। ब्रिटेन में इस बात पर विशेष बहस चल रही है कि भारत में प्रचलित अध्यात्म, आस्था, अर्चना, पूजन जैसे भाव--विज्ञान से रोगी के स्वस्थ होने की रफ्तार बढ़ जाती है। इस पर वहाँ सफल परीक्षण और प्रयोग हुए हैं।

डॉ. लॉरी डोसे ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि उन्होंने प्रार्थना की एक अजीब चिकित्सा पद्धति का अनुभव किया। उन्होंने समय का जीवंत वृत्तांत लिखा है। जब वे टेक्सास के थाईलेण्ड मेमोरियल अस्पताल में थे, उन्होंने एक कैंसर के मरीज को अंतिम अवस्था में देखा और उसे सलाह दी कि वह उपचार से विराम ले ले, क्योंकि उपलब्ध चिकित्सा से उसे विशेष लाभ नहीं हो रहा था।

एक वर्ष पश्चात् जबकि डॉ. लॉरी वह अस्पताल छोड़ चुके थे, उन्हें एक पत्र मिला कि क्या आप अपने पुराने मरीज से मिलना चाहेंगे? सन् 1980 में जब डॉ. लॉरी मुख्य कार्यकारी अधिकारी बने– यह निष्कर्ष दिया कि प्रार्थना से विभिन्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन घटित होते हैं। उन्होंने लिखा– मुझे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि वह मरीज अब भी जिंदा है। उसके 'एक्स रे' प्लेट का निरीक्षण करने पर पाया गया कि उसके फेफड़े बिल्कुल ठीक हैं। हाँ यह अवश्य था कि उसके बिस्तर पर बैठा हुआ कोई न कोई मित्र उसके स्वास्थ्य–लाभ की अवश्य प्रार्थना किया करता था।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में डॉ. लॉरी के दिए गए निष्कर्षों से चिकित्सा विज्ञान में नई आध्यात्मिक दृष्टि का सूत्रपात हुआ और यह सुनिश्चित हुआ कि शरीर में होने वाली 'व्याधि' का प्रमुख कारण हमारी मानसिक सोच है– जो 'आधि' के नाम से जानी जाती है। गलत सोच, मनोविकारों या मनोरोगों का कारण बनती है। इसी परिप्रेक्ष्य में 'प्रार्थना' मन की बीमारी का सही इलाज है। प्रायः यह देखा गया है कि व्यक्ति जब

50 की उम्र पार कर जाता है, उस पर मानसिक तनाव का प्रभाव जल्दी होने लगता है। चिड़चिड़ापन उसके तनाव की ही अभिव्यक्ति है। डायबिटीज बढ़ना, भूख कम लगना, कमर दर्द, आँखों की ज्योति मंद पड़ना और रक्तचाप प्रभावित होना आदि बीमारियाँ–मानसिक तनाव के कारण हैं।

वस्तुतः प्रार्थना या स्तुतिगान करते समय हम उस लोकोत्तर व्यक्तित्व से जुड़ जाते हैं, जिनका गुणस्तवन हमारी प्रार्थना का आधार होता है। उदाहरणार्थ– संस्कृत भक्तामर स्तोत्र का मूल पाट का उच्चारण करते हुए क्या हम वैसी ही ध्वनि तरंगों का निष्पादन और निर्गमन नहीं करने लगते हैं, जो आचार्य मानतुंग ने सृजित की होंगी? उस समय, ध्वनि तरंगों की 'फ्रिक्वेंसी' में साम्यावस्था होने से हम आचार्य मानतुंग से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। हाँ केवल वाचनिक रूप से की गई प्रार्थना रूपांतरण नहीं कर पाती। भाव– सम्प्रेषण प्रार्थना का प्रमुख तत्त्व होना चाहिए। ऐसी प्रार्थना या स्तुति गान, कषायजन्य विचारों के लिए परावर्तक (Reflector) का कार्य करती है। बुरे विचार हमारे ऊपर आक्रमण करें इसके पहले ही वे परावर्तित हो जाते हैं। आ. समन्तभद्र स्वामी को महान दार्शनिक और दिगम्बर मुनि थे, को भस्मक रोग हो गया था। उनके गुरु ने सल्लेखना देने के लिए मना कर दिया क्योंकि उनके तेजस्वी जीवन को जैनदर्शन को बहुत कुछ देना था। उन्होंने वृहत् स्वयंभू स्तोत्र की रचना करते हुए 24 तीर्थंकरों के गुणस्तवन स्वरूप जिस भावस्थिति को प्राप्त किया उससे, भस्मक रोग वहां से शान्त होना शुरू हो गया। भाव–स्थिति उनका अपना उपादान था और राज–भोग का भोजन निमित्त बना उसकी उपशांति में। अतः प्रार्थना भावनात्मक परिवर्तन के साथ शारीरिक व्याधि को मिटाने में एक प्रबल निमित्त है।

एक दूसरी घटना

घटना 1999 की है। कैंसर विशेषज्ञ डॉ. रोबर्ट ग्राइमर बर्मिंघम रायल आर्थोपेडिक अस्पताल के अधिकारी थे। उनकी नज़र एक ऐसे मरीज पर पड़ी जो हड्डियों के कैंसर से जीवन–मत्यु के बीच संघर्ष कर रहा था। उसका ट्यूमर शल्य क्रिया द्वारा अलग कर दिया गया था। लेकिन जब दूसरा ट्यूमर पैदा हो गया तो मरीज मैरीसेल्फ ने मौत को ही मित्र मान लिया। वह पेशे से साइकियाट्रिस्ट थी। उसने दवा की चिंता छोड़कर ईश्वर की प्रार्थना के लिए अपनी आस्था जोड़ ली। समय बीतता गया और कुछ अद्‌भुत परिणाम हासिल होने लगे। स्केन रिपोर्ट में उसका टूयमर कुछ घटता हुआ नजर आया। डॉ.ग्राइमर ने मैरी से इसके बारे में जानना चाहा तो उसने बड़े आत्मविश्वास से भरकर कहा– हाँ डॉक्टर! मेडिकल इलाज से परे भी कुछ और है। अच्छा होने में मैं उसीको श्रेय देती हूँ।

डॉ. ग्राइमर ने हँसते हुए कहा– 'मैं उसे खरीद लेना चाहता हूँ।' 'नहीं! वह कोई क्रय विक्रय की वस्तु नहीं है। वस्तुतः वह वस्तु नहीं, विशुद्ध भाव है। जिसे करोड़ों डॉलर से भी नहीं खरीदा जा सकता है।' ब्रिटेन के डॉक्टरों का ध्यान इस दूसरी शक्ति की ओर जाने लगा। जिसे अध्यात्म (ध्यान/प्रार्थना) की अमोघ शक्ति कह सकते हैं। और वे चिकित्सा विज्ञान तथा अध्यात्म विज्ञान के परस्पर सहसंबंधों (Corelation) पर प्रयोगों में जुट गए।

एडिनबरा यूनिवर्सिटी के मेडिकल स्कूल के डॉक्टर 'मरे' अपने साथ मरीज की एक्स–रे रिपोर्ट और पेनिसिलीन के साथ यह जानकारी रखते थे कि क्या मरीज कभी प्रार्थना भी करता है? मरीज के मन में जो

परेशानियाँ उसकी बीमारी पर हावी हैं, उन्हें बाहर निकालने के लिए डॉ. प्रयोग करे तो इलाज का प्रभाव ज्यादा सक्रिय होने लगता है। प्रो. स्टीव राइट के अनुसार डॉक्टर को पहले अध्यात्म की जरूरत है, जिससे वह मरीज को प्रभावित कर सकता है। एडिनबरा विश्वविद्यालय के चिकित्सा छात्रों ने पाठ्यक्रम निर्धारकों से मांग की कि वे चिकित्सा पाठ्यक्रम के साथ अध्यात्म की कक्षाएं लगाएं, जहाँ उन्हें विधिवत ध्यान व प्रार्थना के लिए वैज्ञानिक प्रशिक्षण से अवगत कराया जाए। इन्हें योग विद्या के संबंध में प्रशिक्षण भी दिया जाए। ध्यान व योग से शारीरिक स्थिरता के साथ मन को एकाग्र किया जा सकता है।

ध्यान एवं रोग निदान में इसकी महत्ता

ध्यान में किसी मन्त्र या मन्त्र–बीजाक्षर का विशुद्ध चिन्तन है। जो आत्मशक्ति व संकल्पशक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। ध्यान– संवेगात्मक भावों एवं मानसिक विकारों पर नियंत्रण कर व्यक्ति को सहिष्णु एवं तनावरहित करता है। ध्यान से – क्रोध जैसे आवेग को कम कर सकते हैं। स्वभाव की सहजता में जीने में यह सहायता करता है।

हमारा चित्त या मन सदैव विचारों की यात्रा करता हुआ, बाहर दौड़ा करता है। जीवन ऊर्जा का 80 प्रतिशत भाग यों ही बाहर व्यर्थ बहकर नष्ट हो जाता है और इसे संघारित्र करने की क्षमता हम नहीं जुटा पाते हैं। ध्यान व योग से इस जीवन ऊर्जा को अपने भीतर रोक सकते हैं। जैसे उत्तल लैंस (Convex Lens) फैलती हुई अपसारी किरणों को एक बिन्दु पर फोक्स कर ऊष्मीय उर्जा का निष्पादन करता है, वैसे ही ध्यान से विचारों का प्रवाह रोककर, विचार–शून्य स्थिति की ओर करते हैं। ध्यान से मनोविकारों का परिशोधन होता है।

ध्यान है– हमारी बाह्य कायिक, वाचनिक एवं सूक्ष्म मानसिक भाव–वृत्तियों का संकुचन। जितना जितना इन तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों में संकुचन या निरसन होगा, आत्म विशुद्धि या आत्म–शक्ति का विकास उसी क्रम में बढ़ेगा। ध्यान–जैनदर्शन की आत्मा है और यह चारित्र शुद्धि का अंतिम पड़ाव है। रोग निदान में ध्यान व योग में अद्‌भुत क्षमता है। नोर्थ कैरोलिना की ड्यूक यूनिवर्सिटी के डॉक्टरों ने पाया कि जो लोग मंदिर उपासना–गृह प्रार्थना या ध्यान स्थल पर नियमित जाकर ध्यान करते हैं, वे इन स्थानों पर न जाने वाले लोगों की अपेक्षा कम बीमार पड़ते हैं। अध्ययनों से एक बात और सिद्ध हुई कि जो लोग सप्ताह में एक या अधिक बार धर्मस्थलों / तीर्थस्थानों पर जाकर धर्मसेवा करते हैं, वे अन्य लोगों की अपेक्षा सात वर्ष अधिक जीते हैं।

अध्ययन व परीक्षणों के निष्कर्ष :– ब्रिटेन में 31 अध्ययनों से एक तथ्य उजागर हुआ कि जो प्रार्थना में विश्वास रखते हैं और प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं– वे ज्यादा प्रसन्न रहते हैं। मानसिक तनाव उनका कम रहता है जिससे वे शांति का अनुभव करते हैं। ब्रिटेन के ही डॉ. गिल ह्वाइट का कथन है कि– 'अध्यात्म के जरिये चिकित्सा करते समय, मैं उस समय तक प्रतीक्षा करती हूँ, जब तक मेरे शरीर में एक करंट–सा महसूस नहीं होने लगता। मेरे हाथ मरीज़ के सिर व शरीर के ऊपर घूमते हैं और रोगी की मेरे मन व शरीर से 'ट्यूनिंग' हो जाती है, जिससे हमारे व मरीज के बीच ऊर्जा का संचरण होने लगता है।' रोयल सोसायटी आफ मेडिसीन के 'जर्नल' में प्रकाशित एक शोध लेख में डॉ. डिम्सन के अनुसार– पहिले वह स्वयं अध्यात्म के जरिए ऊर्जा संचित करता है, जो उसे ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से प्राप्त होती है फिर उसे मरीज को प्रदान करता है। अध्यात्म के क्षेत्र में

'विश्वास' या श्रद्धा एक शक्तिशाली चीज है। यदि डॉक्टर–मरीज को यह विश्वास दिला पाने में सफल है कि वह अपने आराध्य के प्रति पूर्ण विश्वास रखे तो जल्दी स्वास्थ्य लाभ ले सकेगा, तो ऐसे डॉक्टर की दवा ज्यादा असरदार साबित होगी।

अमेरिका के 125 में से 50 मेडिकल कालेजों में इस समय अध्यात्म विषय को पाठ्यक्रम के रूप में स्वीकार कर पढ़ाया जा रहा है। डॉ. ब्रानले एंडरसन का कहना है कि जब तक डॉक्टर स्वयं को अध्यात्म की ऊर्जा से 'चार्ज' नहीं करेगा, तब तक वह मरीज को इससे चार्ज नहीं कर सकता। पश्चिमी जगत में आज आध्यात्मिक इलाज को 'समग्र इलाज, की संज्ञा दी गई है। विचारणीय प्रश्न यह है कि भारत की यह विरासत जिसका अलिखित पेटेंट अभी तक भारत के नाम ही है, भारत में क्यों उपेक्षित है? मुनि श्री क्षमासागरजी ने अपने एक लेख में जैनेन्द्रकुमार की एक घटना का जिक्र किया है। जीवन के आखिरी समय जब वे पैरालाइज हो गये और उन्हें बोलने में बहुत तकलीफ होने लगी क्योंकि उनके गले में बहुत अधिक कफ संचित हो गया था। डॉक्टरों ने कहा अब ठीक होने की कोई उम्मीद नहीं है तब पहली बार उनको लगा कि जीवन में भगवान की कितनी जरूरत है। उन्होंने णमोकार मन्त्र पढ़ा। उन्होंने अपने अन्तिम संस्मरण में लिखा कि– 'मैं णमोकार मन्त्र पढ़ता जाता था और रोता जाता था। आधा घण्टे तक णमोकार मन्त्र पढ़ते पढ़ते खूब जी भरके रो लिया। जब डॉक्टर दूसरी बार चैकअप के लिए आया तो उन्होंने पूछा– मिस्टर जैन! आपने अभी थोड़ी देर पहले कौन सी मेडिसीन खाई है? नर्सेज से पूछा– इनको कौनसी मेडिसिन दी गई है? नर्सेज ने कहा– अभी कोई दवा नहीं दी गई। हाँ आपने कहा था– अपने ईश्वर को याद करो, इन्होंने वही किया है अभी।

आवश्यकता है, अध्यात्म को चिकित्सा विज्ञान से जोड़कर मानवीय सेवा को एक आध्यात्मिक प्रयोग (Spritual Experiment) की भाँति करने की। अध्यात्म की शक्ति जीवन में शांति का वर्षण करती है, जो मनुष्य के लिए एक अनमोल विरासत बन सकती है। सिर्फ जरूरत है– एक दृढ़ विश्वास, आस्था, श्रद्धा और संकल्प की।

21

भारतीय-ज्योतिष का पोषक जैन-ज्योतिष

स्व. डॉ. नेमिचन्द्र जैन–शास्त्री
(न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, ज्योतिषाचार्य)

भारतीय आचार्योंने 'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्' ज्योतिष शास्त्र की व्युत्पत्ति की है अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध करानेवाले शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र कहा है। इसमें प्रधानतया ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु, आदि ज्योतिपुञ्जों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमण काल, ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण तथा ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाशुभ फलों का कथन किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र भी मानवकी आदिम अवस्थामें अंकुरित होकर ज्ञानोन्नति के साथ–साथ क्रमशः संशोधित और परिवर्धित होता हुआ वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुआ है। भारतीय ऋषिओंने अपने दिव्यज्ञान और सक्रिय साधना द्वारा आधुनिक यन्त्रों के अभावमय प्रागैतिहासकाल में भी इस शास्त्र की अनेक गुत्थियों को सुलझाया था। प्राचीन वेधशालाओं को देखकर इसीलिए आधुनिक वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हो जाते हैं। ज्योतिष और आयुर्वेद जैसे लोकोपयोगी विषयों के निर्माण और अनुसंधान द्वारा भारतीय विज्ञान के विकास में जैनाचार्यों ने अपूर्व योगदान दिया है। ज्योतिष के इतिहास का आलोड़न करने पर ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों द्वारा निर्मित ज्योतिष ग्रन्थों से जहां मौलिक सिद्धान्त साकार हुए वहीं भारतीय ज्योतिष में अनेक नवीन बातों का समावेश तथा प्राचीन सिद्धान्तों में परिमार्जन भी हुए हैं। भारत का इतिहास ही बतलाता है कि ईस्वी सन् के सैकड़ों वर्ष पूर्व भी इस शास्त्र को विज्ञान का स्थान प्राप्त हो गया था। इसीलिए भारतीय आचार्यो ने इस शास्त्र को समय–समय पर अपने नवीन अनुसंधानों द्वारा परिष्कृत किया है। जैन विद्वानों द्वारा रचे गये ग्रन्थों की सहायता के बिना इस विज्ञानके विकासक्रम को समझना कठिन ही नहीं, असंभव है। ग्रह, राशि और लग्न विचार को लेकर जैनाचार्यों ने दर्शकों ग्रन्थ लिखे हैं। आज भी भारतीय ज्योतिषकी विवादास्पद अनेक समस्याएँ जैन ज्योतिष के सहयोग से सुलझायी जा सकती हैं।

यों तो भारतीय ज्योतिष का श्रृंखलाबद्ध इतिहास हमें आर्यभट्ट के समयसे मिलता है, पर इनके पहलेके ग्रन्थ वेद, अंग साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थ, सूर्य प्रज्ञप्ति, गर्गसंहिता, ज्योतिषकरण्डक एवं वेदाङ्गज्योतिष प्रभृति ग्रन्थों में ज्योतिष शास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण

बातों का वर्णन है। वेदाङ्गज्योतिष में पंचवर्षीय युगपर से उत्तरायण और दक्षिणायन के तिथि, नक्षत्र एवं दिनमान आदिका साधन किया गया है। इसके अनुसार युगका आरम्भ माघ शुक्ल[1] प्रतिपदा के दिन सूर्य और चन्द्रमा के धनिष्ठा नक्षत्र सहित क्रान्तिवृत्त पहुंचने पर माना गया है। वेदाङ्गज्योतिषका रचनाकाल कई शती ई.पू. माना जाता है। इसके रचनाकाल का पता लगाने के लिए विद्वानों ने जैन ज्योतिषको ही पृष्ट भूमि स्वीकार किया है। वेदाङ्ग ज्योतिषपर उसके समकालीन षट्खण्डागममें उपलब्ध स्फुट ज्योतिष चर्चा, सूर्यप्रज्ञप्ति एवं ज्योतिषकरण्डक आदि जैन ज्योतिष ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। जैसाकि हिन्दुत्व के लेखकके ''भारतीय ज्योतिषमें यूनानियों की शैलीका प्रचार'' विक्रमीय संवत से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूलग्रन्थ अङ्गों में यवन ज्योतिषका कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार सनातनियों की वेदसंहिता में पञ्चवर्षात्मक युग है और कृतिका से नक्षत्र गणना है उसी प्रकार जैनों के अङ्ग ग्रन्थों में भी है, इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है[2]। कथन से सिद्ध है। सूर्यप्रज्ञप्ति में पञ्चवर्षात्मक युगका उल्लेख करते हुए लिखा है– 'श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन सूर्य जिस समय अभिजित् नक्षत्र पर पहुंचता है उसी समय पञ्चवर्षीय युग प्रारंभ होता है।[3]' अति प्राचीन फुटकर उपलब्ध षट्खण्डागम की ज्योतिष चर्चा से भी इसकी पुष्टि होती है। वेदाङ्गज्योतिष से पूर्व वैदिक ग्रन्थों में भी यही बात है। पञ्चवर्षात्मक युगका सर्व प्रथमोल्लेख जैन ज्योतिष में मिलता है। डॉ. श्यामशास्त्रीने वेदाङ्गज्योतिषकी भूमिका में स्वीकार किया है कि वेदांङ्गज्योतिषके विकासमें जैन ज्योतिष्का बड़ा भारी सहयोग है। बिना जैन ज्योतिष के अध्ययन के वेदाङ्ग ज्योतिषका अध्ययन अधूरा ही कहा जायेगा। प्राचीन भारतीय ज्योतिषमें जैनाचार्यों के सिद्धान्त अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं।

जैन ज्योतिष में पौर्णमास्यान्त मास गणना ली गयी है, किन्तु याजुष–ज्योतिषमें दर्शान्त मास गणना स्वीकार की गयी है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में पौर्णमास्यान्त मास गणना ली जाती थी, किन्तु यवनों के प्रभाव से दर्शान्त मास गणना ली जाने लगी। बादमें चान्द्रमासके प्रभाव से पुनः भारतीय ज्योतिर्विदोंने पोर्णमस्यान्त मास गणना का प्रचार किया लेकिन यह पौर्णमास्यान्त मास गणना सर्वत्र प्रचलित न हो सकी। प्राचीन जैन ज्योतिषमें हेय पर्व तिथि का विवेचन करते हुए अवम के सम्बन्ध में बताया गया है कि एक सावन मासकी दिन संख्या ३० और चान्द्रमासकी दिन संख्या २६ + ३२ । ६२ है। सावन मास और चान्द्रमास का अन्तर अवम होता है अतः ३०–२९+३२/६२=३०/६२ अवम भाग हुआ, इस अवम की पूर्ति दो मास में होती है। अनुपात से एक दिनका अवमांश १/६२ आता है। यह सूर्यप्रज्ञप्ति सम्मत अवमांश वेदाङ्गज्योतिषमें भी है। वेदाङ्गज्योतिषकी रचना के अनन्तर कई शती तक इस मान्यतामें भारतीय ज्योतिषने कोई परिवर्तन नहीं किया लेकिन जैन ज्योतिष के उत्तरवर्ती ज्योतिषकरण्डक आदि ग्रन्थों में सूर्यप्रज्ञप्ति कालीन स्थूल अवमांशमें संशोधन एवं परिवर्त्तन मिलता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है इस काल में ३०/६२ की अपेक्षा ३१/६२ अवमांश माना गया है। इसी अवमांश परसे त्याज्य तिथि की अवस्था की गयी है।[5] इससे वराहमिहिर भी प्रभावित हुए हैं उन्होंने पितामह के सिद्धांत का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अतः स्पष्ट है कि अवम–तिथि क्षय सम्बन्धी प्रक्रियाका विकास जैनाचार्यों ने स्वतन्त्र रूप से किया। समय समय पर इस प्रक्रिया में संशोधन एवं परिवर्तन होते गये।

वेदाङ्गज्योतिष[6] में पर्वों का ज्ञान कराने के लिए दिवसात्मक ध्रुवराशिका कथन किया गया है। यह प्रक्रिया गणित दृष्टि से अत्यन्त स्थूल है। जैनाचार्यों ने इसी प्रक्रिया को नक्षत्र रूपों में स्वीकार किया है। इनके मत से चन्द्र नक्षत्र योग का ज्ञान करने के लिए ध्रुवराशि का प्रतिपादन निम्न प्रकार हुआ है। **'चउवीससमं काऊण पमाणं सत्तसट्ठिमेव फलम्। इच्छापव्वेहिं गुणं काऊणं पज्जयालद्धा॥'** अर्थात् ६७/१२४ x १८३०/६७ = ९१५/६२=१४+४७/६२=१४+९४/१२४ की पर्व ध्रुवराशि बतायी गयी है। तुलनात्मक दृष्टि से वेदाङ्गज्योतिष

सम्मत और जैनमान्यता की ध्रुवराशि पर विचार करने से स्पष्ट है कि नक्षत्रात्मक ध्रुवराशिका उत्तरकालीन राशि के विकास में महत्त्वपूर्ण योग है। आगे इसी प्रक्रिया का विकसित रूप क्रान्तिवृत्त के द्वादशभागात्मक राशि है।

पञ्चवर्षात्मक युग में जैनाचार्यों की व्यतीपात–आनयानसम्बन्धी प्रक्रिया का उत्तरकालीन भारतीय ज्योतिष में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्योतिष करण्डकी निम्न गाथाओं में इस प्रक्रिया का विवेचन मिलता है।[7]

अयणाणं सम्बन्धे रविसोमाणं तु वे हि य जुगम्मि।
जं हवइ भागलद्धं वइहया तत्तिया होन्ति॥
बावत्तरीपमाणे फलरासी इच्छिते उ जुगभेए।
इच्छिय वइवायंपि य इच्छं काऊण आणे हि॥

इन गाथाओं की व्याख्या करते हुए टीकाकार मलयगिरने **"इह सूर्याचन्द्रमसौ स्वकीयेऽयने वर्तमानौ यत्र परस्परं व्यतिपततः स कालो व्यतिपातः तत्र रविसोमयोः युगे युगमध्ये यानि अयनानि तेषां परस्पर सम्बन्धे एकत्रमेलने कृते द्वाभ्यां भागो ह्रियते। ह्रते च भागे यद्भवति भागलब्धं तावन्तः तावत्प्रमाणाः युगे व्यतिपाता भवन्ति॥"** गणितक्रिया–७२ व्यतिपातमें १२४ पर्व होते हैं तो एक व्यतिपातमें क्या? ऐसा अनुपात करने पर– १२४X१/७२=१+५२/७२X१५=१०+६०/७२ तिथि ६०/७२X३०=२५ मूहूर्त्त। व्यतिपात ध्रुवराशि की पट्टिका एक युग में निम्न प्रकार सिद्ध होगी–

पर्व	तिथि	मूहूर्त्त	
१) १२४/७२ X १=	१	१०	२५
२) १२४/७२X२=	३	६	२०
३) १२४/७२X३=	५	२	१५
४) १२४/७२X४=	६	१३	१०
५) १२४/७२X५=	८	९	५
६) १२४/७२X६=	१०	५	०
७) १२४/७२X७=	१२	०	२५
८) १२४/७२X८=	१३	११	२०
९) १२४/७२X९=	१५	७	१५
१०) १२४/७२X१०=	१७	३	१०

जहां वेदाङ्गज्योतिषमें व्यतिपात का केवल नाममात्र उल्लेख मिलता है, वहां जैन ज्योतिषमें गणित सम्बन्धी विकसित प्रक्रिया भी मिलती है। इस प्रक्रिया का चन्द्रनक्षत्र एवं सूर्यनक्षत्र सम्बन्धी व्यतिपात के आनयन में महत्त्वपूर्ण उपयोग है। वराहमिहिर जैसे गणकों ने इस विकसित ध्रुवराशि पट्टिका के अनुकरण पर ही व्यतिपात सम्बन्धी सिद्धान्त किये हैं। जिस काल में जैन पञ्चाङ्गकी प्रणाली का विकास पर्याप्त रूप में हो चुका था उस कालमें ग्रन्थ ज्योतिषमें केवल पर्व, तिथि, पर्व के नक्षत्र एवं योग आदिक के आनय का विधान ही मिलता है। पर्व और तिथियों में नक्षत्र लाने की जैसी सुन्दर एवं विकसित जैन प्रक्रिया है, वैसी अन्य ज्योतिषमें छठी शती के बादके ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। 'काललोकप्रकाश' में लिखा है कि युगादि में अभिजित नक्षत्र होता है। चन्द्रमा अभिजित को भोगकर श्रवण से शुरू होता है और अग्रिम प्रतिपदाको मघा नक्षत्र पर आता है।[8] नक्षत्र लाने की गणित प्रक्रिया इस प्रकार है– पर्व को संख्या को १५ से गुणा कर गत तिथि संख्या को जोड़कर जो हो उसमें दो घटा कर शेष में ९२ का भाग देने से जो शेष रहे उसमें २७ का भाग देने पर जो शेष आवे उतनी ही संख्या वाला

नक्षत्र होता है, परन्तु यह नक्षत्र—गणना कृतिका से लेनी चाहिए।

प्राचीन जैन ज्योतिषमें सूर्य संक्रान्ति के अनुसार द्वादश महीनों की नामावली भी निम्न प्रकार मिलती है—

प्रचलित नाम	सूर्य संक्रान्ति के अनुसार जैन महिनों के नाम
श्रावण	अभिनन्दु
भाद्रपद	सुप्रतिष्ठ
आश्विन	विजया
कार्तिक	प्रीतिवर्द्धन
मार्गशीर्ष	श्रेयान्
पौष	शिव
माघ	शिशिर
फाल्गुन	हैमवान्
चैत्र	वसन्त
वैशाख	कुसुमसंभव
ज्येष्ठ	निदाघ
आषाढ़	वनविरोधी

इस माह प्रक्रिया के मूलमें संक्रान्ति सम्बन्धी नक्षत्र रहता है। इस नक्षत्र के प्रभाव से ही अभिनन्दु आदि द्वादश महीनों के नाम बताये गये हैं। जैनेतर भारतीय ज्योतिषमें भी एकाध जगह दो चार महीनों के नाम आये हैं। वराहमिहिरने सत्याचार्य और यवनाचार्य का उल्लेख करते हुए संक्रान्ति संबंधी नक्षत्र के हिसाबसे मास गणना का खण्डन किया है। लेकिन प्रारंभिक ज्योतिष सिद्धान्तों के ऊपर विचार करने से यह स्पष्ट किया है कि मास प्रक्रिया बहुत प्राचीन है। ऋक् ज्योतिषमें एक स्थान पर कार्तिकके लिए प्रीतिवर्द्धन और आश्विन के लिए विजया प्रयुक्त हुए हैं।

इसी प्रकार जैन ज्योतिषमें संवत्सरकी प्रक्रिया भी और मौलिक व महत्त्वपूर्ण है। जैनाचार्यों ने जितने विस्तार के साथ इस सिद्धान्त के ऊपर लिखा है उतना अन्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में नहीं। प्राचीन काल में जैनाचार्यों ने सम्वत्सर—सम्बन्धी जो गणित और फलित के नियम निर्धारित किए हैं वे जैनेतर भारतीय ज्योतिषमें आठवीं शती के बाद व्यवहृत हुए हैं। नाक्षत्र सम्वत्सर, ३२७+५२/६७, युग सम्वत्सर पांच वर्ष प्रमाण प्रमाण सम्वत्सर, शनि सम्वत्सर। जब बृहस्पति सभी नक्षत्रसमूह को भोग कर पुनः अभिजित् नक्षत्र परआता है तब महानक्षत्र सम्वत्सर होता है। फलित जैन ज्योतिषमें इन सम्वत्सरों के प्रवेश एवं निर्गम आदि के द्वारा विस्तारसे फल बताया है, अतः निष्पक्ष दृष्टि से यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारतीय ज्योतिषके विकास में जैन सम्वत्सर प्रक्रिया का बड़ा भारी योगदान है।

षट्खण्डागम धवला टीकाके प्रथम खण्ड गत चतुर्थशमें प्राचीन जैन ज्योतिषकी कई महत्त्वपूर्ण बातें सूत्ररूप में विद्यमान हैं उसमें समयके शुभाशुभका ज्ञान कराने के लिए दिनरात्रि के (१) रौद्र (२) श्वेत (३) मैत्र (४) सारभट (५) दैत्य (६) वैरोचन (७) वैश्वदेव (८) अभिजित् (९) रोहण (१०) बल (११) विजय (१२) नैऋत्य (१३) वरुण (१४) अर्यमन् और (१५) भाग्य मुहूर्त बताये हैं। इन दिनमुहूर्तो में फलित जैन ग्रन्थों के अनुसार रौद्र, सारभट, वैश्वदेव, दैत्य और भाग्य यात्रादि शुभ कार्यों में त्याज्य हैं। अभिजित् और विजय ये दो मुहूर्त सभी कार्यो में सिद्धिदायक बताये गये हैं। आठवीं शतीं के जैन ज्योतिष सम्बन्धी मुहूर्तग्रन्थों में इन्हीं मुहूर्तो को अधिक

पल्लवित करके प्रत्येक दिन के शुभाशुभ कृत्यों का प्रहरों में निरूपण किया है। इसी प्रकार रात्रि के भी (१) सावित्र (२) धुर्य (३) दायक (४) यम (५) वायु (६) हुताशन (७) भानु (८) वैजयन्त (९) सिद्धार्थ (१०) सिद्धसेन (११) विक्षोभ (१२) योग्य (१३) पुष्पदन्त, (१४) सुगंधर्व और (१५) अरुण ये पन्द्रह मुहूर्त हैं।[9] इनमें सिद्धार्थ, सिद्धसेन. दात्रक और पुष्पदन्त शुभ होते हैं शेष अशुभ हैं। सिद्धार्थ को सर्वकार्यो का सिद्ध करनेवाला कहा है। ज्योतिष शास्त्र में इस प्रक्रियाका विकास आर्यभट्ट के बाद निर्मित फलित ग्रन्थों में ही मिलता है।

तिथियों की संज्ञा भी सूत्ररूप से धवलामें इस प्रकार आयी है– नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता (तुका) और पूर्णा ये पांच संज्ञाएं पन्द्रह तिथियों की निश्चित की गयी हैं, इनके स्वामी क्रम से चन्द्र, सूर्य, चन्द्र, आकाश और धर्म बताये गये हैं। पितामह सिद्धान्त, पौलस्त्य सिद्धान्त और नारदीय सिद्धान्त में इन्हीं तिथियों का उल्लेख स्वामियों सहित मिलता है। पर स्वामियों की नामावली जैन नामावली से सर्वथा भिन्न है। इसीप्रकार सूर्यनक्षत्र, चान्द्रनक्षत्र, बार्हस्पत्यनक्षत्र एवं शुक्रनक्षत्र का उल्लेख भी जैनाचार्यों ने विलक्षण सूक्ष्मदृष्टि और गणित प्रक्रिया से किया है। भिन्न–भिन्न ग्रहों के नक्षत्रों की प्रक्रिया पितामह सिद्धान्त में भी सामान्यरूप से बतायी गयी है।

अयन सम्बन्धी जैन ज्योतिषकी प्रक्रिया तत्कालीन ज्योतिष ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक विकसित एवं मौलिक है। इसके अनुसार सूर्य का चारक्षेत्र सूर्य के भ्रमण मार्ग की चौड़ाई–पांच सौ दश योजन से कुछ अधिक बताया गया है। इसमें से एक सौ अस्सी योजन चारक्षेत्र तो जम्बूद्वीप में हैं। और अवशेष तीन सौ तीस योजन प्रमाण लवणसमुद्र में है, जोकि जम्बूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए है। सूर्य के भ्रमण करने के मार्ग एक सौ चौरासी हैं इन्हें शास्त्रीय भाषा में वीथियाँ कहा जाता है। एक सौ चौरासी भ्रमण भागों में एक सूर्य का उदय एक सौ तेरासी बार होता है। जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा माने गये हैं। एक भ्रमण मार्ग को तय करने में दोनों सूर्यों को एक दिन और एक सूर्यको दिन अर्थात् साठ मुहूर्त्त लगते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में तीन सौ छयासठ और एक अयन में एक सौ तेरासी दिन होते हैं।

सूर्य जब जम्बूद्वीप के अन्तिम आभ्यन्तर मार्ग से बाहरकी ओर निकलता हुआ लवणसमुद्रकी तरफ जाता है तब बाहरी लवणसमुद्रस्थ अन्तिम मार्ग पर चलने के समयको दक्षिणायन कहते हैं और वहां तक पहुंचने में सूर्य को एक सौ तेरासी दिन लगते हैं। इसी प्रकार जब सूर्य लवणसमुद्र के बाह्य अन्तिम मार्ग से घूमता हुआ भीतर जम्बूद्वीप की ओर आता है तब उसे उत्तरायण कहते हैं और जम्बूद्वीपस्थ अन्तिम मार्ग तक पहुंचने में उसे एक सौ तेरासी दिन लग जाते हैं। पञ्चवर्षात्मक युगमें उत्तरायण और दक्षिणायन सम्बन्धी तिथि नक्षत्र का विधान[10] सर्वप्रथम युग के आरंभमें दक्षिणायन बताया गया है यह श्रावण कृष्णा प्रतिपादाको अभिजित् नक्षत्रमें होता है। दूसरा उत्तरायण माघ कृष्णा सप्तमी हस्त नक्षत्रमें, तीसरा दक्षिणायन श्रावण कृष्णा त्रयोदशी मृगशिर नक्षत्रमें, चौथा उत्तरायण माघशुक्ला चतुर्थी शतभिषा नक्षत्रमें, पांचवा दक्षिणायन श्रावण शुक्ला दशमी विशाखा नक्षत्रमें, छटवां उत्तरायण माघ कृष्णा प्रतिपदा पुष्य नक्षत्रमें, सातवां दक्षिणायन श्रावण कृष्णा सप्तमी रेवती नक्षत्रमें, आटवां उत्तरायण माघ कृष्ण त्रयोदशी मूल नक्षत्रमें, नवमां दक्षिणायन श्रावण शुक्ल नवमी पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में और दशवां उत्तरायण माघ कृष्ण त्रयोदशी कृतिका नक्षत्र में माना गया है। किन्तु तत्कालीन ऋक्, याजुष और अथर्व ज्योतिष में युग के आदि में प्रथम उत्तरायण बताया है। यह प्रक्रिया अब तक चली आ रही है। कहा नहीं जा सकता कि युगादि में दक्षिणायन और उत्तरायण इतना वैषम्य कैसे हो गया?

जैन मान्यता के अनुसार जब सूर्य उत्तरायण होता है– लवण समुद्रके बाहरी मार्ग से भीतर जम्बूद्वीप की ओर जाता है– उस समय क्रमशः शीत घटने लगता है और गरमी बढ़ना शुरु हो जाती है। इस सर्दी और गर्मी के वृद्धि–ह्रास के दो कारण हैं, पहला यह है कि सूर्य के जम्बूद्वीप के समीप आने से उसकी किरणों का प्रभाव यहां

अधिक पड़ने लगता है, दूसरा कारण यह कहा जा सकता है कि उसकी किरणें समुद्र के अगाध जलपरसे आने से ठंडी पड़ जाती थी। उनमें क्रमशः जम्बूद्वीपकी ओर गहराई कम होने एवं स्थलभाग पास होनेसे सन्ताप अधिक बढ़ता जाता है। इसी कारण यहां गर्मी अधिक पड़ने लगती है। यहाँ तक कि सूर्य जब जम्बूद्वीपके भीतरी अन्तिम मार्ग पर पहुंचता है तब यहां पर सबसे अधिक गर्मी पड़ती है। उत्तरायण प्रारंभ मकर संक्रान्तिको और दक्षिणायन का प्रारंभ कर्क संक्रांतिको होता है। उत्तरायण के प्रारंभ में १२ मुहुर्त का दिन और १८ मुहुर्त की रात्रि होती है। दिनमानका प्रमाण निम्नप्रकार बताया है।[11] पर्व संख्याको १५ से गुणाकर तिथि संख्या जोड़ देना चाहिए, इस तिथि संख्यामें से एक सौ बीस तिथिपर आने वाले अवमको घटाना चाहिए। इस शेषमें १८३ का भाग देकर जो शेष रहे उसे दूना कर ६१ का भाग देना चाहिये जो लब्ध आवे उसे दक्षिणायन हो तो १८ मुहूर्त में से घटाने पर दिनमान और उत्तरायण हो तो १२ मुहूर्त्तमें जोड़ने पर दिनमान आता है। उदाहरणार्थ युग के आठ पर्व बीत जाने पर तृतीया के दिन दिनमान निकालना है अतः १५x८ = १२+३= १२३−१=१२२÷ १८३=०x१२२/१८३=१२२x२=२४४÷६१=४, दक्षिणायन होने से १८−४=१४ मुहूर्त्त दिनमानका प्रमाण हुआ।

वेदाङ्गज्योतिषमें दिनमान सम्बन्धी यह प्रक्रिया नहीं मिलती है, उस कालमें केवल १८−१२= ६÷१८३=१/६१ वृद्धि−ह्रास रूप दिनमाक का प्रमाण साधारणानुपात द्वारा निकाला गया है। फलतः उपर्युक्त प्रक्रिया विकसित और परिष्कृत है इसका उत्तरकालीन पितामह के सिद्धान्त पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। पितामहने जैन प्रक्रिया में थोड़ा सा संशोधन एवं परिवर्द्धन करके उत्तरायण या दक्षिणायन के दिनादिमें जितने दिन व्यतीत हुए हों उनमें ७३२ जोड़ देना चाहिये फिर दूना करके ६१ का भाग देने से जो लब्ध आये उसमें से १२ घटा देने पर दिनमान निकालना बताया है।[11] पितामहका सिद्धान्त सूक्ष्म होकर भी जैन प्रक्रिया से स्पष्ट प्रभावित मालूम होता है।

नक्षत्रों के आकार सम्बन्धी उल्लेख जैन ज्योतिषकी अपनी विशेषता है। चन्द्रप्रज्ञप्ति में नक्षत्रों के आकार−प्रकार, भोजन−वसन आदिका प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि अभिजित् नक्षत्र गोशृङ्ग, श्रवण नक्षत्र कपाट, घनिष्टा नक्षत्र पक्षीके पिंजरा, शतभिषा नक्षत्र पुष्पकी राशि, पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रापद अर्ध−बावड़ी, रेवती नक्षत्र कटे हुए अर्ध फल, अश्विनी नक्षत्र अश्वस्कन्ध, भारिणी नक्षत्र स्त्री की योनि, कृत्तिका नक्षत्र ग्राह, रोहणी नक्षत्र शकट, मृगशिरा नक्षत्र मृगमस्तक,. आर्द्रा नक्षत्र रुधिर बिन्दु, पुनर्वसु नक्षत्र चूलिका, पुष्य नक्षत्र बढ़ते हुए चन्द्र, आश्लेषा नक्षत्र ध्वजा, मघा नक्षत्र प्राकार, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र अर्ध−पल्यङ्क, हस्त नक्षत्र हथेली, चित्रा नक्षत्र मउआके पुष्प, स्वाति नक्षत्र खीले, विशाखा नक्षत्र दामिनी, अनुराधा नक्षत्र एकावली, ज्येष्टा नक्षत्र गजदन्त, मूल नक्षत्र बिच्छू, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हस्तीकी चाल और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र सिंहके आकार का होता है।[12] यह नक्षत्रों की संस्थान सम्बन्धी प्रक्रिया वराहमिहिरके कालसे पूर्वकी है। इनके पूर्व कहीं भी नक्षत्रों के आकारकी प्रक्रियाका उल्लेख नहीं है। इस प्रकारके नक्षत्रों के संस्थान, आसन, शयन आदिके सिद्धान्त जैनाचार्यों के द्वारा निर्मित होकर उत्तरोत्तर पल्लवित और पुष्पित हुए हैं।

प्राचीन भारतीय ज्योतिषके निम्न सिद्धान्त जैन−अजैनों के परस्पर सहयोग से विकसित हुए प्रतीत होते हैं। इन सिद्धान्तों में पांचवां, सातवां, आठवां, नौंवां, दसवां, ग्यारहवां और बारहवें सिद्धान्तों का मूलतः जैनाचार्योंने निरूपण किया है।

प्राचीन जैन ज्योतिष ग्रन्थों में षट्खण्डागम सूत्र एवं टीकामें उपलब्ध फुटकर ज्योतिष चर्चा, सूर्यप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरण्डक, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति, अङ्गविज्जा, गणिविज्जा, आदि ग्रन्थ प्रधान हैं। इनके तुलनात्मक विश्लेषण से ये सिद्धान्त निकलते हैं−

(१) प्रतिदिन सूर्यके भ्रमण मार्ग निरूपण–सम्बन्धी सिद्धान्त– इसीका विकसित रूप दैनिक अहोरात्रवृत्तकी कल्पना है। (२) दिनमानके विकासकी प्रणाली। (३) अयन–सम्बन्धी प्रक्रिया का विकास– इसीका विकसित रूप देशान्तर, कालान्तर, भुजान्तर, चरान्तर एवं उदयान्तर–सम्बन्धी सिद्धान्त हैं। (४) पर्वो में विषुवानयन इसका विकसित रूप संक्रान्ति और क्रान्ति है। (५) संवत्सर–सम्बन्धी प्रक्रिया–इसका विकसित रूप सौरमास, चान्द्रमास,सावनमास एवं नाक्षत्रमास आदि हैं। (६) गणित प्रक्रिया द्वारा नक्षत्र लग्नानयकी रीति–इसका विकसित रूप त्रिशांश, नवमांश, द्वादशांग एवं होरादि हैं। (७) कालगणना प्रक्रिया– इसका विकसित रूप अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रांश सम्बन्धी गणना एवं घटी पलादि सम्बन्धी कालगणना है। (८) ऋतुशेष प्रक्रिया– इसका विकसित रूप क्षयशेष, अधिमास, अधिशेष आदि हैं। (९) सूर्य और चन्द्रमण्डल के व्यास, परिधि और घनफल प्रक्रिया–इसका विकसित रूप समस्त ग्रह गणित है। (१०) छाया द्वारा समय–निरूपण–इसका विकसित रूप इष्ट काल, भयात, भभोग एवं सर्वभोग आदि हैं। (११) नक्षत्राकार एवं तारिकाओं के पुञ्जादिकी व्याख्या इसका विकसित रूप फलित ज्योतिषका वह अंग है जिसमें जातककी उत्पत्तिके नक्षत्र, चरण आदिके द्वारा फल बताया गया हो। (१२) राहु और केतुकी व्यवस्था– इसका विकसित रूप सूर्य एवं चन्द्रग्रहण–सम्बन्धी सिद्धान्त हैं।

जैन ज्योतिष ग्रन्थों में उल्लिखित ज्योतिष–मण्डल, गणित–फलित, आदि भेदोपभेद विषयक वैशिष्टयों का दिग्दर्शन मात्र कराने से यह लेख पुस्तकका रूप धारण कर लेगा, जैसाकि जैन शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध गणित, फलित आदि ज्योतिषके ग्रन्थों की निम्न संक्षिप्त तालिका से स्पष्ट है। तथा जिसके आधार पर शोध करके जिज्ञासु स्वयं निर्णय करसकेंगे कि जैन विद्वानोने किस प्रकार भारतीय ज्योतिष शास्त्रका सर्वाङ्ग सुन्दर निर्माण, पोषण एवं परिष्कार किया है।

संदर्भ :

(1) स्वराकमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ। स्यात्तदादियुगं माघस्तपरशुक्लोऽयनं ह्युदक्॥
प्रपद्येते श्रविष्टादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्। सर्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोरसदा॥(वेदाङ्ग ज्योतिष पृ. ४–५)

(2) हिन्दुत्व पृ. ५८१।

(3) "सावण बहुल पडिवए वालकरणे अभीइ नक्खत्ते। सब्बत्थ पडम समये जुवस्स आइं वियाणाहि॥"

(4) वेदाङ्गज्योतिषकी भूमिका, पृ.३।

(5) सूर्यप्रज्ञप्ति, पृ.२१६–१७ (मलयगिर टीका)

(6) द्वाषष्टितमघस्रस्य ततस्सूर्योदयक्षणे। उपस्थिता पूर्वरीत्या द्राक त्रिषष्टितमी तिथिः॥

(7) निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं रूपसंयुतम्। षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरूच्यते॥
– वेदांगज्योतिष (याजुप ज्योतिषं सोमाकर सुधाकर भाष्याभ्यां सहितम्, पृ. २०

(8) ज्योतिष करण्डक पृ. २००–२०५। (पूर्व पृष्ठात्)

(9) नक्षत्राणां परावर्त.... इत्यादि। काललोकप्रकाश, पृ. ११४।

(10) "रौद्रःश्वेतश्च... इत्यादि" धवला टीका, चतुर्थ भाग पृ. ३१८।

(11) "सवित्रो धुर्यसंशश्च...." इत्यादि। धवला टीका, चतुर्थ भाग, पृ. ३१९

(12) "प्रथम बहुल पडिवए..... इत्यादि, सूर्यप्रज्ञप्ति (मलयगिर टीका सहित) पृ. २२२।

(13) ज्योतिषकरण्डक, गाथा ३११–२०

(14) "द्वयग्नि नमेषूत्तरतः...." पद्य, पञ्चसिद्धान्तिका।

(15) चन्द्रप्रज्ञप्ति, पृ. २०४–२१०

22

जैन आचारसंहिता और पर्यावरण शुद्धि

डॉ. निरंजना बोरा

पर्यावरण का प्रदूषण आजकी वैश्विक समस्या है। सांप्रत समयकी उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रकृति के तत्त्वों का स्वच्छंद रूप से उपयोग हो रहा है। मनुष्य अपनी क्षुद्र वृत्तियों – वासनाओं की तृप्ति के लिए प्राकृतिक तत्वों का मनचाहे ढंग से, उपभोग और विनाश कर रहा है। इससे पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति, तेज (अग्नितत्त्व) में एक प्रकार की रिक्तता और विकृति भी उत्पन्न होती जा रही है। विशाल परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण समग्र सजीव सृष्टि और मानवजाति के अस्तित्व का प्रश्न है। आज हमें चकाचौंध करनेवाले आर्थिक और भौतिक विकास के मार्गमें सबसे बड़ा प्रश्न चिन्ह है पर्यावरण का। विज्ञानकी शक्ति के सहारे उपभोग की अमर्यादित सामग्री उत्पन्न होती जा रही है। मनुष्य सुख ही सुख के स्वप्नों में विहरता है। लेकिन इस साधनसामग्री के अमर्यादित और असंयत उपभोग ने हमें पर्यावरण के बहुत बड़े प्रश्नार्थ चिन्ह के सामने खड़ा कर दिया है।

वायु और जलप्रदूषण, ओझोन वायुके स्तर का नष्ट होना, पक्षी और प्राणियों की कई जातियों का अंत होना, इन सबके बारे में गंभीरता से सोच–विचार कर ठोस रूप से कार्य करना पड़ेगा। पर्यावरण का प्रश्न जीवनशैली का प्रश्न बन गया है। आर्थिक और भौतिक विकास के क्षेत्र में मनुष्यने प्रकृतिसे न केवल सहायता ली है, आवश्यक मात्रा मे प्रकृति के तत्त्वों का उपयोग करने के बजाय उसका शोषण किया है। बल्कि महात्मा गांधीजीने बताया है कि मनुष्य को भविष्य के लिये सुरक्षित रखनी चाहिये–ऐसी कुदरती संपत्ति का सुख–सुविधा को वर्तमान में ही खर्च कर दिया है।

प्रकृति नानाविध स्वरूप द्वारा अपने आप को अभिव्यक्त करती है। गांधीजी की दृष्टि से प्रकृति जीवंत है और जल, वायु तथा आहारकी आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाला जीवनप्रद स्रोतरूप है जो मानवजीवन और संस्कृति प्रकृति पर निर्भर है।

हमारे ऋषिमुनि क्रान्त–दृष्टा थे। उन्होंने प्रकृति के तत्त्वों के साथ समन्वित रुप से मनुष्य–जीवन की एक आदर्श व्यवस्था का आयोजन किया था, जिसमें अन्य प्राणियों के जीवन की सुरक्षा भी निहित थी। अहिंसक और मैत्रीपूर्ण जीवनव्यवहार में सब सुरक्षित विकासशील और प्रगति के पंथ पर आगे बढ़ते जा रहे थे – प्रकृति का भी उसमें साथ सहयोग था।

जैन आचारसंहिता की दृष्टि से पर्यावरण की समतुला की समस्या आसानी से हल की जा सकती है। जैन आचारमें निर्देशित व्रत केवल सिद्धांत के विषय नहीं है। उसमें आचार ही का महत्त्व है। पर्यावरण की दृष्टि से जैनदर्शन का १. अहिंसा, २. अपरिग्रह और भोगोपभोगपरिमाण तथा ३. मैत्रीपूर्ण जीवनव्यवहार के आचार विषयक नियम ज्यादा उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

जैन साधना में धर्म के दो रूप माने गये हैं। एक श्रुतधर्म और दूसरा चारित्रधर्म। श्रुतधर्म का अर्थ है जीवादि नव तत्त्वों के स्वरूपका ज्ञान और उनमें श्रद्धा और चारित्रधर्म का अर्थ है संयम और तप। जैन साधु और गृहस्थ श्रावक दोनों धर्मों का पालन करते हैं, फर्क इतना ही है कि साधु इसे महाव्रतादि रूपसे समग्रतया उसका पालन करते हैं, जबकि श्रावक अणुव्रतादि रूप से आंशिक रूप में पालन करते हैं।

आचारांग में अहिंसा के सिद्धांत को मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया गया है। उसमें अहिंसा को आर्हत् प्रवचन का सार और शुद्ध एवं शाश्वत धर्म बताया गया है। सर्वप्रथम हमें यह विचार करना है कि अहिंसा को ही धर्म क्यों माना जाय? सूत्रकार इसका बड़ा मनोवैज्ञानिक उत्तर प्रस्तुत करता है; वह कहता है कि सभी प्राणियों में जिजीविषा प्रधान है, पुनः सभी को सुख अनुकूल और दुःख प्रतिकूल हैं। अहिंसा का अधिष्ठान यही मनोवैज्ञानिक सत्य है। अस्तित्व और सुख की चाह प्राणी स्वभाव है।

महावीर स्वामीने कहा है 'सव्वे सत्ता न हंतवा' – किसी भी प्राणी का वध नहीं करना चाहिये। साधु और श्रावकों के आचार के अधिकांश नियम इस दृष्टि से ही तय किए गये हैं। जैसे कि वनस्पति के जीव और उसके आश्रित जीवों की हिंसा के दोष से मुक्त रहने के लिये साधुओं के लिये तो कंदमूल, शाकसब्जी जैसा आहार वर्ज्य माना गया है। गृहस्थ श्रावकों के लिये पर्वादि दिनों पर उसका निषेध है।

रात्रिभोजन सामान्य रूप से अनुचित तो है ही। रात्रिके समय सूर्यप्रकाश नहीं होने के कारण वातावरण में जीवजंतु की उत्पत्ति–उपद्रव बढ़ जाते हैं। (सूर्यप्रकाश में ऐसी शक्ति है जो वातावरण का प्रदूषण और क्षुद्र जीवजंतुओं का नाश करती है।) इन जंतुओं की हिंसा के भयसे रात्रिभोजन वर्ज्यमान माना गया है।

साधुओं के लिये वर्षा की ऋतु में एक ही जगह निवास करनेका आदेश है, ताकि मार्ग में चलने से छोटे जीव–जंतु कुचल न जायें।

जैनदर्शन में यह अहिंसा और सर्व जीवों के प्रति आत्मभावका विशेषरूप से उपदेश दिया गया। वनस्पति भी सजीव होने के नाते अन्य जीव–जन्तुओं के साथ, उसके प्रति भी अहिंसक आचार–विचार का प्रतिपादन किया गया। एक छोटे से पुष्प को शाखा से तोड़ने के लिये निषेध था – फिर जंगलों को काँटनेकी तो वात ही कहाँ? जलमें भी बहुत छोटे छोटे जीव होते हैं– अतः जलका उपयोग भी सावधानी से और अनिवार्य होने पर ही करने का आदेश दिया गया। रात्रि के समय दीप जलाकर कार्य करने का भी वहाँ निषेध है। दीपक के आसपास अनेक छोटे छोटे जंतु उड़ने लगते हैं और उनका नाश होता है, अतः जीवहिंसा की दृष्टि से दीपक के प्रकाशमें कार्य करना निंदनीय माना गया।

जैनदर्शन की आचारसंहिता के निषेधों के कारण स्वाभाविक ढंग से ही वनस्पति, जल, अग्नि आदि तत्त्वों का उपयोग मर्यादित हो गया।

इन आचारगत नियमों के कारण वनस्पति और जीव–जंतु तथा अन्य प्राणियों की रक्षा होती है।

जैन दर्शन में हिंसा के चार रूप माने गये हैं–

१. संकल्पना (संकल्पी हिंसा) – संकल्प या विचारपूर्वक हिंसा करना। यह आक्रमणात्मक हिंसा है।

२. विरोधजा – स्वयं और दूसरे लोगों के जीवन एवं सत्वों (अधिकारों) के रक्षण के लिए विवशतावश हिंसा करना। यह सुरक्षात्मक हिंसा है।

३. उद्योगजा – आजीविका उपार्जन अर्थात् उद्योग एवं व्यवसाय के निमित्त होनेवाली हिंसा। यह उपार्जनात्मक हिंसा है।

४. आरम्भजा– जीवन–निर्वाह के निमित्त होने वाली हिंसा – जैसे भोजन का पकाना। यह निर्वाहात्मक हिंसा है।

जहाँ तक उद्योगजा और आरम्भजा हिंसा की बात है, एक गृहस्थ उससे नहीं बच सकता, क्योंकि जब तक शरीर का मोह है, तब तक आजीविका का अर्जन और शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति होने ही आवश्यक है। यद्यपि इस स्तर पर मनुष्य अपने को त्रस प्राणियों की हिंसा से बचा सकता है। जैन धर्म में उद्योग–व्यवसाय एवं भरण–पोषण के लिए भी त्रस जीवों की हिंसा करने का निषेध है।

चाहे वेदों में 'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः' (ऋग्वेद, ६, ६५, १४) के रूप में एक दूसरे की सुरक्षा की बात कही गई हो अथवा 'मित्रास्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' (यजुर्वेद, ३६, १८) के रूप में सर्वप्राणियों के प्रति मित्र–भाव की कामना की गई हो किंतु वेदों की यह अहिंसक चेतना भी मानवजाति तक ही सीमित रही है। मात्र इतना ही नहीं, वेदों में अनेक ऐसे प्रसंग है जिनमें शत्रु–वर्ग के विनाश के लिए प्रार्थनाएँ भी की गई हैं। यज्ञों में पशुबलि स्वीकृत रही। 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' का उद्घोष तो हुआ, लेकिन व्यावहारिक जीवन में वह मानव–प्राणी से अधिक उपर नहीं उठ सका। श्रमण परम्पराएँ इस दिशा में और आगे आयीं और उन्होंने अहिंसा की व्यावहारिकता का विकास समग्र प्राणी–जगत् तक करने का प्रयास किया।

वानस्पतिक और सूक्ष्म प्राणियों की हिंसा को भी हिंसा माना जाने लगा था। मात्र इतना ही नहीं, मनसा, वाचा, कर्मणा और कृत, कारित और अनुमोदित के प्रकारभेदों से नवकोटिक अहिंसा का विचार प्रविष्ट हुआ, अर्थात् मन, वचन और शरीर से हिंसा नहीं करना, करवाना नहीं और करनेवाले का अनुमोदन भी नहीं करना। उपासकदशांग सूत्रमें आनदादि धनाढ्य उपासक कैसी अनासक्तिसे संपत्ति का त्याग और परिमाण करते हैं इसके सुंदर अनुकरणीय दृष्टांत मिलते हैं। गृहस्थ श्रावक अपनी उपलब्ध संपत्ति के उपभोग के लिये अपने आप नियंत्रण रखता है।

गृहस्थ जीवन में कभी कभी हिंसा अपरिहार्य इर्यापथिक भी हो जाती है। तब भी संयम और इच्छाओं के नियंत्रण से उससे विरत हो सकते हैं। आजीविका के बारे में पंद्रह कर्मदान के अतिचार बताये गये हैं जो पर्यावरणकी समतुला के लिए भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। उपासकदशांग सूत्र में भी इसका उल्लेख मिलता है–

कर्मादान

१. अंगारकर्म– लकड़ी से कोयले बनाकर बेचने का व्यवसाय,

२. वन कर्म– जंगलों को ठेके पर लेकर वृक्षों को काटने का व्यवसाय,

३. शकट कर्म– अनेक प्रकार के गाड़ी, गाड़े, मोटर, ट्रक, रेलवे के इन्जन आदि वाहन बनाकर बेचना,

४. भाटक कर्म– पशु तथा वाहन आदि किराये पर देना तथा बड़े बड़े काम आदि बनवाकर किराये पर देना,

५. स्फोटकर्म– सुरंग आदि का निर्माण करने का व्यवसाय,

६. दन्तवाणिज्य– हाथी दाँत, पशुओं के नख, रोम, सींग, आदि का व्यापार,

७. लाक्षा वाणिज्य– लाख का व्यापार (लाख अनेक त्रस जीवों की उत्पत्ति का कारण है, अतः इस व्यवसाय में अनन्त त्रस जीवों का घात होता है),

८. रस वाणिज्य– मदिरा, सिरका आदि नशीली वस्तुएँ बनाना और बेचना,

९. विष वाणिज्य– विष, विषैली वस्तुएँ, शस्त्रास्त्र का निर्माण और विक्रय,

१०. केश वाणिज्य– बाल व बाल वाले प्राणियों का व्यापार,

११. यन्त्र–पीड़न कर्म– बड़े–बड़े यन्त्रों–मशीनों को चलाने का धन्धा,

१२. निर्लाच्छन कर्म– प्राणियों के अवयवों को छेदने और काटने का कार्य,

१३. दावाग्निदान कर्म– वनों में आग लगाने का धन्धा,

१४. सरोह्यदतड़ागशोषणता कर्म– सरोवर, झील, तालाब आदि को सुखाने का कार्य,

१५. असतीजनपोषणता कर्म– कुलटा स्त्रियों–पुरुषों का पोषण, हिंसक प्राणियों (बिल्ली, कुत्ता आदि) का पालन और समाज विरोधी तत्त्वों को संरक्षण देना आदि कार्य।

आज जब हम पर्यावरण के संदर्भ में जंगलों का उजड़ना, खनिज संपत्ति और जल आदिकी रिक्तता के बारे में सोचते हैं, तब आजीविका के इन पंद्रह अतिचारकी महत्ता हम समझ सकते हैं। उन कर्मों का निषेध अनेक तरह से पर्यावरणकी सुरक्षा के लिये उपकारक है।

लकड़ी आदि काटकर कोयले आदि बनाने से वनस्पति का भी नाश होता है और उसे जलने से वायु भी प्रदूषित होती है। पशुओं को किराये पर देना या बेचना भी अधर्म माना गया है। यहाँ अहिंसा के साथ अनुकंपा और सहिष्णुता का भाव भी निहित है। पशुओं के दांत, बाल, चर्म, हड्डी, नख, रोम, सींग और किसी भी अवयव का काटना और इससे वस्तुओं का निर्माण करके व्यापार करना निषिद्ध है।

आज हम हाथीदांत और अन्य प्राणीयों के चर्म, हड्डी आदि से सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माण के लिये अनियंत्रित ढंग से प्राणियों की हत्या करते हैं।

वन–जंगल आदि केवल वृक्ष का समूह वनस्पतिका उद्‌भवस्थान ही नहीं है, लेकिन पृथ्वी पर के अनेक जीवों के जन्म, जीवन और मृत्यु के परस्पर अवलंबनरूप इकाई हैं। वास्तविक दृष्टि से पृथ्वी के सर्व जीवों के वृक्ष–वनस्पति सहित परस्पर अवलंबनरूप, एक आयोजनबद्ध व्यवस्था है मनुष्य ने अपने स्वार्थवश कुदरत की यह परपस्परावलंबन की प्रक्रिया में विक्षेप डाला है। निष्णात लोगों का मत है कि प्रत्येक सजीव का पृथ्वी के संचालन में अपना योगदान है. लेकिन आज पृथ्वी पर का जैविक वैविध्य कम होता जा रहा है। वन और वनराजि–जीवजंतु, पशुपक्षी आदि का बड़ा आश्रयस्थान है। लेकिन जंगल के जंगल ही जब काटे जा रहे हैं, तब उसमें रहनेवाले पशु–पक्षियों की सलामती कैसे रहेगी? सौंदर्य प्रसाधनों के उत्पादनके लिए हाथी, वाघ, मगर, सर्प आदिकी निर्मम हत्या की जाती है। कीटनाशक दवाओं से भी असंख्य जीव–जंतुओं का नाश होता है। वनसृष्टि के विनाश से उपजाऊ जमीन भी बंजर बन जाती है, रेगिस्तान का विस्तार बढ़ता है।

जमीनको खोदने से उसमें रहनेवाले जीवों की हिंसा होती है इसलिये सुरंग आदि बनाना और खनिज संपत्ति

का व्यापार करने का भी निषेध है। इस नियम का पालन करने से जीवों की रक्षा के साथ खनिज संपत्ति का अनावश्यक उपयोग भी नही होगा। मदिरा जैसी नशीली वस्तु व्यक्ति और समष्टि का अहित करती हैं। और तालाब सरोवर आदिका जल सुखाने के लिये जो निषेध किया गया है वह जलकाय जीवों की विराधना से मुक्त रखता है साथमें जल की कमी भी महसूस नहीं होगी। बड़े बड़े यंत्र चलाने का व्यवसाय भी आवश्यक नहीं है। आज हम देखते हैं की औद्योगीकरण से हमें अनेक प्रकार की सुविधायें उपलब्ध होती हैं, लेकिन इसी के कारण शायद, पर्यावरण को सबसे बड़ी हानि पहुँची है।

केमिकल उद्योग और कुदरती तेल आधारित– जिसे पेट्रोकेमिकल संकुलन कहा जाता है, – ऐसे उद्योगो में प्रदूषण की समस्या अनिवार्यरूप से होती है।

जल, वायु और पर्यावरणीय प्रदूषण को दूर रखने के लिए औद्योगिक इकाई आदि पर सरकार द्वारा अंकुश रखने का आरंभ तो हुआ है, लेकिन जब तक वैयक्तिक रूपसे इच्छाओं पर अंकुश नहीं होगा, अहिंसा और अपरिग्रहका पालन नहीं होगा, तब तक अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। व्यक्ति के लिए जीवन निर्वाह के लिए कितनी चीजें आवश्यक हैं, उसे कितनी प्राप्त हो सकती हैं, उत्पादन प्रक्रिया में जीवसृष्टि के लिए आधाररुप हवा, पानी, जमीन और वनस्पतिको कितनी हानि होती है, उसका परिप्रेक्षण करना चाहिए। यंत्र–सामग्री, वाहन–व्यवहार के साधनों के अपरिमित उपयोग से ध्वनि–प्रदूषण की समस्या भी हमारे सामने आई है।

जैनदर्शनमें अग्निकाय और अग्निको सजीव माना गया है। आचारांग निर्युक्तिकार ने अग्नि सजीव होने के लक्षणरूप से खद्योत का दृष्टांत दिया है। खद्योत (जूगनू) अपनी सजीव अवस्थामें ही प्रकाश दे सकता है। मृत्यु के बाद वह प्रकाशरहित हो जाता है। प्रकाशित होना, वह उसके चैतन्यका लक्षण है। इस तरह अग्निका उष्ण स्पर्श भी उनके सजीव होने का लक्षण है। श्रीदशवैकालिक सूत्र में 'दशपूर्वधर सूत्रकार श्री शय्यंभवसूरिजी'ने बताया है कि किसी भी साधु–साध्वी के लिए अग्नि, अंगार, मुर्मुर, अर्चि, ज्वाला, शुद्ध अग्नि, विद्युत, उल्का आदिको प्रदीप्त करना निषिद्ध है। उसमें घी और ईंधन का उत्सिंचन नहीं करना चाहिए। वायु से ज्यादा प्रज्वलित करने का प्रयास और उसे बुझाने का प्रयास भी नहीं करना चाहिए। इसे करने से तेजकायकी विराधना–हिंसा का दोष होता है। आज हम जंगलों को काटकर कोयले बनाने का व्यवसाय करते हैं, जलसे उत्पन्न विद्युत का और गैसका अनियंत्रित उपयोग हो रहा है। इससे वनस्पति और जल संबंधित प्रदूषण के साथ साथ वायुका प्रदूषण भी बढ़ गया है।

वर्तमान में वैज्ञानिकों ने विकसित और विकासशील देशों द्वारा आकाशमें बार बार उपग्रहों को छोड़ने के बारे में और अवकाशमें होनेवाले प्रयोगों के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त की है। उपग्रहों और आवकाशी प्रयोगों द्वारा स्पेस शटल के ज्यादातर उपयोगसे, सूर्यके पारजांबली किरणों (Ultraviolate), जो मनुष्य और समग्र प्राणीसृष्टि के लिए हानिकारक है, उसे रोकनेवाला ओझोन वायुका स्तर नष्ट हो जायेगा और सूर्य के पारजांबली किरण से सजीव सृष्टि का नाश होगा। सूर्य से मानो अग्निकी वर्षा होगी।

मुनिश्री नंदीघोष विजयजीने अपनी 'जैनदर्शन : वैज्ञानिक दृष्टिसे' पुस्तकमें (पृ. १९९)में इस तरह लिखा है–

''जैन दृष्टिसे निर्देशित कालविभाजन के अनुसार छट्ठा आरा वर्णनमें बताया गया है कि उसी समयमें अग्निकी वर्षा होगी. नमक आदि क्षारों की वर्षा होगी, जो विषाक्त होगी। उससे पृथ्वीमें हाहाकार होगा। इस तरह

से पृथ्वीका प्रलय होगा। मनुष्य आदि लोग दिनमें वैताढ्यपर्वतकी गुफामें रहेंगे और रात्रिके समय ही बाहर निकलेंगे। सब मांसाहारी होंगे।''

आज के पर्यावरणवादियों ने ओझोन वायु के नष्ट होते जाते स्तरके बारे में जो चिंता व्यक्त की है, उसीका संदर्भ तो यहाँ नहीं मिल रहा है?

ब्रह्मांडकी कोई भी क्रिया उसके अपने नियमों से विरुद्ध कभी नहीं होती है। ब्रह्मांडकी संरचना और विभिन्न क्रिया–प्रतिक्रिया के अवलोकन करने के बाद ही हमारे पूर्वाचार्योंने सही जीवन के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया था। प्रकृति के साथ मेल–जोल से जीवनयापन करने की व्यवस्था ही मनुष्य के वर्तमान और भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

जैनदर्शन में उपदेशित अपरिग्रह, परिग्रहपरिमाणव्रत अथवा इच्छापरिमाण व्रत भी महत्त्वपूर्ण है।

गृहस्थ साधक को अपने रोजबरोजके जीवन में उपयोगी चीजों के परिग्रहकी मर्यादा निश्चित करनी होती है – जैसे साधना की दृष्टि से इच्छा का परिसीमन अति आवश्यक है। जैन विचारणा में गृहस्थ साधक को नौ प्रकार के परिग्रह की मर्यादा निश्चित करनी होती है– १.क्षेत्र– कृषि भूमि अथवा अन्य खुला हुआ भूमि भाग, २. वास्तु– मकान आदि अचल सम्पत्ति, ३. हिरण्य– चांदी अथवा चांदी की मुद्राएँ, ४. स्वर्ण– स्वर्ण अथवा स्वर्ण मुद्राएँ, ५. द्विपद– दास दासी– नौकर, कर्मचारी इत्यादि, ६. चतुष्पद–पशुधन, ७. धन–चल सम्पत्ति, ८. धान्य–अनाजादि, ९. कुप्य– घर गृहस्थी का अन्य सामान।

साधक वैयक्तिक रूप से भी अपने जीवनकी दैनिक क्रियाओं जैसे आहार–विहार अथवा भोगोपभोग का परिमाण भी निश्चित करता है। जैन परम्परा इस संदर्भमें अत्याधिक सतर्क है। व्रती गृहस्थ स्नान के लिए कितने जलका उपयोग करेगा, किस वस्त्रसे अंग पोंछेगा यह भी निश्चित करना होता है। दैनिक जीवन के व्यवहार की उपभोग–परिभोग की हरेक प्रकारकी चीजों की मात्रा और प्रकार निश्चित किये जाते हैं।

इस तरह बाह्य चीज–वस्तुओं के संयमित और नियंत्रित उपयोग से पर्यावरण का संतुलन हो सकता है। लेकिन यह नियंत्रण व्यक्ति को अपने आप सिद्ध करना होगा। इसके लिए उसे क्रोधादि कषायों से मुक्त होना पड़ेगा। राग, अहंता, क्रोध, गर्व आदि कषायों पर विजय पाने के बाद ही व्यक्तिकी चेतना अपने और पराये के भेद से उपर उठ जाती है। और 'आयतुल पायासु'– अन्य में भी आत्मभावकी अनुभूति करती है। अहिंसक आचरण के लिए मनुष्य के मनमें सर्व के प्रति मैत्रीभावना, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना सदा जागृत होनी चाहिये, अन्यथा उसका व्यवहार स्व–अर्थको सिद्ध करनेवाला ही होगा, जो सामाजिक जीवनमें विषमता उत्पन्न कर सकता है।

व्यक्तिकी आंतरिक विशुद्धि ही प्राकृतिक और सामाजिक जीवनमें संवादिता की स्थापन कर सकती है। यह संवादिता ही पर्यावरण विशुद्धि का पर्याय भी बन सकती है।

23

जैन द्रव्यानुयोग एवं आधुनिक विज्ञान : एक सूक्ष्म चर्चा

डॉ. पारसमल अग्रवाल

प्रोफेसर भौतिक विज्ञान(Retd.)

आधुनिक विज्ञान एवं जैन दर्शन दोनों में महत्त्वपूर्ण मूलभूत समानता यह है कि दोनों यह मानते हैं कि किसी भी द्रव्य का निर्माता या विनाशक कोई भी नहीं है। इस सृष्टि में, जैन दर्शन के अनुसार, जितनी संख्या में आत्माएं हैं वे सदैव उतनी ही रहती हैं व जितनी संख्या में पुद्गल परमाणु हैं वे भी उतने ही रहते हैं (पुद्गल परमाणु आधुनिक विज्ञान में परिभाषित एटम (atom) से बहुत बहुत सूक्ष्म होता है)। विज्ञान का ऊर्जा अविनाशिता का नियम इसी तरह के तथ्य को व्यक्त करता है।

उक्त कथन का अर्थ यह नहीं है कि आधुनिक विज्ञान या जैन दर्शन की शब्दावली में विनाश एवं निर्माण जैसे शब्द नहीं हैं। दोनों में विनाश एवं निर्माण की भी चर्चा होती है। सोने के कंगन को जब स्वर्णकार गलाकर सोने के हार में बदलता है तब यह कहा जाता है कि सोने के हार का निर्माण स्वर्णकार ने किया है। सोने के कंगन का विनाश हुआ है। परन्तु जैसे यह नहीं कहा जाता है कि सोने का निर्माण स्वर्णकार ने किया है, उसी तरह आधुनिक विज्ञान एवं जैन दर्शन उस अविनाशी को सदैव ध्यान में रखते हैं जहां किसी के निर्माण एवं विनाश के होने पर भी वह ज्यों का त्यों रहता है। आचार्य उमास्वामी ने निम्नांकित सूत्रों द्वारा इस तथ्य को निरूपित किया है–

सद्द्रव्य लक्षणम् ॥ *तत्त्वार्थसूत्र 5.29*

उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ॥ *तत्त्वार्थसूत्र5.30*

इन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि द्रव्य का लक्षण सतपना है एवं सत वह है जो उत्पाद एवं व्यय सहित ध्रुव हो।

यह विषय महत्त्वपूर्ण एवं गहन है। कई तरह समझने में भूलें हो सकती हैं, अतः विशेष विस्तार हेतु प्रश्न–उत्तर प्रक्रिया द्वारा कुछ तथ्यों को समझना उचित होगा।

प्रश्न 1 : सोने के कंगन के सोने के हार में बदलने में सोने का विनाश एवं निर्माण नहीं होता है किन्तु कोयले के जलने में कोयले का विनाश होता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार कोयले के जलने में कौन शाश्वत रहता है?

उत्तर : रसायन विज्ञान यह अच्छी तरह बताता है कि कोयले का मुख्य भाग कार्बन

होता है जिसके हवा में जलने से कार्बन डाइआक्साइड गैस एवं ऊष्मा पैदा होती है। इसके अतिरिक्त कोयले में अन्य कोई तरह के रासायनिक पदार्थ होते हैं जो हवा से संयोग करके कई तरह की गैसें व राख बनाते हैं। किन्तु इस जलने की क्रिया में एक भी रासायनिक परमाणु का विनाश या निर्माण नहीं होता है। कार्बन के जलने के बाद भी कार्बन की उतनी ही मात्रा कार्बन डाइऑक्साइड गैस में रहती है।

प्रश्न 2 : आपने उक्त उत्तर में बताया कि जलने की क्रिया में किसी भी रासायनिक परमाणु का विनाश या निर्माण नहीं होता है। किन्तु परमाणु विस्फोट के समय यूरेनियम परमाणुओं का विनाश होकर छोटे छोटे नये रासायनिक परमाणुओं का निर्माण होता है। वहां शाश्वत कौन है?

उत्तर : वहां ऊर्जा शाश्वत हैं। ऊर्जा, ध्वनि, प्रकाश, सोना, मिट्टी, यूरेनियम आदि कई रूपों में होती है। प्रकाश की ऊर्जा का एक कण रासायनिक परमाणु की तुलना में बहुत सूक्ष्म होता है। जैसे : हाइड्रोजन के एक रासायनिक परमाणु की ऊर्जा सोडियम से निकले हुए पीले प्रकाश के एक कण (फोटॉन) की ऊर्जा से 44.4 करोड़ गुना होती है।

प्रश्न 3 : क्या आधुनिक विज्ञान के अनुसार उक्त प्रकाश की ऊर्जा का कण सबसे छोटा कण है?

उत्तर : नहीं। सोडियम से निकले हुए पीले प्रकाश के एक कण की ऊर्जा 509 किलो हर्टज के रेडियो ट्रांसमीटर से निकली हुई रेडियो तरंग के एक कण से एक अरब गुना अधिक होती है। यानी जिसे हम प्रकाश ऊर्जा का सूक्ष्म कण कहते हैं वह भी स्थूल है व कई सूक्ष्म कणों के रूप में बदल सकता है।

प्रश्न 4 : आधुनिक विज्ञान के अनुसार क्या ऐसा कोई छोटे से छोटा कण है जिसे आधार माना जा सकता हो व समस्त पदार्थ उस तरह के कई कणों के संयोग के रूप में समझे जा सकते हों? जैन दर्शन में इस तरह के कण को क्या कहा जाता है?

उत्तर : आधुनिक विज्ञान अभी तक इतने सूक्ष्म कण तक नहीं पहुँचा है। मूलभूत कणों (Elementary Particles), क्वार्क (Quark), ग्लुआन (Gluon) आदि का विवरण आज के भौतिक विज्ञान में पाया जाता है। नवीन अनुसंधान संभवतया कभी सूक्ष्मतम कण की तरफ ले जाने में समर्थ हो सकेंगे। प्रश्न में जिस तरह के सूक्ष्मतम मूलभूत कण की बात की गई है उसे जैन दर्शन में "अविभागी पुद्गल परमाणु" या 'पुद्गल परमाणु' या 'परमाणु' या 'अणु' नामों से व्यक्त किया जाता है। दो या दो से अधिक पुद्गल परमाणुओं के समूह को स्कन्ध कहा जाता है। जैन दर्शन के अनुसार प्रकाश या रेडियो तरंगों से भी अत्यन्त सूक्ष्म कर्म–वर्गणा होती है। यह कर्म–वर्गणा भी स्कन्ध हैं, यानी एक पुद्गल परमाणु तो कर्म–वर्गणा से भी सूक्ष्म होता है।

प्रश्न 5 : क्या उक्त अविनाशी पुद्गल परमाणु का अस्तित्व आधुनिक विज्ञान सम्मत है?

उत्तर : कुल मिलाकर ऊर्जा अविनाशिता का नियम एवं पुद्गल परमाणुओं की कुल संख्या की शाश्वतता का नियम संभवतया एक ही तथ्य को निरूपित करते हैं। जो कुछ भी भौतिक एवं रासायनिक क्रिया में होता है वह जैन दर्शन के अनुसार पुद्गल परमाणुओं के संयोग–वियोग से होता है। यह तथ्य भी आधुनिक विज्ञान से मेल खाता है। मूलतः (पुद्गल परमाणु का) विनाशक या निर्माता कोई नहीं है जैन दर्शन का यह तथ्य भी आधुनिक विज्ञान का आधार स्तम्भ है। भौतिक पदार्थ का सूक्ष्मतम खण्ड कितना सूक्ष्म हो सकता है इसकी सीमा भौतिक विज्ञान अभी नहीं जान सका है। जब आधुनिक भौतिक विज्ञान सूक्ष्मतम खण्ड को समझ लेगा (कब? कुछ नहीं कहा जा सकता है!) व ऐसे सूक्ष्मतम खण्ड को किसी यंत्र द्वारा परख सकेगा, तब भी यदि कर्म वर्गणा जैसे स्कन्ध प्रयोगशाला में पकड़ में न आए तब यह कहने की संभावना बनती है कि पुद्गल परमाणु का अस्तित्व भौतिक

विज्ञान सम्मत नहीं है। यानी आज की स्थिति में समर्थन की दिशा में कई बिन्दु हैं, विरोध की दिशा में कोई भी बिन्दु नहीं है।

प्रश्न 6: 'सोना पुद्गल द्रव्य है' – क्या यह कथन उचित है?

उत्तर : यदि इस कथन का उद्देश्य यह बताना हो कि सोना जीवद्रव्य न होकर पुद्गल है तो इस अपेक्षा यह कथन उचित है। यदि इस कथन से यह अर्थ बताने का भाव हो कि सोना द्रव्य होने के कारण शाश्वत होना चाहिए तो यह कथन त्रुटिपूर्ण होगा। जैसाकि पूर्व में कहा गया है– द्रव्य वह है जो सत हो, व सत वह है जो उत्पाद, विनाश एवं ध्रुव युक्त हो। पुद्गल का एक परमाणु शाश्वत (ध्रुव) रहता है किन्तु उसकी अवस्था (पर्याय) प्रति समय बदलती रहती है। यानी पुद्गल परमाणु अवस्था की अपेक्षा से उत्पाद एवं विनाश को प्राप्त होता है किन्तु पुद्गल परमाणु के रूप में शाश्वत रहता है। अतः पुद्गल परमाणु सत है व द्रव्य है। जिसे हम सोना कहते हैं उसका एक कण (रासायनिक परमाणु) भी कई पुद्गल परमाणुओं का समूह या स्कन्ध है। उसमें प्रत्येक परमाणु सत है किन्तु समूह सत नहीं है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि सोने का एक कण कई पुद्गल परमाणुओं के एक विशेष रूप में एकत्रित समूह का नाम है। वे ही पुद्गल परमाणु अन्य रूप में एकत्रित होकर चांदी या लोहा या और कुछ भी नाम पा सकते हैं चूंकि मसूह का शाश्वत होना अनिवार्य नहीं है अतः इस अपेक्षा से सोना शाश्वत नहीं है।

इस तरह एक अपेक्षा से सोना पुद्गल द्रव्य कहा जा सकता है व एक अपेक्षा से पुद्गल द्रव्य नहीं है। इन दोनों तथ्यों को अनेकान्त शैली में यों कहा जाता है कि सोना निश्चय से पुद्गल द्रव्य नहीं है किन्तु व्यवहार से पुद्गल द्रव्य है। आचार्य कुन्दकुन्द ने सूत्र रूप में नियमसार गाथा 29 में यही तथ्य इस रूप में समझाया है कि निश्चय से अविभागी पुद्गल द्रव्य है किन्तु व्यवहार से स्कन्ध भी पुद्गल द्रव्य है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान में जब नाभिकीय भौतिकी में एक विद्यार्थी यह पाता है कि हाइड्रोजन के एटम हीलियम में बदले जा सकते हैं या यूरेनियम के एटम प्लूटोनियम में बदले जा सकते हैं या अन्य किसी तरह से सोने के एटम अन्य धातु में बदले जा सकते हैं तब पुद्गल परमाणु की अविनाशिता का खण्डन नहीं होता है।

यहाँ एक तथ्य और ध्यान देने योग्य है, रसायन विज्ञान में सोने के एटम के विनाश एवं निर्माण की बात नही की जाती है किन्तु नाभिकीय भौतिकी में सोने के एटम के विनाश एवं निर्माण की चर्चा होती है व अध्ययन का विषय बनता है। सोने का एटम एक तरह से रसायन विज्ञान में शाश्वत है किन्तु नाभिकीय भौतिकी में अशाश्वत है। इस दृष्टि से ये दोनों विज्ञान परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। ज्ञानी को विरोध नजर नहीं आता है क्योंकि वह जान रहा होता है कि किस अपेक्षा से सोने का एटम अविनाशी है व किस अपेक्षा से विनाशी।

इस चर्चा का उद्देश्य कई विरोधाभासों को सुलझाने में उपयोगी हो सकता है। जैसे यह प्रश्न उक्त चर्चा के प्रकाश में हल हो सकता है कि जीव यदि शाश्वत होता है व प्रत्येक मनुष्य यदि जीव है तो प्रत्येक मनुष्य भी शाश्वत होना चाहिए। किन्तु यह देखा जाता है कि प्रत्येक मनुष्य अशाश्वत है। ऐसा क्यों?

कुल मिलाकर इस तरह की शाश्वत–अशाश्वत की गुत्थी को सुलझाने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह समझें कि प्रत्येक आत्मा एक जीव द्रव्य है, प्रत्येक पुद्गल परमाणु एक पुद्गल द्रव्य है। ऐसा कथन करते समय जीव एवं पुद्गल को और अधिक सूक्ष्मता से समझते रहने की आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक शाश्वत जीव द्रव्य एवं शाश्वत पुद्गल द्रव्य दृष्टि में न जायें। जब तक विनाशी जीव एवं विनाशी पुद्गल ही नजर आते रहेंगे तब तक यह मान लेना है कि न तो जीव द्रव्य समझ में आया है और न पुद्गल द्रव्य समझ में आया है।

शाश्वत जीव द्रव्य एवं शाश्वत पुद्गल द्रव्य का अस्तित्व हमें एक प्राणी में नजर आने लगे तब वह समझना चाहिए कि जीव एवं पुद्गल का भेद समझ में आया है। जैन दर्शन में इस समझ को भेद विज्ञान कहा जाता है।

जैसे हार एवं कंगन की पर्याय के बदलने की बात एवं सोने की शाश्वतता की बात करना कठिन नहीं है उसी तरह एक जीव का पुरुष पर्याय से मरण होकर नवीन स्त्री पर्याय में जन्म लेने की बात समझना कठिन नहीं है। ऐसी स्थिति को हम सरलता से समझ लेते हैं कि सुरेश की मृत्यु हुई व संगीता के रूप में उसी जीव का पुनर्जन्म हुआ। किन्तु कठिन बात यह समझना है कि सोना अपने आप में कई पुद्गल परमाणुओं का समूह है व यह समूह (यानी, सोना) शाश्वत नहीं है : इस समूह में जो पृथक्–पृथक् पुद्गल परमाणु हैं वे शाश्वत हैं प्रत्येक पुद्गल परमाणु अपने आप में उसी तरह सोना नहीं है जिस तरह प्रत्येक ईंट अपने आप में मकान या दुकान नहीं होती है। उसी तरहसे आत्मा की अपेक्षा कठिन बात यह समझना है कि जिसे हम सामान्यतया 'जीव' कहते हैं – जो 'जीव' सुरेश के शरीर रूप में था व उससे निकलकर नये संगीता के रूप में प्रकट हुआ– वह 'जीव' जीव द्रव्य व कई–कई वर्गणा के पुद्गल परमाणुओं का समूह है। यह समूह शाश्वत नहीं है। पृथक्–पृथक् रूप से जीव द्रव्य भी शाश्वत है व कर्म–वर्गणा का प्रत्येक पुद्गल परमाणु भी शाश्वत है। जीव एवं कर्म–वर्गणा को मिलाकर समूह रूप 'जीव' को शाश्वत जीव द्रव्य मानना एक बड़ी भूल होगी। इस भूल को निकालने हेतु ही जैनाचार्यों ने विस्तार से समयसार एवं बृहद् द्रव्य संग्रह जैसे ग्रंथों में त्रिकाली ध्रुव (शाश्वत) जीव द्रव्य को रेखांकित किया है।

प्रश्न 7 : जीव के साथ रहने वाला शरीर जीव नहीं है यह हमारे समझ में आता है। जीव के साथ रहने वाली कर्म वर्गणा जीव द्रव्य नहीं है यह भी हमारे समझ में आता है। किन्तु जीव के साथ रहने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि भाव जीव द्रव्य से भिन्न हैं या अभिन्न?

उत्तर : यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है व कई विधियों से मर्म समझने की आवश्यकता है। 'हां' या 'नहीं' उत्तर से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

भौतिक विज्ञान में भी इसी तरह की स्थिति आती है जिसका समाधान करते हुए यह ध्यान में रखा जाता है कि प्रश्न का प्रयोजन क्या है। स्वच्छ विशाल झील में जो पानी दिखाई देता है वही झील का पानी झील से एक बर्तन में निकालने पर नीला नहीं दिखाई देता है। वहां भी यह प्रश्न बनता है कि यह नीलापन किसका? यदि पानी का रंग नीला होता है तो बर्तन में भी वैसा ही दिखना चाहिए था। यदि झील से सारा पानी निकल जाये तो झील भी नीली नहीं दिखाई देती है। अतः झील की जमीन का रंग भी झील के पानी के नीलेपन का कारण नहीं भी है।

इसी प्रकार सूर्य का रंग दोपहर को सफेदी लिए हुए होता है व प्रातःकाल एवं सन्ध्या को लालिमा लिए हुए होता है। क्या सूर्य बदल जाता है? वस्तुतः जो कुछ हमें दिखाई देता है वह न केवल सूर्य अपितु वायुमण्डल आदि के कई तरह के प्रभाव सहित सूर्य दिखाई देता है। जिस समय भारत में सूर्यास्त होते समय सूर्य लाल दिखाई देता है उसी समय वही सूर्य लन्दन में दोपहर के सूर्य के रूप में सफेद चमकीला दिखाई देता है। अतः लालिमा सूर्य की है या नहीं? या सूर्य का रंग लाल है या नहीं? इस तरह के प्रश्नों का उत्तर मात्र 'हां' या 'ना' से समझ में नहीं आ सकता है।

इस वर्णन का सारांश यह है कि दो या दो से अधिक पदार्थों की सम्मिलित 'पर्याय' में कुछ ऐसी विशेषताएं हो सकती हैं जो उनमें से किसी भी पदार्थ में न हो। भौतिक विज्ञान की परंपरा ऐसी स्थिति में सदैव यह जानने की रहती है कि कुल मिलाकर पानी नीला क्यों दिखाई दे रहा है या सूर्य लाल क्यों दिखाई दे रहा है। भौतिक विज्ञान इसमें समय खर्च नहीं करता है कि सूर्य लालिमा युक्त होता है या नहीं।

इस विश्लेषण का प्रस्तुत प्रश्न के सन्दर्भ में महत्त्व यह जानना है कि क्रोध, राग–द्वेष आदि का कारण आत्मा एवं कर्म–वर्गणा का एक साथ विशेष रूप से विद्यमान होना है। राग–द्वेष न तो आत्मा के स्वभाव हैं और न अजीव कर्म–वर्गणा के।

राग और आत्मा की भिन्नता या अभिन्नता के संबंध में जो जिज्ञासा हो सकती है उसका दूसरा प्रयोजन यह हो सकता है कि राग–द्वेष से निवृत्ति हेतु वर्तमान में विद्यमान राग–द्वेष का क्या करें? इस प्रयोजन से पूछे गए प्रश्न का उत्तर विस्तार से आचार्यों ने दिया है। आचार्य समझाते हैं कि अपने को शुद्ध एवं दर्शन–ज्ञान में परिपूर्ण मानकर अपनी ही आत्मा में स्थित रहने से राग–द्वेष क्षय को प्राप्त हो जाते हैं (देखिए समयसार गाथा 73)।

सात तत्वों का निरूपण किया जाता है। वहां आस्रव तत्त्व एवं जीव तत्व की भिन्नताको रेखांकित करना भी उक्त तथ्य की पुष्टि करता है। जिसने राग–द्वेष यानी आस्रव तत्त्व को जीव तत्त्व में सम्मिलित किया है उसने आत्मा को नहीं समझा है व वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। (देखिए समयसार गाथा 201, 202)।

ज्ञानी रागद्वेष को अपना नहीं मानता है (समयसार गाथा 199,200), व अज्ञानी अपना मानता है इस हेतु से भी यह कहा है कि ज्ञानी की आत्मा राग द्वेष से भिन्न व अज्ञानी के राग द्वेष अज्ञानी से अभिन्न होते हैं। (देखिए समयसार गाथा 210, 211, 278–281, 316, 318)।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक वेन डायर भी अपने पाठकों को सांसारिक दुःखों से निर्वृत्ति, आध्यात्मिक आनन्द एवं अच्छे स्वास्थ्य हेतु अपनी पुस्तक 'योअर सेक्रेड सेल्फ' (Your Sacred Self) में यह सुझाव देते हैं कि मस्तिष्क में आने वाले समस्त विकल्पों (राग–द्वेष) को भी अपनी आत्मा से पृथक पदार्थ की तरह साक्षीरूप में देखने का अभ्यास करना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में –

'Try to view your thoughts as a component of your body/mind. Think of thoughts as things. Things that you have the capacity to get outside of and observe.' इसका हिन्दी भावानुवाद निम्नानुसार है :–

''आपके विचारों को आपके शरीर/मन के हिस्से के रूप में देखने का प्रयास करो। ऐसी धारणा बनाओ कि ये विचार वस्तुओं की तरह हैं जिनसे आप बाहर आकर दर्शक की तरह देखने की सामर्थ्य रखते हो।''

इसी तथ्य का विस्तार करते हुए आगे शान्ति प्राप्ति की विधि बताते हुए वेन डायर यह भी लिखते हैं कि पहले तो आप अपने विचारों के दृष्टा बनना चाहोगे, बाद में आप इस तरह के विचारों के दृष्टा वाले भाव के भी दृष्टा होना चाहोगे। उन्हीं के शब्दों से ''First you want to watch your thoughts. Then you want to watch yourself watching your thoughts.''

प्रश्न 8 : जीव द्रव्य एवं पुद्गल द्रव्य के अतिरिक्त और कौन कौन द्रव्य जैन दर्शन में वर्णित किए गए है?

उत्तर : कुल 6 प्रकार के द्रव्य वर्णित हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं : (1) जीव (2) पुद्गल (3) धर्म (4) अधर्म (5) आकाश (6) काल। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि द्रव्यों की संख्या 6 न होकर द्रव्यों के प्रकार की संख्या 6 है। चूंकि प्रत्येक जीव एक द्रव्य है व प्रत्येक पुद्गल परमाणु एक द्रव्य है अतः द्रव्यों की कुल संख्या अनन्तानन्त होती है।

सभी द्रव्यों को अवकाश देने की सामर्थ्य रखने वाला आकाश (Space) जैन दर्शन के अनुसार एक द्रव्य है। द्रव्य की परिभाषा के अनुसार यह भी शाश्वत एवं अनिर्मित या अकृत्रिम है। आकाश का एक भाग ऐसा

होता है जहां केवल आकाश ही होता है व शेष 5 द्रव्य नहीं रहते हैं। ऐसे भाग को अलोकाकाश कहा जाता है। इसके विपरीत जिस भाग में अन्य सभी 5 द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। लोकाकाश का आयतन 343 धन राजु होता है। राजु इकाई कितने प्रकाश वर्ष के बराबर होती है, अनुसंधान का विषय एवं स्वतंत्र लेख का विषय है।

पूरे लोकाकाश में सर्वत्र एक धर्म द्रव्य व एक अधर्म द्रव्य भी निवास करते हैं। ये द्रव्य भी अनिर्मित एवं शाश्वत हैं। अपने आप में प्रत्येक द्रव्य कई गुणों का समूह होता है व उसको कोई बना नहीं सकता है व मिटा नहीं सकता है, उसको बने रहने हेतु किसी अन्य द्रव्य के सहारे की आवश्यकता नहीं होती है, व उसका कोई भी मूल गुण कभी भी समाप्त नहीं हो सकता है। सभी द्रव्य पृथक्–पृथक् होते हुए भी अन्य द्रव्यों की क्रियाओं में निमित्त बनते हैं। जैसे सेब के जमीन पर आने में पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण निमित्त बनता है। सेब एवं पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण तो एक पुद्गल स्कन्ध से दूसरे पुद्गल स्कन्ध के बीच का व्यवहार बताता है। पुद्गल–पुद्गल के अतिरिक्त जीव पुद्गल के बीच एवं इसी तरह अन्य द्रव्यों के बीच भी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार होता है। धर्म द्रव्य का व्यवहार यह होता है कि वह जीव एवं पुद्गल को गमन (Motion) करने में निमित्त होता है। धर्मद्रव्य गमन कराता नहीं है किन्तु गमन करने को उद्यत जीव एवं पुद्गल को गमन कराने में एक अदृश्य शक्ति की तरह निमित्त बनता है। लोकाकाश के बाहर धर्म द्रव्य नहीं है अतः लोकाकाश के बाहर जीव एवं पुद्गल का गमन संभव नहीं होता है। इसी तरह अधर्म द्रव्य का व्यवहार जीव एवं पुद्गल को ठहराने में निमित्त बनने का है। काल द्रव्य भी लोकाकाश में सर्वत्र व्याप्त है। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में एक काल द्रव्य होता है जिसे कालाणु कहा जाता है। प्रत्येक कालाणु शाश्वत एवं अनिर्मित है। प्रत्येक कालाणु उस स्थान पर विद्यमान अन्य द्रव्यों की पर्याय के परिणमन में निमित्त होता है।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश (सीमित लोकाकाश + असीमित अलोकाकाश) एवं कालाणु के अस्तित्व एवं गुणधर्मों की चर्चा अपने आप में विज्ञान के लिए भी गूढ़ अध्ययन का विषय है। मोटे रूप से स्थान (Space) एवं समय (Time) की चर्चा भौतिक विज्ञान के लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी भौतिक ऊर्जा (पुद्गल) की। सापेक्षता की खोज के बाद यह माना जाने लगा कि यह ब्रह्माण्ड त्रिआयामी (Three Dimensional) न होकर चतुःआयामी (Four Dimensional) है। इसका स्थूल अभिप्राय यह है कि प्रत्येक स्थान पर समय भी निहित है– इसके मर्म को आत्मसात करना भी अधिकांश व्यक्तियों के लिए दुष्कर है। इन्द्रिय ज्ञान पर आधारित सामान्य विवेक बुद्धि तो स्थूल पुद्गल स्कन्धों के ज्ञान, स्थूल पैमाने से मापे जाने वाली जगह एवं घड़ी से मापे जाने वाले समय एवं आँखों को दिखाई देने वाली सशरीर जीव राशि तक ही सीमित है। भौतिक विज्ञान की आज की स्ट्रींग थ्योरी (String Theory) तो दूर क्वाण्टम फिल्ड थ्योरी एवं सापेक्षता सिद्धान्त की समझ भी सामान्य विवेक बुद्धि से परे है। सापेक्षता सिद्धान्त में चार विमाओं (3 आकाश की + 1 समय की)की आवश्यकता होती है। स्ट्रींग थ्योरी में कई विमाओं की आवश्यकता होती है। 10 विमाओं की आवश्यकता की बात भी होती है। इन 10 विमाओं के भौतिक रूप में क्या किसी रूप में धर्म द्रव्य या अधर्म द्रव्य से संबंधित कोई दिशा भी है? इस तरह के प्रश्न पूछने की स्थिति स्ट्रींग थ्योरी या इससे श्रेष्ठतर थ्योरी के विकास के बाद आ सकती है। अभी तो विज्ञान के इस क्षेत्र में जिज्ञासा अधिक व हल कम है। अति सूक्ष्म कणों की समझ एवं अति विशाल गैलेक्सी की समझ के मामले में विज्ञान बहुत आगे बढ़ने के उपरांत भी बहुत पीछे है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना है कि आनंद, शांति या जो स्रोत हैं वही प्रयोजनभूत हैं व ऐसा प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान आज भी उपलब्ध है।

24

21वीं सदी में प्राकृत अध्ययन : दशा एवं दिशा

प्रो. प्रेमसुमन जैन *(उदयपुर)*

प्राकृत भाषा और उसका साहित्य जन सामान्य की संस्कृति से समृद्ध है। स्वाभाविक रूप से प्राकृत भाषा जनता से सम्पर्क रखने का एक आदर्श साधन बन जाती है। इसीलिए प्राकृत भाषा को समुचित आदर प्रदान करते हुए तीर्थंकर महावीर, सम्राट अशोक एवं खारवेल जैसे महापुरुषों ने अपने संदेशों के प्रचार–प्रसार के लिए प्राकृत का उपयोग किया है। जैन आगमों में प्राकृत का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु वेदों की भाषा में भी प्राकृत भाषा के तत्त्वों का समावेश है। भारत के अधिकांश प्राचीन शिलालेख प्राकृत में हैं। प्रारम्भ से ही इस देश के नाटकों में प्राकृत का प्रयोग होता रहता है। ये सभी विवरण हमें सूचना देते हैं कि इस देश की जनता की स्वाभाविक भाषा, मूलभाषा प्राकृत रही है। समय समय पर सामान्य जन की विभिन्न बोलियां साहित्यिक प्राकृत का रूप भी ग्रहण करती रही हैं। प्राकृत से अपभ्रंश एवं अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है।

जैन श्रमण प्राकृत की विभिन्न बोलियों का अच्छा ज्ञान रखते थे। उनके धार्मिक उपदेश सदैव प्राकृत में होते थे। उनके द्वारा लिखित महत्त्वपूर्ण दार्शनिक एवं कथात्मक साहित्य के काव्य, नाटक, स्तोत्र, उपन्यास आदि ग्रन्थ सरल एवं सुबोध प्राकृत में हैं। इसके अतिरिक्त कथा, दृष्टान्त–कथा, प्रतीक कथा, लोककथा आदि विषयक ग्रन्थ भी प्राकृत में लिखे गये हैं, जो मानव मूल्यों और नैतिक आदर्शों की सही शिक्षा देकर व्यक्ति को श्रेष्ठ नागरिक बनाते है। प्राकृत में लिखे गये सबसे प्राचीन ग्रन्थ आगम कहे जाते हैं। इनमें जैनधर्म एवं दर्शन के प्रमुख नियम वर्णित हैं और विभिन्न विषयों पर अनेक सुन्दर कथाएं दी गयी हैं। आगम और उसका व्याख्या साहित्य प्राकृत कथाओं का अमूल्य खजाना है। प्राकृत लेखकों के द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण धर्मकथा ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, जो कथाओं के कोश हैं। प्राकृत में कई प्रकार के काव्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। कई कवियों एवं अलंकार–शास्त्रियों ने अपने लाक्षणिक ग्रन्थों में प्राकृत की सैकड़ों गाथाओं को उद्धृत कर उनकी सुरक्षा की है।

प्राकृत साहित्य के इस विशाल समुद्र के अवगाहन से वह अनुपम एवं बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है, जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम

है। देश के स्वर्णयुग की अवधि में कई साहसी समुद्र यात्राएं व्यापारियों द्वारा की जाती थीं। उनके विस्तृत विवरण प्राकृत साहित्य में उपलब्ध हैं। ये समुद्र–यात्राओं के वृतान्त भारत के गौरव को रेखांकित करते हैं कि उस समय विभिन्न देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। प्राकृत साहित्य के अध्ययन से हमें अनेक कलाओं, हस्तशिल्प, औषधि–विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, धातुविज्ञान, रसायनविज्ञान आदि की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। वास्तव में प्राकृत ग्रन्थों में उपलब्ध विभिन्न वृतांत आचार–शास्त्र, वनस्पति–शास्त्र, जीव–विज्ञान एवं राजनीति शास्त्र आदि के क्षेत्र में नवीन तथ्य प्रस्तुत करते हैं। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्राकृत अध्ययन के भाषात्मक, सांस्कृतिक पक्ष को विभिन्न आयामों द्वारा आज उद्घाटित करने की आवश्यकता है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य किसी समर्पित समुदाय एवं संस्थान द्वारा ही अच्छे ढंग से किया जा सकता है।

जनभाषा

प्राकृत भाषा अपने जन्म से ही जनसामान्य से जुड़ी हुई है। ध्वन्यात्मक और व्याकरणात्मक सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्राकृत भाषा लम्बे समय तक जन–सामान्य के बोल–चाल की भाषा रही है। प्राकृत की आदिम अवस्था का साहित्य या उसका बोल–चाल वाला स्वरूप तो हमारे सामने नहीं है, किन्तु वह जन–जन तक पैठी हुई थी। महावीर बुद्ध तथा उनके चारों ओर दूर–दूर के विशाल जन–समूह ने मातृभाषा के रूप में प्राकृत भाषा का आश्रय लिया, जिसके परिणाम–स्वरूप दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक आदि विविधताओं से परिपूर्ण आगमिक एवं त्रिपिटक साहित्य के निर्माण की प्रेरणा मिली। इन महापुरुषों ने इसी प्राकृत भाषा के माध्यम से तत्कालीन समाज के विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्ति की ध्वजा लहरायी थी। इससे ज्ञात होता है कि तब प्राकृत मातृभाषा के रूप में दूर दूर के विशाल जनसमुदाय को आकर्षित करती रही होगी। जिस प्रकार वैदिक भाषा को आर्य संस्कृति की भाषा होने का गौरव प्राप्त है, उसी प्रकार प्राकृत भाषा को आगम भाषा एवं आर्य भाषा होने की प्रतिष्ठा प्राप्त है।

प्राकृत जन–भाषा के रूप में इतनी प्रतिष्ठित थी कि उसे सम्राट अशोक के समय में राज्यभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ और उसकी यह प्रतिष्ठा सैकड़ों वर्षो तक आगे बढ़ी है। अशोक ने भारत के विभिन्न भागों में जो राज्यादेश प्रचारित किये थे उसके लिए उसने दो सशक्त माध्यमों को चुना। एक तो उसने अपने समय की जनभाषा प्राकृत में इन अभिलेखों को तैयार कराया तकि वे जन–जन तक पहुँच सकें और दूसरे उसने उन्हें पत्थरों पर खुदवाया ताकि वे सदियों तक अहिंसा, सदाचार, समन्वय का संदेश दे सकें। इन दोनों माध्यमों ने अशोक को अमर बना दिया है। देश के अन्य नरेशों ने भी प्राकृत में लेख एवं मुद्राएं अंकित करवायीं। ई. पू. 300 से लेकर 400 ईस्वी तक इन सात सौ वर्षो में लगभग दो हजार लेख प्राकृत में लिखे गये हैं। यह सामग्री प्राकृत भाषा के विकास–क्रम एवं महत्त्व के लिए ही उपयोगी नहीं हैं, अपितु भारतीय संस्कृति के इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं।

अभिव्यक्ति का माध्यम

प्राकृत भाषा क्रमशः विकास को प्राप्त हुई है। वैदिक युग में वह लोकभाषा थी। उसमें रूपों की बहुलता सरलीकरण की प्रवृत्ति थी। महावीर युग तक आते–आते प्राकृत ने अपने को इतना समृद्ध और सहज किया कि वह अध्यात्म और सदाचार की भाषा बन सकी। इससे प्राकृत के प्रचार–प्रसार में गति आयी। वह लोक के साथ–साथ साहित्य के धरातल को भी स्पर्श करने लगी। इसीलिए उसे राज्याश्रय और स्थायित्व प्राप्त हुआ। ईसा

की प्रारम्भिक शताब्दियों में प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा गाँवों की झोपड़ियों से राजमहलों की सभाओं तक समादृत होने लगी थी, अतः वह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम चुन ली गयी थी। महाकवि हाल ने इसी समय प्राकृत भाषा के प्रतिनिधि कवियों की गाथाओं का गाथाकोश (गाथासप्तशती) तैयार किया, जो ग्रामीण जीवन और सौन्दर्य–चेतना का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

प्राकृत भाषा के इस जनाकर्षण के कारण कालिदास आदि महाकवियों ने अपने नाटक ग्रन्थों में प्राकृत भाषा को प्रमुख स्थान दिया। नाटक समाज का दर्पण होता है। जो पात्र जैसा जीवन जीता है, वैसा ही मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। समाज में अधिकांश लोग दैनिक जीवन में प्राकृत भाषा का प्रयोग करते थे। अतः उनके प्रतिनिधि पात्रों ने भी नाटकों में प्राकृत के प्रयोग से अपनी पहिचान बनाये रखी। अभिज्ञानशाकुन्तलं की ऋषिकन्या शकुन्तला, नाटककार भास की राजकुमारी वासवदत्ता, शूद्रक की नगरवधू वसन्तसेना तथा प्रायः सभी नाटकों के राजा के मित्र, कर्मचारी आदि पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राकृत जनसमुदाय की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। वह लोगों के सामान्य जीवन की अभिव्यक्ति करती थी। इस तरह प्राकृत ने अपना नाम सार्थक कर लिया था। प्राकृत स्वाभाविक वचन–व्यापार का पर्यायवाची शब्द बन गया था। समाज के सभी वर्गों द्वारा स्वीकृत भाषा प्राकृत थी। इस कारण प्राकृत की शब्द सम्पत्ति दिनोंदिन बढ़ रही थी। इस शब्द–ग्रहण की प्रक्रिया के कारण एक ओर प्राकृत ने भारत की विभिन्न भाषाओं के साथ अपनी घनिष्ठता बढ़ायी तो दूसरी ओर वह जीवन और साहित्य की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गयी।

काव्यात्मक सौन्दर्य

लोक भाषा जन–जन में लोकप्रिय हो जाती है तथा उसकी शब्द सम्पदा बढ़ जाती है तब वह काव्य की भाषा बनने लगती है। प्राकृत भाषा को यह सौभाग्य दो तरह से प्राप्त है। प्राकृत में जो आगम ग्रन्थ, व्याख्या–साहित्य, कथा एवं चरितग्रंथ आदि लिखे गये उनमें काव्यात्मक सौन्दर्य और मधुर रसात्मकता का समावेश है। काव्य की प्रायः सभी विधाओं–महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य आदि को प्राकृत भाषा ने समृद्ध किया है। इस साहित्य ने प्राकृत भाषा को लम्बे समय तक प्रतिष्ठित रखा है। अशोक के शिलालेखों के लेखन–काल से आज तक इन अपने 2000 वर्षों के जीवन काल में प्राकृत भाषा ने अपने काव्यात्मक सौन्दर्य को निरन्तर बनाये रखा है। प्राकृत भाषा की इसी मधुरता और काव्यात्मकता का प्रभाव है कि भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्य के अपने लक्षण–ग्रन्थों में प्राकृत की सैकड़ों गाथाओं के उद्धरण दिये हैं। अनेक सुभाषितों को उन्होंने इस बहाने सुरक्षित किया है।

भारतीय भाषाओं के आदिकाल की जन–भाषा से विकसित होकर प्राकृत स्वतंत्र रूप से विकास को प्राप्त हुई। बोलचाल और साहित्य के पद पर वह समान रूप से प्रतिष्ठित रही है। उसने देश की चिन्तनधारा, सदाचार और काव्य–जगत् को अनुप्राणित किया है। अतः प्राकृत भारतीय संस्कृति की संवाहक भाषा है। प्राकृत ने अपने को किसी घेरे में कैद नहीं किया। इसके पास जो था उसे वह जन–जन तक बिखेरती रही और जनसमुदाय में जो कुछ था उसे वह बिना हिचक ग्रहण करती रही। इस तरह प्राकृत भाषा सर्वग्राह्य और सार्वभौमिक भाषा है। प्राकृत के स्वरूप की ये कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो प्राचीन समय से आज तक लोक–मानस को प्रभावित करती रही हैं।

प्राकृत–अध्ययन का विकास एवं भविष्य

भारतीयविद्या के अन्तर्गत जिन विषयों का अध्ययन किया जाता है. उनमें अब प्राकृतविद्या भी अपना स्थान बनाने लग गयी है। प्राकृतविद्या वस्तुतः जैनविद्या का प्रमुख अंग है, क्योंकि प्राकृत का अधिकांश साहित्यक जैन

धर्म–दर्शन से सम्बन्ध रखता है, यद्यपि उसका काव्यात्मक एवं सांस्कृतिक महत्त्व भी कम नहीं है। प्राकृतविद्या के स्थान पर प्राकृत अध्ययन पद का प्रयोग करना अधिक व्यापक एवं सार्थक है। अतः देश–विदेश में विगत कुछ दशकों में प्राकृत अध्ययन की क्या प्रगति हुई है एवं अगले पचास वर्षों में इसके विकास की क्या सम्भवनाएं हैं, इसी पर संक्षेप में यहाँ कुछ विचार करना उचित होगा।

विगत पचास वर्षों में प्राकृत अध्ययन का जो विवरण विद्वानों के सामने उपस्थित हुआ है, उसे उजागर करने में प्राच्यविद्या सम्मेलन के जैनधर्म एवं प्राकृत सेक्शन का विशेष योगदान है। इसमें सम्मिलित होने वाले विद्वानों ने प्राकृत–अध्ययन को गति प्रदान की है। 1968 से प्राकृत सेमिनार भी यू.जी.सी. के सहयोग से लगातार 5–6 विश्वविद्यालयों में हुए। उनके लेखों ने प्राकृत के महत्व को रेखांकित किया। इसी बीच कुछ विश्वविद्यालयों में जैनधर्म एवं प्राकृत की पीठ एवं विभाग स्थापित हुए। साथ ही पालि एवं संस्कृत विभागों के साथ भी प्राकृत का शिक्षण प्रारम्भ हुआ। वैशाली के प्राकृत शोध संस्थान ने प्राकृत के अध्ययन को कुछ जागृति प्रदान की। कुछ शोध–संस्थानों एवं प्रकाशकों ने प्राकृत के ग्रन्थों को मूल अथवा अनुवाद के साथ प्रकाशित किया। विश्वविद्यालयों में प्राकृत के ग्रन्थों पर शोधकार्य सम्पन्न हुए। इन सब साधनों एवं प्रयत्नों में प्राकृत अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय के रूप में उभर कर सामने आया है। इस सबका लेखा–जोखा भी विद्वानों ने समय–समय पर प्रस्तुत किया है।

प्राकृत अध्ययन की इस प्रगति का परिणाम है कि आज जो हमारे देश में जैन विषय की लगभग तीन लाख पाण्डुलिपियां ग्रन्थभण्डारों में सुरक्षित होने का अनुमान है, उनमें से पचास हजार के लगभग पाण्डुलिपियां प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों की हैं। एक ग्रन्थ की विभिन्न पाण्डुलिपियां पायी जाती हैं। फिर भी यदि सूचीकरण किया जाय तो लगभग 600 प्राकृत के एवं 200 अपभ्रंश के कवि/लेखक/आचार्य अब तक हुए हैं, जिनकी लगभग दो हजार कृतियां (मूलग्रन्थ) ग्रन्थ–भण्डारों में उपलब्ध हैं। इनमें से प्राकृत के अभी तक लगभग 300 ग्रन्थ एवं अपभ्रंश के 65–70 ग्रन्थ ही सम्पादित होकर प्रकाश में आये हैं। लगभग पिछली पूरी शताब्दी के दिग्गज विद्वानों के प्रयत्नों से जब प्राकृत का अध्ययन इतना हो पाया है, तो शेष ग्रन्थों को प्रकाश में लाने हेतु 21वीं शताब्दी का समय पर्याप्त नहीं है। पांडुलिपियों के सर्वेषण, सूची–करण और सम्पादन के कार्य में लगने वाले विद्वानों का अभाव ही हो रहा है, प्रादुर्भाव नहीं। ऐसी स्थिति में अब पूरे देश में प्रतिवर्ष प्राकृत–अपभ्रंश के नये सम्पादित ग्रन्थों के निर्माण और प्रकाशन की संख्या पाँच से ऊपर नहीं है। यह स्थिति प्राकृत के प्रेमी, विद्वानों, प्रकाशकों एवं समाज–नेताओं को आत्म–निरीक्षण की ओर प्रेरित करे यही भावना है।

भारत के विश्वविद्यालयों में जो जैनविद्या पर शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं, उनकी संख्या लगभग 1250 तक पहुँच गयी हैं। इनमें प्राकृत के लगभग 150 शोध–प्रबन्ध हैं एवं अपभ्रंश के 60। इन शताधिक शोध–ग्रन्थों में से अभी पचास प्रतिशत भी प्रकाश में नहीं आ पाये हैं। विदेशों में जैनविद्या की जो लगभग 130 थीसिस प्रस्तुत हुई हैं, उनमें लगभग 50 प्राकृत–अपभ्रंश की हैं और फ्रेंच एवं जर्मन आदि भाषाओं में उनमें से 25 शोध–प्रबन्ध प्रकाशित भी हो गये हैं। किन्तु उनका उपयोग भारतीय जैन विद्वानों के लिए करना असम्भव सा है। क्योंकि फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी आदि में कार्य करने और उसका उपयोग करने की सुविधा यहां बहुत कम है।

प्राकृत साहित्य में से अर्धमागधी आगम साहित्य के 45 ग्रन्थ, उनकी टीका साहित्य के लगभग 25 ग्रन्थ, शौरसेनी आगम–परम्परा और आचार्यों के 50–55 ग्रन्थ, प्राकृत के 8 महाकाव्य, 5 खण्डकाव्य, 22–

24 चारितकाव्य, 15–16 मुक्तककाव्य, 8 सट्टक, 30–32 कथाग्रन्थ व्याकरण एवं छन्द आदि फुटकर साहित्य के 30–35 ग्रन्थ ही अभी तक प्रकाशित हो पाये हैं। किन्तु इनमें से कई अनुपलब्ध हो गये हैं। प्रकाशित सभी प्राकृत ग्रन्थ, अपभ्रंश ग्रन्थ किसी एक पुस्तकालय में उपलब्ध भी नहीं है। 21वीं शताब्दी के अध्ययन के लिए अब तक प्रकाशित प्राकृत– अपभ्रंश के समस्त ग्रन्थ किसी एक पुस्तकालय में उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके लिए आधुनिक उपकरणों का उपयोग भी किया जा सकता है। ज्ञात हुआ है कि अर्धमागधी के सम्पूर्ण आगमों को कम्प्यूटर में भरने की योजना तैयार की जा रही है। इसी तरह प्राचीन पाण्डुलिपियों का सूचीकरण भी कम्प्यूटर फीडिंग के माध्यम से किया जा सकता है। इन कार्यों में जो संस्थान व कार्यकर्त्ता आगे आयेंगे, 21वीं सदी का प्राकृत अध्ययन उनके सहारे ही चलेगा।

21वीं सदी में प्राकृत अध्ययन की प्रगति का प्रमुख आधार धर्म एवं सम्प्रदाय न होकर प्राकृत साहित्य का भाषात्मक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य होगा। प्राकृत भाषा की समृद्धि में जैन परम्परा के कवियों एवं आचार्यों का प्रमुख योगदान अवश्य रहा है। किन्तु जनभाषा होने के कारण प्राकृत भाषा भारतीय भाषाओं के विकास की धुरी है। संस्कृत साहित्य का अध्ययन प्राकृत के बिना अधूरा है। संस्कृत नाटकों में 60 प्रतिशत से अधिक प्राकृत का प्रयोग है। संस्कृत काव्यग्रन्थों के उदाहरण प्रायः प्राकृत की गाथाओं द्वारा दिये गये हैं। संस्कृत भाषा में शब्दकोश में प्राकृत से बने हजारों शब्द समाहित हैं। यही स्थिति अन्य भारतीय भाषाओं की है। अतः प्राकृत के शोध का अब नया क्षेत्र प्राकृत का भाषात्मक अध्ययन होगा। इस दिशा में देश–विदेश के विद्वानों ने जो कार्य किया है, उसे आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। प्राकृत भाषाओं का वृहत् व्याकरण ग्रन्थ तैयार किये जाने की आवश्यकता है, जिसे विद्वानों की कोई टीम मिलकर ही कर सकती है। डॉ. पिशेल एवं अन्य जर्म विद्वानों के प्राकृत भाषा सम्बन्धी ग्रन्थों तथा डॉ. पी.एल. वैद्य, डॉ. ए.एम. घाटगे, डॉ. सुकुमार सेन, डॉ. कत्रे आदि भारतीय विद्वानों की शोध–पूर्ण कृतियों के तलस्पर्शी अध्ययन के उपरान्त उपलब्ध प्राकृत साहित्य के आधार पर जो नया प्राकृत–व्याकरण ग्रन्थ तैयार होगा, वह 21वीं सदी के अध्ययन को गति प्रदान करेगा। बहुत सम्भव है कि 21वीं सदी में ही ऐसा ग्रन्थ तैयार हो पाये। प्राकृत व्याकरण के साथ–साथ तुलनात्मक प्राकृत शब्दकोश की भी नितान्त आवश्यकता है। पूना में डॉ. घाटगे के निर्देशन में यह शब्दकोश तैयार हो रहा है। किन्तु उसके कार्य की गति के अनुसार प्रतीत होता है कि उस शब्दकोश के दर्शन काफी समय के बाद में ही हो सकेंगे। अर्थ की व्यवस्था होने पर भी विद्वानों का अभाव एक चिन्तनीय विषय है।

प्राकृत अध्ययन के विकास के लिए प्राकृत के श्रमनिष्ठ एवं विश्रुत विद्वानों की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता प्राकृत–शिक्षण एवं शोध से जुड़ी हुई अथवा प्राकृत के नाम का उपयोग करनेवाली संस्थाओं को जीवन्त होने की है। विश्वविद्यालयों में प्राकृत अध्ययन को बढ़ावा देने की दृष्टि से आठ–नौ स्वतन्त्र जैनालाजी एवं प्राकृत विभाग एवं चेयर्स स्थापित हैं। विगत कुछ वर्षों में कुछ नयी प्राकृत संस्थाएं भी उदित हुई हैं। उनमें राजस्थान प्राकृत अकादमी, जयपुर, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, आगम अहिंसा–समता एवं प्राकृत संस्थान उदयपुर, प्राकृत–अध्ययन प्रसार संस्थान, उदयपुर, अपभ्रंश एकेडेमी जयपुर, प्राकृत ज्ञानभारती एजुकेशन ट्रस्ट बैंगलोर एवं सेवा मंदिर, जोधपुर आदि प्रमुख हैं। 21वीं सदी में इन प्राकृत संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हो सकती है, क्योंकि प्रत्येक सक्रिय कार्यकर्त्ता अपनी एक अलग संस्था चाहता है और एक संस्था, दूसरी संस्था के साथ सहयोग करके चलना पसन्द नहीं करती। पूरे साधन किसी संस्था के पास नहीं है। कहीं अर्थ का अभाव है

तो कहीं विद्वानों की कमी, शोधकर्त्ताओं की कमी। 21वीं सदी में प्राकृत–अध्ययन का कार्य इन संस्थाओं में ताल–मेल हुए बिना नहीं चलेगा। प्राकृत–अपभ्रंश के विभिन्न कार्यों का विभाजन कर प्रत्येक संस्था अपना दायित्व स्वीकार करे तो प्राकृत–अध्ययन की प्रगति हो सकेगी। इसके लिए प्राकृत के विद्वानों की एक अखिल भारतीय परिषद भी गठित हुई थी, किन्तु एक बैठक के बाद अब उसमें कोई हलचल नहीं है।

प्राकृत अध्ययन की गति–प्रगति को एक सूत्र में बाँधने के लिए एवं प्राकृत–अपभ्रंश के साहित्य से जन–सामान्य को परिचित कराने के लिए प्राकृत की पत्रिका की महती भूमिका है। प्राकृत विद्या नामक त्रैमासिक पत्रिका उदयपुर से इसी उद्देश्य से प्रकाशित की गयी थी यह अब दिल्ली से प्रकाशित हो रही है।

21वीं सदी में प्राकृत के अध्ययन की क्या दिशाएं हों एवं उनके प्रति समाज का व विद्वानों का कितना और कैसा रुझान होगा यह कह पाना कठिन है। केवल आशावादी एवं आदर्शवादी बनने से प्राकृत अध्ययन विकसित नहीं हो जायेगा। इसके लिए प्राकृत भाषा के शिक्षण के प्रति जनमानस में रूचि जागृत करना आवश्यक है। विश्वविद्यालयों में जो प्राकृत का शिक्षण हो रहा है। उसमें समाज के घटकों की भागीदारी न के बराबर है। साधु–सन्त, ,स्वाध्यायी बन्धु एवं समाज का युवावर्ग प्राकृत–शिक्षण से दूर है। विगत वर्षों में प्राकृत–शिक्षण के कुछ वर्कशोप सरकारी स्तर पर सम्पन्न हुए हैं। उनमें विद्यार्थी तो दूर–प्राकृत के विद्वान भी अपना पूरा समय नहीं दे पाये। जैसे चौबीस तीर्थंकरों के इर्दगिर्द जैनविद्या की परम्परा घूमती है, वैसे ही समाज में कुछ सुनिश्चित विद्वान हैं, वे हर समारोह, संगोष्ठी, व्याख्यान, सम्मेलन में आते–जाते रहते हैं। वे हर विषय के विशेषज्ञ माने जाते हैं, अतः उनकी किसी एक विषय के लिए प्रतिबद्धता नहीं है। कोई गहन स्थायी महत्व का कार्य उनके द्वारा सम्पन्न नहीं हो पाता। वे विद्वान समाज में मात्र सजावट व प्रदर्शन के लिए काम आ रहे हैं। यह प्रवृत्ति जब रुकेगी, तभी प्राकृत–अध्ययन के लिए कुछ ठोस हो सकेगा। उनके द्वारा पहला कार्य यह होना चाहिए कि वे प्राकृत शिक्षण–शिविर के अधिष्ठाता बनें। 10–15 दिनों के 4–6 शिविर भी प्राकृत–शिक्षण के यदि आयोजित हुए तो प्रतिवर्ष लगभग सौ जिज्ञासु– प्राकृत के तैयार हो सकते हैं। इन्हीं में से फिर प्राकृत की प्रतिभाएं खोजकर उन्हें 21वीं सदी के लिए प्राकृत का विद्वान बनाया जा सकता है।

प्राकृत–अध्ययन के विकास के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। श्रमणविद्या संकाय की श्रमणविद्या पत्रिका (1983) में प्राकृत के मनीषी डॉ. गोकुलचन्द जैन ने अंग्रेजी में प्राकृत एवं जैनविद्या के उच्चस्तरीय अध्ययन का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। प्राकृत की संगोष्ठियों की संस्तुतियां भी प्रकाश में आयी हैं। प्राकृत विभागों के व्यावहारिक अनुभवों ने भी प्राकृत–शिक्षण की कुछ दिशाएं तय की हैं। इन सबके मन्थन से यदि कुछ निष्कर्ष निकाले जाय तो 21वीं सदी में प्राकृत अध्ययन के लिए निम्न प्रमुख कार्यों की प्राथमिकताएं तय की जा सकती हैं। इनमें से जिस संस्था, व्यक्ति, विद्वान्, सरकारी प्रतिष्ठान व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को जो अनुकूल लगे उस पर अपना योगदान कर सकता है:–

1. प्राकृत–अपभ्रंश पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण एवं सूची–निर्माण।
2. प्राकृत अपभ्रंश की अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का सम्पादन– अनुवाद।
3. सम्पादित प्रमुख मूल प्राकृत–अपभ्रंश ग्रन्थों का अनुवाद एवं समालोचनात्मक अध्ययन।
4. प्रकाशित प्राकृत–अपभ्रंश ग्रन्थों का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन।
5. प्राकृत–अपभ्रंश के ग्रन्थों में प्राप्त भारतीय इतिहास एवं समाज विषयक सामग्री का संकलन एवं अनुवाद।

6. प्राकृत के शिलालेखों का सानुवाद संग्रह–संकलन एवं प्रकाशन।

7. प्राकृत कथाकोश एवं अपभ्रंश कथाकोश ग्रन्थों का निर्माण।

8. प्राकृत भाषाओं के बृहत् व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण।

9. प्राकृत बृहत् शब्दकोश का निर्माण एवं प्रकाशन।

10. जैनविद्या पर अद्यावधि प्रकाशित शोध–लेखों का सूचीकरण।

11. प्राकृत कवि–दर्पण नामक कृति में प्रमुख प्राकृत कृतिकारों के व्यक्तित्व एवं योगदान का प्रकाशन।

12. प्राकृत एवं भारतीय भाषाएं नामक पुस्तक का लेखन एवं प्रकाशन।

13. प्राकृत गाथाओं के गायन एवं संगीत पक्ष को उजागर करने के लिए प्राकृत गाथाओं के कैसेट तैयार करना।

14. प्राकृत कम्प्यूटर फीडिंग एवं प्राकृत लेंग्युएज लैब की राष्ट्रीय स्तर पर स्थापना एवं संचालन।

15. विश्वविद्यालयों में जैनविद्या एवं प्राकृत शोध विभागों की स्थापना एवं स्थापित विभागों में पर्याप्त प्राध्यापकों की नियुक्तियां।

16. जैनविद्या एवं प्राकृत के विभिन्न स्तरों के शिक्षण एवं शोधकार्य के लिए पर्याप्त छात्रवृत्तियों एवं शोधवृत्तियों की सुविधा प्रदान करना।

17. प्रतिवर्ष कम से कम दो प्राकृत संगोष्ठियों की सुविधा प्रदान करना।

18. प्राकृत अध्ययन की स्तरीय पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन में सहयोग।

19. प्रति वर्ष प्राकृत–अपभ्रंश की कम से कम पांच नयी कृतियों का सम्पादन– प्रकाशन।

20. प्रतिवर्ष प्राकृत– अपभ्रंश एवं जैनविद्या के समर्पित विद्वानों का राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान।

21. विदेशों में सम्पन्न प्राकृत–अपभ्रंश जैनविद्या के कार्यों में सहयोग प्रदान करना एवं उन कार्यों का सार–संक्षेप हिन्दी–अंग्रेजी में भारत में उपलब्ध कराना।

प्राकृत अध्ययन के इन प्रस्तावित कार्यों में संशोधन परिवर्द्धन स्वागत योग्य है। 21वीं सदी के इन 21 कार्यों को यदि वर्तमान में स्थिर संस्थाएं एवं विद्वान् एक–एक कार्य भी अपने जुम्मे ले लें तो न केवल उनका जीवन, अपितु उनकी सन्तति–परम्परा का जीवन भी धन्य हो जायेगा।

25

गणितज्ञ महावीराचार्य

डॉ. पी.सी. जैन

श्री धरसेनाचार्य ने धवला का लेखन भूतबली एवम् पुष्पदन्त से शकसंवत् 735 में गिरनार में पूरा कराया। लगभग तभी दक्षिण में महावीराचार्य (9वीं शताब्दी) गणित के विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में संग्रहण, सम्पादन, एवम् नये सिद्धान्तों के प्रतिपादन में रत थे। दीर्घवृत की कल्पना की, क्षेत्र निकालने के सूत्र में निमंताक निकाला जो वर्तमान π के निकटस्थ है। गणित के व्यवहार एवम् सिद्धान्त में एकाकार किया।

राष्ट्रकूट वंश परम्परा में अमोघवर्ष का राज्यकाल ईसा की नौवीं शताब्दी मे आता है। इसी समयावधि एवम् कार्यकाल में गणित की व्यवस्थित सामग्री का स्पष्टीकरण 'महावीराचार्य' ने – गणितसार संग्रह – में किया। उनके नाम से एक ओर कृति – ज्योतिष पटल – का भी उल्लेख आता है किन्तु वह अभी तक अप्राप्त की श्रेणी में है।

ज्ञान के आदान प्रदान एवम् संग्रहण के साधन उस समय न्यूनतम स्थिति में थे, फलतः यह अवधारण रहती है कि लेखक ही ज्ञान के मूल में है। इसी धारण से भारतीय गणित के इतिहास में – महावीराचार्य – का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

वक्रीय ज्यामितिक क्षेत्र के क्षेत्रफल की तकनीकी के तो वह जनक ही हैं। दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल उन्होंने निकाला। यह वह ज्योमितिक क्षेत्र है जिस पर सभी ग्रह, उपग्रह गमन करते हैं, फलतः गणना ज्योतिष को नया आधार मिला। – ज्योतिष पटल – में गणना की इस विद्या के उपयोग से असहमत होना कठिन है।

गणितसार संग्रह – की पाण्डुलिपियाँ की कन्नड और तामिल टीकाएँ गणित–ग्रन्थ के रूप में हैं जो इनके – मैसूर – के आसपास के क्षेत्र के होने का आभास देती है। लेखन कार्यकाल, लगभग–धवला– का लेखन पूर्ण होने का समय–शक संवत् 735 – के ठीक बाद का है, अतः गणित पर जैन आमनाय में यह प्राचीनतम कार्य हो तो आश्चर्य नहीं।

'गणित सार संग्रह' में नौ अध्याय हैं।

प्रथम संज्ञाधिकार– यह परिभाषाओ को समर्पित है। जिनमे से कुछ हैं– क्षेत्र परिभाषा, काल परिभाषा, धान्य परिभाषा, स्वर्ण–रजित–लोह परिभाषा आदि

द्वितीय अधिकार, परिक्रम व्यवहार– इसमें चर्चा है गुणन, भागहार, वर्ग, वर्गमूल,

घन, घनमूल, व्युत्कलित गणित आदि, सभी उदाहरण सहित हैं।

तृतीय अधिकार–कलास वर्ण व्यवहार– इसमें शामिल है भिन्न, प्रत्युत्पन्न भिन्न, भिन्न भागहार, भिन्नों के वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागाभाग जाति, भागानुबन्ध जाति।

चतुर्थ अधिकार प्रकीर्ण व्यवहार– यह अध्याय, भाग और शेष जाति, मूल जाति, शेषमूल जाति के प्रकार और उपयोग को समर्पित हैं।

पंचम अधिकार–त्रैराशिक व्यवहार संज्ञक– इसमें अनुक्रम त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक, पंचराशिक सप्तराशिक एवम् क्रय विक्रय गणित वर्णित है।

षष्ठ अधिकार–मिश्रक व्यवहार– यह संक्रमण, कहीकार एवम् उसके प्रकार, श्रेणीबद्ध संकलित गणित से सम्बन्धित है।

सप्तम अधिकार–क्षेत्र व्यवहार– यह अधिकार क्षेत्रफल गणित को स्पष्ट करता है।

अष्टम अधिकार – श्वात व्यवहार– इसमें सूक्ष्म गणित, चितंगणित क्रचिका व्यवहार गणित सम्बन्धित है।

नवम अधिकार–व्यवहार संज्ञक– इसमें छाया सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के गणितों का उदाहरण सहित वर्णन है।

महावीराचार्य ने मूलधन, ब्याज, समय मिश्रधन निकालने के सूत्र प्रतिपादित किये, वह है यहां स=मूलधन, म=मिश्रधन, ट=समय, ई=ब्याज है।

सूत्र है– १–

$$(i)\ स = \frac{म}{\frac{१ + ई \times ट \times ई}{ट + स}}$$

$$(ii)\ स = \frac{म}{\frac{ट \times ई}{ट + स} + १}$$

(iii) आ = अनेक प्रकार के मूलधन

$$२ - आ = \frac{म}{\frac{स \times ट}{ई + स} + १} \left\{ म = आ + ट \right.$$

$$\sqrt{म^२ - \frac{स \times ट}{ई} \times ४ \times आ} + - म \left\{ म = स + ट \right.$$

$$(i)\ स =$$

$$(ii)\ \frac{स_१ \times ट_१ \times म}{ट_१ \times ट_१ + स_२ \times ट_२ + स_३ \times ट_३ + \cdots\cdots} = आ_१$$

(iii) $\frac{\text{स}_2 \times \text{ट}_2 \times \text{म}}{\text{स}_1 \times \text{ट}_1 + २\text{स} \times \text{ट}_2 + \text{स}_3 \times \text{ट}_3 + \cdots} = \text{आ}_2$

$\text{म} = \text{आ}_1 + \text{आ}_2 + \text{आ}_3 + \cdots$

व्याज के लिये नियम (Formula) :–

३ – (i) $\frac{\text{म}}{\frac{\text{आ}_1}{\text{ट}_1} + \frac{\text{आ}_2}{\text{ट}_2} + \frac{\text{आ}_3}{\text{ट}_3} + \cdots} \times \frac{\text{आ}_1}{\text{ट}_1} = \text{स}_1$

(ii) $\frac{\text{आ}_1 + \text{आ}_2 + \text{आ}_3 + \cdots}{\frac{\text{आ}_1}{\text{ट}_1} + \frac{\text{आ}_2}{\text{ट}_2} + \frac{\text{आ}_3}{\text{ट}_3} + \cdots} \times \frac{\text{आ}_2}{\text{ट}_2} = \text{स}_2$

$\text{म} = +\text{स}_1 + \text{स}_2 + \text{स}_3 + \cdots$

समय निकालने के लिये नियम (Formula) :–

४ – (i) $\frac{\text{म}}{\frac{\text{आ}_1}{\text{स}_1} + \frac{\text{आ}_2}{\text{स}_2} + \frac{\text{आ}_3}{\text{स}_3} + \cdots} \times \frac{\text{आ}_1}{\text{स}_1} = \text{ट}_1 \left\{ \text{म} = \text{ट}_1 + \text{ट}_2 + \text{ट}_3 + \cdots \right.$

(ii) $\sqrt{\frac{\text{स} \times \text{ट}}{\text{ट}} \times \text{म} + \left(\frac{\text{स} \times २}{२ \times \text{ट}}\right)^2} - \frac{\text{स} \times २}{२ \times \text{ट}} = \text{ई} = \text{स}$

५ – (i) $\frac{\text{म} \times \text{ट}}{\frac{\text{स}_1 \times \text{ट}_1}{\text{ई}_1} + \frac{\text{स}_2 \times \text{ट}_2}{\text{ई}_2} + \cdots} = \text{आ}$

बीजगणित में महावीराचार्य ने $[\text{अ} + \text{ब}]^3 = \text{अ}^3 + 3\,\text{अ}^2\text{ब} + 3\,\text{अ}\,\text{ब}^2 + \text{ब}^3$ प्रतिपादित कर द्विपद प्रमेय के विस्तार की अवधारण दी।

रेखागणित के क्षेत्र में जिन ज्यामितिक क्षेत्रो का अध्ययन उन्होने किया एवम् जिनका चित्त सहित निरूपण किया उन में से कुछ हैं

निम्नवृत्त

उन्नतवृत्त

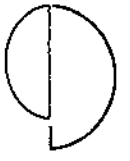

कुंबकवृत्त

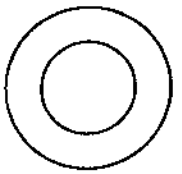

अन्तश्चक्रवालवृत्त

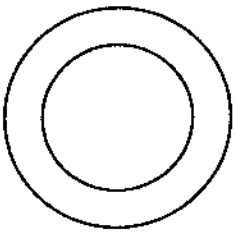

बहिश्चक्रवालवृत्त

हस्तिदन्त क्षेत्र

यवाकार क्षेत्र

मरजाकार क्षेत्र

पण्वाकार क्षेत्र

वज्राकार क्षेत्र

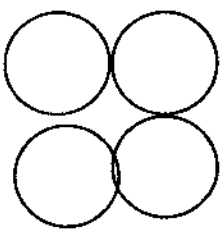

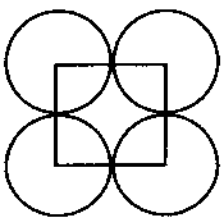

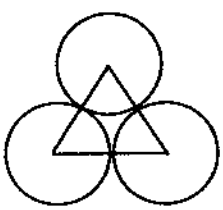

द्विविमीय एवम् त्रिविमीय क्षेत्रफळ / आयतन में नियतांक की कल्पना की जिसका मान 3.0375 आता है जो कि आज के नियतांक π के मान 3.155 के लगभग पास है। महावीराचार्य के समय का निर्धारण अमोघ वर्ष के सम्बन्ध में लिखे – गणित सार संग्रह – के छः श्लोक है। शक संवत् 782 का ताम्रपत्र एवम् शक संवत 799 का कन्हेरी गुफा का अभिलेख धारणा पुष्टि का प्रमाण है। अपने बारे में कहीं कुछ नहीं लिखा।

श्रोत

1. गणितसार संग्रह, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर
2. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा = भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद
3. गणित का इतिहास– हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तरप्रदेश

26

जैन आचार-विचारों का सूक्ष्मजीव विज्ञानकीय दृष्टिकोण

प्रो. पी.सी. जैन

यह तो सर्व विदित है कि जैन धर्म अहिंसा की पृष्ठभूमि पर आधारित है। अतः जैनाचार कैसा हो इसके लिये आचार्यों ने अपनी दिव्य दृष्टि से जो देखा उसके अनुसार श्रावकाचार हेतु कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और श्रावक का आचरण कैसा हो यह बतलाया है। साधारण अवस्थाओं में अहिंसा का भाव मन में आते ही बहुत से अवगुण अपने आप दूर हो जाते हैं और हम सदाचारी बन जाते हैं। परंतु जीवन यापन, व्यवसायिक क्रियाकलापों में व्यक्ति से जीव हिंसा न हो यह तो असंभव बात है परंतु अहिंसा का भाव मन में हो और स्वप्रयोजन के लिये अनावश्यक होने वाली हिंसा से अथवा अपनी सुख–सुविधाओं, रसास्वादन आदि के लिये हो रही हिंसा से बचना गृहस्थ या श्रावक का धर्म बताते हैं। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख जैन आचार--विचार एवं व्यवहार कैसा हो इस संबंध में कुछ बातें उल्लेखित हैं। जैसे – जल का उपयोग छान कर किया जाना, कंद मूलों तथा जमीकंदों का निषेध, वस्तुओं का मर्यादानुसार उपयोग करना आदि।

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जीव पाये जाते हैं जो अपनी प्रकृति एवं स्वभाव के अनुरूप अपना जीवन जीते हैं, और जीवन काल समाप्त होने पर स्वतः ही मर जाते हैं (यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया हैं)। परंतु इसके विपरीत जब हम किसी जीव को उसके को जीवन कालावधि के पहले ही मार देते हैं या ऐसा कुछ करते है जिससे किसी प्राणि/जीव को अपना जीवन चक्र पूर्ण करने में बाधा उत्पन्न होती है या कष्ट होता है तब उसे हम जीव हिंसा की श्रेणी में मानते हैं। मन में हिंसक भाव आने या रखने से भी हमें हिंसा का दोष लगता है इसलिये जैन सिद्धान्तों में भाव हिंसा से बचाव एवं मन में दया भाव, क्षमा भाव रखना महत्वपूर्ण होता है।

दीर्घ काय जीव जिन्हें हम देख सकते हैं उनकी हिंसा से बचा जा सकता है परंतु प्रकृति में कुछ जीव ऐसे हैं जिन्हें हम अपनी आँखों से नहीं देख पाते हैं। अतः उनकी हिंसा से बचने के लिये व्यक्ति का खान–पान तथा व्यवहार कैसा हो यह जैनाचार में भलीभांति समाहित है। जैन सिद्धान्तों के परिपालन हेतु जैन आचरणों में से कुछ को मैंने सूक्ष्मजीव विज्ञान के अध्ययन के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास किया है ताकि इन

सिद्धान्तों की सार्थकता को हम वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर भी समझ सकें एवं अपने आचरण में ला सकें।

(1) जमीं कंद, कंद मूल आदि गडन्त पादप पदार्थों का निषेधः

मृदा (भूमि) पादपों की वृद्धि का मूल आधार है। पादप (सभी वर्ग के पौधे) मृदा से खनिज पदार्थों का अवशोषण कर वृद्धि करते हैं। इन खनिज पदार्थों के निर्माण में सूक्ष्म जीवों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों का निम्नीकरण कर खनिज लवण तथा वायुमण्डलीय गैसे बनाते हैं। यदि ऐसा न होता तो भूमि पर पादप अवशेषों, जीव–जन्तुओं के शारीरिक अंगों एवं मृत जीवों का अंबार एकत्रित होता रहता और जीवों का अस्तित्व ही नहीं दिखता। सूक्ष्म जीवों के इस गुण से यह तो स्पष्ट होता ही है कि सूक्ष्मजीवों को पनपने के लिये कार्बनिक पदार्थ एवं / अथवा कुछ खनिज पदार्थ आवश्यक होते हैं। कार्बनिक पदार्थों की अत्य मात्रा में भी असंख्य जीव अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं। अतः ऐसी भूमि जिसमें कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में होंगे, सूक्ष्मजीवों की संख्या भी उसी अनुपात में हो सकती है। चित्र में बंजर भूमि, पौधों की जड़ों के पास की भूमि तथा जमींकंदों आदि चे चारों और की भूमि में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है।

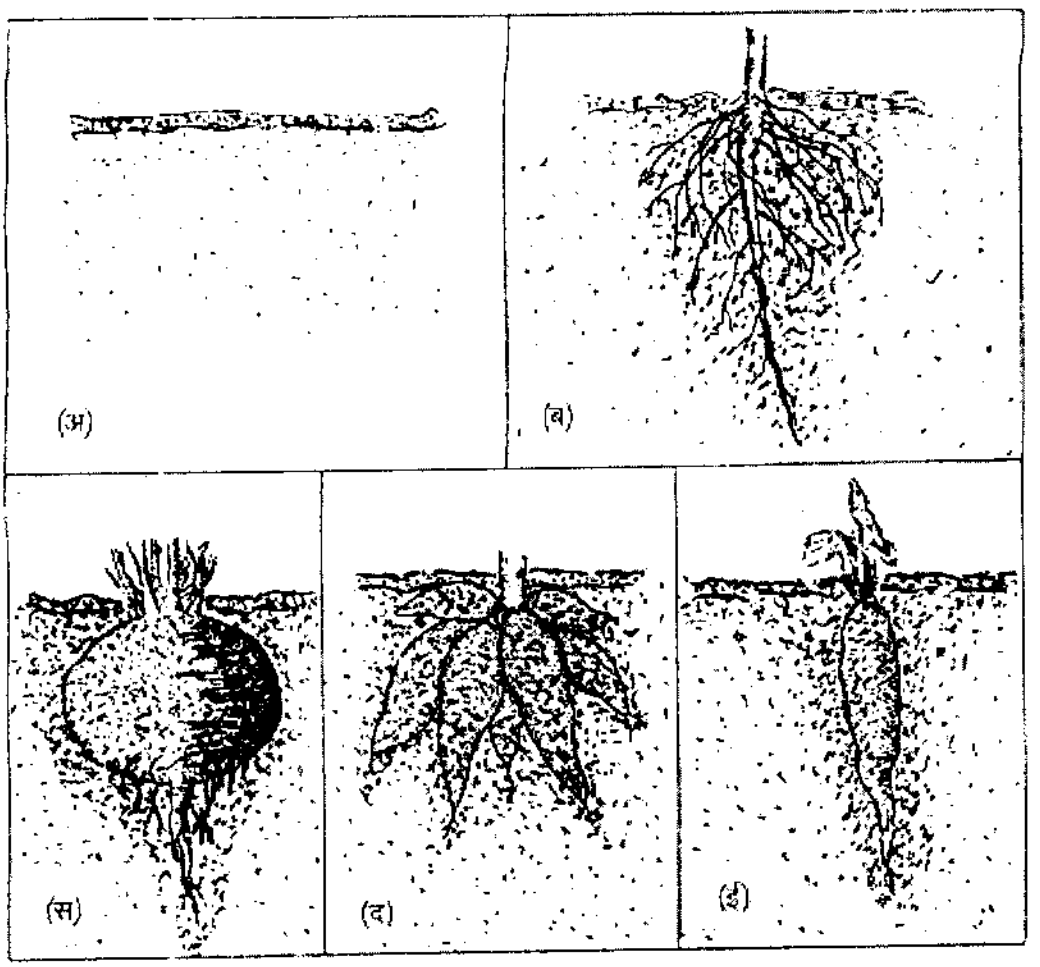

मेरी दृष्टि में, प्रकृति को बिना नष्ट किये अथवा इसके स्वभाव को बिना परिवर्तित किये, प्रकृति में उपलब्ध खाद्य पदार्थों को अपने उपयोग हेतु प्राप्त करना एक अहिंसात्मक व्यवहार है। कृषि द्वारा खाद्य पदार्थों का उत्पादन भी प्रकृति के सद्भाव के विपरीत कहा जावेगा क्योंकि खेती करने में भूमिगत अनंत जीवो की हिंसा होती हैं। परंतु कृषि द्वारा अन्न उत्पादन को किन्हीं संदर्भों / अर्थों में एक प्राकृतिक विधि कह सकते हैं क्योंकि फसल पकने (पादपों की आयु पूर्ण होने के बाद) पर फसली पौधों के वायवीय (aerial) भागों को काट कर हम अनाज / बीज प्राप्त करते है। जब हम इन पौधों की जड़ों को भूमि से अलग नहीं करते हैं तब पौधों की जड़ों पर पनप रहे अनंत सूक्ष्म जीवों की मृत्यु का कारण बनने से बचे रहते है। परंतु जब हम कंद मूलों या जमीं कंदों को जमीन से बाहर निकालते हैं तब इन पर पनप रहे अनंत सूक्ष्म जीवों की मृत्यु का कारण बनते हैं। पौधों का जड़ों के पास वाली प्रति ग्राम भूमि में करीब 10^4 से 10^7 (कुछ हजार से 10 करोड़) या इससे भी अधिक सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। अतः मात्र जमीं कंदों, कंद मूलों अथवा भूमिगत पादप पदार्थों के परित्याग से हम असंख्य जीवों की हिंसा के कारण (निमित्त) बनने से बच जाते हैं। परिपक्व फलों तथा सब्जियों आदि को पौधों से प्राप्त करना भी एक प्राकृतिक व्यवहार कहा जा सकता है और कुछ अर्थों में अहिंसात्मक भी। उदाहरण के लिये नीबू के पौधे से नीबुओं को तोड़ना तथा पौधे से विलग हुये पौधे को नीचे पडे हुये नीबुओं को प्राप्त करना। दोनों आचरणों में द्वितीय आचरण (अपेक्षाकृत) अनावश्यक हिंसक क्रिया से बचाता है।

(2) पानी को छान कर पीना या उपयोग में लाना

पानी को छान कर पीना जैन धर्मावलंबियों का एक आवश्यक विशिष्ट गुण माना जाता है। परंतु पानी छानने की प्रक्रिया / क्रिया विधि को समझना तथा उसका परिपालन किया जाना भी आवश्यक है।

पानी को मोटे कपड़े के छन्ने से छान कर पीने अथवा उपयोग में लाने से हम उन दीर्घ जीवों की हिंसा से निश्चित ही बच सकते हैं जो छन्ने से बाहर नहीं निकल पाते हैं परंतु यह तभी संभव है जब हम छन्ने पर आये हुये जीवों को पुनः पानी के स्रोत में तुरंत पहुंचायें (बिल्छानी डालना)। पानी को छानते समय भी हमारी दृष्टि पानी के छन्ने पर ही होना चाहिए। ताकि बिल्छानी के समय यह सुनिश्चित किया जा सके कि जीवों को उनके स्रोत तक पहुंचाया जा चुका है। समस्त जलीय जीवों के प्रति दया तथा अहिंसक भाव भी मन में होना चाहिए। पानी को छान कर उपयोग करने से हम कुछ दीर्घकाय जीवों की द्रव्य हिंसा तथा समस्त जलीय सूक्ष्म जीवों की भाव हिंसा से बचते हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से पानी का छन्ना साफ, गंधहीन एवं उपयोग से पहले सूखा होना चाहिये। उपयोग के बाद उसे तुरंत सूखने डालना आवश्यक है। ज्ञात हो कि पानी के छन्ने पर भी सूक्ष्म जीव नमी के कारण पनपते हैं। अतः इस दृष्टिकोण से पानी की टंकियों में कपड़े की थैलियां बंधी रखना आदि कुछ ऐसी विसंगतियाँ हैं जिन पर हमें पुनः विचार करना आवश्यक है।

(3) पीने के पानी को फासू (पास्तेरीकृत, Pasteurize) करना एवं इसकी मर्यादा

पानी में जलीय सूक्ष्म जीवों की संख्या कितनी होगी यह जल के स्रोत पर निर्भर करता है। चूँकि विभिन्न स्रोतों से प्राप्त पानी का स्वाद तथा इसमें घुलित कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थों की मात्रा भिन्न हो सकती है। अतः इनमें पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या भी भिन्न होगी। पानी में घुलित गैसें, कार्बनिक एवं अकार्बनिक

पदार्थों की अत्यतम उपलब्ध मात्रा पर जलीय सूक्ष्म जीव अपनी वृद्धि कर सकते हैं (सूक्ष्म जीवों की वृद्धि से तात्पर्य उनकी संख्या में वृद्धि से हैं)। ये सूक्षम जीव (जिन्हे जीवाणु Bacteria कहते है) करीब 20 मिनट से लेकर 1 घण्टे कीअवधि में 1 प्रजनन कर एक से दो हो जाते हैं अर्थात् इनकी प्रजनन क्षमता बहुत तीव्र तथा अधिक होती है। इसी कारण से जल का अधिक समय तक संग्रहण नहीं करते हैं। सभी प्रकार के जल में सूक्ष्म जीव उपस्थित रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य बीमारियां फैलाने वाले सूक्ष्म जीव जैसे अमीबा इत्यादि (प्रोटोजोआ Protozoa समूह के बीच), डायटम्स, शैवाल आदि (एल्गी Algae समूह के जीव) जल की रासायनिकता के आधार पर पाये जाते हैं।

पानी को फासू (पास्तेरीकरण) करने से पानी में उपस्थित सभी हानिकारक सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं तथा पानी में घुलित गैसे बाष्प के साथ पानी से बाहर निकल जाती हैं, कार्बनिक एवं अकार्बनिक घुलित पदार्थ अवक्षेपित हो जाते हैं। और उपयोग के लिये इसे जब ठण्डा करते हैं तब ये अवक्षेपित पदार्थ तलछट के रूप में पास्तेरीकृत पानी में दिखते हैं। पास्तरीकृत जल स्वच्छ जल बन जाता है जिसमें सूक्ष्मजीवों की संख्या न के बराबर रहती है अतः इनकी वृद्धि की संभावना समाप्त हो जाती है। ऐसा जल स्वास्थ की दृष्टि से सर्वोपरि है। परंतु, प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त जल में पहले से ही उपस्थित जीवों की हिंसा तो जल के पास्तेरीकरण (फासू) करने में होगी ही। पास्तेरीकरण न करने पर इनकी संख्या निरंतर बढ़ती रहेगी और निस्तार के लिये उपयोग में लाए जाने पर अथवा पीने पर जीव हिंसा कई गुना अधिक होगी। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से तथा अत्याधिक जीव हिंसा से बचने की दृष्टि से फासू पानी का प्रयोग करना उचित है।

(4) खाद्य पदार्थों की मर्यादा

किसी भी वस्तु की मर्यादा से तात्पर्य उसके वास्तविक भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन प्रारंभ होने के समय से है। चूँकि सूक्ष्म जीव वायु, जल एवं धूल, मिट्टी सभी में उपस्थित हैं अतः ये सूक्ष्मजीव संग्रहित खाद्य पदार्थों, जल आदि में पुनः पहुंचते रहते हैं और वृद्धि करने लगते हैं। जैनाचार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सूक्ष्म जीवों की हिंसा की अधिकता से बचने के लिये वस्तुओं की मर्यादा का उल्लेख किया गया है। वस्तुओं (चीजों) की मर्यादा के अनुसार उपयोग करना न केवल हमें अतिजीवी हिंसा से बचाता है बल्कि सूक्ष्म जीवों द्वारा स्रावित हानिकारक पदार्थों से भी बचाता है। खाद्य सूक्ष्मजीव विज्ञान में भी खाद्य सामग्री को उनकी रासायनिकी तथा भौतिकी के आधार पर विभिन्न वर्गो में बांटा गया है। तथा इसी आधार पर उनकी मर्यादा (Self life) निश्चित की जाती है।

27

प्राकृत-कथा-काव्य में सांस्कृतिक चेतना

साहित्यवाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

प्राचीन संस्कृत–कथाओं की आधारशिला बहुलांशतः दिव्यभूमि पर प्रतिष्ठापित की गई है। किन्तु, ठीक इसकी प्रतिभावना–स्वरूप प्राकृत–कथाओं की रचना–प्रक्रिया में दिव्यादिव्य शक्तियों की समन्विति को प्रमुखता दी गई है। कारण, संस्कृत के कथाकार वेदों और उपनिषदों में प्रतिपादित ईश्वरीय शक्ति की सर्वोपरिता की अवधारणा से आक्रान्त थे; परन्तु इसके विपरीत प्राकृत–कथाकारों ने मानव–शक्ति की सर्वोपरिता को लक्ष्य किया था। इसीलिए, ईश्वरत्व के विनियोग अथवा ईश्वर के कर्तृत्व की अपेक्षा उसके व्यक्तित्व में विपुल विश्वास के प्रति प्राकृत–कथाकारों का आग्रह अधिक सजग रहा। संस्कृत–कथाकार जहाँ केवल अतिलौकिक भावभूमि के पक्षधर बने, वहीं प्राकृत–कथाकारों ने लौकिक भावधारा को अतिलौकिक पृष्ठभूमि से जोड़कर मानवतावादी दृष्टिकोण का संकेत किया।

प्राकृत और संस्कृत के कथाकारों की सैद्धान्तिक मान्यताओं के उपर्युक्त वैचारिक स्वातन्त्र्य के मूल में न केवल साम्प्रदायिक, अपितु अपने–अपने युग का, अर्थात् समसामयिक भाषिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश का प्रभाव भी सक्रिय रहा है, फलतः उन्होंने अपनी–अपनी सांस्कृतिक चेतना और बौद्धिक चिन्तन या मानसिक अवधारणा के अनुकूल भाव–जगत् में संचरण करते हुए यथास्वीकृत पद्धति से कथा–साहित्य को नूतन अभिनिवेश दिया, नई–नई दिशाएँ दीं और उसके नये–नये आयाम निर्धारित किये। किन्तु सामान्य जनजीवन से सम्बद्ध प्राकृत–कथाकारों ने ततोऽधिक विकासवादी दृष्टि का परिचय दिया, अर्थात् उन्होंने मानव–नियति को दैवी–नियति से सम्बद्ध न मानकर, लोकभावना को कर्मवाद पर आधृत सामाजिक गतिशीलता की ओर प्रेरित किया; अदिव्य को दिव्य से मिलाकर उसे दिव्यादिव्यत्व प्रदान किया। चिराचरित सार्वभौमतावादी युगधर्म को विकसित कर उसमें लोकजीवन की लोकोत्तरवादी चेतना की व्यापक विनियुक्ति प्राकृत–कथाओं की मौलिक विशेषता है, जो अपने साथ, सांस्कृतिक और साहित्यिक समृद्धि की दृष्टि से सारस्वत क्षेत्र के लिए अपूर्व उपलब्धि की गरिमा का संवहन करती है।

वैदिक या ब्राह्मण–परम्परा के संस्कृत–कथा–साहित्य की विविधता और विपुलता

ने जिस प्रकार अपने युग का निर्माण किया है, उसी प्रकार श्रमण–परम्परा में प्राकृत–कथावाङ्मय की विशालता से एक युग की स्थापना हुई है। श्रमण–परम्परा और ब्राह्मण–परम्परा–दोनों समान्तर गति से प्रवाहित होती आ रही हैं। दोनों के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं है। यह बात दूसरी है कि कोई परम्परा काल–धर्म के कारण क्षीणप्रभ और तेजोदीप्त होती रही। कोई भी परम्परा अपने सारस्वत और सांस्कृतिक वैभव से ही दीर्घायु होती है। ब्राह्मण–परम्परा अपने साहित्यिक उत्कर्ष, सांस्कृतिक समृद्धि, दार्शनिक दीप्ति और भाषिक ऋद्धि से शाश्वत बनी हुई है, उसी प्रकार श्रमण–परम्परा की जैन और बौद्ध–ये दोनों शाखाएँ भी अपनी महामहिम साहित्यिक–सांस्कृतिक–दार्शनिक–भाषिक विभूति से ही युग–युग का जीवनकल्प हो गई हैं।

कोई भी परम्परा या सम्प्रदाय यदि सामाजिक गति को केवल तथाकथित धार्मिक नियति से संयोजित करने की चेष्टा करता है, तो वह पल्लवित होने की अपेक्षा संकीर्ण और स्थायी होने की अपेक्षा अस्थायी हो जाता है। श्रमण–परम्परा की स्थायिता का मूलकारण धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में उसकी क्रान्तिकारी वैचारिक उदारता हैं। श्रमण–परम्परा की प्राकृत–कथाओं में उदार–दृष्टिवादी संस्कृति, धर्म और दर्शन की समन्वित त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, अतएव इसी परिप्रेक्ष्य में प्राकृत–कथाओं का मूल्यांकन न्यायोचित होगा। आगम–परवर्त्ती प्राकृत–कथासाहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यही नहीं है कि प्राकृतकथाकारों ने लोक–प्रचलित कथाओं को धार्मिक परिवेश प्रदान किया है या श्रेष्ट कथाओं की सर्जना केवल धर्म–प्रचार के निमित्त की है। प्राकृत–कथाओं का प्रधान उद्देश्य केवल सिद्धान्त–विशेष की स्थापना करना भी नहीं है। वरंच, सिद्धान्त–विशेष की स्थापना, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश के प्रस्तवन के साथ ही अपने समय के सम्पूर्ण राष्ट्रधर्म या युगधर्म का प्रतिबिम्बन भी प्राकृत–कथा का प्रमुख प्रतिपाद्य है, जिसमें भावों की रसपेशलता, सौन्दर्य–चेतना, सांस्कृतिक आग्रह और निर्दुष्ट मनोरंजन के तथ्य भी स्वभावतः समाहृत हो गये हैं। कहना यह चाहिए कि प्राकृत–कथाकारों ने अपनी कथाओं में धर्म–साधना या दार्शनिक–सिद्धान्तों की विवेचना को साम्प्रदायिक आवेश से आवृत्त करने के आग्रही होते हुए भी संरचना–शिल्प, भाव–सौन्दर्य, पदशय्या, भणिति–भंगी, बिम्बविधान, प्रतीक–रमणीयता, सांस्कृतिक विनियोग आदि की दृष्टि से अपने कथाकार के व्यक्तित्व को खण्डित नहीं होने दिया। यद्यपि इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि किसी कथाकार या रचनाकार के लिए जिस अन्तर्निगूढ निर्वैयक्तिकता या अनाग्रहशीलता या धर्मनिरपेक्षता या सांस्कृतिक अनुराग की अपेक्षा होती है, उसमें प्राकृत–कथाकार अपने को प्रतिबद्ध नहीं रख सके। वे अनेकान्त, अपरिग्रह एवं अहिंसा का अखण्ड वैचारिक समर्थन करते रहे और अपने धर्म की श्रेष्ठता का डिण्डिमघोष भी।

ऐसा इसलिए सम्भव हुआ कि वैदिक धर्म के यज्ञीय आडम्बरों और अनाचारों से विमुक्ति के लिए भगवान् महावीर ने लोकजीवन को अहिंसा और अपरिग्रह से सम्पुटित जिस अनेकान्तवादी अभिनव धर्म का सन्देश दिया था, वह राजधर्म के रूप में स्वीकृत था, इसलिए उसके प्रचार–प्रसार का कार्य राज्याश्रित बुद्धिवादियों या दर्शन, ज्ञान और चारित्र के सम्यक्त्व द्वारा मोक्ष के आकांक्षी श्रुतज्ञ तथा श्रमण कथाकारों का नैतिक एवं धार्मिक इतिकर्त्तव्य था। इसके अतिरिक्त, कथा–कहानी प्रचार–प्रसार का अधिक प्रभावकारी माध्यम सिद्ध होती है, इसलिए कथा के व्याज से धर्म और नीति की बातें बड़ी सरलता से जनसामान्य को हृदयंगम कराई जा सकती हैं। यही कारण है कि जैनागमोक्त धर्म के आचारिक और वैचारिक पक्ष की विवेचना और उसके व्यापक प्रचार के निमित्त प्राकृत–कथाएँ अनुकूल माध्यम मानी गई हैं। अतएव, तत्कालीन लोकतन्त्रीय राजधर्म के प्रति किसी भी लोकचिन्तक कलाकार की पूज्य भावना सहज सम्भाव्य है, जो उसके राष्ट्रीय दायित्व के पालन के प्रति सजगता

का संकेतक भी है। स्पष्ट है कि प्राकृत–कथाकारों की रचना–प्रतिभा धर्म, दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में सममति थी। धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना, दार्शनिक प्रभा तथा साहित्यिक विदग्धता के शास्त्रीय समन्वय की प्रतिमूर्ति प्राकृत के कथाकारों की कथाभूमि एक साथ धर्मोद्घोष से मुखर, दार्शनिक उन्मेष से प्रखर, साहित्यिक सुषमा से मधुर तथा सांस्कृतिक चेतना से जीवन्त है। इसीलिए, प्राकृत–कथाओं के मूल्य–निर्धारण के निमित्त अभिनव दृष्टि और स्वतन्त्र मानसिकता की अपेक्षा है।

प्राकृत–कथा न केवल धर्मकथा है, न ही कामकथा और न अर्थकथा। इसके अतिरिक्त, प्राकृत–कथा को केवल मोक्षकथा भी नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः, प्राकृत–कथा मिश्रकथा है, जिसमें पुरुषार्थ–चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की सिद्धि का उपाय निर्देशित हुआ है। अनुभूतियों की सांगोपांग अभिव्यक्ति मिश्रकथा में ही सम्भव है। जीवन की समस्त सम्भावनाओं के विन्यास की दृष्टि से प्राकृत–कथा की द्वितीयता नहीं है।

सामान्यतया, प्राकृत–कथाओं की संरचना–शैली का पालि–कथाओं से बहुशः साम्य परिलक्षित होता है। फिर भी, दोनों में उल्लेखनीय अन्तर यह है कि पालि–कथाओं में पात्रों के पूर्वभव–कथा के मुख्य भाग के रूप में उपन्यस्त हुए हैं; परन्तु प्राकृत–कथाओं में पात्रों के पूर्वभव उपसंहार के रूप में विन्यस्त हुए हैं। पालि–कथाओं या जातक–कथाओं में बोधिसत्त्व मुख्य केन्द्रबिन्दु हैं, और उनके कार्यकलाप की परिणति प्रायः उपदेशकथा के रूप में होती है। इस क्रम में किसी एक गाथा को सूत्ररूप में उपस्थापित करके गद्यांश से उसे पल्लवित कर दिया गया है, जिससे कथा की पुष्टि में समरसता या एकरसता का अनुभव होता है। किन्तु, प्राकृत–कथाओं में जातक–कथाओं जैसी एकरसता नहीं है, अपितु घटनाक्रम की विविधता और उसके प्रवाह का समन्वयात्मक आयोजन हुआ है। गहराई और विस्तार प्राकृत–कथाओं की शैली की अपनी विशिष्टता है। प्राकृत–कथा की महत्ता इस बात में निहित है कि इसके रचयिताओं ने हृद्य और लोकप्रिय किस्सा–कहानी एवं साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कलापूर्ण गल्प के बीच मिथ्या प्रतीति के व्यवधान को निरस्त कर दिया है। प्राकृत–कथाकारों ने उच्च और निम्न वर्ग के वैषम्य को भी अपनी कृतियों से दूर कर दिया है। फलतः, इनकी रचनाओं में दोनों वर्गों की विशिष्टताओं का सफल समन्वय हुआ है। दूसरी ओर, जो लोग साहित्यिक अभिनिवेश, सांस्कृतिक चेतना और मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं की अपेक्षा रखते हैं, उन्हें भी प्राकृत–कथाओं से कोई निराशा नहीं हो सकती। यह एक बहुत बड़ी बात है, जो बहुत कम कथा–साहित्य के बारे में कही जा सकती है।

व्यापक और गम्भीर सूक्ष्मेक्षिका से सम्पन्न भारतीयेतर विद्वानों ने भी अपने संरचना–शिल्प में सम्पूर्ण भारतीय परम्परा को समाहृत करनेवाली प्राकृत–कथा–वाङ्मय की विशालता पर विपुल आश्चर्य व्यक्त किया है। भारतीय साहित्य के पारगामी अधीती तथा 'ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर' के प्रथितयशा लेखक विण्टरनित्स केवल इसी बात से चकित नहीं हैं कि प्राकृत–कथा–साहित्य में जनसाधारण के वास्तविक जीवन की झाँकियाँ मिलती हैं, वह तो इसलिए प्रशंसामुखर हैं कि प्राकृत–कथाओं की भाषा में एक ओर यदि जनभाषा की शरीरात्मा प्रतिनिहित है, तो दूसरी ओर वर्ण्य विषय में विभिन्न वर्गों के वास्तविक सांस्कृतिक जीवन का हृदयावर्जक चित्र समग्रता के साथ, मांसल रेखाओं में अंकित है। इसके अतिरिक्त, प्राकृत–कथाकारों की विश्वजनीन अनुभूति का प्रमाण यह भी है कि उनके द्वारा प्रस्तुत अभिव्यक्ति की विलक्षणता, कल्पना की प्रवणता, भावनाओं और आवेगों का विश्लेषण तथा मानव–नियति का भ्राजमान चित्रण– ये तमाम तत्त्व विश्व के कथा–साहित्य की विशेषताओं का मूल्य–मान रखते हैं। सबसे अधिक उल्लेख्य तथ्य यह है कि प्राकृत–कथा–साहित्य में सुरक्षित स्थापत्य और शिल्प विभिन्न परवर्त्ती भारतीय कथा–साहित्य के आधारादर्श बने।

ज्ञातव्य है कि प्राकृत–कथा के शिल्प–विधान में न केवल बाह्य वैलक्षण्य है, अपितु उसमें प्रतिष्ठित आन्तरिक शिल्प की सौन्दर्य–चेतना और सांस्कृतिक उद्भावना में पाठकों से आत्मीयत्व स्थापित करने की अपूर्व क्षमता भी है।

प्राकृत–कथाओं की असाधारणता ने 'ऑन द लिटरेचर ऑव द श्वेताम्बराज़ ऑव गुजरात' के मनीषी लेखक प्रो. हर्टेल का ध्यान भी आवर्जित किया है। वह प्राकृत–कथाकारों के कथाकौशल की कलात्मक विशिष्टता और औपन्यासिक स्थापत्य पर विस्मय–विमुग्ध हैं। लोकजीवन की विविधता की पूर्ण सत्यता के साथ अभिव्यक्ति में प्राकृत–कथाकारों की सातिशय विचक्षणता ने उन्हें बरबस आकृष्ट किया है। इसलिए, वह प्राकृत–कथाओं को जनसाधारण की नैतिक शिक्षा का मूलस्रोत ही नहीं, अपितु भारतीय सभ्यता और संस्कृति का ललित इतिहास भी मानते हैं।

यह तथ्य है कि संस्कृति और सभ्यता का यथार्थ और उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राकृत–कथासाहित्य की उपयोगिता असन्दिग्ध है। उच्च, मध्य और निम्न वर्गों के चारित्रिक विकास और उसके सहज विस्तार को जितनी प्रभावोत्पादक सूक्ष्मता से प्राकृत–कथाकारों ने रूपायित किया है, उतनी तलस्पर्शिता का प्रदर्शन अन्य भाषाओं के कथाकार कदाचित् ही कर पाये हैं। मान्त्रिक वाग्मिता के साथ अपनी स्थापना या प्रतिज्ञा (थीसिस) को, मौलिकता और नवीनता की प्रभावान्विति से आवेष्टित कर उपस्थापित करना प्राकृत–कथाकारों की रचना–प्रक्रिया की अन्यत्र दुर्लभ सारस्वत और सांस्कृतिक उपलब्धि है।

जीवन की जटिलता और दुस्तर भवयात्रा की विभीषिका में मानव के मनोबल को सतत दृढ़तर और उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना को निरन्तर उन्निद्र एवं पदक्रम को अविरत गतिशील बनाये रखने के लिए कालद्रष्टा तपोधन ऋषियों तथा दर्शन–ज्ञान–चारित्रसम्पन्न आचार्यों ने मित्रसम्मित या कान्तासम्मित उपदेशों को कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया, ताकि भवयात्रियों का जीवन–मार्ग दुःख की दारुण अनुभूति से बोझिल न होकर सुगम हो जाय और उन्हें अपनी आत्मा में निहित लोकोत्तर शक्ति को ऊर्ध्वमुख करने की प्रेरणा भी मिलती रहे। इस प्रकार, जीवन और जगत्, दिक् और काल की सार्थकता ही कथा का मूल उद्देश्य है। चाहे पूरी भवयात्रा हो, या सामान्य दैनन्दिन जीवन की खण्डयात्रा, दोनों की सुखसाध्यता और ततोऽधिक मंगलमयता या सफलता के लिए कथा अनिवार्य है। 'श्रीमद्भागवत' (१०.३१.१)के अनुसार, तप्त जीवन के लिए कथा एक ऐसा अमृत है, जो न केवल श्रवण–सुखद है, अपितु कल्मषापह भी है। सच पूछिए, तो मानव का जीवन ही एक कथा है। कथा अपने जीवन की हो, या किसी दूसरे के जीवन की, मानव–मन की समान भावानुभूति की दृष्टि से प्रत्येक कथा तदात्मता या समभावदशा से आविष्ट कर लेती है और फिर, उससे जो जीवन की सही दिशा का निर्देश मिलता है, वह सहज ग्राह्य भी होता है। इसीलिए, भगवान् के द्वारा कही गई वेद या पुराण की संस्कृत–कथाएँ या जैनागम की प्राकृत–कथाएँ या फिर बौद्ध त्रिपिटक की पालि–कथाएँ अतिशय लोकप्रिय हैं। इसप्रकार प्रत्येक परम्परा का आगम–साहित्य ही कथा की आदिभूमि है।

भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट जैनागमों का संकलन अर्द्धमागधी प्राकृत में हुआ है। अतएव, प्राकृत–कथाओं की बीजभूमि या उद्गम–भूमि आगम–ग्रन्थ ही हैं। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि आगमिक टीका–ग्रन्थों में भी लघु और बृहत् सहस्रों कथाएँ हैं। आगमिक साहित्य में धार्मिक आचार, आध्यात्मिक तत्त्वचिन्तन, नीति और कर्त्तव्य का निर्धारण आदि जीवनाभ्युदयमूलक आयामों का प्रतिपादन कथाओं के माध्यम से किया गया है। इतना ही नहीं, सैद्धान्तिक तथ्यों का निरूपण, तात्त्विक निर्णय, दार्शनिक गूढ समस्याओं के समाधान, सांस्कृतिक चेतना का उन्नयन तथा अनेक ग्रन्थिल–गम्भीर विषयों के स्पष्टीकरण के लिए कथाओं को माध्यम

बनाया गया है। तीर्थंकरों, गणधरों और अन्यान्य आचार्यों ने कथा की शक्ति को पहचाना था, इसलिए उन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए कथा को सर्वाधिक महत्त्व दिया।

प्राकृत–निबद्ध अंग और उपांग–साहित्य में प्राप्त, आर्हत सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति देनेवाले आख्यान प्रेरक और प्रांजल तो हैं ही, अन्तर्निगूढ संवेदनशील भावनाओं और सांस्कृतिक अन्तर्भावों के समुद्भावक और सम्पोषक भी हैं। आगमकालीन इन आख्यानों का उद्देश्य है– मिथ्यात्व से उपहत अधोगामिनी मानवता को नैतिक और आध्यात्मिक उदात्तता की उर्ध्वभूमि पर प्रतिष्ठापित करना। आगमकाल प्राकृत–कथासाहित्य का आदिकाल या संक्रमण–काल था। इस अवधि में नीति और सिद्धान्तपरक प्राकृत–कथाएँ क्रमशः साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कथाओं के रूप में संक्रमित हो रही थीं, अर्थात् उनमें सपाटबयानी के अतिरिक्त साहित्य–बोध और सांस्कृतिक परिज्ञान की अन्तरंग सजगता और रसात्मक अभिव्यक्ति की आकुलता का संक्रमण हो रहा था। अर्हतों की उपदेश–वाणी की तीक्ष्णता और रूक्षता को या उसकी कड़वाहट को प्रपानक रस के रूप में परिणत कर अभिव्यक्त करने की चिन्ता प्रथमानुयोग के युग में रूपायित हुई और संस्कृति–सिक्त साहित्य की सरसता से सिक्त होने का अवसर मिल जाने से गुरुसम्मित वाणी जैसी प्राकृत–कथाएँ कान्तासम्मित वाणी में परिवर्त्तित होकर ततोऽधिक व्यापक और प्रभावक बन गईं और इस प्रकार, संकलन की प्रवृत्ति सर्जना–वृत्ति में परिणत हुई। विषय–निरूपण की सशक्तता के लिए सपाट कथाओं में अनेक घटनाओं और वृत्तान्तों का संयोजन किया गया, उनमें मानव की जिजीविषा और संघर्ष के आघात–प्रत्याघात एवं प्रगति की अदम्य आन्तरिक आकांक्षाओं के उत्थान–पतन का समावेश किया गया; इसके अतिरिक्त उनमें सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में विकृतियाँ उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियाँ चित्रित हुईं और उनपर विजय–प्राप्ति के उपाय भी निर्दिष्ट हुए। पाण्डित्य के साथ–साथ सौन्दर्योन्मेष, रसोच्छल भावावेग, प्रेमविह्वलता, सांस्कृतिक चेतना और लालित्य की भी प्राणप्रतिष्ठा की गई। इस प्रकार, प्राकृत–कथाएँ पुनर्मूल्यांकित होकर आख्यान–साहित्य के समारम्भ का मूल कल्प बनीं और उनका लक्ष्य हुआ– कर्ममल से मानव की मुक्ति और जीवन की उदात्तता के बल पर ईश्वरत्व में उनकी चरम परिणति या मोक्ष की उपलब्धि।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि प्राकृत–कथासाहित्य की मूलधारा आगमिक कथाओं से उद्गत होकर समकालीन विभिन्न प्राकृतेतर कथाओं को संचित–समेकित करती हुई पन्द्रहवीं–सोलहवीं शती तक अखण्ड रूप से प्रवाहित होती रही। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने उचित ही लिखा है कि ''आगम–साहित्य प्राकृत–कथासाहित्य की गंगोत्तरी है। ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा आदि अंग तथा राजप्रश्नीय, कल्पिका, कल्पावतंसिका आदि उपांग प्राकृत–कथासाहित्य के सुमेरुशिखर हैं।''

उपर्युक्त उहापोह से यह निष्कर्ष स्थापित होता है कि प्राकृत–साहित्य की विभिन्न विधाओं में कथा–साहित्य का ऊर्जस्वल महत्त्व है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि प्राकृत–कथासाहित्य ने प्राकृत–काव्यों को अपदस्थ किया है। इसलिए कि कथा–साहित्य में यथार्थता का जो सातत्य है, उनका निर्वाह काव्य–साहित्य में प्रायः कम पाया जाता है। यद्यपि, अस्वाभाविक आकस्मिकता और अतिनाटकीयता से प्राचीन प्राकृत–कथासाहित्य भी मुक्त नहीं है। युगीनता के अनुकूल कथा–साहित्य के शिल्प और प्रवृत्ति में अन्तर अस्वाभाविक नहीं। घटनाओं और चरित्रों के समानान्तर विकास का विनियोग प्राकृत–कथाकार अच्छी तरह जानते थे। सांस्कृतिक चेतना की समरसता और धार्मिक सूत्र की एकतानता तथा उपमा और दृष्टान्तों की एकरस परम्परा के बावजूद प्राकृत–कथाओं की रोचकता और रुचिरता से इनकार नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक चेतना के प्रवाह के साथ श्रेष्ठ

चरित्र के विकास का प्रदर्शन प्राकृत–कथाओं का एक ऐसा मूल्यवान् पक्ष है कि जिससे समग्र कथा–साहित्य का निर्माण–कौशल विकसित हुआ है।

प्राकृत का बहुमुखी विकास

संस्कृत और प्राकृत–साहित्य में काव्य–वैभव का तात्त्विक आदान–प्रदान परस्परापेक्ष भाव से हुआ है। *संस्कृत के प्रबन्ध–काव्यों की रचना के मूलाधार यदि प्राकृत–काव्य रहे हैं, तो प्राकृत के विविध प्रबन्ध काव्यों* ने अपनी पृष्ठभूमि संस्कृत के प्रबन्ध–काव्यों को बनाया है। प्राकृत के प्रबन्ध–काव्यों में चरितकाव्य का स्थान महत्त्वपूर्ण एवं मूर्द्धन्य है। इस सन्दर्भ में यह कहना बहुत औचित्यपूर्ण है कि प्राकृत के चरितकाव्यों से ही संस्कृत के चरितकाव्यों की परम्परा का श्रीगणेश होता है। विशेषतया, संस्कृत–काव्य की चम्पू–विधा का जहाँ तक प्रश्न है, उसका विकास शिलालेखों में प्रयुक्त प्रशस्ति–लेखन–शैली की अपेक्षा गद्य–पद्य–मिश्रित प्राकृत–चरितकाव्यों से मानना अधिक तर्कसंगत है; क्योंकि प्राकृत में चरितकाव्यों को रोचक एवं रंजक बनाने के निमित्त गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग किया गया है। गद्य यदि चिन्तन का प्रतीक है, तो पद्य भावना का। एक का सम्बन्ध मस्तिष्क से है, तो दूसरा हृदय से सम्बद्ध है। 'प्राकृत–भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के लेखक डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के शब्दों में, ''प्राकृत के कवियों ने अपने कथन की पुष्टि, कथानक के विकास, धर्मोपदेश, सिद्धान्त–निरूपण एवं प्रेषणीयता लाने के लिए गद्य में पद्य की छौंक और पद्य में गद्य की छौंक लगाई है।'' संस्कृत में त्रिविक्रमभट्ट के 'मदालसाचम्पू' एवं 'नलचम्पू' को ही आदि–चम्पूकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। आचार्य विश्वनाथ ने 'चम्पू' की परिभाषा दी है। ('गद्य–पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।'– साहित्यदर्पण) इनके भी पूर्ववर्त्ती कवि दण्डी ने भी चम्पू की परिभाषा प्रस्तुत की है। अनुमान तो यही होता है कि चम्पू के परिभाषाकार उक्त कविमनीषी आचार्यों ने निश्चय ही प्राकृत के प्राचीन या पूर्ववर्त्ती चरितकाव्यों को देखकर ही अपनी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। यथापरिभाषित चम्पू के सटीक उदाहरणों में 'तरंगवई' और 'वसुदेवहिण्डी' जैसी प्राकृत–रचनाओं के नाम हठात् परिगणनीय हैं। 'समराइच्चकहा' और 'महावीरचरियं' भी गद्य–पद्यमिश्रित शैली के उत्कृष्ट उदाहरणों में अन्यतम स्थान रखते हैं।

प्राकृत–महाकाव्य

प्राकृत के महाकाव्यों में शास्त्रीयता–सह–लालित्य इन दो तत्त्वों का संश्लिष्ट रूप स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्राकृत में जो महाकाव्य संस्कृत के महाकाव्यों की शैली पर लिखे गये, उनमें शास्त्रीयता के समावेश का अधिक आग्रह दिखाई पड़ता है और ललित प्राकृत–महाकाव्य शास्त्रीयता के व्यामोह से अतिशय आबद्ध न रहकर किंचित् स्वतन्त्र भाव से रसास्वाद के महत्त्व–प्रतिपादन के लिए रचे गये। कुल मिलाकर, शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्य मानवमात्र की रागात्मिका वृत्ति को उद्बुद्ध करने की पूर्ण क्षमता रखते हैं, इसलिए इनमें शुद्ध रसात्मकता का अभिनिवेश सहज ही उपलब्ध होता है। कहना न होगा कि शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्य शुद्ध रसात्मक काव्य ही हैं; क्योंकि इनमें 'सर्वकाव्यांगलक्षणता' विद्यमान रहती है।

प्राकृत के महाकाव्य सामाजिक जीवन के प्रतिनिधि :

प्राकृत के कवियों ने संस्कृत के महाकाव्यों से रूप–विन्यास एवं शैल्पिक उत्कर्ष या कलात्मक प्रौढिप्रकर्ष को आयत्त किया है; क्योंकि संस्कृत–महाकाव्यों के उक्त दोनों गुण अपनी मौलिकता से वरेण्य हैं। किन्तु, श्रृंगार रस की परम सुन्दर व्यंजना का जहाँ तक प्रश्न है, प्राकृत–महाकाव्यों की द्वितीयता नहीं है। सच पूछिए, तो शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्य कलात्मक प्रतिभा का दिव्यावदान हैं। कथा का निरूपण और विस्तार, छन्दोबन्धन, सर्गबद्धता

एवं खण्डविभक्ति, जीवन के रूप–वैविध्य का समष्ट्यात्मक चित्रण, कथातत्त्व में लोकतत्त्वों का समायोजन, उदात्त गम्भीर शैली, रमणीयार्थक शब्दों से सुरभित और रसात्मक वाक्यों से विमण्डित काव्यभाषा का विनियोग आदि कतिपय गुणों के पारस्परिक समायोजन की सारस्वत समृद्धि ही शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्यों को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती है। शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्यों को समग्र सामाजिक जीवन का प्रतिनिधि–काव्य इसीलिए कहा जाता है कि इनमें जातीय गुणों एवं परम्परागत अनुभवों का रसपेशल रूप अपनी सम्पूर्ण विच्छित्ति के साथ प्रतिष्ठित है। देश–कालगत स्वरूप की बाह्य भिन्नता के बावजूद इनके आभ्यतरिक मूल्यों, सहज–तरल गुणों एवं साहित्यिक संस्कार की आभा सदाप्रभ बनी रहती है।

प्राकृत–महाकाव्यों का वैशिष्ट्य

शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्यों के परिप्रेक्ष्य में हम महाकाव्य के वैशिष्ट्यों का इस प्रकार निर्धारण कर सकते हैं कि महाकाव्य में बहुविध घटनाओं का प्रवाह, फल–प्राप्ति की ओर अग्रसर कथावस्तु की विभिन्न भंगिमाओं–चारियों में नर्त्तनशील रहता है। कथावस्तु का माध्यम युगविशेष के समग्र जीवन के चित्रण के लिए अपनाया जाता है। कथा की चरम परिणति चिन्तन की विभिन्न ऊर्मियों में तरंगित होती हुई भी अन्त में किसी एक महत्त्व में ही समाहित होती है। तद्युगीन समस्त मानव–मनोदशाओं और सम्पूर्ण सामाजिक कार्य–व्यापारों का यथातथ्य प्रत्यंकन ही प्राकृत–महाकाव्यों का महान् उद्देश्य है।

सेतुबन्ध

प्राकृत के प्रसिद्ध–प्रमुख महाकाव्यों में 'सेतुबन्ध' का शीर्षस्थ स्थान है। यह महाकाव्य महाकवि प्रवरसेन की प्राकृत–निबद्ध एक उल्लेखनीय कृति है। कथाशिल्प एवं घटना–विकास की दृष्टि से 'सेतुबन्ध' की द्वितीयता नहीं है। यदि तात्त्विक समकक्षता की बात की जाय, तो कोई भी संस्कृत–महाकाव्य इसके समक्ष उन्नीस ही पड़ेगा। रामायण–प्रसिद्ध दो प्रमुख घटनाएँ–सेतु बन्धन और रावण–वध इसके वर्ण्य विषय हैं। कवि ने समुद्र पर सेतु–रचना का उत्साहपूर्ण एवं विस्तृत चामत्कारिक चित्रण बड़ी तल्लीनता से, हृदयहारिणी शैली में किया है। इसलिए इस काव्य की फल–परिणति रावण–वध होते हुए भी, इसकी 'सेतुबन्ध' आख्या ने ही प्रमुखता प्राप्त की और 'दसमुहवहो' नाम गौण पड़ गया। कहना यह कि सेतु–रचना ही इस महाकाव्य के घटना–विन्यास का केन्द्रबिन्दु है। अतएव 'सेतुबन्ध' नाम की अन्वर्थता कहीं अधिक है। इस महाकाव्य में 1291 गाथाएँ हैं, जो पन्द्रह आश्वासों में गुम्फित हैं। अकबर जलालुद्दीन के सचिव एवं प्रसिद्ध टीकाकार रामदास भूपति (1652 विक्रमाब्द)ने इस महाकाव्य की महनीय टीका 'रामसेतुप्रदीप' नाम से लिखी है, जिससे टीकाकार का मन्तव्य इस महाकाव्य को एक और आख्या 'रामसेतु' से विभूषित करने का भी स्पष्ट होता है। अलवर के कैटलॉग के अनुसार, इसका एक तीसरा नाम 'रावणवध' भी है।

इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि प्रवरसेन हैं। काव्येतिहास में प्रवरसेन की ख्याति ख्यातनामा कवियों में प्रचुर चर्चा का विषय रही हैं। बाणभट्ट ने सगर्व उद्घोषणा भी की है :

कीर्त्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥ *(हर्षचरित : 1.14.5)*

अर्थात् प्रवरसेन की कुमुदोज्ज्वल कीर्त्ति, सेतु के द्वारा कपिसेना की भाँति समुद्रके उस पार तक चली गई है। अर्थात्, इसकी ख्याति सीमान्तपारगामिनी है।

कुल मिलाकर, महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध 'सेतुबन्ध' महाकाव्य साहित्यशास्त्र, विशेषकर अलंकारशास्त्र एवं

सांस्कृतिक सन्दर्भ की दृष्टि से अपनी अभूतपूर्व महनीयता रखता है। साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि कालिदास, अश्वघोष, बाण, क्षेमेन्द्र, दण्डी, कुमारदास, भामह आदि संस्कृत–काव्य के पांक्तेय कृतिकारों की कृतियों के अध्ययन के सन्दर्भ में प्रवरसेन ही एक ऐसे प्रयोगवादी महाकवि थे, जिन्होंने अपने समकालीन ही नहीं, पूर्ववर्त्ती महाकवियों की भी संस्कृत–रचनाओं को अतिक्रान्त कर, प्राकृत के क्षेत्र में अपनी काव्य–कला के प्रयोग का सफल एवं विस्मयकारी प्रदर्शन किया है। यही कारण है कि 'सेतुबन्ध' की अनुकृति, जैसा पहले कहा गया, अनेक परवर्त्ती संस्कृत–कवियों ने की। कहना न होगा कि आश्चर्यकर अलंकार–योजना, प्राणवान् चरित्र–चित्रण, गौरवोद्घोषक सांस्कृतिक अभिनिवेश एवं आकर्षक नाटकीय कथोपकथन के विन्यास में प्राकृत का यह महाकाव्य संस्कृत के समस्त महाकाव्यों का सुमेरुशिखर बना हुआ है। अतएव, प्रवरसेन का, अपनी इस दुष्कर कमनीय कृति के सम्बन्ध में, यह गर्वोद्घोष बड़ा समीचीन है:

अहिणवराआरद्धा चुक्कक्खलिएसु विहडिअपरिट्ठविआ।
मेत्तिम्ब पमुहरसिआ णिव्वोलुं होइ दुक्करं कव्वकहा॥ *(1.9)*

अर्थात् राजा प्रवरसेन द्वारा आरब्ध श्रेष्ठ छन्दवाली इस काव्यकथा का निर्वाह करना या समझना रसिकश्रेष्ठों से मैत्री के निर्वाह के समान बड़ा ही दुष्कर कार्य है; क्योंकि इसमें प्रमाद और स्खलन सम्भव है। फिर, ऐसी स्थिति में विघटन और परिमार्जन भी आवश्यक है।

गउडवहो :

सांस्कृतिक–साहित्यिक तत्त्वों से ओतप्रोत प्राकृत के शास्त्रीय महाकाव्यों में कविराज वाक्पतिराज–प्रणीत 'गउडवहो' भी शीर्षस्थ माना गया है। आर्या छन्द में निबद्ध यह एक ऐतिहासिक मूल्य रखनेवाला प्राकृत का देदीप्यमान काव्यरत्न है। इस काव्य का अध्ययन भी संस्कृत–काव्यों के अध्ययन के सन्दर्भ में अपनी अनिवार्यता रखता है। चित्त को चमत्कृत करनेवाली शैली में उपन्यस्त इस प्राकृत–काव्य के प्रकाश में ही भास, कालिदास, सुबन्धु, भवभूति, हरिचन्द्र आदि कवियों के संस्कृत–काव्यों का सही एवं सांगोपांग अध्ययन किया जा सकता है। कान्यकुब्ज (कन्नौज) के अधिपति यशोवर्मा द्वारा गौडदेश के किसी राजा का वध ही इस विच्छत्तिपूर्ण काव्य का मूल कथ्य है। गौडराज का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है। यशोवर्मा की स्तुति के सन्दर्भ में उसके खड्ग की प्रशंसा करते हुए कवि ने केवल 'गौडगलच्छेद' का उल्लेख किया है :

तुह धारा–संसाणिआ–गइन्द–मुत्ताहलो असी जयइ।
गउड–गलच्छेद–अवलग्ग संठिएआवली ओव्व॥ *(गाथा : 1194)*

अर्थात् सान पर तेज किये हुए, गजमुक्ता जैसी चमकती धारवाले तुम्हारे खड्ग की जय हो, जो गौडराजा के गलच्छेद में संलग्न रहने से (राजा के गले में पड़ी) एक लड़ीवाला हार जैसा लगता है।

महाराष्ट्री प्राकृत की कुल 1209 गाथाओं या आर्याओं में आबद्ध इस काव्य में चरितनायक के प्रति कवि की प्रशंसामुखर आदर्शवदिता, ऐतिहासिक सम–सामयिकता–बोध की वर्णनविपुलता और प्राकृतिक चित्रण की प्राणवत्ता का त्रिवृत्यात्मक संयोजन है। प्राकृत के कवियों द्वारा अपने–अपने काव्यों के प्रस्तुतीकरण में अन्तरंग और बहिरंग कथाशिल्प की जो स्थापना की गई है, उसमें नव्यवादिता का आग्रह सुस्पष्ट दिखाई पड़ता है। अर्थात्, शिल्प और भाव की दृष्टि से प्राकृत के कवि कुछ नया कहना और कुछ नया दिखाना चाहते हैं। संस्कृत–काव्यों की वर्णन–परम्परा में प्राकृत–कवियों ने संशोधन और विकास लाने की चेष्टा बराबर की है। वाक्पतिराज ने भी भवभूति के काव्योत्कर्ष की प्रभा से भास्वर अपने इस काव्य की स्वीकृत कथावस्तु में भावों को

वर्णन की अभिनव भंगिमाएँ तो दी ही हैं, ग्रन्थ का विभाजन भी तथाप्रथित सर्गों या परिच्छेदों में न करके 'कुलकों' में किया है। सर्वाधिक बृहत् कुलक 150 आर्याओं का है और सबसे छोटा कुलक पाँच आर्याओं का। प्राकृतिक वैभव, अलंकृत सुन्दर पद–विन्यास, उत्प्रेक्षाओं का अतिनूतन संयोजन आदि काव्यगुणों के उत्कर्ष से, निस्सन्देह, यह काव्य अतिशय श्लाघ्य एवं उदात्त बन गया है। और, अपनी उदात्त एवं अलंकृत शैली के कारण ही इस काव्य ने शास्त्रीय महाकाव्य की गरिमा आयत्त कर ली है। इस प्रसंग में शिव के मस्तक पर विराजित चन्द्रमा के निमित्त कविराज वाक्पति की पैनी सूझ–बूझ की एक झाँकी द्रष्टव्य है :

तं णमह कामणेहा अज्जवि धारेइ जो जडाबद्धं।
तइअ–णयणग्गि–णिवडय–कअ–ववसाअं पिव मिअंकं॥ *(गाथा:30)*

अर्थात् शिवजी ने अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को दग्ध कर दिया है। मित्र की दुरवस्था देखकर चन्द्रमा दुःखी है और स्वयं अपने मित्र के स्नेहवश शिव के तीसरे नेत्र में कूदने को उद्यत है। इस व्यवसाय से रोकने के लिए ही मानों शिवजी ने उसे (चन्द्रमा को) अपनी जटाओं से कसकर बाँध रखा है।

कुमारवालचरिय

ग्यारहवीं–बारहवीं शती के प्रसिद्ध वैयाकरण जैनाचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित 'कुमारवालचरिय' संस्कृत के समानान्तर अध्ययन के तत्त्व की सम्पन्नता की दृष्टि से प्राकृत के शास्त्रीय महाकाव्यों में अन्यतम स्थान रखता है। इस काव्यकृति का अपर पर्याय 'द्वयाश्रय–काव्य' (द्वि + आश्रयकाव्य) भी है।

हेमचन्द्र का यह काव्य मूलतः दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सिद्धहैमव्याकरण के सात अध्यायों में उल्लिखित संस्कृत–व्याकरण के नियमों को विवेचित करने के प्रसंग–माध्यम से सोलंकी–वंश के मूलराज से प्रारम्भ करके जैन–धर्मोपासक कुमारपाल तक के इतिहास का कुल बीस सर्गों में वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् द्वितीय भाग में सिद्धहैमव्याकरण के आठवें अध्याय में उल्लिखित प्राकृत–व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करते हुए राजा कुमारपाल के चरित को कुल आठ सर्गों में वर्णन–वैविध्य के साथ विस्तार दिया गया है। इस प्रकार, इस काव्य के द्वारा दुहरे उद्देश्य की सिद्धि होती है, अर्थात् एक ओर कुमारपाल के चरित्र का वर्णन और दूसरी ओर संस्कृत और प्राकृत के व्याकरण का विश्लेषण। इससे इस काव्यकृति की 'द्वयाश्रय–काव्य' अभिधा अन्वर्थ हो जाती है। संस्कृत–द्वयाश्रय के टीकाकार अभयतिलकगणी और प्राकृत–द्वयाश्रय के टीकाकार पूर्णकलशगणी हैं।

'कुमारपालचरित' महाकाव्य का कथाफलक यद्यपि छोटा है, तथापि तरल भाव–विन्यास, अलंकार–सम्पन्नता, शब्द–सम्पत्ति, व्यवस्थित अर्थयोजना, स्वच्छन्द प्रेम की निर्बन्धता, अनुभूति की अन्तरंगता एवं अभिव्यक्ति की सहज मार्मिकता, रस–विदग्धता, भणिति–भंगिमा आदि की दृष्टि से यदि इसे हम 'प्रबन्धशतायते' कहें, तो अयुक्त नहीं होगा। कालिदास का 'मेघदूत' भी कथाफलक की लघुता के बावजूद अपनी भावनिधि एवं मर्मबोध की तन्मय मूर्च्छना की आन्तरिक व्यापकता के कारण महाकाव्यत्व के गौरव का आस्पद माना जाता है। सच पूछिए तो, हेमचन्द्र के 'कुमारपालचरित' का काव्योत्कर्ष की सिद्धि की दृष्टि से समग्र काव्य–वाङ्मय में क्रोशशिलात्मक मूल्य है।

प्राकृत–चरितकाव्य

प्राकृत–प्रबन्धकाव्यों में चरितकाव्यों का स्थान महन्महनीय है। प्राकृत में चरितकाव्यों का विपुल विस्तार मिलता है। प्राकृत–साहित्य धार्मिक क्रान्तिमूलक है। अतएव, इसमें आगमविषयक मान्यताओं का गुम्फन असहज नहीं। इसमें लौकिक साहित्य का तत्व निहित है, जो प्रबन्धात्मक काव्य एवं कथा–साहित्य की विकास–परम्परा का आधार है।

पउमचरिय

संस्कृत–साहित्य की रामकाव्य–परम्परा में जो शीर्षस्थान आदिरामकाव्य 'वाल्मीकिरामायण' को प्राप्त है, वही स्थान प्राकृत में जैनाचार्य विमलसूरि–रचित 'पउमचरिय' को उपलब्ध है। किन्तु यह तथ्य ध्यातव्य है कि 'वाल्मीकिरामायण' को पुराण की कोटि में परिगणनीयता मिल गई है; किन्तु चरितकाव्य 'पउमचरिय' के लेखक ने इस खतरे से अपने को बराबर आगाह रखा है कि लिख्यमान चरितकाव्य कहीं पुराण न हो जाय। फलतः उसने प्रत्येक पौराणिक विषय की प्रतिष्ठा रसानुभूति के उस धरातल पर की है, जहाँ पाठक मनोरंजन के साथ ही भाव–तादात्म्य भी प्राप्त कर लेता है। इसे प्राकृत का सर्वप्रथम और सर्वाधित चर्चित चरित–महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है।

प्राकृत 'पउमचरिय' के रचयिता जैनाचार्य विमलसूरि आचार्य राहु के प्रशिष्य, विजय के शिष्य एवं नाइल्लकुल के रत्न थे। नाइल्लों ने ईसा पूर्व प्रथम शती में उज्जयिनी में राज्य किया था, इसी समय महाकवि कालिदास हुए थे, जिन्होंने रघुवंश–महाकाव्य (रामचरित) की रचना की थी। जैनाचार्य मेरुतुंग की प्रसिद्ध कृति 'स्थविरावली' ('थेरावली') के अनुसार, नाइल्ल गर्दभिल्ल–कुल में उत्पन्न हुए थे। 'स्थविरावली' के आधार पर यह कहना अत्युक्ति नहीं कि गर्दभिल्ल–वंशपरम्परा के नाइल्लकुलभूषण आचार्य विमलसूरि के 'पउमचरिय' की रचना के पूर्व कालिदासकृत काव्यात्मक रामचरित ('रघुवंश') की परम्परा प्रचलित हो चुकी थी। यद्यपि विमलसूरि का प्राकृतरचना–सौष्ठव कालिदास की पारम्परिक कथावस्तु से अलग हटकर स्वतन्त्र रूप में विकसित हुआ है, जो अपनी विशिष्ट मौलिकता की महनीयता से समन्वित है।

वर्णन की विशालता से युक्त 118 सर्गों में आबद्ध प्रस्तुत चरितकाव्य 'पउमचरिय' ने परम्परित रामकथा को तथाकथित ईश्वरवाद की अपुंसकता से बचाने के लिए अपना मानववादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, जिसमें हमें अज, अनन्त, अनादि ब्रह्म राम की जगह विशुद्ध मानव राम के दर्शन होते हैं। 'वाल्मीकिरामायण' से इसकी कथा–विशेषता इस अर्थ में है कि इसमें कवि ने 'वाल्मीकिरामायण' की कथावस्तु के ईश्वरवादी स्थलों में किंचित् संशोधन कर यथार्थबुद्धिवादी मानवतावाद या कर्मप्रधानता की प्रतिष्ठा की है; क्योंकि प्राकृत का चरितकाव्य केवल व्यक्तिगत 'क्रिया' का नहीं, बल्कि समष्टिगत 'कर्म' का प्रबन्ध है। इसका कथा–प्रवाह लौकिकता के धरातल पर सामान्य भाव से गतिशील दिखाई पड़ता है। भाषा की सुष्ठुता तथा वर्ण की सिष्टता की दृष्टि से 'पउमरिय' को महाकाव्य की कोटि में रखते हैं, जो उसकी वर्णनगत काव्यमयी रमणीयता की समृद्धि की दृष्टि से असंगत नहीं। तत्त्वतः, 'पउमचरिय' महाकाव्यगुणभूयिष्ठ चरितकाव्यों में वरेण्य है।

इस सन्दर्भ में विशेषतः ज्ञातव्य है कि संस्कृत में रामकाव्य की बड़ी समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है और प्राकृत की रामकाव्य–परम्परा भी अपनी अभिराम अपूर्वता के लिए अभिनन्दनीय है।

प्राकृत–मुक्तकों की परम्परा और विकास :

प्राकृत–मुक्तकों की अभिनव एवं प्रौढ़ परम्परा 'गाथासप्तशती' से आरम्भ होती है: किन्तु 'गाथासप्तशती' की गीतिकाव्यात्मक प्रौढि यह इंगित करती है कि इतः पूर्व भी प्राकृत की गीति–मुक्तकों की रचनाएँ अस्तित्व में आ चुकी होंगी। गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्यासप्तशती', अमरुक का 'अमरुकशतक' एवं भर्तृहरि का 'भर्तृहरिशतक' तो निश्चय ही प्राकृत–गीति मुक्तक के आधेय हैं। प्राकृत–मुक्तकों की धारा स्तोत्रात्मक भक्तिकाव्य एवं रसेतर नीतिकाव्य के रूप में भी प्रवाहित हुई है। धार्मिक पृष्ठभूमि के साथ जीवन की अन्यान्य विधा–वृत्तियों के सात्म्यीकरण के कारण प्राकृत के मुक्तक–गीतिकाव्यों में जीवन की विभिन्नताएँ प्रतिफलित हुई हैं। प्राकृत के

गीति–मुक्तकों की आधारशिला आमुष्मिकता थी। परन्तु, 'गाथासप्तशती' की रचना के बाद उनमें भावतः और विधानतः भी रुचिर परिष्कार हुआ।

गाहासत्तसई (गाथासप्तशती)

'गाथासप्तशती' प्राकृत–गीतिमुक्तकों का मनोरम संग्रह है। 'ध्वन्यालोक' की 'लोचन' टीका के कर्त्ता के अनुसार, 'मुक्तक अन्य से असम्बद्ध एवं स्वतन्त्र निराकांक्ष अर्थ की परिसमाप्ति के गुणों से युक्त प्रबन्ध के बीच की वस्तु होता है।' 'गाथासप्तशती' की प्रत्येक गाथा मुक्तक के उक्त लक्षण से युक्त शृंगार–रसवर्षी होने के कारण प्रबन्धशतायमान है। 'गाथासप्तशती' काव्यग्रन्थों में बहुतों से पुरानी है। आज से दो हजार वर्ष से भी अधिक पहले इसकी रचना हुई थी। डॉ. जगदीशचन्द्र जैन के अनुसार, इस प्राकृत–मुक्तक–संग्रह के कर्त्ता सातवाहन हाल का समय ईसवी–सन् 69 निश्चित किया गया है। इस गीतिमुक्तक–काव्य में प्राकृत के प्रतिनिधि कवियों और कवयित्रियों की चुनी–चुनाई सात सौ गाथाओं का संकलन है, जो इसकी आख्या को अन्वर्थ करता है।

शृंगार रस की प्रधानता के कारण 'गाथासप्तशती' में रूप–सौन्दर्य, हाव–भाव, विलास–विब्बोक, चेष्टा और क्रियाओं के बिम्बात्मक चित्र उपस्थित किये गये हैं। शृंगार के सहज आधार नायक–नायिकाओं के वर्णन–विनियोग के प्रसंग में साध्वी, कुलटा, पतिव्रता, वेश्या, स्वकीया, परकीया, पुंश्चली, स्वैरणी आदि जितनी प्रकार की नायिकाओं की प्रतिच्छवियाँ उभरी हैं, उतनी की प्रतिच्छाया भानुदत्त की 'रसमंजरी' में भी नहीं मिलती। 'गाथासप्तशती' सही अर्थ में रसमुक्तक–गीतिकाव्य है। यह अपनी रसात्मक रम्यता से सहृदय के हृदय को चमत्कृत करने की अपूर्व क्षमता रखती है। इसमें रमणीय दृश्यों एवं मनोहारी परिस्थितियों को मोहक आकल्पन के साथ प्रस्तुत किया गया है। चमत्कारी अर्थ से परिपूर्ण इसकी प्रत्येक गाथा (श्लोक) दण्डी की मुक्तक–परिभाषा 'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्' को अक्षरशः अन्वर्थ करता है।

इस काव्य की प्रत्येक गाथा–गीति अपने–आपमें स्वतन्त्र एवं आमुष्मिकता की चिन्ता से मुक्त है। मुक्त चिन्तन में ही इसका शिल्प–कौशल, अभिव्यक्ति–सामर्थ्य एवं मर्म–व्यंजना का निखार परिलक्षित होता है। इसमें जहाँ ग्राम्य जीवन का रुचि–निर्माण है, वहीं रुचि–संस्कार भी। सभी गाथाएँ तत्कालीन विभिन्न सामाजिक अवस्थाओं के ऐसे स्रोत हैं, जिनमें शाब्दिक इन्द्रजाल एवं आलंकारिक चमत्कार से युक्त जीवन–संगीत की शाश्वत लहर उद्वेलित रहती है। 'गाथा' जैसे छोटे छन्द में प्रसंगों का समस्त आकलन एवं भावों और अनुभावों का बिम्बात्मक निरूपण सांकेतिक पद्धति से ही हुआ है; किन्तु इससे कवि की सामासिक शक्ति और संघटनात्मक संरचना के विस्मयकारी सामर्थ्य का पता चलता है। कवि की एक उत्प्रेक्षा में भाव की विपुलता एवं महाशयता द्रष्टव्य है :

रेहंति कुमुअदलणिच्चलट्ठिआ मत्तमहुअरणिहाआ।
ससिअरणीसेसपणासिअस्स गांठिव्व तिमिरस्स॥ *(गाथा : 561)*

इस गाथा में, कुमुद–दलों पर निश्चल भाव से बैठे काले भौंरे अन्धकार की गाँठों की तरह लगते हैं, यह कहा गया है। भौंरे की 'अन्धकार की गाँठ' से उत्प्रेक्षा चकित करनेवाली है।

प्रेम की रसमाधुरी में तदात्म करनेवाला एक अपूर्व प्रसंग :

परिणीए महाणसकम्मलग्गमसिमलिएण हत्थेण।
छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्दावत्थं गअं पइणा॥ *(गाथा : 13)*

चित्र है : रसोई के काम में लगी हुई गृहिणी के कालिख -- पुते हाथ के स्पर्श से उसके अपने ही मुँह पर काला धब्बा पड़ गया। उसे देखकर उसके पति ने मुस्कराते हुए कहा : 'अब तो तुम्हारा मुख सचमुच चन्द्रमा ही बन गया है; क्योंकि कलंक की जो कमी थी, वह भी पूरी हो गई है।'

इस प्रकार की एक--दो नहीं, सात सौ गाथाएँ हैं, जो भाव और रस की एक--एक तरंगिणी की तरह है। इस विलक्षण कृति से न केवल कवि को शाश्वतता मिली है, अपितु प्राकृत को भी अक्षय अमरता प्राप्त हो गई है। वैदर्भी शैली में निबद्ध यह गीतिकाव्य अलंकार और व्यंग्य की चरमोत्कर्षता से काव्य के उत्तुंग शिखर पर आसीन हो गया है।

उपसंहार

प्राकृत--साहित्य की तात्त्विक उपलब्धियाँ

तत्त्वतः, प्राकृत--साहित्य, सहस्राधिक वर्षों तक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से भारतीय जन--जीवन का प्रतिनिधि--साहित्य रहा है। इसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन के अनेक आरोह--अवरोग प्रतिबिम्बित हुए हैं। जहाँतक भारतीयेतिहास और संस्कृति का प्रश्न है, प्राकृत--साहित्य इन दोनों का निर्माता रहा है। यद्यपि प्राकृत का अधिकांश साहित्य अभी तक अध्ययन--अनुचिन्तन की प्रतीक्षा में है और उसके तथ्यों का तात्त्विक उपयोग इतिहास--रचना में नहीं किया जा सका है, तथापि वर्तमान में प्राकृत का जो साहित्य उपलब्ध हो पाया है, उसका फलक संस्कृत--साहित्य के समानान्तर ही बड़ा विशाल है। रूपक का सहारा लेकर हम ऐसा कहें कि प्राकृत और संस्कृत, साहित्य दोनों ऐसे सदानीर नद हैं, जिनकी अनाविल धाराएँ अनवरत एक--दूसरे में मिलती रही हैं। दोनों परस्पर अविच्छिन्न भाव से सम्बद्ध हैं। विधा और विषय की दृष्टि से प्राकृत--साहित्य की महत्ता सर्व--स्वीकृत है। भारतीय लोक--संस्कृति के सांगोपांग अध्ययन या उसके उत्कृष्ट रमणीय रूप--दर्शन का असितीय माध्यम प्राकृत--साहित्य ही है। इसमें उन समस्त लोकभाषाओं का तुंग तरंग प्रवाहित हो रहा है, जिन्होंने भाषा के आदिकाल से देश के विभिन्न भागों की वैचारिक जीवन--भूमि को सिंचित कर उर्वर किया है एवं अपनी शब्द--संजीवनी से साहित्य के विविध क्षेत्रों को रसोज्ज्वल और ज्ञानदीप्त बनाया है।

शास्त्रीय दृष्टि से प्राकृत का उद्भव--काल ईसवी--पूर्व छठीं शती स्वीकृत है और विकास--काल सन् १२०० ई. तक माना जाता है। परन्तु, यह भी सही है कि प्राकृत--भाषा में ग्रन्थ--रचना ईसवी--पूर्व छठीं शती से प्रायः वर्त्तमान काल तक न्यूनाधिक रूप से निरन्तर होती चली आ रही है। यद्यपि, प्राकृतोत्तर काल में हिन्दी एवं तत्सहवर्त्तिनी विभिन्न आधुनिक भाषाओं और उपभाषाओं का युग आरम्भ हो जाने से संस्कृत तथा प्राकृत में ग्रन्थ--रचना की परिपाटी स्वभावतः मन्दप्रवाह परिलक्षित होती है। किन्तु, संस्कृत और प्राकृत में रचना की परम्परा अद्यावधि अविकृत और अक्षुण्ण है। और, यह प्रकट तथ्य है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों एक--दूसरे के अस्तित्व को संकेतित करती हैं। इसलिए, दोनों में अविनाभावी सम्बन्ध की स्पष्ट सूचना मिलती है।

प्राकृत--साहित्य : भारतीय विचारधारा का प्रतिनिधि

प्राकृत--साहित्य पिछले ढाई हजार वर्षों की भारतीय विचारधारा का संवहन करता है। इसमें न केवल उच्चतर साहित्य और संस्कृति का इतिहास सुरक्षित है, अपितु मगध से पश्चिमोत्तर भारत (दरद--प्रदेश) एवं हिमालय से श्रीलंका (सिंहलद्वीप) तक के विशाल भू--पृष्ठ पर फैली तत्कालीन लोकभाषा का भास्वर रूप भी संरक्षित है। प्राकृत--साहित्य का बहुलांश यद्यपि जैन कवियों और लेखकों द्वारा रचा गया है, तथापि इसमें तद्युगीन जन--जीवन का जैसा व्यापक एवं प्राणवान् प्रतिबिम्बन हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। न केवल भारतीय पुरातत्त्वेतिहास

एवं भाषाविज्ञान (अपितु समस्त संस्कृत–वाङ्मय) का अध्ययन एवं मूल्यांकन तब तक शेष ही माना जायेगा, जब तक प्राकृत–साहित्य में सन्निहित ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिच्छवियों का, देश और काल के आधार पर, समानान्तर अनुशीलन नहीं किया जायेगा। सहज जन–जीवन और सरल जनभाषाओं की विभिन्न विच्छित्तिपूर्ण झलकियों के अतिरिक्त प्राकृत–साहित्य में भारतीय दर्शन, आचार, नीति, धर्म और संस्कृति की सुदृढ़ एवं पूर्ण विकसित परम्परा के दर्शन होते हैं। इतना ही नहीं, अगर ढूँढ़िए तो, इसमें जटिल–ग्रन्थिल आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं के सुखावह समाधान भी मिल जायेंगे।

प्राकृत में संस्कृत के समानान्तर अध्ययन के तत्त्व

प्राकृत–साहित्य में साहित्य की विभिन्न विधाएँ– जैसे काव्य, कथा, नाटक, चरितकाव्य, चम्पूकाव्य, दूतकाव्य, छन्द, अलंकार, वार्ता, आख्यान, दृष्टान्त, उदाहरण, संवाद, सुभाषित, प्रश्नोत्तर, समस्यापूर्ति, प्रहेलिका प्रभृति–पाई जाती हैं। इस साहित्य में प्राप्य कर्मसिद्धान्त, खण्डन–मण्डन, विविध सम्प्रदायों की मान्यताएँ आदि हजारों वर्षों का इतिहास अपने में उपसंहृत किये हुए हैं। जन–जीवन की विभिन्न धारणाएँ, जीवन–मरण, रहन–सहन, आचार–विचार आदि के सम्बन्ध में अनेक पुरातन बातों की जानकारी के लिए प्राकृत–साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य है। आचार्य कुन्दकुन्द के अध्यात्म–साहित्य का अध्ययन वैदिक उपनिषदों के अध्ययन में पर्याप्त सहायक है। कुन्दकुन्दाचार्य के प्रसिद्धतर ग्रन्थ 'समयसार' के अध्ययन के बिना अध्यात्म और वेदान्तशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन अपूर्ण ही माना जायगा। कहना तो यह चाहिए कि भारतीय चिन्तन का सर्वांगपूर्ण ज्ञान, जो संस्कृत–वाङ्मय में निहित है, प्राकृत–साहित्य के ज्ञान के बिना एकपक्षीय ही रह जायगा। निष्कर्ष यह कि अन्वेषण और गवेषण के क्षेत्र में प्राकृत–साहित्य एक विराट् सारस्वत कोष ही प्रस्तुत कर देता है।

प्राकृत–साहित्य : भारतीय संस्कृति का मानचित्र

प्राकृत–साहित्य के अधीती विद्वान् डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के अभिमत के अनुसार, प्राकृत–साहित्य में जहाँ एक ओर ऐहिक समस्याओं का समृद्ध चिन्तन पाया जाता है, वहीं दूसरी ओर पारलौकिक रहस्यपूर्ण समस्याओं के विश्वसनीय समाधान भी मिलते हैं। धार्मिक–सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण में प्राकृत–साहित्य की द्वितीयता नहीं है, तो अर्थनीति–राजनीति के विश्लेषण में इस साहित्य की एकमेवता ही सिद्ध होती है। व्यापारिक कौशल के उदाहरण एवं शिल्पकला के मनोमोहक निखार की दृष्टि से भी प्राकृत–साहित्य की श्रेष्ठता अक्षुण्ण है। प्राकृत–साहित्य लोक–सौन्दर्य के मूल्यांकन के प्रति विशेषाग्रह रखता है, अतएव इसमें मानवता के पोषक तत्त्व–दान, तप, शील, सदाचार, सद्भाव आदि का निदेश बड़े मनोरम और मौलिक ढंग से आकलित हुआ है। इस विवेचना के आधार पर, अगर प्राकृत–साहित्य को समग्र भारत के सांस्कृतिक इतिहास के सर्वांगीण मानचित्र का प्रस्तोता कहा जायगा, तो अतिशयोक्ति न होगी।

28

मानवीय मूल्यों के सजग प्रहरी : जैन पुराण

सिद्धान्तसूरि पण्डित रतनचन्द भारिल्ल *(जयपुर)*

जैन पुराणों के मूल प्रयोजन और पावन उद्देश्यों पर ज्यों-ज्यों गहराई से दृष्टिपात करता हूँ, गंभीरता से विचार करता हूँ तो मुझे इनकी विशाल दृष्टि, भव्य भूमिका, पावन उद्देश्य न केवल मानवीय मूल्यों के सजग प्रहरी की सीमा तक ही दिखाई देते हैं, बल्कि ये जैन पुराण हमें मुक्तिमार्ग के मार्गदर्शक के रूप में भी दृष्टिगत होते हैं।

वस्तुतः जैन पुराण वर्तमान में मानव जीवन को सफल, सुखद और यशस्वी बनाने में अत्यधिक उपयोगी भूमिका निभाते हैं; क्योंकि ये मानव जगत को सदाचार का संदेश देते ही हैं, नैतिकता का उपदेश भी देते हैं, सत्य अहिंसामय आचरण करने का मार्गदर्शन भी करते हैं। इतना ही नहीं ये पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए भी सार्थक हैं; क्योंकि ये पुण्य के फल में प्राप्त क्षणिक (नाशवान) सुखद संयोग एवं दीर्घकालीन दुःखद पाप के उदय में प्राप्त फल बताकर एवं उन दुःखद संयोगों से वैराग्य उत्पन्न कराकर जीवों को मुक्तिमार्ग में लगाते हैं।

जैन पुराणों के कथानकों में शलाका पुरुषों के वर्तमान जीवन परिचय के साथ उनके अनेक पूर्वभवों की चर्चा भी होती है। उनमें बताया गया है कि वे इस वर्तमान मानव जन्म के पहले कहाँ-कहाँ किन-किन योनियों में जन्म-मरण करते हुए दुःख भुगतते रहे हैं। अपने-अपने पाप-पुण्य के अनुसार चारों गतियों में कैसे-कैसे उतार-चढ़ाव में जीते रहे हैं।

इस चर्चा से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि ये जीवात्मायें जन्म के पहले भी थे और मरण के बाद भी रहेंगे। जीवों का अस्तित्व अनादि-अनन्त है। वे कभी नष्ट नहीं होते, मात्र उनकी पर्यायें पलटती हैं।

जीवों के अजर- अमर होने की बात न केवल जैनपुराणों में हैं, बल्कि गीता में भी महर्षि व्यास ने श्री कृष्ण के मुख से यही बात कहलाई है। वहाँ कहा है- "यह आत्मा शस्त्रों से कटता नहीं, अग्नि में जलता नहीं है, जल में गलता नहीं है और पवन इसे सुखा नहीं सकती - यह तो अनादि-अनंत जीव तत्त्व है, जो अज्ञान के फल में वर्तमान में जन्म-मरण कर रहा है। मूल श्लोक इस प्रकार है-

नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

इसी संदर्भ में जैन पुराणों में कहा गया है कि परलोक के जीवन को सुखी बनाने के लिए भी मानव को काम–क्रोध, मद, मोह, लोभ–क्षोभ आदि विकारी भावों से बचकर इनका नाश करके दया, क्षमा, निरभिमानता, सरलता, निर्लोभता, सत्य, शौच, संयम आदि धर्मो का पालन करना चाहिए, अन्यथा भविष्य में भी भव–भव में चार गति, चौरासी लाख योनियों में भटकना होगा।

मानवीय मूल्यों का तात्पर्य मानव के उन उच्च एवं आदर्श गुणों से हैं, जिनका अनुकरण करने से मानवों का गौरव बढ़ता है, घर में, समाज में, राष्ट्र में सम्मान बढ़ता है, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। ऐसे मानवीय मूल्यों के धारक व्यक्ति के हृदय में स्वाभिमान और आत्म विश्वास पैदा होता है, उसकी सुषुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं। फिर वह बड़े–से–बड़े कार्य करने में सक्षम हो जाता है।

जैन पुराण ऐसे मानवीय मूल्यों के सजग प्रहरी तो हैं ही, और भी बहुत कुछ है उन पुराणों में, उनके अध्ययन, मनन, चिन्तन से यह आत्मा–परमात्मा बनने का पथ भी प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति एक बार भी जैन पुराणों को श्रद्धा से पढ़ता है, उसके जीवन में कथानायकों के आदर्श जीवन से प्रभावित होकर उन जैसा बनने का भाव जागृत हुए बिना नही रहता। वह यथाशक्ति वैसा ही बनने का प्रयास करने लगता है।

जैनपुराणों की मूलकथा वस्तु 169 पुण्य पुरुषों एवं 63 शलाका पुरुषों के आदर्श जीवन दर्शन पर आधारित होती है। 63 शलाका पुरुषो में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र होते हैं तथा 169 पुण्य पुरुषों में 24 तीर्थंकर, 24 तीर्थंकर के 24 पिता, 24 मातायें, 24 कामदेव, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र, 9 नारद, 11 रुद्र, 12 चक्रवर्ती एवं 14 कुलकर होते हैं।

महापुरुषों के चरित और पुराणों के पठन–पाठन से जीवन को उज्ज्वल बनाने की प्रेरणा प्राप्त होती है, संकट में मानवों को धैर्य प्राप्त होता है। ऐसे अशुभ आर्त और रौद्र ध्यान नहीं होते, जिनसे तीव्र पाप बन्ध होता है।

जिनसेनाचार्य कहते हैं कि– "देखो, धर्म तो उस वृक्षरूप है, जिसका फल अर्थ और काम पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ और काम– इस त्रिवर्ग पुरुषार्थ का मूल कारण पुण्य पुरुषों की कथायें सुनना है। मूल श्लोक इस प्रकार है:–

पश्य धर्म तरोरर्थः फलं कामस्तु तद्रसः।
स त्रिवर्ग त्रयस्यास्य मूलं पुण्यं कथा श्रुति॥ *1–31*

इन पुण्य कथाओं में महापुरुषों के द्वारा न्यायनीति पूर्वक अर्थ और काम पुरुषार्थ का आचरण करते हुए धर्म करने का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। पाठक इन्हें पढ़कर अपने मानवीय मूल्यों का विकास करते हैं। इस प्रकार जैन पुराणों को मानवीय मूल्यों का सजग प्रहरी कहना उचित ही है।

आचार्यों ने महापुरुषों अर्थात् पुराण पुरुषों का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहा है कि– "जो पुरुष वासनाओं, विकारों, कषायों आदि के दास न बनकर स्वावलम्बी होकर अपने रत्नत्रयधर्म को उज्ज्वल बनाते हुए आत्मविकास के क्षेत्र में वर्द्धमान होते हैं, उन जितेन्द्रिय मनस्वी मानवों को महापुरुष कहते हैं।"

जैनपुराणों के कथानायक उपर्युक्त पुण्य पुरुष ही हैं, परन्तु इनके साथ ऐसी बहुत सी उपकथायें भी होती हैं जो बीच–बीच में इन्हीं पुराण पुरुषों के परिवारजनों से सम्बन्धित होती हैं तथा इनके पूर्वभवों से सम्बन्धित होती है, जिनमें इन्हीं पुराण पुरुषों के पूर्वभवों में अज्ञान और कषाय चक्र से हुए पुण्य–पाप के फल के अनुसार उनके चरित्रों का चित्रण होता है, जहाँ बताया जाता है कि इन तीर्थंकर जैसे पुराण पुरुषों से भी यदि पूर्वभवों में जाने–अनजाने भूलें हुई हैं तो उन्हें भी सागरों पर्यंत चतुर्गति के भयंकर दुःखों को भोगना ही पड़ा है। उदाहरणार्थ भगवान महावीर ने मारीचि के भव में तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के विरुद्ध मिथ्या मत का प्रचार किया और स्वयं

तीर्थंकर तुल्य बताकर अहंकार किया तो उसके फल में उन्हें भी सागरों पर्यंत (एक कोड़ाकोड़ी सागर) संसार में परिभ्रमण करना पड़ा।

इन सबसे पाठकों को जहाँ उनके आदर्श जीवन से सद्गुण प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है, वहीं पापाचरण से बचने की शिक्षा भी मिलती है। इस तरह जैनपुराण जहाँ अपने आदर्श पात्रों के उत्कृष्ट चरित्रों द्वारा पाठकों के हृदय पटल पर, उनके समग्र जीवन पर ऐसी छाप छोड़ते हैं, ऐसे चित्र अंकित करते हैं जो मानवीय मूल्यों के विकास में तथा उनके नैतिक मूल्यों और अहिंसक आचरण में तो चार चाँद लगाते ही हैं, उन्हें रत्नत्रय की आराधना का उपदेश देकर पारलौकिक कल्याण करने का मार्गदर्शन भी देते हैं। निगोद से निकालकर मुक्ति तक पहुँचने का पथ प्रदर्शन भी करते हैं।

पाठकगण राम जैसे कथा नायकों के आदर्श जीवन से प्रभावित होकर मानवीय मूल्यों के महत्त्व से अभिभूत तो होते ही हैं, मानवीय कृत्य करनेवाले मानकषाई रावण जैसे खलनायकों की दुर्दशा देखकर उन दुर्गुणों से दूर रहने का प्रयास भी करते हैं।

प्रायः सभी जैन पुराणों के कथानकों में वर्तमान मानव जन्म से पूर्व जन्मों की कहानियाँ भी होती हैं। उनके माध्यम से अपने पूर्वकृत पुण्य–पाप के फल में प्राप्त ऐसी सुगतियों–दुर्गतियों के उल्लेख भी होते हैं, जिनमें लौकिक सुख–दुःख प्राप्त होते हैं। इससे भी पाठक सजग हो जाते हैं, और मानवीय मूल्यों को अपनाने लगते हैं, ताकि भविष्य में उनकी दुर्गति न हो।

जैन पुराणों में मानवीय मूल्यों में श्रावक के आठ मूलगुणों के रूप स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह पापों का त्याग तथा मद्य–मांस–मधु के सेवन का त्याग करना बताया गया है। इनके साथ ही सात दुर्व्यसनों का त्याग करना भी बताया गया है। वे सात व्यसन इसप्रकार हैं–

जुआ आमिष मदिरा दारी, आखेटक चोरी परनारी।
ये ही सात बिसन दुखदाई, दुरित मूल दुरगति के भाई॥

जुआ खेलना, माँस खाना, शराब पीना, वेश्या सेवन, शिकार करना, चोरी और परस्त्री सेवन। ये सातों व्यसन दुःखदायक हैं, पाप की जड़ हैं और कुगति में ले जानेवाले हैं।

इनके अतिरिक्त अन्याय, अनीति और अभक्ष्य का सेवन न करना भी मानवीय मूल्यों में सम्मलित हैं। काम, क्रोध को बस में रखना, इन्द्रियों के विषयों के आधीन न होना भी मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत आते हैं। उपर्युक्त निषेध परक मानवीय मूल्यों के साथ सकारात्मक मूल्यों में दया, क्षमा, निरभिमानता, सरलता, निर्लोभता, पवित्रता, सत्यता, संयमित जीवन का होना मानव के प्राथमिक कर्तव्यों में आते हैं।

इन सबकी चर्चा प्रायः सभी पुराणों में किसी न किसी रूप में मिलती है। सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय जैन पुराणों में पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, आदिपुराण, उत्तरपुराण ऐसे पुराण हैं जो गाँव–गाँव में प्रतिदिन की शास्त्र सभाओं में पढ़े–सुने जाते हैं। इन सभी पुराणों में मानवीय मूल्यों की महिमा कथानायकों के आदर्श चरित्रों के माध्यम से गाई गई है। जैसे पद्मपुराण में आदर्श एवं आज्ञाकारी पुत्र के रूप में भगवान राम, भातृप्रेम के लिए समर्पित त्याग मूर्ति नारायण लक्ष्मण और उनके अनुज भरत तथा पुत्र मोह में मोहित कैकेई, राम की आदर्श माता कौशल्या, पति की सहगामिनी सती सीता मानवीय मूल्यों के ज्वलन्त उदाहरण हैं। हरिवंशपुराण में तीर्थंकर भगवान नेमीनाथ, नारायण श्रीकृष्ण तथा कौरवों–पाण्डवों के राग–विराग में झूलते विविध रूप भी मानवीय मूल्यों का दिग्दर्शन कराते ही हैं।

महापुराण के प्रथम–द्वितीय भाग के रूप में आदि पुराण और उत्तर पुराण हैं, उनमें मुख्यतः 24 तीर्थंकरों के जीवन चरित्रों का विस्तृत वर्णन है साथ ही उनके पूर्व भवों का, 63 शलाका पुरुषों के आदर्श चरित्रों का चित्रण है। आदिपुराण में आदि तीर्थंकर आदिनाथ और चक्रवर्ती भरत–बाहुबली के समग्र जीवन की ऐसी–ऐसी घटनायें हैं जो मानवीय मूल्यों का उद्घाटन करती हुई अत्यन्त सशक्त शैली में आत्मा से परमात्मा बनने की कथा कहती हैं। पाठक उन्हें पढ़कर यह प्रेरणा लेते हैं कि हम अपने मानवीय गुणों को इस तरह विकसित करें ताकि पुनर्जन्म में हमारी अधोगति न हो और कालान्तर में हम यथाशीघ्र इस संसार–सागर से पार होकर अनन्तकाल तक मुक्ति महल में जाकर रहें।

जैनपुराणों के कथनानुसार मानवीय मूल्यों की मर्यादा केवल मानव के हितों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि प्राणि मात्र की प्राण रक्षा एवं उनके सुख–दुःख के प्रति करुणा से भरपूर भी होना चाहिए। मानवीय पीड़ा और अन्य प्राणियों की पीड़ा को समान समझना चाहिए।

मांसाहारियों को मार्गदर्शन देते हुए कहा गया है–

"मनुज प्रकृति से शाकाहारी, मांस उसे अनुकूल नहीं है।
पशु भी मानव जैसे प्राणी, वे मेवा फल–फूल नहीं है॥"

वर्तमान मानवीय मूल्यों का दंभ भरनेवाले अनेक राजनेता, समाजसेवक और धर्मगुरु भी जीवजन्तुओं के प्राण पीड़न के प्रति अत्यन्त निर्दय देखे जाते हैं। यद्यपि जैन पुराणों में भी आरंभी, उद्योगी और विरोधी हिंसा पर पूरी तरह प्रतिबन्ध नहीं है; परन्तु संकल्पी हिंसा का तो सम्पूर्ण रूप से त्याग करने की बात अत्यन्त दृढ़ता से कही गई है तथा आरंभी, उद्योगी और विरोधी से बचने के लिए सतत प्रयत्नशील रहने का उपदेश जैन पुराण देते हैं।

यहाँ ज्ञातव्य है कि सम्पूर्ण जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है। द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और प्रथमानुयोग। समस्त पुराण साहित्य प्रथमानुयोग की श्रेणी में आता है। द्वादशांग में 'दृष्टिवाद नाम के बारहवें अंग के तीसरे भेद का नाम प्रथमानुयोग है। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने प्रथमानुयोग का स्वरूप निम्न प्रकार लिखा है–

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधि समाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः॥

अर्थात्– (समीचीनः बोधः) सम्यग्ज्ञान (प्रथमानुयोग अर्थख्यानं) प्रथमानुयोग के कथन को (बोधति) जानता है। वह प्रथमानुयोग (चरितं पुराणमपि पुण्य) चरित्र और पुराण के रूप में पुण्य पुरुषों का कथन करता है। (बोधि–समाधि–निधानं) वह प्रथमानुयोग रत्नत्रय की प्राप्ति का निधान है, उत्पत्ति स्थान है। (पुण्यं) पुण्य होने का कारण है। अतः उसे पुण्य स्वरूप कहा है।

चरित और पुराण का अन्तर स्पष्ट करते हुए प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं कि "एक पुरुषाश्रिता कथा चरितं" एक पुरुष संबंधी कथन को चरित कहते हैं तथा 'त्रिषष्टि शलाका पुरुषाश्रिता कथा पुराणं' अर्थात् त्रेषट शलाका पुरुषों सम्बन्धी कथा को पुराण कहते हैं। 'तदुभयमपि प्रथमानुयोग शब्दाभिधेयं' चरित एवं पुराण–इन दोनों को प्रथमानुयोग कहा है।

प्रथमानुयोग के भेदों की चर्चा करते हुए धवला टीका में चार गाथायें उद्धृत हैं? जिनका अर्थ इस प्रकार है– "जिनेन्द्र देव ने बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है। वे समस्त पुराण जिनवंश एवं राजवंशों का वर्णन करते हैं। पहला पुराण अरहंतों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा–नारायण एवं प्रतिनारायणों का, पाँचवां चारणों का, छठा–प्रज्ञा श्रमणों का, सातवाँ–कुरुवंशों का, आठवाँ–हरिवंशों का, नौवां–इक्ष्वाकुवंशों का, दसवाँ–काश्यपवंश का, ग्यारहवाँ–वादियों के वंश का तथा बारहवाँ–नाथवंश का निरूपण करते हैं।

मूल गाथाएँ इस प्रकार हैं–

बारस विहं पुराणं जं गदिहं जिणवरेहि सव्वेहिं।
तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य॥
पढ़मो अरहंताणं बिदियो पुण चक्कवट्टिवंसो दु।
विज्जाहराण तदियो चउत्थओ वासुदेवाणं॥
चारणवंसो तहपंचमो दु छट्ठो य पण्णसमणाणं।
सनमओ कुरूवंसो अट्ठमओ तहय हरिवंसो॥
णवमो य इक्खायाणं दसमो वि य कासियाण बोद्धव्वो।
बाईणेक्कारसमो बारसमो णाहवंसो दु॥

पुराणों के कथानकों में कथावस्तु को सर्वांगीण एवं प्रयोजनों की पूर्ति हेतु कुछ कथन काल्पनिक भी होते हैं। जैसे कि– तीर्थंकरों के कल्याणकों में इन्द्रगण आये और उन्होंने स्तुति करी यह तो सत्य है तथा इन्द्र ने स्तुति अपनी भाषा में अन्य प्रकार की थी और ग्रन्थकार ने द्रव्य, क्षेत्र, काल के हिसाब से अन्य भाषा में अन्य प्रकार से ही स्तुति करना लिखा; परन्तु स्तुति का प्रयोजन अन्यत्र नहीं हुआ।

पुराणों का प्रयोजन प्रगट करते हुए आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं कि "प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य–पाप का फल, महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है। जो जीव तुच्छबुद्धि हों, वे भी उससे धर्मसन्मुख होते हैं; क्योंकि वे जीव सूक्ष्म निरूपण को नहीं पहिचानते, लौकिक कथाओं को जानते हैं, वहाँ उनका उपयोग लगता है। तथा प्रथमानुयोग में लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होने से उसे वे भली–भाँति समझ जाते हैं तथा लोक में तो राजादिक की कथाओं में पाप का पोषण होता है। यहाँ महन्तपुरुष राजादिक की कथाएँ तो हैं, परन्तु प्रयोजन जहाँ–तहाँ पाप को छुड़ाकर धर्म में लगाने का प्रगट करते हैं; इसलिये वे जीव कथाओं के लालच से तो उन्हें पढ़ते–सुनते हैं और फिर पाप को बुरा, धर्म को भला जानकर धर्म में रुचिवंत होते हैं।

इसप्रकार तुच्छबुद्धियों को समझाने के लिए यह अनुयोग प्रयोजनवाला है। 'प्रथम' अर्थात् 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि', उनके अर्थ जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोम्मटसार की टीका में किया है।

जिन जीवों के तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोग को पढ़ें–सुनें तो उन्हें यह उसके उदाहरणरूप भासित होता है। जैसे– जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसा यह जानता था तथा पुराणों में जीवों के भवान्तर निरूपित किये हैं, वे उस जानने के उदाहरण हुए। तथा शुभ–अशुभ शुद्धोपयोग को जानता था, व उसके फल को जानता था। पुराणों में उन उपयोगों की प्रवृत्ति और उनका फल जीव के हुआ सो निरूपण किया है, वही उस जानने का उदाहरण हुआ....।

जैसे कोई सुभट है– वह सुभटों की प्रशंसा और कायरों की निन्दा जिसमें हो ऐसी किन्हीं पुराण–पुरुषों की कथा सुनने से सुभटपने में अति उत्साहवान होता है; उसीप्रकार धर्मात्मा है– वह धर्मात्माओं की प्रशंसा और पापियों की निन्दा जिसमें हो ऐसे किन्हीं पुराण–पुरुषों की कथा सुनने से धर्म में अति उत्साहवान होता है। इसप्रकार यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।

इस तरह हम देखते हैं कि जैन पुराण मानवीय मूल्यों के सजग प्रहरी तो हैं ही, प्राणीमात्र की जीवन की सुरक्षा करने में मददगार, उन्हें अभयदान देने–दिलाने में सक्रिय भूमिका निभाने वाले और आत्मार्थियों को, मुमुक्षुओं को मुक्ति का मार्ग दिखाने में भी अग्रगण्य हैं।

29

निर्भय-निर्लोभ पत्रकार

प्रो. रतनचन्द्र जैन

माननीय डॉ. शेखरचन्द्र जी जैन विविध गुणों के स्वामी हैं। वे एक अच्छे जैन विद्वान, दक्ष शिक्षक, कुशल वक्ता, लोकप्रिय प्रवचनकार, समाज के निपुण नेता एवं निर्भय–निर्लोभ पत्रकार हैं। आज के युग में एक जैन विद्वान् का निर्भय–निर्लोभ पत्रकार होना सर्वाधिक दुर्लभ गुण है। आज जहाँ जैन विद्वानों की बहुसंख्या भेंट–पुरस्कार की लालसा से अन्यायपूर्वक धनोपार्जन करनेवाले श्रीमानों एवं अट्ठाईस मूलगुणों का तिरस्कार करनेवाले ख्याति–पूजालोभी, पतिताचारी मुनियों की चाटुकारिता में संलग्न है और भेंट–पुरस्कार से वंचित हो जाने अथवा आतंककारी, अपापभीरू, मूढ़भक्तों के द्वारा पिटवाये जाने के डर से उनके धर्म विरूद्ध आचरण पर एक शब्द भी बोलने से घबराती है, वहाँ डॉ. शेखरचन्द्र जैन अपनी मासिक पत्रिका 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादकीयों में उन मुनिवेशधारी अमुनियों में व्याप्त पतिताचार का निर्लोभ और निर्भीक होकर उद्घाटन करते हैं, जो अपगूहन और स्थितीकरण के अयोग्य हो चुके हैं और जिनका एकमात्र इलाज आचार्य कुन्दकुन्द ने ''असंजदं ण वन्दे वत्थविहीणो वि सो ण वंदिज्ज'' (दर्शनप्राभृत/२६) इस गाथा में बतलाया है।

उपगूहन और स्थितीकरण के अयोग्य मुनिवेशधारी अमुनियों की असलियत का उद्घाटन अज्ञानी श्रावकों को परमार्थ और अपरमार्थ मुनि की पहचान कराने और उनको उपलनाव (पत्थर की नाव) में सवार होने से बचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मुनिवेशधारी अमुनियों की असलियत का उद्घाटन मुनिनिन्दा नहीं है, क्योंकि वे मुनि होते ही नहीं हैं, वे मुनि–जैसे दिखनेवाले अमुनि हैं, श्रमणाभास हैं। मिथ्या–मुनियों के मिथ्यामुनित्व की पहचान कराने के लिए उनके मुनिधर्म विरुद्ध आचरण के वर्णन को मुनिनिन्दा कहना आगम सम्मत नहीं है, वह तो सदुपदेश और हितोपदेश है, अतः आगमानुकूल है। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ ऐसे वर्णनों से भरे पड़े हैं। ऐसा न करना कुगुरू या अगुरु की उपासना का अनुमोदन है, जो असदुपदेश एवं अहितोपदेश की परिभाषा में आता है।

मुनि में जो दोष हैं ही नहीं, उन्हें मुनि में बतलाने को आगम में अवर्णवाद या निन्दा कहा गया है, किन्तु जो मुनि ही नहीं हैं, अपितु मुनिवेशधारी ठग हैं उनके मुनि धर्मविरूद्ध

आचरण का वर्णन मुनि का अवर्णवाद या निन्दा नहीं है, वह तो ठग या नट के स्वरूप का निरूपण है। मुनिवेशधारी ठग को मुनि न कहना और ठग कहना तो यथार्थ कथन है। आगम में यथार्थ कथन को अवर्णवाद नहीं कहा गया है। यदि इस यथार्थ कथन को अवर्णवाद या निन्दा कहा जाय, तो भी यह मुनि–अवर्णवाद या मुनिनिन्दा नहीं है, अपितु ठग–अवर्णवाद अथवा ठगनिन्दा है। मुनिवेशधारी ठगों से अपनी आँखों में धूल न झुँकवाने एवं दूसरों को इससे बचाने के प्रयत्न को मुनिनिन्दा कहकर रोकनेवाले लोग जिनशासन के मित्र नहीं, शत्रु हैं, उसके रक्षक नहीं विनाशक हैं।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन ने भेंट–पुरस्कारहानि, मानापमान एवं प्राणसंकट की परवाह किये बिना समाज के विविध वर्गों में व्याप्त धर्म विरुद्ध एवं पदविरुद्ध आचरण का खुलकर उद्घाटन किया है और जिनशासन को विकृति से बचाने की कोशिश की है तथा कर रहे हैं।

मुनि हमारे गुरू अर्थात् मोक्षमार्ग के नेता होते हैं। अतः उनका सब प्रकार से निर्दोष होना आवश्यक है। यदि वे सदोष हुए, तो उनसे श्रावकों को सदोष आचरण की ही शिक्षा मिल सकती है, जो मोक्ष का साधक नहीं हो सकता। शिष्य मायाचारी गुरू से मायाचार ही सीख सकते हैं। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति 'यथा गुरूस्तथा शिष्यः' के अर्थ को भी द्योतित करती है।

खेद है कि आज मुनिपद का सर्वाधिक ह्रास हुआ है। डॉ. शेखरचन्द्रजी का मन इस बीभत्स मुनिदशा से बहुत आहत है। उन्होंने यह मनोदशा अपने सम्पाकीयों में बहुशः व्यक्त की है। वे अप्रैल २००४ की 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादकीय 'महावीर के नाम एक पत्र' में लिखते हैं–

''हे अतिवीर! हमारा साधु अपने दैनिक आचरण में भी गिर रहा है। वह दाढ़ी बनाने लगा है, ब्रश करने लगा है। फ्लश लैट्रिन में जाने लगा है। फोन–मोबाइल उसकी आवश्यकता बन गयी है।''

''हे नाथ! यदि कुछ समझदार श्रावकगण उन्हें विनय से उपगूहन व स्थितीकरण हेतु समझाते हैं, तो वे व उनके चमचे ऐसे श्रावकों व विद्वानों को मुनिविरोधी कहकर बहिष्कार करवाते हैं या फिर बिहारवाली भी करवाने में नहीं चूकते।''

इस प्रसंग में डॉ. शेखरचन्द्रजी ने स्वयं पण्डित होते हुए भी आज के अधिकांश पण्डितों की धनलोभ के कारण सत्यकथन से हिचकिचाने की मनोवृत्ति को उजागर करने में संकोच नहीं किया। वे लिखते हैं–

''हे प्रभु! हम पण्डित–विद्वान्–पत्रकार भी पैसों की लालच, इनाम–इकराम की लालस से सत्य बोलने में हिचकिचाने लगे हैं। हम भी बैण्डवालों की तरह किसी भी खेमे का बैण्ड बजा रहे हैं। हम इस शिथिलाचार के विरुद्ध कुछ नहीं कर रहे हैं। यह क्या हमारा पतन नहीं है? ('तीर्थंकर वाणी'/ अप्रैल २००४/ पृ. ४)।

फरवरी २००३ की 'तीर्थंकर वाणी' के सम्पादकीय में डॉ. शेखरचन्द्रजी ने लिखा है

''कुछ मुनि तो इतने शरमप्रूफ हो गये हैं कि अभक्ष्य का सेवन करते हैं। यदि उन्हें परोक्षरूप से भी रोका जाता है, तो वे भरी सभा में कहते हैं– 'हाँ में आइस्क्रीम खाता हूँ..... खूब खाऊँगा। जिससे जो बने, मेरा कर ले।' उनकी भाषा तो देखिए– 'हाँ मैं खाता हूँ, जो मेरी टीका करेगा, वह नरक में जायेगा, दुःखसहन करेगा। मैं तो नंगा हूँ, मेरा क्या तोड़ लोग? नंगे से खुदा भी डरता है।' ऐसा अनर्गल प्रलाप किया कथित स्वयंभू आचार्य कुमुदनन्दी ने शिवानन्द की सभा में।''

"बात एक वर्ष पुरानी है। मैंने एक वर्ष पूर्व सिर्फ पत्रिका में अपनी जिज्ञासा हेतु २० प्रश्न किये थे। उसमें पूछा था कि क्या मुनि आइस्क्रीम खा सकता है? उन्होंने इसे चोर की दाढ़ी में तिनका की तरह अपने ऊपर ओढ़कर निरर्थक प्रलापकिया।"

"यह सत्य है कि मुनि का निन्दक नरकगामी होता है, पर वह मुनि तो हो। यह सत्य है कि मुनि का दिगम्बर होना परमावश्यक है, पर हर नग्न मुनि है ही यह प्रश्न चिन्ह है।" (तीर्थंकर वाणी/फरवरी २००३/पृ.३–४)

कतिपय मुनि न केवल शर्मप्रूफ हो गये हैं, अपितु अपने आगमविरुद्ध स्वच्छन्द भोगसाम्राज्य की सुरक्षा के लिए उद्दण्ड और आतंकवादी भी हो गये हैं। इस सत्य से प्रायः सभी विद्वान् एवं श्रीमान् वाकिफ हैं, किन्तु सार्वजनिक रूप से जुबान खोलने की हिम्मत केवल डॉ. शेखरचन्द्र जी में ही हुई है। वे निम्नलिखित पंक्तियों को लिखने में तनिक भी भयभीत नहीं हुए–

"आज जितना रागद्वेष श्रावकों में नहीं है, उतना इन साधुओं में है। सच्ची बात वे सुन नहीं सकते और सच्ची बात कहनेवाले को आशीर्वाद या धर्मलाभ कहने से भी कतराते हैं। दुर्भाग्य तो यह है कि उनके धर्मविरुद्ध आचरण पर यदि कोई कुछ कहने का दुःसाहस करता है, तो उनके पाले हुए भक्त (लठैत) कहनेवाले का अपमान करते हैं, परीषह सहने का पाठ पढ़ाते हैं या बिना दीक्षा लिए केशलुंचन तक करवा देते हैं।... आज समाज में जो झगड़े, बँटवारे बढ़ रहे हैं, उनमें इन साधुओं की विशेष भूमिका है। वे सर्वप्रथम अपना दाव जमाने को समाज में फूट डालते हैं, फिर 'फोड़ो और राज्य करो'की नीति से अपना साम्राज्य जमा लेते हैं।" (तीर्थंकर वाणी/दिसम्बर २००५/पृ.४)

वर्तमान के कुछ युवा मुनि अपने या अपने गुरु के नाम से नये तीर्थों की रचना करते हैं। इसके लिए धन–संचय हेतु फिल्मी सितारों के नाच–गाने का आयोजन कर श्रावकों को मोक्षमार्ग पर ले जाने की बजाय, विषय कषायों में फँसाने की हद तक पहुँच गये हैं। इस कुकृत्य को जगजाहिर करते हुए डॉ. शेखरचन्द्रजी लिखते हैं–

"कभी तीर्थ हमारी आस्था के केन्द्र थे, मन की पवित्रता के धाम थे, मुक्तिमार्ग के प्रेरक थे। उन तीर्थों की दुर्दशा हो रही है और नये तीर्थों के लिए आज सर्वाधिकरूप में साधुवर्ग लगा है। इस निर्माण में वे स्वाध्याय–तप–प्रतिक्रमण क्रियाओं को भी भूल रहे हैं। कभी ऐसे तीर्थों में अपने सुकृत की कमाई लगाने में गौरव होता था। साधु भी ऐसा ही धन लगाने की प्रेरणा देता था, पर आज तो हीरो–हीरोइन के नाच–गान करवा के धन इकट्ठा कर रहे हैं। ऐसे तीर्थ विशाल–भव्य तो हो सकते हैं, आत्मा को शान्ति देनेवाले नहीं। लोगों के नाम के पटदर्शक बन सकते हैं, मोक्षमार्ग के प्रणेता नहीं।" (तीर्थंकर वाणी/मार्च २००५/सम्पादकीय/पृ.३)।

साधु शिथिलाचार की हद पार कर रहा है और विद्वान् तथा श्रीमान् जुबान सीकर और आँखे मूँदकर बैठे हुए हैं, जिनशासन को मौत की नींद सुलानेवाली इस दशा को सामने लाते हुए डॉ. शेखरचन्द्र कहते हैं–

"आये दिन साधु–श्रावकों के भ्रष्टाचार, शिथिलाचार और अब अनाचार के किस्से छप रहे हैं, टी.वी. पर आ रहे हैं। अभी जी टी.वी. ने एवं एक अखबार ने एक आचार्य के विषय में भयंकर दृश्य दर्शाये व लेख प्रकाशित किये। हम तथ्य के सत्यासत्य में न भी जायें, तो ऐसा प्रकाशन धर्म और अनुयायियों को पीड़ा देनेवाला व शर्म से सिर झुका देनेवाला तो है ही।"

"हमारा विद्वान वर्ग भी परस्पर टाँग खींचने में लगा है। साधुओं के खेमे में बँट रहा है उसे भी सभी आर्थिक

लालच त्यागकर डंके की चोट सत्य कहने की हिम्मत जुटानी चाहिए और शिथिलाचारी साधु और श्रावक को टोकना–रोकना चाहिए, फिर चाहे उसको लोगों द्वारा दण्ड या बहिष्कार क्यों न सहना पड़े। आखिर विजय सत्य की होगी।''

''इसी सन्दर्भ में मैं उन संस्थाओं और उनके कर्णधारों को भी जिम्मेदार मानता हूँ कि जो सच्चे देव–शास्त्र–गुरु के रक्षण के नाम पर आँखे मूँदकर सबकुछ चला रहे हैं।'' (तीर्थंकरवाणी/मार्च२००५/सम्पादकीय/पृ.४)।

डॉ. शेखरचन्द्रजी ने अपने सम्पादकीयों में आजकल बहुशः आयोजित होनेवाली विद्वत्संगोष्टियों और विद्वानों के अभिनन्दन ग्रन्थ–भेंट–समारोहों के यथार्थ को भी प्रकाशित किया है। इस प्रकार समाज के जिस–जिस वर्ग में, जिस–जिस प्रवृत्ति में विकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उन्हें डॉ. शेखरचन्द्रजी तत्काल 'तीर्थंकर वाणी' में सम्पादकीय लिखकर उजागर करते हैं और इस प्रकार एक सच्चे पत्रकार का धर्म निभाते हैं। विकृतियों को उजागर करने से समाज को उनका बोध होता है, उन्हें वह धर्म और संस्कृतिके लिए घातक समझता है, फलस्वरूप उनके उन्मूलन के लिए वह कटिबद्ध होता है। समाज के प्रबुद्ध लोग विकृतियों को पनपने न देने के लिए पतिताचारी साधुओं, पण्डितों और श्रेष्ठियों को मान्यता देना बन्द कर देते हैं, विकृतिग्रस्त व्यक्ति और वर्ग भी उनके उजागर होने से लज्जित होते हैं और अपने अपवाद, उपेक्षा और अनादर के भय से विकृतियों के परित्याग के लिए प्रेरित होते हैं। इस तरह सच्चा पत्रकार धर्म और संस्कृति की रक्षा का महान् धर्म निभाता है। डॉ. शेखरचन्द्रजी यह प्राणसंकट से परिपूर्ण धर्म निर्भीक और निर्लोभ होकर निभा रहे हैं, अतः शतशः अभिनन्दननीय हैं। वे शतायु हों, यह मेरी कामना है।

30

आगम साहित्य में आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान)

आचार्य राजकुमार जैन

मनुष्य सामान्यतः शारीरिक रूप से और मानसिक रूप से स्वस्थ रहे यह परमावश्यक है। शरीर या मन का अस्वस्थ होना मनुष्य के लिए कष्टदायक या दुःखकारक होता है। मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहने पर ही धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष रूप पुरूषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। इसलिए आरोग्य को उपर्युक्त चतुर्विध पुरूषार्थ का मूल बतलाया है – 'धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्य मूलमुत्तमम्' इस पुरुषार्थ चतुष्टय में ही मनुष्य जीवन के समस्त क्रिया–कलाप अन्त–र्निहित हो जाते हैं। मनुष्य अपने जीवन में जो भी कार्य व्यापार जिस किसी भी रूप में करता है वह उपर्युक्त पुरूषार्थ चतुष्टय से बाहर नहीं है और आरोग्य के बिना इनका साधन सम्भव नहीं है। शरीर की निरोगता तथा मन मस्तिष्क की स्वस्थता मनुष्य के अहर्निश चलने वाले जीवन चक्र के सुचारू संचालन में सहायक होती है।

पुरूषार्थ चतुष्टय में सर्वप्रथम है धर्म। धार्मिक वृत्ति रखना या धर्माचरण करना अथवा धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति करना, भाग लेना धार्मिक कार्यों का आयोजन करना मात्र ही धर्म नहीं है। धर्म एक जीवन पद्धति है जो मनुष्य के जन्म के साथ ही जुड़ जाती है। इसमें मनुष्य और समाज के शारीरिक एवं आध्यात्मिक सुख की संवाहक आचार संहिता का समावेश है। मनुष्य द्वारा किए जाने वाले समस्त क्रिया व्यापार में नैतिकता पूर्ण आचरण एवं विवेक पूर्ण चिन्तन का समावेश भी धर्म में अन्तर्निहित है। अतः धर्म का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह एक ऐसा पुरूषार्थ है जो सुख की अभिवृद्धि करता है और कष्टों दुखों की निवृत्ति करता है। स्थानांग (पृ. 850 एवं 920–921) में लब्धि एवं निग्रहसहित दस प्रकार के सुखों का वर्णन है। उसमें स्वास्थ्य और दीर्घायु सर्वोपरि है। यदि मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होता है तो अन्य सभी सुख उसके लिए निष्प्रयोजन रूप हैं।

सभी प्रकार के सुख एवं दुःख का अनुभव मन को होता है। सभी प्रकार के रोगों का अधिष्ठान शरीर और मन है। व्याधिग्रस्त शरीर और मन कभी सुख को प्रतीति नहीं कर सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि सर्व प्रथम शरीर को व्याधि मुक्त करने का उपाय किया जाये। तदर्थ सर्व प्रथम सम्पूर्ण शरीर की संरचना एवं शरीर में विद्यमान समस्त

अवयवों अंगों का ज्ञान प्राप्त किया जाय, उनके समस्त क्रिया व्यापार को जाना समझा जाय, उनमें होने वाले विभिन्न प्रकार की विकृति और उसके परिणाम स्वरूप होनेवाली विभिन्न व्याधियों के कारणों एवं उपचार का ज्ञान प्राप्त किया जाये। इन सब विषयों का अविचल एवं सम्पूर्ण ज्ञान का संग्रह करने वाले शास्त्र को आयुर्वेद नाम दिया गया है जो आठ अंगों में विभाजित है। प्राचीन काल में साधु सन्तों ऋषि मुनियों ने आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञान की अनिवार्यता का अनुभव किया इसमें समुचित विस्तार किया।

जैन धर्म में जिस प्रकार अध्यात्म विद्या, दर्शन शास्त्र, नीति शास्त्र, आचार शास्त्र, विज्ञान आदि के तल या बीज विद्यमान हैं उसी प्रकार आयुर्वेद एवं चिकित्सा विज्ञान के बीज भी विद्यमान हैं। यही कारण है कि अन्य लौकिक विद्याओं की भांति आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान) को भी जैन धर्म में अपेक्षित स्थान प्राप्त है। जैन धर्म के प्राचीन वाङ्मय (आगम) का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनमें इस विद्या का भी विस्तार पूर्वक सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है। उत्तरोत्तर काल में समाज में उसका पर्याप्त विकास होने के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं।

आयु ही जीवन है, आयु का वेद (ज्ञान) ही आयुर्वेद है, अतः आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है। यह विज्ञान स्वस्थ और रोगी दोनों के लिए उपादेय है, क्योंकि एक ओर इस शास्त्र में जहाँ स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा की दृष्टि से आवश्यक हितकारी बातों और नियमों का उपदेश–निर्देश निहित है वहाँ दूसरी ओर कदाचरण या अहित आहार विहार के कारण जो लोग अस्वस्थ या रोगी हो जाते हैं उनके रोग के उपशम हेतु समुचित उपचार चिकित्सा आदि का उपदेश–निर्देश भी यह शास्त्र सांगोपांग रूप से करता है। यह शास्त्र (आयुर्वेद) यद्यकि लौकिक या भौतिक विद्या के रूप में प्रतिष्ठित है, क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा और शरीर में विकार या रोग उत्पन्न होने पर उसके उपशमनार्थ समुचित चिकित्सा करना आयुर्वेद का लौकिक(भौतिक) उद्देश्य है, तथापि पारलौकिक निःश्रेयस की दृष्टि से आत्मा की मुक्ति और आध्यात्मिकता से अनुप्राणित जीवन की यथार्थता के लिए सतत प्रयत्न करना ही उसके मूल में निहित है। यही कारण है कि आयुर्वेद भौतिकवाद की परिधि से निकल कर आध्यात्मिकता की श्रेणी में परिगणित है।

आयुर्वेद चूँकि जीवन विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान होने से परोपकारी शास्त्र है, अतः वह जैन धर्म के अन्तर्गत उपादेय है। यही कारण है कि अध्यात्म, धर्म, दर्शन, आचार, शास्त्र, नीति शास्त्र, ज्योतिष आदि अन्यान्य विद्याओं की भाँति वैद्यक विद्या भी जैन धर्म के अन्तर्गत परिगमित एवं प्रतिपादित है। जैन धर्म में इस शास्त्र या विद्या को 'प्राणावाय' या 'प्राणायु' की संज्ञा से व्यवहृत किया गया है। इससे स्पष्ट है कि जैनधर्म के अन्तर्गत 'प्राणावाय' या प्राणायु के नाम से चिकित्सा विज्ञान का विकास स्वतन्त्र रूप से लोककल्याण हेतु हुआ। तीर्थंकर महावीर के पश्चात् उत्तर काल में अन्यान्य आचार्यों के द्वारा जिन सिद्धान्त ग्रंथों की रचना की गई उनमें से अनेक ग्रंथो में 'प्राणावाय' की भी चर्चा की गई है।

मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा की दृष्टि से तथा अहित विषयों में शरीर की प्रवृत्ति को रोकने के लिए जैन धर्म ने मनुष्य के दैनिक आचरण तथा उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से तो उपयोगी हैं ही आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक विकास एवं सात्विक जीवन निर्वाह के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अतः स्वास्थ्य रक्षा एवं आरोग्य की दृष्टि से जैन धर्म चिकित्सा विज्ञान के अत्यन्त निकट है। मनुष्य के आहार और आचार के सम्बन्ध में जैन धर्म में प्रतिपादित नियम विज्ञान की कसौटी पर सदैव खरे उतरे हैं जिससे उनका आधार सुदृढ़ हुआ है।

आगम वाङ्मय को सामान्यतः आध्यात्मिक या धर्म शास्त्र के रूप में माना जाता है। उसमें आध्यात्मिक

विवेचन धार्मिक अवधारणाएं एवं आचार शास्त्र के रूप में विषयों का प्रतिपादन सांगोपांग रूप से किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक एवं धार्मिक अवधारणों के कारण मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन (जन्म से मृत्यु पर्यन्त) में स्वभावतः धर्म की व्याप्ति है। यही कारण है कि भारतीय जन जीवन में धर्म एक जीवन पद्धति के रूप में विकसित है, जिसमें व्यक्ति और समाज के शारीरिक एवं आध्यात्मिक सुख की संवाहक आचार संहिता का समावेश है। यह सुख की अभिवृद्धि करता है और कष्टों–दुःखों की निवृत्ति करता है। स्थानांग (पृ.850 एवं 920–921) में लब्धि एवं निग्रह सहित दस प्रकार के सुखों का वर्णन है। उनमें स्वास्थ्य और दीर्घायु सर्वोपरि है। उनका अनुभव आहार, आश्रय, वस्त्र तथा शारीरिक, मानसिक, प्राकृतिक, आधिदैविक एवं आकस्मिक रोगों के कारण उत्पन्न होने वाले दस प्रकार के दुःखों–कष्टों को कम करते हुए किया जा सकता है। (अष्ट पाहुड पृ. 213) आगमों में प्रकर्ण रूप से प्राप्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों को समुचित स्वास्थ्य के आधारभूत चतुर्विधि पुरूषार्थों (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) को प्राप्त करने का अपेक्षित ज्ञान था। उन्हें भली–भांति यह भी ज्ञात था कि स्वस्थ मस्तिष्क का विकास केवल स्वस्थ शरीर में होता है। इसलिए तत्कालीन ऋषि–मुनि शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए शरीर रचना और क्रिया विज्ञान के साथ साथ सम्पूर्ण जीवन विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक मानते थे।

प्रकीर्ण रूप से निम्न वैद्यक सम्बन्धी विषयों का उल्लेख आगम ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

1. स्थानांग सूत्र– नौ पाप श्रुतों में चिकित्सा का परिगमन। रोगों की उत्पत्ति के नौ कारण।
2. निशीथचूर्णि – महावैद्य का उल्लेख, इष्टपाकी शस्त्रों का उल्लेख।
3. उत्तराध्ययन– चिकित्सा सम्बन्धी उल्लेख।
4. बृहद्वृत्तिपत्र– रसायन सेवन से चिकित्सा का उल्लेख।
5. विपाकसूत्र – वैद्यकर्म, चिकित्सा कर्म, धन्वन्तरि नामक वैद्य का उल्लेख, वैद्यपुत्र ज्ञाय का उल्लेख विविध रोगों का उल्लेख।
6. आवश्यक चूर्णि – द्वारका में रहने वाले वैद्य का उल्लेख।
7. व्यवहार भाषा– एक वैद्य की घटना का उल्लेख, दोषत्रय से उत्पन्न होनेवाले विविध रोगों का उल्लेख।
8. बृ. कल्पभाष्य पीठिका– अक्षि रोग चिकित्सा का उल्लेख।
9. दशवैकालिक – मल–मूत्र के वेग को नहीं रोकने का निर्देश।
10. अगस्त्य चूर्णि– वेगों को रोकने के दुष्परिणाम।
11. जिनदास चूर्णि– वमन के वेग को रोकने का दुष्परिणाम।
12. आचारांग– 16 प्रकार के रोगों का उल्लेख
13. सुखबोध पत्र– रोगों का कथन।
14. बृ. कल्पभाष्यवृत्ति– वल्गुली (जीमिचलाना) विषकुम्भ
15. ओधनिर्युक्ति– पामा चिकित्सा

प्राचीन काल में भूतिकर्म के ज्ञाता, चिकित्सक, उपचारज, नाड़ीज्ञाता एवं प्राणवायु विशेषज्ञ को समाज में पर्याप्त आदर सम्मान एवं महत्त्व प्राप्त था। इसीलिए इन्हें नौ प्रकार के दक्ष लोगों में परिगणित किया गया। एक वर्णन के अनुसार राजाओं के पास शांति और युद्ध के समय सदैव चिकित्सक (वैद्य) होते थे। विभिन्न आगमिक कथानकों में बड़ी संख्या में चिकित्सक, शल्य चिकित्सक और पशु चिकित्सकों का वर्णन है।

जैनाचार्यों ने जिनागम का अनुसरण करते हुए आयुर्वेद को जीवन विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के रूप में विकसित किया, जिसे आगमिक भाषा में प्राणावाय या प्राणायु अथवा प्राणावाद संज्ञा से प्रतिपादित किया। यद्यपि वर्तमान में प्राणावाय पर आधारित एक मात्र ग्रंथ कल्याणकारक ही दृष्टिगत है, जिसमें सर्वांग पूर्ण प्राणावाय (जीवन विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान) का वर्णन किया गया है। इस प्रकार का अन्य कोई ग्रंथ अद्यावधि प्रकाश में नहीं आया है। तथापि श्वेताम्बरानुमत मूल आगम वाङ्मय और उसके व्याख्या साहित्य (निर्युक्ति भाष्य, चूर्णि और टीका) में चिकित्सा एवं आयुर्वेद सम्बन्धी विपुल सामग्री दृष्टिगत होती है। (स्थानांग सूत्र, 9.6.78 तथा सूत्रकृतांग 22/30)

स्थानांग सूत्र में चिकित्सा (तेगिच्छ, चैकित्स्य) को नौ पापश्रुतों में परिगणित किया गया है। इसका कारण सम्भवतः यह था कि आगम निर्देश और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अनुसार आगमों और तदन्तर्गत दृष्टिवादांग एवं पूर्वों का अध्ययन मुनियों तक ही सीमित था तथा जनता को रोग मुक्त करने की दृष्टि से जन सामान्य में चिकित्साभ्यास करने की अनुमति मुनियों को नहीं थी। आगम में नौ प्रकार की लौकिक शिक्षाएं बतलाई गई हैं जिनमें चिकित्सा विज्ञान का भी समावेश है। उन नौ लौकिक शिक्षाओं को पाप श्रुत माना गया है जो निम्न हैं :–

1. उत्पात– रूधिर की वृष्टि आदि अथवा राष्ट्रोत्पात का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र।
2. निमित्त– अतीत काल के ज्ञान का परिचायक शास्त्र।
3. मंत्र शास्त्र
4. आख्यायिका (आइक्खिया)– मातंगी विद्या जिससे चाण्डालिनी भूतकाल की बातें बतलाती हैं।
5. चिकित्सा
6. लेख आदि 62 कलाएं
7. आवरण (वास्तु विद्या)
8. अष्टाण (अज्ञान)– भारत, काव्य, नाटक आदि लौकिक श्रुत।
9. मिच्छापवयण (मिथ्या प्रवचन)

निशीय चूर्णि में उपलब्ध विवरण के अनुसार धन्वन्तरि इस विद्या के मूल प्रवर्तक थे उन्होंने अपने निरन्तर ज्ञान से रोगों एवं चिकित्सा का ज्ञानर्जन कर वैद्यक शास्त्र या आयुर्वेद का प्रणयन किया (निशीय चूर्णि। 5पृ. 592) यह कथन अपारम्परिक एवं वस्तुस्थिति से भिन्न प्रतीत होता है। साथ ही यह क्षपकवत् लगता है।

आगम ग्रंथो में चिकित्सा सम्बन्धी प्रकीर्ण विषयों का जो उल्लेख मिलता है उसके अन्तर्गत वैद्य या वैद्यक शुद्ध चिकित्सा या चिकित्सकों के विज्ञान का निर्देश करते हुए यह संकेत करता है कि शिक्षा की इस शाखा में दक्षता (विशेषज्ञता) वाली वे समस्त शाखाएं निहित हैं जिनमें वैदिक (आध्यात्मिक) रोगों का उल्लेख या प्रतिपादन किया गया है। (कल्याण कारक प्रस्तावना)यह प्राणावाय के सर्वोपरि महत्त्व का भी संकेत करता है।

आगम ग्रंथों के अनुसार प्राणावाय का तात्पर्य सामान्यतः जीवन विज्ञान एवं दीर्घायु है। अतः यह शिक्षा की एक सम्पन्न एवं संस्कारित शाखा है। फिर भी इस शाखा का समावेश नौ पापश्रुतों में कर इसकी निम्नता को प्रदर्शित किया गया है। यह निश्चय ही शोध का विषय है। इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि इसमें चिकित्सा के अंग के रूप में पैशाची (भूति कर्म) विद्या और विषय चिकित्सा का भी समावेश है। इसके अतिरिक्त पूर्वकाल में संसार में दीर्घायु का प्रतिपादन करनेवाले सामान्य धर्म ग्रंथ को उत्तर काल में आध्यात्मवादियों द्वारा

अवगुण युक्त लौकिक कला धर्मग्रंथ के रूप में माना गया। (स्थानांग पृ. 855 युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा सम्पादित)

विभिन्न जैनाचार्यों ने आगम ग्रंथों एवं उत्तरवर्ती धर्म ग्रंथों तथा अन्य ग्रंथों में प्राणावाय का तात्पर्य जीवन विज्ञान और दीर्घायु प्रतिपादित किया है जैसाकि आचार्य वीरसेन द्वारा जयधवला में प्रतिपादित उल्लेख से स्पष्ट है। उनके अनुसार यह विभिन्न प्राणवायुओं, जीवन शक्ति और क्रिया विज्ञानीय विषयों का वर्णन करता है। जयधवला (पृ. 33) तथा अन्य पारम्परिक जैन ग्रंथ भी न्यूनाधिक रूप से इसी परिभाषा का समर्थन करते हैं। वस्तुतः प्राणावाय का क्षेत्र केवल जीवन विज्ञान, दीर्घायु और चिकित्सा विज्ञान के बाह्य या ऊपरी तत्वों तक ही सीमित नहीं है अपितु उससे सम्बन्धित सभी विषयों जैसे शरीर रचना विज्ञान Anatomy , शरीर क्रिया विज्ञान Physiology, द्रव्यगुण कर्म विज्ञान Meteria Medica औषधि निर्माण विज्ञान Pharmacutical आदि का भी इसमें समावेश है। इसके अतिरिक्त रोगियों की चिकित्सा के लिए आवश्यक सुविधाओं, साधनों एवं उपकरणों से सम्पन्न सुसज्जित इस पद्धति पर आधारित चिकित्सालय, औषधालय का निर्माण राज्य शासन अथवा समाज के सम्पन्न समृद्ध वर्ग के लोगों द्वारा किए जाने का उल्लेख ग्रंथों में प्राप्त होता है।

प्राणावाय से सम्बन्धित विभिन्न विषय भगवती आराधना (पृ. 543) तथा अन्य ग्रंथों में प्रकीर्ण रूप से पाए जाते हैं। इस विज्ञान (पद्धति) के विषय में कुछ विशिष्ट बिन्दु हैं जो इस पद्धति पर सुदृढ जैनत्व का प्रभाव डालते हैं। जैसे जैनधर्म में मनुष्य के व्यवहारिक जीवन में अहिंसा का पालन एवं अनुसरण करने पर विशेष बल दिया गया है। परिणाम स्वरूप जैन वैद्यक ग्रंथों में ऐसी किसी भी प्रक्रिया या अभ्यास को निषिद्ध किया गया है जिसमें हिंसाचरण हो अथवा जो हिंसामय हो। हिंसामय प्रवृत्ति के कारण ही धन्वन्तरि नामक प्रसिद्ध देव (आयुर्वेद प्रवर्तक धन्वन्तरि से भिन्न) को नारकीय जीवन प्राप्त होने का उल्लेख प्राप्त होता है। (विपाक सूत्र 83) इस प्रकार व्यवहारिक जीवन की भांति जैन चिकित्सा विज्ञान अथवा जैन वैद्यक शास्त्र में किसी भी रूप में एक पूरा अध्याय ही (परिशिटाध्याय) हिंसामय मद्य–मांस–मधु के अवगुणों पर प्रकाश डालते हुए उससे बचने या परिहार करने का निर्देश दिया है। हिंसा की प्रवृत्ति होने के कारण ही शवच्छेदन का उल्लेख या वर्णन जैनायुर्वेद शास्त्र में नहीं है। यही कारण है कि जैन वैद्यक शास्त्र में शरीर रचना विज्ञान, शल्य चिकित्सा जैसे विषयों का विकास नहीं हो पाया।

इसका एक सुपरिणाम यह हुआ कि चिकित्सा कार्य हेतु वनस्पतियों और खनिजों से निर्मित औषधियों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिला। विभिन्न प्रकार के पुष्पों और उनके स्वरस से औषधि निर्माण की प्रक्रिया विकसित हुई। पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री ने इस विषय पर कल्याणकारक की भूमिका में विस्तार से प्रकाश डाला है।(पृ. 39)

जैन विद्वानों ने एक ओर जहां शल्य चिकित्सा का निषेध किया वहां दूसरी ओर उन्होंने रस प्रधान औषधियों (पारद गन्धक एवं अन्य द्रव्यों के मिश्रण से निर्मित औषधियों तथा विभिन्न धातुओं की भस्मों) और विभिन्न सिद्ध योगों का उपयोग प्रचुरता से करना आरम्भ कर दिया। एक समय ऐसा भी आया जब केवल सिद्ध योगों (औषधियों) के द्वारा ही विभिन्न रोगों की चिकित्सा की जाने लगी। इसी के आधार पर विभिन्न रस ग्रंथों की रचना भी की जाने लगी। कालान्तर में नवीन सिद्ध योग और रसयोग जो स्वानुभूत एवं प्रायोगिक आधार पर प्रत्यक्षीकृत थे — भी प्रचलित हुए। इस प्रकार के औषध योगों के प्रयोग ने आयुर्वेद को एक नवीन दिशा दी। विभिन्न रोगों के उपचार और चिकित्सा में जैन विद्वानों ने वनस्पति, खनिज, क्षार, लवण, रत्न, उपरत्न आदि का विशेष रूप से प्रयोग किया।

बृहत वृत्ति पत्र 475 में वैद्य को प्राणाचार्य कहा गया है। प्राचीन काल में वैद्य पशु चिकित्सा विशेषज्ञ भी

होते थे। किसी एक वैद्य ने एक सिंह के नेत्रों की चिकित्सा कर उसके नेत्र खोल दिए। (बृहतवृत्ति पत्र 462)
'केनचित, भिषजा, व्याघ्रस्य चक्षुरुद्धा टिलमटव्याम।'

वैद्यक शास्त्र के विद्वान (वैद्य) को दृष्टपाठी, जिसने प्रत्यक्ष कर्माभ्यास के द्वारा वास्तविक अध्ययन किया है कहा गया है। (निशीथ चूर्णि 7/1757)

प्राचीनकाल में वैद्य किन–किन साधनों और विधियों से चिकित्सा या वैद्यकीय कर्म करते थे इसका सुन्दर वर्णन विपाक सूत्र में निम्न प्रकार से किया गया है :–

'वैद्य अपने घर से शास्त्रकोष लेकर निकलते थे और रोग का निदान निश्चय कर अभ्यंग, उबटन (उद्धर्तन), स्नेहपान, वमन, विरेचन, अवदहन (लोहे की गर्म शलाका से दागना) अवस्नान (औषधियों से सिद्ध किए हुए जल से स्नान करना, अनुवासना (बत्ति यंत्र द्वारा तेल आदि स्नेह द्रव्य गुद मार्ग से आंतो में पहुंचाना, बस्तिकर्म (बस्ति यंत्र द्वारा औषधियों से निर्मित क्वाथ द्रव्य को गुदा मार्ग से आंतों में पहुंचाना, शिरोबंध (अशुद्ध रक्त का वहन करने वाली सिरा का वेधन कर अशुद्ध रक्त बाहर निकालना), तक्षण (छुरा आदिसे त्वचा काटना) प्रतक्षण (छुरा आदि से त्वचा में गोदना), शिरोबस्ति (सिर पर चारों ओर चर्म से निर्मित वेष्टन या थैलनुमा चर्मकोष बांधकर उसमें औषधियों से सिद्ध किया हुआ या संस्कारित तेल आदि स्नेह द्रव्य भरना), तर्पण (संस्कारित तेल आदि स्नेह द्रव्य से नेत्र आदि अंगों का तर्पण करना), पुटपाक (औषध द्रव्य पर मिट्टी का लेप लगाकर उसे गरम करना और फिर मिट्टी हटाकर औषध द्रव्य को निचोड़ कर उसका स्वरस निकालना), छाल, वल्ली, (गंदा आदि) मूल, कंद, पत्र पुष्प, फल, बीज, शिलिका (चिरायता आदि कड़वी औषधि), गुटिका, औषध और भेषज से रोगी की चिकित्सा करते थे। (विपाक सूत्र पृष्ठ)

निशीथ चूर्णि में प्रतक्षण शस्त्र, अंगुलि शस्त्र, शिरोवेध शस्त्र, कल्पन शस्त्र, लैइ कंटिका, संडासी, अनुवेधन शलाका, ब्रीहिमुख और सूचीमुख शस्त्रों का उल्लेख मिलता है। (निशीथ चूर्णि। 11/3436।)

तत्कालीन अनेक वैद्यों का उल्लेख विभिन्न आगम ग्रंथों में मिलता है और उनके द्वारा की गई चिकित्सा का वर्णन भी प्राप्त होता है। विपाक सूत्र में विजय नगर के धन्वन्तरि नामक वैद्य का उल्लेख मिलता है। वह आयुर्वेद के आठ अंगों का ज्ञाता कुशल वैद्य था और राजा, ईश्वर, सार्थवाह, दुर्बल, म्लान, रोगी, अनाथ, ब्राह्मण, श्रमण भिक्षुक, कर्पाटिक आदि को मछली, कछुआ, ग्राह, मगर, संसुमार, बकरी, भेड, सुअर, मृग, खरगोश, गाय, भैंस, तीतर, बतख, कबूतर, मयूर आदि के मांस को सेवन करते हुए चिकित्सा करता था। (विपाक सूत्र 7 पृ. 41)

द्वारका में रहनेवाले वासुदेव कृष्ण के धन्वन्तरि और वैतरणी नामक दो प्रसिद्ध वैद्य थे। (आवश्यक चूर्णि, पृ. 410)

विजय वर्धमान नामक गांव का निवासी इक्काई नामक राष्ट्रकूट था। वह पांचसौ गांव का स्वामी था। एक बार वह अनेक रोगों से पीडित हुआ। उसने घोषणा की कि जो वैद्य (शास्त्र और चिकित्सा में कुशल) वैद्य पुत्र, ज्ञायक (केवल शास्त्रज्ञ), ज्ञायक पुत्र चिकित्सक (केवल चिकित्सा में कुशल) और चिकित्सक पुत्र उसके रोग का निवारण करेगा वह उसे विपुल धनराशि देकर उसका सम्मान करेगा। (विपाक सूत्र पृ. 4, आवश्यक चूर्णि 2 पृ. 65) वर्तमान आयुर्वेद शास्त्र में भी तीन प्रकार के वैद्यों का उल्लेख मिलता है– केवल शास्त्र में निपुण, केवल चिकित्सा में निपुण और उभय अर्थात शास्त्र और चिकित्सा दोनों में निपुण।

तत्कालीन राज्य शासन की व्यवस्था के अनुसार राजाओं के द्वारा राजवैद्य नियुक्त किए जाते थे जो राजा और उसके परिवार के सदस्यों की चिकित्सा करते थे उनकी आजीविका का प्रबन्ध राज्य शासन की ओर से होता था। किन्तु चिकित्सा कार्य में असावधानी या लापरवाही करने पर राज्य शासन द्वारा उसकी आजीविका बन्द कर

दी जाती थी। एक बार किसी वैद्य को जुआ खेलने की आदत पड़ गई थी। परिणाम स्वरूप उसका वैद्यक शास्त्र (वैद्यकीय ज्ञान) और शस्त्र कोश दोनों नष्ट हो गए। इसलिए वह चिकित्सा करने में असमर्थ हो गया। उसका वैद्य शास्त्र किसी ने चुरा लिया और शस्त्रकोश के शस्त्रों पर जंग (जर) लग गई थी। इसीलिए राजा की आज्ञा से उसकी आजीविका बन्द कर दी गई थी। (व्यवहार भाष्य 5/2)

एक अन्य ग्रंथ में प्राप्त उल्लेखानुसार किसी राजा के वैद्य की मृत्यु हो गई। राजा की आज्ञा से उसके पुत्र को अध्ययन के लिए बाहर भेज दिया गया। जिस वैद्य के पास उसे भेजा गया था वह क्रिया एवं व्यवहार कुशल वैद्य था। एक बार एक बकरी जिसके गले में ककड़ी फंस गई थी उस वैद्य के पास लाई गई। वैद्य ने बकरी लाने वाले से पूछा यह कहां चर रही थी? उत्तर मिला बाड़े में। वैद्य को समझने में देर नहीं लगी कि बकरी के गले में ककडी अटक (फस) गई है। उसने बकरी के गले में कपड़ा बांधकर इस प्रकार मरोड़ा कि ककडी टूट कर पेट में चली गई और बकरी का कष्ट दूर हो गया। कुछ समय बाद वैद्य का पुत्र भी अपना अध्ययन पूर्ण कर राज दरबार में लौट आया। राजा ने उसे मेधावी समझ कर उसे सम्मान पूर्वक अपने राज दरबार में नियुक्त कर लिया। एकबार रानी को 'गलगण्ड' नामक रोग उत्पन्न हो गया। राजा ने वैद्यपुत्र से उसकी चिकित्सा करने का निर्देश दिया। वैद्यपुत्र को अपने अध्ययन काल की बकरी वाली घटना का स्मरण हो गया। वैद्य पुत्र ने बकरी वाली घटना के अनुसार ही रानी के गले में वस्त्र लपेट कर उसे जोर से मरोड़ा जिसे रानी सहन नहीं कर पाई और वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुई। इस घटना से राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने वैद्य पुत्र को दण्डित किया। (बृहत कल्प भाष्य पीठिका 376)

एक राजा अक्षि रोग से पीडित हुआ था। वैद्यने देखकर आंख आजने के लिए गोलियां दी। आंख में गोली आंजने से तीव्र वेदना होती थी। किन्तु वैद्य ने पहले ही राजा से वचन ले लिया था कि आंख में वेदना होने पर वह उसे दण्ड नहीं देगा। (बृहत कल्प भाष्य पीठिका 1/1277)

उस समय सामान्यतः विद्या से, मंत्रों से, शल्य कर्म और वनौषधियों–वनस्पतियों (जड़ी–बूटियों) से चिकित्सा की जाती थी। इनके ज्ञाता और आचार्य यत्र तत्र मिल जाते थे। निम्न उल्लेख से ज्ञात होता है कि इन विषयों के तजज्ञ हुआ करते थे और आवश्यकतानुसार उन्हें बुलाया जाता था–

अनाथी मुनिने मगध सम्राट राजा श्रेणिक से कहा– जब मैं अक्षि वेदना से अत्यन्त पीडित था तब मेरी चिकित्सा के लिए मेरे पिता ने वैद्य विद्या और मंत्रों से चिकित्सा करने वाले आचार्य, शल्य चिकित्सा और औषधियों के विशारद आचार्यों को बुलाया था। (उत्तराध्ययन, 20/22)

तत्कालीन चिकित्सा व्यवस्था के अन्तर्गत चिकित्सा की अनेक विधियां पद्धतियाँ उस समय प्रचलित थीं। उनमें आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति सर्वमान्य थी तथा उसकी विशिष्ट चिकित्सा विधि पंचकर्म और तदन्तर्गत वमन–विरेचन आदि का अत्यधिक प्रचलन था। (उत्तराध्ययन 15/9)

अनेक रोगों की चिकित्सा के लिए रसायनों का भी सेवन कराया जाता था। (बृहत वृत्ति पत्र।)

अष्टांग विभाग

प्राणावाय अथवा आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान के मुख्यतः दो प्रयोजन प्रतिपादित किए गए हैं– 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षण मातुरस्यव चिकारप्रशमनम' अर्थात स्वस्थ पुरूष के स्वास्थ्य की रक्षा करना और आतुर (रोगी) के विकार (रोग) का उपशमन करना। प्रथम प्रयोजन अर्थात स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य के अनुरक्षण के लिए आहार विहार का सेवन इत्यादि अनेक उपाय व्यवहारज स्वास्थ्य के अन्तर्गत प्रतिपादित किए गए हैं तथा अविवेक पूर्ण

आचरण, मिथ्या आहार–विहार या अशुभ कर्म के उदय से मनुष्य के शरीर में जो विभिन्न प्रकार के रोग या विकार उत्पन्न हो जाते हैं उनके उपशमन या निवृत्ति के लिए चिकित्सा का आश्रय लेना पड़ता है। चिकित्सा भी एकांगी नहीं हो कर अनेकांगी होती है। प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के अन्तः और बाह्य जो कारण होते थे उनके अनुसार ही चिकित्सा का निर्धारण किया जाता था। जैनधर्म के आगम ग्रन्थों तथा अन्य ग्रंथों में प्राणावाय के आठ अंगों की चर्चा की गई है। कसाय पाहुड की जयधवला टीका में प्राणावाय के निम्न आठ अंगों का उल्लेख मिलता है– शालाक्य, कायचिकित्सा, भूततंत्र, शल्य तंत्र, अगदतंत्र रसायनतंत्र, बालरक्षा और बीजवर्धन 24

स्थानांग में भी किंचित नाम परिवर्तन के साथ इन्हीं आठ अंगों का प्रतिपादन किया गया है। यथा– कौमार मृत्य, काय चिकित्सा, शालाक्य, शल्यहर्ता (शल्यतंत्र) जंगोली (अगद तंत्र), भूत विद्या, क्षारतंत्र (वाजीकरण) और रसायन। (25 तत्वार्थ राजवर्तिक 11/120) तथा गोम्मटसार (जीवकाण्ड, गाथा 366) में अष्टांग आयुर्वेद के उल्लेख पूर्वक प्राणावाय का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है।

वर्तमान में जिस आयुर्वेद का प्रचलन है उसके सर्वांग पूर्ण ग्रंथ सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान 1/71) में उपर्युक्तानुसार ही आयुर्वेद के आठ अंग बतलाए हैं जो निम्नानुसार हैं– शल्य तंत्र, शालाक्य तंत्र, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमार भृत्य, अगदतंत्र, रसायन और वाजीकरण।

डॉ. नन्दलाल जैन के अनुसार प्राचीन काल में चिकित्सकों को उनके प्रशिक्षण के दौरान पढ़ाए जाने हेतु अनेक आगमिक एवं अन्य ग्रंथों में प्राणावाय (जैनायुर्वेद चिकित्सा विज्ञान) के निम्न आठ विषयों का संकेत उनके संस्कृत नामों एवं क्रम में कुछ भिन्नता के साथ प्राप्त होता है–26

1. कौमार भृत्य– बाल रक्षा
2. शल्यतंत्र एवं प्रसूति तंत्र
3. शालाक्य तंत्र (आंख, नाक, कान और गले की चिकित्सा)
4. अन्तः और बाह्य चिकित्सा
5. विष विज्ञान (अगद तंत्र)
6. भूत विद्या और भूति कर्म
7. दीर्घायु (रसायन)
8. कामोद्दीपक (वाजीकरण–क्षारतंत्र)

श्री जैन के अनुसार ये विषय शरीर में अन्तः और बाह्य संस्थानों तथा उनकी क्रिया विधि के अधिक यथार्थ ज्ञान के अतिरिक्त यांत्रिक, वैद्युत, विद्युदगवीय (इलैक्ट्रीक तथा वैधी क्रिण उपकरण के संदर्भ में बहुत कम हैं तथा उनका विस्तार क्षेत्र अपूर्ण प्रतीत होता है। फिर भी सामान्य भारतीय ग्रामीण जैन अधिक संख्या में अभी भी इसी पद्धति (आयुर्वेद) से उपचरित–अच्छे हो रहे हैं। यद्यपि यहां शरीर रचना और शरीर क्रिया या वर्णन नहीं मिलता है, तथापि उनका समावेश शल्यतंत्र और सम्बन्धित शाखाओं में होना प्रतीत होता है।

चिकित्सीय शिक्षा अथवा स्वास्थ्य शिक्षा

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शरीर की दो अवस्थाएं होती हैं–

1. स्वस्थावस्था और 2. विकारवस्था अथवा आतुरावस्था। सामान्यतः मनुष्य की स्वस्थावस्था को प्राकृत माना गया है और विकारवस्था को अप्राकृत। स्वस्थावस्था भी दो प्रकार की होती है– शारीरिक स्वस्थता और

मानसिक स्वस्थता। आयुर्वेद के अनुसार शरीर को धारण करनेवाले तीन दोष वात–पित्त–कफ. सात धातुएं (रस, रक्त, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और तीन मल (स्वेद, मूत्र, पुरीव) जब तक शरीर में समानभाव से रहते हुए सन्तुलन बनाए रखते हैं तब तक शरीर में कोई विकार या रोग उत्पन्न नहीं होता है और शरीर निरोग या स्वस्थ बना रहता है। शरीर की स्वस्थता के साथ साथ मन की स्वस्थता एवं प्रसन्नता भी आवश्यक है। तब ही मनुष्य स्वस्थ कहलाता है। (20) इसी प्रकार जब तक कोई मानसिक दोष (रज या तम) अथवा कोई मानसिक विकार भाव (क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, जुगुप्सा, चिन्ता, द्वेष, मत्सर्य आदि) मनुष्य के मन में विकृति नहीं करते तब तक उसका मन अविकृत एवं स्वस्थ बना रहता है– यह मानसिक स्वास्थ्य है।

जैन चिकित्सा विज्ञान में भी दो प्रकार का स्वास्थ्य–प्रतिपादित किया गया है। जैन धर्म में अध्यात्म की प्रधानता होने से तदनुरूप ये स्वास्थ्य के भेद प्रतिपादित किए गए हैं। शरीर में रहनेवाला मुख्य तत्व आत्मा है जो शरीर को चैतन्य प्रदान करता है, उसकी सम्पूर्ण स्वस्थता उसकी मुक्ति में है। उसीके लिए मनुष्य का सम्पूर्ण क्रिया कलाप एवं पुरूषार्थ है। मोक्ष ही मनुष्य का चरम या अन्तिम लक्ष्य है। इसी को आधार मानकर जैन धर्म में दो प्रकार के स्वास्थ्य, प्रतिपादित किये हैं– परमार्थ स्वास्थ्य और व्यवहार स्वास्थ्य। ऊपर भी उग्रादित्याचार्य के अनुसार इस द्विविध स्वास्थ्य में प्रथम परमार्थ प्रधान या मुख्य है और दूसरा व्यवहार स्वास्थ्य अप्रधान या गौण है। ऊपर आयुर्वेद के अनुसार जो शारीरिक और मानसिक, दो प्रकार का स्वास्थ्य बतलाया गया है उसका समावेश व्यवहार स्वास्थ्य में किया गया है श्री उग्रादित्याचार्य ने परमार्थ स्वास्थ्य के विषय में बतलाया है– आत्मा के सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से समुत्पन्न, अत्यदभुत, आत्यन्तिक, अद्वितीय विद्वानों के द्वारा अपेक्षित जो अतीन्द्रिय मोक्ष सुख है उसे परमार्थ स्वास्थ्य कहते हैं।

द्वितीय व्यवहार स्वास्थ्य का निरूपण करते हुए कल्याणकारक में प्रतिपादित व्यवहार स्वास्थ्य आयुर्वेद के ग्रंथ अष्टांग में प्रतिपादित स्वरूप पुरूष के लक्षण के ही अनुरूप है। यथा मनुष्य के शरीर में सम अग्नि का रहना, सम धातु का होना, दोषों (वात–पित्त–कफ) का सन्तुलन नहीं बिगड़ना, मलों स्वेद–मूल–पुरूष की क्रिया (विसर्जन) उचित रूप से होना, आत्मा और इन्द्रियों की प्रसन्नता होना, मनः प्रसाद (मन की प्रसन्नता) होना– यह व्यवहार स्वास्थ्य है।(22)

इस प्रकार जैन धर्म के अनुसार स्वस्थ्य मनुष्य सभी व्याधियों, विकारों और मानसिक दोषों (विकारों) से मुक्त होता है। इसी का समर्थन करते हुए श्री उग्रादित्याचार्य का कथन है– स्वस्थ शरीर का लक्षण क्या है? जब मनुष्य रोगों से रहित शरीर को धारण करता है तब वह स्वस्थ कहलाता है।यह सुशास्त्र (आयुर्वेद) की आज्ञा से कहा गया है।(23)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैनाचार्यो या जैन धर्म की दृष्टि से आध्यात्मिक स्वास्थ्य महत्त्वपूर्ण और प्रधान है जिसमें विषयातीत सुख समाविष्ट है। इसके विपरीत व्यवहारज स्वास्थ्य भौतिक है जो शरीर, मन और इन्द्रियाधारित है। इस व्यवहारज (भौतिक) स्वास्थ्य में शरीर की उन समस्त क्रियायें, जो अहर्निश लही रहती हैं की प्राकृत अवस्था निर्देशित है। इस व्यवहारज (भौतिक) स्वास्थ्य के माध्यम से जब शरीर और मन स्वस्थ रहता है तब ही तन्मना होकर पारमार्थिक (आध्यात्मिक) स्वास्थ्य के लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

31

जैन एवं सांख्य दर्शन में बंधन की अवधारणा

डॉ. संतोष त्रिपाठी

भारतीय दर्शन में बंधन की अवधारणा मानव के संत्रस्त जीवन पर की जाने वाली एक वैचारिक खोज है। इसके आधार पर एक तरफ दर्शन की आचार मीमांसा का निर्धारण होता है तो दूसरी तरफ आत्मा, कर्मफल एवं पुनर्जन्म जैसे दार्शनिक प्रत्ययों का पोषण भी होता है। भारतीयदर्शन की प्रायः सभी विद्याओं में जीवन की विविधता और विचित्रता के आधार पर बंधन के स्वरूप, कारण और निवारण पर व्यापक चिंतन किया गया है सभी ने वर्तमान जीवन को बंधन का परिणाम माना है।

सामान्यतः भारतीय दर्शन में बंधन का मूल कारण अविवेक या अज्ञान को स्वीकार किया गया है। अज्ञान एक प्रकार का मिथ्या ज्ञान है। जिससे जीव एक आत्मस्वरूप का बोध नहीं कर पाता, परिणामतः जीव का प्रत्येक व्यवहार उसे बंधन ग्रस्त करता है और जीव बार–2 जन्म लेता और मरता है। इस प्रकार बंधन की दो विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं प्रथम यह कि वर्तमान जन्म, बंधन का परिणाम है और दूसरा कि वर्तमान जन्म के बंधन पर भावी जन्म की रूपरेखा निर्धारिक होगी। इस प्रकार बंधन की अवधारणा जीव के भूत वर्तमान और भविष्य के साथ जुड़ी है।

हमारा विवेच्य विषय जैन एवं सांख्य दर्शन से सम्बंधित है अतः इन दोनों दर्शनों के बंधन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इनमें साम्य एवं वैषम्य का विवेचन किया जाएगा।

जैनदर्शन में बंधन का स्वरूप एवं प्रकार : जैन दर्शन के अनुसार जीव का अजीव के साथ संबंध हो जाना ही बंध है अर्थात जब हमारी आत्मा संसार में आती है तो उसका जुड़ाव संसार के उन अजीव तत्वों से होता है जिन्हें कर्म पुद्गल कहा जाता है। इसप्रकार आत्मा का कर्म पुद्गल के साथ जुड़ाव ही बंधन है। आत्मा का अजीव के साथ यह जुड़ाव जीव के भाव (कषाय) और क्रियाओं पर आधारित होता है। इस प्रकार जब आत्मा में कषाय या राग–द्वेष का भाव उत्पन्न होता तभी कर्म पुद्गल आत्मा को जकड़ लेते हैं परिणामतः आत्मा परतंत्र हो जाती है आत्मा की परतंत्रता बंधन है।[1] आचार्य उमास्वाती ने आत्मा की इसी अवस्था के आधार पर 'सकषायी जीव द्वारा कर्म योग्य पुद्गलों के ग्रहण को बंध कहा है।'[2] बंधन की इस अवस्था में कर्म प्रदेश और आत्म प्रदेश परस्पर

दूध और पानी की तरह एकाकार हो जाते हैं।[3] आचार्य हरिभद्र ने भी 'बंधो जीवस्य कर्मणः' के रूप में आत्मा एवं कर्म पुद्गलों के संयोग को बंध कहा है।[4] इस प्रकार बंध कर्म पुद्गल का परिणमन है, जो कषाय भाव की न्यूनता और अधिकता के आधार पर आत्मा के साथ अल्प या अधिक समय के लिए संबंधित हो जाता है।[5]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर बंधन दो विरोधी गुणधर्म वाली सत्ताओं के पारस्परिक संयोजन की एक कड़ी है जिसमें आत्मा का स्वभाव परिवर्तित होता है। बंधन तभी घटित होता है जब जीव में कषाय विद्यमान हो इस प्रकार बंधन में कर्म के कारण जीव में अशुद्धता आती है। अर्थात् कषाय का उदय होता है और कषायोदय के कारण कर्म का जुड़ाव प्रारम्भ होता है जो काय मन और वचन के निमित्त होता है। इसी को जैन दर्शन में भाव एवं द्रव्य बंध कहा जाता है।[6] मूल कारण के रूप में जीव का भाव और सहयोगी कारण के रूप में जीव की क्रियात्मकता होती है। बिना भाव बंध के द्रव्य बंध नहीं घटित हो सकता। इस प्रकार बिना भाव बंध के जीव अजीव का संबंध नहीं हो सकता भाव को ही मुख्यतः कषाय कहा गया है राग और द्वेष मूलतः कषाय हैं जिनका विस्तार क्रोध, मान, माया और लोभ है।

इन्हीं कषाय और योग के आधार पर[7] जैन दर्शन में चार प्रकार का बंधन स्वीकार किया गया है।[8] प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाव चार प्रकार के बंध है जिनमें प्रकृति और प्रदेश बंध योग पर आधारित है अर्थात् द्रव्य बंध है और स्थिति और अनुभाग कषाय जनित हैं इसलिए इन्हें भाव बंध के रूप में समझना चाहिए। यह बंध– शुभ–अशुभ दोनों रूपों में होता है।

1. प्रकृति बंध : प्रकृति का अर्थ स्वभाव है।[9] अतः यह बंध कर्म प्रकृतियों के स्वभाव पर आधारित है यह बंध आत्मा के सम्पर्क में आने वाले कर्म पुद्गलों के स्वभाव का निर्धारक है इस बंधन में भिन्न–भिन्न प्रकार की कर्म प्रकृतियाँ आत्मिक शक्ति को भिन्न–2 रूपों में क्षीण बनाती हैं। जैन दर्शन में इस प्रकार की कुल आठ कर्म प्रकृतियाँ[10] ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय नाम से विवक्षित हैं, इन आठों को मूल कर्म प्रकृति कहा गया है।[11] इस रूप में मूल प्रकृति बंध भी आठ प्रकार का माना गया है। इन आठ मूल प्रकृतियों के अवांतर भेद प्रभेद हैं जिन्हें उत्तर प्रकृति कहा गया है इनकी कुल संख्या 97 मानी गयी है।[12]

2. प्रदेश बंध : प्रदेश बंध में कर्म परमाणु आत्मा के किस विशिष्ट भाग को आवरण करेंगे इसका निर्धारण होता है इस अवस्था में पुद्गल कर्म प्रदेश आत्म प्रदेश के साथ जुड़ते हैं। चूकि कर्म पुद्गल भिन्न स्वभाव के होते हैं और अपने स्वभावानुसार अपने–2 परिणाम में विभाजित हो जाते हैं। यह परिणाम विभाग ही प्रदेशबंध है।[13] यह बंध कर्म फल की विस्तार क्षमता का निर्धारक है। यह बंध आबद्ध आत्मा के प्रदेश का निर्धारक है।

उपरोक्त दोनों बंध योग अर्थात् जीव की शारीरिक, मानसिक और वाचिक प्रवृत्तियों से होते हैं। शरीरधारी जीव में होनेवाली क्रिया इन बंधनों का कारण है। जब तक जीवन रहता है तब तक यह बंधन घटित होगा किन्तु जीव के साथ यदि कषाय न जुड़ा हो तो यह बंधन आत्मा के स्वरूप को प्रभावित नहीं कर सकते।

3. स्थिति बंध : जितने समय तक कर्मरूपी पुद्गल परमाणु आत्म प्रदेशों में स्थिर रहते हैं वह काल सीमा स्थिति बंध कहलाती है।[14] यह आत्मा और वर्ण पुद्गलों के सम्बद्ध रहने की कालावधि का निर्धारक है। इस बंधन में यह निश्चित होता है कि आत्मा के ज्ञान दर्शनादि जिन शक्तियों का आवरण हुआ है, वह कितने समय तक रहेगा। आचार्य पूज्यपाद ने स्व–स्वभाव से च्युत न होने को स्थिति बंध कहा है। इस प्रकार स्थिति बंध कर्म बंधने और परिणाम देने के बीच की अवस्था है। जिस स्वभाव का कर्म पुद्गल है वह अपने स्वभाव या स्थिति को सदैव

स्थापित किये रखता है। यह बंध उत्कृष्ट एवं जघन्य रूप में होता है।

4. अनुभाव बंध : अनुभाव का अभिप्राय कर्मो में फल देने की शक्ति या क्षमता से है।[15] प्रत्येक कर्म में एक विशेष शक्ति पायी जाती है जिसके आधार पर वह अपना परिणाम देता है, कर्म पुद्गलों की इसी शक्ति का नाम अनुभाव है।[16] कर्मो की यह शक्ति कषाय पर आधारित होती है अर्थात कषाय की तीव्रता, मन्दता के आधार पर शक्ति भी तीव्र या मन्द होती है। फल देने की यह सामर्थ्य ही अनुभाव बंध है। अनुभाव में प्रत्येक कर्म प्रकृतियाँ अपने स्वभावानुसार ही फल देती है।[17] शुभ एवं अशुभ कर्म प्रकृतियों के आधार पर अनुभाव भी उत्कृष्ट और जघन्य रूप में होता है। मूल प्रकृति एवं उत्तर प्रकृति के आधार पर इसे स्वमुख और परमुख भी कहा गया है। कर्म के स्वभावानुसार विपाक के अनुभाव बंध का नियम सिर्फ मूल प्रकृतियों पर लागू होता है। इस प्रकार अनुभाव बंध कर्मफल की तीव्रता और मन्दता का निर्धारक है।

उपरोक्त दोनो बंध कषायजनित हैं इसलिए इन्हें मूलबंध भी कहा जा सकता है इन्हीं पर प्रकृति और प्रदेश आधारित होते हैं क्योंकि बिना कषाय के प्रकृति प्रदेश बंध तो हो सकते हैं किन्तु वे स्थाई नहीं हो सकते। अतः मूलबंध में स्थिति और अनुभाव है जो जीव की रागद्वेषता पर आधारित है कषाय की उपस्थिति जीव विकास में दसवें गुणस्थान तक विद्यमान होती है अतः इस श्रेणी तक के जीव बंधनग्रस्त होते हैं इस प्रकार जैन दर्शन के उपरोक्त चारों बंध के आधार पर बंधन की चरणबद्ध व्याख्या प्रस्तुत किया गया है जिसमें बंधक कर्म पुद्गलों का स्वभाव, उनका आगमन और आत्म जुड़ाव, उनके स्थिति का निर्धारण और फल देने की सामर्थ्य को स्पष्ट किया गया है।

बंधन का कारण : जैन दर्शन में बंधन के कारण रूप में आस्रव को स्वीकार किया गया है। आस्रव का अभिप्राय मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति (योग) को माना गया है। यह योग दो रूपों में घटित होता है। कषायात्मकयोग और अकषायात्मक योग जिसे ईर्यापथिक और साम्परायिक कहा गया है।[18] बंधन सिर्फ साम्परायिक योग से होता है ईर्यापथिक योग बंध का कारण नहीं है। इस प्रकार बंधन के लिए कषाय एवं योग दोनों का होना अनिवार्य है। इसलिए बंधन का मूल कारण कषाय और सहायक कारण योग है। सामान्यतः कषाय और योग पर आधारित पाँच कारण बंधन हेतु के रूप में जैनदर्शन मानता है।[19] मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

1. मिथ्यादर्शन : तत्त्वों के प्रति यथार्थ श्रद्धा का अभाव ही मिथ्यात्व या मिथ्यादर्शन कहलाता है। इस अवस्था में जीव आत्म स्वरूप को भूलकर शरीरादि पर द्रव्य को अपना समझने लगता है। जीव में मिथ्या अहंकार का पोषण होता है और जीव का न तो कोई सिद्धांत होता है न कोई व्यवहार। मिथ्यात्व के कारण जीव ज्ञान, पूजा, तप, कुल, जाति, बल और शरीर के मद से उन्मत्त रहता है और भय, स्वार्थ, निन्दा, घृणा आदि जैसे दुर्गुणों से भरा रहता है।

मिथ्यादर्शन पाँच प्रकार का होता है।[20] एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान। एकांगी ज्ञान को पूर्ण मानना एकांत मिथ्यादर्शन है। किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न समझकर उसके विपरीत रूप को ग्रहण करना विपरीत मिथ्यादर्शन है। बिना चिंतन–मनन के सभी मतों को समान मान लेना वैनयिक मिथ्यादर्शन है। जीव की संदेहात्मक अवस्था संशय मिथ्या दर्शन है। हिताहित की परीक्षा से रहित होना अज्ञान मिथ्यादर्शन है।

अविरति : हिंसा, असत्य, परिग्रह, चोरी और मैथुन जैसी अशुभ प्रवृत्तियों से विरत न रहना अविरति है। सामान्यतः अविरति का तात्पर्य है धर्मानुकूल चरित धारण करने का अभाव। अविरति भी मिथ्यात्व पर आधारित

है। यह जीव का असंयमित और अमर्यादित आचरण है। जीव व्रतों का पालन नहीं करता।

प्रमाद : प्रमाद का अर्थ है आत्म जागृति का अभाव। आत्मचेतना के सुप्त रहने से जीव में सक्रियता समाप्त हो जाती है। जीव के अन्दर शुभ प्रवृत्तियों के प्रति अनास्था उत्पन्न हो जाती है। इसमें जीव की विवेक शक्ति कुण्ठित हो जाती है। प्रमाद की उत्पत्ति भी कषाय जनित है जिसके कारण जीव विषयाशक्त रहता है।

कषाय : कर्म पुद्गलों के श्लेष के कारण आत्मा में उत्पन्न होने वाले कलुषित परिणाम को कषाय कहा गया है।[21] यह आत्मा का विकार है जो कर्म पुद्गलों का परिणाम है। कषाय मूलतः राग और द्वेष है जो विस्तार में क्रोध, मान, माया और लोभ के रूप में चार प्रकार का माना गया है यह चार कषाय अपनी तीव्रता और मन्दता के आधार पर सोलह रूपों में विभाजित होते हैं।

योगः शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति के कारण आत्म प्रदेश में प्रकम्पन होता है। इसी को योग कहा गया है।[22] यह शुभ एवं अशुभ दोनों रूपों में होता है।[23] योग इन्द्रिय व्यापार है जो शरीरधारी जीव में सदैव सक्रिय रहता है।

बंधन के उपरोक्त पाँचों कारणों में मूल कारण कषाय और योग हैं। मिथ्यादर्शन, अविरति और प्रमाद मूलतः कषाय जनित जीव के लक्षण हैं। कषाय की उत्पत्ति जीव के साथ ही होती है अर्थात् जीव में कषाय का भाव जन्म के साथ ही होता है। मूलतः कषाय की उत्पत्ति का आधार अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही जीव सांसारिक विषयों से जुड़ता है और संसार के प्रति राग या द्वेष भाव पैदा करता है। इस तरह कषाय जीव के अन्दर उत्पन्न होने वाला एक भाव है जो अज्ञान से उत्पन्न होता है।

इस प्रकार मिथ्यात्व या कषायात्मक अवस्था में साम्य है। बिना कषाय, मिथ्यात्व नहीं हो सकता और बिना मिथ्यात्व के कषाय की उत्पत्ति असम्भव है। इसलिए अज्ञान या कषाय ही बंधन का मूल कारण है।

सांख्य दर्शन में बंधन का कारण व स्वरूप : सांख्य दर्शन बंधन का मूल कारण अविवेक या अज्ञान को मानता है। अज्ञान की उत्पत्ति पुरुष में तब होती है जब वह प्रकृति के सम्पर्क में आता है। अविवेक के कारण पुरुष अपना निज स्वरूप नहीं समझ पाता फलतः वह प्रकृति जन्य विकारों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है सांख्य का यही बंधन सिद्धांत है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष का संबंध ही बंधन है।[24] यह सम्बद्धता अज्ञान से अभिप्रेरित होती है। बिना अज्ञान के पुरुष का प्रकृति से जुड़ाव भी पुरुष को बंधनग्रस्त नहीं कर सकता।[25] बंधन बिना प्रकृति के साहचर्य से घटित नहीं हो सकता अतः बंधनके लिए संयोग आवश्यक है। अज्ञान ही पुरुष का प्रकृति से संयोग कराता है। प्रकृति पुरुष का यह सम्बंध भोक्ता–भोग्य संबंध कहलाता है।

बंधन का कारण अविवेक : सांख्य के अनुसार पुरूष का प्रकृति के साथ जुड़ाव तभी होता है जब पुरुष के अन्दर अज्ञान या अविवेक रहता है। यही अविवेक पुरुष प्रकृति का संयोग कराता है। सांख्य के अनुसार नाशवान, अपवित्र एवं दुख स्वरूप शरीर को पवित्र और सुखात्मक मानना ही अविवेक या अविद्या है। सांख्यकारिका में अविवेक को विपर्यय कहा गया है और इसे ही बंधन का एक मात्र कारण माना गया है।[26] विपर्यय का अर्थ ज्ञान का विपरीत भाव है। इसमें बुद्धि के अन्तर्गत तामसिक गुणों की प्रधानता रहती है। अविवेक की उत्पत्ति, प्रकृति पुरुष के संयोग से अंतःकरण या चित्त में होती है।

अविवेक का स्वरूप : सांख्य में बंधन का मूल हेतु विपर्यय है जिसका तात्पर्य ज्ञानाभाव न होकर विपरीत ज्ञान है इसे ही योग सूत्र में मिथ्याज्ञान कहा गया है।[27] इसी को अविद्या या अविवेक भी कहा जाता है। यह एक प्रकार से बुद्धि का धर्म है जिसमें तमोगुण की प्रधानता होती है। सांख्य कारिका विपर्यय के पाँच प्रकार माननी है, तम,

मोह, महामोह. तामिश्र और अंधतामिश्र। इसी को योग दर्शन में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश कहा गया है।

अविद्या या तम – अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, इन्द्रियादि अनात्माओं को आत्मा मानना अविद्या है। यह अंधकार की तरह आत्मा को आवरणित करता है अतः इसे तम भी कहा गया है।

अस्मिता या मोह – बुद्धि और पुरुष दोनो भिन्न–भिन्न हैं किन्तु दोनों को अभिन्न मानकर अहंकार का निर्माण कर लेना अस्मिता है बुद्धि और पुरुष में मोह उत्पन्न होने के कारण इसे मोह भी कहा गया है।

राग या महामोह– विषय, शरीर और इन्द्रियों में सुख की तृष्णा ही राग है। समस्त मोह का आधार कारण यही है इसलिए इसे महामोह भी कहा गया है।

द्वेष या तामिश्र – अनात्मधर्म दुख के त्याग की इच्छा ही द्वेष है यह एक क्रूर तामसी धर्म है इसलिए द्वेष को तामिश्र भी कहा जाता है।

अभिनिवेश या अंधतामिश्र : मरणत्रास ही अभिनिवेश है यह मृत्यु भय विद्वान मूर्ख सभी जीवों में अंधे की तरह अज्ञान पैदा कर देता है। तामस धर्म होने से जीवों में अंधता उत्पन्न करने के कारण इसे अंधतामिश्र भी कहा गया है। इन पाँच विपर्याय के कुल 62 भेद प्रभेद स्वीकार किये गए हैं।[28] अविद्या के आठ भेद–आत्मा और प्रकृति के विकारों से संबंधित हैं। अस्मिता के आठ भेद पुरूष के अहंकार से संबंधित हैं। इस प्रकार का राग इन्द्रिय व विषय की कामना पर आधारित है। इसी प्रकार अठारह प्रकार का द्वेष एवं अठारह प्रकार का अभिनिवेश सांख्य दर्शन मानता है।

इस प्रकार सांख्य दर्शन बंधन के मूल कारण में विपर्यय को स्वीकार करते हुए इसकी विस्तार से व्याख्या करता है। विपर्यय के अतिरिक्त भी दो और कारण हैं जिन्हें सांख्य बंधन के कारण रूप में स्वीकार करता है।

अशक्ति : ज्ञान प्राप्ति में असमर्थ को अशक्ति कहा गया है।[29] अर्थात् किसी भी विषय को निश्चय एवं क्रियात्मक रूप देने की क्षमता का अभाव अशक्ति है। अशक्ति के कारण बुद्धि अपना कार्य ठीक ढंग से सम्पादित नहीं कर पाती। अशक्ति का निर्माण बाध्य परिस्थितियों पर आधारित है। शारीरिक दोष, मानसिक दोषादि के कारण जीव में अशक्ति का निर्माण होता है जिससे बुद्धि की विवेक क्षमता प्रभावित हो जाती है।

तुष्टि : प्रकृति से भिन्न पुरुष तत्त्व है इस बात को जानते हुए भी श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा उसके विवेक रूपी साक्षात्कार के लिये किसी असत उपदेश के प्रभाव के कारण प्रवृत्ति न होना ही तुष्टि का लक्षण है।[30] अर्थात् मोक्ष उपाय से विमुखता ही तुष्टि है। ऐसा जीव, पुरुष से भिन्न अन्य तत्व को ही साध्य मानकर उसकी प्राप्ति से संतुष्ट हो जाता है। जिसके कारण आत्मचिंतन से विमुख होकर बंधनग्रस्त हो जाता है। आभ्यंतर रूप से प्रकृति, उपादान, काल एवं भाग्य के रूप में यह चार प्रकार की होती है। प्रकृति स्वयं आत्म साक्षात्कार करा देगी इसलिए प्रयत्न की जरूरत नहीं यह विचार प्रकृति तुष्टि है। इस प्रकार के चिंतन से जीव निष्क्रिय बन जाता है और संसार में डूब जाता है अतः इसका नाम अम्भ भी है। प्रव्रज्या धारण कर संन्यास ले लिया तो मुक्ति हो जाएगी किसी अन्य कर्म की अपेक्षा नहीं इस प्रकार के चिंतन से संतुष्ट रहना अपादान तुष्टि है। इसका अन्य नाम सलिल भी है। समय आने पर स्वयं विवेक ख्याति हो जाएगी इस भाव से संतुष्ट रहना काल तुष्टि है। भाग्य के आधार पर आत्म साक्षात्कार हो जाएगा इस भाव से संतुष्ट रह जाना भाग्य तुष्टि है। तुष्टियाँ कुल नौ हैं। इस प्रकार सांख्य दर्शन में बंधन के तीन कारण स्वीकार किये गये हैं किन्तु इसमें मूल कारण अविवेक या विपर्यय ही है जिसका संबंध बुद्धि से है। बुद्धि, प्रकृति का सर्ग है जिसके आठ धर्म हैं इन आठों धर्मों में चार सात्विक और

चार तामसिक हैं। सांख्य के अनुसार इनमें सिर्फ ज्ञान को छोड़कर शेष सभी सातों भाव अज्ञान, धर्म, अधर्म, राग, विराग, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य आदि पुरुष को बंधनग्रस्त करते हैं। इस प्रकार सांख्य दर्शन में शुभ प्रवृत्तियाँ भी बंधन का कारण हैं।

सांख्य में तीन प्रकार का बंधन : सांख्य दर्शन में तीन प्रकार का बंधन[31] स्वीकार किया गया है जिसका आधार प्रकृति पुरुष की अवस्थात्मक सम्बद्धता है।

1. प्राकृतिक बंध : प्रकृति को ही यथार्थ स्वरूप (आत्मा) मानकर जो उसकी उपासना करते हैं। भौतिक शरीर के पश्चात् उनका सूक्ष्म शरीर प्रकृति में लय हो जाता है। यह सूक्ष्म शरीर (लिंग) दीर्घकाल तक अव्यक्त में लीन रहता है, अव्यक्त अवस्था की समाप्ति पर उस शरीर को पुनः नया शरीर धारण करना पड़ता है। इस प्रकार पुरुष का प्रकृति से यह जुड़ाव उसे जन्म मरण के चक्र से जोड़ देता है। प्रकृति पर आधारित होने के कारण इसे प्राकृतिक बंध कहा गया है।

2. वैकृतिक बंध : यह बंध प्रकृति के विकारों से सम्बंधित है अर्थात् जब पुरुष का जुड़ाव पंचमहाभूत, इन्द्रिय अहंकारादि से होता है और प्रकृति के यह विकार पुरुष को अपने लगते हैं तो पुरुष उसी में खोकर उसे ही पाना चाहता है। इसमें इन्द्रियों की आशक्ति और इन्द्रिय सुख में लीनता रहती है। इस बंधन में दुखानुभूति का अभाव होता है। प्रकृति के विकारों पर आधारित होने के कारण इसे वैकृतिक बंध कहा गया है।

3. दाक्षिणक बंध : लौकिक और पारलौकिक सुखों की बुद्धि की कामना से अभिप्रेरित सभी प्रकार के कर्मों से दाक्षिणक बंध होता है। मुख्यतः यज्ञादि कर्म जो दान दक्षिणा की कामना से प्रेरित होते हैं इस बंधन का आधार हैं। इस प्रकार का जीव यज्ञादि जैसे शुभादि कर्मों के सम्पादन के बावजूद भी विवेक से वंचित रहकर अपना बंध करते हैं। इस प्रकार सांख्य दर्शन में यज्ञादि कर्मों के सम्पादन का प्रथम विरोध मिलता है।

उपरोक्त दोनो दर्शनों के बंधन सिद्धांत की व्याख्या के आधार पर सहज रूप में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बंधन की अवधारणा में दोनो दर्शनों में पर्याप्त समानता देखी जा सकती। उन बिन्दुओं का विवेचन अपेक्षित है जहाँ पर दोंनो दर्शन पर्याप्त नजदीक दिखाई पड़ते हैं।

मिथ्यात्व, कषाय और विपर्यय : जैन एवं सांख्य दर्शन दोंनों में बंधन का मूल कारण मिथ्यात्व को माना गया है। जैन दर्शन में मिथ्यात्व कषाय पर आधारित है। मिथ्यात्व दृष्टि के कारण जीव अपना यथार्थ स्वरूप भूलकर पर द्रव्य को सही मानता है इस प्रकार मिथ्यात्व कषाय जनित अवस्था है इसमें मुख्यतः जीव को विपरीत ज्ञान होता है। जैनदर्शन में यह मिथ्यात्व पाँच रूपों में पारिभाषित किया गया है। जैनदर्शन की मिथ्यात्व की अवधारणा सांख्य दर्शन में विपर्यय रूप में विवक्षित है। सांख्य इस विपर्यय को ही बंधन का मूल कारण मानता है और विपर्यय का अर्थ विपरीत ज्ञान माना है। सांख्य का यह विपर्यय भी पाँच प्रकार का है। सांख्य दर्शन, कषाय को विपर्यय के रूप में मानता है इस प्रकार सांख्य के अनुसार विपर्यय और कषाय एक ही हैं। इस प्रकार दोनों दर्शन बंधन के मूलकारण पर एकमत हैं और इसे अनादि मानते हैं।

कषाय और विपर्यय की उत्पत्ति भी जैन एवं सांख्य दर्शन जीव पर पुद्गल के प्रभाव का परिणाम मानते हैं। सांख्य के अनुसार विपर्यय बुद्धि का तमोगुण प्रधान धर्म है अतः यह प्रकृति जन्य है। इसी तरह जैन दर्शन भी मिथ्यात्व या कषाय को जीव के ऊपर कर्म पुद्गलों का प्रभाव मानता है। इस तरह दोनों दर्शन बंधन के मूलकारण के रूप में समान सिद्धांत रखते हैं।

जीव–अजीव एवं पुरुष प्रकृति का संबंध ही बंध : जैन दर्शन एवं सांख्य दर्शन यह स्वीकार करते हैं कि बंध,

जीव का अजीव के साथ सम्बद्ध होना है। जैन दर्शन में अजीव का सम्बद्ध भौतिक संसार से है और सांख्य दर्शन अजीव को प्रकृति रूप में मानता है। इस प्रकार सांख्य एवं जैन दोनों दर्शन द्वैतवादी सिद्धांत को स्वीकार करते हुए जड़ एवं चेतन के पारस्परिक सम्बंध को बंधन मानते हैं।

अविरति और तुष्टि : बंधन के अन्य कारण के रूप में जैन दर्शन अविरति को मानता है जिसमें जीव की धर्मानुकूल चारित्र धारण करने की शक्ति समाप्त हो जाती है और जीव अशुभ प्रवृत्तियों में लीन हो जाता है। सांख्य में वह श्रवण, मनन निदिध्यासन के मार्ग पर नहीं चलता, अतः सांख्य दर्शन में बंधन का दूसरा कारण तुष्टि की अवधारणा जैन दर्शन के अविरति के समान है जिस प्रकार अविरति में जीव धर्मानुकूल मार्ग का अनुसरण नहीं करता उसी प्रकार तुष्टि के कारण भी जीव में धर्मानुकूल चारित्र धारण करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अतः अविरति और तुष्टि में साम्यता है। दोंनो दर्शनों में इन कारणों को अविद्याजन्य स्वीकार किया गया है।

प्रमाद और अशक्ति : जीव में आत्म शक्ति के अभाव के कारण उसकी आत्म चेतना क्षीण हो जाती है परिणामतः वह लक्ष्य से लिचलित हो जाता है इसे जैन दर्शन में प्रमाद कहा गया है और सांख्य दर्शन में जीव की यह अवस्था अशक्ति के रूप में है। इस अवस्था में जीव ज्ञान प्राप्ति में असमर्थ होता है और किसी भी विषय को निश्चयात्मक एवं क्रियात्मक रूप देने की क्षमता नहीं रहती। अशक्ति के कारण बुद्धि विकार जन्य होती है जिससे उसकी विवेक क्षमता प्रभावित होती है। प्रमाद की अवस्था में भी जीव विषयाशक्त होता है और उसकी विवेक शक्ति कुण्ठित हो जाती है। अतः प्रमाद एवं अशक्ति में पर्याप्त साम्य है।

स्थिति, अनुभाव एवं प्राकृतिक बंध : जैन दर्शन में चार प्रकार के बंध में स्थिति व अनुभाग बंध कषाय जनित हैं। इन दोनों बंधन की अवस्थाओं में आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों के ठहराव एवं उनकी फल–प्रदान–शक्ति का निर्धारण होता है। सांख्य दर्शन में प्राकृतिक बंध के अंतर्गत ही स्थिति एवं अनुभाव की अवस्था विद्यमान है। सांख्य के अनुसार पुरुष में प्रकृति जन्य अहंकार उत्पन्न होता है और इस अहंकार के कारण जीव के अंतःकरण पर एक संस्कार निर्मित होता है जो लिंग या सूक्ष्म शरीर के रूप में विद्यमान होता है इस लिंग शरीर में कर्मों का प्रभाव संग्रहित होता है इसी प्रभाव के कारण जीव नया शरीर धारण करता है पुनः नया शरीर लिंग शरीर के प्रभाव के कारण अपने पूर्वकृत कर्मों के परिणाम को भोगता है। इस प्रकार कर्म का जीव पर प्रभाव और उस निर्धारित समय पश्चात कर्म भोग (परिणाम) सांख्य दर्शन भी स्वीकार करता है अतः सांख्य के प्राकृतिक बंध में कर्म पुद्गलों की स्थिति एवं उनका परिणाम देना दोनो उपलब्ध हैं। जैन के अनुसार स्थिति बंध में कर्म पुद्गलों के ठहराव की समय सीमा तय होती है सांख्य के अनुसार भी सूक्ष्म शरीर एक निश्चित समय पश्चात ही अतीत कर्मों का परिणाम देना शुरु करता है।

इसके अतिरिक्त जैन दर्शन में बंधन रूप में योग की मान्यता भी सांख्य को स्वीकार है जैनदर्शन के अनुसार मन, वाणी एवं शरीर की प्रवृत्ति से कर्मों का आश्रव होकर बंधन होता है सांख्य के अनुसार भी प्रकृति में किसी भी प्रकार का सर्ग तभी होता है जब जीव प्रकृति से सम्पर्क करता है। इस आधार पर जैन एवं सांख्य दर्शन बंधन के सिद्धांत पर पर्याप्त साम्यता रखते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. तत्त्वार्थ वार्तिक 1/4/10 बंध्यतेऽन बंधन मात्रं वा बंधः
2. तत्त्वार्थसूत्र 812–3 सकषायत्वाज्जीवः कर्मणोयोग्यान् पुद्गलानादत्ते स बंधः।

3. सर्वार्थसिद्धि 1/4 आत्मकर्मणोरन्योऽन्य प्रवेशानुप्रवेशात्मको बन्धः
4 षट् दर्शन समुच्चय (गुणरत्न टीका) 51/230 पृ.सं. 276 ज्ञानपीठ
5. प्रवचनसार 2/83
6. सर्वार्थ सिद्धि 1/4
7. तत्त्वार्थसूत्र 8/4 प्रकृतिस्थित्यनुभव प्रदेशास्तद्विधयः।
8. तत्त्वार्थ वार्तिक 8/3, 8/10 तथा सर्वार्थसिद्धि तत्र योग निमित्तौ प्रकृति प्रदेशौ। कषाय निमित्तौ स्थित्यनुभवौ॥
9. सर्वार्थसिद्धि 8/3 प्रकृतिः स्वभावो।
10. तत्त्वार्थसूत्र 8/5 आद्योज्ञानदर्शनावरण वेदनीय मोहनीयायुर्नाम गोत्रान्तरायाः।
11. तत्त्वार्थसूत्र 8/5 की व्याख्या– सुखलाल संघवी
12. तत्वार्थसूत्र 8/6 से 8/14 तक
13. तत्त्वार्थसूत्र 8/25 नाम प्रत्यया सर्वतोयोगविशेषात सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः
सर्वत्मप्रदेशेस्वनन्तानन्त प्रदेशाः।
14. तत्त्वार्थवार्तिक, 6/13/3
15. तत्त्वार्थसूत्र– 8/22, विपाकोऽनुभावः.।
16. सर्वार्थसिद्धि – 8/3
17. तत्त्वार्थसूत्र– 8/23, स यथानाम॥
18. वही 5/6, सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः।
19. वही 8/1, मिथ्यादर्शनाविरति प्रमाद कषाय योगा बन्धहेतवः।
20. सर्वार्थसिद्धि 8/1, पंचविधं मिथ्यादर्शनम्, एकांतमिथ्यादर्शनं विपरीतमिथ्यादर्शनम्, संशय
मिथ्यादर्शनं वैनयिकमिथ्यादर्शनं, अज्ञानमिथ्यादर्शनं चेति।
21. वही 6/4
22. तत्त्वार्थसूत्र 6/1, कायवाङ्मनः कर्म योगः॥ सर्वार्थसिद्धि 2126
23. त.सू. 6/3–4, शुभः पुण्यस्य। अशुभः पापस्य।
24. सांख्य प्रवचन भाष्य– 1/19
25. सांख्य प्रवचन भाष्य,– न नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभावस्य तद्योगस्तद्योगाद्वते।
26. सांख्य कारिका, का.44
27. योगसूत्र– 1/8, विपर्ययो मिथ्याज्ञानम्।
28. जयमंगला– अशक्तिर्ज्ञानाधिगमा सामर्थ्य सत्यामधि जिज्ञासायाम्।
29. वही, तुष्टिमोक्षौपायेषु वैमुख्यम्।
30. सांख्य संग्रह– इत्योषस्ति विधो बन्धः।

32

जीव के असाधारण भाव : एक विश्लेषण

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

भाव शब्द बहु प्रचलित है इसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र में अलग अलग अर्थ में हुआ है और वहीं विशिष्टता को दर्शाता है। कोशकार स्वभाव, दशा, घटना, ढंग, पद, क्रिया, लीला, वास्तविकता, संकल्प, मन, आत्मा, जीवधारी, हावभाव, उत्पत्ति (जन्म) संसार प्रतिष्ठा आदि अनेक अर्थ भाव शब्द के बतलाते हैं।[1] यह शब्द भू धातु से घञ् प्रत्यय पूर्वक अथवा भू धातु से णिच् + अच् प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। भाव शब्द द्रव्य[2], परिणाम[3] (पर्याय) आत्मरुचि[4] अर्थ में भी प्रयुक्त है। कहीं द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीनों का ग्रहण होता है जैसे कहा गया है– 'एते सर्वेऽपि भावाऽज्ञानिनोऽज्ञानमया वर्तन्ते' द्रव्य गुण और पर्याय अज्ञानी के अज्ञानमय अर्थात् विकारी ही होते हैं।[5] इन सभी अर्थों से भिन्न जीव के स्वतत्त्व औपशमिकादि भावों को भाव शब्द से ग्रहण किया गया है। औपशमिक आदि जीव के असाधारण भाव हैं। विशिष्ट गुण हैं।[6] इनका सर्वातिशायी माहात्म्य है। आचार्य अमृतचन्द्र ने तो इन भावपञ्चक का आश्रय लेकर जीव की परिभाषा की है – अन्यासाधारणाः भावाः पञ्चौपशमिकादयः।

स्वं तत्त्वं यस्य तत्त्वस्य जीवः स व्यपरिदिश्यते। तत्त्वार्थसार

अर्थात् जीव को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं पाये जाने वाले औपशमिक आदि पांच भाव जिस तत्त्व के स्वत्त्व हैं, वह जीव कहलाता है, यहाँ जीव शब्द का कथन आयु कर्म की अपेक्षा से जीवन पर्याय के धारण करनेवाला नहीं है क्योंकि ऐसा होने से सिद्धों में जो क्षायिक तथा परिणामिक भाव रहा करते हैं सो नहीं बन सकेंगे यहाँ जीवत्व गुण के धारण करनेवाले की अपेक्षा जीव का कथन है। अर्थात जीव शब्द का अभिप्राय सामान्य जीवद्रव्य से है।

आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के द्वितीय अध्याय के प्रथम सूत्र में इनका संग्रह कर इन्हें जीव के स्वतत्त्व कहा है– 'औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणमिकौ च' अर्थात् औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक में पांच भाव जीव के स्वतत्त्व है। अस्तित्व, वस्तुतत्व, प्रमेयत्व द्रव्यत्व आदि और भी अनेक स्वभाव हैं। जो जीव के स्वतन्त्र कहे जा सकते हैं किन्तु आचार्य उमास्वामी ने इस सूत्र में इनका उल्लेख इसलिए नहीं किया क्योंकि वे जीव के असाधारण

भाव नहीं हैं। वे जीव और अजीव दोनों द्रव्यों में पाये जाते हैं किन्तु औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये पांचों भाव जीव के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं किसी भी द्रव्य में नहीं पाये जाते हैं। यही कारण है कि ये जीव के स्वतत्त्व हैं।

औपशमिक भाव– जिस भाव की उत्पत्ति में कर्म का उपशम निमित्त होता है। वह औपशमिकभाव कहलाता है। कर्म की अवस्था विशेष का नाम उपशम है। यथा फिटकिरी डालने से जल में से गन्दगी एक ओर हट जाती है, उसी प्रकार परिणाम विशेष के कारण विवक्षितकाल के कर्म निषेकों का अन्तर होकर उस कर्म का उपशम हो जाता है, जिससे उस काल के भीतर आत्मा का निर्मलभाव प्रगट होता है। इसके दो भेद हैं।[7] औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र तथा उपशान्तक्रोध, उपशान्तमान, उपशान्तमाया, उपशान्तलोभ, उपशान्त राग, उपशान्तद्वेष, उपशान्तमोह, उपशान्त कषाय, वीतराग छद्मस्थ, औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये सभी औपशमिक भाव हैं।

औपशमिक सम्यक्त्व– सात प्रकृतियों के उपशम में औपशमिकसम्यक्त्व होता है। चारित्रमोहनीयकर्म के कषायवेदनीय की चार प्रकृति अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ व दर्शनमोहनीय के सम्यक्प्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक सम्यक्त्व होता है। औपशमिकचारित्र – समस्त मोहनीयकर्म के उपशम से औपशमिकचारित्र होता है। चारित्रमोहनीय कर्म की अनन्तानुबन्धी चतुष्क से अतिरिक्त अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन चतुष्क और नौ नोकषाय के उपशमन से आत्मपरिणामों की जो निर्मलता होती है उसको औपशमिक चारित्र कहते हैं।

क्षायिक भाव– जिस जल का मैल नीचे गया हो उसे यदि दूसरे बर्तन में रख दिया जाय तो उसमें अत्यन्त निर्मलता से जो भाव होते हैं, वे क्षायिकभाव हैं। सार रूप में कह सकते हैं कि प्रतिपक्ष कर्मों के सर्वथा क्षय से जीव के जो भाव उत्पन्न होते हैं वे क्षायिकभाव कहलाते हैं। वे नौ हैं, उनकी उत्पत्ति इस प्रकार समझी जा सकती है, ज्ञानावरणकर्म का नाश होने पर क्षायिकज्ञान– केवलज्ञान उत्पन्न होता है। दर्शनावरणकर्म के क्षीण होने पर क्षायिकदर्शन (अनन्तदर्शन) उद्भूत हुआ करता है। अन्तराय के पूर्ण नष्ट होने पर दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पांच भाव आविर्भूत होते हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्क और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के सर्वथा क्षीण होने पर क्षायिकसम्यक्त्व और चारित्रमोहनीय का सर्वथा क्षय होने पर क्षायिकचारित्र प्रकट होता है। इनमें से क्षायिकसम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान वाले पुरुष को किसी भी गुणस्थान में उत्पन्न हो सकता है। वह केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में ही होगा। क्षायिकचारित्र बारहवें गुणस्थान में ही प्रगट होगा शेष अनन्तज्ञानादि सात भाव तेरहवें गुणस्थान में ही उत्पन्न होते हैं। सभी क्षायिक भावों में व्यापक सिद्धत्व का कथन भी किया गया है जैसे पौरों के पृथक् निर्देश से अञ्जुलि सामान्य का निर्देश हो जाता था।

क्षायोपशमिकभाव– परिणामों की निर्मलता से एकदेश का क्षय और एकदेश का उपशम होना क्षयोपशम है जैसे मादक कोदों को धोने से कुछ मदशक्ति क्षीण हो जाती है और कुछ क्षीण नहीं होती है[8] क्षयोपशम को लिए हुए जो भाव होते हैं वे क्षयोपशमिक भाव हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कर्मों के उदय होते हुए भी जो जीव गुण का अंश (खण्ड) उपलब्ध रहता है, वह क्षायोपशमिकभाव है। इसे मिश्र भाव भी कहते हैं। आचार्य वीरसेन ने उक्त लक्षणों से भिन्न भी क्षयोपशम का स्वरूप बतलाया है। 'सर्वधाती स्पर्धक अनन्तगुणे हीन होकर और देशघाती स्पर्धकों में परिणत होकर उदय में आते हैं, उन सर्वघाती स्पर्धकों का अनन्तगुणा हीनत्व ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती समर्थकों के रूप में अवस्थान होना उपशम हैं, उन्हीं क्षय और उपशम से

संयुक्त उदय को क्षयोपशम कहते हैं[9], उसका भाव क्षायोपशमिक है। इसके अठारह भेद इसप्रकार बतलाये हैं। चार प्रकार का ज्ञान, तीन, अज्ञान, तीन प्रकार का दर्शन पांच लब्धियां एक प्रकार का सम्यक्त्व, और एक प्रकार का चारित्र तथा एक प्रकार का संयमासंयम। घाती[10] कर्म के क्षयोपशम से ही आत्मा में क्षायोपशमिकभाव जागृत हुआ करते हैं। ज्ञानावरण के क्षयोपशम से चार प्रकार का ज्ञान क्षायोपशमिक होता है। तीन प्रकार के तीन ही मिथ्यादर्शन से सहचरित होने के कारण अज्ञान कहे जाते हैं अतएव वे भी क्षायोपशमिक ही हैं। तीन प्रकार का दर्शन भी दर्शनावरण क्षयोपशम से ही हुआ करता है अतएव वह भी क्षायोपशमिक ही है। यही व्यवस्था लब्धियों के सम्बन्ध में है। संयमासंयम अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से हुआ करता है यह बारह व्रत रूप होता है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के सन्दर्भ में एक शंका उत्पन्न होती है कि सम्यक्त्वमोहनीय उदित होकर भी तत्त्वार्थ श्रद्धान को नहीं रोकती है। इसका कार्याभाव दिखता है। आचार्य कहते हैं ऐसा नहीं है क्योंकि क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व प्रकृति उदित होकर श्रद्धान में चल, मल व अगाढ़ रूप दोषों को उत्पन्न करती ही[11] है। अतः सम्यक्त्व प्रकृति का कार्याभाव नहीं है। जब दोष उत्पन्न होते हैं तो यथार्थ श्रद्धान अन्तर है? नहीं तीनों सम्यग्दर्शनों के यथार्थ के प्रति समानता पाई जाती है।[12] अन्य क्षायोपशमिक भावों के उदयकाल में किंञ्चित् शिथिलपना तो पाया ही जाता है।

औदयिकभाव– द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से कर्मों का फल देना उदय है और उदय निमित्तक भावों को औदयिकभाव कहते हैं अथवा उदय से युक्त भाव औदयिकभाव है। अर्थात् कर्मों के उदय के निमित्त से उत्पन्न हुआ जीव का भाव औदयिकभाव है। विशेष यह है कि उदय के साथ प्रायः उदीयमान कर्म की उदीरणा भी होती है अतः उदय व उदीरणा दोनों के निमित्त से उत्पन्न भाव औदयिकभाव रूप से विवक्षित हैं। पुद्गल विपाकी कर्मों के उदय से जीवभाव नहीं होते अतएव जीव विपाकी कर्मों के उदय से उत्पन्न भाव औदयिकभाव कहलाते हैं। यह 21 विकल्प–भेद वाला भाव है। आचार्य उमास्वामी ने चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और छह लेश्याएं इन इक्कीस औदयिक भावों का कथन किया है।[13] हाँ कर्मों की जातियाँ और उनके अवान्तर भेद अनेक हैं अतः उनके उदय से होने वाले भाव भी अनेक हो जाते हैं किन्तु उक्त इक्कीस भेदों में सभी का अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे कि आयु, गोत्र और जाति, शरीर, अंगोपांग आदिनामकर्म प्रभृतिका एक गतिरूप औदियिकभाव में ही समावेश हो जाता है। और कषाय में हास्यादिक नौ नोकषाय का अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसा ही अन्य का समझना चाहिए। नरकगति आदि औदयिकी हैं क्योंकि नरकगति नामकर्म के उदय से नारकभाव हुआ करते हैं इसी प्रकार उक्त सभी के साथ नियम है। लेश्या नाम का कोई भी कर्म नहीं है अतएव लेश्या रूप भाव पर्याप्ति नामकर्म के उदय से अथवा पुद्गल विपाकी शरीरनामकर्म और कषाय इन दो के उदय से हुआ करते हैं[14] क्योंकि कषाय के उदय से अनुरंजित मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को ही लेश्या कहते हैं।[15] असिद्धत्वभाव आठ कर्मों के उदय से अथवा चार अघातिकर्मों के उदय से हुआ करते है। भावों का प्रकरण होने से अंतरंग परिणाम विशेष भावलेश्या का ही ग्रहण किया गया है। औदयिक भावों विशेष यह है कि एकेन्द्रियजाति औदियकभाव है।[16] क्योंकि यह जीवभाव एकेन्द्रिय जातिनाम कर्म के उदय से ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जाति आदि भावों को भी जानना चाहिए। सासादन भाव का औदयिकत्व भी सिद्ध है।[17] रागभाव भी औदयिक है क्योंकि इसकी उत्पत्ति माया, लोभ, हास्य, रति और तीन वेद रूप द्रव्यकर्मों के विपाक अर्थात् उदय से होती है। दोषभाव भी औदयिक है क्योंकि इसकी उत्पत्ति क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा रूप द्रव्यकर्म के विपाक से होती है। पांच प्रकार का मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व

और सासादन मोह कहलाता है। यह मोहभाव भी औदयिक है क्योंकि इसकी उत्पत्ति मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी रूप द्रव्य कर्म के उदय से होती है। इसका विस्तार सिद्धान्त ग्रन्थों से जानना चाहिए।

पारिणामिकभाव– जिनके होने में द्रव्य का स्वरूप मात्र लाभ का कारण है, वह परिणाम है और जिस भाव का प्रयोजन परिणाम है, वह पारिणामिक भाव है। ये पारिणामिकभाव कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के बिना होते हैं। अर्थात् बाह्य निमित्त के बिना द्रव्य के स्वाभाविक परिणमन से जो भाव प्रकट होता है, वह पारिणामिक भाव है।[18] यह जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व के भेद से तीन प्रकार का है।

जीवत्व– यह शक्ति आत्मा की स्वाभाविक है इसमें कर्म के उदयादि की अपेक्षा नहीं पड़ती अतः यह पारिणामिक है। जीवत्व से तात्पर्य चैतन्य से है। भावों के प्रकरण में चैतन्य गुण सापेक्ष जीवत्व की ही मुख्यताया होती है, जीवन क्रिया सापेक्ष की नहीं। चैतन्य गुण सब जीवों में समान पाया जाता है और कारण निरपेक्ष होता है। जीवत्व पारिणामक अब द्रव्य या गुण तो हो नहीं सकता क्योंकि द्रव्य – गुण दोनों सामान्य विशेष स्वरूप है क्योंकि द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय दोनों प्रकार के विशेष भी पाये जाते हैं।[19] जीवत्व पारिणामिक भाव पर्याय भी नहीं है क्योंकि पर्याय तो स्वयं विशेष है। जीवत्व उन सब पर्यायों में अन्यत्र रूप से रहने वाला और ध्रौव्य से लक्षित सामान्य होता है।[20] जीवत्व पारिणामिक भाव ध्रौव्य स्वरूप होने से उत्पाद–व्यय स्वरूप नहीं है। जीवत्व द्रव्यार्थिकनय का विषय होने से अनादि अनन्त नित्य अर्थात् कूटस्थ है। **भव्यत्वः** जो सिद्ध पद को प्राप्त करने योग्य है, उसको भव्य कहते हैं आचार्य अकलंकदेव ने इसका स्वरूप बताते हुए कहा है 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप पर्याय से भविष्यकाल में आत्मा परिणमत करेगी अथवा जिसमें सम्यग्दर्शन पर्याय रूप परिणमन करने की शक्ति है, वह भव्य है उसकी परिणमिति भव्यत्व है।

अभव्यत्व– जिसके सिद्ध होने की योग्यता नहीं पायी जाती है, वह अभव्यत्व[21] है और उसकी परिणति अभव्यत्व है।

आचार्य उमास्वामी ने उक्त तीनों भावों को बतलाने के लिए 'जीवभव्याभव्यत्वादनि' सूत्र लिखा है। तीनों परिणमित भावों के स्वरूप को जानने के बाद सूत्र में आये हुए आदि पद के प्रयोजन जानने की इच्छा होती है जिसका समाधान यह है कि अस्तित्व, अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, गुणवत्व, असर्वगत्व अनादि कर्म सन्तान बद्धत्व प्रदेशत्व, अरूपत्व, नित्यत्व आदि और भी अनेक जीव के अनादि पारिणामिकभाव हैं किन्तु ये भाव जीव के असाधारण नहीं है धर्मादि अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं। असाधारण पारिणामिक तीन ही हैं। अतः इन्हीं तीन का शब्दतः उल्लेख किया गया है।[23]

उक्त औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक में कर्मों की उपाधि का चतुर्विधपना (कर्मों की चार दशाये) कारण है तथा पारिणामिकभाव में स्वभाव कारण है।[24] पांचों भावों में औदयिकभाव बन्ध के करनेवाले हैं औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के करने वाले हैं तथा पारिणामिक भाव बन्ध और मोक्ष दोनों कारण से रहित हैं।[25] यहाँ इतना विशेष ध्यातव्य है कि सभी औदयिक बन्ध के कारण नहीं हैं क्योंकि सभी औदयिकभावों को बन्ध कारण मानने पर गति, जाति आदि नामकर्म सम्बन्धी मनुष्यगति पञ्चेन्द्रियजाति आदि का अयोगकेवली गुणस्थान में उदय है किन्तु बन्ध नहीं हैं अतः सभी औदयिक भावों को बन्ध का कारण नहीं मानना चाहिए।[26]

जीव के निज भावों की बन्धनकारणता पर विचार के अनन्तर किन जीवों के कितने भाव होते हैं, इस पर विचार किया जाता है। पांचों भाव जीव के ही होते हैं किन्तु प्रत्येक जीव के पांचों भाव पाये जाने का कोई नियम

नहीं है। सभी जीवों में से कम से कम दो भाव और अधिक से अधिक पांच भाव एक जीव में हो सकते हैं। मुक्त जीवों में क्षायिक और पारिणामिक ये दो ही भाव होते हैं। संसारी जीवों के विविध विकल्प हैं अर्थात् किसी में तीन किसी में चार और किसी में पांचों भावों की सत्ता होती है। तीसरे गुणस्थान तक के सब जीवों के क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते हैं। क्षायिक–सम्यक्त्व/चारित्र को प्राप्त करने वाले के लिए क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये चारभाव होते हैं और औपशमिक सम्यक्त्व धारण करने वाले के लिए औपशमिक, क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिकभाव पाये जाते हैं किन्तु क्षायिक–सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी का आरोहण करने वाला होता है, उसके औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, और पारिणामिक पांच भाव होते हैं।

ये पांचों भाव व्यापक नहीं है अतः ये जीव का लक्षण नहीं बन सकते हैं। लक्षण वह बनता है जो जीवमात्र में जो त्रिकाल विषयक सर्वथा अव्यभिचारी होता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने जो इन भावों के आश्रय से जीव का लक्षण किया है, वह जीवराशि की अपेक्षा से है न कि जीवत्व की दृष्टि से है किसी एक जीव में अमृतचन्द्राचार्य का लक्षण घटित नहीं हो सकता है।[27]

उपयोग लक्षण वाले जीव के इन पंचभावों का व्याख्यान द्विसंयोगी अंग, त्रिसंयोगी अंग, चतुःसंयोगी अंग की विवक्षा से भी शास्त्रों में पाया जाता है किन्तु विस्तार भय से उसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

यहाँ यह विचार भी करना आवश्यक है कि जब जीव अमूर्त है। अमूर्त का मूर्त कर्म के साथ बन्ध संभव नहीं है और कर्म बन्ध के अभाव में औपशमिक आदि भावों की उत्पत्ति नहीं बन सकती, क्योंकि पारिणामिक भावों के अलावा शेष चार भाव कर्म निमित्तक हैं। आचार्य इस विषय से समाधान देते हैं कि कर्म का आत्मा से अनादि सम्बन्ध है अतः कोई दोष नहीं है। तात्पर्य यह है कि संसार में जीव का कर्म के साथ अनादिकालीन सम्बन्ध है अतः कोई दोष नहीं है। तात्पर्य यह है कि संसार में जीव का कर्म के साथ अनादिकालीन सम्बन्ध होने के कारण वह व्यवहार से मूर्त हो रहा है। यह बात ठीक भी है क्योंकि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर प्रभाव पड़ता है। जैसे मदिरा आदि का सेवन करने पर ज्ञान में मूर्च्छा देखी जाती है। पुद्गल ज्ञानावरणकर्म की शक्ति से जीव की स्वाभाविक ज्ञान गुण की पर्याय केवलज्ञान की प्रकटता नहीं हो पाती है।[28] इस विवक्षा से तो कर्म निमित्त से उत्पन्न होने वाले भाव जीव के असाधारण हैं लेकिन वस्तुतः आत्मा मूर्तरूप नहीं। रूप रस गन्ध, स्पर्श, गुण वाला मूर्त होता है और वह केवल पुद्गल द्रव्य है। आत्मा तो उपयोग लक्षण वाला है। उसके असाधारण भावों का उक्त दिग्दर्शन विशेष अध्ययन के लिए प्रेरणास्पद होगा।

सन्दर्भ

1. भावः सत्ता स्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु।
   क्रियालीलापदार्थेषु विभूतिबुधजन्तुषु 'रत्यादौ च' ॥ मेदिनी
2. 'यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः' भावशब्द का प्रयोग द्रव्य अर्थ में है, द्रव्य के भी भाव व्यपदेश भवनं भावः अथवा भूति अर्वा इस प्रकार की व्युत्पत्ति के अवलम्बन से बन जाता है।
3. भावो खलु परिणामो।
4. भावः आत्मरुचिः। भावपाहुड़ 66 की टीका
5. समयसार आत्मख्याति टीका एवं पञ्चाध्ययी पृ. 279
6. त एते (पञ्चयभावाः) पञ्च जीवगुणाः। पञ्चास्तिकायसंग्रह गा. 53, 56 एवं गो.क. 812

7. जिस प्रकार जल में कतकादि द्रव्य के सम्बन्ध से कुछ कीचड़ का अभाव हो जाता है और कुछ बना रहता है उसी प्रकार उभयरूप भाव क्षयोपशम है। सर्वार्थसिद्धि 2/1/252 पृ. 105

8. धवल पु. 7 पृ. 92

9. ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमा–संयमाश्च। तत्वार्थसूत्र 2/15

10. णाणावरण चउक्कं ति दंसणं सम्मगं च संजलणं।
णव णोकसाय विग्घं छब्बीस देसघादीओ॥गो.क.40

11. धवल पु.13 पृ. 358

12. धवल पु. 1 पृ. 399

13. गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः। तत्वार्थसूत्र 2/16

14. जोगपउत्ती लेस्सा कसाय उदयाणु रंजिया होई। 489 गो.जी.

15. जल्लेस्साइं दव्वाइं आदि अंति तल्लेस्से परिणामे भवति॥(प्रज्ञालेश्या पदे)

16. धवल पु. 6 पृ. 10 एवं राजवार्तिक

17. राजवार्तिक 2/7/11 पृ. 111

18. तदभावादनादिद्रव्यभवनसम्बन्धपरिणामनिमित्तत्वात् पारिणामिका इति–तत्त्वार्थवार्तिक भा. 1 पृ.297

19. प्रवचनसार गा. 93

20. प्रवचनसार गा. 95

21. तत्त्वार्थवार्तिक भाग 1 पृ. 297

22. तत्त्वार्थवार्तिक भाग 1 पृ. 298

23. सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र द्वितीय अ. सूत्र 7 की संस्कृत टीका

24. पञ्चास्तिकाय गा. 56 की अमृतचन्द्राचार्य कृत टीका, धवल 5/188

25. धवल पु. 6 समयसार तात्पर्यवृत्ति गा.431 पंक्ति 14–15

26. धवल पु. 6 पृ. 10

27. अन्यासाधारणा भावाः पञ्चौपशमिकादयः।
स्वं तत्त्वं यस्य तत्त्वस्व जीवः स व्यपदिश्यते।/ 211 तत्त्वार्थसार

28. कावि अपुव्वा दीसिदि पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ति।
केवलणा सहावो विणासदो जाइ जीवस्स॥ कार्तिकेयानुप्रेक्षा

33

जैन आगम साहित्य में अनुष्ठान, पूजा एवं विधान

पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन (रजवांस, सागर, म.प्र.)

जैन आगम साहित्य में अनुष्ठान की चर्चा श्री जिनसेनाचार्य ने महापुराणान्तर्गत श्रावक धर्म का कथन करते हुए की है। गर्भाधान आदि का स्वरूप बताकर इनका अनुष्ठान करने का निर्देश दिया है। कृषि आदि आजीविका का अनुष्ठान करने को कहा है। अनुष्ठान के उपरोक्त कथन से अनुष्ठान को विधि, पद्धति, नियम, ढंग, तरीका आदि भी कह सकते हैं। चतुर्मुख, सर्वतोभद्र पूजाएं महापूजा कहलाती हैं। इन्हें विधि विधान से करने का एवं पंचपरमेष्ठी और शास्त्र की वैभव से नाना प्रकार की जो पूजा की जाती है, उसे पूजा विधान कहते हैं। अर्थात् पूजा विधान को जाप, हवन के साथ विधिपूर्वक करने को अनुष्ठान कहा जाता है। अनुष्ठान विधान का नामांतर ही है। वर्तमान में पूजा, जाप एवं हवन को अनुष्ठान व्यवहत किया जाता है। अनुष्ठान वैदिक संस्कृति में और विधान शब्द श्रमण संस्कृति में बहुप्रचलित है। विधि–विधान अर्थात् पूजन, जाप हवन पूर्वक की जाने वाली महापूजा है। जो प्रतिदिन मंदिर जाकर पूजा की जाती है वह नित्य पूजा है और जो किसी पर्व, प्रसंग पर वैभव के साथ की जाती है, वह महापूजा कहलाती है।

पूजन श्रावक का आवश्यक / कर्त्तव्य है पूजन मोक्ष प्राप्ति के लिए बीज समान है। पूज्य के गुणानुवाद, गुणस्मरण, स्तुति, स्तवन के साथ पूज्य के प्रति पूजक का पूर्ण समर्पण पूजन है। आचार्यों ने इसे वैयावृत्त, अतिथि संविभाग, सामायिक और पदस्थ ध्यान में सम्मिलित किया है। पूजा आत्मकल्याण का प्रथम सोपान है इससे संसार के समस्त दुःख दूर होते हैं एवं समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति होती है।[1] गृहस्थ के पाँच सूनाओं से होने वाले दोषों / पापों की निवृत्ति के लिए एवं आत्मकल्याण की भावना से प्रतिदिन पूजन करना आवश्यक होता है तभी वह गृहस्थ जन्म दोषों से मुक्त होकर मुक्तिमार्ग में लग पाता है। पूर्वाचार्यों ने मन की स्थिरता, सैद्धान्तिक विषय को सरलता से ग्रहण कराने की भावना एवं न्यायोपार्जित धन के सदुपयोग के लिए पूजा के अनेक भेद बतलाये हैं। यथा– पूजा के दो भेद–

(1) द्रव्यपूजा – वचन और मन का संकोच करना

(2) भावपूजा – मन का संकोच करना[2]

पूजा के छह भेद–

(1) नामपूजा– जिनदेव का नाम उच्चारण कर पुष्पक्षेपण करना।

(2) स्थापना पूजा– साकार वस्तु (प्रतिमा) में गुणों का आरोपण कर पूजा करना।

(3) द्रव्य पूजा– अरिहंतादिक की जलादि अष्ट द्रव्यों पूजा करना।

(4) क्षेत्र पूजा– पंचकल्याणकों के स्थानों की पूजा करना।

(5) काल पूजा– पंचकल्याणकों की तिथियों की पूजा करना।

(6) भावपूजा– भगवान के गुणों की स्तुति पूर्वक त्रिकाल सामायिक।[3]

द्रव्य पूजा के तीन भेद–

(1) सचित्त पूजा– प्रत्यक्ष उपस्थित जिनेन्द्र भगवान और गुरु की पूजा

(2) अचित्त पूजा– जिन तीर्थंकर के शरीर, द्रव्यश्रुत लिपिबद्ध शास्त्र आदि की पूजा

(3) मिश्र पूजा– दोनों प्रकार की पूजा एक साथ करना

पूजा के पांच भेद–

(1) नित्यमह– प्रतिदिन घर से द्रव्य ले जाकर पूजन करना या जिनबिम्ब, जिनमंदिर निर्माण करवाना और इनके संरक्षण के लिए खेत आदि दान देना।

(2) चतुर्मुखमह– महामण्डलेश्वर, मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की जाने वाली पूजा।

(3) कल्पद्रुमह– चक्रवर्ती द्वारा किमिच्छकदान देकर की जाने वाली पूजा।

(4) अष्टान्हिकमह– सर्वसाधारण जनों द्वारा की जाने वाली पूजा।

(5) इन्द्रध्वजमह– इन्द्रों के द्वारा की जाने वाली पूजा, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा आदि।[4]

पूजा के दो अन्य भेद

(1) नित्यपूजा– जिन भक्तों के द्वारा प्रतिदिन, अभिषेक पूजा आदि को नित्य पूजा कहते हैं।

(2) नैमित्तिक पूजा– पर्व उत्सव एवं विशेष प्रसंगों पर किये जाने वाले अभिषेक, गीतनृत्य, प्रतिष्ठा, रथयात्रा आदि नैमित्तिक पूजा विधि कहलाती है।[5]

तीनों संध्याओं में की जाने वाली पूजा/आराधना उपरोक्त भेदों में ही गर्भित है। इन पूजाओं को समीचीन विधिपूर्वक करना ही विधि विधान, पूजा इज्या कहलाती है।[6] पूजा को आगमोक्त तरीके से करने पर ही वह समीचीन फल को देती है। इसके लिए ही विधान/अनुष्ठान का निर्देश किया गया है पंच परमेष्ठी और शास्त्र की वैभव से नाना प्रकार पूजा की जाती है वह पूजा विधान कहलाता है।[7] नियमपूर्वक, शास्त्राज्ञानुसार वांछित फल की आकंक्षा से पूज्य की आराधना करना अनुष्ठान है। अर्थात् धार्मिक कृत्यों, संस्कारों का सविधि प्रयोग अनुष्ठान कहलाता है।

अनुष्ठान पूर्वक पूजा को हम निम्न बिन्दुओं के आधार से जान सकते हैं– (1) शुद्धि (2) सकलीकरण (3) मांडना (4) पूजाविधि (5) जाप (6) हवन

(1) शुद्धि

पूजा विधि के लिये हमें सबसे पहले अंतरंग शुद्धि और बहिरंग शुद्धि करना चाहिए। चित्त के बुरे विचार दूर करना अंतरंग शुद्धि और विधिपूर्वक स्नान करने को बहिरंग शुद्धि कहते हैं। छने पानी से स्नान कर दातुन / कुल्ला आदि से मुखशुद्धि करके मुख पर वस्त्र लगाकर दूसरों से किसी प्रकार का संपर्क रखना चाहिए एवं स्वच्छ

उत्तरीय तथा अन्तरीय पहिनना चाहिए।[8] कार्य की अपेक्षा वस्त्र का चयन करना चाहिए। शांति कर्म के लिए श्वेत, विजय प्राप्ति के लिए श्याम, कल्याण की भावना के लिए रक्तवर्ण, भयकार्य के लिए हरित, धनादि की प्राप्ति के लिए पीत एवं सिद्धि के लिये पंचवर्ण के वस्त्र धारण करना चाहिए। ये वस्त्र खण्डित, वालित छिन्न एवं मलिन नहीं होना चाहिए। दोषपूर्ण वस्त्र पहनकर अनुष्ठान करने से दान पूजा तप होम और स्वाध्याय निष्फल होते हैं।[9]

(2) सकलीकरण

सकलीकरण पूर्वक जाप आदि करने का वर्णन आचार्य सोमदेव ने किया है किन्तु उसकी विधि नहीं बतलाई है। इसकी विधि का वर्णन आचार्य अमितगति ने किया है। इनमें जिन मंत्रों को बताया है वे मंत्र वैदिक सम्प्रदाय में भी पाये जाते हैं उनमे मात्र पंचपरमेष्ठीवाचक एक–एक पद जोड़ा गया है। सकलीकरण में सर्वप्रथम उत्तम मंत्र के द्वारा जल को अमृत रूप करके उससे जल, स्नान, मंत्र स्नान एवं व्रत स्नान करके अंतरंग एवं बाह्य शुद्धि करना चाहिए।[10] पूजन को नव स्थानों पर तिलक लगाना चाहिए। तिलक मुक्ति लक्ष्मी का आभूषण है। इसके बिना पूजक इन्द्र की पूजा निरर्थक होती है।[11] तिलक लगाने से शरीर शुद्ध हो जाता है दूसरे यह इन्द्र के आभूषण का प्रतीक भी है। मंत्रो से शरीर एवं हाथों को शुद्धकर बीज मंत्रों के द्वारा वाम हस्त की अंगुली से शिर आदि अंगों में पंच परमेष्ठी की स्थापना कर सकलीकरण करना चाहिए। अन्य जीव, अजीव कृत उपद्रव उत्पन्न न हो इसके लिए गूढ़ बीजाक्षरों के द्वारा पीले सरसों से दशों दिशाओं का बंधन करें इससे अनुष्ठान व क्षेत्र में व्यन्तर आदि क्षुद्र देवों एवं परकृत तंत्र मंत्र आदि का प्रभाव नहीं पड़ता है।[12] और हमारा अनुष्यन सानंद संपन्न होता है।

इन्द्र प्रतिष्ठा :– हमारी भक्तिपूजा/आराधना श्रेष्ठ हो इसलिए हम इन्द्र बनकर भगवान की पूजा करते हैं पूजा के पहले अंगन्यास कर 'मैं इन्द्र हूँ' ऐसी कल्पना करके कंकण, मुकुट मुद्रिका और यज्ञोपवीत आदि इन्द्रोचित आभूषण मंत्रों द्वारा धारण करें और मंत्रोचारण पूर्वक देव/इन्द्र की स्थापना करे और इन्द्रों जैसा आचरण करके पूजा करे। इन्द्र सोलह श्रृंगार/आभूषण सहित, अंगोपांग सहित, विनयवान, भक्तिवाला, समर्थ श्रद्धावान लोभरहित और मौन सहित होता है।[13] संकल्प बद्ध होने के लिए एवं उपद्रवों से स्वयं की एवं व्रतादि की रक्षा के लिए दाहिने हाथ में रक्षासूत्र (मौली) बंधना चाहिए। इसे यज्ञ दीक्षा एवं संकल्प सूत्र भी कहते हैं। इससे हम प्रतिज्ञाबद्ध होकर अनुष्ठान पर्यन्त नियमों का पालन करते हैं।[14] यदि स्त्रियाँ पूजा/अनुष्ठान करें तो स्नान, शुद्ध वस्त्र, चन्दन लेपन, सोलह आभूषण धारण कर पूजा करें। वह स्त्री, सती हो, शीलव्रत धारण करनेवाली हो। विनयगुण सहित एकाग्रचित्त एवं सम्यक्त्व से मंडित हो।

यज्ञोपवीत– यज्ञोपवीत का वर्णन जिनसेनाचार्य ने संस्कारों के विधान में किया है। पं. आशाधरजीने उपनयन संस्कार का तो वर्णन किया है, परंतु यज्ञोपवीत का वर्णन नहीं किया है। आचार्य देवसेनने भावसंग्रह में 'मैं इन्द्र हूँ' ऐसा संकल्प करके कंकण, मुकुट, मुद्रिका आदि आभूषणों के साथ यज्ञोपवीत धारण करने का उल्लेख किया है, अन्य श्रावकाचारों में यज्ञोपवीत का वर्णन नहीं मिलता है। प्रतिष्ठा पाठ में जो यज्ञोपवीत का उल्लेख मिलता है उसका अभिप्राय मात्र इतना है कि जब तक पूजा–पाठ जाप, हवन आदि विधान/अनुष्ठान किया जाता है तब तक संयमपूर्वक रहने के लिए मैं इस संकल्पसूत्र को धारण करता हूँ। इसे व्रत चिन्ह आदि अनेक प्रकार से श्री जिनसेनस्वामी ने इस प्रकार वर्णन किया है– (1) उपनीति संस्कार में बालक को यज्ञोपवीत धारण करने का विधान (2) जिन व्रती जनों के जितनी प्रतिमा हो उतने यज्ञोपवीत धारण करने का विधान (3) सर्वज्ञ देव की आज्ञा को प्रधान मानने वाले द्विज को मंत्रपूर्वक यज्ञोपवीत सूत्र धारण करना उसका व्रत चिन्ह है यह दो प्रकार

का होता है– (1) द्रव्यसूत्र– तीन लड़ी का यज्ञोपवीत द्रव्य सूत्र है (i) भावसूत्र– सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप भावात्मक तीन गुण वाला श्रावक धर्मरूप भावसूत्र होता है। अनुष्ठान की समस्त क्रियायें द्विजन्म ब्रह्मसूत्र / जनेऊ / यज्ञोपवीत धारी को ही करना चाहिए।[15] यह श्रावक का चिन्ह एवं रत्नत्रय का सूचक है। इससे ही श्रावक की संज्ञा होती है। यज्ञोपवीत रत्नत्रय की रक्षा का संकल्प है। यह हमें सदाचरण की प्रेरणा करता है। व्रतों को धारण कर ही अनुष्ठान प्रारंभ करना चाहिए।

मांडना– मांडना प्रतीकात्मक होता है यह नक्शा है। इससे उन स्थानों/विषयों का ज्ञान होता है जिससे पूजक का मन स्थिर रहता है और अपार प्रभावना होती है। जम्बूद्वीप, समवशरण, नंदीश्वर एवं तीनों लोकों की रचना रूप मांडना जिन मंदिर में बनाने से दुःखों की हानि मनोवांछित लक्ष्मी की प्राप्ति एवं महापुण्य होता है।[16]

(3) पूजा विधि

श्री समन्तभद्र स्वामी, श्री कार्तिकेय स्वामी, श्री जिनसेनाचार्य, आचार्य अमृतचंद्र आदि आचार्यों ने श्रावकाचार में पूजा का वर्णन तो किया है। किन्तु पूजा विधि का वर्णन नहीं किया इनके बाद सर्वप्रथम आचार्य सोमदेव ने 'यशस्तिलक चम्पू' में पूजा का सविधि वर्णन किया है आचार्य अमितगति, आचार्य वसुनंदी, आचार्य गुणभूषण, आचार्य जटासिंह नंदी, श्री देवसेन एवं पं. राजमल्ल आदि ने श्रावकाचार में पूजा के भेदों का वर्णन किया है। लाटी संहिता, उमास्वामी श्रावकाचार और धर्मसंग्रह श्रावकाचार में आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजन एवं विसर्जन रूप पंचोपचारी पूजा का वर्णन किया है। यशस्तिलक चम्पू में आचार्य सोमदेव ने पुष्पादिक में एवं जिनबिम्ब में जिनेन्द्र भगवान की स्थापना कर पूजा करने का उल्लेख किया है। जो पुष्पादिक में जिन भगवान की स्थापना कर पूजन की जाती है उसमें अरहंत और सिद्ध को मध्य में आचार्य को दक्षिण में उपाध्याय को पश्चिम में साधु का उत्तर में और पूर्व में सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र को क्रम से भोजपत्र, लकड़ी के पटिये, वस्त्र, शिलातल, रेत निर्मित, पृथ्वी आकाश और हृदय में स्थापित कर अष्टद्रव्य से देवशास्त्र गुरु एवं रत्नत्रय धर्म की पूजा कर दर्शन भक्ति, ज्ञानभक्ति, चारित्र भक्ति, पंच गुरुभक्ति, सिद्ध भक्ति, आचार्य भक्ति और शांति भक्ति करना चाहिए। इस प्रकार की पूजा को आचार्य वसुनंदी ने तदाकार और अतदाकार पूजा कहा है अतदाकार पूजा का (जिसमें अक्षत आदि में भगवान की स्थापना कर पूजा की जाती है) इस पंचम काल में निषेध किया है अतः तदाकार पूजा ही करना चाहिए (जिसमें जिनबिंब जिनेन्द्र भगवान की स्थापना की जाती है) जिनबिंब में जिनभगवान की स्थापना कर पूजन करने की छह प्रकार की विधि बतलाई हैं– पूजा विधि में ये छह क्रियायें मुख्य हैं। जिनके पूर्ण करने से पूजा पूर्ण होती है।

(1) अभिषेक (2) पूजन (3) स्तवन (4) पंच नमस्कार मंत्र जाप (5) ध्यान एवं (6) जिनवाणी स्तवन[17] इसी क्रम से पूजा करने का निर्देश दिया है।

(1) अभिषेक– रत्नकरण्ड श्रावकाचार, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पुरुषार्थसिद्धियुपाय, अमितगति श्रावकाचार लाटी संहिता, गुण भूषण श्रावकाचार, पूज्यपाद श्रावकाचार एवं रयणसार आदि श्रावकाचारों में अभिषेक का वर्णन नहीं किया है।

महापुराण, चारित्रसार, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार आदि अनेक श्रावकाचारों में अभिषेक/स्तवन का वर्णन तो है किंतु पंचामृत अभिषेक का वर्णन नहीं किया गया है। यशस्तिलक चम्पू, वसुनंदी श्रावकाचार, सागारधर्मामृत उमास्वामी श्रावकाचार एवं भावसंग्रह आदि श्रावकाचारों में पंचामृत अभिषेक का वर्णन है। इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि सोमदेव आचार्य के यशस्तिलक चम्पू में वर्णित पंचामृत अभिषेक का ही उक्त सभी आचार्यों

ने अनुसरण किया है इस विषय में पं. हीरालालजी का मत है कि सोमदेव सूरि ने श्वेताम्बर ग्रंथ पउमचरिउ का अनुसरण किया है। अभिषेक के समय चार कोणों पर कलश स्थापन किये जाते हैं उनमें चार समुद्रों की कल्पना की गई है। देव आगे के घृतवर समुद्र का जल लेकर भी अभिषेक किया है इस अभिप्राय से पाँच समुद्रों के पंचामृत से अभिषेक की परिकल्पना की गई हो। परंतु इन समुद्र का जल भी घी दूध नहीं जल ही है। पं. आशाधरजी ने चल प्रतिमा की प्रतिष्ठा के समय पंचामृत अभिषेक का वर्णन किया है जो प्रतिष्ठा के समय धातु या पाषाण की शुद्धि के लिये योग्य है किन्तु जिन प्रतिमा के पंचकल्याणक हो चुके हैं उन प्रतिमा के अभिषेक का प्रसंग ही नहीं आता है। सुमेरु पर्वत और पाण्डुक शिला की कल्पना कर जन्माभिषेक तो उचित ही नहीं है जलाभिषेक भी जन्माभिषेक की परिकल्पना से उचित नहीं है। इस प्रसंग पर पं. हीरालालजी का मानना है कि वायु से उड़कर प्रतिमा पर लगे रज कणों के प्रक्षालनार्थ जल से अभिषेक करना उचित है। यहाँ विचारणीय है कि अकृत्रिम जिनालयों में इन्द्र देवादि अभिषेक करते हैं। वहाँ रजकण कहाँ से आते हैं सौधर्म इन्द्र विदेह क्षेत्र के वैभव सहित साक्षात् जिनेन्द्र भगवान को छोड़कर नंदीश्वर द्वीप के अकृत्रिम जिनालयों में अभिषेक करने आते हैं। वहाँ भगवान के सामीप्य को प्राप्त कर पुण्य संचय करते हैं यशस्तिलक चम्पू में अपने पुण्य संचय के लिये अभिषेक करने का उल्लेख है। जिन अभिषेक का कुछ वर्णन यहाँ किया जा रहा है– अभिषेक की प्रतिज्ञा करके भगवान को पूर्वमुख विराजमान कर स्वयं उत्तरमुख करके खड़े होना चाहिए। पुण्य संचय, आत्मशुद्धि के भाव से पाप रूपी मैल के प्रक्षालन के लिए भगवान के अभिषेक करने रूप भाव शुद्धि करके चार कोणों पर चार कलश स्थापित करना चाहिए। अर्घ्य समर्पित करके जल से शुद्ध सिंहासन पर 'श्री हीं' लिखकर उस पर श्री देव (प्रतिमा) की स्थापना करके[18] शुद्ध प्रासुक जल से जिनेन्द्र भगवान का मंत्रोच्चारण पूर्वक अभिषेक करना चाहिए। यहाँ जन्माभिषेक नहीं चतुर्थाभिषेक किया जाता है, जन्माभिषेक में बालक की (तिलक काजल आदि) अन्य क्रियायें भी करनी पड़ती हैं जो प्रतिष्ठित बिंब में संभव नहीं है। यहाँ प्रतिष्ठित जिनबिंब का अभिषेक किया जाता है जिन अभिषेक जल को अपने मस्तक पर धारण कर अर्हन्त बिंब की पूजा करना चाहिए।

(2) पूजा– पूजा के विषय में पूज्य, पूजा, पूजक और पूजाफल इन चार बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान पूज्य हैं। जिनेन्द्र देव की अर्चना करना पूजा है। भव्य जीव पूजक और सांसारिक अभ्युदय एवं मोक्ष प्राप्ति पूजा का फल है। पूजा के मुख्य पांच अंग कहे गये हैं– (1) आह्वान (2) स्थापन (3) सन्निधीकरण (4) पूजन एवं (5) विसर्जन। पूजन करते समय पूज्य का आह्वान, स्थापन एवं सन्निधीकरण करके पूजा करें। पश्चात् विसर्जन एवं क्षमापन अवश्य करें।[20] पूजा के समय खड़े होने की दिशा का ध्यान रखना आवश्यक है। भगवान का मुख पूर्व की ओर हो तो पूजक उत्तरमुख और यदि भगवान उत्तरमुख विराजमान हो तो पूजक को पूर्व मुख होकर पूजा करना चाहिए। पूजा एवं अभिषेक के दूषणों का त्याग कर देना चाहिए। बाष्प, कास से पीड़ित और श्वास, श्लेष्मा करते हुए, आलस जंभाई लेते हुए अशुद्ध देह और अशुद्ध वस्त्र से पूजन करना ये पूजन के दूषण हैं और पाद संकोचना, या फैलाना, क्रोध करना, भृकुटी चढ़ाना, दूसरे को वर्णन करना मंद या तेज स्वर या वेग से जलधारा करना अभिषेक के दूषण है इन दूषणों से रहित होकर पूजन प्रारंभ करना चाहिए।[21] पूजन में अष्ट द्रव्य चढ़ाने का उद्देश्य ध्यान में होना चाहिए। जिससे भावविशुद्ध बनेंगे और सांसारिक सुख की बांछा नहीं रहेगी। जल चढ़ाते समय भावना भायें कि मैं कर्मरज की शांति के लिये भगवान को जल चढ़ाता हूँ। चन्दन– शारीरिक सुगंध एवं भवाताप से रहित होने को। अक्षत–अक्षयपद की प्राप्ति के लिए। पुष्प– काम विकार के विनाश के लिए दीप–मोहान्धकार के विनाश हेतु धूप–सौभाग्य की प्राप्ति के लिए एवं फल–

मोक्ष की प्राप्ति के लिए अष्ट द्रव्य से पूजा करता हूँ। छत्र, चँवर आदि से की गई पूजा मंगल देती है। पुष्पांजलि प्रदान करने से चन्द्र सूर्य के समान दीप्ति प्राप्त होती है, तीन धाराओं के द्वारा की गई पूजा सर्व कर्मों की शांति करने वाली है।

(3) स्तवन– पूजा के बाद जयमाला के रूप में भगवान के गुणों का स्तवन कर अत्यंत भक्ति पूर्वक नृत्य संगीत आदि के द्वारा अर्चना करना चाहिए।

(4) पंच नमस्कार मंत्र जाप– पूजन के पूर्व एवं अंत में पंच नमस्कार मंत्र की जाप करना चाहिए, जिससे भावों में स्थिरता रहती है।[18] ध्यान– चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं ध्यान रूपी आनंदामृत का पान करते श्वास वायु को बहुत धीरे से अंदर ले जाना और बहुत धीरे से बाहर निकलना चाहिए तथा समस्त अंगों का हलन–चलन एकदम बंद होना चाहिए। पाँचों इंद्रियाँ बाह्य व्यापार को छोड़कर आत्मस्थ हो जाती हैं और चित्त अंदर आत्मा में लीन हो जाता है आत्मा और श्रुतज्ञान ध्येय हैं। ध्यान में इन्हीं का चिंतन किया जाता है यहाँ पिण्डस्थ ध्यान– अपने शरीर का ध्यान/ पदस्थ ध्यान– पंचपरमेष्ठी एवं तीर्थंकरों के नाम/पदों का ध्यान। रूपस्थ ध्यान– अरहंत भगवान के स्वरूप का चिंतन और रूपातीत ध्यान– केवल ज्ञान, दर्शन स्वरूप सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

जिनवाणी स्तवन– अष्ट द्रव्यों से जिनवाणी/शास्त्र की पूजा करना, स्वाध्याय, पाठ, स्तुति एवं विनय आदि करना जिनवाणी स्तवन है।

(5) जाप– अनुष्ठान की सानंता निर्विघ्न समाप्ति के लिए णमोकार मंत्र का या अनुष्ठानानुसार यथायोग्य मंत्र का जाप करना चाहिए। यथार्थ विधि से सिद्ध चक्र नामक मंत्र का उद्धार करके या पंच परमेष्ठी यंत्र (सिद्धयंत्र या विनायक यंत्र) का सम्यक प्रकार शास्त्रानुसार पूजनकर उन यंत्रों के मंत्रों का संकल्प पूर्वक जाप करें। जिस यंत्र की पूजा करे उस यंत्र के गंध से मस्तक पर तिलक लगाकर सिद्ध शेषा (अशिका) लेकर मस्तक पर रखे पश्चात् स्वस्थ चित्त होकर अन्तमुहूर्त काल तक अपने देह में स्थित चिदानंद लक्षण स्वरूप अपनी आत्मा का ध्यान करें।[23] जाप से पाप नष्ट हो जाते हैं और कार्य सानंद सम्पन्न होता है अर्थात् आत्म कल्याण एवं अनुष्ठान की सफलता हेतु जाप करना चाहिए।[24] हवन– महापुराण में तीन अग्नियों को स्थापित कर आहूति करने का उल्लेख है किन्तु जाप मंत्र की दशांश आहूति करने का उल्लेख नहीं किया है दशांश आहूति का उल्लेख अमितगति श्रावकाचार में किया गया है। हवन के लिए भगवान के सामने तीन प्रकार की पुण्याग्नियाँ स्थापित करना चाहिए[25] ये तीनों महा अग्नियाँ तीर्थंकर, गणधर और सामान्य केवलि के अंतिम निर्वाण महोत्सव में पूजा का अंग बनकर पवित्रता को प्राप्त हुई है।[26] गार्हपत्य अग्नि आहवनीय अग्नि और दक्षिणाग्नि नाम से प्रसिद्ध इन अग्नियों की चौकोर गोल और त्रिकोण कुण्डों में स्थापना करना चाहिए। अग्नियाँ स्वतः पवित्र नहीं है और न ही देवता ही है। किन्तु अरहंत देव की दिव्यमूर्ति की पूजा के संबंध से ये अग्नियाँ पवित्र मानी गई हैं। पीठिका मंत्र, जाति मंत्र, निस्तारक मंत्र, ऋषिमंत्र, सुरेंद्र मंत्र, परमराजादि मंत्र एवं परमेष्ठी मंत्र यह मंत्र सर्व क्रियाओं में प्रयोग किये जाने वाले सामान्य मंत्र हैं। इसका सभी विधानों / अनुष्ठानों में उपयोग किया जाता है।[27]

तीर्थंकर, गणधर एवं सामान्य केवली के निर्वाण होने पर अंतिम संस्कार के समय जिन अग्नियों में पूजा के पश्चात बचे हुए द्रव्यांश से तथा पवित्र द्रव्यों के द्वारा उत्तम फल की प्राप्ति के लिए सप्त पीठिकादि मंत्र पूर्वक उक्त तीन अग्नियों में आहुति देना चाहिए। शांति कर्म आदि के अंत में जापमंत्र की दशांश आहुति कर हवन करते हुए समस्त विश्व के कल्याण, सुखी जीवन एवं शांति की मंगल कामना करना चाहिए।[29]

हवन में साकल्य (धूप) शुद्ध अर्थात् मर्यादित होना चाहिए। जिससे हिंसा से बचा जा सके। हवन में धूप का प्रयोग वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रूप से किया जाता है। आध्यात्मिक हमारा मुख्य लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। अर्थात् औदारिक शरीर से परमौदारिक एवं सूक्ष्म आत्म तत्त्व की प्राप्ति करना है। और राग–द्वेष विषयविकार रूपी कर्मों को प्रक्षालन या कर्म दहन कर कर्ममल दूर करना / हवन में प्रयुक्त धूप अग्नि का सानिध्य पाकर स्थूल से सूक्ष्मता को प्राप्त करती है।

हवन से उठने वाले धुआं से वायुमंडल स्वच्छ पवित्र एवं विषैले कीटाणु रहित हो जाता है। हवन सामग्री में सुगंधित द्रव्य कपूर घी मिश्रित होता है जिसके जलने से वायुमंडल में प्रदूषण फैलने वाले दोषों एवं अशुभ वर्गणा नष्ट हो जाती है हवन में उत्पन्न धुआँ में चेचक, रक्त विकार, गांत्ररोग, निमोनिया, हैजा, तपेदित आदि रोगों के रोगाणुओं को नष्ट करने की क्षमता होती है।

मंत्रों के सामूहिक सस्वर उच्चारण से आत्मिक शक्ति प्रकट होती है। सभी क्रियायें मंत्रपूर्वक उच्चारण पूर्वक ही करना चाहिए क्योंकि मंत्र विहीन क्रियाओं से कार्यसिद्धि नहीं होती है।[28]

ध्वज– जिस मंदिर में ध्वज नहीं होता उस मंदिर में किया गया पूजन हवन और जाप सभी विलुप्त हो जाते हैं।[30] अतः मंदिर पर ध्वजा अवश्य होना चाहिए। अनुष्ठान के पूर्व ध्वज स्थापना मुख्य कर्त्तव्य होता है इससे अनुष्ठान के शुभाशुभ का ज्ञान एवं सफलता की सूचना मिलती है और अनुष्ठान का फल भी मिलता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा– पंचकल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एक महानुष्ठान है जिसके माध्यम से प्रतिमा में अंगन्यास, मंत्रन्यास, तिलकदान, नेत्रोन्मीलन सूरिमंत्र आदि मंत्र संस्कारों के द्वारा गुणों का आरोपण किया जाता है। आचार्य वसुनंदी श्रावकाचार के अलावा अन्य श्रावकाचारों में मंदिर / प्रतिमा बनवाने का प्रतिष्ठा कराने का निर्देश तो किया है किन्तु प्रतिष्ठा विधि का उल्लेख नहीं है पंचकल्याणक महानुष्ठान होते हुए भी आचार्य वसुनंदी ने उसे अनुष्ठान नहीं जिनबिंब प्रतिष्ठा कहा है।

षट्खण्डागम आदि ग्रंथों में अनेक आचार्यों ने पूजन एवं अष्ट द्रव्यों का कथन किया है किन्तु पूजा विधि का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य सोमदेव ने ही किया है उसके बाद सभी श्रावकाचारों ने उनका ही अनुसरण करके उनके विषय का ही विस्तार किया है। आचार्य सोमदेव प्रणीत पूजा पद्धति पर वैदिक पूजा पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। जो निम्न कथन से पुष्ट होता है–

गृहस्थ धर्म दो प्रकार हैं– (1) लौकिक धर्म– लोक रीति के अनुसार। (2) पारलौकिक धर्म– आगम के अनुसार। लौकिक धर्म में वेद अथवा अन्य शास्त्र प्रमाण रहे इसमें हानि नहीं है क्योंकि जैनधर्मानुयायियों को वह लौकिक धर्म मान्य है जिसमें सम्यक्त्व की हानि एवं व्रतों में दूषण नहीं लगता है। आचार्य सोमदेव के इस कथन से जैन पूजन वैदिक पूजा का मिश्रण सम्भव प्रतीत होता है फिर भी सम्यक्दर्शन की कुशलता एवं सुखद जीवन के लिए श्रावक को पूजा आदि षट आवश्यक नित्य करते रहना चाहिए। आचार्यों ने श्रावकाचार में इसकी विशेष व्याख्या करके हमारा उपकार किया है। नित्य पूजा एवं नैमित्तिक पूजा के माध्यम से अपने भावों को विशुद्ध बनाना ही श्रावकाचार का मूल उद्देश्य है। नित्य पूजा वह है जो हम प्रतिदिनि करते हैं किंतु नैमित्तिक पूजा / महापूजा / विधान / अनुष्ठान है। निर्विघ्न पूजा की समाप्ति के लिए दान और सम्मान आदि उचित उपायों के द्वारा विधर्मियों को अनुकूल और साधर्मियों को स्वाधीन कर लेना चाहिए।[31] विघ्नों के आने से मन स्थिर नहीं रहता है। मन की स्थिरता के बिना सभी कार्य व्यर्थ होते हैं। अतः विघ्नों को दूर करके ही पूजा / विधान / प्रतिष्ठादि कार्य करना चाहिए। अनुष्ठान की सभी क्रियायें मंत्रोच्चारण पूर्वक ही करना चाहिए क्योंकि मंत्रहीन क्रियायें

कार्यसिद्धि में समर्थ नहीं होती।[32] प्रत्येक क्रिया का समर्थ, मुहूर्त शुद्धि का विशेष ध्यान होना सर्वोपरि है समय से पूर्व और समय के बाद की गई क्रियायें समुचित फल प्रदान नहीं करतीं। जिन क्रियाओं से सम्यक्त्व की हानि एवं व्रतों में दूषण नहीं लगता वह क्रिया करनी चाहिए। पूजा / विधान / अनुष्ठान के लिए मंदिर मूर्ति आदि बनवाने[33] का आचार्यों ने निर्देश किया है। क्योंकि पंचमकाल में प्रतिमा / मंदिर के आधार बिना आत्मशुद्धि नहीं हो सकती।[34] श्रावकाचार में श्रावकों को मंदिर / प्रतिमा बनवाने प्रतिष्ठा करवाने का अचिंत्य फल कहा है।[35] श्रावक को अपने आवश्यकों का पालन करते हुए प्रतिमा / मंदिर बनवाते रहना चाहिए। यह मंदिर और प्रतिमा वास्तुशास्त्रानुसार ही हों तभी कल्याणकारी होती है। श्रावक संसार में धर्म कार्य पूजा / विधान / प्रतिष्ठा के अनुष्ठान कर सुखी जीवन व्यतीत करता है और इनके प्रभाव से अनंत सुख प्राप्त करने की भावना करता है। इस उद्देश्य से आचार्यों ने जैन आगम साहित्य ग्रन्थों में पूजन / अनुष्ठान एवं मंदिर / प्रतिमा और ग्रह वास्तु का सांगोपांग वर्णन किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक 119
2. अमितगति श्रावकाचार–12
3. धर्म संग्रह श्रावकाचार–85
4. महापुराण– 26.27
5. सागार धर्मामृत 29
6. महापुराण– 34
7. वसुनंदी श्रावकाचार
8. भव्यमार्गोपदेशक उपासकाध्ययन 346–47
9. उमास्वामी श्रावकाचार– 138–39
10. भावसंग्रह (संस्कृत) 29–30
11. उमास्वामी श्रावकाचार 120–122
12. भावसंग्रह (संस्कृत) 34
13. भव्यमार्गोपदेशक उपासकाध्ययन 348
14. महापुराण – 84
15. महापुराण– 42
16. वसुनंदी श्रावकाचार 201–202
17. यशस्तिलक चम्पू 880
18. यशस्तिलक चम्पू 502
19. भावसंग्रह (संस्कृत) 35–38
20. उमास्वामी श्रावकाचार 146–148
21. व्रतोद्योतन श्रावकाचार 462–463
22. भावसंग्रह– 53.56
23. अमितगति श्रावकाचार 39
24. वसुनंदी श्रावकाचार 214
25. महापुराण 71
26. महापुराण– 83.84.88
27. महापुराण 315
28. महापुराण 218–219
29. महापुराण 73
30. उमास्वामी श्रावकाचार 161–107
31. सागार धर्मामृत 33
32. महापुराण– 219–220
33. यशस्तिलक चम्पू 446
34 सागार धर्मामृत
35. रत्नमाला 26

34

जिणागम - साहिच्च - सुरही

डॉ. उदयचन्द्र जैन

भार हिज्ज – साहिच्चहस्स परंपरा अच्चंत पुरा आसी। सो अक्खर–विण्णाण–अवेक्खाए विसालो हिमगिरिटव विराडो वित्थिण्णो वि। तस्स अत्थ–गरिमा गारव–मंडिया विविह–अलंकरण – विहूसिया सद्दत्थ–गुण–संहिदा। सो गुरुतरो महत्तरो वि।

साहिच्चो साहिच्चो होदि। जो सम्मं हिदं कुणेदि सव्वाणं च। जो सद्–गुणं पडिणएदि सव्वेसिं सो साहिच्चो। तत्तो वि परंपराए दिट्ठिणा सो अत्थि दुविहा– (1) वेदिग–साहिच्चो (2) समण–साहिच्चो। समण–साहिच्चे जिण–साहिच्चो बुद्ध–साहिच्चो। तेसुं चं समण–साहिच्चस्स जिणागम–मण्ण–साहिच्चं च संक्खित्त–विवरणं अहं आवस्सगो महाजोगेण सह।

जिण परंपरा – साहिच्चो – जिण–परंपरा अइ पुरा परंपरा अत्थि। आदि पुरु–आदि–तित्थयरो पढमो तित्थयरो इमाए परंपराए।

अंतिम–तित्थयरो अत्थि बड्ढमाणो महावीरो चदुर्विस – तित्थयरो।

अरहंत–भासियत्थं गणहर देवेहिं गंथियं सम्मं।

तित्थयरा अत्थं भासइ, गणहरा णिउणं सुत्तं गंथंति। सुत्त–बद्धं कुव्वेंति।

तित्थयराणं अत्थस्स अत्थागमो अत्थि, गणहराणं सुत्ता भासेंति अणंतरागमो आगमोत्थि अत्थो वि सुत्तो वि। सो अत्थागमो य सुत्तागमो य।

पागिद–कव्व–साहिच्चो – कालखंडस्स दिट्ठिणा पागिद–भासा–साहिच्चो अत्थि–

(1) पुराकालो [ई.पू.600 100ई पेरंतं]

(2) मज्झ–कालो [ईसपू–101–800 पेरंतं]

(3) आहुणिग–कालो [ई 800–1600 तहा 1600–2100ई पेरंतं]

भासा– विसिट्ठ – दिट्ठिणा –

(1) अद्धभागही कव्व–साहिच्चो।

(2) सोरसेणी भासाकव्वसाहिच्चो।

(3) महारट्ठी–पागिद–भासा कव्व–साहिच्चो।

(4) णाडग–साहिच्चो।

(5) मागही साहिच्चो।

(6) पेसाची भासा साहिच्चो।

(7) अपभंस–साहिच्चो।

साहिच्चिग–विहा–दिट्ठिणा पागिद–साहिच्चो–

(1) आगम–साहिच्चो (2) सिलालेही साहिच्चो।

(3) पबंध – साहिच्चो। (4) खंड–कव्व–साहिच्चो।

(5) चरित्त–कव्व–साहिच्चो। (6) मुत्तग–कव्व–साहिच्चो।

(7) सद्दग – साहिच्चो (8) कहा–साहिच्चो।

(9) इदर–कव्व–साहिच्चो।

आगम–साहिच्चो– १. अद्धमागही आगम–साहिच्चो।

२. सोरसेणी आगम – साहिच्चो।

अद्ध–मागही आगम – साहिच्चो – दुवालसंगे गणिपिडगेतं जहा– (१) आयारो (२) सूयगडो (३) ठाणं (४) समवायो (५) विवाह–पण्णत्ती (६) णायाधम्म–कहाओ (७) उवासग:दसाओ (८) अंतगड–दसाओ (९) अणुत्तरोव–वाइय दसाओ (१०) पण्ह–वागरणाइं (११) विवागसुयो (१२) दिट्ठिवायो।

ते सव्वे आगमा अंग–आगमा वीर–णिव्वाणस्स बीअ– सइं पच्छा अंगोवंग छेय– मूलसुत्ताणिं संण्णं पत्तेंति।

उवंग– सुत्ताणि– (१) ओव–वा इत्ति (२) रायपसणिज्जो (३) जीवाजीवाभिगमो (४) पण्णावणो (५)जंबूदीवपण्णत्ती (६) चंदपण्णत्ती (७) सुज्जपण्णत्ती (८) णिरयावली (९) कप्पावतंसिगा (१०) पुप्फिगा (११) पुप्फचूलिगा।

मूलसुत्ताणि– (१) आवसगो (२) दसवेयालिगो (३) उत्तरज्झयणाणि (४) णंदी (५) अणुजोगो (६) ओहणिज्जुती।

छेद–सुत्ताणि – (१) णिसीहो (२) महाणिसीहो (३) वृहदकप्पो (४) ववहारो (५) दसासुयक्खंधो (६) पंचकप्पो।

दस–पइण्णा– (१) आउर–पच्चक्खाणं (२) भत्त–परिण्णा (३) तंदुल–वेचारिगो (४) चंदवेज्झगो (५) देविंदत्थवो (६) गणिविज्जा (७) महापच्चक्खाणं (८) चउसरणं (९) वीरत्थवो (१०) संथारगो।

उत्त– आगमाणं भासा अद्धमागही भासा अत्थि। इमाए भासाए किं चिंहं।

१. पढमाए पायो 'ए' से महावीरे णायपुत्ते।

२. पंचभीए आतो, आतु – देवातो जिणालयातो आगच्छति।

३. सत्तमी ए अंसि णाणंसि दंसणंसि चरियंसि पउत्ते अणे मोक्खमग्गं पत्ते।

४. किरिया पढम पुरिस–एगवयणे – भणति, गच्छति।

५. भूयकाले – इंसु भणिंसु, गच्छिंसु कंदिंसु।

किं अत्थि अद्धमागही आगम– मूलम्हि –

(१) तच्चविण्णाणं, जीवादि–तच्च–विवेयणं वित्थिण्णो त्थि सव्वेसुं आगमेसुं।

(२) जीवण मुल्लाणं सम्पुण्ण–साहणं विचारणं। जीवण–जम्म–कला वि।

(३) एतिज्झ–पुराण–पुरिसाणं–चउसट्ठि – पुराण–पुरिसाणं उल्लेहो।

(४) जीव–जंतूणं विवेयणं ण केवलं सामण्ण–रूवे अत्थि, अवित्तु भोतिग–जीव–विण्णाणस्स अवेक्खा वण्णओ।

(५) विण्णाणस्स सव्वे पक्खा संति अस्सिं मूले रसायणं, आउविण्णाणं जीव–विण्णाणं खणण–संवदाणं

विवेयणं। वणप्फदी–विण्णाणस्स इये आगमा महत्त्व–पुण्णा।

(६) आचार–विचार–दिट्ठिणा इमे आगमा उक्किट्ठा संति। आचार–सुद्धी वियार–सुद्धी अप्पसुद्धी इंदियणिग्गहो मणणोगो वयजोगो कायजोगो।

(७) इच्छा परिणामो, वासणा–णियंतणं मुसाविरमणो। अहिंसाधम्मो संजमधम्मो तवो धम्मो चारित्तधम्मो। धम्मो दया विसुद्धो। रयणत्तय– धम्मो, वत्थुसहावो धम्मो वि।

(८) संपुण्ण–सक्किईए इमे आगमा पमाणिगा वि। इमे सव्वे सव्वण्हु–वयणं पुण्ण–पमाणिगा परोप्पर–विरोह–रहिया सव्व–मण्णा सव्व–पुज्जा सव्व–समादरिणिज्जा वि।

(९) इमे अत्थि धम्म–अत्थ–काम–मोक्खस्स पमुह–गंथा। गंथं तुट्टेति छिंदेंति राग–दोस–मोहत्था सिंखिलाणं च।

(१०) णाण–विण्णाणस्स इमे आगमा दो सहस्स छस्सए (२६०० मासं पच्छा) वि अणुसंधाण–दिट्ठिणा महच्चपुण्णा। अणेग–सोह–पबंध–जुत्ता एगेग–आगमो।

सोरसेणी आगम–साहिच्चो–

पुरा. साहिच्चो–धक्खंडागमो, कसायपाहुडो, धवला–महाधवलादी।

कुन्दकुंदस्स साहिच्चो – पाहुड–साहिच्चो (१) पंचत्थि कायो (२) समयसारो (३) पवयणसारो (४) णियमसारो (५) वारसाणुवेहा (६) अट्ठ–पाहुडो (७) दसभत्ती।

(ग) जइ–उसहस्स साहिच्चो (१) तिलोयपण्णत्ती– जिणसिद्धंत – पुराण – पुरिसाणं इइवुच्च महापबंधो महाहियार–विभूस–गंथो।

(घ) वट्टकेरस्स मूलाचारो – समण–समणीणं च आचार चूला गंथो।

(च) सिव–आइरियस्स भगवई आराहणाए अत्थि सल्लेहणा समाहिमरणं संथारं च।

(छ) कत्तिगेयाणु.वेक्खास्स सामिकुमार–कत्तिगेयो अत्थि। जस्सिं अत्थि अध्धुवासरण–संसार–एगत्तादि–भावणा। वारहभावना अज्झप्पप्पहाण भावना।

(ज) आइरिय–सिद्धंत चक्कवट्टी णेमिचंदस्स साहिच्चो। – (१) गोम्मटसारो (२) तिलोयसारो (३) लद्धिसारो (४) खवणासारो (५) दव्वसंगहो।

(झ) सिद्धसेणस्स रयणा 'सम्मइ–सुत्तं'

(ट) णयचक्को अत्थि माइल्ल धवलस्स।

(ठ) धम्मरसायणं सावयपण्णती, सावयधम्मविही, समत्तसत्तरि उवासयज्झयणं।

पागिद– भासा– एवंधाणि – पागिद–भाषाए अणेगाणि पबंधाणि संति। पबंधेसु महाकव्वाणि खंडकव्वाणि चरित्रकव्वाणि कहा–सट्टग–णाडगा थुई–थवो छंद–कव्वाणु सासणाणि विहिहाणि कव्वाणि।

पागिद–कव्वाणं वग्गीकरणं–

(क) सत्थीय महाकव्वं (ख) खंडकव्वं (ग) चरित्त–कव्वं च।

सव्वे अत्थि सग्ग–बद्धाणि कव्वाणि। कहावंधत्तजुत्तर छंदोबद्धता समाहि या।

महाकव्वं	पबंध खंडकव्वं	चरित्तकव्वं
सेडबंधो (पवरसेणो) (रावणवहो)	कंसवहो (रामवाणिवादो)	पउमचरिय (विमलसूरि)
गउडवहो (वाकपतिराज)	उसाणिरुद्धो (रामवाणिवादो)	सुपासणाहचरियं (लक्खमणगणि)

दुवासय.कव्वं (कुमारपाल–हेमचंद)
लीलावई (कोउहलो)
सिरिचिंध–कव्वं (वररूचि)

सुदंसण–चरियं (देवेन्द्रसूरि)
कुम्मापुत्तचारियं (अणंतहंसो)
चउपणमहापुरिसचरियं (सीलंकारियो)
जंबूचरियं (गुणपालमुणि)
रयणचूडरायचरियं (नेमिचंदसूरि)
सिरिपास–णाहचरियं (गुणचंद गणि
महावीरचारियं (गुणचंदसूरि)

(ख) चंपूकव्वं – कुवलयमाला (उद्योतवसूरि) / (ग) मुत्तग कव्वं (१) वज्जालगं (२) गाहासत्तसई (हाल)

अण्ण–कव्वं – वेरग्ग–सदगं, वेरग्ग–रसायणं, धम्मरसायणं (पद्मनंदि)

सट्टग– कप्पूरमंजदी (राजशेखर) चंदलेहा (रुददासो) आणंदसुंदरी। (सिंगारमंजरी) रंभा मंजरी (नयचंद)

पागिद–कहा – आगम–कहा – आयारो, सूयगडो, णायाधम्मकहाओ (संपुण्ण–कहागंथो) उवासगदसाओ, विवागसुत्त, उत्तरज्झयणं, तिलोयपण्णत्ती (चउविंसइतित्थपराणं कहा।

पागिदआगम–टीगा–कहा – भगवईए – पासणाहस्स कहा महावीरस्स घडणक्कमो। दसवे यालिय–चुण्णी, सूयगड–चुण्णी, णिसीहचुण्णी, ववहारभासा, कप्पसुत्ताइ–कहा। उत्तरज्झयणस्स

पागिदस्स मूलकहागंथाणि– (१) तरंगवई (णेमिचंदगणि) (२) वसुदेवहिंडी (संघदास) (३) समराइच्च–कहा (हरि भद्दो) (४) धुतक्खाण–कहा (हरिभद्दसूरि) (५) णिव्वाणलीलावईकहा (६) कहाकोसपकरणं (जिणेसरसूरि) (७) संवेग–रंगसाला (जिणेवर) (८) नाणपंचमी (महेससूरि) (९) कहारयण–कोस (देवभद्दसूरि) (१०) णम्मदासुंदरी (महिंदसूरी) कुमारपालपडिबोहो (सोमप्रभ) (११) अक्खाणमणि–कोस (णेमिचंद) (१२) जिणदक्खाणं (सुमउसूरि) (१३) सिरिसिरबालकहा (वज्रसेण) सस्सोरयणलेहदो। (१४) रयणसेहर–णिवकहा (जिणहस्सगणी) (१५) महिबालकहा (वीरदेवगणी)।

अण्णाणि कव्वाणि अत्थि। पागिद–पेंगलं। छंदाणुसासणं छंदसत्थो अलंकारदयणो वि। अहिहाणराजिंदकोसो, पाइयसद्द महण्णवो जिणिंदसिद्दंतकोसो जैनलक्षणावली वि।

पागिद–वागरणं :– पागिद–लक्खणं (चंड), पागिद–पगासो (वररुचि)। पागिदवागरणं (हेमचंद) पागिद सद्दाणुसासणं(तिविक्कमदेव), सड–भासाचंदिगा (लच्छीधरो), पागिद–रूवावतारो पागिद–सव्वस्सो (माकण्डेयो) सिद्धंत–कोमुदी (रयणचंदमुणि) कालूकोमुदी तुलसीमंजरी। हेमपागिदवागरणं, सोरसेणी पागिदवागरणं बालरूप पागिदरागरणं, वागरणप्पवेसो पागिदरयणोदयो। (उदयचन्द्र जैन)

सव्वे अत्थि इगवीससदी भासा विदस्स रयणा डॉ. उदयचन्द्र जैन, उदयपुर)

पागिद–हिन्दी सद्दकोसो (दोभाग) आ.णाणासायर वृहद्संस्कृतश्लोको तीन भाग) उदयचंदस्स रयणा कोसरूपे अत्थि। पुव्वे कि कुंदकुंदसद्द–कोसो अत्थि।

अहुणा पागिद–खेत्ते कज्जसीला अत्थि– पाइय–सद्द–महण्णवं परिच्छा आगम–कोसो, णिज्जुति कोओ, समागयो। डॉ. कमलचंद सोगाणी, सुदर्शनलाल, कोमलचंद (वाराणसी), प्रेमसुमन जैन उदयपुर, सत्यरंजन बनर्जी (कलकत्ता), आचार्य विद्यानंद (दिल्ली), राजाराम दिल्ली, उदयचंद उदयपुर, पहुदि– मणीसी अस्सिं पागिद–विगास–वरणम्हि पजण्णसीला अत्थि।

35

जैन दार्शनिकों की भाषा (शब्द) दृष्टि

प्रो. वृषभ प्रसाद जैन *(वर्धा)*

इस आलेख में मेरा उद्देश्य जैन–दार्शनिकों की शब्द सम्बन्धी मान्यताओं को अर्थात् जैन दार्शनिकों के अनुसार परिभाष्य शब्द के स्वरूप को प्रस्तुत करना है। शब्द के दार्शनिक पक्ष पर विचार करने से पहले यह अत्यधिक आवश्यक हो जाता है कि हम जैन दार्शनिकों के द्वारा की गई शब्द की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करें और उनके द्वारा द्योतित शब्द की मान्यताओं को प्रस्तुत करें। इस दृष्टि से हम सर्वप्रथम सर्वार्थसिद्धि की शब्द की परिभाषा को लेते हैं– ''शब्दत इति शब्दः, शब्दनं शब्दः'' अर्थात् जो शब्द रूप होता है, वह शब्द है, शब्दन शब्द है। 'सर्वार्थसिद्धि' की इस व्युत्पत्तिपरक परिभाषा में दो बातें विशिष्ट रूप से सामने आती हैं– पहली यह कि शब्द रूपी अर्थात् रूपवाला होता है और दूसरी यह कि शब्द ध्वनि रूप क्रियाधर्म वाला होता है।

इसके बाद हम 'राजवार्तिक' में व्यक्त शब्द की परिभाषा को लेते हैं– ''शपत्यर्थमाह्वयति प्रत्याययति, शप्यते येन शपनमात्रं वा शब्दः'' अर्थात् जो अर्थ का आह्वाहन करता है, अर्थ को कहता है, जिसके द्वारा अर्थ कहा जाता है अथवा शपन मात्र शब्द है। राजवार्तिक की यह परिभाषा शब्द की अर्थपरक परिभाषा है अर्थात् शब्द के उद्देश्य सम्प्रेष्य को मूल में रखकर दी गई है। इस परिभाषा से तीन बातें सामने उभर कर आती हैं– पहली कि शब्द का उद्देश्य अर्थ को/अभिप्राय को सम्प्रेषित करना है, दूसरी कि सम्प्रेषण रूप क्रिया में शब्द कर्म–साधन के रूप में है, तीसरी कि शब्द अपनी पर्याय में ध्वनि–क्रिया–धर्म वाला है।

जैनदर्शन के ग्रन्थों में शब्द के पर्याय के रूप में ''नाम'' पारिभाषिक का भी व्यवहार है। जिसके द्वारा अर्थ जाना जाये अथवा अर्थ को अभिमुख करें, वह नाम कहलाता है। 'धवला' में इस नाम को ही परिभाषित करते हुए लिखा है– जिस नाम की वाचक रूप से प्रवृत्ति में जो अर्थ अवलम्बन होता है, वह नाम निबन्धन है, क्योंकि उसके बिना नाम की प्रवृत्ति सम्भव नहीं है।

जैनदर्शन की एक और महत्व की मान्यता यह है कि शब्द पुद्गल की पर्याय है। पंचास्तिकाय में वर्णित है कि शब्द स्कन्धजन्य है। स्कन्ध परमाणुदल का संघात होता है और इन स्कन्धों के आपस में स्पर्शित होने से/टकराने से शब्द उत्पन्न होता है, इस

प्रकार यह शब्द नियत रूप से उत्पन्न होनेवाला, उत्पाद्य है अर्थात् पुद्गल की पर्याय है। शब्द की यह उत्पत्ति पुगल स्कन्धों के संघात और भेद से होती है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने शब्दों को पुद्गल का कार्य मानते हुए उन्हें पुद्गलों में उसी प्रकार आश्रित माना है, जैसे कि कोई भी कार्य–द्रव्य कारण–द्रव्य में आश्रित रहता है।

जैन दार्शनिकों के अनुसार पुद्गल द्रव्य का सामान्य लक्षण है– रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से युक्त होना। पुद्गल के दो भेद हैं–

1. परमाणु 2. स्कन्ध

'पंचास्तिकाय' में परमाणुओं के सम्बन्ध में कहा गया है– ''सब स्कन्धों का जो अन्तिम खण्ड है अर्थात् जिनका दूसरा खण्ड नहीं हो सकता, उसे परमाणु जानो। वह परमाणु नित्य है, शब्द रूप नहीं है, एक प्रदेशी है, अविभागी है और मूर्तिक है'' ''आधुनिक विज्ञान ने परमाणु के भी जो प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि खण्ड किए हैं, उससे भी जैनदर्शन की मान्यता पर कोई आघात नहीं होता, क्योंकि जैनदर्शन के अनुसार वह परमाणु है, जो अखण्ड्य हो अर्थात् यदि न्यूट्रोन से भी कोई छोटा खण्ड हो जाए, तो हम न्यूट्रोन को अखण्ड्य नहीं कह पाएंगे। हाँ, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान ज्ञान के अनुसार प्रोटोन अखण्डय है, पर वस्तुतः वह है तो नहीं।'' जिसमें एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श गुण होते हैं, जो शब्द की उत्पत्ति में कारण तो हैं, परन्तु स्वयं शब्द–रूप नहीं है, स्कन्ध से पृथक् है, उसे परमाणु जानो। यद्यपि नित्य तथापि स्कन्धों के टूटने से इसकी उत्पत्ति होती है अर्थात् अनेक परमाणुओं का समूह रूप स्कन्ध जब विघिटत होता है, तब विघटित होते–होते उसका अन्त परमाणु रूपों में होता है, इस दृष्टि से परमाणुओं की भी उत्पत्ति मानी गयी है, परन्तु द्रव्य रूप से तो परमाणु नित्य ही है। यह स्कन्धों का कारण भी है और स्कन्धों के भेद से उत्पन्न होने के कारण कार्य भी। अनेक परमाणुओं के बन्ध से जो द्रव्य तैयार होता है, उसे स्कन्ध कहते हैं। हम जो कुछ देखते हैं, वह सब स्कन्ध ही है, धूप में जो कण उड़ते हुए दिखाई देते हैं, वे भी स्कन्ध ही हैं। पुद्गल की परमाणु अवस्था स्वाभाविक पर्याय है और स्कन्ध अवस्था विभाव पर्याय। प्रो. एस.एन. दास गुप्त के अनुसार जैनदर्शन में पुद्गल एक भौतिक पदार्थ है और उसे परिमाण–विशेष से युक्त माना गया है। इस पुद्गल की उत्पत्ति परमाणुओं से बताई गई है। ये परमाणु जैनदर्शन में परिमाण–रहित एवं नित्य माने गए हैं।

जैनदर्शन में शब्द को उत्पाद्य मानने के कारण जो अन्य दर्शनों में इसकी नित्यता स्वीकारी गई है, वह भी खण्डित हो जाती है। मुख्य रूप से यह आकाश का गुण न होकर पुद्गल द्रव्य का ही विकार है। केवल एक परमाणु या केवल एक स्कन्ध शब्द को उत्पन्न नहीं कर सकता। इससे सिद्ध होता है कि केवल एक परमाणु शब्द–रूप नहीं होता है। जैनों का कहना है कि जैसे वैशेषिक स्वीकारते हैं कि शब्द आकाश का गुण होता है– को सही मान लिया जाए, तो मूर्तिक कर्णेन्द्रिय के द्वारा शब्द का ग्रहण नहीं हो सकता है, क्योंकि अमूर्तिक आकाश का गुण भी अमूर्तिक ही होगा और अमूर्तिक को मूर्तिक इन्द्रिय जान नहीं सकती। आज वैज्ञानिक भी इस बात को सिद्ध करते हैं कि शब्द वैकुअम रिक्त स्थान में संचरित नहीं होता, यदि शब्द आकाश के द्वारा उत्पाद्य होता या आकाश का गुण होता तो वह वैकुअम– शून्य अर्थात् रिक्त–स्थान में भी सुना जाता, क्योंकि आकाश तो सर्वत्र विद्यमान है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में यह सामान्य अनुभव है कि शब्द का मूल संघर्षण में है। उदाहरणार्थ– स्वर–उत्पादन के समय में स्वरित्र के कांटे, घंटी, पिआनो की तंत्रियाँ और बाँसुरी की वायु शब्द आदि सभी कम्पायमान स्थिति में होते हैं। शब्द टकराता भी है, क्योंकि कुए में आवाज करने से प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। आज के विज्ञान ने अपने रेडियो, टी.वी.और ग्रामोफोन आदि यंत्रों से शब्द को पकड़कर और अपने अभीप्सित

स्थान में भेजकर उसकी पौद्गलिकता प्रयोग से सिद्ध कर दी है। यह शब्द पुद्गल के द्वारा ग्रहण किया जाता है, पुद्गल से ही धारण किया जाता है, पुद्गलों से रुकता है, पुद्गलों को रोकता है, पुद्गल कान आदि के पर्दों को फाड़ता है और पौद्गलिक वातावरण में अनुकम्पन पैदा करता है, अतः शब्द पौद्गलिक है। स्कन्धों के परस्पर संयोग, संघर्षण और विभाग से शब्द उत्पन्न होता है, जिह्वा और तालु आदि के संयोग से नानाप्रकार के भाषात्मक प्रायोगिक शब्द उत्पन्न होते हैं। इसके उत्पादक उपादान कारण और स्थूल निमित्त कारण दोनों ही पौद्गलिक हैं। इसप्रकार विज्ञान भी शब्द को आकाश का गुण नहीं मानता। अतः शब्द मूर्तिक और उत्पाद्य है।

शब्द को द्रव्य मानने के हेतुओं को स्पष्ट करते हुए आ. प्रभाचन्द्र का कथन है कि चूँकि तीव्र शब्द के श्रवण से कान के पर्दे का फटना देखा जाता है। इससे शब्द का एक स्पर्श गुण वाला द्रव्य होना सिद्ध होता है। विदारण का कारण अभिघात है और वह किसी स्पर्शवान् द्रव्य का ही हो सकता है। शब्द सहचरित वायु के अभिघात से वाधिर्य की उत्पत्ति उन्हें नहीं जँचती। इसी प्रकार शब्द में अल्पत्व, महत्व परिमाण भी देखने में आता है। यथा ''अल्पोशब्दः'' ''महान् शब्दः'' था ''एकः शब्दः'' ''द्वौ शब्दौ'' आदि प्रयोगों में शब्द में संख्या–गुण उपलब्ध होता है।

प्रतिकूल दिशा से आने वाली वायु द्वारा शब्द का अभिघात देखने में आता है। इससे शब्द में वायु–संयोग गुण की उपलब्धि प्रमाणित होती है। अतः इन गुणों का आश्रय होने से शब्द द्रव्य रूप है।

गुणाश्रय होने के अतिरिक्त क्रियाश्रय होने से भी शब्द द्रव्यात्मक है। वैशैषिक शब्द को गुण मानने के कारण उसमें क्रिया को स्वीकार नहीं करते। अतः दूरस्थ शब्द के ग्रहणार्थ उन्हें वीचि–तरंग न्याय से अथवा कदम्ब–मुकुल न्याय से शब्द के शब्दान्तर की उत्पत्ति माननी पड़ती है, परन्तु जैनों को शब्द को द्रव्य मानने के कारण उसमें क्रिया मानना सुतरां अभीष्ट है। इससे जैनों ने नैयायिकों के शब्दज शब्द के सिद्धान्त को अनावश्यक कहा है

जैनदर्शन में अन्य द्रव्यों के समान ही शब्द को भी सामान्य विशेषात्मक माना गया है। सभी शब्दों में अनुगत रहने वाला उसका रूप शब्दत्व सामान्यात्मक है। शंख शब्द, घंटा शब्द, पशु शब्द, नारी शब्द, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि उसके विशेषात्मक रूप हैं। शब्द की यह सामान्य विशेषात्मकता जैनदर्शन के अनुसार उसकी पौद्गलिकता का ही प्रमाण है।

शब्द केवल शक्ति नहीं है, किन्तु शक्तिमान पुद्गलद्रव्य स्कन्ध है, जो वायु द्वारा देशान्तर को जाता हुआ आसपास के वातावरण को झनकाता जाता है। यन्त्रों से इसकी गति बढ़ाई जा सकती है और उसकी सूक्ष्म लहर की सुदूर देश से पकड़ा जा सकता है। वक्ता के तालु आदि के संयोग से उत्पन्न हुआ एक शब्द मुख से बाहर निकलते ही चारों ओर के वातावरण को उसी शब्द रूप में कर देता है। वह स्वयंभी नियत दिशा में जाता है और जाते–जाते शब्द से शब्द, शब्द से शब्द उत्पन्न करता जाता है। शब्द के जाने का अर्थ पर्याय वाले स्कन्ध का जाना हैऔर शब्द की उत्पत्ति का भी अर्थ आसपास के स्कन्धों में शब्द–पर्याय का उत्पन्न होना है। तात्पर्य यह है कि शब्द स्वयं द्रव्य की पर्याय है और इस पर्याय का आधार है पुद्गल स्कन्ध। पर्याय रूप शब्द केवल शक्ति नहीं है, क्योंकि शक्ति निराधार नहीं होती, उसका कोई न कोई आधार अवश्य होता है और इसका आधार है–पुद्गल द्रव्य।

इसके साथ ही साथ जैनदर्शन की यह भी मान्यता रही है कि सभी शब्द वास्तव में क्रियावाची ही हैं। जातिवाचक अश्वादि शब्द भी क्रियावाचक है, क्योंकि आशु अर्थात् शीघ्र गमन करने वाला अश्व कहा जाता है। गुण वाचक शुक्ल, नील आदि शब्द भी क्रियावाचक हैं, क्योंकि शुचि अर्थात् पवित्र होना रूप क्रिया से शुक्ल तथा नील रंगने रूप क्रिया से नील कहा जाता है। देवदत्त आदि यदृच्छा शब्द भी क्रियावाची है, क्योंकि देव ही

जिस पुरुष को देवे, ऐसे क्रिया रूप अर्थ को धारता हुआ देवदत्त है। इसी प्रकार यज्ञदत्त भी क्रियावाची है। दण्डी, विषाणी आदि संयोगद्रव्यवाची या समवायद्रव्यवाची शब्द भी क्रियावाची ही हैं, क्योंकि दण्ड जिसके पास वर्त रहा है, वह दण्डी और सींग जिसके वर्त रहे हैं, वह विषाणी कहा जाता है। जाति शब्दादि रूप पाँच प्रकार के शब्दों की प्रवृत्ति तो व्यवहार मात्र से होती है।

शब्द के श्रवण और संचार सम्बन्धी नियम

वक्ता बोलने के पूर्व भाषा–परमाणुओं को ग्रहण करता है, भाषा के रूप में उनका परिणमन करता है और अन्त में उनका उत्सर्जन करता है। उत्सर्जन के द्वारा बाहर निकले हुए भाषा–पुद्गल आकाश में फैलते हैं। वक्ता का प्रयत्न यदि मन्द है, तो वे पुद्गल अभिन्न रहकर ''जल–तरंग'' न्यास से असंख्य योजन तक फैलकर शक्तिहीन हो जाते हैं और यदि वक्ता का प्रयत्न तीव्र होता है, तो वे भिन्न होकर दूसरे असंख्य स्कन्धों को ग्रहण करते–करते अति–सूक्ष्म काल में लोकान्त तक चले जाते हैं।

जब दो स्कन्धों के संघर्षो से कोई एक शब्द उत्पन्न होता है, तो वह आस–पास के स्कन्धों को अपनी शक्ति के अनुसार शब्दायमान कर देता है अर्थात उसके निमित्त से उन स्कन्धों में भी शब्दपर्याय उत्पन्न हो जाती है। जैसे– जलाशय में एक कंकड डालने पर जो प्रथम लहर उत्पन्न होती है, वह अपनी गति/शक्ति से पास के जल को क्रमशः तरंगित करती जाती है और यह वीचि–तरंग न्याय किसी न किसी रूप में बहुत दूर तक प्रारंभ रहता है।

शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति प्रदेश से उछलकर दशों दिशाओं में जाते हुए उत्कृष्ट रूप से लोक के अन्त भाग तक जाते हैं– सब नहीं जाते हैं, थोड़े ही जाते हैं। यथा– शब्द पर्याय से परिणत हुए प्रदेश में अनन्त पुद्गल अवस्थित रहते हैं। (उससे लगे हुए) दूसरे आकाश प्रदेश में उससे अनन्तगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं। तीसरे आकाश प्रदेश में उससे लगे हुए अनन्त गुणें हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं। चौथे आकाश प्रदेश में उससे अनन्तगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते है। इस तरह वे अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा बात–वलय पर्यन्त सब दिशाओं में उत्तरोत्तर एक–एक प्रदेश के प्रति अनन्तगुणे हीन होते हुए जाते हैं। ये सब शब्द–पुद्गल एक समय में ही लोक के अन्त तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है, किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द पुद्गल कम से कम दो समय लेकर अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा लोक के अन्त को प्राप्त होते हैं। इस तरह प्रत्येक समय में शब्द पर्याय से परिणत हुए पुद्गलों के गमन और अवस्थान का कथन करना चाहिए।

हम जो शब्द सुनते हैं, वह वक्ता का मूल शब्द नहीं सुन पाते। वक्ता की शब्द–श्रेणियाँ–आकाश प्रदेश की पंक्तियों में फैलती हैं। ये श्रेणियां वक्ता के पूर्व–पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊँची और नीची, छहों दिशाओं में हैं।

हम शब्द की सम–श्रेणी में होते हैं, तो मिश्र शब्द को सुनते हैं अर्थात वक्ता द्वारा उच्चरित शब्द–द्रव्यों और उनके द्वारा वासित शब्द–द्रव्यों को सुनते हैं।

यदि हम विश्रेणी (विदिशा) में होते हैं, तो केवल वासित शब्द ही सुन पाते हैं। (प्रज्ञापना, पद 11)

मनुष्य भाषागत समश्रेणिरूप शब्द को यदि सुनता है, तो मिश्र को ही सुनता है और उच्छ्रेणि को प्राप्त हुए शब्द को यदि सुनता है, तो नियम से परघात के द्वारा सुनता है। समश्रेणि द्वारा आते हुए शब्द पुद्गलों को परघात और अपरघात रूप से सुनता है। यथा–यदि परघात नहीं है, तो बाण के समान ऋजुमति से कर्णछिद्र में प्रविष्ट हुए शब्द–पुद्गलों को सुनता है, क्योंकि समश्रेणि से कर्णछिद्र में प्रविष्ट हुए शब्द पुद्गलों का श्रवण उपलब्ध होता है। उच्छ्रेणि को प्राप्त हुए शब्द पुनः शराघात के द्वारा ही सुने जाते हैं, अन्यथा उनका सुनना नहीं बन सकता है।

जैनदर्शन में भाषात्मक शब्द औरअभाषात्मक शब्द के भेद से शब्द के प्रथमतः दो भेद किये गये हैं।

अभाषात्मक शब्द पुनः प्रायोगिक वैस्रसिक के भेद से दो प्रकार का माना गया है। अभाषात्मक प्रायोगिक प्रकार का शब्द भी तत, वितत, घन और सौषिर के भेद से फिर चार प्रकार का होता है।

'धवला' में शब्द के छः भेद स्वीकारे गये हैं– तत, वितत, घन, सौबिर, घोष और भाषा।

'सर्वार्थसिद्धि' के अनुसार मेघादि के निमित्त से जो शब्द उत्पन्न होते हैं, वे वैस्रसिक है। चमड़े से मढ़े हुए पुष्कर, भेरी और दर्द से जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत है। तांत वाले वीणा और सुघोष आदि से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह वितत है। ताल, घण्टा और लालन आदि के ताड़ से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह घन है तथा बाँसुरी और शंख आदि फूँकने से जो शब्द उत्पन्न होता है,वह सौषिर है।

'धवला' में वर्णित शब्द–भेदों की व्याख्या में 'सर्वार्थसिद्धि' की अपेक्षा कुछ भिन्नता मिलती है, जैसे–वीणा के शब्द को सर्वार्थसिद्धि में वितत कहा गया है, जबकि धवला और पंचास्तिकाय में यह तत माना गया है। भेरी का शब्द सर्वार्थसिद्धि में तत है, जबकि धवला में यह वितत माना गया है।

सर्वार्थसिद्धिकार ने भाषात्मक शब्द के भी दो भेद किए हैं– 1. साक्षर या अक्षरात्मक, 2. अनक्षरात्मक। 'सर्वार्थसिद्धि' के अनुसार जिससे उनके सातिशय ज्ञान का पता चलता है, ऐसे द्विइन्द्रिक आदि जीवों के शब्द अनक्षरात्मक हैं। 'धवला' की अनक्षरात्मक शब्द की परिभाषा में कुछ अन्तर है, इसके अनुसार–द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मुख से उत्पन्न हुई भाषा तथा बालक और मूक संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की भाषा भी अनक्षरात्मक भाषा है। 'पंचास्तिकाय' में दिव्यध्वनिरूप शब्दों को भी अनक्षरात्मक माना गया है।

अक्षरात्मक शब्द को परिभाषित करते हुए सर्वार्थसिद्धिकार कहते हैं कि जिसमें शास्त्र रचे जाते हैं, जिसमें आर्यों और म्लेच्छों का व्यवहार चलता है, ऐसे संस्कृत शब्द और इसके विपरीत शब्द, ये सब आक्षर शब्द हैं।

'धवलाकार' ने उपधान से रहित इन्द्रियों वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों की भाषा को अक्षरात्मक कहा है।

'द्रव्यसंग्रह' की टीका में अक्षरात्मक शब्द की और व्याख्या करते हुए कहा गया है कि अक्षरात्मक भाषा संस्कृत, प्राकृत और उनके अपभ्रंश रूप पैशाची आदि भाषाओं के भेद से आर्य व म्लेच्छ के व्यवहार के कारण अनेक प्रकार की है।

अक्षरात्मक शब्द की उपर्युक्त तीनों परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि वह ध्वनि समूह, जिसमें अक्षरीय भेद किया जा सके और जो सम्प्रेषण रूप व्यवहार में हेतु है, अक्षरात्मक शब्द है।

भाषा–व्यवहार की दृष्टि से अक्षरात्मक शब्द के भी 'भगवती–आराधना' में नौ भेद किये गए हैं– आमंत्रणी, आज्ञापनी, याचनी, प्रश्नभाषा, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, इच्छानुलोमा, संशयवचन, अनक्षरवचन।

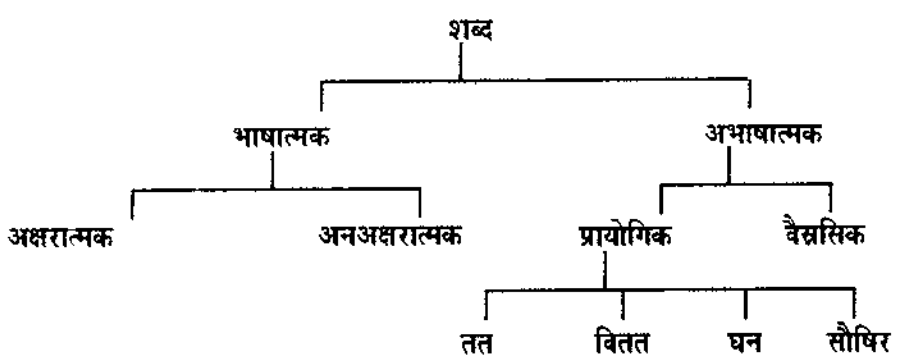

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

जैन दार्शनिक शब्द और अर्थ में वाचक–वाच्य सम्बन्ध कहते हैं। परीक्षा–मुख में वर्णित है कि शब्द और अर्थ में वाचक–वाच्य शक्ति है, उसमें संकेत होने से अर्थात् इस शब्द का वाच्य यह अर्थ है, ऐसा ज्ञान हो जाने से शब्द आदि से पदार्थों का ज्ञान होता है। शब्द और अर्थ में जब कोई सम्बन्ध नहीं होता, तो शब्द अर्थ का वाचक कैसे हो? इस प्रश्न का उत्तर कषायपाहुणकार देते हैं कि "जिस प्रकार से प्रमाण का अर्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि वह अर्थ का वाचक हो जाता है। प्रमाण और अर्थ के स्वभाव से ही ग्राहक और ग्राह्य का सम्बन्ध है, तो शब्द और अर्थ में भी स्वभाव से ही वाचक और वाच्य सम्बन्ध क्यो नहीं मान लेते?" और यदि शब्दार्थ में स्वभावतः ही वाच्य–वाचक भाव है, तब फिर पुरुष के या जीव के उच्चारण के प्रयत्न की क्या आवश्यकता? यदि स्वभाव से ही प्रमाण और अर्थ में सम्बन्ध होता, तो इन्द्रिय–व्यापार की व प्रकाश की आवश्यकता क्यों कर पड़ती? अतः प्रमाण और अर्थ की भांति ही शब्द में भी अर्थ–प्रतिपादन की शक्ति समझनी चाहिए, अथवा शब्द और अर्थ का सम्बन्ध कृत्रिम है अर्थात् यह सम्बन्ध के द्वारा किया हुआ है, अतः पुरुष के व्यापार की आवश्यकता होती है। अतः शब्द और अर्थ में वाच्य–वाचक भाव सम्बन्ध है, कषायपाहुण की भी यही मान्यता है।

जैन दार्शनिकों की एक मान्यता यह भी है कि भिन्न–भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। 'सर्वार्थसिद्धि' में कहा गया है कि यदि शब्दों में भेद है, तो अर्थों में भी अवश्य होना चाहिए। राजवार्तिक के अनुसार शब्द का भेद होने पर अर्थ अर्थात् वाच्य पदार्थ का भेद आवश्यक है। राजवार्तिक के अनुसार जितने शब्द हैं, उतने ही अर्थ हैं। जैन दार्शनिक यह भी कहते हैं कि शब्द का अर्थ देशकालानुसार परिवेश को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए, क्योंकि एक समय में और एक परिस्थिति में एक शब्द का अर्थ कुछ होता है और परिस्थिति या समय के बदलते ही उस शब्द का अर्थ भी बदल जाता है।

36

JAINISM AND HUMAN RIGHTS

Proff. Dr. Bhagchandra Jain Bhaskar

Understanding religion in perspective of humanistic approach has been an object of intellectual inquiry since inception. Religion, in fact, is a main source of encouragement to all who share in spirituality of enlightened teachers and their vision of humanity as one global family and the earth as one homeland. This humanitarian concept created awareness in the society particularly among the under privileged and down trodden groups or classes for protection and development. Several national and international instruments, such as Human Rites of 1948 came forward aginst torture, cruelty, inhuman or degrading treatment or punishment. The developed countries consider the political and civil rights as the human rights but the developing countries regard the cultural, social and economical rights as the basic which are considered by them as Human Rights.

The objective of the present essay is to highlight the conspicuous feature and discerning appreciation of Jainism in general and to follow the principles of Human Rights in particular. It will also give a glimpse of its positive contribution to human life concerned with the comprehension of rich heritage of social, cultural, religious, spiritual and human values. Its antiquity, esoteric philosophy and spirituality, ritualistic aspects in practice, literature, language and culture will manifest its contribution to the human values

An Antiquity of Jainism

Jainism is one of the most ancient religions based on non-violent and humanitarian approach towards all beings. It is an indigenous religion originated and developed on Indian soil with a profound progressive attitude and judicial understanding and philosophical indispensable necessities of the time. Jinas and Tirthankaras who conquered the senses and worldly desires and attained the perfect knowledge and eternal happiness through observing the right asceticism for welfare of all animate. They are

the builders of the ford, which leads across the ocean of suffering. They taught moral causation stating that have a humanitarian attitude and exhaust the bad actions of past by servere practices and asceticism. The only persons who can be helpful advisors in this respect are those who have reached to a stage of heroic moral perfection. Their religion is called Jainism and its followers are called Jainas. In early period they were called Sramanas (Ascetics) and their tradition is named as Sramanic tradition.

Samana which means- 1) equanimity, 2) *Samana* which means self-control, and 3) *Sramana* which means strive. There is no spiritual improvement without persistent and sincere efforts in the right direction. This has been mentioned in the Pali Tripitaka and its commentaries at length. Jain asceticism is not in fact a self-torturing religion, but it is the religion of penance rested on right faith, right knowledge and right conduct (Ratnatraya) which is the path of purification and emancipation from all karmas. The etymology of word "Tapa" itsef means self-mortification through right actions. Non-violence along with chastity was its fundamental characteristic based on asceticism from the very start. It is not only associated with Tirthankara Mahavira or Nigantha Nataputta but his predecessors Parswanatha and Rsabhadeva also.

The term "Jainism" itself connotes the meaning of asceticism. It is derived from "Jina" meaning conqueror of senses, the spiritual victor, and an honorific, similar to Buddha, by which its multiple propagators are known as Jainas. In fact, Jainism has been in existence with Vedic religion as independent religion since inception. It also co-existed with Buddhism and its historical part in India. Therefore, its interaction between them finds ample references to in the early literature like *Rgveda, Atharvaveda, Samhitas, Upanisadas, Puranas* and *Pali, Prakrit* and *Buddhist* Sanskrit, literature.

Jainism as a Religion and Human Rites

Jainism is a Dharma, synonymous with the English word Religion that combinedly connotes as religion is to impose binding duties and required observances on its adherents. Hundreds of definitions of Dharma and Religion have been made in different perspectives. I need not go into them. As regards the Jain tradition, it has two broad meanings: one is generic in usage and the other, technical and specific to the use of term. Dharma in technical sense is the basis for dynamism in life that helps in our movement or motion. It is opposed to Adharma, stillness or rest. No other system of thought in India has conceived these two terms in such a fashion as in Jain system. It is possible that these two terms may signify the moral connotations of life with its movement and death.

The generic term *Dharma* has two levels of meaning: one is metaphysical and the other one is ethical and moral. All the definitions are related to each other with different aspects. Acarya Kundakunda, for instance, defined the Dharma in several ways: *Vatthusahavo dhammo, Rayannatayam ca dhammo, Carittam khalu dhammo, khamadidasaviho Bhavo dhammo* and so on. These definitions are associated with right faith, right knowledge, and right conduct, which are called Ratnatraya. The

Ratnatrayas constitute together the path of emancipation from all Karmas or Moksa. The religion cannot be observed without Ratnatraya. Here the observation of ten kinds of religion becomes essential in Jain tradition. Ksama (forbearance), Mardava (humility), Arjava (uprightness), Saucha desirelessnes, *Satya* (truthfulness), Samyama (self-discipline), *Tapa* (self-mortification), *Tyaga* (renunciation), *Akincanya* (poverty), and *Brahmacarya* (celibacy) (Tattvarthasutra, 9.6; Thananga, 10.16 etc.).

This is the generic meaning of *Dharma* indicating the metaphysical, ethical and moral attitude to human values standpoint (*Niscayanaya*). Any one could achieve this goal by one's own efforts. Non-possession, non-violence and vegetarianism have their roots in such efforts. This is the humanistic approach to the goal of life. The religion in Jaina *Sramana* cultural system is of two types: one is pertaining to individual, and the other one is concerned with the society. Individualistic religion is meant for spiritual aggrandizement and pleasure of temporal and next world of all beings whereas the other one confines to the prosperity of the society or community for mundane gratification and nation as well. It is of view that the caste system depends on one's deeds (*Kammana jati*) and not on birth. *Maitri* (friendship), *Karuna* (compassion), *Mudita* or *Pramoda* (sympathetic joy), and *Madhyasthabhava* (impartiality) are the cultivation of the social emotions.

Ecology and Spirituality and Human Rites

The environmental protection in modern times of industrialization has become a serious concern. The indiscriminate exploitation of natural resources is increasing day by day. The global ecological crisis in fact cannot be solved until spiritual relationship is established between humanity as a whole and its natural environment. Jainism has been the staunch protector of nature since inception of the Jain faith. The religion of nature, Jainism paves the way to understand nature's utility and the essential nature of plants, worms, animals and all sorts of creatures that have their own importance for maintining ecological balance. Jainism therefore says that the function of souls is to help one another (*Parasparopagraho Jivanam*, Tattvarthasutra, 5.21). This principle is conncected to the whole of life. It includes humans and other creature. The plant, animal, and human populations are merely part of the landscape. For Jainism, the landscape itself lives and breaths and merits protection.

Jain ecology is based on spirituality and equality. Each life form, plant, or animal, has an inherent worth and each must be respected. Within Jainism, the term for ecology might be *Sarvodayavada*, or the concern for lifting up all life forms, as articulated by Samantabhadra (third c.A.D.), the prominent Jain philosopher. Acarya Jinasena explained the same view of social equality by saying that the entire human world is one because of the interconnectedness of different aspects of the human community (*Manushyajatirekaiva, Adipurana, 38.45*). Seeing other people as connected with oneself develops the spiritual perspective through which all life takes on sanctity that can and must be protected by observing the principles of ecology. The real task of religion consists in removing bitterness between people, between races, between religions, and between nations. The nature of religion has been discussed in Jain scriptures in various ways in the form of Non-violence (Ahimsa). That *Ahima*

can be summarized: Aspire for yourself. Do not aspire for others. This is the fundamental principal of Jainism (Samana Suttam, Gatha, 24).

Jainism holds that the entire world, including palnts, trees, birds, animals, water, and so forth, is possessed of life. It is our prime duty to protect all this. We are to treat others, as we want ourselves to be treated, and this refers not only to other people but also to the entirety of our planet. One is therefore expected to respect the land and its natural beauty. Jainism does so philosophically by accepting the principle of the interdependent existence of nature and animals.

Ecology sees the individual as interconnected with both nature and the fabric of society. Ecological theory considers the community the supra-organism, the complex social organism. Therefore, the Jain tradition instructs the Jain laity to keep the community very pure and pious. They are supposed not to indulge in obnoxious habits (*Vyasanas*), which make life disastrous. A Jain should be a strict vegetarian. He should not indulge in professions related to violence, such as dealing in weapons. Jain laymen also practice the twelve types of Vratas, which assist us in eliminating corruption from society and in purifying ourselves in the process.

Nonviolence, the humanistic element is based on the principles of equality and equanimity as applied in society. Nonviolence still may allow for the theory of caste, but one which is based on one's own deeds and not on one's birth. Jainism tries to shape our attitude toward nature by prescribing humane and nonviolent approaches to everyday behavior. Jainism inspires its followers to safeguard what in contemporary discourse would be called the ecological perspective. Jainas even today practice these principles and religious traditions prescribed for the protection of nature. Through its philosophy, its ascetic practices, and in its narrative arts and architecture, Jainism and its leaders have made efforts to create the society dedicated to love for all creatures.

Judicial Process and Anekantvada

Conceptual crisis arises in the society. The Universe is the composite of groups consisting of adverse pairs like knowledge and ignorance, pleasure and sorrow, life and death and so on. Life depends on such adverse groups. All the groups have their own interests, which create clashes and conflicts in thinking among themselves. Religion is supposed to pacify these clashes through co-existence on socialistic pattern of society. The co-existence will not remain without relativity. Access to justice makes the judicial role pivotal to constitutional functionalism. It is the basic to the implementation of every human rite. This responsibility is undertaken by the philosophy of Anekantavada in Jainism.

Jain philosophy is based on the nature of reality, which is considered through Non-absolutism or Many-fold Aspects (Anekantavada). According this view, reality possesses infinite characteristics, which cannot be perceived or known at once by any ordinary man. Different people think about different aspects of the same reality and therefore their partial findings are contradictory to one another. Hence they indulge in debates claiming that each of them was completely true. The Jain phi-

losophers thought over this conflict and tried to reveal the whole truth. They established the theory of Non-absolutistic standpoint (Anekantavada) with its two wings, *Nayavada* and *Syadvada*. Proper understanding of the co-existence of mutually opposing groups through these principles rescues one from conflicts. Mutual co-operation is the Law of Nature (*Parasparopagraho Jivanam, Tattvartha Sutra, 5.21)*

Nayavada (the theory of partial truth) is an integral part of the conception of Anekantavada, which is essential to conceive the sole nature of reality. It provides the scope for acceptance of different viewpoints on the basis that each reveals the partial truth about an object. It is, as the matter of fact, the way of approach and observation which is an imperative necessity to understand of one's different interests and inclinations in different lights on the basis that there could be the valid truth in each of them, and therefore requires their proper value and impartial estimation. *Naya* investigates analytically the particular standpoint of the problem in all respects in the context of the entire reality. But if anything is treated as the complete truth, it is not *Naya*, but *Durnaya* or *Nayabhasa* or *Kunaya*. For instance, "It is" is *Naya*, and "It is and is only" is *Durnaya*, while "It is relatively (*Syat*)" is an example of *Syadvada*.

Syadvada investigates them into the constant and comprehensive synthesis. The prefix "Syat" in the *Syadvada* represents existence of these characteristics, which though not perceived at the moment, are present in reality. The word "*Syat*" (Siya in Prakrit) is an indeclinable and stands for multiplicity or multiple character (Anekanta). It reveals certainty regarding any problem and not merely the possibility or probability. It is unique contribution of Jainism to Indian philosophy. There is the word *Kathancit* in Sanskrit literature, which is used as the substitute for "Syat" by Jainism as well as non-Jain philosophers. In English it may be translated with the word "Relatively". *Syat* is conncected with relative expression about the nature of reality. It makes an effort to respect other doctrines by warning us against allowing the use of "*Eva*" or "only" to proceed beynd its prescribed limits and penetrates the truth patiently and non-violently. It is an humble attitude of tolerance and justice and to pay respect for other's views and stand point mean the same, both beings and non-being can exist together. The theory of Relativity, which is also supported by Einstein, is practically accepted by all as the perfect mathematical theory in the scientific world.

In the pursuit of truth, Anekantavada is the foremost important theory of Jainism which pacifies the internal clashes of individual and society at national and international level. Truth is not any man's monopoly. It is universal and objective. The Jain philosophers and the seers from times immemorial have striven to reach the highest truth through the means of reason and intuition. It is not the only philosophical conception but it is an instrument to protect the human rites of personal liberty and social justice. Anekantavada pacifies the gulf of conceptual conflicts and strives to establish the peaceful atmosphere at even global level.

Jain Social Ethics and Human Rights

Although the Universal Declaration of Human Rights was passed after the Second World War, there has not been any end to war nor to violation of human rights. There have been a number of conflicts across the world due to this or that reason. Human beings have known terror since the time immemorial. Lightening, floods, earthquakes, social injustice, poverty, inhuman treatment, religious mania and so on caused terror. If one follows the way of humanity and spirituality, the terrorism will never arise. The pre-historic discovered on one hand the true nature of the elements and he evolved arrangments the other hand to protect himself against such terror. The observation of true nature of religion and spirituality is one of the non-violent ways and means which may solve the basic social problems. Jainism did it through its social observations.

Samyama or self-restraint is the basis of Jainism. It is seen in the various vows, disciplines, codes of conduct and other doctrines propounded by Jainacaryas. Modesty, discipline, compassion, charity and other such good qualities are essence of Jainism and Jainism is to have a Right faith (*Samyagdarsana*) as its foundation. Right faith means right vision. Self-confidence, faith, trust and fidelity are its ingredients. Without realizing the self, it is aimless wandering in the undiscovered caves of fallacious reasoning.

The Fundamental Human Rites and Jainism

Jainism observed the fundamental human rites by observing the householdership or domestic life. This aspect may be divided into two stages. The first is the commencement stage termed as *Pakshitka Shravaka* and the second one is the superior stage termed as *Naishthika Sharvaka*. The Householder (*Sravaka* or *Sramanopasaka*)is one who listens the *Dahrma* with full faith from *Acarayas* and *Paramesthis*. He is the one whose sins flow away from him (*sravanti yasya papani*). He is also called *Agari* or *Sagari* because he stays in the house. He prepares himself gradually and steadily to renounce the world with right faith by observing the rules prescribed and then fulfils the responsibilities for the welfare of the family, ascetics, society, nation and mankind. The *Upasakadasanga*, *Sravakprajnapti*, *Ratnakarandasravakacara*, *Vasunandi*, *Sravakacara*, *Sagaradharmamritas*, and so many other Jain texts explained much on the characteristics of laity.

Some of the important attributes of the householder may be mentioned as follows :- observation of non-violence, compassion, legitimate earning, hospitality, refraining from unnecessary criticism of Government, keeping good company, paying respect to parents, service of people, observing religious preaching, firm in conduct, right character, gratefulness, generosity, being afraid of sin, meditation, celibacy, no food at night, refusal of food with life, giving up possessions, honesty, appreciating conduct, life and activities of spiritually advanced people, avoiding expenditures exceeding income and so on. Such rules make life pleasant. These attributes consider the ecology an indispensable part of spirituality and life as well. Possessed of such qualities the votary will reform not only himself but also his society. The spir-

itual status of the Householder is decided on his performance as *Jaghanya, Madhyama*, and *Utkrasta* or *Paksika, Naisthika* and *Sadhaka*. These are the different categories of religious observation which protect the human rites of the individual liberty and social responsibilities. Of these the, the observance of the duties of Paksika Shrava keeps more importance in terms of Human Rights.

i) Paksika Sravaka and Human Rites

The observance of *Paksika Shravaka* is in fact a Jain way of life. Accordingly, *Paksika Sravaka* is he who has an inclination (*Paksa*) towards *Ahimsa*. This is the first spiritual status of the Jain laity in which he first takes the vow with right faith not to eat meat, not to drink alcohol or wine and not to relish honey or any of the five kinds of figs containing souls. These are called *Mulagunas*. Then he desists from injury, falsehood, stealing, unchastity, and attachment to wealth. The *Paksika Sravaka* also takes the vow not to indulge in seven types of obnoxious habits (*Vyasanas*), which make the life disastrous. They are gambling and betting, meat-eating, alcoholic drink, prostitution, hunting, stealing and sexual intercourse with another's wife or husband. These are the addictions, which make a hell of an addict's life. Addiction is the deep muddy pit overgrown with enticing vegetation and verdure. Addictions create social disturbances, fear and destrucion. Religion diverts their destructive power to the constructive side. The ordinary Jain layman should also not be indulged in violence-carrying professions. *Asadhara* enumerated fifteen types of such professions (*Karmadhana*) in the *Sagardharmamrta* (v.21-23): I) livelihood from charcoal (*Angarakarman*), 2) livelihood from destroying plants (*Vana-karman*), 3) livelihood from carts (*Sakatakarman*), 4) livelihood from transport fees (*Bhataka-karman*), 5) livelihood from hewing and digging (*Sphotakarma*), 6) trade in animal by-products (*Danta-vanjijya*), 7) trade in *lakh* and similar substances (*Laksa-vanjijya*), 8) trade in alcohol and forbidden foodstuffs (*Rasa-vanjiya*), 9) trade in men land animals (*Klesa-vanijya*), 10) trade in destructive articles (*Visa-vanijya*), 11) work involving milling (*Yantra-pidana*), 12) work involving multilation *(Nirlanchana*), 13) work involving the use of fire (*Davagni-dana*), 14) work involving the use of water (*Sarahsosana*), and 15) work involving breeding and rearing (*Asati-posana*).

The licit earning sources (*Nyayoparjita*), according to Jensen, are agriculture (*Krsi*), study teaching and clerical occupation (*Masi*), art or craft profession (*Silpa*), trade (*Vanjijya*), military occupation (*Asi*), practice of medicine (*Vidya*), of course, by the pursuit of the profession should be positively in the pure way. These observations create communal harmony and peace in society and in the nation.

Vegetarian diet and Human Rites

I could not find any impressive reference where the advocacy for vegetarian diet has been made. Jainism did it by including into fundamental duties of the layman. It stressed more and more on vegetarian diet since inception. According to it, the object of man's food is not just to fill his stomach, to maintain health or to satisfy his taste but to properly develop his mind, character and spirituality too. Our intake of

food is closely related with our thinking, character and deeds. There is high truth in ancient saying that the kind of food you eat determines the kind of man you are. The taste of the man in different types of food reflects his behavior and character. In fact, it is an indicator of one's innermost self. Meat eating is totally against human nature. Jain thinkers discussed the subject at length in their works about its demerits. Modern physiologists also hold that human body and meat are contraries. The very constitution of man does not warrant it. Man's habit of taking meat is not natural. It is the result or perverted taste, which becomes a sort of addiction. As such it should be completely discarded.

Our food should contain all those ingredients, which produce energy, health and heat. Our food should have proteins, sugar, vitamins, minerals and fats in adequate quantities and right proportions so that good quality of new cells and Red Blood Corpuscles are produced continuously. It is misunderstanding that meat is invigorator. In fact it is medically proved that vegetarianism gives more lasting strength. Vasunandi and other Acaryas explained the fact in detailed. Meat does not contain calcium, and carbohydrate with the result that meat-eaters are irritable, angry, and intolerant and pessimists. In vegetarian diets they are present in greater measure and so vegetarians are just the reverse in their nature. Animal proteins do not have additional value in the human nutrition rather it forms the potential risk for the development of the large number of serious meat borne diseases like cysticercus's, hydrated cuts, trichinosis which do not have any permanent treatment. Some of these diseases may be lethal.

ii) *The Naisthika Sravaka* (Allegiant Layman) and Human Rites

The *Naisthika Shravaka* follows the twelves vows (five *Anuvratas*, three *Gunavratas,* and four *Siksavratas*). Under the *Anuvratas*, the principle of Non-violence or non-injury is the first and foremost vow which teaches us to avoid the injury by mind, speech, and body. He does not trade in flesh, land skin, nor does he incite others to do it. He also avoids the binding, killing or torturing, maiming, overloading and carelessness in giving food and water to animals and persons living under him. The second vow *Satyavrata* teaches us that the layman should not state a lie. He is also expected not to reveal the secrets of others, accusing somebody without any justification, writing counterfeit documents, playing tricks in weighing and measuring and so on.

The third vow is *Acauryanuvrata*, which means not to appropriate something to oneself him which belongs to somebody else without his express permission. He should not purchase the stolen property, should not encourage and praise thieves, should not purchase the property in cheaper rates, should not indulge in illegal export and import business, should not adulterate at all and so on. The fourth vow is *Svadarsantosavrata,* which means to be satisfied with one's own wife or husband without any sexual craving for other women or men. Celibacy is the great force and potential aid to self-realization. He is expected to avoid irrepressible yearning for

sexual intercourse etc. The fifth vow is *Aparighranuvraya*, which means to have the limited possessions, Unlimited possessions are the root cause of sins. Such possessions are like territories, houses, ornaments, utensils, gold, silver coins, grains, animals, men, women, quadrupeds, clothes, conveyances etc. Under the *Gunavratas*, the *Anarthadandavrata* is not to commit unnecessary or purposeless moral ofference, such as talking ill of others, preaching evil, facilitation of destruction (*Himsa-pradana*), purposeless mischief (*Pramadacarita*), and faulty reading (*Dushruti*). In fact, it would include all acts which denigrate others or through which others are hurt or deprived of liberty.

The four Siksavratas are intended to prepare the aspirant gradually for the discipline of ascetic life. They are : I) *Samayika* (to contemplate of the self and atainment of equnimity), 2) *Prosadhopavasa* (to keep fast on the eighth and the fourteenth day of each fortnight of the month, 3) *Bhogopabhoga-parimana* (Putting the limit daily on enjoyment of consumable and non-consumable things for that day), and 4) *Atithisamvibhagavrata* (to entertain some ascetic or needy person with a portion of food who happens to come uninvited). These *Siksavratas* are to practice the ascetic life. The Acaryas show their progressive trends in fixing them depending on the various regions, their needs, and times. *Dana* or gift is on of them. It has played the significant role all along the course of the history of Jainism Somadevasuri in his *Yasastilakacampu* (43.765-852) considered at length regarding *Patra* (the recipient), *Data* (the giver), *Datavya* (the thing to given, Danavidhana) the method of giving), and *Danaphala* (the fruit of giving). All the Jain thinkers are of view that what is given should be for the pleasure of giving or for the spiritual rise and self-restraint of ascetics. The householders may also be considered for charity prupose on their genuine needs.

These observations should be in practice to make justice and create congenial atmosphere and relationship between fundamental rights and directive priciples of state policy. Ordering someone to bring something illegally from outside the country is also prohibited for householders. Rendering help to one another is the basis to the formula of Jain discipline. Jainism is also dead against terrorism of any kind.

The human Rites are related to observing the humanity. The aforesaid duties of Jain Householder are totally based on humanity covering the religious curtain. They are not confined to only human but extended to all the souls. Jainism advocates for protection of forest, water, air etc. Ecological imbalance is considered as a serious threat to the life of human beings and therefore the Supreme Court considered a right to a pollution free environment as an integral part of Article 21 of the constitution. The mining operations are also included into the act. Jainism might have understood the disturbance of ecology and pollution and affectation of air, water and environment by reason of mining operations and therefore prevented the householder for engaging in the mining business and also such industries which involve any kind of violence and pollution. Deforestation of forests which affects the climate

and cause global warning is also highly objectionable.

The concept of human rites is neither entirely western in origin nor so modern. It is in fact the common heritage of mankind Jainism, the most ancient religion observed it to great length. It organized the Human Rites as religion and include them as fundamental rights and duties not only of individuals but of classes and communities. Better education, better service to children and child-labour class, better humanitarian behaviour when dealing with servants, women, down trodden communities, poor communities, animals and all other souls should be made available on human background. There is no recognition and permission for keeping bounded labour in Jainism. One should treat them all as equal. This is the fundamental principle of Jainism.

Jain as a Community and Human Rites

In light of modern definitions and speculations, the Jain society may be termed as "Jain Community" which states a particular form of social life, its cultural and ethnic ideas and values. It is originally based on the Jain principle of equality and equanimity and humanity which stresses on the social and spiritual individual, and rejects the idea of God as mediator, and replaces it with the theory of *Karma*. It stresses on individual purification, which leads the society in peace and order. It regulates not only the present life, but also the future. Unlike the Vedic religion, the Jain Scriptures sets forth the responsibility of ones deeds for deciding his caste. Jainism does not hold caste as a way of people being judged. In other words, caste cannot be decided by birth but it is one's own action or conduct, which decided the caste.

Jain Community in its historical and social perspective is a quite distinct, independent and new society with its Congregationalist nature. It has never abandoned the original spirit of Jainism. Therefore, the Jain community cannot be said to be the part of the Vedic or Hindu community, though it carries deep impact of it in the code of conduct of householders in the later period. Like-wise, in spite of occupying a large portion of business and industry it would not be a true speculation of the Jain community to be recognized only as the business community. It is the community which realizes humanity in all perspectives. It is spread over all parts of India and have contributed a lot in spite of being a small community in the economic, political, cultural, social and literary artistic architectural and spiritual fields. Jainas also never indulge in vicious and revengeful activities. Therefore the Jain community has its own distinctive place in the religious and human society.

Status of Women and Human Rights

The human rights of women and the girl child are integral and invisible part of the fundamental freedom as elaborated in the Constitution of India. The United Nations had expressed faith in the equal rights of men and women by adopting the Universal Declaration of Human Rights on 10 December 1948 without any discrimination. Likewise so many other constitutional, legal and international Declarations

and safeguards have been made to women. Even then the complaints of violation of human rights have assumed wide dimensions in the whole world.

As regards the status of women in the Jain community, we will have to go back to the period of Mahavira who made then a crucial revolt against the existing tradition and extended his solid support to uplift this very important but most neglected organ of the family where they became least powerful and most disregarded and controlled bitterly by men in each and every sphere. Considering all these nefarious practices and alimentative attitude of men towards women, Mahavira stood against these pernicious social elements and freed them from indignation for their own progress in all walks of life. Some reservations had, of course to be observed due to the slight physical incapability of women. Hence, some special rules were prescribed for nuns. Though they used to be heads of their units as *Pravartini* and *Ganavacchedini,* similar to *Acarya* and *Upadhyaya,* they were entirely responsible to the Acaryas. Chandana, Puspacula, Subrata and other well-known nuns of long ago, are referred to in this context. Even the, patriarchal form of the society was developed and nuns were treated as slightly inferior to monks in certain respects. This however, does not hold women as anything less than human beings who, like all souls, have the right and capability to attain salvation.

Jain view is fully supported by our Indian Constitution tuned to this democratic commitment begins its Preamble thus:

We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a (Sovereign Socialist Secular Democratic Republic) and to secure to all its citizens: Justice, social, economic and political; Liberty of thought, expression, believe, faith and worship; Equality of status and of opportunity; and to promote among them all Fraternity assuring the dignity of the individual and the (unity and integrity of the Nation); In our Constituent Assembly this twenty sixth day of November, 1949, do hereby Adopt, Enact and Give to ourselves this Constitution.

Conclusion

Thus it is abundantly clear that Jainism, one of the most ancient animistic Indigenous religions has been constantly and unforgettably to the field of history and culture. Its philosophy, ethics, dogmas, spiritual disciplines and practices are based on scientific truth and non-violence with the nature of humanistic approach, inter religious dialogue and understanding which can be easily perceived through its extensive and perennial literature.

37

A LIFE-FORM without DNA / RNA

Dr. J. Jain

1. Concept of Living Water- Cells

Whenever we talk about cell-based life form, we mean only the biochemical cells and nothing else. Living organisms must necessarily have DNA/RNA, When the famous scientist Sir J.C.Bose talked about "life" in stones etc. we did not know, as to what form of life he referred to. One of the other life forms is probably based on Inorganic-cells.

Living-beings can be categorized into 5 types, based on its no. of senses, like Touch (body), Taste (Tongue), Smell (Nose), Vision (Eye) and Hearing (ears) sense. This also represents the evolutionary stage of living-beings. Whereas the one sensed living-beings are at the bottom of the development ladder, the 5-sensed animals are at the highest stage of development.

Living-beings, whose body is water itself, can be termed as JALKAYA orWater-bodied living-organism. One drop of water may be a lump of countless living-beings. They go on reproducing and dying ceaselessly in that body every second. On 'boiling' the water, this cycle of reproduction stops for a few hours, making it a lifeless structure, Introduction of foreign molecules in it also makes it lifeless.

2. Physical Structure of Water-Cells

As per chemical formula of water H_2O, a molecule of water consists of 2 atoms of hydrogen and one atom of oxygen (fig 1). The polar molecules of pure water form self-assembled nano-structure in hexa or penta shape of its molecules, represented like H1206 etc, called quantum crystals, where, position of atoms/molecules in the crystal is not defined (fig.2, ref 1). This "unit" structure further makes a net like nano-tube or hollow sphere by joining with neighbouring identical units to achieve minimum surface energy. (fig 3). This molecular net is of a hollow cylindrical configuration, storing energy and oxygen in its hollow space. These tubes have 'ion=implant' facility and are surrounded by its own

bio-magnetic field. The bonding strength between water molecules in the nanostructure is much higher. These structures are stiff because they vibrate at high frequencies.

3. Functions of Dissolved Oxygen

In modern biology, a living-being is defined to have minium two attributes, viz, the ability (i) to exchange energy i.e. can fix energy and transfer it in a directed way and (ii) to remember and pass - on information.

Now when oxygen is dissolved or absorbed in water, what does it do there?

i) The dissolved air releases physically free molecules of oxygen. Some molecules get converted into oxygen radicals (anions).

ii) It makes the hydrogen-bond of water stronger. The bee-hive structure of nanotube allows the ions to move effortlessly through it. Cell energy keeps the movement of oxygen molecules or radical in dynamic balance.

iii) It is absorbed (digested) in the tube in its hollow space and in its quantum-vacancy" to form a Zygote (Yoni).

iv) Flow of oxygen ions through water channels or structures generate electromagnetic pulses by its movement (fig 4, ref 1) Its Potential Energy is 'fixed' in the nano-tubes (as if it carries somatids with it, ref 3, 4) Thus it acts as transducer.

v) It stores electrical energy and supplies back on demand.

vi) Thus it exhibits the first attribute of a living water-cell.

4. Digestive System

Normally the cell structure of water can accommodate foreign particles in its body structure. It can remain alive and acquire the physical properties of relatively well dispersed chemical molecules (if mixed thoroughly) in form of surface contour changes and frequency modifications. However, if relatively 'substantial' quantity of a chemical is dissolved in pure living-water mass, it gets choked and killed. Foreign materials break the water-cell structure.

5. Characterization of water-cells

When a minuscule quantity of a chemical (say 0.001% or less) is dissolved in pure living-water and shaken well, the ions of the chemical get attached or implanted in the quantum vacancy of the living water-cells as "impuritons", thus formng a hybrid structure (fig 5.) This structure is imparted the electro-magnetic properties i.e., em vibrations and mechanical vibrations of the ion by means of induction, conduction and resonance. Apart from the frequency transcription on the cell-body or specific hydration envelope, certain other properties of the chemical are also transferred to the surface of the water cell. Such water cells carry unique-signature of the chemical (just like the worm holes in space) as well as surface energy in form of surface curvature. This may be called initial Mode of Vibration (IMV).

5.1 Training for Trainers :

If this solution subjected to sequential dilution in the same ratio, free molecules of the chemical would not be available for diffusion in the quantum vacancy of fresh water-cells. As such the subsequent dilutions help wash away the foreign molecules from the cells, just like the washing of dirt with soap in sequential rinsing.

The fresh water goes on learning and acquiring the IMV with lesser and lesser no. of impuritons. This is like conducting "training for trainers" (T4T) program. The "impression" is stored either in the form of shape, size and profile modification or in the contour of energy distribution or in both. The frequency transcription gets stronger and stronger like multi-layer jacketing in mechanical vessels or tubular structures. It creates a stronger network of communication. In other words, the coazed tube gets reinforcement in form of "shell-sleeving" by pure aqua tubes, which can store energy like carbon onions. A stronger jacket cannot be broken easily, even if it takes joumey though other fluids. In this dilution process, the molecules or the properties are better metabolized / digested by the living water-cells.

5.2 Touch Sense of Water-Cells

Living water can have 8 types of touch senses. Like cold and hot, positive and negative charge (snigdha & ruksha) etc. The first two types of attributes are related to the vibratory properties of water cell, whereas the later two are associated with its electrical properties of the surface. The mixing of "impuritons" affect its vibratory as well as electrical properties. As discussed above, in sequential dilution process, the pure water is taught to vibrate at IMV through non-invasive technique. The required energy is supplied to the living water-cells through breathing of oxygen (fig.4).

The quantum structure of polar molecules of water retains its special configuration during sequential dilution and exhibits its special static and dynamic properties. The "impuritons". after they have taught the host water molecules its vibration attrubutes, are considered as residual unwanted impurities. Then they are washed away through sequential dilutions. The host molecules of water continue to become purer and better teacher and hence are termed as "Sanskarit- Solution" or characterized water-cells. The effectiveness of this living water is inversely proportional to the presence of molecules of foreign chemical. Greater the degree of dilution, the clearer the structural information of the original dissolved particles is imprinted on the host cell.

6. Functioning of characterized water-cells

i) When the characterized water-cell, carrying the frequency mode and the energy configuration specific to a chemical, goes into fluid, say blood stream, it enhances the Zeta potential (negative charge) in the blood colloidal. Subsequently, when it goes into the body cells through absorption and diffusion from the circulating blood stream, it influences the inner structure of the bio-cell (fig 6). For proper cell-metabolism, osmosis and colloidal solutions are very vital.

ii) The 'Imprint" of water-cell consists of a multi-dimensional property having complex physical means of communication with particular type of 'genes' in order to influence its code.

Here it is presumed that the water molecules do not influence its counterpart by chemical means (i.e., by having different potential energy of its valence electrons), but do it by physical means (i.e. by the kinetic energy of its electrons/wavicles). This phenomenon can be better understood by M-brane Physics and not by classical physics.

iii) When it passes through the micro-pores of the cell-membrane, it generates electric pulses, which are used by neurons and other cells for communication.

iv) Once inside the cell, it acts as a catalyst for 'genes' of DNA. It creates resonance with a specific portion of DNA or genes. The individual threads of DNA and RNA thus get modified.

v) It creates or refreshes gene-memory and enhances the capability of that particular immune system to modify long-term coded instructions and code-density.

vi) Effectiveness of the above instructions depends on the density and depth of impressions or memory - field of the characterized living water-cells.

Thus it can work at genetic level' even without the physical presence of any molecule of chemicals.

7. De-characterization of the living water-cells

When the living water, containing imprint of trace-elements, travels in the blood-stream, its impressions are difficult to be washed away by the "impurities" en route. That means the imprints on these water cells can not be altered so easily. However, the memory stability depends on temperature and environmental conditions, besides the purity i.e., rarefactions of the characterized water-cell.

On heating the solution, its capabilty of transferrng information is lessened and its memory is partially erased. Distilling the water brings about an alomst total erasure of this information. Fig 7 shows a photograph of a crystal of solidified water. (Ref.5)

8. Conclusion

i) Pure water is not a simple H2O molecule, but exists in form of bee-hive structure, having its own electrical and vibratory properties. By absorbing air in its quantum vacancy, it exhibits the properties of a "living-beings", as defined here. It has an inherent nature (internal character) and an external form with certain em-field and vibratons When boiled, the dissolved air and the radicals are removed from it, thus making the live water as dead water.

ii) Its cells can be characterized by special methods. However, lesser the molecules of foreign-chemicals present in the characterized live-water are, stronger would be its activating or catalytic power to stimulate gene memory or genetic code of a host bio-cell.

iii) A characterized cell in its pure form will have a well defined and specifically attuned pattern of energy waves around the profile of its body.

iv) Like free floating radicals & de-oxidants, "characterized" cells i.e. live-water structrures, carrying a particular imprint, work as a specific type of catalyst for the concerned body tissue-cell. The relevant body cells are stimulated by this catalyst through vibratopm amd resonance.

It does require further studies but it opens up a vast, hitherto unexplored territory, for the mankind. Let open-minded scientists conduct relevant experimental research to peep into such live water-cells.

References :

1) ISC test books on Chemistry and Biology.

2) "On the Track of Water-Secrets" by Hans Kronberger etc., Verlag Uranus-1983 page 151 and 158.

3) "Report on Radionics" by Edward Wriothesely Rusal. Neville Spearman Suffolk 1983.

4) "More than just H2O"- An; interview with Dr. David Schweitzer, 2000 Nu Health, 32 Notting Hill Gate London. W11. UK

5) Photographs published in "Naya Gyanodaya", Bhartiya Gnanpith, DELHI, Mar.2004 by Prabhunarayan Mishra.

FIGURES (Annex. 1&2)

Fig. 1 Chemical structure of a water molecule.
Fig. 2 Hexa Structure of water
Fig. 3 Live water-cell-Net like nano-Tubular structure.
Fig. 4 Oxygen movement through the water-cell
Fig. 5 Ion implant in quantum vacancy of hybrid structure
Fig. 6 Water-cell before entry into a bio-cell
Fig. 7 Photograph of a water crystal

CONTENTS

1. Concept of living water-cell
2. Physical structure of water-cell
3. Functions of dissolved oxygen
4. Digestive System
5. Characterization of water-cells
5.1 Training for Trainers
5.2. Touch-sense of water-cells
6. Functioning of characterized water-cells
7. De-characterization of the living water-cells
8. Conclusion.

Annex -1

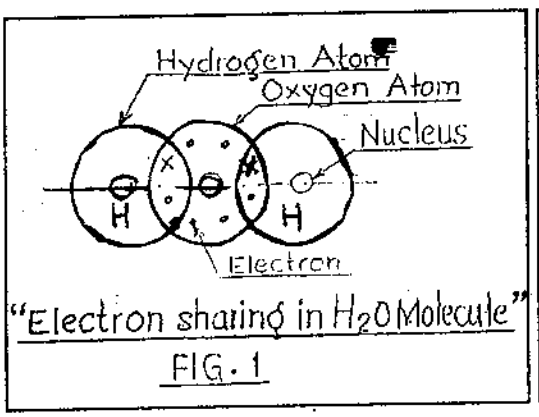

"Electron sharing in H_2O Molecule"

FIG. 1

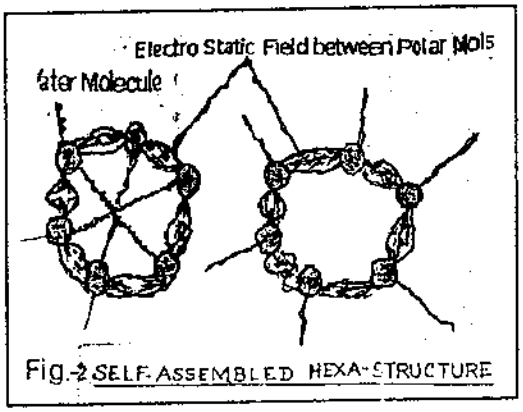

Fig. 2 SELF-ASSEMBLED HEXA-STRUCTURE

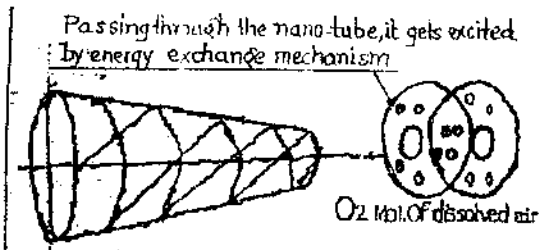

Fig 3 Bee-Hive Configuration of Tubular net (Living Water Cell)

FIG 4 : Flow of oxygen radicals through the centre of nano-tubular Living-Water-Cell

Annex - 2

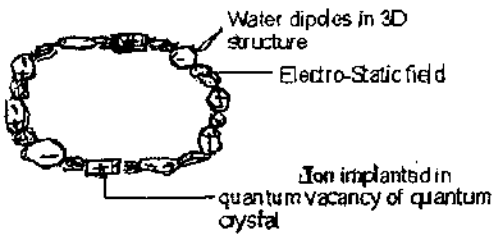

Fig:- 5 3D Hybrid Water-Structure (Due to quantum vacancy)

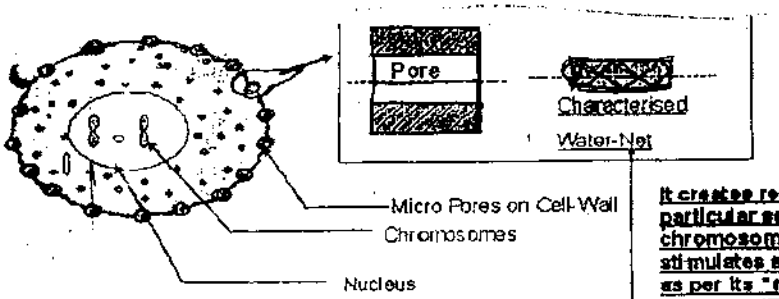

It creates resonance at a particular section of the chromosomes. As a catalyst it stimulates and modifies the gene as per its "memory".

Fig -6 Body - Cell Interaction

A crystal of Nayok Liquid

FIG. 7

38

SCIENTIFIC ASPECTS OF ANEKANTA

Dr. M. R. Gelra

Truth is what we all aspire for. Truth is one of the five basic tenets of Jainism. Jain Acharyas of yesteryears, interestingly, found themselves in a serious predicament when it came to practice truth. They realized that there are infinite ways to describe even the simplest of the object or incidence. All 'descriptions' could be partial truths but not the whole.

Situation 1 : Let us consider a coin. What is its whole truth? It has infinite radii, infinite points on its circumference, countless atoms, and so on. While we are seeing the head, the tail cannot be described and vice-versa. Even it is not pure in its material composition. **So, the Jain Acharyas cautioned their disciples that whatever is being described is only a partial truth pertaining to a relevant situation.**

Situation 2 : Let us try to describe the height of a person. He may be taller or shorter than another. It necessarily means that the description of height cannot be completed until it is measured with respect to some standard reference. Again, in their zeal to follow the path of pure truth, Jain Acharyas found to their amazement that the truth not only changes but it turns topsy-turvy when the reference itself is changed. They, therefore, postulated that **the truth contained in all statements is subject to the space, time and reference chosen.**

During the course of time, several theories emanated to explain the truth being either partial or relative. Some theories which found mention in ancient Jain literature are - Syadwada, Naywad, Anuyogadwara, tribhangi, chaturbhangi, saptabhangi, nikshep, etc. Finally, a consolidated theory was propounded and adopted by the Jains which is today popularly known and practiced as Anekanta. As we shall see later in the discussions, Anekanta turns out to be the principle which is also the basis of modern scientific **theory of Relativity.**

Postulates of Anekanta

1. Whole truth exists but can neither be perceived nor be expressed fully.

2. As our perception, thought and expression are sequential in time and space, we can express and grasp only partial truths.

3. All descriptons of an object or situation are subject to the chosen reference. It is as it a person in England says that India is in east while another one in Tokyo says that India is in west. **This fact gives rise to a piquant situation of 'either-or', popularly known as Syadwada in Jain parlance.**

4. Sequential time and space are due to our limited speed of perception. Kewali, on the other hand has infinite speed of spiritual perception resulting in the capture of the whole truth of the entire existence in zero time.

A very important and powerful corollary of Anakanta principles is that it leaves vast space for various view points to be true. While one may be partially true, others too have equal, if not more, chance of being true. It is like two persons standing on different radii of same circle and traveling towards centre. Both are treading the entirely different paths but arrive at the same destination. This all encompassing thouhgt is the need of the hour in the present world scenario where one religion is up against another and one nation against the other.

Though Anekanta contained a universal principle, its popularity remained in oblivion. It was only after Einstein, the international community awarded the due credence to the Jains line of thought. In one such international recognition, a German Professor Hermann Jacoby has written that the principle of Anekanta has opened the floodgates of understanding the 'truth'.

Contribution of Siddhasen Divakar

The comprehensive study to understand the 'truth of existence' has taken place only on the Indian soil. Three main thought streams were developed - Vedanta presumed that matter was indestructible, Buddhism treated substance as unstable and Jainism believed in eternal universe in which the matter and energy could exist in infinite forms and shapes. As stated earlier, this concept was termed as Anekanta. According to the Digambar belief, the first reference to the Syadvad and Saptbhagi is available in the "Pravachan-Sar" and "Panchastikaya", written by Acharya Kundkund in the first century. Repeat reference are availabe in the "Atma-Mimansa" of Acharya Samantbhadra. A very comprehensive description of Syadvad is available in "Nyayavtar" written by Acharya Siddhasen Divakar.

Historically, the subject of Anekanta had remained a bit controversial. People would argue that if everything said is a partial truth then what is the guarantee of Anekanta being true? The answer is not simple, but not impossible too. To undestand the essence of Aneknata, we need to elaborate this subject on three different planes-

1. Theoretical
2. Philosophical
3. Logical or Scientific

(i) Theoretical Aspect

In Jain Agama 'Bhagwati Sutra', substance can be described by combining its two aspects-

a. Matter or physical (quantity) part

b. Mode or Paryaay (quality) part

Acharya Siddhasen has written that both the parts play vital roles in the description of truth. Elaborating further, Acharya Umaswati has written in the Tatwarth Sutra that the eternity of matter co-exists along with the cycles of creation and destruction. This tri-state-eternity, creation and destruction is the basis of Anekanta. This can be better understood with the help of a practical situation-

We have seen Gold being used in making ornaments. It can be given any desired shape.

Making of an ornament involves three stages - destruction of old form creating a new form, perpetuity of gold as a substance.

A very interesting conversation between Lord Mahavira and his disciple Gautam it self illustrating-

Gautam : Bhagwan! Is Atma (soul) mortal or immortal?

Mahavir : It is both. As a substance or matter, it is immortal, eternal and perpetual, whereas, in view of its birth and rebirth, it is changing its form and is mortal.

In a similar conversation with Skandha Parivrajak, Lord Mahavira has described the Lok as finite as well as infinite. With reference to matter and extent, Lok is finite, but on time and activity scales it is infinite.

(ii) Philosphical Aspect

Acharya Mahapragya has explained the origin of Anekanta doctrine as contained in the Jain Agama. According to him, our knowledge is based on our senses and intelligence. The limitation of our perception results in the fragmented truth. Only transcendental knowledge can be whole. His comments are of great importance-

(i) Sensory perception is neither wholly true nor wholly false, it is relative to spacetime

Example- In a moving train, our eyes actually see platform moving, while a person on the platform perceieves a train to be moving. The senses of our eyes and our organs are space-time relative and not absolute.

(ii) Intellectual knowledge is neither wholly true nor wholly false, it is relative.

Example - A person facing a hot furnace may feel duration of ten minutes to be long enought as two hours, while one watching an interesting stage play may feel the entire episode to be over in a wink. It is a relative mental and emotional perception.

Since both the sources (senses and mind) of human information are relative and not absolute, the truth of our statements and expressions is exhibited only to the extent of given reference of space and time. Mahapragya declares that **the absolute truth exists but cannot be expressed due to limitations of our sense,**

intelligence, speech and language.

Jains, therefore, have extensively used a 'Chaturbhangi' of Configuration (Vastu-Bheda), Position (Ashray-Bheda), Duration (Kaal-Bheda), and Mode (Avastha-Bheda) in their literature. Classifying with respect to the above four parameters, four probabilities may arise for any Substance or Situation-

a. Eternal or short-term
b. Ordinary or specific
c. True or false
d. Definable or indistinguishable

For its probabilistic approach, above four postulates came to be known as **Syadwad.** At first reading, above four options sound quite confusing. Shankaracharya had commented to the extent that because of conflicting statements, the entire theory of Syadwad loses its authenticity. However, Dr. Radhakrishnan accepted that the wisdom of Jainism has most often been miscounstrued by those who do not refer the original Jain literatire but resort to the translated languages which often fail to comprehend the true spirit of the Jainism. He stressed that in order to make concepts of Jainism popular, an authentic English translation of ancient Jain literature is essential.

An example at this stage will make the readers comprehend the essence of Syadwad. Let us consider a room illuminated by the sun during the day, dimly lit during the evening and dark during the night. What is the truth behind 'illuminated', 'dimly lit', and 'dark'? What is absolute light or absolute darkness? What do we call illumination-absence of darkness? Or, is absence of light darkness? Even the brightness of sun is different at its own surface and at the surface of earth! There are stars which are million times brighter than our sun! So, how do we define brightness? There are three possible conditions-

- **Brightness :** presence of light (Aasti-bhava) and absence of darkness (Naasti-bhav).
- **Darkness :** less of light (Naasti-bhava) and more of darkness (Aasti-bhava).
- **Quantum :** In all situations, quantum of light and darkness is indeterminate (A-vaktavya).

In view of the modern advancements in scientific concepts, a striking resemblance can be established between laws of Physics and theory of Anekanta.

(iii) Scientific Aspect

Scientists, during their journey into the micro world, hit upon the unique properties of 'light'. Soon it was established that the light represent a boundary condition between the micro and the macro world. Subsequently, Einstein proposed his theory of relativity which entirely based on the Physics of light. Paradoxically, Einsten declared in his **theory of relativity** that the speed of light is independent and **not relative** to the speed of observer. However, space and time will be observed differently by the observers moving at different speeds. This means that two observers,

positioned differently will describe the same event differently. Both may be true to the extent of their individual observations, at the samte time, they are false relative to each other. Now, readers can realize how close the theory of relativity is to the principle of Syadwad?

Light a Unique Substance

(For reasons of ease in understanding, we may treat all waves traveling at a speed or $3x10^8$ m/s as light)

• Light has the fastest speed known to us so far. No matter can travel faster than light. As a particle approaches speed of light, three things happen-

- Its volume shrinks to zoro.
- Its mass become infinity.
- Time is rendered void.

In other words only mass-less particles(!) can travel at the speed of light. This condition is defined by the following equation of Einstein-

• No law of physics remains valid at the speeds greater than that of light - mass, volume, time all will assume negative or imaginary values in such a case.

• Light comprises of mass-less 'packets (quanta)' of energy called photons. Some scientists also call them as mass-less 'particles' because, light is observed to travel like a wave, and also interact like a particle. This duality is called principle of uncertainty in scientific terminology.

Light is therefore a boundary between existence and nothingness. Light is the substance which carries and transact the whole information. But, light itself is uncertain in its behaviour!

39

UNRAVELING THE MYSTERY OF THE UNIVERSE THROUGH JAINISM

Dr. Rajmal Jain ***(Ahmedabad)***

ABSTRACT: We describe in detail the current mystery of the universe related to the matter, which is not visible and referred as dark matter and dark energy. The modern observations reveal that the visible universe is extremely small and it may be less than 5%. We present the properties and characteristics of dark matter and dark energy that form the invisible universe. We attempt to unravel the mystery of this invisible universe, which show acceleration and gravitational hold of the mass in various parts of the universe, through existing scientific concepts of Jainism. An extensive description of Jainism foundation concepts is presented. We describe salient features of Jainism in general and varganas in particular. We interpret that varganas in Jainism are the same as dark matter/ dark energy. However many of the varganas are not visible as the parmanu from which they are composed of has extremely small cross section of the order of 10-41 ± 10-3 cm2, which cannot be seen by current instruments. The mystery of the acceleration in the universe and gravitational pull to hold the material in the celestial objects may be satisfactorily understood in context to presence of Dharma and Adharma Dravya in the universe at a given density in the space and time. However, it is essential to quantifying the characteristics f varganas and other fundamental elements of Jain concepts of the universe in order to successful and precise understanding of the paradigm.

1. Introduction:

It has been emphasizes by many saints and scholars of Jainism that fundamentals of Jainism are deeply rooted into science. However, since centuries it has been a matter of curiosity to understand the depth of science in the Jainism as well as, on the other hand, though insignificantly, the science through Jainism. Most of the efforts were done in explaining the discoveries of

modern science in a very vague way using qualitative statements of Jainism without probing the facts and carrying out the investigation. In this context, I had been always very curious to know the science in Jainism that can give guideline to the modern science. This motivated me to study the Jainism and probe its potentiality to help the current science.

I attended international conference on Science and Jainism organized by Acharya Ratna 108 Sh. Kanaknandi ji Gurudev in Pratapgarh in 2003 where we had magnificent discussions on how Jainism can contribute to unravel the various mysteries of the science. We concluded that efforts to be made in this direction so as to present the in-depth potentiality of science in Jainism. Recently in an evening popular lecture in Indore organized by Kundkund Gyanpith on "Life in the Universe" I briefly described about the visible universe, which, in fact, is very small relative to that invisible universe. In last decade it was realized by the modern cosmology that the significant part of the universe is not visible and it could be more than 90%. This invisible universe is composed of dark matter and dark energy (Nojiri, S, <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin author_form? author = Nojiri, + S & fullauthor = Nojiri, %20 Shin%27 Ichi & charset = ISO - 8859 -1 & db_key = AST> Odintsov, S. D <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin author_form? author = Odintsov, + S & fullauthor = Odintsov,% 20Sergei % 20D. & charset = ISO - 8859 -1 & db_key = AST>; and Stefancic, H, 2006). <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin author_form? author = Stefancic, + H & fullauthor = Stefancic,%20 Hrvoje & charset = ISO - 8859 -1 & db_key = AST>

For each of the stellar, galactic, and galaxy cluster/supercluster observations the basic principle is that if we measure velocities in some region, then there has to be enough mass there for gravity to stop all the objects flying apart. When such velocity measurements are done on large scales, it turns out that the amount of inferred mass is much more than can be explained by the luminous stuff. Hence we infer that there is dark matter in the Universe.

Dark matter has important consequences for the evolution of the Universe and the structure within it (Okamoto, T <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Okamoto,+T&fullauthor=Okamoto,%20Takashi&charset=ISO-8859-1&db_key=AST> and Nagashima, M, <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Nagashima,+M&fullauthor=Nagashima,%20Masahiro&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>2003; Nagamine, K. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Nagamine,+K&fullauthor=Nagamine,%20K.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Fukugita, M. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Fukugita,+M&fullauthor=Fukugita,%20M.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Cen, R. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Cen,+R&fullauthor=Cen,%20R.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Ostriker, J. P. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Ostriker,+J&fullauthor=Ostriker,%20J.%20P.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST> 2001; Chuzhoy, Leonid <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Chuzhoy,+L&fullauthor=Chuzhoy,%20Leonid&charset=ISO-

8859-1&db_key=AST>; Nusser, Adi <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Nusser,+A&fullauthor=Nusser,%20Adi&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2006) . According to general relativity, the Universe must conform to one of three possible types: open, flat, or closed. The total amount of mass and energy in the universe determines which of the three possibilities applies to the Universe. In the case of an open Universe, the total mass and energy density (denoted by the Greek letter *Omega*) is less than unity. If the Universe is closed, *Omega* is greater than unity. For the case where *Omega* is exactly equal to one the Universe is "flat".

In cosmology <http://en.wikipedia.org/wiki/Cosmology>, the dark energy (Ichikawa, K and <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Ichikawa, + K&fullauthor = Ichikawa,% 20 Kazuhide & charset = ISO - 8859 -1 & db_key = AST> Takahashi, T, <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author =Takahashi,+T&fullauthor=Takahashi,%20Tomo&charset=ISO-8859-1&db_key =AST > 2006) is a hypothetical form of energy <http://en.wikipedia.org/wiki/Energy>, which permeates all of space and has strong negative pressure <http://en.wikipedia.org/wiki/Negative_pressure>. According to the theory of relativity <http://en.wikipedia.org/wiki/General_relativity>, the effect of such a negative pressure is qualitatively similar to a force acting in opposition to gravity at large scales. Invoking such an effect is currently the most popular method for explaining the observations of an accelerating universe as well as accounting for a significant portion of the missing mass <http://en.wikipedia.org/wiki/Missing_mass> in the universe.

Two proposed forms for dark energy are the cosmological constant <http://en.wikipedia.org/wiki/Cosmological_constant>, a constant energy density filling space homogeneously, and quintessence <http://en.wikipedia.org/wiki/Quintessence_%28physics%29>, a dynamic field whose energy density can vary in time and space (Peebles, P. J. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Peebles,+P&fullauthor=Peebles,%20P.%20J.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Ratra, Bharat <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Ratra,+B&fullauthor=Ratra,%20Bharat&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2003; Kratochvil, Jan <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Kratochvil,+J&fullauthor=Kratochvil,%20Jan&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Linde, Andrei <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Linde,+A&fullauthor=Linde,%20Andrei&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Linder, Eric V. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Linder,+E&fullauthor=Linder,%20Eric%20V.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Shmakova, Marina <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Shmakova,+M&fullauthor=Shmakova,%20Marina&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2004; Caldwell, Robert R. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Caldwell, + R & fullauthor = Caldwell, %20Robert % 20R. & charset = ISO - 8859 -1&db_key = AST>; Doran, Michael <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Doran, + M & fullauthor = Doran, % 20Michael&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2005). Distinguishing between

the alternatives requires high-precision measurements of the expansion of the universe to understand how the speed of the expansion changes over time. The rate of expansion is parameterized by the cosmological equation of state <http://en.wikipedia.org/wiki/Equation_of_State_%28Cosmology%29>. Measuring the equation of state of dark energy is one of the biggest efforts in observational cosmology today.

Dark matter

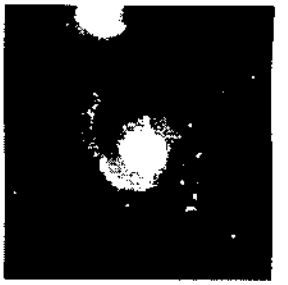

Not dark (visible) matter

In order to understand the basic concepts of dark matter, dark energy and various other terms and vocabulary of modern astrophysics I strongly recommend the readers to read the fundamental books on astronomy, astrophysics and cosmology for which in addition to the references I have provided the ***bibliography*** at the end of this article.

2. **Unsolved problems in physics <http://en.wikipedia.org/wiki/Unsolved_problems_in_physics>:**

Why is the expansion of the universe accelerating, as we have observed? Is our understanding of redshift complete? If it is, then what is the nature of the invisible matter (dark matter and dark energy) driving this acceleration?

3. Dark Energy:

3. 1 Evidence for dark energy

During the late 1990s <http://en.wikipedia.org/wiki/1990s>, observations of type Ia supernovae <http://en.wikipedia.org/wiki/Supernova> suggested that the expansion of the universe <http://en.wikipedia.org/wiki/Universe> is accelerating. These observations have been corroborated by several independent sources since then: the cosmic microwave background <http://en.wikipedia.org/wiki/Cosmic_microwave_background>, gravitational lensing <http://en.wikipedia.org/wiki/Gravitational_lensing>, age of the universe <http://en.wikipedia.org/wiki/Age_of_the_universe>, big bang nucleosynthesis <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_bang_nucleosynthesis>, large scale structure <http://en.wikipedia.org/wiki/Large-scale_structure_of_the_cosmos> and measurements of the Hubble parameter <http://en.wikipedia.org/wiki/Hubble%27s_law>, as well as improved measurements of the supernovae.

The type Ia supernovae provide the most direct evidence for dark energy. Mea-

suring the velocity of receding objects is accomplished easily by measuring the redshift <http://en.wikipedia.org/wiki/Redshift> of the receding object. Finding the distance to an object is a more difficult problem, however. It is necessary to find standard candles <http://en.wikipedia.org/wiki/Standard_candle>: objects for which the absolute magnitude <http://en.wikipedia.org/wiki/Absolute_magnitude> is known, so that it is possible to relate the apparent magnitude <http://en.wikipedia.org/wiki/Apparent_magnitude> to the distance. Without standard candles, it is impossible to measure the redshift-distance relation of Hubble's law <http://en.wikipedia.org/wiki/Hubble%27s_law>. Type Ia supernovae are the best known standard candles for cosmological observation, because they are very bright and ignite only when the mass of an old white dwarf <http://en.wikipedia.org/wiki/White_dwarf> star reaches the precisely defined Chandrasekhar limit <http://en.wikipedia.org/wiki/Chandrasekhar_limit>. The distances to the supernovae are plotted against their velocities, and this is used to measure the expansion history of the universe. These observations indicate that the universe is not decelerating, which would be expected for a matter-dominated universe, but rather is mysteriously accelerating. These observations are explained by postulating a kind of energy with negative pressure (see equation of state (cosmology) <http://en.wikipedia.org/wiki/Equation_of_state_%28cosmology%29> for a mathematical explanation): dark energy.

The existence of dark energy, in whatever form, also solves the so-called "missing mass" problem. The theory of big bang nucleosynthesis <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_bang_nucleosynthesis> governs the formation of the light elements in the early universe, such as helium <http://en.wikipedia.org/wiki/Helium>, deuterium <http://en.wikipedia.org/wiki/Deuterium> and lithium <http://en.wikipedia.org/wiki/Lithium>. The theory of large scale structure <http://en.wikipedia.org/wiki/Large-scale_structure_of_the_cosmos> *governs the formation of structure in the universe,* stars <http://en.wikipedia.org/wiki/Star>, quasars <http://en.wikipedia.org/wiki/Quasar>, galaxies <http://en.wikipedia.org/wiki/Galaxy> and galaxy clusters <http://en.wikipedia.org/wiki/Groups_and_clusters_of_galaxies>. These theories both suggest that the density of baryons <http://en.wikipedia.org/wiki/Baryons> and cold dark matter <http://en.wikipedia.org/wiki/Dark_matter> in the universe is about 30% the critical density <http://en.wikipedia.org/wiki/Critical_density> for closure of the universe. This is the density necessary to make the shape of the universe <http://en.wikipedia.org/wiki/Shape_of_the_universe> flat <http://en.wikipedia.org/wiki/Flatness_problem>. Measurements of the cosmic microwave background <http://en.wikipedia.org/wiki/Cosmic_microwave_background>, most recently by the WMAP <http://en.wikipedia.org/wiki/WMAP> satellite, indicate that the universe is very close to flat. Thus, we know that some form of energy must make up the additional 70%.

3.2 Nature of dark energy

The exact nature of this dark energy is a matter of speculation. It is known to be very homogeneous <http://en.wikipedia.org/wiki/Homogeneity>, not very dense <http://en.wikipedia.org/wiki/Density> and doesn't interact strongly through any of

the fundamental forces <http://en.wikipedia.org/wiki/Fundamental_forces> other than gravity <http://en.wikipedia.org/wiki/Gravity>. Since it is not very dense-roughly 10-29 grams per cubic centimeter-it is hard to imagine experiments to detect it in the laboratory (but see the references for a claimed detection). Dark energy can only have such a profound impact on the universe, making up 70% of all energy, because it uniformly fills otherwise empty space. The two leading models are quintessence and the cosmological constant.

3.2.1 Cosmological constant

The simplest explanation for dark energy is that it is simply the "cost of having space": that is, that a volume of space has some intrinsic, fundamental energy. This is the cosmological constant, sometimes presented as ë (Lambda). Since energy and mass are related by $E = mc2$, Einstein's theory of general relativity <http://en.wikipedia.org/wiki/General_relativity> predicts that it will have a gravitational effect. It is sometimes called a vacuum energy <http://en.wikipedia.org/wiki/Vacuum_energy> because it is the energy density of empty vacuum <http://en.wikipedia.org/wiki/Vacuum>. In fact, most theories of particle physics <http://en.wikipedia.org/wiki/Particle_physics> predict vacuum fluctuations <http://en.wikipedia.org/wiki/Vacuum_fluctuations> that would give the vacuum exactly this sort of energy. The cosmological constant is estimated by cosmologists (Steinhardt, Paul J. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Steinhardt, + P & fullauthor = Steinhardt, % 20Paul%20J.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Turok, Neil <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Turok, + N & fullauthor = Turok,%20Neil&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2006) to be on the order of 10-29g/cm3, or about 10-120 in reduced Planck units <http://en.wikipedia.org/wiki/Reduced_Planck_units>.

The cosmological constant has negative pressure equal to its energy density and so causes the expansion of the universe to accelerate (see equation of state (cosmology) <http://en.wikipedia.org/wiki/Equation_of_state_%28cosmology%29>). The reason why a cosmological constant has negative pressure can be seen from classical thermodynamics. The work done by a change in volume dV is equal to $-p\,dV$, where p is the pressure. But the amount of energy in a box of vacuum energy actually increases when the volume increases (dV is positive), because the energy is equal to $\tilde{n}V$, where $\tilde{n}$ is the energy density of the cosmological constant. Therefore, p is negative and, in fact, $p = -\tilde{n}$.

A major outstanding problem <http://en.wikipedia.org/wiki/Unsolved_problems_in_physics> is that most quantum field theories <http://en.wikipedia.org/wiki/Quantum_field_theory> predict a huge cosmological constant from the energy of the quantum vacuum <http://en.wikipedia.org/wiki/Vacuum_fluctuation>, up to 120 orders of magnitude <http://en.wikipedia.org/wiki/Orders_of_magnitude> too large. This would need to be cancelled almost, but not exactly, by an equally large term of the opposite sign. Some supersymmetric <http://en.wikipedia.org/wiki/Supersymmetry> theories require a cosmological constant that is exactly zero, which does not help. This is the cosmological constant problem,

the worst problem of fine-tuning <http://en.wikipedia.org/wiki/Fine-tuning> in physics: there is no known natural way to derive, even roughly, the infinitesimal cosmological constant observed in cosmology from particle physics <http://en.wikipedia.org/wiki/Particle_physics>. Some physicists, including Steven Weinberg <http://en.wikipedia.org/wiki/Steven_Weinberg>, think the delicate balance of quantum vacuum energy is best explained by the anthropic principle <http://en.wikipedia.org/wiki/Anthropic_principle>.

In spite of its problems, the cosmological constant is in many respects the most economical solution <http://en.wikipedia.org/wiki/Occam%27s_razor> to the problem of cosmic acceleration. One number successfully explains a multitude of observations. Thus, the current standard model of cosmology, the Lambda-CDM model, includes the cosmological constant as an essential feature.

3.2.2 Quintessence

Alternatively, dark energy might arise from the particle-like excitations in some type of dynamical <http://en.wikipedia.org/wiki/Dynamical_system> field <http://en.wikipedia.org/wiki/Scalar_field>, referred to as quintessence <http://en.wikipedia.org/wiki/Quintessence_%28physics%29> (Lee, Seokcheon <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Lee, + S & fullauthor = Lee,%20Seokcheon & charset = ISO-8859-1&db_key=AST>; Olive, Keith A. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Olive, + K & fullauthor = Olive,%20Keith%20A.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Pospelov, Maxim <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Pospelov, + M & fullauthor = Pospelov, %20Maxim&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2004). Quintessence differs from the cosmological constant in that it can vary in space and time. In order for it not to clump and form structure <http://en.wikipedia.org/wiki/Large-scale_structure_of_the_cosmos> like matter, it must be very light so that it has a large Compton wavelength <http://en.wikipedia.org/wiki/Compton_wavelength>.

No evidence of quintessence is yet available, but it cannot be ruled out either. It generally predicts a slightly slower acceleration of the expansion of the universe than the cosmological constant. Some researchers think that the best evidence for quintessence would come from violations of Einstein's equivalence principle <http://en.wikipedia.org/wiki/Equivalence_principle> and variation of the fundamental constants <http://en.wikipedia.org/wiki/Equivalence_principle> in space or time. Scalar fields <http://en.wikipedia.org/wiki/Scalar_field> are predicted by the standard model <http://en.wikipedia.org/wiki/Standard_model> and string theory <http://en.wikipedia.org/wiki/String_theory>, but an analogous problem to the cosmological constant problem (or the problem of constructing models of cosmic inflation <http://en.wikipedia.org/wiki/Cosmic_inflation>) occurs: renormalization <http://en.wikipedia.org/wiki/Renormalization> theory predicts that scalar fields should acquire large masses.

The cosmic coincidence <http://en.wikipedia.org/w/index.php? title = Cosmic_coincidence & action =edit> problem asks why the cosmic acceleration begins when it did. If cosmic acceleration began earlier in the universe, structures

such as galaxies <http://en.wikipedia.org/wiki/Galaxy> would never have had time to form and life, at least as we know it, would never have had a chance to exist. Proponents of the anthropic principle <http://en.wikipedia.org/wiki/Anthropic_principle> view this as support for their arguments. However, many models of quintessence have a so-called tracker behavior, which solves this problem. In these models, the quintessence field has a density which closely tracks (but is less than) the radiation density until matter-radiation equality <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_bang>, which triggers quintessence to start behaving as dark energy, eventually dominating the universe. This naturally sets the low energy scale <http://en.wikipedia.org/wiki/Energy_scale> of the dark energy.

Some special cases of quintessence are phantom energy <http://en.wikipedia.org/wiki/Phantom_energy>, in which the energy density of quintessence actually increases with time, and k-essence (short for kinetic quintessence) which has a non-standard form of kinetic energy <http://en.wikipedia.org/wiki/Kinetic_energy>. They can have unusual properties: phantom energy, for example, can cause a Big Rip <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_Rip>.

3.2.3 Other ideas

Some theorists think that dark energy and cosmic acceleration are a failure of general relativity <http://en.wikipedia.org/wiki/General_relativity> on very large scales, larger than superclusters <http://en.wikipedia.org/wiki/Supercluster>. It is a tremendous extrapolation to think that our theory of gravity, which works so well in the solar system <http://en.wikipedia.org/wiki/Solar_system>, should work without correction on the scale of the universe. However, most attempts at modifying general relativity <http://en.wikipedia.org/wiki/General_relativity> have turned out either to be equivalent to theories of quintessence, or are inconsistent with observations.

Other ideas for dark energy have come from string theory <http://en.wikipedia.org/wiki/String_theory>, brane cosmology <http://en.wikipedia.org/wiki/Brane_cosmology> and the holographic principle <http://en.wikipedia.org/wiki/Holographic_principle>, but have not yet proved as compelling as quintessence and the cosmological constant.

3.3 Implications for the fate of the universe:

Cosmologists estimate that the acceleration began roughly 5 billion years ago. Before that, it is thought that the expansion was decelerating, due to the attractive influence of dark matter <http://en.wikipedia.org/wiki/Dark_matter> and baryons <http://en.wikipedia.org/wiki/Baryon>. The density of dark matter in an expanding universe disappears more quickly than dark energy, and eventually the dark energy dominates. Specifically, when the volume of the universe doubles, the density of dark matter <http://en.wikipedia.org/wiki/Dark_matter> is halved but the density of dark energy is nearly unchanged (it is exactly constant in the case of a cosmological constant).

If the acceleration continues indefinitely, the ultimate result will be that galaxies outside the local supercluster <http://en.wikipedia.org/wiki/Local_supercluster> will

move beyond the cosmic horizon <http://en.wikipedia.org/wiki/Event_horizon>: they will no longer be visible, because their relative speed becomes greater than the speed of light. This is not a violation of special relativity <http://en.wikipedia.org/wiki/Special_relativity>, and the effect cannot be used to send a signal between them. (Actually there is no way to even define "relative speed" in a curved spacetime. Relative speed and velocity can only be meaningfully defined in flat spacetime or in sufficiently small (infinitesimal) regions of curved spacetime). Rather, it prevents any communication between them and the objects pass out of contact. The Earth <http://en.wikipedia.org/wiki/Earth>, the Milky Way <http://en.wikipedia.org/wiki/Milky_Way> and the Virgo supercluster <http://en.wikipedia.org/wiki/Virgo_supercluster>, however, would remain virtually undisturbed while the rest of the universe recedes. In this scenario, the local supercluster would ultimately suffer heat death <http://en.wikipedia.org/wiki/Heat_death>, just as was thought for the flat, matter-dominated universe, before measurements of cosmic acceleration.

There are some very speculative ideas about the future of the universe. One suggests that phantom energy causes *divergent* expansion, which would imply that the effective force of dark energy continues growing until it dominates all other forces in the universe. Under this scenario, dark energy would ultimately tear apart all gravitationally bound structures, including galaxies and solar systems, and eventually overcome the electrical <http://en.wikipedia.org/wiki/Electric_force> and nuclear forces <http://en.wikipedia.org/wiki/Nuclear_force> to tear apart atoms themselves, ending the universe in a Big Rip <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_Rip>. On the other hand, dark energy might dissipate with time, or even become attractive. Such uncertainties leave open the possibility that gravity might yet rule the day and lead to a universe that contracts in on itself in a "Big Crunch <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_Crunch>". Some scenarios, such as the cyclic model <http://en.wikipedia.org/wiki/Cyclic_model> suggest this could be the case. While these ideas are not supported by observations, they are not ruled out. Measurements of acceleration are crucial to determining the ultimate fate of the universe in big bang theory.

3.4 History

The cosmological constant was first proposed by Einstein <http://en.wikipedia.org/wiki/Albert_Einstein> as a mechanism to obtain a stable solution of the gravitational field equation <http://en.wikipedia.org/wiki/Einstein%27s_field_equation> that would lead to a static universe, effectively using dark energy to balance gravity. Not only was the mechanism an inelegant example of fine-tuning <http://en.wikipedia.org/wiki/Fine-tuning>, it was soon realized that Einstein's static universe would actually be unstable because local inhomogeneities would ultimately lead to either the runaway expansion or contraction of the universe. The equilibrium <http://en.wikipedia.org/wiki/Equilibrium> is unstable: if the universe expands slightly, then the expansion releases vacuum energy, which causes yet more expansion. Likewise, a universe which contracts slightly will continue contracting. These sorts of disturbances are inevitable, due to the uneven distribution of matter throughout the

universe. More importantly, observations made by Edwin Hubble <http://en.wikipedia.org/wiki/Edwin_Hubble> showed that the universe appears to be expanding and not static at all. Einstein famously referred to his failure to predict the expanding universe as his greatest blunder. After this realization, the cosmological constant was largely ignored as a historical curiosity.

Alan Guth <http://en.wikipedia.org/wiki/Alan_Guth> proposed in the 1970s <http://en.wikipedia.org/wiki/1970s> that a negative pressure field, similar in concept to dark energy, could drive cosmic inflation <http://en.wikipedia.org/wiki/Cosmic_inflation> in the very early universe. Inflation postulates that some repulsive force, qualitatively similar to dark energy, resulted in an enormous and exponential expansion of the universe slightly after the Big Bang <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_Bang>. Such expansion is an essential feature of most current models of the Big Bang. However, inflation must have occurred at a much higher energy density than the dark energy we observe today and is believed to have completely ended when the universe was just a fraction of a second old. It is unclear what relation, if any, exists between dark energy and inflation. Even after inflationary models became accepted, the cosmological constant was believed to be irrelevant to the current universe.

By 1998 <http://en.wikipedia.org/wiki/1998>, the missing mass problem of big bang nucleosynthesis <http://en.wikipedia.org/wiki/Big_bang_nucleosynthesis> and large scale structure <http://en.wikipedia.org/wiki/Large-scale_structure_of_the_cosmos> was established, and some cosmologists had started to theorize that there was an additional component to our universe, with properties very similar to dark energy. This suspicion was reinforced by supernova observations of accelerated expansion, simultaneously released by the teams of Riess *et al* and Perlmutter <http://en.wikipedia.org/wiki/Saul_Perlmutter> *et al*. This resulted in the Lambda-CDM model <http://en.wikipedia.org/wiki/Lambda-CDM_model>, which as of 2006 has remained consistent with a series of increasingly rigorous cosmological observations.

4. Jainism Concept:

I am a student of Jainism and during this learning process I have been strongly attracted to the science of fundamental matter and forces that govern the universe. According to Jainism the whole universe is composed of six fundamental substances *viz.*

1. Jeevastikaya 2. Pudgalastikaya 3. Dharamastikaya
4. Adharmastikaya 5. Akashastikaya 6. Kalastikaya.

The Jeeva means life whose structure may vary from infinitesimal cross-section to extremely large sizes. In fact it depends on how you define the life - whether as protein, amino acid, DNA or a single small virus. However, the fundamental property of life in Jainism is "Chetana" i. e consciousness should not be forgotten while adopting any definition. The pudgal is a substance whose cross section (size) may vary from infinitesimal to larger in space. For example, a sub-atomic particle is

pudgal and a planet may also be called pudgal. Pudgal may be living organism and also non-living material. A large number of pudgals of similar property may form zone (skandha) or region pradesh). However, any pudgal may travel or interact with any other individual pudgal or zone or region of pudgals. This physical process of interaction of pudgals with each other or passage from one zone or region to other zone/ region causes changes/ modifications in their fundamental state (energy density) or class, and thereby loosing their original characteristics. In Jainism twenty three types of such pudgal classes, popularly known as Varganas, are identified and it is proposed that at any given time this is the maximum number of pudgla types that may exist in the universe. Thus we can conclude that universe, in fact, is fully packed of these twenty three types pudgal vaganas. The vargana is a group of *"parmanus"* having similar bio-physical-chemical prperties. A brief description of salient features of these varganas is given below. The "parmanu" is the smallest particle with a critical size, which cannot further be divided even by Omni-scientist (Keval-Gyani). The all parmanus are same in size and structure irrespective of any elements. The cross-section of these species is the smallest in the universe, which cannot be measured by the current technologies. We did not find any reference for the quantitative number for the cross-section of these smallest size particles in Jainism in terms of modern units. However, our calculations from the old symbolic encryptions led us to estimate the cross-section of the order of 10-41 ± 10-3 cm2, which is several orders smaller than neutrino, currently known the smallest particle in modern physics. The speed of these particles depends upon the "Dharmastikaya and Adharmastikays, which are mediums of accelerating and decelerating the motion respectively, and their location in space (Aakashastikaya) and time (Kalastikaya) in the universe. Therefore speed may vary from sub-sonic to more than speed of light depending on the location *i.e.,* medium of passage of the particle in the universe at a given time. Thus, in preview to such high speed, their kinetic energy is always extraordinarily very high though their cross-section is insignificantly small. The parmanu has four fundamental physical-chemical properties *viz.* colour (varna), taste (ras), smell (gandh), and touch (sparsh). Depending upon these fundamental properties and their combination whether a parmanu will be good (shubh) or bad (ashubh) may be determined as following.

Shubh Parmanu: Varna - White, yellow and red
Gandh: Sugandha
Raas: Sweet, sour, Kaisela (Anwala's test)
Sparsh: soft and light plus smooth and hot

Ashubh Parmanu: Varna: Black and Blue
Gandh: Durgandha
Raas: Teekha and Kadava
Sparsh: Soft and light plus rough and cold or rough and hot or cold and smooth.

4.1 Description of Pudgal Varganas:

(Location for Shloka- Attention to Shekhar Chandra ji)

There are a total 25 varganas, which broadly can be distributed in four classes *viz.* (i) Invisble and Agrahiya (inadaptable) (ii) Grahiya (adaptable) (iii) Residual and Agrahiya (inadaptable) (iv) Scaling

We describe very briefly the names of the varganas in each category. However, for more detailed description of each vargana readers are suggested to read literature of Jain (2006).

4.1.1 Invisible and inadaptable varganas:

In this category following varganas can be accommodated.

1. Anu vargana 2. Sankhyat vargana 3. Asankhyat vargana 4. Anant vargana.

4.1.2 Adaptable varganas:

The following varganas may be considered as adaptable varganas.

1. Audarik 2. Vaikriya 3. Aaharik 4. Tejas 5. Bhaasha 6. Breathing 7. Mnao 8. Karman

Between each of the two above adaptable varganas, there exists an inadaptable varganas. For example between Audarik and Vaikriya a vargana namely - Agrahiya Audarik vargana exists. Thus a total seven inadaptable varganas exist between the above classes, which, however, are of no use for Jeevas (living organisms). These varganas are listed under the next category.

4.1.3 Residual and inadaptable Varganas:

1. Inadaptable Audarik, 2. Inadaptable Vaikriya, 3. InadaptableAaharik, 4. Inadaptable Tejas, 5. Inadaptable Bhasha, 6. Inadaptable Breathing, 7. Inadaptable Mano, 8. Dhruva Achitta, 9. Adhruva Achitta (Saantar-Nirantar), 10. Pratyek Shariri Dravya, 11. Baadar-Nigod, 12. Sukshm-Nigod, 13. Mahaskandha

4.1.14 Scaling Varganas:

Four imaginary varganas namely first, second, third and fourth Dhruva Shunya varganas are used for scaling the inadaptable varganas between Adhruva Achitta and Mahaskandha.

4.2 Important Salient Features of Varganas:

1. Life is a continuous process of interaction of Jeeva with all adaptable (Grahiya) varganas that distributed all over the universe in space and time. As soon as this process stops Nirvana of Jeeva takes place. Each parmanu as well as skandha of each vargana is extremely small beyond cuurent limit of imagination but it is highly energetic. It appears that kinetic energy, is so high that parmanu or skandha is capable to cross any large body/ object such as star or planets. Every Jeeva does any given task by application of the appropriate vargana for that task.

2. Karman and tejas bodies already exist at the time of first formation of Jeeva in the womb. Next, this Jeeva takes pudgals from Audarik vargana that are present in the mother's body to form own physical body, and then it forms sense organs *(indreeya), next it will form breathing process, and then process for speech through* Bhasha vargana and finally thinking process begins through Mano vargana.

3. Though each vargana has infinite number of parmanus/skandh/pradesh, and their numbers are keep on increasing from one to next, but such groups of parmanus/ skandha/ pradehs of all varganas can exist in asankhytawa division of angul.

4. Area of Audarik is larger than Vaikriya and similarly area of vaikriya is larger than Aaharak and so on. This indicates that area of Mano vargana is larger than Karman vargana. However, number of parmanus are increasing from Audarik to karman and so on, which indicates energy density increases from Aanu to karman and to Mahaskandha.

5. Sukshma jeeva (invisble), which are of five types, exist everywhere in the universe. This shows that life exists everywhere in the universe, and all adaptable varganas except Aaharak, are being used by Jeeva throughout the universe.

6. The material (parmanus/skandha/pradesh) in any given vargana, except Audarik vargana, is not visible. Considering the whole universe is fully packed of these 25 varganas and assuming at the first order that each vargana occupies equal space at a given time (equal partition theory) then the visible material from the Audarik vargana may be estimated to 4%, and invisible material from all other remaining varganas to 96% of the total universe. This invisible material may be referred as dark matter and/ or dark energy.

7. The behavior of the material of any vargana in space and time depends upon the physical and chemical properties of the parmanus (shubh or ashubh), volume, *density and velocity.*

8. Dharmadravya (accelerating) or Adharmadravya (decelerating) medium controls the variation in behavior of material of a given vargana in space and time.

9. The total mass, momentum, and energy are always preserved in the universe suggesting the universe is flat (W=1). Also the universe was always same as it is at present indicating steady state evolution of the universe.

5. Discussion

We believe that most of the matter in the universe is *dark*, i.e. cannot be detected from the light which it emits (or fails to emit). This is "stuff" which cannot be seen directly — so what makes us think that it exists at all? Its presence is inferred indirectly from the motions of astronomical objects <http://astro.berkeley.edu/~mwhite/darkmatter/rotcurve.html>, specifically stellar, galactic, and galaxy cluster/supercluster observations. It is also required in order to enable gravity to amplify <http://astro.berkeley.edu/~mwhite/growthofstructure.html> the small fluctuations in the Cosmic Microwave Background <http://astro.berkeley.edu/~mwhite/whatarecmb.html> enough to form the large-scale structures <http://astro.berkeley.edu/~mwhite/whatarelss.html> that we see in the universe today. Recent investigations by Shandan et al., (2006), Gogberashvili, M and <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Gogberashvili, + M &fullauthor=Gogberashvili,%20Merab&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>Maziashvili, M (2005), <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Maziashvili,+M&fullauthor=Maziashvili,%20Michael&charset=ISO-8859-1&db_key=AST> Robertson et al., (2204), Brant <http://adsabs.harvard.edu/

cgi-bin/author_form? author = Robertson, + B & fullauthor = Robertson,%20Brant&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Yoshida, Naoki <http:/ /adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Yoshida, + N & fullauthor =Yoshida,%20Naoki &charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Springel, Volker <http:/ /adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Springel, + V & fullauthor = Springel,%20Volker&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Hernquist, Lars <http:// adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Hernquist, + L & fullauthor = Hernquist, %20Lars&charset=ISO-8859-1&db_key=AST> reveal global distribution and morphology of dark matter voids in a Lambda cold dark matter (LambdaCDM) universe using density fields generated by N-body simulations. Voids are defined as isolated regions of the low-density excursion set specified via density thresholds, the density thresholds being quantified by the corresponding filling factors, *i .e.* the fraction of the total volume in the excursion set. Jainism concepts of varganas also strongly depend upon the density threshold for each given type, which may be referred to various phenomena that have been observed or proposed in the dark universe such as voids.

Note that the dynamics of the Universe are not determined entirely by the geometry (open, closed or flat) unless the Universe contains only matter. In our Universe, where most of *Omega* comes from dark energy, *this relation between the mass density, spatial curvature and the future of the universe no longer holds.* It is then no longer true in this case that "geometry (spatial curvature) is destiny." Instead, to find out what will happen one needs to calculate the evolution of the expansion factor of the universe for the specific case of matter density, spatial curvature and "funny energy" to find out what will happen. The Jainism has clear concept about the universe as flat in context to its Universe model, which has an extraordinary large but finite shape. According to this philosophy/ concept the observed acceleration or strong gravitation holding of the material from fly out as seen by modern cosmology depends upon the density gradients of Dharma or Adharma Dravya in the location where the observations have been carried out. The Dharma Dravya will help in accelerating the material/ mass or body, while Adharma Dravya will cause deceleration or enhance the gravitational pull so as to stop the material to fly out. It appears that Dharma Drvya exists everywhere in the universe i.e the interstellar medium, but not inside the galaxies or clusters etc. otherwise the material from such large objects will fly out. On the contrary, Adharma Dravya might predominantly exist inside the large objects such as galaxies/ clusters etc. in order to stop their matter. However, the loss of mass caused during the motion of the objects and currently projected as dark matter/ dark energy may be referred to varganas, which are invisible according to Jainism.

Dark matter (DM) candidates are usually split into two broad categories, with the second category being further sub-divided depending on their respective masses and speeds.

- Baryonic
- Non-Baryonic

- hot dark matter (HDM <http://astro.berkeley.edu/~mwhite/darkmatter/hdm.html>) and
- cold dark matter (CDM),

CDM candidates travel at slow speeds (hence "cold") or have little pressure, while HDM candidates move rapidly (hence "hot").

These characteristics are by and large similar to the definition of various kinds of varganas, which we have described earlier based on their number density, and parmanu characteristics such as shubh and ashubh. Thus, it may be strongly inferred that the dark matter and dark energy being discussed in current cosmological observations and models are the varganas described in Jainism. This conclusion may help the modern cosmology to solve the current physics problem of redshift, acceleration and the form of invisible universe. However, elements of jain concepts including varganas need to quantifying to explain the mystery more precisely and satisfactorily.

Thus we conclude that both science and philosophy appeared after religion, and both attempt to give answers that are no doubt clearer than religion's. However, both of them fail to give answers that are satisfactory and fulfilling on an overall basis, which is why religion still exists and still provides an answer based on faith in general but Jainism on facts.

Acknowledgments

This investigation is an outcome of extensive discussions with many Jain saints particularly with Acharya Vijay Sheel Chandra Suriji and Muni Kalyan Kirti Vijayji. I express my sincere respects ***"Namostu"*** to them. Encouragement from Achrya Kanajnandi ji gurudev motivated me to conceive the objectives of this investigation. Opportunity provided by Dr. Shekhar Chandra Jain to undertake this investigation is highly appreciated. I express sincere thanks to my colleagues Dr. Hari Om Vats and Prof. S. P. Gupta for reading the manuscript critically and giving valuable suggestions.

References

Caldwell, Robert R. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Caldwell,+R&fullauthor=Caldwell,%20Robert%20R.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Doran, Michael <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Doran,+M&fullauthor=Doran,%20Michael&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2005), Physical Review D, vol. 72, Issue 4, id. 043527

Chuzhoy, Leonid <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Chuzhoy,+L&fullauthor=Chuzhoy,%20Leonid&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Nusser, Adi <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Nusser,+A&fullauthor=Nusser,%20Adi&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2006, The Astrophysical Journal, Volume 645, Issue 2, pp. 950-954.

Gogberashvili, Merab <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Gogberashvili,+M&fullauthor=Gogberashvili,%20Merab&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Maziashvili, Michael <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Maziashvili,+M&fullauthor=Maziashvili,%20Michael&charset=ISO-

8859-1&db_key=AST>, 2005, General Relativity and Gravitation, Volume 37, Issue 6, pp.1129-1135

Ichikawa, K and <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Ichikawa, + K & fullauthor=Ichikawa,%20Kazuhide&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>Takahashi, T, <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Takahashi,+T&fullauthor=Takahashi,%20Tomo&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>2006, Physical Review D, vol. 73, Issue 8, id. 083526

Jain, Rajmal, 2006, submitted to Arhat Vachan, in press.

Kratochvil, Jan <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Kratochvil,+J&fullauthor=Kratochvil,%20Jan&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Linde, Andrei <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Linde,+A&fullauthor=Linde,%20Andrei&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Linder, Eric V. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Linder,+E&fullauthor=Linder,%20Eric%20V.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Shmakova, Marina <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Shmakova,+M&fullauthor=Shmakova,%20Marina&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2004, Journal of Cosmology and Astroparticle Physics, Issue 07, pp. 001

Lee, Seokcheon <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Lee, + S & fullauthor=Lee,%20Seokcheon&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Olive, Keith A. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Olive, + K & fullauthor =Olive,%20Keith%20A.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Pospelov, Maxim <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author =Pospelov,+ M & fullauthor = Pospelov,%20Maxim&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2004, Physical Review D, vol. 70, Issue 8, id. 083503

Livio, Mario <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Livio, + M & fullauthor=Livio,%20Mario&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2003, THE DARK UNIVERSE: MATTER, ENERGY AND GRAVITY / Cambridge University Press.

Nagamine, K. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Nagamine, + K & fullauthor = Nagamine,%20K.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Fukugita, M. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Fukugita, + M & fullauthor = Fukugita,%20M.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Cen, R. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author =Cen,+R&fullauthor=Cen,%20R.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Ostriker, J. P. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author =Ostriker,+ J & fullauthor = Ostriker,%20J.%20P.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST> 2001, Monthly Notices of the Royal Astronomical Society, Volume 327, Issue 1, pp. L10-L14..

Okamoto, Takashi <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Okamoto, T&fullauthor=Okamoto,%20Takashi&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>and Nagashima, Masahiro <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Nagashima,+M&fullauthor=Nagashima,%20Masahiro&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2003, The Astrophysical Journal, Volume 587, Issue 2, pp. 500-513

Peebles, P. J. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author=Peebles, + P & fullauthor=Peebles,%20P.%20J.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Ratra, Bharat <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Ratra, + B & fullauthor=Ratra,%20Bharat&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2003; Reviews of Modern Physics, vol. 75, Issue 2, pp. 559-606

Robertson, Brant <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Robertson,+ B & fullauthor=Robertson,%20Brant&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>;Yoshida, Naoki <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Yoshida,+N&fullauthor=Yoshida,%20Naoki&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Springel, Volker <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Springel,+V&fullauthor=Springel,%20Volker&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Hernquist, Lars <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Hernquist,+L&fullauthor=Hernquist,%20Lars&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2004, The Astrophysical Journal, Volume 606, Issue 1, pp. 32-45.

Shandarin, Sergei <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Shandarin,+S&fullauthor=Shandarin,%20Sergei&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Feldman, Hume A. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Feldman,+H&fullauthor=Feldman,%20Hume%20A.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Heitmann, Katrin <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Heitmann,+K&fullauthor=Heitmann,%20Katrin&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Habib, Salman <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Habib,+S&fullauthor=Habib,%20Salman&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2006, Monthly Notices of the Royal Astronomical Society, Volume 367, Issue 4, pp. 1629-1640.

Steinhardt, Paul J. <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form? author = Steinhardt,+ P & fullauthor=Steinhardt,%20Paul%20J.&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>; Turok, Neil <http://adsabs.harvard.edu/cgi-bin/author_form?author=Turok,+N&fullauthor=Turok,%20Neil&charset=ISO-8859-1&db_key=AST>, 2006Science, Volume 312, Issue 5777, pp. 1180-1183

Bibliography

Standard Astronomy and Astrophysics References

Bennett, Jeffrey, Donahue, Megan, Schneider, Nicholas, and Voit, Mark, The Cosmic Perspective, 2nd Ed., Addison Wesley, 2002

Blandford, R D, et al, Gravitational Lens Optics, Science 245, Aug 25, 1989, p824 Reference for gravitational lens <http://hyperphysics.phy-astr.gsu.edu/HBASE/astro/quasar.html>

Blatt, Frank J.,Modern Physics, McGraw-Hill, (1992)

Bowers, Richard and Deeming, Terry, Astrophysics I, Stars, Jones and Bartlett Publishers, Inc, Boston (1984).

Boynton, W. V., et al., "Distribution of Hydrogen in the Near Surface of Mars: Evidence for Subsurface Ice Deposits", Science 297, 81, 5 July 2002

Bradley W. Carroll <http://www.amazon.com/s/103-2230794-

6438237?ie=UTF8&index=books&rank=-relevance%2C%2Bavailability%2C-daterank&field-author-exact=Carroll%2C%20Bradley%20W.>, Dale A. Ostlie <http://www.amazon.com/s/103-2230794-6438237?ie=UTF8&index=books&rank=-relevance%2C%2Bavailability%2C-daterank&field-author-exact=Ostlie%2C%20Dale%20A.>,"Introduction to Modern Astrophysics", (2nd Edition), World Scientific. 2006

Colin, L, Encounter with Venus, Science 203, Feb 23, 1979, p743. (See also other articles on Venus in that issue.)

Cowen, Ron, The Once and Future Sun, Science News 145, p204 (1994)

Cowen, Ron, New evidence for planets orbiting a pulsar, Science News, p151, Mar 5, (1994).

Chaisson, Eric and McMillan, Steve, Astronomy Today, 2nd Ed., Prentice-Hall, (1997).

de Pater, Imke and Lissauer, Jack, Planetary Sciences, Cambridge University Press, 2001.

Dyer, J. W., Pioneer Saturn, Science 207, Jan 25, 1980, p400. (See also other articles about Saturn in that issue.)

Eberhardt, Science News 136, Oct 28, 1989 p279. Reference for COBE <http://hyperphysics.phy-astr.gsu.edu/HBASE/bkg3k.html>

Fraknoi, Andrew, Morrison, David and Wolff, Sidney, Voyages Through the Universe, 2nd Ed., Harcourt, 2000.

Guth, Alan, The Inflationary Universe, Addison-Wesley, (1997)

Halliday & Resnick, Fundamentals of Physics, 3E, Wiley 1988

Halliday, Resnick & Walker, Fundamentals of Physics, 4th Ed, Extended, Wiley, (1993).

Harwit, Martin, Astrophysical Concepts, 2nd Ed., Springer-Verlag, 1988.

Hsu, Frank H., The Physical Universe, An Introduction to Astronomy, University Science Books, 1982.

Irion, Robert, "Double Pulsar Gives Astrophysicists Many-Faceted Thrills", Science 303, 153, 9 Jan 2004

Kaufmann, William J, Universe, 3rd Edition, W.H. Freeman, 1991

Kleppner, Daniel, Where I Stand, Physics Today 47, Jan 94 p9 and A travel guide from above, Toner, Mike, Atlanta Journal Jun 3 1995, p E1. References for Global Positioning Satellites <http://hyperphysics.phy-astr.gsu.edu/HBASE/gps.html>

Krauskopf, K and Beiser, A, The Physical Universe, 7th Ed, McGraw-Hill, 1993.

Lemonick, Michael D. and Nash, Madeleine, "Cosmic Conundrum", Time Magazine, 58, Nov 29, 2004.

Levi, Barbara, COBE Measures Anisotropy in Cosmic Microwave Background Radiation, Physics Today 45, June 1992 p17. Reference for anisotropy in 3K <http://hyperphysics.phy-astr.gsu.edu/HBASE/bkg3k.html> and COBE <http://hyperphysics.phy-astr.gsu.edu/HBASE/bkg3k.html>

Maran, Stephen P., On the Trail of Comet G-Z, Sky and Telescope 70, Sep 85, p198.

Marion, Jerry B and Thornton, Stephen, Classical Dynamics 3rd Ed, Harcourt Brace Jovanovich, 1988. Discussions of orbital dynamics including the satellite sent

to monitor Comet G-Z

Ohanian, Hans, Physics, 2E Expanded, WW Norton 1989

Pasachoff, Jay, Contemporary Astronomy, Saunders, 1977

Reiner, M. J., Fainberg, J., and Stone, R. G., Large-Scale Interplanetary Magnetic Field Configuration Revealed by Solar Radio Bursts, Science 270, Oct 20 1995, p461-464.

Rohlf, James William, Modern Physics from a to Z0, Wiley 1994

Schramm, David, "The Big Bang Creation of the Universe", in Quarks, Quasars and Quandries, Ed. Gordon Aubrecht, Amer. Assoc of Physics Teachers, 1987.

Schwarzschild, Phys Today 46, Dec 93, p17

Shu, Frank, The Physical Universe, An Introduction to Astronomy, University Science Books, 1982.

Smith, New Eyes on the Universe, National Geographic 185, p 2 Jan (1994).

Snow, Theodore P, The Dynamic Universe, West Publishing, 1983

Stars, Time-Life Books, 1989

Tipler, Paul A., Physics for Scientists and Engineers, 3rd Ed, Extended, Worth Publishers, 1991

Trefil, James A., The Moment of Creation, MacMillan, 1983.

Ward, Peter D. and Brownlee, Donald, Rare Earth, Copernicus Books, 2000.

Weinberg, Steven, The First Three Minutes, Bantam Books, 1977. Reference for 3K background radiation <http://hyperphysics.phy-astr.gsu.edu/HBASE/bkg3k.html>

Young, Hugh D., University Physics, 8th Ed., Addison Wesley , 1992.

Zeilik, Michael, Astronomy: The Evolving Universe, 3rd Ed., Harper & Row, 1982

Standard Jainism References

Doctrine of Karman in Jain Philosophy By - Dr. H. V. Glasenapp <http://www.ibiblio.org/jainism/database/BOOK/glasenap.doc>, 1996

Pravachana Saar by Acharya Sh. Kanaknandi, 1996

Janinendra Sidhanta Kosh, Varni Jainendra Kumar ji, Bhartiya Gyanpith, 1978

<http://www.theosophicalsociety.gr/onlinelibrary/index.htm>

<http://www.sacred-texts.com/jai/5bodies.txt>

<http://www.umich.edu/~umjains/jainismsimplified/chapter08.html>

परमाणु – संख – ऽसंखा – ऽणंतपएसा अभव्वणंतगुणा।
सिद्धाणणंतभागो, आहारगवग्गणा तितणू ॥१८॥
अग्गहणंतरियाओ, तेयग–भासा–मणे य कम्मे य।
धुव–अधुव अच्चित्ता–सुन्ना चउ अंतरेसुप्पिं॥१९॥
पत्तेगतणुसु बायर–सुहुमनिगोए तहा महाखंधे।
गुणनिप्फन्नसनामो असंख भागंगुलवगाहो॥२०॥

(शिवशर्म सूरि प्रणीत कर्मप्रकृतिः)

पत्तेयतरुं मुत्तुं पंच वि पुढवाइणो सयललोए।
सुहुमा हवंति नियमा अंतमुहुत्ताऊ अहिस्सा॥

(जीवविचार : शान्तिसूरि)

40

SYADVADA AND STATISTICS

Dr. R. C. Jain

Summary :

Syadvada helps in knowing the manifold qualities of any object. The seven divisions of Syadvada give the complete knowledge about any object with respect to substance, space, time and attribute. The qualitative measure of the independent division "Syadavaktavya" can represent the probability of Statistics, and the seventh division of *syadavada* represents the range of probability under certain conditions.

1. Brief History and Introductions :

Non-violence and *anekanta* are the two fundamental principles of Jain philosophy given by Lord Mahaveer (599-527 B.C.), Under Anekantvada we have an important terminology "Syadvada" which means assertion with respect to a definite possibility. The first written description of Syadvada and its seven divisions were given by Acharya Kundkund (First Century A.D.) in his famous work "Pravachanasara". Acharya Samantbhadra (Second Centuary A.D.) also gave the description of Syadvada in his famous work "Aptameemansa". Many other Jain writers like Siddhasena Divakara, Mallisena and Pandit Vimaldas have given a good description of Syadvada and its seven divisions. Mahalanobis (1957) has also given a good account of syadvada with respect to substance, space, time and attribute. He has shown that Syadavaktavya is the probability in qualitative sense. Haldane (1957) considered the fourth division of Syadvada as an inexpressible quantity and illustrated through algebraic examples. Mardia (1975) has also discussed the same aspect and shown that they are close to the concepts of statistics. Kothari (1980) used the Syadvada mode for the illustration of the principle of quantum mechanics in Physics. In the present investigation, it is shown that "Syadavaktavya" is probability with respect to substance and attribute only. The seventh division represents the range of probability provided that Avaktavya can be represented in the quantitative form and the quantity lying between zero and unity.

2. Syadvada and Manifold Nature

The Jain Philosophy believes that a real thing has got a manifold nature and all the judgements are relative and are true under certain conditions. The knowledge of reality is possible only when the absolutistic attitude is denied. A thing is existent with respect to some set of "substance" "space" "time" and "attribute". The same thing is non-existent with respect to some other quadruple set. For the complete knowledge of a thing relative to a quadruple set can be discussed with the help of seven division of Syadvada.

The seven divisions are as follows :

(1) Syadasti

The thing exists.

(2) Syadanasti

The thing does not exist.

(3) Syadastinasti

The thing exists and does not exist.

(4) Syadavaktyva

The existence of the thing is in-expressible.

(5) Syadastiavaktvya

The thing exists and is inexpressible.

(6) Syadnastiavaktvya

The thing does not exist and is inexpressible.

(7) Syadastinastiavaktvya

The thing exists. does not exist and is inexpressible.

Out of these seven divisions Syadasti. Syasanasti and Syadavaktvya are independent divisions while the remaining four divisions are the combinations of the three independent divisions. The fourth division is quite important for the notion of probability is used in statistics.

3. Syadavaktvya and Probability

When the first and second divisions of Syadvada cannot be stated simulteneously for any object then the nature of that object becomes Avakatvya. Jain Acharyas discussed only the qualitative nature of Avakatvya and did not encourage the quantitative aspect. The quantitative aspect can be termed as probability under certain conditions. In probability theory we study the uncertainty of random experiments. The conditions for a random experiment are as follows :-

(i) For each experiment, all the possible outcomes are known in advance.

(ii) In any performance of the experiment uncertainty prevails about the outcome of the performance.

(iii) The experiment can be repeated under identical conditions.

In light of these condtions let us discuss situations where Syadavakatvya can

become probability used in Statistics.

Example : 1 : It is an example with respect to attribute assuming that the effect of substance, space and time on the experiment is negligiable. Any coin with two different faces will satisfy the first three divisions but for the fourth one we have to repeat the experiment of observing any face for a finite number of times. The quantitative form of Avakatvya is the probability of getting any face, which lies between zero and unity. The probability of getting both the faces at a time or none of them is zero because the occurrence of the faces is independent. For a fair coin the probability of observing any face is half when the experiment is repeated for a finite number of times.

Example 2 : It is an example with respect to substance assuming that the effect of space, time and attribute is negligible. A bag contains identical pieces of gold and silver and let the number be 'm' and 'n' respectively. The first three divisions of Syadvada are true with respect to either gold or silver. For the fourth division we have to draw a piece at random. The outcome of the draw may be a gold piece or silver piece. This uncertainty can be expressed in quantitative form which may be either m/(m+n) or n/(m+n), for gold and silver pieces respectively.

Example 3 : It is an example with respect to attribute, the effect of substance, space and time is negligible on the experiment. Let us consider two identical coins with head on one face and tail on the other side. Let the occurrence of HH is Syadasti then the non occurrence of HH/(Occurrence of HT',TH,TT) is Syadnsasti. The repetition of the experiment for a finite number of times gives the probability of HH which is nothing but the quantitative form of syadavaktvya. For a fair coin this probability is 1/4.

Example : 4 : It is an example of two objects each one is having two attributes. The effect of space and time is negligible on the experiment. Consider a coin with Prob. (H) = p and Prob. (T) = 1-p, Now there are two urns containing m_1 & m_2 white balls and n_1 & n_2 black balls respectively. The coin is tossed and if H turns, then draw a ball from Urn 1 otherwise from Urn 2 Let E be the event that the ball drawn is white. Now the event E is Avaktvya from two points namely (i) Coin and (ii) Urn. The white ball can come from either urn and is Syadasti and the non-occurrence of white ball is Syadnasti. But the occurrence of a white ball is not a sure event and therefore it is an *avaktvya* or probability. If the result of the tossing of the coin is known then the probability of getting a white ball from Urn 1 is and from Urn 2 is which are conditional probabilities. Similarly other conditional probabilities can be explained.

4. Range of Probability and Conculusions :

Let p represent the quantitative measure of *syadavaktvya* with respect to either substance or attribute or both then the seven divisions of Syadvada are given as under.

Division	Quantitative Measure
Syadasti	1 (Event is sure)
Syadanasti	0. (Event does not occur)
Syadastinasti	1 or 0
Syadavaktvya	p(0<p<1)
Syadastiavaktkvya	1 or p $\Rightarrow$0<p<1
Syadanastiavaktvya	0 or p$\Rightarrow$0 < p < 1
Syadastinastiaaktvya	0 < p < 1

The notion of porbability of simple or compound events can be obtained through the frame work of Syadvada.

Galileo (1564-1642) was the first mathematician who attempted to give a quantitative measure of probability. Later on Pascal (1632-62) and Format (1601-65) gave a foundation to the mathematical theory of probability. Acharya Kundkund (First Century A.d.) and Acharya Samantbhadra (Second Century A.d.) long back gave the qualitative aspect of probability and therefore their names should also be included in the list of contributors to the notion of probability.

REFRENCES

1. Acharya kundkund (1st century a.d.) "PRAVACHANSARA."
Edited by Dr. Hiralal Jain. Amravati, Maharashtra, Sholak 23, IInd Chapter.

2. Acharya Samantbhandra (IInd Century A.d.) "APTMEEMANSA" Shlok No. 15 & 16 1st CHapter.

3. Mahalanobis, P.C. (1957) The Foundations of Statistics, Sankhya, I.S.I. Calcutta, Vol. 18, Part 1 and 2. 183-194.

4. Haldane, J.B.s. (1957) The Syadvada System of Prediction, Sankhya, I.S.I. Calcutta, Vol. 18, Park 1 and 2, 195-200

5. Mardia, K.v. (1975) Jain Logic and Statistical Concepts. Sankhya, Antiquary, S.D. Jain Oriental Research Institute Arrah (Bihar).

6. Kothari, D.s. (1980) reality and Physics Some Aspects. Pandit Kailash Chandra Jain Abhinandan Granth, Rewa (M.P.) 365--373.

41

JAINISM : AN OVERVIEW

Shri Rama Kant Jain
Editor : Shodhadarsh

The system expounded and preached by the Jina, i.e., the conqueror of self, is known as Jainism and its adherents are called Jains. Jina is also known as Arahanta, the adorable one; Kevalin, i.e., possessor of absolute knowledge; Nirgrantha, the one without attachment; Shramana, the practiser of equanimity; and Tirthankara, the ford-finder, the one who establishes the path that takes people safely across the ocean of misery, the cycle of births and deaths, that is, the samsara, Consequently, Jainism has also been known as the creed of the Arahantas, Nigranthas, Shramanas or Tirthankaras. There have been innumerable Jinas or Arhantas, but only twenty four of them are designated as the Tirthankaras. The first in the series of the 24 Tirthankaras of the current cycle of time was Adinath Rishabhadeva. He belonged to remote pre-historic times and is believed to have been the first temporal as well as spiritual leader of mankind, who inaugurated the 'age of Karmabhumi'. The last three Tirthankaras were Arishtanemi, a cousin of Krishna Vasudeva of the Mahabharata fame (circa 1450 B.C.), Parshvanath (877-777 B.C.) and Vardhamana Mahavira (599-527 B.C.)

These Jinas or Tirthankaras were born as ordinary men, but they renounced the pleasures of the world and, by a course of self-discipline, asceticism and concentrated meditation, mastered the flesh, annihilated all the forces and influences obstructing spiritual development, and attained fullest self-realization and absolute perfection, bringing out to the full the divinity or godhood inherent in man. Then, for the well-being and happiness of all living beings, they preached what they themselves had practised and achieved. As such, Jainism is not a revealed religion and claims no divine origin.

Jainism starts with the scientific assumption that nothing is destructible and that nothing can be created out of anything which does not at all exist in one form or the other. It believes that the

universe is the conglomeration of all that exists, it is uncreated, real and without a beginning and without an end. The principal constituents of the cosmos are of two categories - animate objects and inanimate objects. The former comprise of an infinite number of independent souls in varying degrees of physical and spiritual development, and the latter consist of space, time the media of motion and rest, and matter in different forms.

With the simple dogma that the soul has been associated with matter from times immemorial, Jainism explains that the 'samsara' is the cycle of births and rebirths, as a remedy against which religion is needed.

The Jain theory of Karma is founded on the simple law of cause and effect. You reap what you have sown. Nobody can escape the consequences of his or her acts of commission and omission, good and bad. This doctrine provides a rational explanation for the diverse phenomena and experiences of life. At the same time, it does away with the necessity of any outside agency for rewarding or punishing living beings. The entire emphasis is on the development of strong will-power and conscious personal effort in order to thwart and annihilate the various adverse influences, the forces of the Karma, and in this way to effect spiritual evolution, leading to the ultimate goal, the very godhood, From where when there is no return to the samsara, the mundane world. This transformation of man into god is the realistic end of religious pursuit in Jainism for a sincere aspirant of the Truth. It provides a very positive approach that even an ordinary man can become not only a great man, but a superman by his strong will and good deeds if he so desires without depending on any outside agency like God.

As already stated, Jainism believes in Godhood, but it does not believe in a God as creator, preserver and destroyer of the universe. The Siddhas and the Arahantas represent the two types of Godhood, the former being the absolutely liberated bodyless pure souls and the latter, also known as the Kevalins, Jinas and Tirthankaras, are those who attain emancipation in life, becoming allknowing, all-perceiving, full of compassion for all and immune to all feelings of attachment and aversion, likes and dislikes. Only Arahantas and Siddhas are adored as deities and are worth adoring. After them come the true ascetic saints of the categories of Acharya, Upadhyaya and Sadhu who pursue thae path of the Jina in earnest and are revered by the householders. There is also a large pantheon of godlings, celestials or angels, who are superhuman. They are considered divine beings but not divinities of deities.

सम्यक्दर्शन (Right Faith), सम्यक्ज्ञान (Right Knowledge) and सम्यक्चारित्र (Right Conduct) are the Three Spiritual Gems (रत्नत्रय) in Jainism which lead the path to Liberation, Moksha or Nirvana. The practice of Jainism as a religion is built on the bedrock of self-realization, the entire conduct of the aspirant being imbued with the spirit of Ahimsa, sanctity of life, equity and equanimity, and the thinking process dominated by Anekantist Syadvada which manifests itself in a sympathetic understanding of other people's points of view, and in perfect tolerance.

(Note- The above write-up is based on my father Dr. Jyoti Prasad Jain's "Religion and Culture of the Jains" and "Essence of Jainism".)

42

JAIN HISTORY FORGOTTEN LINKS

Surajmal Bobra

The first forgotten link is the name of this country which was Bharat varsha it was promoted by its first emperor Bharat, the eldest son of Rishabhadeva who taught art of living to humanity. The second forgotten link is the History of India. It was written based on wrong concepts in last three centuries. British Historians ignored the natural flow of the civilization of the country and gave wrong pircutre of India. In this process Jain History has also been victimised.

Historical writings in India started in the 18th century as a result of estabilishment of the rule of the English East India company. In 1784 the Asiatic society of Bengal was founded which made significant contribution. Interest in Indian culture was aroused as number of European Universities where several scholars worked on Sanskrit and related subjects. The first printed edition of the four Vedas were brought out for the first time by German scholars.

Herman Jacobi published the translation of 'Kalpa Sutra' the important Jain record. Most alarming is that many hand written manuscripts were taken away by the scholars of western camp.

James Mill was utalitarian, He wrote History of British India which was published in 1817. He divided Indian History in to three parts, Hindu, Muslim and British. He was critical of Indian culture which he called to be barbarious and anti-rational.

According to him Indian civilization showed no concern for political values and India had been ruled by a series of despotic rulers. This book was prescribed at the Haileybury College and other Institutions where English officers were given training before they were sent to India. Such views must have effected the minds of these officers against India. They also wrote biased History.

These Indian Historians ignored the facts that Indian culture had not been borrowed From Greece or any other country. The people of India were civilized where as those of Europe were barbarians.

The British administrator scholars concentrated their attention on dynastic histories.

The emphasis on the study of dynasties led to the division of Indian history into ancient, medieval and modern periods. Ancient India was taken to begin from the coming of the Aryans up to about 1000 AD. Medieval period extended from about 1000 A.D. to the coming of the British in the mid 18th century. Ancient India was described as Hindu India or Buddhist India, and Medieval India was described as Muslim India. Emphasis was put on Buddhist, Hindu and Muslim religions. The result was that Hindu and Muslim predomination was accepted by both Indian and non Indian Historians of India. They presumed that there was nothing in India before the recitation of Rigveda Hymns.

However, that was incorrect. This periodization was misleading because it was based on the questionable assumption of Aryan Invasion, the acceptance of religion as motivating factor of change in Indian society, not visualising the effect of Geography on History, not estimating the deeplying fundamental unity of India, not studying the architectural remains of India, not studying the inscriptions, not searching the Jain puranic references and above all not understanding the people of India in their reality. These misconceptions were preached for 3 centuries. Now after freedom Indian Historians are trying to identify the realities and interlink the clues of Indian culture. Now it has been proved that nothing like Aryan invasion took place in India.

It has been accepted by Historians like maj gen J GR Furlong, FRAS, Prog. M.S. Ramaswamy Ayangar, Sir Shanmukham Chetty, G. Satyanarayan Murti, S.N. Gokhale, Dr. Hermann Jacobi etc. that Jainism existed even before the Rigveda Hymns were recited.

This thought is in relevance with Jain references which is well supported with Harappan and other Archeological remains. Puranic references and under lying cultural current of the Indian society.

This historical account has been given because the History taught even up to Nineteen sixties in India and abroad about India is full of semicorrect informations and in this Jain History has also been victimised. The British history has created misunderstandings betwen the Indian masses. They hypothicated the social break down in India which never happened. Inspite of religious differences, foreign invasions and natural calamities it remained one.

The third forgotten link is the social and cultural graph of India which has not been seen with social growth of people which was hampered by foreign invasions and so called social workers who in the guise made cruel efforts to change the religion of the people. Jain Tirthankers have been wrongly pushed in to the narrowline of religion only.

Any impartial student of Indian History can visualize that the genue flow of shramnik culture flowing from Rishabh to Parshwanath (Prior to Mahavir) was having its existence in whole of the country but growth of vedic culture made a serious cut to it. Jainism was compelled to centralise in few parts of Idia viz-central India,

Bihar, Udisa, Bengal, Andhrapradesh, Karnataka and Gujrat. Different Tirthankars (Prophets) tried to establish and propagate Ahimsa as the basic need of every society, which says "live and let live."

With the help of different Purans and other sources I have tried to develop a time tree of pre Mahavira period. It is just an effort to understand the cultural development of Indian society with a particular reference of Shramanic culture / the Jain Culture.

You will notice that Rishabhdeva, Suparshwanath, Pushpadant, Munisuvarat, Nemi, Parswa & Mahavira have been identified to have worked in transition period. We will evaluate it as under.

1. Rishbhadeva : The first to define Art of Living to self sufficient society. He preached the importance of work, writing, nature, Agriculture, law and learning in a society.

2. Suparshwa : He was the founder of Sindhu culture, which has been accepted as the oldest and well developed culture.

3. Puspadant : He tried to balance the society from the impact of Vedic culture which promoted Hawan and Bali. (Yagya and animal sacrifice)

4. Munisuvarat : He was born when society was divided in four *'varnas'* and social complications multiplied. In this period activities of Rama over whelmed the Indian society and the unity of Indian subcontinent was redefined.

5. Nemi : He was active during the period of Mahabharat. He was a cousin of Krishna the real Hero of Mahabharat. He preached Ahima while the whole nation was suffering from the disaster of Mahabharat. His existence has been accepted by most modern scholars in 15th century B.C.

6. Parshwa : He was born at Varanasi in 877 B.C. He stood against Rigidity of Vedic culture which was promoting violence in rituals, and religious activities. He tried to purge asceticism of corrupt practices and unnecessary torture of body, such as the *panchagnitapa*. The rise and development of spiritualist philosophy of the Upnishad in the Brahammical fold and almost complete extinction of violent Vedic services was mostly due to the teachings of Parshwa. He revived the teachings of the earlier Tirthankaras in very forceful manner and probably codified the main points of the doctrine as populary known Chataurayam Dharma. It appears his teachings were accepted in central Asia & Greece also.

7. Mahavir : He was born on the 30th March, 599 B.C. in Kundagram in Bihar. Mahavira's parents followed the teachings of Parshwa and were pious, virtuous and chaste in life. At about the age of 30, he gave away all his possessions in charity and renounced the world. He left home and took the vow of asceticism. For the next 12 years or so he devoted himself to self discipline and self purification, practicing the severest penance and austerities. He was free from resentment. No worldly enjoyment or amusement could allure or attract him.

He meditated day and night undisturbed, unperturbed, exerting him self strenuously to achieve the goal he had set before him. At last while sitting in transcendental spiritual concentration under a sala tree on the banks of the river Rjupalika the

town of Jrmbhika, he attained Kevalya, the supreme knowledge and intuition.

During the next thirty years as a great teacher he travelled on foot from place to place giving his message of peace and goodwill for the good and benefit of all living beings, without any distinction of race, caste, creed, class, age or sex. His first sermon was delivered at mt.Vipula, one of the five hills which surrounded Rajagraha, the great Magadhan capital in the year 557 B.C.

His first and foremost disciple and the head of his male ascetic order was Indrabhuti Gautam who was master of Vedic lore but submitted himself to Mahavira's knowledge.

Shrenik the king of Magadh was the first amongst many who became follower of Mahavira.

Lord Budha was contemperory of Mahavira and he expressed his honour for Mahavira many times. It has been now accepted that Budha first adopted *chaturayams* of Parswanath and than changed his mind.

I may tell you that no preacher of Jainism was only king. To preach Jainism one has to upgrade one self to the level of Sadhu. Kings participated in its expansion of their kingdom but in the end they had to accept the ascetic way of life.

The fourth forgotten link is the typical geographical condition of this plateau. Many times it appeared that North and South were two totally different zones, which was incorrect. Rivers and mountains created safety and disaster parrallely but religious background remained the same.

Early Jain History and Indian History are synonymous. Jain culture was known as shramanik culture and its existance has been accepted by Vedas & Purans prior to recitation of Vedas. Harappan remains and other *puranic* description speak that there was a society which was very much advanced. It knew Politics, Economics, Writing, Science, management of living, Industry & Business Management, art & culture, city and harbour planing and above all philosophy resulting in Dhyan, Kayotsarga and nudity being the principle to develop the individual ability by leaving things and become unattached with worldly things to attain ultimate peace. This culture is visible and depicted in Harappa remanins. We should note that Harappa culture existed from the North and the South and East to West Before 3000 to 7000 years before Christ. Its root may be even more deep and spread may be large. It is so estimated because descriptions of Purans and life style of Harappan culture appears to be similar. Please look to few sides of architectural importance.

The fifth forgotten link is ignorance about architectural remains. There are hundreds of remains and Historians could not reach to them and could not spell them properly. Take an example of shravanbelgula and kumargiri hills. Shravanbelgula tell us about chandra Gupta Maurya and kumargiri open the secrets of king kharavela-but Historians could not tape them. They Hypothicaled more and neglacted the proofs.

1st slide is the reproduction of a seal collected from ruins of Mohanjodaro. Some scholars have described this as- "in second row one saint is standing in Kayotsarg posture. Near the bull one shravak (his disciple) is worshiping him. In lower row 7

other saints are doing Dhyan Meditation. It is inter preted that it is connected with the Jains. The script on the top could not be read uptill now."

IInd slide is depicting nude figure in Kayotsarg poisture. This too speaks of connectivity with Jain culture. It was found from Harappa. None except Jains have a message of nudity.

IIIrd slide is the inscription of Kharavela on Udaigirihills which tells us that powerful king Kharavela ruled Kalinga, defeated yavans and safeguarded the freedom of the country and brought back the Kalinga Jin murti of Adinath from Magadh. (Details are given in History of Kharavela)

IVth side is of king Kharavela with his two queens who took many steps for the welfare of the society.

Vth is the slide of caves made at Udigiri-Khandgiri for the saints as many monks were leaving in udayagir & Khandgiri hills and it was a great centre of Jain teachings.

VI the is the slide of sirkap Stupa located in Taxshila. Sirkap stupa has double? headed eagle which is similar to found in Mathura and other Jain architeactural remains. Taxshila was well developed in 4th century BC before the arrival of Allexander.

VII th is the slide of Ayagpatta depicting form of stupa; exccavated from Kankali tila Mathura. In Vividh Tirth Kalpa by Haribhadrasuri it has been mentioned that there was golden stupa at Mathura devoted to Suparshvanath which was renovated during the period of Parshwanath and which was visited by Kharavela also.

VIIIth is the slide of picture of Parshwanath. A very old image made of *kansa* (Alloy of coper & Tin) preserved in Bombay Museum. Its right hand and serpent canopy have been damaged. It is also not known from where it was found but its style and form resemble to that of Harappa seal of dancer. This means that the image was built in mohanjodero style and techinqne. This is also sure that it must have been built after 877 Bc. 777Bc. which is the birth and death year of Bhagwan Parshwanath.

These are few architecultural evidences which act as the links between pre Mahavira Jain History. These evidences of Jain History of past.

The sixth forgotten link is that Jains could not make it clear as to why Jains were in such small number inspite of its strong philosophical and political background? The apparent reason is that change of religion is never proposed by power and purse by Jains. It is personal vigilance which makes a person Jain.

Although Jainism was followed by chain of emprerors in different pericds and political and economic controls were in the hands of Jains but Jain Sangh was always limited. Perhaps Jainism never preached and under took change of religion (Dharma pariwartan) by power. It believed in self (Atama) development and all those who believed in Jain thought became the part of Jain Sangh.

Jains followed Ahimsa-accepting the existance of all living beings. (Hence, use of sword and power in preaching relegion was never used,) and parallely they believed in Anekant and Syadvad means Jains never hated others religious thoughts

and style of living and accepted the right of existence of different thinking. Jain Sangh had one more obstacle in enlarging number of its followers and it was that the Jainism preached, Tyag-worldly detachment with this and doctrine of achieving the ultimate liberation "The Moksha" only by Right knowledge, Right Conduct, code for the Laity, Lay seekers, Twelvevows, Six daily duties-Eleven Pratimas (Stages)-Rules of ascetism Dhyan-Yoga and Ahimsa, this cuts physical & worldly pleasures. Hence, till some one does not under stand the deep thought of Jainism he fears to accept it. But the logical built up ot Jain philosophy and the discipline which its followers are expected to adopt has made a strong ground for the continued flow of Jainism in India. Many school of thoughts became feeble in course of time but Jainism survived. The devotion which Jain Sangh had for its principles gave it long life and one can very well estimate that with the enlargement of education and print media the world is now attracted toworlds the message of Jainnism. Perhaps the present suffering world is now attracted towords the massage of Jainism. Perhaps the present suffering world needs the hand of Jainism as a relaible friend.

The seventh forgotten link is the absence of alertness of Jain society to stand against world authors who are representing facts in semicorrect manner. For example we look at. the book 'Britanica ready reference Encyclopedia' - Volume IV page 123 which narrates about Ganga Dynasty - Either of two distinct but remotely related Indian dynasties. The western Gangas ruled in Mysore state C.AD; 250-1004. They encouraged scholarly work, built some remarkable temples, and encouraged cross-peninsular trade. The Eastern Gangas ruled Kalinga from 1028 to 1434-35. They were great patrons of religion and the arts. The temples of Ganga period rank among the masterpieces of Hindu architecture. Both dynasties interacted with the Chalukya & Chola dynasties' Here itis important to note that south Ganga rulers were followers of Jainism. They supported Jain centres of education and helped building many Jain temples. The omission of this information spreads the message of no existance of Jains.

Links of Jain History 15th cent. BC to 1st cent. BC.

Dynasty	Period	Capital	Details
Nemi Nath	Yadu Yadava started from King Hari Long back	15th Cent. BC were compelled to shift their capital from Shouripur to Dwarka due to conflict with Jarasandh the then ruler of Mathura.	Dwarks •Neminath & Krishna were Yadava's cousins • Kurus and Pandvas were in conflict and the capital was Hstinapur. War of Mahabarat took place in which whole country was involved. Vedic culture which preached division of society in 4 Varnas, Yagya and animal sacrifice made kings and Rishis can not understand

			and lusty for power. • Krishna acted asapolitical and social leader but failed and had to involve in war. • 'Gita' was recited by Krishna in warfield. Gita has Many indications supporting Jain thinking. • Disaster of Mahabharat raised a question amongst the masses about the failure of Vedic system of life. • Here Neminath revolted and Shramnik culture with Ahimsa was repopularised. • Vratya kshtris and Nagas became powerful. They were from Dravidiyan race & Jains. For 5 Centuries sharaman Jain and Vedic Culture existed together but shraman Jains were more powerful.
Nag	10th-9th Cent. BC 8th-7th Cent. BC	Hastinapur Benaras Rajgrahi Magadh	Belonged to Drawadiyan shraman Culture. (No proper name is identified) • Brahma Datt chakravarti • Parshwanath • Shishunag was brought from Benaras
Mahaveer	6th Cent. (587 to 535 BC)		• Shrenik-Bimbisar first desciple of Mahavir of civilian order. Vaishali, Videha & Malla, Champa were other powerful capitals kunik Ajatshatru.
Nanda	6th to 5th cent. BC 5th cent. BC (467 to 449 BC) 5th Cent BC (449 to 407 BC) 5th-4th	Kusumpuri/ patliputra Patliputra	•Udayin • Vratyanadi Sishunag was promoter of Nanda Dynasty. Nandi Vardhan Kakvarn KalaShok invaded kalinga. and brought kalinga Jin murti to patliputra.

	Cent Bc (407 to367 BC)		• Mahanandin.
	4th cent. BC (367-363 BC-329-317 BC)		• Mahapadmanand ruled whole India in 326BC. Alaxander attacted India but returned disgusted. In 317BC, he was dethroned by Chandra Gupta & chanakya.
Maurya	4th 3rd Cen BC 317 to 299BC	Patliputra	• Chandra Gupta Mauraya Chanakya was his Prime-Minister. Whole India was under his control. He was the follower of Jain Saint Bhadrabahu. He became Jain sadhu and died in sharvan belgula in 290 BC. He defeated sellukas in 305 BC and extended his relations., with north west countries Magesthenese came to Patliputra and wrote about the country and king.
Chankya			
	3rd Cent. BC 298 to 273 BC		• Bindusar/Amiraghat was follower of Jainism and ruled the country in rightway.
	3rd Cent. BC 273 to 236 bC		• Ashok honoured Jainism - Buddhusim & Hindusim. Ruled the Country with efficiency and in strict manner. He was a great ruler and promoted Ahimsa with mercyful attitude for living being in the last phase of life after Kalinga war.
Ashoka inscription at Girnar			
		Patliputra & Avanti	• Kunal Samprati: Dashrath Samprati did a lot for Jainism. Temples etc are existing referring to his Name. Shalishuk, Devavarman ruled but Maurya dynasty ended : Jain Links broken.
Chedi/ Cheti	1st Cen. BC	Kalinga	Emperor El. Kharavela (Details seprately givien). Major Link of Jain History.

All Arahatas / Tirthankars are social revolutioneries. Actually they all revolted against the existing social set up and disorder growing from human desire and lust for power. The most important point to underline is that all of them believed or thought of Ahimsa and salvation of soul, in resulted in continuous flow of Jainism. In this course *vedic* thought of *yagna* and *bali*, Budhist thought of typical controversial Ahimsa also got attacked. These thoughts tried to revive in India in many ways but they had to change their principles and face also. Thought of *upnishad* is the result of that. But we will find that inspite of lapse of thousands of years and creations of thousands of worshipping idols other religions are facing controversy and followers are appearing to be illogical and blind. In this imbalance of thoughts and their application, Jain School of thought has maintained its balance which it had in times of Rishabh, Suparshwa, Nemi, Parshwa or Mahavira, even till this date. Jain canons are imparting message in the same impartial manner. The main thought of Ahimsa, coexistance and salvation is unchanged. These principles were so scientific that they enlarged but they did not shrink in spite of Brahmanical attacks. Even in modern age not concept because concept & principle are the same these principles are equally logical and most needed. Lapse of time does not mean rigidity. Jainism has given birth to Anekantvad the thought to understand others by applying the principle of relativity.

Athought Tyag & Tapasya is the theme of Jainism but it has always proposed respectable provisions for wordly leaving with family and economic growth. Live the disciplined life as suggested by right knowledge, follow the path of right conduct and one will be successful in his life. At the same time one would develop the desire for Tyag. This will open the path for Tapasya and Moksha will be within the reach become in the reach of every soul. In this course of life there is no fight for difference of opinion. No hatred for any living being.

Jainism never preached hatred for human or self. Some thinkers have wrongly understood *tyag* and *tapasya*. Jainism has always insisted that human being is very precious. The span of human life gives us a time to understand ourselves and act accordingly. Janism is friend which proposes for selfless society with high order of socio-economic growth but with discipline. In the course of activities of life no one should forget that the ultimate aim is the liberation of Soul-the Moksha.

The Jain Society / Sangh may be small in number but has very logical plans in its living. It is not guided by any "fatwa" or "dogmas". Jain Sangh lives in search of truth, lives the life of good conduct. It is not hypocratic. It is national in its thinking and believes in the growth of every individual Soul.

A man who believes in Ahimsa, follows the path of right knowledge and right conduct is Jain. Summerily those who believe in Ahimsa (Non violence), follow path of right knowledge and right conduct are Jains. We can call him the member of Jain Sangh. In Jain Sangh there is no restriction. No body has to take any oath. It is a free society with pious and disciplined life.

43

JAIN RELEGION AND SCIENCE

Dr. Sudhir Vadilal Shah *(Ahemedabad)*

Jain philosophy is supposed to be the oldest of all philosophies, older than vedant and Buddhism. . References of Lord Adinath are found in holy Vedas. Also references are found about Jain deities in other vedic scriptures.

Jain Darshan – or Jain philosophy is a complete philosophy. It is perfectly logical and explains almost everything about the world and its functioning. It offers perfect knowledge, way of life and ethics and precise steps of liberation. It has a classic karmic theory and has its own philosophic theory of relativity. It has looked upon Ecological balance carefully. By following Jain doctrine world peace can be achieved.

Omniscient Lord Mahavir, out of compassion, applied the Gyana and created a path basically for the spiritual uplift and liberation of the soul. In addition, this path also leads to physical well being, mental peace, emotional control and thus total health of an individual, without any doubt.

What he preached, has turned out to be permanent and absolute truth – hence the super science. He was the greatest scientist the earth has ever seen. His preaching and teachings are compatible with principles of the modern science : i.e. Physics, Biology, Chemistry, Psychology, Astronomy, Physiology and Medicine etc.

Actually, science is merely one part of Jain religion. If we take science, then right from atomic science to Biological sciences, from Mathematics to Astronomy , from laws of motion to speed of particles, from psychology to precise classification of living beings, from music and its effects to effects of penance on positive health we would find everything depicted in Jain religion and philosophy. Interestingly, the language is of a religion, but knowledge is of pure science. Jain ideology is a Science applied for the liberation of human being!

For example, following points have been taken from the 5th

chapter of Tatvarthadhigam Sutra (the first ever text book of science of mankind) written / compiled by Rev. Acharya Shri Umaswatiji. in the first century. These verses talk about the atomic science.

Atomic science

Tatvarth Sutra : P.P. Umaswatiji : 1st Century

*Anavah skandhas cha – Matter has two varieties : atoms and clusters. (5/25)

* Samghata-bhedebhya utpadyante – Clusters are produced by fission, fusion or both.(5/26)

*Bhedad anuh - Atom is the final product of fission-disintegration.(5/27)

*Atom – indivisible unit

* Bheda- samghatabhyam caksusah : The visibility of clusters is produced by the combination of disintegreation and reintegration.(5/28)

* Utpada- vyaya- dhrauvyayuktam sat :Origin., Cessation and persistence constitute existence.(5/29)

* Tadbhavavyayam nityam – what remains it is : eternal : Universal matter(5/30)

* Snigdha- ruksatvad bandhah – Atomic integration is due to their tactile qualities of viscosity and dryness (positive and negative charges). (5/32)

* Na jaghanyagunanam – There cannot be integration of atoms (and clusters) that possess the minimum one degree of viscosity or dryness (5/33).

· Gunasamye sadrasanam – Atoms with same degree of charges cannot integrate.(5/34)

Here,. formation of matter,concept of universal matter, atomic fusion, integration and disintegration of matter, constancy and transformability of objects – all high principles of atomic science- physics are discussed. The concepts of subatomic particles are even mind boggling.

Surprisingly, the most basic and vital theories of modern science, Physics in particular are depicted in Jain philosophy in short verses. The principles of reality, constancy of mass, law of entropy, laws of motion and inertia, quantum theory, relativity theory, laws of energy, telepathy, teleporting, properties of sound, power of mind all are wonderfully discussed in an eloquent manner with applications of them for the upliftment of mankind and finally sublimation of the soul.

The major and immediate concern of a human being is health. The principles of Jain religion are most compatible and most relevant in present context for reinstating total physical and mental health, creating a positive health and removing diseases.

The rituals & sixavshyak (including Samayik, Pratikraman), six internal & external Tapas(Penance), the austerities, (Ekasana, Aymbil) the laws of food & eating habits (Aharvigyan), avoidance of Ratribhojan & Vigai & exclusion of food with Mahavigai, the positive effects of Kayotsarga & Jain mediation, the Bhavanas (attitudes) laid down in philosophy are all really promoting positive health & bring perfect physical, mental, emotional & spiritual health. Each of these practices is found highly scientific & if further research is done in modern Experimental way, a great service to the society can be done, really.

There are so many things...written in the Jain texts, which can not be well interpreted with the present knowledge of science. Jainism gives direction for new research in the field of energy, karmic bonds, velocity, psychology, ,food, health etc .Let us concentrate our research on these and give the world the best of our religion..

A few examples...Shri.. Jagdishchandra Bose rediscovered about life in plantation. Jain religion has depicted life not only in plant kingdom but also talked about living beings in the air, earth, water, fire. Let us do research on it, & give the world direction. Let us go further, Jain Darshan has offered karmic theory – which perhaps has some relation to genetic coding logically. In fact, Karmic coding is more precise & perfectly logical, while genetic coding is yet not.

Similarly, Jain Syadvada & Anekantvada are more universal & have no loopholes, as compared to the famous theory of relativity, which scientists are now finding deficient. Simple Tithivigyan has been found on great observations of effects of Lunar & Solar

Cycles on change of PH & total water content of human body , This is ultimately reflected in certain health issues of human body & hence avoiding certain alkaline food on those days should be a good & healthy practice. In fact, every single rule in Jain Darshan has a science behind it, as Lord Mahavir was Omniscient. Our Modern science can have and has limitations & therefore we have to change our views every now and then. While Jain Darshan is shaswat & does not need to change.

Whatever mistakes we perceive in the religious texts , could be interpretation errors or perhaps science may evolve for our understanding of those facts ,or may be there were errors in translation or some texts are missing. We have to keep faith in our religion., Yes, absolute faith & devotion. A woshiping temperament, rather than egoistic ruthless attitude. . We should thus first develop Samyak Darshan, to understand our great religion.

Let us all relearn what has been given to us an invaluable inheritance. Let us be proud of it. But more than that, let us do further research and apply it for human and animal welfare, world peace .However , our motto should be constant awareness and self-liberation

44

એક શિક્ષકનો આત્મા તથા સફળ વ્યવસ્થાપક

શ્રી દિનેશચંદ્ર સી. ગાંધી *(અમદાવાદ)*

સાધર્મી તથા સાવ્યવસાયિક ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન ને ઘણા સામાજીક અને ધાર્મિક પ્રસંગે મળ્યો છું. તેઓ એક સદાય આનંદી, સ્પષ્ટ વક્તા અને ઉત્તમ કેળવણીકાર છે. હિન્દી સાહિત્યના પ્રખર અભ્યાસી, જાણકાર તથા ઉત્તમ વક્તા છે. તદ્‌ઉપરાંત તેમનો જીવ-આત્મા શિક્ષકનો છે. વળી, કુશલ વ્યવસ્થાપક, કુશળ સામાજીક કાર્યકર અને જૈન ધર્મના ઊંડા અભ્યાસી છે. કોઈની પણ શેહશરમમાં આવ્યા વિના તેમને જે સત્ય લાગે, જે વાત ન ગમે તે સ્પષ્ટ વક્તા તરીકે જાહેરમાં કહી પણ દે છે.

આવા ડૉક્ટર શેખરચંદ્ર જૈનના જીવન પર દૃષ્ટિપાત કરતા જણાય છે કે તેઓ આજીવન અધ્યાપક રહ્યા છે. સન ૧૯૫૬માં એસ.એસ.સી. પાસ કર્યા પછી તેઓએ બેંકમાં ક્લાર્ક તરીકે કામ કરવાની ઓફર મળી હતી. પણ તેઓએ કહ્યું 'મારે કારકૂન થવું નથી' અને પછી તેઓએ પસંદગી ઉતારી અધ્યાપક થવાની, અને ૧૯૫૬માં તેઓ અમદાવાદ મ્યુનિસિપલ કોર્પોરેશનની સ્કૂલમાં 'ટિચર' બન્યા. તેઓને પૂછ્યું કે આ ક્ષેત્ર જ કેમ પસંદ કર્યું તો બોલ્યા 'આ કાર્યમાં એક તો માનસિક શાંતિ મળે છે. બીજુ બાળકો સાથે સતત રહેવાથી ચિત્તમાં પ્રસન્નતા રહે છે અને સૌથી મહત્ત્વપૂર્ણ કે આગળ ભણવાની સગવડ રહે છે. હા! એક વાત એ પણ છે કે પરિવારને આર્થિક મદદ પણ થાય છે. આ વ્યવસાયમાં ઝૂઠ અને માયાચારી હોતાં નથી.'

તેઓએ મેટ્રિક થી બી.એ. સુધીનો અભ્યાસ પ્રાથમિક શિક્ષક તરીકે નોકરી કરતા-કરતા પૂર્ણ કર્યો અને પછી આર.વી.એમ. કે ગર્લ્સ હાઇસ્કૂલમાં માધ્યમિક શિક્ષક તરીકે જોડાયા. અહીં તેઓએ બે વર્ષ સુધી અધ્યાપન કાર્ય કરતા કરતા એમ.એ. સુધીનો અભ્યાસ કર્યો અને ૧૯૬૩ થી તેઓ કોલેજમાં વ્યાખ્યાતા તરીકે જોડાયા અને ૧૯૬૩ થી ૧૯૯૭ સુધી અમરેલી, રાજકોટ, સૂરત, અમદાવાદ, ડાકોર, ભાવનગરની કોલેજમાં અધ્યાપન કાર્ય કરી છેલ્લે અમદાવાદની લૉ સોસાયટીની સદગુણા સી.યુ. શાહ આટર્સ કોલેજમાંથી નિવૃત્ત થયા. આમ તેઓએ ૪૧ વર્ષ સુધી પ્રાથમિક થી કોલેજ સુધી અધ્યાપન કાર્ય કર્યુ. જ્યારે હું તેમના સંપર્કમાં આવ્યો અને પૂછ્યું-

પ્રશ્ન : આપને આ ત્રણે સ્તરો ઉપર અધ્યાપન કાર્યમાં કેવો અનુભવ થ'ો?

ઉત્તર : ગાંધી સાહેબ, પ્રાથમિક શાળામાં નાના નાના ભૂલકાઓનો નિર્દોષ પ્રેમ પ્રાપ્ત કર્યો. તેઓ મારા મને નાના ભાઈ-ભત્રીજા જેવા લાગતા. હું હિન્દી સ્કૂલમાં હતો અને આવી સ્કૂલ લગભગ ગરીબ-મજૂર વિસ્તારમાં હતી. અને ત્યાં લગભગ ૯૮ ટકા વિદ્યાર્થીઓ ખૂબ જ ગરીબ-નિમ્ન મધ્યમવર્ગના મીલ મજૂરો - નાના વેપારીઓ - ફેરિયાઓના બાળકો ભણવા આવતા હતા. તેઓની પાસે પઠન સામગ્રી તો શું પરંતુ સારા કપડાં પણ ન હતા. પણ તેઓમાં જે ગુરુભક્તિ હતી તે અવર્ણનીય હતી. મારી કે ગમે તે અધ્યાપકની સેવા કરવામાં તેઓ ખૂબ જ ઉત્સાહ બતાવતા હતા. હું પણ તેઓને ખૂબ જ સારી રીતે વાર્તાઓ કહેતો - રમતો રમાડતો- ચિત્ર વગેરે દોરીને ભણાવતો હતો.

માધ્યમિક શિક્ષણમાં, બે વર્ષ, યૌવનના દ્વારા પગ મૂકતી મુગ્ધ કન્યાઓને ભણાવવાનો મોકો મલ્યો. રાયપુર વિસ્તારની આ શ્રેષ્ઠ હાઈસ્કૂલમાં શહેરના મધ્યમ વર્ગની બાળાઓ ભણવા આવતી. આ સ્કૂલમાં જૈન કન્યાઓની સારી સંખ્યા હતી. મારી ભણાવવાની શૈલી વગેરેથી તેઓ ખુબ જ પ્રસન્ન રહેતાં અને એક મોટા ભાઈને અપાય તેવો નિર્દોષ પ્રેમ આપી અભ્યાસ કરતાં.

૧૯૬૩માં સર્વપ્રથમ અમરેલીની 'કામાણી સાયન્સ એન્ડ આર્ટ્સ કોલેજ'માં જોડાયો. વાતાવરણ એકદમ નવીન, વિદ્યાર્થીઓ યુવા-યુવતિઓ બધામાં યૌવનનો થનગનાટ. હું પણ તે વખતે ૨૫ વર્ષનો યુવાન એટલે વિદ્યાર્થીઓ સાથે ખૂબ જ મૈત્રીના સંબંધો બંધાયા. તેઓ જાણે મોટાભાઈ સાથે વર્તે છે તેમ સન્માન અને લાગણીથી વર્તતા. આ ગધ્યાપચ્ચીસી ઉંમરમાં ભણાવાનો આનંદ પ્રાપ્ત થતો અને પછી આવી જ રીતે રાજકોટ, સૂરત અને પ્રથમ અમદાવાદની ગિરધરનગર કોલેજ,પછી ભવન્સ કોલેજ -ડાકોર અને પછી ભાવનગરની કોલેજમાં અધ્યાપન કાર્ય કરતા-કરતા યુવાઓને સારી રીતે જાણી શક્યો. તેમની સાથે રહી હું જાણે પોતે યુવાન જ રહી શક્યો.

પ્રશ્ન : આપ કોલેજમાં માત્ર અધ્યાપન કાર્ય કરતા હતા કે અન્ય પ્રવૃત્તિઓમાં પણ ભાગ લેતા હતા?

ઉત્તર : ગાંધી સાહેબ, આપ તો પોતે અધ્યાપક અને આચાર્ય રહ્યા છો અને જાણો છો કે ઉત્સાહી યુવા પ્રાધ્યાપક માત્ર અધ્યાપનથી સંતુષ્ટ થતો નથી. તે અનેક પ્રવૃત્તિઓમાં રસ લે છે. અને તે પ્રમાણે મેં પણ તેમ કર્યું હતું. હું પ્રાથમિક શાળામાં પોતે નાટકમાં ભાગ લેતો અને નાના બાળકોને નાટકોમાં, પાત્ર યોગ્ય અભિનય કરવાની તાલીમ આપતો હતો. હું પોતે મારા અભ્યાસ દરમ્યાન કોલેજોમાં નાટક, ગીતોમાં ઈનામ મેળવી ચુક્યો હતો અને તેનું પ્રતિબિંબ બાળકોમાં જોતો હતો. અમરેલી કોલેજમાં તો હું આવી સાંસ્કૃતિક પ્રવૃત્તિઓનો ઈન્ચાર્જ પ્રોફેસર હતો અને યુવક મહોત્સવમાં ટીમોનું નેતૃત્વ કરતો હતો.

સૂરતની નવયુગ કોલેજમાં તો હું એન.સી.સી.ની ટ્રેનીંગ લઈ સેકન્ડ લેફ્ટેનન્ટ અને કંપની કમાન્ડર રહ્યો અને કોલેજની શિસ્ત સમિતિનો ચેરમેન હતો. ગિરધરનગર કોલેજમાં અનેક સમિતિઓના ચેરમેન તરીકે કામ કર્યું હતું. પણ મને સૌથી વધુ મારી ઈત્તર પ્રવૃતિત્ઓમાં શક્તિ અને દૃષ્ટિ બતાવવાનો મોકો ભાવનગરની 'વલિયા આર્ટ્સ એન્ડ મહેતા કોમર્સ કોલેજ'માં મળ્યો. અહીં હું સિનીયર મોસ્ટ અધ્યાપક હતો. પ્રારંભી જ આચાર્યનો ચાર્જ સંભાળતો. વિદ્યાથિઓને દિલ્હી જેવા સ્થાને ઓશિયા-૭૨માં ઈન્ચાર્જ તરીકે લઈ ગયો હતો. અનેક સમિતિમાં ચેરમેન રહ્યો. આમ શિક્ષણની સાથે વિદ્યાર્થીઓને લગતી અનેક પ્રવૃતિત્ઓમાં સક્રિય રૂપે રસ લઈ તે કાર્ય કર્યું.

પ્રશ્ન : તમો અતિ લોકપ્રિય અધ્યાપક રહ્યા છો તેમ હું જાણુ છું. તેનું રહસ્ય શું ?

ઉત્તર : ગાંધી સાહેબ, અધ્યાપન કલા મને જન્મથી જ પ્રાપ્ત થઈ છે. વસ્તુને સમજાવવા માટે હું ક્યારેય ભારે શબ્દો વાપરતો નથી. વિષયને કેમ સરળ બનાવાય તેની સતત કાળજી રાખતો હતો. પ્રભુની કૃપાથી વક્તવ્યની કળા મને જન્મથી મળી છે. હું દરેક વિષયને વિવિધ સાદા ઉદાહરણોથી, રસપ્રદ વાર્તાઓથી સમજાવી શકુ છું. જેથી વિદ્યાર્થીઓને રસ પડે છે. ઘણી વખતે અનેક કાવ્ય પંક્તિઓ પણ રજુ કરું છું જેથી વિષય રસપ્રદ બને છે અને વિદ્યાર્થીઓમાં પણ રસ-જન્માવે છે. પછી આપ જાણો છો કે હું હિન્દી સાહિત્યનો વિદ્યાર્થી અને તેનો જ અધ્યાપક એટલે સાહિત્યિક રૂચિ હોવાથી અને હું પોતે રચનાકાર હોવાથી હું વિષયમાં સાંગોપાંગ લીન બનું છું માટે વિદ્યાર્થીઓનો પ્રિય પાત્ર બન્યો. ઘણી વખતે મારા વર્ગમાં અન્ય વિષયના વિદ્યાર્થીઓ પણ આવે, અને સાહિત્યનો આનંદ પ્રાપ્ત કરે. આ કારણે એક અધ્યાપક તરીકે મને ખુબજ વિદ્યાર્થીઓની ચાહના પ્રાપ્ત થઈ છે.

પ્રશ્ન : આપ મહાવીર જૈન વિદ્યાલયમાં ગૃહપતિ, કોલેજમાં આચાર્ય અને એન.સી.સી.માં કમાન્ડર રહ્યા છો તો આપનો વ્યવસ્થાપક તરીકેનો અનુભવ કેવો હતો? શું અધ્યાપનમાં આ બાધક બન્યું છે?

ઉત્તર : ના, અધ્યાપનમાં આ બાધક બન્યા નથી. મેં પ્રારંભી જ જીવનમાં એવી વ્યવસ્થા રાખી છે કે જ્યારે જે કાર્ય કરતો હોઉં ત્યારે તે અંગે જ વિચાર કરું છું હું ગૃહપતિ કે આચાર્ય પદને કારણે અધ્યાપન કાર્યને હાનિ થવા દેતો નહોતો. મારી ટેવ રહી છે કે સંબંધોને સારા રાખવા હોય તો તેને જુદા જુદા સંદર્ભોમાં જુદી જુદી રીતે મુલવવા જોઈએ.

ગૃહપતિ તરીકે હું શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલય (બાળકો માટેની હોસ્ટેલ)માં માત્ર તેનો રક્ષક ન હતો પણ વિદ્યાર્થીઓનો વાલી પણ હતો. તેમને મા-બાપ બંનેનો પ્યાર-હૂંફ તો આપતો પણ સાથોસાથ તેઓ સંસ્કારી બને તે માટે શિસ્ત, સંયમ, સમયની પાબંદી, અભ્યાસ પ્રત્યે સભાનતા અને ધાર્મિક ક્રિયાઓમાં જાગૃતિ લાવવા સતત પ્રેરણા આપતો અને જરૂર પડે તો તે માટે શિખામણની સાથે કડક શિક્ષા પણ કરતો. હું તેઓને સારી સગવડ, ઉત્તમ અને પૌષ્ટિક ભોજન મળે તેની કાળજી લેતો. સાથે ધર્મને અનુરૂપ મર્યાદા જાળવવાનો સતત આગ્રહ રાખતો. હું સ્પષ્ટ માનતો કે આ વિદ્યાર્થીઓ માત્ર ડિગ્રી નહીં પણ જૈન સંસ્કાર પણ પ્રાપ્ત કરે. મારે ગર્વ સાથે કહેવાનું મન થાય છે કે ભાવનગરની અમારી શાખા ભારતની સાત-આઠ સંસ્થાઓમાં પ્રતિષ્ઠિત ગણાતી.

આવી જ રીતે સૂરતની કોલેજમાં જ્યારે એન.સી.સી.માં કંપની કમાન્ડર હતો સાથોસાથ શિસ્ત સમિતિનો ચેરમેન- ત્યારે હું પરેડ ઉપર મિલિટ્રીના ઓફિસરને યોગ્ય કડક શિસ્ત માટેનો આગ્રહ રાખતો. તે પ્રમાણે જરૂરી શિક્ષા પણ કરતો. પરેડમાં કેડેટ (વિદ્યાર્થી)ને કોઈ મુશ્કેલી હોય તો તેને માટે પૂરતી સગવડ આપતો તેઓને નક્કી કરેલ નાસ્તો સમયસર મળે તેની કાળજી રાખતો. પણ પરેડ પછી વર્ગમાં મારો વ્યવહાર તદ્દન જુદો- એક પ્રેમાળ અધ્યાપકનો રહેતો. હું પરેડ અને વર્ગના તફાવતને બરાબર જાળવી શકતો એટલે ક્યાંય એકબીજાને અડચણ રૂપ ન થતા. શિસ્ત અને સંયમ માત્ર ગ્રાઉન્ડ ઉપર નહિ પણ તેમના જીવનમાં પણ આવે તેનો સતત પ્રયત્ન કરતો.

હું ભાવનગની મહિલા કોલેજમાં એક વર્ષ, અને મારી મૂળ કોલેજમાં છ વર્ષ આચાર્ય પદે રહ્યો. હું જાણતો હતો કે કોલેજના આચાર્ય થવું એટલે જાણી જોઈને 'બ્લડ પ્રેશર'ને આમંત્રણ આપવું અને તે પણ

સૌરાષ્ટ્રમાં જ્યાં દરબાર અને પટેલોના સંઘર્ષ જગજાહેર છે. પણ ચેલેન્જ ઉપાડવાની મારી ટેવ અને આચાર્યપદ ભોગવવાની આકાંક્ષાથી મેં આ પદ સ્વીકારેલ. આચાર્યપદ એટલે દ્રોપદીની જ ભૂમિકા, જેમાં ગવર્નમેન્ટ, યુનિવર્સિટી, મેનેજમેન્ટ, સ્ટાફ, વિદ્યાર્થીઓ, વાલીઓ વગેરેને સંભાળવાનું. તેમાં સૌથી માથાનો દુઃખાવો તે વિદ્યાર્થીઓને શિસ્ત રાખવાના હોય. તેમની નિત નવી માંગણીઓ - જેમાં મોટા ભાગની અયોગ્ય હોય - પરીક્ષામાં ચોરીનું દૂષણ - અંદરોઅંદરની લડાઈ - છેડતી વગેરે મુખ્ય હતાં. પણ મારી પાસે એન.સી.સી.નો શિસ્ત અને હોસ્ટેલનો અનુભવ હતો જેથી હું વિદ્યાર્થીઓના પ્રશ્નોનું સમાધાન કરી શકતો. મને કહેવામાં કોઈ ક્ષોભ નથી કે ક્યારેક બાંધછોડ પણ કરવી પડતી પણ તે સંસ્થાના સન્માનના ભોગે ક્યારેય કરી નથી. આવડી મોટી જવાબદારી, જેમાં 'ટેન્શન' વધુ અને આનંદ ઓછો હોય તેવા આ પદ પર રહીને પણ મેં વર્ગમાં અધ્યાપન કાર્ય કરવાનું બંધ રાખ્યું નહોતું હું નિયમિત મારા પિરીયડ લેતો. પી.જી.માં પણ નિયમિત પિરીયડ લેતો અને અધ્યાપન કાર્ય કરતો ત્યારે ક્યારેય આચાર્યપદનું ટેન્શન રાખતો નહિ. પરિણામે મારા અધ્યાપનમાં આ પદ ક્યારેય નડતર રૂપ થતું નહોતું.

હું કોલેજ તરફથી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ કરાવતો - સ્પર્ધાઓમાં ભાગ લેવડાવતો કારણ કે હું માનતો કે યુવાનોમાં રહેલ શક્તિ, કૌશલ્ય, પ્રતિભા બહાર આવવાં જ જોઈએ. મારા વિદ્યાર્થીઓ શિક્ષણ જ્ઞાનની સાથે સમાજમાં ઉચ્ચ પ્રતિષ્ઠા ઉચ્ચ પદ મેળવે તેવી મારી ભાવના રહેતી.

મને સંતોષ છે કે હું આ દિવસોમાં કોલેજને સારી રીતે સંચાલિત કરી શક્યો. મારા સ્ટાફ અને મેનેજમેન્ટનો ખૂબ જ સહકાર હતો અને યુનિવર્સિટી પણ મારે સાથે જ રહી.

આટલી માહિતી ઉપરથી આપ પણ મારી સાથે સંમત થશો કે ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન એક કુશળ - લોકપ્રિય અધ્યાપક અને ઉત્તમ વ્યવસ્થાપક છે જ. આજે પણ તેઓ 'સમન્વય ધ્યાન સાધના કેન્દ્ર'ના અધ્યક્ષ અને 'શ્રી આશાપુરા માં જૈન હોસ્પીટલ'ના અધ્યક્ષ તરીકે ઉત્તમ વ્યવસ્થા કરીને બંને સંસ્થાઓની ઉત્તરોત્તર પ્રગતિ સાધી રહ્યા છે.

45

અપૂર્વ શ્રુતરક્ષા

પં. ડૉ. જિતેન્દ્ર બી. શાહ

જૈનધર્મમાં જ્ઞાનનું ઘણું જ મહત્ત્વ છે. તેથી જ એક ઉક્તિ અત્યંત પ્રચલિત છે કે 'કલિકાલે તરવાના મુખ્ય બે સાધનો છે (૧) જિનપ્રતિમા અને (૨) જિનાગમ. જિનપ્રતિમા ભક્તિનું સાધન છે. જિનાગમ જ્ઞાનનું સાધન છે. ભક્તિ અને જ્ઞાનનનો સમન્વય મુક્તિ અપાવે છે. ભક્તિ અર્થે પ્રાચીનકાળથી જ મંદિરોનું નિર્માણ ચાલુ છે. જૈનધર્મ જ એક એવો ધર્મ છે જ્યાં સોમપુરાઓના ટાંકણાનું સંગીત ક્યારેય અટક્યું નથી. સાથે સાથે વિદ્વાન મુનિઓની જ્ઞાન-સાધના પણ નિરંતર ચાલુ જ રહી છે. દરેક ચાતુર્માસમાં ગ્રંથનું અધ્યયન-અધ્યાપન અને નૂતન ગ્રંથો લેખન કાર્ય થતું. આથી જ નવાં નવાં ગ્રંથભંડારો નિર્મિત થતાં રહ્યા છે. વર્તમાનકાળે જગવિખ્યાત જ્ઞાનભંડારોમાં જૈન જ્ઞાનભંડારો મોખરે છે. લેખનકાર્યમાં માત્ર સાધુઓ જ નહીં પણ શ્રાવકો પણ જોડાતા હતા. શ્રાવકના કર્તવ્યમાં **'पुत्थय लिहणं'** અર્થાત્ પુસ્તક લેખનને પણ સ્થાન આપવામાં આવ્યું છે. તેથી સંઘમાં સતત શ્રુતજ્ઞાનની સાધના ચાલતી રહી છે. આટલું જ નહીં પણ આફતના સમયમાં ગ્રંથોને સાચવવાની પણ ખેવના સાધુઓએ અને શ્રાવકોએ સાથે રહીને કરી છે. અહીં ભારત-પાકિસ્તાનના ભાગલા સમયે નિર્મિત થયેલ વિકટ પરિસ્થિતિમાં જૈનોએ સાચવેલા અને ભારતમાં પરત લઈ આવેલ એક જ્ઞાનભંડારની અભૂતપૂર્વ ઘટનાનું આલેખન કરવામાં આવ્યું છે. વર્તમાનકાળે પાકિસ્તાનમાં આવેલ ગુજરાંવાલામાંથી સમગ્ર ગ્રંથભંડારને ભારત લઈ આવવા માટે જૈનોએ કરેલા પ્રયાસમાં શ્રુતભક્તિ, અપૂર્વ સૂઝ, રાજકીય કુનેહ, ધીરજ અને જિનવાણીનું જતન કરવાની ખેવનાના દર્શન થાય છે.

ગુજરાંવાલા :

ગુજરાંવાલા શહેર લાહોરથી લગભગ ૬૬ કિ.મી. દૂર ઉત્તર દિશા તરફ આવેલું છે. આ શહેર જી.ટી. રોડની બન્ને તરફ વિકસેલું છે તથા ભારત-પાકિસ્તાન ભાગલા થયા તે પૂર્વે આ શહેરની વસ્તી ૧ લાખ માણસોની હતી. જ્યારે આ નગર વસ્યું ત્યારે અહીં કુંજરજાતિનું પ્રાધાન્ય હતું. તેથી આ શહેરનું નામ કુંજરાવાલા પડ્યું અને પછી તે અપભ્રષ્ટ થઈ ગુજરાંવાલા થઈ ગયું એવી એક વાયકા પ્રચલિત છે.

ઐતિહાસિક પ્રમાણો અનુસાર આ નગરની જમીનના માલિક કુંજર જાતિના જાટ હતાં. શેરે પંજાબ મહારાજા રણજીતસિંહના દાદા સરદાર ચરતસિંહે (ચડતસિંહે) આ ધરતી ઉપર સને ૧૭૫૦ માં સેનાની છાવણીની સ્થાપના કરી હતી. તેમજ અહીં તેમણે પોતાનું નિવાસસ્થાન પણ બનાવ્યું હતું. ત્યારબાદ તેમના પુત્ર સરદાર મહાસિંહે આ નગર વસાવ્યું હતું. પિતાના મૃત્યુ પછી મહાસિંહ આ નગરના રાજા બન્યા અને તેમણે ઘણાં વર્ષો સુધી રાજય કર્યું. મહારાજા મહાસિંહના પુત્ર રણજીતસિંહનો જન્મ સને ૧૭૮૦ માં થયો અને તેઓ મહાસિંહના મૃત્યુ પછી આ નગરના રાજા બન્યા. નગરની સુરક્ષા માટે નગરને ફરતો મોટો કોટ અને તેમાં નગરમાં પ્રવેશવા તથા જવા માટેના આઠ વિશાળ દરવાજા બનાવ્યાં. રાજા રણજીતસિંહ અત્યંત પ્રતાપી રાજા હતા. તેમણે પોતાની રાજયસત્તામાં સતત વધારો કર્યો હતો અને તેમના પ્રભાવથી અન્ય રાજાઓ થરથર કાંપતા હતા. રાજયસત્તા વધતાં રણજીતસિંહે પંજાબની રાજધાની લાહોરમાં પોતાનું નિવાસસ્થાન બનાવ્યું હતું અને તેઓ ત્યાં રહેવા લાગ્યા હતા, પણ તેમને પોતાના જન્મસ્થળ પ્રત્યે અપાર સ્નેહ હતો. તેથી તેઓ અવારનવાર ગુજરાંવાલા આવતા અને તેઓ લાડમાં ગુજરાંવાલાને ગોકુલ કહી પુકારતા.

જૈનોનું આગમન :

ગુજરાંવાલામાં રાજા મહાસિંહે પ્રજાના કલ્યાણ અર્થે અને નગરમાં બધી જ વસ્તુઓ સરળતાથી ઉપલબ્ધ થઇ શકે તે માટે તેમણે જુદાં જુદાં બજારો નિર્મિત કરાવ્યાં. ત્યાં તેમણે અનાજનું મોટું બજાર નિર્મિત કરાવ્યું. આથી પંજાબના જુદા જુદાં નગરોમાંથી દુગડ, બરડ, લોઢા, જખ, મુન્હાની, લીગા, પારખ, ગદહિયા આદિ ગોત્રના જૈનો પણ વેપારાર્થે અહીં આવી વસવા લાગ્યા. તેઓ અહીં કાપડ, અનાજ, ધાતુના વાસણો, લોખંડ, ઘી-તેલ, અત્તર, કરિયાણું, લાકડાનો સામાન, સુતળી વગેરેનો ધંધો કરવા લાગ્યા. અહીં જૈનો મોટા ભાગે જેમાં હિંસા ન થતી હોય અથવા ઓછી હિંસા હોય તેવા ધંધામાં જોડાયા હતા. તેઓ વેપારધંધામાં અત્યંત પ્રમાણિક અને નિષ્ઠાવાન હતા. કોઈનેય નુકશાન કરી છેતરીને ધન કમાવવાની લાલસા ન હતી કે કોઈનેય ઠગવાની ભાવના ન હતી. તેઓ પોતાનું ગુજરાન ન્યાનીતિથી ચલાવતા હતા. તેમની ભાવના માત્ર પૈસા કમાવવાની જ નહીં પણ લોકોને સારી વસ્તુઓ આપી સંતોષ આપવો તે જ તેમનો સિદ્ધાન્ત હતો. એટલું જ નહીં તેઓ ગરીબ અને અભણ પ્રજાને સાચી સલાહ પણ આપતા હતા. આથી ગામેગામ જૈનો સારી એવી સાખ મેળવી શક્યા હતા. એટલું જ નહીં પણ અહીંના લોકો જૈનોને ભાવડા તરીકે ઓળખતા હતા. ભાવડા શબ્દનો અર્થ જેના ભાવ વડા-ઉત્તમ અથવા ઊંચા છે તે. અર્થાત્ ઊંચી ભાવનાવાળા લોકો તરીકે જૈનો પ્રસિદ્ધિ પામ્યા હતા. વર્તમાનકાળે આ અંગે પંજાબી જૈનો સાથે ચર્ચા કરતાં જાણવા મળ્યું કે તે વખતના લોકો પોતાના કોઈપણ પ્રશ્નોનો ઉકેલ મેળવવા માટે જૈનો પાસે આવતા. જૈનો ન્યાયનીતિથી ઉકેલ શોધી આપતા, પરિવારમાં સુલેહ સંપ વધે તેવી સલાહ આપતા, તેથી પરિવારના બધા જ લોકો આનંદ પામતા અને સુખી થતા હતા. આથી જ જૈનોના ઉકેલને તેઓ માથે ચડાવતા. બધાજ લોકો જૈનોને સન્માન આપતા. જૈનો ચોવિહાર-સૂર્યાસ્ત પહેલાં ભોજન કરી લેતા હોય છે. તે સમયે કોઇ મુસલમાન દુકાને આવ્યા હોય તો તેઓ મર્યાદા જાળવવા અને પવિત્રતા ખાતર નીચે ઉતરી જતા અને ભોજન પત્યા બાદ જ પુનઃ જયારે શ્રાવકો બોલાવે ત્યારે જ દુકાનમાં પ્રવેશતા. આવી તેમની સાખ હતી. તેઓ વ્યાપાર સાથે ધર્મ ધ્યાન પણ કરતા. પરંતુ હજુ કોઇ મંદિર કે ઉપાશ્રયનું નિર્માણ થયું ન હતું. સહુ સાથે મળી કોઈના ઘરે પ્રતિક્રમણ આદિ કરતા હતા.

સાધુઓનું આગમન :

ગુજરાંવાલામાં જૈનોની વસતી પ્રમાણમાં વધવા લાગી હતી અને તેઓ સાધુ ભગવંતોની આગમનની પ્રતીક્ષા કરી રહ્યા હતા. તે સમયે યતિ દુનિચંદ્રજી તેમના શિષ્ય વસંતઋષિ તથા તેમના શિષ્ય પરમઋષિ સાથે ગુજરાંવાલા પધાર્યા અને ત્યાં જ સ્થિર વાસ કર્યો. તેઓ પોતાની સાથે પ્રથમ તીર્થંકર શ્રી ઋષભદેવની પાષાણપ્રતિમા લઈ આવ્યા હતા. તેની તેમણે ભાડાના મકાનમાં સ્થાપના કરાવી. યતિજી બાલબ્રહ્મચારી, ઉત્તમ ચારિત્રવાન, જૈનસિદ્ધાન્તના જાણકાર, જ્યોતિષ મંત્ર-તંત્ર આદિ વિદ્યાના પારગામી વિદ્વાન્ હતા. તેથી તેમની ખ્યાતિ રાજા રણજીતસિંહ સુધી પહોંચી હતી. રાજા પણ યતિજીને ખૂબ જ માન-સન્માન આપતા અને ખૂબ જ શ્રદ્ધા ધરાવતા હતા. જ્યારે જ્યારે મુશ્કેલી ઉપસ્થિત થતી ત્યારે રાજા યતિશ્રી પાસે આવતા અને આશીર્વાદ મેળવતા. તેમજ રાજાએ યતિને ઉપજાઉ જમીન પણ ભેટમાં આપી હતી. યતિશ્રી દુનિચંદજીની પરંપરા આગળ ચાલી નહીં, ત્રણેયના સ્વર્ગવાસ પછી તેમની ગાદી અટકી ગઈ. તેઓના પગલાં તથા સમાધિની સ્થાપના તળાવના કિનારે કરવામાં આવી હતી.

ત્યારબાદ ત્યાં શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક સાધુ-સાધ્વીજીઓનું આવાગમન પ્રાયઃ અટકી ગયું હતું. પરંતુ સ્થાનકવાસી સાધુઓનો વિહાર વધતોચાલ્યો ગયો. તેથી અહીંના જૈનો પણ સ્થાનકવાસી પરંપરાને અનુસરવા લાગ્યા. વિ.સં. ૧૮૮૨માં બુટેરાયજીએ સ્થાનકવાસી પરંપરામાં દીક્ષા લીધી હતી. તેઓ વિ.સં. ૧૯૧૨માં અમદાવાદ આવી જૈનાગમાનુકૂળ તપાગચ્છીય શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક પરંપરામાં દીક્ષિત થયા અને પુનઃ પંજાબ પધાર્યા. તેઓએ પંજાબમાં પુનઃ શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક પરંપરાનો પ્રચાર કર્યો અને તેથી ગુજરાંવાલામાં પણ શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજકોની સંખ્યા વધવા લાગી.

ભારત-પાકિસ્તાનવના ભાગલા સમયે ગુજરાંવાલા જૈનોનું મોટું નગર ગણાતું હતું. અહીં જિનમંદિર, ગુરુમંદિર અને વિશાળ જ્ઞાનભંડાર નિર્મિત થઈ ચૂક્યાં હતાં. અહીં જૈનાચાર્ય વિજયાનંદસૂરિ, ઉપાધ્યાય સોહનવિજયજી આદિ કાળધર્મ પામ્યા હતા અને તેમનાં સમાધિમંદિર નિર્માણ પામ્યાં હતાં. વસંતઋષિ આદિ યતિઓની સમાધિ પણ અહીં બનાવવામાં આવી હતી. મુનિશ્રી વૃદ્ધિવિજયજી, મુક્તિવિજયજી, વિજયલલિતસૂરિ, મુનિ શિવવિજય, વિજય ઉમંગસૂરિ આદિ મુનિ ભગવંતોના પાવન ચરણોથી આ ભૂમિ પવિત્ર બની.

ભાગલા સમયે ગુજરાંવાલાની સ્થિતિ :

ભારત-પાકિસ્તાન ભાગલા સમયે સમદર્શી આચાર્ય પૂ. વલ્લભસૂરિજીનો ગુજરાંવાલામાં ચાતુર્માસ હતો. તે સમયે સ્થિતિ અત્યંત સ્ફોટક હતી. જો કે આ. વલ્લભસૂરિજીની પ્રતિષ્ઠા ઘણી ઊંચી હતી. બધીજ કોમના લોકો તેમને ખૂબ જ માન આપતા હતા. એટલું જ નહીં પણ તેમનામાં પૂરી શ્રદ્ધા રાખતા હતા. મુસલમાનોને પણ આ વલ્લભસૂરિમાં પૂરી શ્રદ્ધા હતી. પરંતુ ભાગલાની સ્થિતિને કારણે હિન્દુ-મુસલમાનોમાં વૈમનસ્ય વધવા લાગ્યું હતું. ગુજરાંવાલામાં બહારથી આવેલા મુસલમાનોએ નગરનું વાતાવરણ વધુ દૂષિત કર્યું.

મંદિરમાં પ્રતિમાજીઓ હતાં, ઉપાશ્રયમાં વિશાળ જ્ઞાનભંડાર હતો. તેમાં અલભ્ય હસ્તલિખિત ગ્રંથો, દુર્લભ છાપેલા ગ્રંથો, અન્ય મૂલ્યવાન વસ્તુઓ હતી, તેની સુરક્ષાનો મોટો પ્રશ્ન હતો. ભારતમાંથી અવારનવાર ટેલિગ્રામ આવતા કે ગમે તેમ કરી આચાર્ય વલ્લભસૂરિને ભારત મોકલી આપો. ભારત આખાનો જૈન સંઘ અત્યંતિ ચિંતિત છે. આ સમાચાર મળતાં જ સમગ્ર શ્રાવક સંઘે પૂ. આ વલ્લભસૂરિને વિનંતી કરી કે આપ

ભારત પધારો, અમારી ચિંતા ન કરો. ત્યારે આ વલ્લભસૂરિજીએ કહ્યું કે એક પણ શ્રાવક પાકિસ્તાનમાં બાકી રહ્યો હશે ત્યાં સુધી હું પાકિસ્તાન છોડીશ નહીં. અહીં ઉપાશ્રયમાં જ ૨૫૦ શ્રાવકો છે. તેમને છોડીને હું હરગીજ નહીં જાઉં. આમ તેમણે શ્રાવકોની સુરક્ષા ખાતર ભારત જવાનું ટાળ્યું. શ્રાવકોની ચિંતા કરવા લાગ્યાં. સાચા અર્થમાં શાસનના રખેવાળ સાચા સંઘનાયક અને શ્રાવકોના સાચા માતાપિતા બન્યા. સાથે સાથે અન્ય મૂલ્યવાન સામગ્રીની પણ ચિંતા હતી જ.

ભારત જવું દિવસે દિવસે અઘરૂં બની રહ્યું હતું. કપરાં દિવસોનાં એંધાણ વર્તાય રહ્યા હતાં. છતાંય તેમણે શ્રાવકોને હિંમત આપી જણાવ્યું કે આપણી સાથે શીલવતી સાધ્વીજીઓ છે. એટલે જરાય ડરવાની જરૂર નથી. આપણે તેમને પ્રતાપે ભારત હેમખેમ પહોંચી જઈશું. પણ હજુ આપણી પાસે સમય છે એટલે આપણી સામગ્રી સુરક્ષિત કરી દઈએ. ભવિષ્યમાં આપણે પાછી આપી તેને મેળવી શકીશું. શ્રાવકોએ તે સમયે ચા માટે વપરાતી લાકડાની પેટીઓ મેળવી અને તેમાં હસ્તલિખિત ભંડારના બધા જ ગ્રંથો મૂકી બંધ કર્યા. તમામ પ્રતિમાજીઓ અને અન્ય સામગ્રીઓ એક કરી એક જગ્યાએ સુરક્ષિત મૂકી અને દિવાલ ચણી દીધી, જેથી કોઈનેય ખબર ન પડે કે અહીં પૂર્વે કાંઇ હતું. ત્યારબાદ પૂ. આ વલ્લભસૂરિજી શ્રાવકો સાથે ભારત તરફ ચાલી નીકળ્યા. આ. વલ્લભસૂરિના આંખમાં આંસુ અને અંતરમાં અસહ્ય વેદના હતી. પરંતુ મનને મક્કમ કર્યા વગર છૂટકો ન હતો. તેમણે ભારે હૈયે પંજાબ છોડ્યું. પણ મનમાં તો હંમેશાં પંજાબ રહ્યું. જીવનના છેલ્લા શ્વાસ સુધી મારૂં પંજાબ, મારૂં પંજાબ કરતા રહ્યા.

આ વાતને વર્ષો વીતી ગયા. પૂ. આ. વલ્લભસૂરિજી સતત ચિંતા કરતાં કાળધર્મ પામ્યા હવે તેમની ચિંતા તેમના સમુદાયમાં તથા શ્રાવકોમાં ફેલાણી. ત્યાં મૂકીને આવેલ સામગ્રી પરત મેળવવા કોશિશ કરી. ભારત અને પાકિસ્તાનના સંબંધો વણસી રહ્યા હતા. બધી વસ્તુઓ પરત આવશે કે કેમ તેની સતત ચિંતા રહ્યા કરતી હતી. જ્ઞાનભંડાર દિવાલ ચણીને એવી રીતે સુરક્ષિત કરી દીધો હતો કે બહારથી આવનારને ગંધ સુદ્ધાં ન આવે કે અહીં દિવાલ ચણીને કંઇક છૂપાવી દેવામાં આવ્યું છે. આંખો ગ્રંથ ભંડાર ત્યાં હતો. વર્ષો વીતતાં ત્યાંની પરિસ્થિતિ પલટાઇ ગઇ હતી. ભાગલા પછી લોકોએ મકાનો કબ્જો કરી લીધાં હતાં. આ મકાન પણ લોકોએ કબ્જે કરી લીધું હતું. તેવામાં ભારત-પાકિસ્તાને સંપત્તિ હસ્તાંતરણ કરવાનો કરાર કર્યો. તે કરાર અનુસાર ભારતમાં રહેલી સંપત્તિઓ પાકિસ્તાનને પરત સોંપવી અને પાકિસ્તાનમાં રહેલી ભારતીયોની સંપત્તિ ભારતને પાછી સોંપવી. આ કરારના અન્વયે જૈનભાઈઓએ જ્ઞાનભંડાર પરત મેળવવા પત્રવ્યવહાર કર્યો.

ગુજરાંવાલા સ્ટેટના ગવર્નરે દર્શાવેલ સ્થળે તપાસ કરાવી પણ ત્યાં કશું જ ન મળતાં ભારત સરકારને જણાવ્યું કે ત્યાં કશું જ નથી. તેમ છતાં જૈનોએ પ્રયત્ન ચાલુ રાખ્યો પરંતુ તેમાં સફળતા મળતી ન હતા. તેથી તેમણે અમદાવાદ સ્થિત આણંદજી કલ્યાણજી પેઢીના તત્કાલીન પ્રમુખ સેઠ શ્રી કસ્તૂરભાઈ લાલભાઈને જાણ કરી. કસ્તૂરભાઇ શેઠે સમગ્ર માહિતી મેળવી ભારત સરકારને જણાવ્યું અને પોતાની વગ વાપરી વડાપ્રધાન ઇન્દિરાગાંધીને આ બાબતે ખાસ કાર્યવાહી કરવા જણાવ્યું. માનનીયાશ્રી ઇન્દિરાબેન ગાંધીએ તપાસ કરાવી પરંતુ કોઇ સફળતા ન મળી. છેવટે નક્કી કરવામાં આવ્યું કે અહીંથી પાંચ-સાત શ્રાવકોનું એક ડેલીગેશન ગુજરાંવાલા જાય અને તેઓ જાતે તપાસ કરે કે ત્યાં ગ્રંથભંડાર સુરક્ષિત રહ્યો છો કે કેમ? અને જો ભંડાર સુરક્ષિત રહ્યો હોયતો તેને પાછો મેળવવા માટે પ્રયાસ કરીએ.

સરકાર તરફતી આવો સહયોગ મળતા તે વખતનાં જૈનોને ગુજરાંવાલા મોકલવામાં આવ્યાં. ગુજરાંવાલા

પહોંચતા સ્થળ પર પહોંચતા ત્યારે ખબર પડી કે ત્યાં એક મોટી શાક માર્કેટ નિર્મિત થઈ ગઈ હતી. તેઓ તે ઓળંગી મંદિરના સ્થળે પહોંચ્યા અને જે સ્થળે ગ્રંથો મૂકવામાં આવ્યા હતા તે સ્થળ સુધી પહોંચી ગયા. હજુ પણ તે સ્થળ સુરક્ષિત જ હતું. તેમણે ભારત પાછી આવી અહેવાલ રજૂ કર્યો. સરકારે ગવર્નરને ફરી જાણ કરી. નિર્ધારીત સ્થળે ગ્રંથભંડાર હજુ પણ સુરક્ષિત છે તેની જાણ કરી. તે સ્થળે ગવર્નરે ખુદ તપાસ કરાવી. ગ્રંથ ભંડાર ત્યાંથી લાવવા માટે રૂા. ૫૦૦૦/- નો ખર્ચ જણાવ્યો. ભારતથી જૈનોએ તે રકમનો ચેક મોકલી આપ્યો. રકમ મળતાં જ પાકિસ્તાન સરકારે કામ શરૂ કરાવ્યું. દિવાલ તોડી તેમાંથી ગ્રંથભંડાર બહાર કાઢવામાં આવ્યો. સમગ્ર ગ્રંથભંડારને તિજોરી કચેરીમાં લઈ આવવામાં આવ્યો. પણ હજુ ઘણાં અવરોધો પાર કરવા પડે તેમ હતાં. ગ્રંથભંડાર ભારતને સોંપવા માટે સરકાર જાત જાતના પ્રશ્નો ઉપસ્થિત કરી રહી હતી. શેઠ કસ્તૂરભાઈએ આ બાબતે પંજાબના ગવર્નરશ્રી ધર્મવીરને જણાવ્યું કે અમારા શાસ્ત્રગ્રંથો વર્ષોથી તિજોરી કચેરીમાં પડ્યાં છે. અમને પરત નથી મળતાં. તમે આ અંગે પ્રયાસ કરો અને અમને ગ્રંથો પરત મેળવી આપો. તે સમયે પાકિસ્તાનમાં ગુજરાંવાલાનાં ગવર્નર ધર્મવીરના મિત્ર હતા. તેમણે સ્વયં ગુજરાંવાલાના ગવર્નરને જાણ કરી અને સમગ્ર ગ્રંથભંડાર ભારત મોકલી આપવા સખત પ્રયાસ કર્યો. તેમના આ પ્રયાસથી કુલ ૧૮ વર્ષના પરિશ્રમનું સફળ પરિણામ પ્રાપ્ત થયું. જૈન સમાજમાં હર્ષની લાગણી ફેલાઇ ગઇ. સમગ્ર ભંડાર દિલ્હી રૂપનગર સ્થિત જૈનમંદિરમાં લઇ આવવામાં આવ્યો.

જૈન ભંડારના પુસ્તકો સુરક્ષિત રહી શક્યા કારણ કે તે વખતે જૈનોએ કાળજીપૂર્વક તેની વ્યવસ્થા કરી હતી. ગ્રંથ અહીં આવ્યા પછી તેને સુવ્યવસ્થિત કરવાનું કાર્ય પં. શ્રી હીરાલાલ દુગ્ગડને સોંપવામાં આવ્યું. તેમણે ગ્રંથભંડારનું કાચું સૂચિપત્ર તૈયાર કર્યું. તે સમયે પૂ. સાધ્વીશ્રી મૃગાવતીજી દિલ્હીમાં વિરાજી રહ્યા હતાં. તેમણે આ ભંડારને વધુ સુરક્ષિત કરવા માટે જહેમત કરી. તેમણે તે સમયે જ નવી સ્થપાયેલ ભોગીલાલ લહેરચંદ ભારતીય સંસ્કૃતિ વિદ્યામન્દિરમાં આ ગ્રંથભંડાર વધુ ઉપયોગી નીવડશે તેમ જણાતા તે સમગ્ર ભંડારને તે સંસ્થામાં સ્થાળાંતર કર્યો. અમદાવાદથી પં. શ્રી લક્ષ્મણભાઇ ભોજકને બોલાવ્યા અને સમગ્ર ભંડારને સુરક્ષિત, સુવ્યવસ્થિત અને વધુ ઉપયોગી નીવડે તે માટે પોતાના સાધ્વી સમુદાયને પણ આ કાર્યમાં જોડ્યો. તેથી ટૂંક સમયમાં જ સમગ્ર ભંડાર સુવ્યવસ્થિત બન્યો. આજે આ ભંડારમાં કુલ ૨૦,૦૦૦ (વીસ હજાર) ગ્રંથો છે. આ ભંડારને સુરક્ષિત કરવાનું શ્રેય જૈનોની ઉચ્ચ ધર્મભાવનાને જાય છે.

જૈનોએ જ્ઞાનને સુરક્ષિત રાખવાના ઘણાં પ્રયત્નો કર્યા છે. તેનાં અનેક ઉદાહરણો શાસ્ત્રમાં પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી જ જૈનોના પ્રાચીન ગ્રંથભંડારો આજે પણ સુરક્ષિત છે. આજે જેટલાં ગ્રંથો ભારતભરતમાં સુરક્ષિત છે તેમાં અડધા જેટલાં ગ્રંથો જૈન ભંડારોમાં સુરક્ષિત રહ્યાં છે. આ ભારતીય પરંપરાને જૈન ધર્મનું મોટામાં મોટું યોગદાન છે.

46

જૈન એકતાનું સન્માન

મહેન્દ્ર એ. શાહ
પૂર્વ ગવર્નર, લાયંસ ક્લબ

કહેવાય છે કે કલિયુગમાં સંઘશક્તિ જ મહત્ત્વપૂર્ણ છે. તેના વડે જ આપણે આપણી મંજિલ સુધી પહોંચી શકીશું.

આપણે જાણીએ છીએ કે આપણી જૈનોની સંખ્યા દેશમાં ગણતરીની દૃષ્ટિએ અત્યલ્પ છે, પણ શિક્ષણ, વ્યાપાર વગેરેમાં તેઓ સર્વોચ્ચ પદે છે. રાજનીતિમાં તેઓ પછાત જ છે. આ પછાતપણું દૂર કરવા માટે આપણે હવે સંગઠિત થઇ રાજનીતિમાં પણ સફળતા મેળવવી પડશે ત્યારે જ આપણે આપણા પ્રશ્નોનો સાચો ઉકેલ પ્રાપ્ત કરી શકીશું.

ભગવાન મહાવીરના નિર્વાણ પછી આપણે વિભક્ત થઇને અનેક સમ્પ્રદાય, ઉપસંપ્રદાય, ગચ્છોમાં વિભાજિત થયા છીએ પણ સમયની માંગને અનુલક્ષીને પુનઃ એકતાના સૂત્રમાં બંધાઇ જવું પડશે. જો આપણે ઊંડાણથી વિચાર કરીએ તો આપણા સિધ્ધાંતોમાં ૯૫ ટકા કોઇ ભેદ નથી. ક્રિયાકાંડમાં ભેદ હોઇ શકે. પણ ક્રિયાકાંડ તે સિદ્ધાંત કે મૂળધર્મ નથી માટે તેનો વધારે વિચાર કરવો જોઇએ નહીં. ક્રિયાને આપણે વ્યક્તિગત ધોરણે મૂલવવી જોઇએ. પણ સિદ્ધાંત તે આગમ વચન છે, તેમા આપણે ક્યાં જુદા છીએ?

હું માનું છું કે જો આખા દેશમાં ઉદ્દનાં આંકડા જેવા પક્ષો એક સાથે મળીને સરકાર ચલાવી શકતા હોય તો આપણે કેમ કોમન મુદ્દાઓ પર એક થઇ સાથે ન રહી શકીએ?

આપણા સાધુ ભગવંતો, શ્રેષ્ઠિઓ, વિદ્વાનોએ આની પહેલ કરવી જોઇએ. આપણો સમાજ આજે પણ સાધુઓ દ્વારા ચીંધેલા માર્ગે જ ચાલે છે અને જો બધા સાધુઓ સમન્વય સ્થાપિત કરે-કરાવે તો આપણે એક મહાશક્તિ તરીકે બહાર આવી શકીએ છીએ. આથી પરસ્પર પ્રેમ વધશે-સહકાર સધાશે.

હું તો પ્રારંભથી જ તેનો હિમાયતી રહ્યો છું. ભારત જૈન મહામંડળ ગુજરાતના

અધ્યક્ષ તરીકે મેં તેનો યથાશક્તિ પ્રયત્ન કર્યો છે.

હું માનું છું કે આ એકતા માટેની પહેલ આ રીતે કરી શકાય :

(૧) સહુએ પર્યુષણ-દશલક્ષણ હળીમળીને સાથે ૧૮ દિવસ ઉજવવા.

(૨) બધા જૈન તહેવારો જેવા કે મહાવીર જન્મ જયંતી, દિવાળી (મહાવીર નિર્વાણદિન) વગેરે સાથે જ ઉજવવા.

(૩) કોઇ મોટા આચાર્ય પધારે તો સહુએ તેમના સ્વાગતમાં ઉપસ્થિત રહેવું.

(૪) ક્યારેય કોઇપણ સમ્પ્રદાયના દેવસ્થાન કે અન્ય સ્થળો પર દબાણ કે હુમલા થાય ત્યારે સંગઠિત પ્રતિકાર કરવો.

(૫) આપણે આપણી શૈક્ષણિક સંસ્થાઓમાં વિદ્યાર્થીઓને સંસ્કારી બનાવવા માટે કોમન કોર્સ દાખલ કરી અભ્યાસ કરાવવો.

(૬) તીર્થો વગેરેના સંઘર્ષ બેસીને પ્રેમથી સન્માન પૂર્વ ઉકેલવા.

(૭) આપણે જૈન છીએ આ ભાવનાનો વિકાસ કરાવવો.

આજે જેમનું સન્માન સમસ્ત જૈન સમાજ દ્વારા થઇ રહ્યું છે અને જેઓને આ અભિનંદન ગ્રંથ અર્પણ થઇ રહ્યો છે તેઓ આવી જૈન એકતા અને સમન્વયના પ્રખર હિમાયતી જ નહીં પણ પુરુષાર્થકર્તા રહ્યા છે. દેશ-વિદેશમાં તેઓએ આ એકતાનો શંખનાદ પ્રવચન અને 'તીર્થંકરવાણી' દ્વારા કરીને મોટી સેવા કરી છે.

આપણે આવી જ રીતે પરસ્પર પ્રેમ-સહકારથી આગળ વધીએ તે જ મારી ભાવના છે.

47

આધુનિક વૈજ્ઞાનિક સાધનો દ્વારા શુદ્ધ કરેલ પાણી ફાયદાકારક કે નુકશાનકારક?

પ.પૂ.પંન્યાસ શ્રી નંદીઘોષવિજય ગણિ

થોડા વખત પહેલાં શિકાગો અમેરિકાથી અમારા પૂર્વાવસ્થાના (સંસારી) મામાની પુત્રી તથા તેમનો પુત્ર આવેલ. વિજ્ઞાન અને ધર્મ અંગેની ચર્ચા ચાલી રહી હતી તે દરમ્યાન તેમના પુત્રએ બે - ત્રણ વખત આસ્થાલીન નામની દવાના પંપનો ઉપયોગ કર્યો. આ દવા સામાન્ય રીતે અસ્થામા - દમના દર્દીઓ શ્વાસ ચઢે ત્યારે લેતા હોય છે. એટલે મેં સ્વાભાવિક તેમને પૂછ્યું આપને અસ્થામાની વ્યાધિ છે? તેનો પ્રત્યુત્તર આપતાં તેનાં મમ્મી દર્શનાબહેને કહ્યું : ''ના, એણે દમની વ્યાધિ નથી પણ અમેરિકાની અપેક્ષાએ અહીંનું વાતાવરણ પ્રદૂષિત - ધુમાડા અને ધૂળનાં રજકરણોવાળું હોવાથી શ્વાસ લેવામાં તકલીફ પડે છે એટલે બહાર જઈએ ત્યારે અડધા અડધા કલાકે એક વાર પંપ લેવો પડે છે.''

વાત સાંભળીને આશ્ચર્ય થયું. અહીં રહેતા આપણે સૌ એ જ વાતાવરણમાં રહીએ છીએ છતાં આપણને શ્વાસ ચઢતો નથી કે પંપ લેવો પડતો નથી. જ્યારે અમેરિકાથી આવેલ નવી પેઢીના બાળકો-યુવાનોને અહીંના વાતાવરણમાં પ્રવેશતાંની સાથે જ દમની અસર વર્તાવા લાગે છે. કારણ કે એ યુવાનો અમેરિકામાં જ જન્મ્યા છે અને મોટા થયા છે. તેઓ ભારત ભાગ્યે જ બે - ત્રણ વર્ષે એકવાર ૧૫-૨૦ દિવસ માટે આવતા હોય છે એટલે એકદમ સ્વચ્છ - પ્રદૂષણમુક્ત વાતાવરણમાં જ તેમનો ઉછેર થયેલ હોવાથી, ભારતના વાતાવરણમાં રહેલ અશુદ્ધિ - જીવાણુ આદિ સામે લડવાની તેમના શરીરમાં કોઈ જ પ્રતિકારકશક્તિ (Resistance Power) હોતી નથી. પરિણામે સામાન્ય પ્રદૂષિત વાતાવરણ પણ તેઓનાં શરીરમાં રોગ ઉત્પન્ન કરી દે છે. આ જ બાળકોનાં માતા-પિતા જે ભારતમાં જન્મી, ભારતમાં જ મોટા થયા પછી અમેરિકા, યુરોપ ગયા છે તેઓ અહીં આવે છે ત્યારે તેઓને કોઈ તકલીફ થતી નથી.

આવું જ પાણીની બાબતમાં પણ છે અને અત્યારે તો મિનરલ વોટર એક સ્ટેટસ સિમ્બોલ બની ગયું છે. લોકો ગર્વથી કહેતા હોય છે કે અમે બહાર જઈએ ત્યારે મિનરલ વોટર જ વાપરીએ છીએ. બહારનું ગમે તેવું પાણી અમે પીતાં જ નથી.

અરે! અમે ઘરે પણ નગરપાલિકાના પાણીને પણ રિવર્સ ઓસ્મોસીસ (આર.ઓ.) દ્વારા ફિલ્ટર કર્યા પછી જ વાપરીએ છીએ. આમ છતાં વધુમાં વધુ માંદાં પડતાં હોય તો આવા લોકોનાં જ બાળકો. શું કારણ? પોતાના બાળકોના આરોગ્યના રક્ષણ માટે જાગૃત મા-બાપ,એ માટે મિનરલ વોટર કે ફિલ્ટર કરેલ પાણીનો આગ્રહ રાખે એ સ્વાભાવિક છે અને આવી માન્યતા ઘરાવનારાઓ જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી ગામડાં કે જંગલના કુવારાઓના પાણીને ફિલ્ડર કરી મિનરલ વોટરના નામે બોટલોમાં ભરી ભરીને વેચીને પાણીમાંથી પૈસા ઊભા કરતી દેશી-વિદેશી કંપનીઓને ઘી-કેળાં જ છે.

આનાથી વિરુદ્ધ સામાન્ય શ્રમજીવી પરિવારનાં બાળકો ગમે ત્યાંથી ગમે તેવું પાણી પીએ છે છતાંય ખાસ માંદા પડતા નથી. વસ્તુતઃ આ બાળકો જન્મતાંની સાથે જ આ પ્રકારનું જ પાણી પીને મોટા થયાં હોય છે. એટલું જ નહિ તેમના મા-બાપ, દાદા-દાદી પણ વર્ષોથી આ પ્રકારનું પાણી પીતાં હોય છે. પરિણામે એ બાળકોએ પહેલેથી જ કુદરતી રીતે આ પ્રકારના જીવાણુ સામે લડી લેવાની રોગપ્રતિકારક શક્તિ મેળવી લીધી હોય છે અને તેમના મા-બાપ, દાદા-દાદી તરફથી આવી રોગપ્રતિકારક શક્તિ વારસામાં - લોહીના સંસ્કાર તરીકે મળી હોય છે.

આ બાબત સ્વાભાવિક છે. એના ઉપર સંશોધનની કોઈ આવશ્યકતા નથી. ભારતના લોકો માટે આમાં કોઈ જ આશ્ચર્યજનક બાબત નથી પરંતુ પરદેશના કહેવાતા સંશોધક વિજ્ઞાનીઓ ભારતની - આફ્રિકાની આ પરિસ્થિતિ જોઈ તેનું સર્વે કરે છે ત્યારે તેમને આશ્ચર્ય થાય છે. પરિણામે આ અંગે તેઓ સંશોધન કરવા પ્રેરાય છે. આવા વિજ્ઞાનીઓનું સંશોધન આર.ઓ. સિસ્ટીમ, એક્વાગાર્ડ અને મિનરલ વોટરનો આગ્રહ રાખનારાઓ માટે ચોંકાવનારું છે.

તેઓ કહે છે કે જે મા-બાપ પોતાના બાળકને શરુઆતથી જ તદ્દન જંતુમુક્ત વાતાવરણમાં, એરકન્ડીશનમાં રાખે છે, ક્યાંય કોઈનો ચેપ લાગી ન જાય તેની ચીવટ રાખે છે, એ બાળકો વધુ માંદા પડે છે. આવા બાળકોના શ્વાસમાં જરા સરખી પણ ધૂળ કે ધૂળનાં રજકણો જાય કે બહારનું કુવા કે નળનું ચાલુ પાણી પણ પીએ તો માંદા પડી જાય છે. એટલે બાળકમાં રોગપ્રતિકારકશક્તિ વધે એવું જો મા-બાપ ઈચ્છતા હોય તો જન્મતાંની સાથે વિશેષ કોઈ બિમારી ન હોય તો સ્વાભાવિક વાતાવરણમાં, બીજાં બાળકોની માફક રેતી અને ધૂળમાં રમતાં તથા નદી, સરોવરનાં પાણીમાં સ્નાન કરતા કરવા જોઈએ અને એ રીતે તેનો પ્રકૃતિ સાથેનો સંબંધ અખંડ રહેવો જોઈએ. કૃત્રિમ વાતાવરણ ગમે તેટલું સ્વચ્છ અને પ્રદૂષણમુક્ત હોય પરંતુ તે કુદરતી વાતાવરણની તોલે આવતું નથી.

પ્રાચીન કાળથી નગરોનું નિર્માણ નદી કિનારે થતું આવ્યું છે અને જે નગર નદી કિનારે કે દરિયા કિનારે ન હોય ત્યાં વાવ, કુવા, તળાવની પ્રધાનતા રહેતી હતી. કુવા, તળાવ, નદી, નાળાનું પાણી વહેતું હોવાથી સ્વચ્છ રહેતું એટલું જ નહિ એ પાણીમાં પૃથ્વીમાં રહેલ ખનિજ દ્રવ્યો, ક્ષારો વગેરે પણ ભળેલાં રહેતા, જે શરીર માટે આવશ્યક છે.

એથી ઉલ્ટું આર.ઓ. સિસ્ટીમ દ્વારા ફિલ્ટર કરેલ પાણીમાં ટીડીએસ ક્ષારો ઓછા કરવાની લ્હાયમાં શરીર માટે ઉપયોગી ક્ષારો, ખનિજ પણ ગળાઈ જાય છે પરિણામે આવું પાણી ગમે તેવું ચોખ્ખું, સ્વચ્છ, ડિસ્ટિલ્ડ વોટર જેવું હોવા છતાં મનુષ્યના આરોગ્ય માટે સારું રહેતું નથી.

બીજી તરફ એક્વાગાર્ડ વગેરેનાં અલ્ટ્રાવાયોલેટ કિરણોની મદદથી જંતુમુક્ત કરેલ પાણીમાં કદાચ ટીડીએસ ક્ષારો ઓછાં થતાં નથી પરંતુ અલ્ટ્રાવાયોલેટ કિરણો જેમ રોગના જીવાણુ-બેક્ટોરિયાનો નાશ કરે

છે તેમ શરીર માટે જરૂરી, ઉપયોગી બેક્ટેરિયાનો પણ નાશ કરે છે, દૂર કરે છે. આવું બેક્ટેરિયામુક્ત પાણી વાપરવાની - પીવાની ટેવ પડી ગયા પછી સામાન્ય કુવા, તળાવ કે નળનું પણ પાણી પીવામાં આવે તો પણ તેમાં રહેલ જીવાણુનો ચેપ લાગી જાય છે કારણ કે તેની સામે લડવાની શક્તિ જ ખલાસ થઇ ગઇ હોય છે.

આ રીતે થતા રોગોની સામે રક્ષણ મેળવવા વિજ્ઞાનીઓ વિભિન્ન પ્રકારની રસી બાળકોને મૂકવાનું સૂચન કરે છે.

પ્રાચીન કાળમાં તંદુરસ્તી જાળવી રાખવા પાણી ગાળીને તથા ઉકાળીને વાપરવાની એક સર્વમાન્ય અને સામાન્ય પ્રથા હતી. આર.ઓ. સિસ્ટીમનું પાણી, એક્વાગાર્ડનું પાણી, મિનરલ વોટર, તથા કુવા, તળાવના સામાન્ય પાણીમાં મૂળભૂત શું તફાવત છે? અને એ બધાને ઉકાળવાથી તેમાં શું પરિવર્તન થાય છે? તેનો રાસાયણિક પૃથક્કરણ દ્વારા અભ્યાસ કરવો જરુરી છે.

નદી, નાળા, સરોવરનું સામાન્ય પાણી વ્યવસ્થિત રીતે ગાળીને, ઉકાળીને પીવામાં આવે તો બાળકોને પ્રાયઃ કોઇ પણ જાતની રસીની આવશ્યકતા રહેતી નથી કારણ કે રસી જે કામ કરે છે તે જ કામ નદી તળાવનું ઉકાળેલું પાણી કરે છે. રસીમાં પણ જે તે રોગના જીવાણુને મારીને શરીરમાં દાખલ કરવામાં આવે છે. જીવાણુ મરેલા હોવા છતાં શ્વેતકણો એ મૃત જીવાણુ સાથે લડી ભવિષ્યમાં એ પ્રકારના જીવતા જીવાણુ શરીરમાં ક્યારેક દાખલ થઇ જાય તો તેની સામે લડવાની શક્તિ મેળવી લે છે. નદી, સરોવરના ઉકાળેલા પાણીમાં મૃત જીવાણુ બેક્ટેરિયા વગેરે હોય છે.

જે બાળકોને શરુઆતથી જ જંતુમુક્ત વાતાવરણમાં ઉછેરવામાં આવે છે, જંતુમુક્ત પાણી, આહાર આદિ આપવામાં આવે છે એ જ બાળકોને મોટી ઉંમરે એલર્જી, અસ્થમા, દમ, આર્થ્રાઇટીસ વગેરે રોગો વધુ થતા જોવા મળે છે. તેથી હવે પ્રાચીન પદ્ધતિ પ્રમાણે કુદરતી પાણી જ ફિલ્ટર કર્યા વિના સામાન્ય રીતે ગાળીને, ઉકાળીને પીવું શ્રેયસ્કર લાગે છે.

હાલમાં ''ભારતીય પ્રાચીન સાહિત્ય વૈજ્ઞાનિક રહસ્ય સોધ સંસ્થા'' દ્વારા આ અંગે એક વોટર રિસર્ચ પ્રોજેક્ટ હાથ ધરવામાં આવ્યો છે. આ આખાય સંશોધનનું સંચાલન મારા માર્ગદર્શન પ્રમાણે મુંબઇના જ આ જ ક્ષેત્રમાં વર્ષોથી કાર્ય કરતા વિજ્ઞાની અને ઉદ્યોગપતિ ડૉ. વિનોદભાઇ ડી. શાહ કરી રહ્યા છે. જેના પરિણામો ઉપર એક વિસ્તૃત શોધ નિબંધ તૈયાર કરવામાં આવશે.

48

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈનની સામાજીક સેવા

ડૉ. શૈલેષભાઈ એ. શાહ

સંપાદક- 'ઘર ઘર ચર્ચા રહે ધર્મકી' (અમદાવાદ)

ડૉ. શેખરચંદ્ર જૈન દિગંબર જૈન સમાજના જ નહિં પણ સંપૂર્ણ જૈન સમાજના આદરણીય મહાનુભાવ છે. તેઓએ જીવનમાં અનેક સંઘર્ષો પછી જે ઉંચાઈ પ્રાપ્ત કરી છે તે અનુકરણીય છે. તેઓ સંઘર્ષમાંથી સમર્પણના પાઠો ભણ્યા છે અને તેનો અમલ પણ કર્યો છે.

અધ્યાપક તરીકે શરુ કરેલ જીવનમાં તેઓ ઉત્તરોત્તર પ્રગતિ કરતા રહ્યા એ કોલેજમાં પ્રાચાર્ય તરીકે નિવૃત્ત થયા. તેઓને માત્ર અધ્યાપનથી સંતુષ્ટિ ન હતી માટે નિરંતર કોઈ ને કોઈ કાર્ય કરતા જ રહ્યા.

તેઓએ સમાજના ઉત્થાન અને જનસેવાના કાર્યને વધુ મહત્તા આપી. તેઓના જીવનને જાણતા જાણ્યું કે માત્ર ૧૫ વર્ષની ઉંમરે સન ૧૯૫૪માં જ્યારે તેઓ ૯ મા કે ૧૦મા ધોરણમાં અભ્યાસ કરતા હતા અને ટાઈફોઈડ થયેલ ત્યારે તેમના પિતાશ્રીને આર્થિક સંકળામણને કારણે જે તકલીફ પડી તેની છાપ તેમના મન અને મસ્તિષ્ક પર ઉંડી પડી. તેઓએ એક સંકલ્પ કર્યો કે જ્યારે પણ તેઓ સક્ષમ થશે ત્યારે ગરીબો માટે હોસ્પીટલ બનાવી તેઓની સેવા કરશે. તેમના વિચારોનો આ બીજ લગભગ ૪૪ વર્ષ સુધી મનના કોઈ ખુણામાં પડ્યો રહ્યો અને ૧૯૯૮માં તે પાંગરયુ - 'શ્રી આશાપુરા માં જૈન હોસ્પીટલ'ના સ્વરૂપે. આજે ૯ વર્ષમાં તે પલ્લવિત અને પુષ્પિત થઈ રહ્યો છે.

તેઓએ ૧૯૮૮માં કેટલાક મિત્રોના સહયોગથી 'સમન્વય ધ્યાન સાધના કેન્દ્ર'નામના ટ્રસ્ટની સ્થાપના કરી અને તેની પ્રવૃત્તિ સ્વરૂપે સર્વપ્રથમ ૧૯૯૩માં 'તીર્થંકર વાણી' માસિક પત્રનો પ્રારંભ કર્યો. આ પત્રિકા માત્ર પત્રિકા ન હતી પણ એક શિક્ષણ આપનારી પત્રાચારરૂપી પાઠશાળા જ હતી. તેઓએ હિન્દી ભાષીઓ ઉપરાંત ગુજરાતી અને અંગ્રેજીવાચકોને ધ્યાન રાખી પત્રિકામાં જાણે ભાષાને સ્થાન આપેલ. પત્રિકાની મોટી સેવા હતી અને છે- બાળકો, યુવકો અને જેઓ જૈન ધર્મ-સાહિત્ય સંસ્કૃતિ કલાથી પરિચિત નથી તેવા લોકોને શિક્ષણ આપવો. તે માટે હિન્દી અને ગુજરાતીમાં 'બાલજગત' અને અંગ્રેજીમાં 'યંગ લર્નર્સ કોર્નર' ના નામે પ ઠશાળા

શરુ કરી. 'ણમો અરિહંતાણં' થી પ્રારંભ કરી અત્યાર સુધીમાં લગભગ ૧૬૦ લેશન થયા છે. અત્યારસુધી જૈન ધર્મના લગભગ બધા સિધ્ધાંતોનું શિક્ષણ અપાઈ ચુક્યુ છે. વર્તમાનમાં 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર' નું અધ્યાપન ચાલે છે.

આ રીતે તેઓએ શિક્ષણ ક્ષેત્રે જૈન બાળકોને જ્ઞાન આપી સેવા કરી છે તે ખરેખર જૈનધર્મની જ સેવા ગણાય. જ્ઞાન દાન થી મોટી કઇ સેવા હોઇ શકે. આ પ્રવૃત્તિ સૂચવે છે કે તેઓને જૈન ધર્મનાં શિક્ષણ પ્રચાર-પ્રસારની કેટલી ભાવના છે?

જેમ પહેલા ઉલ્લેખ કર્યો તેમ તેઓએ ગરીબ લોકોને મદદરૂપ થવા-ગરીબોના આંસૂ લૂછવા અમદાવાદનાં અતિ પછાત, ગરીબ, મજૂર લત્તામાં 'શ્રી આશાપુરા માં જૈન હોસ્પીટલ' નો પ્રારંભ કર્યો. તેઓએ પોતાના પ્રયત્નોથી દાનદાતાઓના સહયોગથી ૧૯ રૂમનું મકાન ખરીદી તેમા હોસ્પીટલ શરુ કરી. આવા મોંઘવારી ના સમયે પણ માત્ર રૂા. ૨૦/-માં તેઓ સર્વ રોગોની તપાસ કરાવે છે. બાર જેટલા એમ.ડી., એમ.એસ. ડૉક્ટરોની સેવાઓ તેઓ પ્રાપ્ત કરી શક્યા છે. એવી જ રીતે હોમ્યોપેથીમાં માત્ર ૧ રૂપિયો લઇ દવા મફત આપે છે. હોસ્પીટલમાં લગભગ બધા રોગોની તપાસની સગવડ છે. એક્સ-રે, કાર્ડિયોગ્રામ, એમ્બ્યુલેન્સ ની સગવડ છે.

હોસ્પીટલમાં આંખનો પૂર્ણ કક્ષાનો વિભાગ છે જેમાં ફેંકો થી લઇ બધા પ્રકારના ઓપરેશન અત્યંત નજીવા દરે થાય છે. ગરીબોનાં નેત્રમણિ સાથેના ઓપરેશેન તદ્દન મફત કરવામાં આવે છે. તેઓએ આ હોસ્પીટલમાં આવત વર્ષથી ફીજીશીયન અને સર્જનનાં બે વિભાગ ઈન્ડોર તરીકે પ્રારંભ કરવાનું નક્કી કર્યું છે. તેઓ આ હોસ્પીટલને ૨૪ કલાકની જનરલ હોસ્પીટલ બનાવવા માંગે છે. આ હોસ્પીટલ માટે તેઓએ વિવિધ યોજનાઓ દ્વારા, વિભાગોને નામ આપવાના કાર્યક્રમ હેઠળ દેશ અને સવિશેષ અમેરીકાથી વિશેષ આર્થિક મદદ પ્રાપ્ત કરી છે. આમ તેઓની વૈદકીય સેવાઓથી ગરીબોને ખૂબ જ મદદ મળી છે.

ડૉ. જૈને હોસ્પીટલના માધ્યમથી વ્યસનમુક્તિ આંદોલન પોતાની આગવી શૈલીમાં પ્રારંભ કરી અનેક લોકોને વ્યસનમાંથી મુક્તિ અપાવી છે. તેઓ આ અંગે કોઇ ભાષણ કરતા નથી. કોઇ વિશેષ પ્રચાર કરતા નથી પણ પોતાના ડોક્ટરોને કહી રાખ્યુ છે કે દરેક પેસન્ટ ને પુછવાનું કે તેઓ તમાકુ સેવન કરે છે? માસ-મદિરાનું સેવન કરે છે? જો દરદી હા પાડે તો તેને કહે છે- 'તમને કોઇ દવા લાગૂ નહીં પડે જો તમો વ્યસન નહિ છોડો તો' આ વાત સાંભળી દરદી કે જેને જીવવાની તમન્ના છે તે તુરત જ વ્યસનમાં કમી કરે છે કે છોડે છે આ આગવી રીત છે.

તેઓએ જૈન ધર્મનો પ્રચાર વિશેષરૂપથી કર્યો છે. કરોડો રૂપિયાને ક્રિયાકાંડો પાછળ ખર્ચ કરીને આપણે જૈનેતરમાં જૈનો અને જૈનધર્મ માટે સદ્‌ભાવના ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી. જ્યારે આ હોસ્પીટલમાંથી તપાસ કરાવનાર દરદી કે જેમા ૯૮ ટકા જૈનેતર હોય છે તેઓ બધે કહે છે કે અમો જૈન હોસ્પીટલમાં તપાસ કરાવીએ છીએ. બસ આ 'જૈન' શબ્દ બધે પ્રસરે છે અને જૈનત્વની કરુણા અહિંસાનો પ્રચાર થાય છે.

લગભગ દર મહિને - બે મહિને ગામડાઓમાં કે હોસ્પિટલમાં વિવિધ રોગોના નિઃશુલ્ક (મફત) કેમ્પ યોજીને તેઓ જનતાની સેવા સતત કરતા રહે છે. તેઓએ પોતે હોસ્પીટલને લગભગ ૧ લાખ રૂપિયાની મદદ કરી છે.

તેઓ જ્યારે ભાવનગર હતા ત્યારે તેઓએ જૈન યુવકોમાં જૈનત્વ પાંગરે તે માટે શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયમાં ૧૦ વર્ષ સુધી ગૃહપતિ પદે રહી તેઓને જૈનદર્શન અને જરૂરી ક્રિયાઓથી પરિચિત કરાવતા

રહ્યા. આજે તેમનો વિપુલ પ્રશંસક વર્ગ (બધા શ્વેતાંબર બંધુઓ) છે. તેઓએ જૈન એકતાના સમર્થનમાં જીવન અર્પિત કરેલુ છે અને તેના પ્રતીક રૂપે તેઓએ ભાવનગરમાં 'ભારત જૈન મહામંડળ'ની સ્થાપનામાં ખુબ જ મહત્ત્વપૂર્ણ ભાગ ભજવીને સ્થાપક મંત્રી તરીકેની સેવાઓ આપી છે અને વર્તમાનમાં ગુજરાત એકમ માં ઉપાધ્યક્ષ પદે સેવા આપી રહ્યા છે. જૈન સમાજ સંગઠિત બની રાષ્ટ્રીયકક્ષાએ સારુ કાર્ય કરે તેવી તેમની ભાવના છે. આ ઉદ્દેશ્યથી જ તેઓ છેલ્લા ૧૨-૧૩ વર્ષથી પરદેશમાં પ્રવચનાર્થે જાય છે અને કોઈ પણ વ્યક્તિગત આર્થિક લાભ વગર પ્રચાર કાર્ય કરી રહ્યા છે.

તેઓ વૈદકીય સહાય ઉપરાંત શિક્ષણ સહાય માટે પણ પ્રયત્નશીલ રહ્યા છે. સમાજના બાળકો આર્થિક મુશ્કેલીના કારણે ભણતરથી વંચિત ન રહે તે માટે તેઓ તેમને શક્તિ પ્રમાણે મદદરૂપ થવાનો પ્રયાસ કરે છે અને ૨૦૦૫માં તેઓને ગણિની આર્યિકા જ્ઞાનમતી સર્વોચ્ચ પુરસ્કારમાં રૂા. ૧ લાખ પ્રાપ્ત થયા હતા. તેઓએ તુરત જ પોતાના રૂા. ૧ લાખ ઉમેરી ૨ લાખનો ફંડ જૈન એજ્યુકેશન ટ્રસ્ટ વતી રીઝર્વ બેંકમાં મૂકી દીધેલ અને તેના વ્યાજમાંથી ગરીબ વિદ્યાર્થિઓને મદદ મળે માટે પોતાના સ્વ. પિતાશ્રી ના નામે 'શ્રી પન્નાલાલ જૈન વિદ્યાર્થી સહાય ફંડ'નો પ્રારંભ કરેલ છે. આ ટ્રસ્ટની તેઓ નિરંતર વૃદ્ધિ થાય તેના પ્રયત્નો કરતા રહે છે. આ ઉપરાંત પુસ્તકો-નોટો વગેરે ની મદદ કરે છે.

તેમનો અભિનંદન તે હકીકતે તેમની સેવાવૃત્તિનો અભિનંદન છે. 'તીર્થંકર વાણી'માં પ્રકાશિત પત્રો, લેખોમાં ક્યાંય પંથવાદ કે પક્ષપાત નથી. આગમની વાણીને મહત્વ આપવામાં આવે છે પછી તે દિગંબર શાસ્ત્રોમાંથી હોય કે શ્વેતાંબર શાસ્ત્રોમાંથી. તેઓ ઉત્તમ સાહિત્ય દ્વારા સમાજને ઉત્તમ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય તે જ ભાવના રાખે છે.

'તીર્થંકર વાણી' ક્યારેય સામાજિક ઝઘડામાં પક્ષકાર બની નથી, તેનો તો પ્રયત્ન રહ્યો છે કે આવા ઝગડા કે જે સમાજને વિભાજિત કરે છે તે બંધ થવા જોઈએ તેઓ સ્પષ્ટ માને છે કે પત્રિકા અને પત્રકાર સમાજમાં જોડવાનું કાર્ય પુલ બનીને કરે ખીણ બનીને તોડવાનું કામ ન કરે. સમાજને ગેરમાર્ગે દોરનારા મુનિ કે શ્રાવકોના શિથિલાચરણ ઉપર તેઓએ નિર્ભીકતાથી કલમ ચલાવી છે. કારણ કે પૂજ્ય અને પ્રતિષ્ઠિત લોકોના આચરણ સમાજને માર્ગદર્શન આપે છે જો તેમના આચરણ જ ઠીક ન હોય તો સમાજની કુસેવા જ થાય છે. સમ્મેદ શિખરના મામલે બન્ને પક્ષોને સમાધાન માટે સતત પ્રેરિત કર્યા હતા. આવી પત્રિકાને શ્રુતસંવર્ધન અને અહિંસા ઈન્ટરનેશનલના પુરસ્કારો પ્રાપ્ત થયા છે તે તેની તટસ્થતા-નિર્ભીકતા-એકતાના પ્રતીકરૂપે ગણી શકાય.

ग.आ.ज्ञानमती पुरस्कार-२००५